

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीमद्कृष्णद्वैपायनवेदव्यास प्रणीतम्

श्रीमद्भागवतम्

दशमः स्कन्धः

(प्रथम खण्ड अध्याय १-८)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

अनुवादक — श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज
प्रकाशक — श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज

प्रथम संस्करण — श्रीगोवर्धन पूजा और
अन्नकूट महोत्सव
श्रीचैतन्याब्द ५२४
७ नवम्बर, २०१० ई०

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ०प्र०)
०५६५-२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ०प्र०)
०५६५-२४४३२७०

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११-२५५३३५६८

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन (उ०प्र०)
०५६५-२८१५६६८

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी,
उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ०प्र०)
०५६५-२४४३१०१

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प० बं०)
०९३३३२२२७७५

Please visit us at www.purebhakti.com

समर्पण

भक्त-भागवतके सम्पूर्ण आनुगत्यमें ही ग्रन्थ-भागवतके अनुशीलनका दृढ़ अनुमोदन करनेवाले, भागवतके सिद्धान्तोंमें विशेष पारदर्शी, प्राकृत कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाके लिए भागवतका पाठ करने-वालोंके लिए पाषण्ड-गजैकसिंह स्वरूप और शुद्ध-भागवत-परम्पराका आनुगत्य स्वीकारकर समस्त अप-उप-छलादि धर्म रूपी मेघके आवरणसे गौड़ीय गगनमें भागवत अर्ककी प्रभा राशिको निर्मुक्त रखनेवाले 'वैकुण्ठप्रिय' अस्मदीय श्रीगुरु-पादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी प्रेरणासे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

श्रीगुरुपादपद्मकी अपनी ही वस्तु उन्हींके श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

विषय-सूची

प्रस्तावना..... क-घ

प्रथम अध्यायका कथासार १-४

प्रथमोऽध्यायः—श्रीशुकदेव गोस्वामीके समक्ष श्रीपरीक्षित् महाराजके प्रश्न, देवताओंको अवतीर्ण होनेकी आज्ञा प्रदान, वसुदेव-देवकीका विवाह, आकाशवाणी और कंसके द्वारा देवकीके छह पुत्रोंकी हत्या ५-१४४

द्वितीय अध्यायका कथासार..... १४५-१४६

द्वितीयोऽध्यायः—भगवान् श्रीकृष्णका देवकीके गर्भमें प्रवेश और ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा उनकी स्तुति १४७-२४८

तृतीय अध्यायका कथासार २४९-२५०

तृतीयोऽध्यायः—भगवान्का आविर्भाव, पिता-माता द्वारा स्तुति और उन्हें गोकुलमें लाया जाना २५१-३६६

चतुर्थ अध्यायका कथासार..... ३६७-३६८

चतुर्थोऽध्यायः—कंसके हाथसे छूटकर दुर्गादेवीका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी और कंसका अपने अनुचरोंसे परामर्श करना ३६९-४१२

पञ्चम अध्यायका कथासार..... ४१३-४१४

पञ्चमोऽध्यायः—नन्द बाबाका पुत्र-जन्मोत्सव सम्पन्नकर मथुरा गमन और वहाँ वसुदेवजीसे मिलन ४१५-४७६

षष्ठ अध्यायका कथासार..... ४७७-४७८

षष्ठोऽध्यायः—पूतना-उद्धार ४७९-५४६

दशमः स्कन्धः

सप्तम अध्यायका कथासार	५४७-५४८
सप्तमोऽध्यायः—शकट-भञ्जन और तृणावर्त-उद्धार	५४९-६०४
अष्टम अध्यायका कथासार	६०५-६०६
अष्टमोऽध्यायः—नामकरण-संस्कार और बाललीलाएँ	६०७-७२४
श्लोक-सूची	७२५-७३८

प्रस्तावना

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी कृपा और प्रेरणासे आज श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके द्वारा रचित श्रीमद्भागवतम्के दशम-स्कन्धके प्रथम खण्ड (अध्याय १-८) का राष्ट्रभाषा हिन्दीमें संस्करण प्रकाशित करके अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ। वर्तमानमें हिन्दी भाषामें ऐसा कोई भी संस्करण उपलब्ध नहीं है जो श्रीमद्भागवत पर गौड़ीय-वैष्णव आचार्योंकी टीकाओंकी सम्पदसे युक्त हो। इस प्रस्तुत संस्करणमें इस अभावको पूर्ण करनेकी चेष्टा की गयी है।

ग्रन्थराज श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है। इसके प्रथमसे नवम, एकादश तथा द्वादश-स्कन्ध श्रीकृष्णके अप्राकृत वपुके विभिन्न अङ्ग हैं, किन्तु दशम-स्कन्ध तो श्रीकृष्णका मुखकमल-स्वरूप है। श्रीकृष्णके मुखमण्डल-स्वरूप दशम-स्कन्धमें अप्राकृत कामदेवकी समस्त अप्राकृत भङ्गिमाओंका विलास विराजमान है जिसके द्वारा प्राकृत कामसे जर्जरित जीव अप्राकृत कामदेवके विलाससे आकर्षित होकर परमानन्दमें निमग्न होनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। कलियुग पावन अवतारी श्रीमन् चैतन्य महाप्रभुके द्वारा जीवोंके परम प्रयोजनके रूपमें जिस श्रीकृष्णप्रेमका दान या वितरण हुआ उसका एकमात्र आधार एवं प्रमाण श्रीमद्भागवत विशेषकर दशम-स्कन्ध ही है।

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और उनके तद्रूपवैभव-स्वरूप श्रीधामवृन्दावन ही आराध्य वस्तु हैं। ब्रजवधुओंने जिस भावसे

श्रीकृष्णकी उपासना की थी, वह उपासना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। इसी सिद्धान्तके प्रति ही हमारा परम आदर है, अन्य मतोंके प्रति नहीं।

रसिक गौड़ीय वैष्णव आचार्योंके मुकुटमणि श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने उक्त श्लोकमें जिस प्रकारसे श्रीमन्महाप्रभुके अवदान सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक मतका सार-गर्भित विचार प्रस्तुत किया है उसका भी एकमात्र प्रमाण एवं आधार श्रीमद्भागवतम् विशेषकर दशम-स्कन्ध ही है। जिसमें—आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्त—सम्बन्ध, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधुवर्गेण—अभिधेय, प्रेमा पुमर्थो महान्—प्रयोजन है। इन तीनोंका विवरण तथा माधुर्य-आस्वादन दशम-स्कन्धमें ही है।

विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता जगद्गुरु नित्यलीला प्रविष्ट श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने अपनी वक्तृताओं एवं लेखनीमें श्रीमद्भागवतको एक अपूर्व दार्शनिक ग्रन्थके रूपमें स्वीकार करते हुए कहा है, “श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धकी एक विवृति रचना करनेकी आवश्यकता है। यह विवृति केवल कुछेक अनुस्वार-विसर्गके पण्डितों अथवा प्राकृत-सहजियोंके वागाडम्बरकी प्रदर्शनीमात्र नहीं होगी, किन्तु जिनकी वास्तविक रूपसे अप्राकृत सौन्दर्यके प्रति पिपासा उदित हुई है, यह विवृति उन सभी लौल्ययुक्त व्यक्तियोंके लिए प्रयोजनीय पाठ्यके रूपमें होगी।”

श्रील प्रभुपादके इस मनोऽभीष्टकी पूर्ति हेतु एवं मदीय ज्येष्ठ सतीर्थ नित्यलीला प्रविष्ट प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके द्वारा मुझे श्रीमद्भागवतको गौड़ीय वैष्णव आचार्योंकी टीकाओं सहित हिन्दी भाषामें प्रकाशित करनेके लिए पुनः-पुनः उत्साह प्रदान करनेवशतः मैं इस महान साम्प्रदायिक सेवाके लिए चेष्टाशील हुआ हूँ। इस उद्देश्यसे मैंने श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजको श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धके मूल-श्लोक, अन्वय, श्लोकानुवाद, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी टीका एवं उसके भावानुवादको; तथा श्रील जीव गोस्वामीपाद, श्रील सनातन गोस्वामीपाद एवं अन्यान्य वैष्णव आचार्योंकी टीकाओंके आधारपर एक ‘भावप्रकाशिका वृत्ति’ प्रस्तुत करनेका निर्देश

दिया। श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजने अत्यन्त लगन एवं अक्लान्त परिश्रमसे उक्त विशेषताओंसे समन्वित पाण्डुलिपिको प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् मैंने बहुत सावधानीपूर्वक इस पाण्डुलिपिका निरीक्षण किया तथा यथा-स्थान संशोधनके साथ-साथ विषयवस्तुको स्पष्ट करनेका प्रयास किया।

श्रीमान् पुरन्दर दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् कृष्णकृपा ब्रह्मचारी, श्रीमान् सुबल सखा ब्रह्मचारी, श्रीमान् अच्युतानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान् राधेश दास ब्रह्मचारी तथा श्रीदामोदर दास ब्रह्मचारीने टाइपका कार्य किया है। श्रीमान् भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् विजय कृष्ण ब्रह्मचारी तथा श्रीमान् संजय दास ब्रह्मचारीने प्रूफ-संशोधन और बेटी शान्ति दासीने ले-आउट आदिका कार्य किया है। मुखपृष्ठका चित्र श्रीमान् ज्ञानाञ्जन दासने, ग्रन्थमें प्रस्तुत किया गया 'देवताओं द्वारा गर्भगत कृष्णकी स्तुति' चित्र श्रीमान् प्रशान्त दास तथा अन्यान्य सभी चित्र श्रीमती श्यामरानी दासी द्वारा बनाये गये हैं तथा डिजाइन श्रीमान् विकास ठाकुर दासाधिकारी द्वारा किया गया है। श्रीमान् अमल कृष्ण ब्रह्मचारी तथा श्रीमान् माधव प्रिय ब्रह्मचारीने प्रकाशन सम्बन्धीय सेवाओंमें योगदान दिया है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थके प्रकाशनमें (१) श्रीकान्ति लाल पुज्जा और जया पुज्जा, (२) श्रीजगन्नाथ पुज्जा और परलोकगत कृष्णलीला पुज्जा, (३) श्रीनितिन पुज्जा और निर्मला पुज्जा, (४) जयश्री और दामोदर—इन सबकी अपने पारमार्थिक कल्याणके लिए आर्थिक सेवा-चेष्टा सराहनीय है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका गिरिधारी इस ग्रन्थके प्रकाशनमें जिस किसी भी प्रकारसे सहयोग करनेवाले सभी भक्तोंपर प्रचुर कृपा-आशीर्वाद वर्षण करें—यही उनके श्रीचरणोंमें विनीत प्रार्थना है।

इस विशाल ग्रन्थमें भ्रम-प्रमादवशतः कुछ त्रुटि-विच्युतियोंका रह जाना अस्वाभाविक नहीं है। सुधी पाठकों द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे।

परमार्थ प्राप्ति विशेषकर रूपानुग भजनके इच्छुक श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पठन-पाठनकर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके गुण-रूप-

लीला-विलासका माधुर्य आस्वादन करते हुए श्रीशचीनन्दन गौरहरिके द्वारा वितरित प्रेम-धर्म-व्रजभक्तिमें अधिकार प्राप्त करें—अभिन्न श्रीश्यामसुन्दर श्रीशचीनन्दनके चरणकमलोंमें यही विनीत प्रार्थना है।
अलमतिविस्तरेण।

श्रीश्रीराधाष्टमी

१६ सितम्बर २०१०

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ

नई दिल्ली

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी

त्रिदण्डिभिक्षु

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

प्रथम अध्यायका कथासार

इस प्रथम अध्यायमें आकाशवाणीके द्वारा देवकी-पुत्र श्रीकृष्णसे अपनी मृत्युके विषयमें श्रवणकर भयभीत कंसके द्वारा देवकीके छह पुत्रोंके वधके विषयमें वर्णन हुआ है।

श्रीशुकदेव गोस्वामीके द्वारा चन्द्र और सूर्य वंशोंके विस्तृत विवरण एवं यदुवंशकी परम्पराका वर्णन करनेपर श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे श्रीबलदेव-सहित यदुवंशमें अवतरित श्रीकृष्णकी भौमलीलाका क्रमानुसार वर्णन करनेकी प्रार्थना करते हुए कहा— “श्रीकृष्णकीर्तन मुक्तजनोंका भी उपास्य है, वह साध्य भी है और साधन भी। पशुघाती व्याध (शिकारी) और आत्मघाती अपराधी व्यक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति श्रीकृष्णकीर्तनसे विरत नहीं होता। श्रीकृष्ण ही पाण्डुवंशके एकमात्र गतिस्वरूप कुलदेवता हैं। उन्होंने अपनी अचिन्त्यशक्तिके बलसे मेरी माता उत्तराके गर्भमें प्रविष्ट होकर सुदर्शनचक्रके द्वारा अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे मेरी रक्षा की थी।” तदुपरान्त श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे निम्नलिखित प्रश्न पूछे—(१) माता रोहिणीके नित्य-पुत्र श्रीबलदेव माता देवकीके गर्भसे किस प्रकार प्रकट हुए? (२) जन्मके उपरान्त श्रीकृष्णने किस कारणवश मथुरासे ब्रज (गोकुल) में गमन किया? (३) उन्होंने अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कहाँ अवस्थान किया? (४) उन्होंने ब्रज और मथुरामें कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं? (५) उन्होंने किस कारणवश कंसका वध किया? (६) उन्होंने द्वारकामें कितने वर्षों तक वास किया? (७) श्रीकृष्णकी कितनी महिषियाँ थीं?

श्रीपरीक्षित् महाराजने इन सभी प्रश्नों एवं इनके अतिरिक्त श्रीकृष्णलीलाके विषयमें यदि और भी कुछ ज्ञातव्य हो, तो उन समस्त विषयोंको श्रीशुकदेव गोस्वामीसे विस्तारपूर्वक श्रवण करनेकी इच्छा प्रकट करते हुए उनसे प्रार्थना की। श्रीशुकदेव गोस्वामीने

श्रद्धावान् परीक्षित्के समक्ष हरिकथा बोलनेके लिए उद्यत होकर कहा—गङ्गा जिस प्रकार त्रिभुवनको पवित्र करती है, हरिकथा भी उसी प्रकार वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता—इन तीनों व्यक्तियोंको पवित्र करती हैं। दैत्योंके सेनाओंके भारसे पीड़ित होकर पृथ्वी गायका रूप धारणकर श्रीब्रह्माके शरणागत हुई। श्रीब्रह्मा पृथ्वीके दुःखसे दुःखी होकर महादेव आदि प्रमुख देवताओं—सहित गौरूपी पृथ्वीको लेकर क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए एवं उन्होंने पुरुषसूक्त मन्त्रोंके द्वारा क्षीरोदकशायी अनिरुद्ध महाविष्णुकी आराधना की। आराधना करते हुए समाधिमें ही श्रीब्रह्माको महाविष्णुका आदेश प्राप्त हुआ। तब उन्होंने उपस्थित सभी जनोंको बतलाया कि शीघ्र ही भगवान् पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए इस प्रपञ्चमें अवतीर्ण होंगे। देवतागण भगवान्के अंशभूत पार्षदोंके साथ यदुकुल एवं पाण्डकुलमें पुत्र-पौत्रादिके रूपोंमें अवतीर्ण हों एवं देवपत्नियाँ भी श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिए अवतीर्ण हों। श्रीकृष्णकी सेवाकी इच्छासे अनन्तदेव पहले आविर्भूत होंगे। श्रीकृष्णकी शक्ति योगमाया अपनी अंशभूत बहिरङ्गा मायाके साथ किसी विशेष कार्यकी सिद्धिके लिए प्रादुर्भूत होंगी। श्रीब्रह्मा महाविष्णुके इन आदेश-वचनोंको प्रकाशितकर ब्रह्मलोकको चले गये।

एक समय यदु-राजाओंकी राजधानी मथुरामें श्रीवसुदेव महाराज देवकीसे विवाहकर रथपर चढ़कर अपने घर लौट रहे थे। उस समय अपनी बहन देवकीकी सन्तुष्टिके लिए कंसने सारथिका कार्य करना स्वीकार किया था। तब मार्गमें ही कंसको सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी हुई कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा ही कंसका विनाश होगा। इस बातको सुननेमात्रसे ही कंस तत्क्षणात् देवकीकी हत्या करनेके लिए उद्यत हो गया, किन्तु श्रीवसुदेव महाराजने अनेक प्रकारके साम और भेद वाक्योंके द्वारा कंसको सान्त्वना देते हुए कहा कि उनके समान गुणवान व्यक्तिके लिए स्त्री-वध शोभनीय नहीं है। विशेषतः देहधारी प्राणियोंकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। जीव अपने कर्मवश देहान्तर अर्थात् नवीन देहको प्राप्त करके पुरानी देहका परित्याग कर देता है। द्वितीय अभिनिवेशके कारण जीव देह और मनमें आत्मबुद्धि करता है तथा देह और

चिदाभास मनके धर्मको आत्मामें आरोपित करता है। परद्रोही व्यक्तिके लिए इस लोक और परलोक—दोनोंमें ही भय विद्यमान रहता है। जब इन साम और भेद वाक्योंके द्वारा भी कंस अपने पापरूपी सङ्कल्पसे पीछे नहीं हटा, तब परम बुद्धिमान श्रीवसुदेवने मन-ही-मन विचारकर इस उपस्थित विपत्तिसे छुटकारा पानेके लिए एक उपाय सोचा। उन्होंने कंसके समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि वे देवकीके गर्भसे उत्पन्न सन्तानोंके जन्म होनेके साथ ही उन्हें उसके हाथोंमें सौंप देंगे। श्रीवसुदेवकी यह बात सुनकर कंस शान्त हो गया। उपयुक्त समयपर जब देवकीने अपने प्रथम पुत्रको जन्म दिया, तो श्रीवसुदेव महाराज उस नवजात पुत्रको कंसके हाथोंमें सौंपनेके लिए प्रस्तुत हुए। कंस श्रीवसुदेवके इस समभावको देखकर आश्चर्यचकित हो गया। वह श्रीवसुदेवको उनका पुत्र लौटाते हुए कहने लगा कि जब देवकीके अष्टम गर्भसे उत्पन्न सन्तानसे ही उसके प्राणोंके हरणकी सम्भावना है, तब श्रीवसुदेव अपने इस प्रथम पुत्रको वापस ले जा सकते हैं।

दूसरी ओर, श्रीनारदने कंसके निकट उपस्थित होकर उसके समक्ष ब्रजवासी और वृष्णिवंशियोंके भगवत्-पार्षद एवं देवता होनेके स्वरूपको प्रकाशित कर दिया एवं कंसादि दैत्योंके संहारके लिए विधाताके द्वारा जो उद्यम (चेष्टा) हो रहा है, उसे भी व्यक्त किया। श्रीनारदसे यह समस्त वृत्तान्त सुनकर कंसने समस्त यादवोंको देवता जानकर एवं देवकीके गर्भसे उत्पन्न प्रत्येक सन्तानको ही अपनी मृत्युका कारण 'विष्णु' जानकर देवकी और वसुदेवको बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें बन्द कर दिया। कंसने छह वर्षोंमें देवकीके छह पुत्रोंका उनके जन्म होनेके साथ-ही-साथ वध कर डाला। श्रीनारदने कंसको यह भी बतलाया था कि पूर्व जन्ममें कंसने पृथ्वीपर कालनेमि नामक असुरके रूपमें जन्म ग्रहण किया था और विष्णुने ही उसका वध किया था। इस बातको जानकर कंस यादवोंके साथ विरोध करने लगा। यहाँ तक कि वह यदु, भोज और अन्धकोंके अधिपति अपने पिता उग्रसेनको भी कारागारमें बन्दकर स्वयं अकेला ही राज्यका भोग करने लगा।

श्रीकृष्णकी लीलाएँ तीन प्रकार की हैं—(१) व्रजलीला, (२) मथुरालीला और (३) द्वारकालीला। दशम-स्कन्धके नब्बे अध्यायोंमें समग्र कृष्णलीला ही कीर्तित हुई है। दशम-स्कन्धके प्रथम चार (१-४) अध्यायोंमें श्रीब्रह्माकी प्रार्थनासे भू-भार हरणके लिए श्रीहरिकी जन्मलीला, पाँचवें अध्यायसे उनचालिसवें (५-३९) अध्याय तक व्रजलीला, चालिसवें अध्यायमें यमुनाके जलमें श्रीअक्रूरके द्वारा श्रीकृष्णका स्तव, इकतालिसवें अध्यायसे इक्यावनवें (४१-५१) अध्याय तकके ग्यारह अध्यायोंमें मथुरालीला एवं बावनवें अध्यायसे नब्बे (५२-९०) अध्याय तकके उनतालिस अध्यायोंमें द्वारकालीला वर्णित हुई है।

उनतिसवें अध्यायसे तैंतिसवें अध्याय तक पाँच अध्यायोंमें श्रीरासलीला कीर्तित हुई है। इसलिए इन पाँच अध्यायोंको 'रास-पञ्चाध्याय' कहा जाता है। सैंतालिसवें अध्यायको 'भ्रमरगीत' कहा जाता है।

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः ॥

श्रीमद्भागवतम्

दशमः स्कन्धः

(पूर्वार्धः)

प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुकदेव गोस्वामीके समक्ष श्रीपरीक्षित् महाराजके प्रश्न,
देवताओंको अवतीर्ण होनेकी आज्ञा प्रदान, वसुदेव-
देवकीका विवाह, आकाशवाणी और कंसके द्वारा
देवकीके छह पुत्रोंकी हत्या

श्रीराजोवाच—

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।

राज्ञाञ्चोभयवंशयानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

अन्वयः—श्रीराजा (श्रीकृष्णप्रेम-सम्पत्तिसे युक्त महाराज परीक्षित्ने)
उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा) भवता (परमहंस-चूड़ामणि आपके
द्वारा) सोमसूर्ययोः (चन्द्र और सूर्यके) वंशविस्तारः (पुत्र-पौत्र आदिके
क्रमसे वंशका वर्णन) कथितः (नवम स्कन्ध आदिमें वर्णन किया गया
है) [तथा] उभयवंशयानाम् (चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें उत्पन्न) राज्ञाम्
(पुरुषा, कुकत्स्य आदि राजाओंका) परमाद्भुतम् (परम विस्मयकारी)
चरितम् च (उर्वशी-परिग्रह और इन्द्रपदमें आरोहण आदि चरित
कथाका भी वर्णन किया गया है) ॥ १ ॥

अनुवाद—महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—भगवन् ! आपने चन्द्र एवं सूर्यवंशके पुत्रादिका अधस्तन-क्रम (वंश-परम्पराका) वर्णन किया है एवं दोनों वंशोंके राजाओंके परम-अद्भुत दिग्विजयादि चरित्रोंका भी कीर्तन किया है ॥ १ ॥

श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-कृता 'सारार्थदर्शिनी' टीका

नित्यानन्दः कृष्णचैतन्यचन्द्रः
अद्वैतः पृथ्व्यामेधयन् प्रेमसिन्धुम् ।
तप्तस्तम्बं स्तेमयंश्चेतयन्मां
धिन्वन् भूयात् स्वैः कृपारश्मिलेशैः ॥ १ ॥

श्रीमद्रदाधर नमो नृहरे नमस्ते
श्रीरामराय नम एव नमः स्वरूप ।
श्रीरूप सानुग नमोऽस्तु नमोऽस्तु तुभ्यं
श्रीमत्सनातन नमोऽस्तु नमो नमोऽस्तु ॥ २ ॥

श्रीमद्भागवतीय दिव्यदशमस्कन्धामृताम्भोनिधौ
खेलन् यः स्वकरोद्धृतै रसकणैराद्रांस्तटस्थानपि ।
चक्रे यस्य महत्त्वमीलितमहः श्रीरूपविख्यापितैः
सर्वैर्दृश्यत एव नाटकवरे साश्चर्यमेतद्यथा ॥ ३ ॥

वक्तुं पारमहंस्यपद्धतिमिह व्यक्तिं गतानां हि यः
सिद्धानां भुवने बभूव सनकादीनां तृतीयः पुरा ।
साङ्गं भक्तिरसं रहस्यमधुना भक्तेषु सञ्चारयन्नेकः
सोऽवततार विश्वगुरवे शुद्धाय तस्मै नमः ॥ ४ ॥

व्याख्या वैष्णवतोषणी प्रकटिता येनैव यस्या रसः
प्रापय्यातिचमत्कृतीः सुहृदयानाह्लादयन् भ्राजते ।
तस्माद्द्वित्रिकणांस्तदीयमुखतो ये निःसृताः स्वादिताः
तानाचित्य कृतार्थयानि जनुरित्याशा वरीवर्त्ति मे ॥ ५ ॥

गोपालभट्ट-रघुनाथ-पदाब्जरेणून्
श्रीलोकनाथचरणानथ जीवपादान् ।
वन्दे यदीय करुणा-सुरदीर्घिकायां
स्नातो धूताघततिरीहितमाप्नुमीशे ॥ ६ ॥

तमश्छन्नदृशां यैर्नः कृते भावार्थदीपिका ।
 कृता कृपालवस्तेऽत्र श्रीधरस्वामिनो गतिः ॥ ७ ॥
 व्याख्या लेख्या तदीया या भक्तचित्तप्रमोदनी ।
 काचित् प्रभूणां काचित् श्रीमद्गुरुकृपोदिता ॥ ८ ॥
 प्रणम्य श्रीगुरुं भूयः श्रीकृष्णं करुणार्णवम् ।
 लोकनाथं जगच्चक्षुः श्रीशुकं तमुपाश्रये ॥ ९ ॥
 गोपरामाजन-प्राणप्रेयसेऽतिप्रभूष्णवे ।
 तदीयप्रियदास्याय मां मदीयमहं ददे ॥ १० ॥
 दशमेऽनुक्रमप्राप्तं निरोधं परिहाय यत् ।
 आश्रयं व्यक्तिं मुनिराट् तेनेदं प्रतिपद्यते ॥ ११ ॥
 प्रथमः पीठतां स्कन्धद्वयं चरणयुग्मताम् ।
 चतुर्थादि कटी-नाभि-वक्षोदोर्युग-कण्ठताम् ॥ १२ ॥
 द्वादशैकादशं शीर्षभालादित्वमगात् क्रमात् ।
 श्रीभागवत-कृष्णस्य दशमो मञ्जुहास्यताम् ॥ १३ ॥
 ध्येयसर्वाङ्गमुख्यं यद्भास्यं नान्तेऽस्य संस्थितिः ।
 यथा तथाश्रयः स्कन्धो नैवान्ते स्थातुमर्हति ॥ १४ ॥
 अतः श्रीदशमे ब्रह्म-परमात्मादि-नामभाक् ।
 आश्रयो वर्ण्यते कृष्णो नवलक्षण-लक्षितः ॥ १५ ॥
 ईशानुवर्तिनामम्बरीषादीनां कथोदिता ।
 नवमे दशमे साक्षादीशस्यैव कथोच्यते ॥ १६ ॥
 स चेश्वो गोप एव कृष्णः पूर्णतमो ब्रजे ।
 पुरद्वये पूर्णतरः पूर्णः क्षत्रिय उच्यते ॥ १७ ॥
 एवं स्थलस्य त्रैविध्याल्लीलास्य त्रिविधोदिता ।
 बाल्यादि-तत्तदालम्बि-भक्तभेदात् सहस्रधा ॥ १८ ॥
 आद्यैः पञ्चभिरध्यायैर्जन्मप्रासङ्गिकी कथा ।
 जन्म चास्य ततो बाल्यलीला नवभिरीरिता ॥ १९ ॥
 षड्भिः पौगण्डलीलान्तः कैशोररस-चर्चिता ।
 ततः कैशोरलीलो नविशत्या ब्रजमण्डले ॥ २० ॥
 एकेन स्तुतिरक्रूरकृतैकादशभिस्ततः ।
 लीला स्यान्माथुरी शेषैर्द्वारकायां निरूपिता ॥ २१ ॥

तदेवं दशमेऽध्यायैर्नवत्या वर्णिता हरेः।

लीला नित्यकिशोरस्य निखिलाकर्षिणी क्षितौ ॥ २२ ॥

तत्र तु प्रथमे श्रोतृ-वक्त्रोरागतिमाधुरी।

देवाज्ञाकाशवाक् कंसादेवक्याः षट्सुतात्ययः ॥ २३ ॥

वाचयितव्येष्वर्थेषु वक्तुर्त्साहं वर्द्धयितुं तदुक्तमभिनन्दति—कथित इति।
ब्रह्मप्रपौत्रात् सूर्यात् ब्रह्मपौत्रत्वेन ब्रह्मांशत्वेन मनोऽधिष्ठातृत्वेन स्वयं भगवदङ्गी-
कृतवंश्यताकत्वेन च सोमस्याभ्यर्हितत्वात् पूर्वनिपातः। स्वायम्भुवमनोस्तद्वंश्यानाञ्च
परमाद्भुतचरित्राणां चतुर्थादिषु कथितत्वेऽपि तस्य वंशो न पर्यवसानमधुरेति। सोमसूर्ययोर्वंशस्तु
श्रीकृष्णरामचरित्रान्तिमत्वात् पर्यवसानमधुरेति तयोरुत्कर्षेणोल्लेखः ॥ १ ॥

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-रचित

‘सारार्थदर्शिनी’ टीकाका भावानुवाद

नित्यानन्द-स्वरूप अखण्ड-चैतन्य श्रीकृष्णचन्द्रने, दूसरे पक्षमें
जिन श्रीकृष्णचैतन्य-चन्द्रने अर्थात् श्रीमन् महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभु
और श्रीअद्वैत आचार्यके साथ समस्त पृथ्वीपर प्रेम-सिन्धुकी तरङ्गोंका
वर्द्धन करते हुए सूखे हुए तृणके गुच्छोंको भी द्रवीभूत (सरस) कर
दिया है, ऐसे वे श्रीकृष्णचैतन्य-चन्द्र अपनी कृपारूपी किरणोंके लेशसे
मुझ चेतनारहित अर्थात् नीरस हृदयवाले व्यक्तिमें भी चेतनताका
विकास करते हुए मुझे आनन्दित करें ॥ १ ॥

हे श्रीगदाधर (पण्डित)! आपको प्रणाम है, हे श्रीनरहरि सरकार
ठाकुर! आपको प्रणाम है, हे श्रीरामराय! आपको प्रणाम है, हे
श्रीस्वरूप दामोदर! आपको प्रणाम है, हे अनुगतजन सहित श्रीरूप!
आप सभीको बारम्बार प्रणाम है, हे श्रीमत् सनातन! आपके प्रति मेरा
बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो ॥ २ ॥

श्रीमद्भागवतके दिव्य दशम-स्कन्धके अमृत-समुद्रमें विहार करते
हुए जिन श्रीसनातन गोस्वामीने अपने करकमलोंसे उद्धृत रस-कणिकाके
द्वारा श्रीकृष्णसे विमुख रहनेवाले तटस्थ जीवोंको श्रीकृष्णरससे सिक्त
कर दिया है, जिन श्रील सनातन गोस्वामीपादकी महिमाको श्रील
रूप-गोस्वामिपादने अपने द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक-ग्रन्थों विदग्ध-माधव
और ललित-माधवादिमें जिस अप्रकाश्य रीतिसे वर्णन किया है, वह
अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण है ॥ ३ ॥

प्राचीन कालमें पारमहंस्य पद्धतिको इस जगत्के जीवोंके समक्ष प्रकाशित करनेके लिए पारमहंस्य पद्धतिमें सिद्ध अर्थात् परमहंस सनकादि चतुःसनमेंसे तृतीय जो सनातन इस जगत्में आविर्भूत हुए थे, इस समय भी वे भक्तजनोंमें भक्ति-अङ्गों अर्थात् साधनभक्ति सहित भक्तिरसका रहस्य सञ्चारित करनेके लिए अकेले ही अवतीर्ण हुए हैं। ऐसे विशुद्ध-प्रामाणिक विश्वगुरु श्रील सनातन गोस्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ॥४॥

जिनसे 'वैष्णव-तोषणी' नामक व्याख्या प्रकटित हुई है तथा जिस व्याख्याका अति-चमत्कारपूर्ण रस आस्वादनकर सहृदय भक्तजन परमानन्दको प्राप्तकर देदीप्यमान हो रहे हैं, उन श्रील सनातन गोस्वामीके श्रीमुखारविन्दसे अप्राकृत रसास्वादनके समय उच्छिष्टके रूपमें जो दो-तीन कण निकले हैं, उन्हींका संग्रहकर मैं अपने जन्मको सफल करूँगा—यही मेरे जीवनकी चिरकालीन आशा है॥५॥

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके श्रीचरण-कमलोंकी रज तथा श्रील लोकनाथ गोस्वामी एवं श्रीजीव गोस्वामीके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जिनकी करुणारूपी गङ्गामें स्नानकर अपने पापोंको क्षय करते हुए मैं अपनी अभिलषित वस्तुको प्राप्त करनेमें समर्थ होऊँगा॥६॥

जिन्होंने अज्ञानरूपी अन्धकारसे आवृत-दृष्टिवाले व्यक्तियोंके लिए कृपापूर्वक 'भावार्थदीपिका' की रचना की है, उन श्रील श्रीधरस्वामिपादकी कृपा-लेश ही अभिलषित वस्तुको पूर्ण करनेमें मेरी गति है॥७॥

भक्तोंके हृदयको उल्लसित करनेवाली जो व्याख्या लिखी जा रही है, वह कुछ अंशमें श्रीश्रीधरस्वामीपादकी, कुछ अंशमें प्रभुओंकी (अर्थात् श्रील सनातन गोस्वामीपाद, श्रील जीव गोस्वामीपाद आदिकी) तथा कुछ अंशमें श्रीमद् गुरुपादपद्मकी कृपासे स्फुरित है॥८॥

श्रीगुरुदेवको पुनः-पुनः प्रणाम करते हुए, करुणासिन्धु एवं समस्त लोक-निवासियोंके स्वामी अर्थात् पालक-स्वरूप श्रीकृष्णका तथा जगत्के नेत्रस्वरूप उन प्रसिद्ध श्रीशुकदेव गोस्वामीका सम्पूर्ण रूपसे आश्रय ग्रहण करता हूँ॥८॥

जो ब्रजगोपियोंके करोड़ों प्राणोंके समान प्रियतम तथा सर्वशक्ति-मान भगवान् हैं, उन श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें मैं अपनेको (अर्थात् आत्मको) और अपनेसे सम्बन्धित वस्तुओं (देह आदि) को उनके प्रियजनोंमें मुख्य गोपियोंके दास्यके लिए सभी प्रकारसे समर्पण करता हूँ ॥ १० ॥

महापुराण श्रीमद्भागवतके दस लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं—सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर कथा, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। मुनिश्रेष्ठ श्रील शुकदेव गोस्वामीने इनमेंसे क्रमसे उपस्थित 'निरोध' का दशम-स्कन्धमें वर्णन न करके आश्रयतत्त्वका वर्णन किया है। इससे यह प्रतिपादित होता है कि श्रीमद्भागवत, जो कि श्रीकृष्णका स्वरूप है, उसका प्रथम स्कन्ध उन श्रीकृष्णकी पीठ (अर्थात् श्रीकृष्ण विग्रहका आधार) है, द्वितीय और तृतीय-स्कन्ध उनके दो चरणकमल हैं, चतुर्थ-स्कन्ध उनकी कटीस्थल (अर्थात् कमर) है, पञ्चम-स्कन्ध उनका नाभिदेश, षष्ठ-स्कन्ध उनका वक्षःस्थल, सप्तम- और अष्टम-स्कन्ध उनकी दोनों भुजाएँ, नवम-स्कन्ध उनका कण्ठदेश, एकादश-स्कन्ध उनका ललाट, द्वादश-स्कन्ध उनका मस्तक (सिर) है और दशम-स्कन्ध श्रीकृष्णके प्रफुल्ल मुखारविन्दका मनोहर हास्य-सुधा है ॥ ११-१३ ॥

श्रीकृष्णके समस्त अङ्गोंमें श्रेष्ठ जो उनका मुखकमल है, उसका मधुर हास्य ही सबका ध्येय है तथा उस हास्य (मुख) की स्थिति जिस प्रकार अन्तमें नहीं है, अर्थात् उसके बाद श्रीकृष्णका ललाट और मस्तक (सिर) है, उसी प्रकार आश्रयतत्त्वका निरूपण करनेवाला यह दशम स्कन्ध भी अन्तमें रहना उपयुक्त नहीं है। अर्थात् दशम-स्कन्धमें ही ग्रन्थकी परिसमाप्ति नहीं है (उसके बाद भी दो स्कन्ध हैं)। (अर्थात् दस लक्षणोंमें 'आश्रय' अन्तमें है, अतएव उसका निरूपण करनेवाला स्कन्ध भी अन्तमें ही होना चाहिये। किन्तु टीकाकार कहते हैं कि जिस प्रकार भगवान्का मञ्जु (मनोहर) हास्य उनका अन्तिम अङ्ग नहीं है, उसके बाद भी ललाट आदि अङ्गसमूह हैं, उसी प्रकार उस मनोहर हास्य-स्वरूप आश्रयतत्त्वका

निरूपण करनेवाले स्कन्धके भी अन्तमें होनेकी कोई बाध्यता नहीं है) ॥ १४ ॥

इसलिए श्रीदशम-स्कन्धमें नौ लक्षणों (अर्थात् सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर कथा, ईशानुकथा, निरोध और मुक्ति) से युक्त आश्रयतत्त्व अर्थात् ब्रह्म, परमात्मा आदि नामसे युक्त श्रीकृष्णका ही वर्णन हुआ है ॥ १५ ॥

नवम-स्कन्ध तक 'ईशानुवर्त्ती' अर्थात् भगवान्का अनुसरण करनेवाले महाराज अम्बरीष आदिकी कथा कही गयी और अब दशम-स्कन्धमें साक्षात् ईश्वरकी ही अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंका वर्णन हुआ है ॥ १६ ॥

सर्वेश्वर गोपरूपी (गोपाभिमानमें) श्रीकृष्ण ही व्रजमें पूर्णतम हैं और वे ही क्षत्रियवेशधारी और क्षत्रियाभिमानीके रूपमें मथुरामें पूर्णतर एवं द्वारकामें पूर्ण रूपमें विराजमान हैं—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥

इस प्रकार स्थानके तीन भेदसे श्रीकृष्णकी लीला भी तीन प्रकार की है—व्रजलीला, माथुरलीला और द्वारकालीला। किन्तु उसमें भी बाल्य आदि लीलाएँ तथा उन-उन लीलाओंके अवलम्बनकारी भक्तोंके भेदसे श्रीकृष्णकी लीलाएँ भी अनन्त प्रकारकी हैं ॥ १८ ॥

इस दशम-स्कन्धके पहले पाँच अध्यायों (१-५) में श्रीकृष्णके जन्म-प्रसङ्गसे सम्बन्धित कथा और जन्मलीलाका वर्णन हुआ है। उसके पश्चात् नौ अध्यायों (६-१४) में श्रीकृष्णकी बाल्यलीलाओंका वर्णन, तत्पश्चात् छह अध्यायों (१५-२०) में कैशोररससे मिश्रित पौगण्डलीला अर्थात् पौगण्डका अन्त और कैशोरकी प्रारम्भिक कथाओंका वर्णन, उसके पश्चात् उन्नीस अध्यायों (२१-३९) में व्रजमण्डलमें कैशोरलीलाका वर्णन है। अर्थात् कुल मिलाकर उनचालीस अध्याय तक व्रजलीलाका वर्णन हुआ है। एक अध्याय (४०) में अक्रूरकी स्तुति, उसके पश्चात् ग्यारह अध्यायों (४१-५१) में माथुरीलीला, तत्पश्चात् अन्तिम उनचालिस अध्यायों (५२-९०) में द्वारकालीलाका निरूपण हुआ है। इस प्रकार श्रीदशम-स्कन्धके नब्बे अध्यायोंमें ही नित्यकेशोर श्रीकृष्ण द्वारा इस भूतलपर की गयी निखिल आकर्षिणी लीलाओंका वर्णन हुआ है ॥ १९-२२ ॥

उनमेंसे इस पहले अध्यायमें श्रोता और वक्ताओंकी आस्वादन-माधुरी, देवताओंके प्रति भगवान्की आज्ञा, आकाशवाणी एवं कंसके द्वारा देवकीके छह पुत्रोंके वधका वर्णन हुआ है ॥ २३ ॥

वक्तव्य विषय अर्थात् कहे जानेवाले श्रीकृष्णकथारूप अर्थ (सम्पत्ति) के प्रति वक्ता श्रीशुकदेव गोस्वामीका उत्साह-वर्द्धन करनेके लिए महाराज परीक्षित् उनके वचनोंका अभिनन्दन 'कथितः' आदि श्लोक द्वारा कर रहे हैं। यहाँ ब्रह्माके प्रपौत्र (ब्रह्मा-मरीचि-कश्यप-विवस्वान्) सूर्य हैं, तथा ब्रह्माके पौत्र (ब्रह्मा-अत्रि-चन्द्र) चन्द्र हैं। ब्रह्माके अंश-चन्द्र, मनके अधिष्ठातृ देवता हैं और विशेषकर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने उस चन्द्रवंशको अङ्गीकार किया है, अर्थात् भगवान् जिस वंशमें प्रकट हुए हैं, उस 'सोम' अर्थात् 'चन्द्रवंश' का अधिक समादर होनेके कारण यहाँ 'सोमसूर्ययोः' पदमें 'सोम' शब्दका प्रयोग पहले हुआ है। स्वायम्भुव मनु एवं उनके पुत्र-पौत्रादिरूप वंश-परम्पराके परम-अद्भुत-चरित्रोंका चतुर्थ इत्यादि स्कन्धोंमें वर्णन होनेपर भी स्वायम्भुव मनुका वंश मधुरताकी परिसमाप्ति नहीं है, परन्तु सोम और सूर्य-वंश यथाक्रमसे भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीरामकी चरित्रकथाओंपर समाप्त होनेके कारण ही मधुरतामें पर्यवसित हुए हैं, इस उत्कर्षताके कारण ही अर्थात् (मधुरेण समापयेत्-न्यायसे) यहाँ इन दोनों वंशोंका ही नाम उल्लेख हुआ है ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति

मङ्गलाचरण

नमः	ॐ	विष्णुपादाय	गौरप्रेष्ठाय	भूतले ।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-	केशव	इति	नामिने ॥	
अतिमर्त्य-	चरित्राय	स्वाश्रितानाञ्च-	पालिने ।	
जीवदुःखे	सदात्ताय	श्रीनाम-	प्रेम-दायिने ॥	
गौराश्रय	विग्रहाय	कृष्णकामैक-	चारिणे ।	
रूपानुग-	प्रवराय	विनोदेति	स्वरूपिणे ॥	
विश्वस्य	नाथरूपोऽसौ	भक्तिवर्त्म	प्रदर्शनात् ।	
भक्तिचक्रे	वर्तितत्त्वात्	चक्रवर्त्याख्यया	भवत् ॥	

श्रीरूपचरणद्वन्द्व-रागिणम् व्रजवासिनम् ।
 श्रीजीवं सततं वन्दे मन्देष्वानन्ददायिनम् ॥
 वैराग्ययुग्भक्तिरसां प्रयत्नैः अपाययन् मां अनभीप्सुं अन्धम् ।
 कृपाम्बुधिर्यः परदुःख-दुःखी सनातनस्त्वं प्रभुं आश्रयामी ॥
 वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
 पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥
 नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम-प्रदाय ते ।
 कृष्णाय कृष्णचैतन्य नाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

सर्वप्रथम निरुपाधिक करुणाके समुद्र श्रीगुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद
 अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, महामहोपाध्याय
 रसिकाचार्यवर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, गौड़ीय तत्त्व-सिद्धान्ताचार्य
 श्रील जीव गोस्वामीपाद, श्रील सनातन गोस्वामीपाद, परमवन्दनीय श्रील
 श्रीधरस्वामीपाद और महावदान्य श्रीराधा-भाव-कान्ति-सुवलित कृष्णस्वरूप
 शचीनन्दन श्रीगौरहरिके श्रीचरणकमलोंमें पुनः-पुनः प्रणतिपूर्वक उनकी
 कृपा-प्रार्थना करते हुए सब प्रकारसे अनभिज्ञ होनेपर भी उक्त
 वैष्णव-आचार्योंकी टीकाओंके आधारपर श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धपर
 'भावप्रकाशिका वृत्ति' प्रस्तुत करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। सहृदय
 वैष्णववृन्द मेरे इस दुःसाहसको क्षमा करके कृपापूर्वक इस दीन-हीनकी
 क्षुद्र सेवा-चेष्टाको स्वीकारकर कृपा करें।

महाराज श्रीपरीक्षित्के प्रश्नोंके अनुसार परमहंस-चूड़ामणि
 श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीमद्भागवतके प्रथम आठ स्कन्धोंमें योगधारणा,
 महापुरुष संस्थान (अवस्थान), समष्टि और व्यष्टि विराटका वर्णन,
 मनुवंशका वर्णन, भूगोल आदि वृत्तान्तका वर्णन, अनेक भक्तोंके
 चरित्र एवं उपाख्यान आदिका वर्णन करते हुए अन्तमें नवम-स्कन्धमें
 सूर्य और चन्द्रवंशका वर्णन किया है। फिर चन्द्रवंशका वर्णन करते
 हुए उन्होंने संक्षेपमें श्रीकृष्णलीलाको इङ्गित किया है।

महाराज श्रीपरीक्षित्ने मातृगर्भमें निवास करते समय जिनकी
 श्रीमूर्तिका दर्शन प्राप्त किया था, जो पाण्डवकुलकी एकमात्र गति हैं,
 जिनके प्रभावसे आज महाराज परीक्षित् पृथ्वीके आधिपत्यको त्यागकर
 गङ्गाजीके तटपर श्रवणाङ्ग भक्तिका आश्रय लेनेमें समर्थ हुए हैं,

जिनके श्रीचरणकमल ब्रह्मा, शिवादि द्वारा भी वन्दित होते हैं, जो दीनजनोंकी एकमात्र शरण हैं, उन श्रीगोविन्दकी कथाके श्रवणमात्रसे ही श्रीपरीक्षित् महाराजके हृदयमें अन्तर्निहित गुप्त-प्रेमबीज अंकुरित हो उठा।

जिस प्रकार खोये हुए विस्मृत धनका कुछ अंश मिलनेपर उसकी स्मृतिके जागृत होनेके साथ-ही-साथ जिस प्रकार मनमें उस धनके अवशेष भागको पानेकी भी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठती है, उसी प्रकार महाराज परीक्षित् भी श्रीकृष्णलीलाका कुछ अंश सुननेके पश्चात् उसके अवशेष अंशको भी सुननेके लिए आतुर हो उठे।

प्रेम हृदयकी वस्तु होनेपर भी उसे अन्तर हृदयमें छिपाकर नहीं रखा जा सकता, क्योंकि बाहरमें भी उसके बहुत-से विकार प्रकाशित होकर हृदयमें उसकी अवस्थितिको प्रकटित कर देते हैं। महाराज श्रीपरीक्षित्की श्रीकृष्ण-लीलाकथा श्रवणकी लालसाके वर्द्धित होनेके कारण उनके नेत्रोंमें अश्रु, शरीरमें पुलक और वाणीमें गद्गद-भाव प्रकाशित हो उठे। इस प्रकार वे प्रेम-शोभासे शोभित और प्रेम-सम्पदके महाधनी महाराज बन गये। कोई विषयासक्त व्यक्ति ही उन्हें यह कहकर श्रीहीन मान सकता है कि 'राजवेश परित्याग करनेसे उनकी दैहिक श्री एवं राजपद त्याग करनेसे उनकी ऐहिक (जागतिक) श्री (सौन्दर्य) नष्ट हो गयी है', परन्तु तत्त्वज्ञ व्यक्तिके अनुसार वास्तव श्री अर्थात् 'सम्पत्ति' तो श्रीभगवान्के चरणकमलोंमें रति है, न कि धन, जन, ग्राम आदि का प्रचुर मात्रामें होना।

श्रीचैतन्य चरितामृतके अन्तर्गत श्रीराय रामानन्द संवादमें भी देखा जाता है—

सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कौन सम्पत्ति गणि?

राधाकृष्णे प्रेम याँर सेइ बड़ धनी॥

(श्रीचै० च० मध्य ८/२४६)

अर्थात् "श्रीमान् महाप्रभुने श्रीराय रामानन्दसे पूछा—सम्पत्तियोंमें जीवकी सबसे श्रेष्ठ सम्पत्ति क्या है? श्रीराय रामानन्दने कहा—जिनके पास श्रीराधाकृष्णके प्रति प्रेमरूपी सम्पत्ति है, वे ही सबसे अधिक धनी हैं।"

अतएव महाराज परीक्षित् ही यथार्थ श्रीमान् है। अतः दशम-स्कन्धके प्रारम्भमें 'श्रीराजोवाच' इस पदमें 'श्री' का अर्थ है—“श्रीकृष्णप्रेम-सम्पत्तिसे युक्त राजाने कहा।”

श्रोता यदि वक्ताके द्वारा कहे गये विषयोंको हृदयङ्गम कर लेते हैं, तब वक्ताको अत्यधिक आनन्द और उल्लास होता है एवं वक्ता अपने हृदयको खोलकर श्रोताके दूसरे-दूसरे प्रश्नोंका भी उत्तर देते हैं। इसलिए महाराज श्रीपरीक्षित्ने भी श्रीशुकदेव गोस्वामीके हृदयगत भावोंको सुननेके लिए समस्त कथाओंकी सार श्रीकृष्णलीलाकथा-विषयक जिज्ञासाके द्वारा श्रीशुकदेव गोस्वामीके पूर्व-कथित प्रसङ्गका उल्लेख करते हुए कहा—हे गुरो! मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया हूँ। आपने जो चन्द्रवंशीय और सूर्यवंशीय राजाओंके पुत्र-पौत्रादिका क्रमपूर्वक वंश-वर्णन एवं उन महाप्रतापशाली राजाओंके अलौकिक चरित्रका वर्णन किया है, वह सुनकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ।

अपनी करुणावशतः भगवान् श्रीकृष्णने चन्द्रवंशमें एवं भगवान् श्रीरामने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहणकर इन दोनों वंशोंको परम कृतार्थ कर दिया है। महाराज श्रीपरीक्षित्ने इन दोनों वंशोंपर श्रीभगवान्की इस परमकरुणाको देखकर ही श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—“आपने चन्द्र और सूर्यवंशका वर्णन किया है।” श्रीमद्भागवतके द्वितीय-स्कन्धसे नवम-स्कन्ध तक चन्द्र और सूर्य वंशके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे वंशोंके वृत्तान्तका भी वर्णन हुआ है, परन्तु भक्तोंका यह स्वभाव है कि श्रीभगवान्का सम्बन्ध-गन्ध पानेपर वे उसीमें ही मत्त हो जाते हैं, दूसरी बातोंको ध्यानमें ही नहीं रख पाते। जिस प्रकार विषयोंमें आसक्त व्यक्तिके द्वारा काय, मन और वचनसे सर्वत्र विषय-सम्बन्ध ही ग्रहण और प्रकाश होता है, उसी प्रकार भगवद्भक्तोंके द्वारा भी काय, मन और वचनसे सर्वत्र केवलमात्र श्रीभगवान्से ही सम्बन्ध ग्रहण और प्रकाश होता है। अतएव भक्त-चूड़ामणि महाराज श्रीपरीक्षित्ने श्रीयदुनाथ और श्रीरघुनाथका सम्बन्ध देखकर ही चन्द्र और सूर्य वंशोंको परम उपादेयके रूपमें ग्रहण और प्रकाश किया है।

व्याकरणके नियमानुसार श्रेष्ठ और कनिष्ठ-वाचक पदमें द्वन्द्व समास होनेपर श्रेष्ठ-वाचक पदका ही प्रयोग पहले होता है। चन्द्र एक

उपग्रह हैं और सूर्य ग्रह हैं। चन्द्र सूर्यकी किरणोंसे आलोकित होकर जगत्को प्रकाश देते हैं। चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य परिमाणमें बृहत् तथा अनेक प्रकारकी ऊर्जाओंके स्रोत हैं। विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विचार करनेपर देखा जाता है कि चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य ही श्रेष्ठ हैं। अतएव चन्द्र और सूर्य पदका समास करनेपर 'चन्द्रसूर्य' न होकर 'सूर्यचन्द्र' ही होना चाहिये, परन्तु महाराज श्रीपरीक्षित्ने श्रीशुकदेव गोस्वामीके समक्ष 'सूर्यसोमयोः' न कहकर 'सोमसूर्ययोः' कहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि जागतिक श्रेष्ठता और कनिष्ठताकी अपेक्षा भगवत्-सम्बन्धयुक्त श्रेष्ठ-कनिष्ठका विचार होना ही उचित है। चन्द्रवंशमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण एवं सूर्यवंशमें उनके अंश श्रीरामचन्द्र अवतीर्ण हुए हैं, इसलिए स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्ध-गौरवसे चन्द्र ही श्रेष्ठ हैं। विशेषकर चन्द्र, ब्रह्माके मानसपुत्र—अत्रिके पुत्र हैं एवं सूर्य ब्रह्माके मानसपुत्र मरीचिके पौत्र हैं, अतएव जन्म-सम्बन्धसे भी चन्द्र ही श्रेष्ठ हैं।

महाराज श्रीपरीक्षित् श्रीकृष्णलीलाकथा सुननेके लिए अत्यन्त उत्सुक हुए हैं एवं यही उनका ऐकान्तिक अभीष्ट भी है। श्रीकृष्णलीला-विषयक प्रश्न करनेके लिए ही वे श्रीशुकदेव गोस्वामीके पूर्व-कथित विषयोंका अनुमोदन करते हुए क्रमशः अभीष्ट विषयोंकी ओर अग्रसर हो रहे हैं॥ १॥

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम।

तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः॥ २॥

अन्वयः—[है] मुनिसत्तम! (प्रेमावेशमें निरन्तर श्रीकृष्णलीला मनन परायण!) नितराम् (समस्त प्रकारसे) धर्मशीलस्य (विषय-भोगवासनाका सुख त्यागकर एकमात्र श्रीकृष्णभक्तिमें निष्ठाप्राप्त) यदोश्च (यदु नामक ययाति-पुत्र, जिनके वंशमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए हैं) [ऐसे यदु महाराजका वंश विस्तार रूपसे आपके द्वारा पहले ही वर्णन किया जा चुका है] तत्र (धर्मपरायण होनेके कारण ही उस यदुवंशमें) अंशेन (अपने अंश श्रीबलदेवके साथ) अवतीर्णस्य (गोलोक नामक अपने परम-धामसे प्रपञ्चमें अवतीर्ण

हुए) विष्णोः (सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णके) वीर्याणि (महाप्रभावमय चरित्रका) नः (हमारे समक्ष) शंस (स्तुतिकी भाँति उत्कर्ष सहित वर्णन करें) ॥ २ ॥

अनुवाद—हे मुनिवर! आपने अत्यन्त सद्धर्मपरायण यदुके वंशका भी वर्णन किया है। अब कृपया उस यदु-वंशमें अपने अंश श्रीबलदेवके साथ प्रपञ्चमें अवतीर्ण सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णकी महाप्रभावशाली लीलादिका हमारे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

सारार्थदर्शिनी—यदोश्चरितं कथितम्। तस्य पित्राज्ञालङ्घित्वेऽपि शुद्धभक्तिमत्त्वात् नितरां धर्मशीलत्वं नवमे व्याख्यातम्, एकादशे व्याख्यास्यते च। ‘मुनिसत्तम’ इति—मुनित्वात् सर्वज्ञत्वं, भक्तमुख्यत्वात् भक्त्युत्कर्षस्थापकत्वमित्युभयं त्वय्येव दृष्टमिति भावः। तत्रावतीर्णस्य वीर्याणि कथय। कस्य? अंशेन विष्णोः, यः खल्वंशेन वैकुण्ठे विष्णुर्भवति, यस्यैकांशो विष्णुस्तस्य पूर्णस्येत्यर्थः। यद्वा, अंशेन शंस, सामस्त्येन वक्तुं न कस्यापि शक्तिरिति भावः ॥ २ ॥

भावानुवाद—(हे शुकदेव गोस्वामी!) आपने परम-धर्मशील महाराज यदुके चरित्रका भी वर्णन किया है। यद्यपि यदु महाराजने अपने पिता महाराज ययातिके द्वारा दिये गये उनकी वृद्ध-अवस्था ग्रहणरूप आदेशका उल्लंघन किया था, तथापि श्रीभगवान्‌के प्रति शुद्ध-भक्तिमान होनेके कारण ही यदु महाराजको नवम-स्कन्धमें अत्यधिक धर्मशील कहा गया है और इस विषयका एकादश-स्कन्धमें भी वर्णन होगा। ‘मुनिसत्तम’ अर्थात् ‘हे मुनिश्रेष्ठ! श्रीशुकदेव गोस्वामी’—मुनि होनेके कारण सर्वज्ञ होना तथा भक्तोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण भक्तिके उत्कर्षकी स्थापना करना—ये दोनों गुण आपमें ही परिलक्षित होते हैं, यही भावार्थ है। अतः आप उन यदु महाराजके वंशमें अवतीर्ण हुए भगवान्‌की अत्यधिक प्रभावशाली लीलाओंका कृपापूर्वक हमारे समक्ष कीर्तन कीजिये। किन भगवान्‌के चरित्रका? ‘अंशेन विष्णोः’—जो अपने अंश-स्वरूपसे वैकुण्ठमें विष्णुके रूपमें अवस्थान करते हैं, अर्थात् विष्णु जिनके अंश हैं, उन परिपूर्ण अर्थात् अंशी-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रका वर्णन कीजिये। अथवा, ‘अंशेन’ पदका ‘शंस’ पदके साथ अन्वय करनेसे यह भाव होगा कि

यद्यपि श्रीकृष्णकी कथाओंका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है, तथापि आप आंशिक रूपमें ही उनका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—प्रथम श्लोकमें महाराज श्रीपरीक्षित्ने श्रीशुकदेव गोस्वामीके द्वारा पूर्व-कथित विषयोंका अनुमोदन तथा परम उपादेय-रूपमें उनका समर्थन किया है। अब इस श्लोकमें वे अपने अभीष्टके विषयमें प्रश्न करते हुए श्रीशुकदेव गोस्वामीसे उनके द्वारा पूर्व-कथित धर्मशील यदुवंशमें अंश-सहित अवतीर्ण भगवान् श्रीविष्णुकी महाप्रभावशाली चरितकथाका वर्णन करनेकी प्रार्थना कर रहे हैं।

यहाँ श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीको 'मुनिसत्तम' कहकर सम्बोधित किया है। इसका अभिप्राय यह है कि मैं जो कुछ भी प्रश्न करूँगा, उसका उत्तर प्रदान करनेके लिए एकमात्र 'मुनिसत्तम' आपका ही सामर्थ्य है। क्योंकि, जो जगत्से अतीत सच्चिदानन्द वस्तुके मनन करनेमें रत रहते हैं, वे मुनि कहलाते हैं। ऐसे मुनियोंमें जो भगवान् श्रीकृष्णके भक्त हैं, वे सत् हैं, जो निरन्तर श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिन्तन और भजनमें निमग्न हैं, वे सत्तर हैं एवं जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें दास्य, सख्य आदि भावरूप विशेष प्रेम-सम्पत्तिसे युक्त हैं, वे ही सत्तम हैं।

महाराज श्रीपरीक्षित्के मनका भाव यह है कि "हे गुरो (श्रीशुकदेव गोस्वामी)! आप मुनिसत्तम हैं अर्थात् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें विशेष प्रेम-सम्बन्धरूप सम्पत्तिसे युक्त होकर निरन्तर उनकी लीलाओंका मनन कर रहे हैं। ब्रह्मा, शिव, अनन्तदेव आदिके लिए दुर्ज्ञेय होनेपर भी आप श्रीकृष्णकी मधुरलीलाको प्रगाढ़ प्रेम-सम्बन्धसे ही सदा-सर्वदा अनुभव कर रहे हैं। अतएव श्रीकृष्णलीलाकथा वर्णनके द्वारा मुझे कृतार्थ करनेमें एकमात्र आप ही समर्थ हैं।" महाराज श्रीपरीक्षित्की यह प्रार्थना श्रीकृष्णलीलाकथाके श्रवणकी प्रबल उत्कण्ठा तथा भक्ति-सिद्धान्तसे युक्त है।

महाराज यदुके पिता ययाति महाराज शुक्राचार्यके शापसे जराग्रस्त हो गये थे। इस जरावस्थाके निवारणके लिए शुक्राचार्यसे

प्रार्थना करनेपर शुक्राचार्यने उन्हें कहा—“यदि कोई तुम्हारी जरावस्थाको स्वीकारकर तुम्हें अपना यौवन अर्पण करे, तभी तुम इस जरावस्थासे मुक्त हो सकोगे।” तब महाराज ययातिने अपने पुत्र यदुको अपनी जरावस्था ग्रहण करनेका आदेश दिया। महाराज यदुने पिताके आदेशका उल्लंघनकर भक्ति-मर्यादाकी रक्षा की। उन्होंने ऐसा विचार किया कि जिस दिन मैंने श्रीकृष्णमन्त्र ग्रहण किया, उसी दिनसे ही मैंने अपना देह-दैहिक सबकुछ श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पण कर दिया है। अतएव इस शरीरसे केवल श्रीकृष्णका सेवा-कार्य ही करना है, परन्तु जराग्रस्त होनेपर श्रीमन्दिर-मार्जन, पुष्प-तुलसी आदि चयन, सिञ्चन आदि श्रीकृष्णकी सेवासे मैं वञ्चित हो जाऊँगा। अतएव पिताका आदेश टालकर भी भक्ति-मर्यादाकी रक्षा करना ही मेरा एकमात्र कर्त्तव्य है।

पद्मपुराणमें श्रीभगवान्ने कहा है—

मन्निमित्तं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते।

मामनादृत्य धर्मोऽपि पापः स्यात् मत्प्रभावतः॥

अर्थात् मेरे लिए किया गया पाप भी मेरे प्रभावसे धर्मके रूपमें कल्पित (स्वीकृत) होता है, किन्तु मेरे सम्बन्धसे रहित धर्मका अनुष्ठान भी पाप है।

महाराज यदुने श्रीकृष्णकी सेवाके लिए अपने पिताकी आज्ञाका उल्लंघन किया, अतएव भगवान्के उक्त आदेशसे ऐसा उल्लंघन ही यदुके धर्ममें परिगणित हुआ। यदि यदु अपनी भोग-वासनाकी तृप्तिके लिए पितृ-आज्ञाका उल्लंघन करते, तब वे निश्चय ही अधार्मिक होते, क्योंकि ‘आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया’ (रघुवंश १४/४६) अर्थात् गुरुवर्गका आदेश बिना विचार किये ही पालन करना चाहिये। इस शास्त्रवाक्यका उद्देश्य यह है कि गुरुवर्गके शास्त्र-सम्मत आदेशका ही निर्विचार पालन होना चाहिये, किन्तु उनके शास्त्र-विरुद्ध आदेशका पालन न करनेसे कोई दोष नहीं होता है। गुरुवर्गका कोई शास्त्र-विरुद्ध आदेश मिलनेपर ऐसा समझना होगा कि मेरी धर्म-परीक्षाके लिए ऐसा आदेश दिया गया है। ययाति महाराजने यदुको जो आदेश दिया था, वह उचित नहीं था, क्योंकि ययाति अपने पुत्रकी आयु तथा

यौवनको लेकर सम्भोगसुख भोगना चाह रहे थे, जो यथार्थतः धर्मविरुद्ध ही है। अतएव श्रीपरीक्षित् महाराजने इस अपूर्व भक्ति-सिद्धान्तका स्मरण करते हुए यदुको 'धर्मशील' कहकर श्रीशुकदेव गोस्वामीका आनन्दवर्द्धन किया।

भगवान्की लीलाएँ दो प्रकारकी होती हैं—ऐश्वर्यमयी एवं माधुर्यमयी। जिस लीलामें श्रीभगवान् कहीं जन्म ग्रहण नहीं करते हैं अथवा किसीके साथ पिता, माता आदिका सम्बन्ध नहीं रखते हैं, केवलमात्र अपने अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्यके प्रभावसे भक्तोंकी अभिलाषा परिपूर्ण करनेके लिए अवतीर्ण होते हैं, भगवान्की ऐसी लीलाएँ ऐश्वर्यमयी-लीलाएँ कहलाती हैं और जिस लीलामें श्रीभगवान् जन्म ग्रहण करते हैं एवं पिता-माता आदि सम्बन्धोंके अनुगत रहकर अपने भक्तोंकी अभिलाषाओंको परिपूर्ण करते हैं, उसे माधुर्यमयी-लीला कहते हैं।

अतएव उक्त विचारोंसे यही प्रतिपादित होता है कि भगवान् जिनके साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं, वे कभी भी अधार्मिक नहीं हो सकते हैं। अर्थात् प्रचुर भक्तिबलके बिना कभी भी श्रीभगवान्से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता है। अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके अधिपति श्रीभगवान् क्या कभी अपने सुख-भोगोंमें आसक्त बहिर्मुख व्यक्तियोंको पिता-माता आदि स्वीकार कर सकते हैं? जिनके प्रत्येक कर्म, प्रत्येक चिन्ता-भावना इत्यादि एकमात्र श्रीभगवान्के लिए ही समर्पित हैं, उनके साथ ही श्रीभगवान्का ऐसा सम्बन्ध हो सकता है। इसीलिए श्रीमद्भागवतके प्रथम-स्कन्धमें श्रीकुन्तीदेवीने श्रीभगवान्का स्तव करते हुए कहा—“चन्दन जैसे मलय पर्वतमें ही उत्पन्न होता है, वैसे ही आप भी अपने परम प्रिय भक्तोंके कुलमें ही जन्म लेते हैं। इसलिए आपने इसबार भक्तकुल-चूड़ामणि यदुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है।” मूल श्लोकमें महाराज श्रीपरीक्षित् 'तत्र' अर्थात् 'उस वंशमें' पदके द्वारा यही इङ्गित कर रहे हैं कि यदु महाराज श्रीभगवान्के परमप्रिय हैं।

किन्तु, महाराज श्रीपरीक्षित्ने यहाँ 'जन्म ग्रहण' न कहकर 'अवतीर्ण हुए हैं' कहा है। यहाँ विचारणीय विषय यह है कि

श्रीभगवान्का जन्म जीवोंकी भाँति नहीं होता है—उनका केवल आविर्भावमात्र होता है। जीव-देह मातृगर्भमें उत्पन्न होता है, परन्तु श्रीभगवान्का सच्चिदानन्द श्रीविग्रह कभी उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि वह नित्यसिद्ध है। वात्सल्य प्रेमिक भक्त-चूड़ामणियोंके वात्सल्यरसका आस्वादन करनेके लिए श्रीभगवान् जन्मका अनुकरण करते हुए आविर्भूत होते हैं। बहिर्मुख जीव अप्राकृत भगवान्की श्रीमूर्तिको पाञ्चभौतिक कहते हैं, वे श्रीभगवान्की इन मधुर-लीलाओंका निगूढ़ मर्म उपलब्धि नहीं कर पाते हैं। यथा—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परं भावमजानन्त मम भूत महेश्वरम्॥

(श्रीगीता ९/११)

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति मनुष्याकृति-श्रीविग्रह-आश्रित मेरे परमभावको न जानकर मायिक मनुष्य-बुद्धिसे भूतसमुदाय (प्राणियों) के महान ईश्वर मेरे प्रति अवज्ञा करते हैं।

श्रीभगवान्के प्रेममें मुग्ध पिता, माता आदि आत्मीय-स्वजन भगवान्को अपने-अपने सम्बन्धके अनुसार ही स्वीकार करते हैं, उनमें बहिर्मुख जीवोंकी भाँति अनादर या अवज्ञाका भाव नहीं रहता है।

टीकाकार श्रील सनातन गोस्वामीपादने अपनी बृहद्-वैष्णव-तोषणी टीकामें 'अवतीर्णस्य' पदकी व्याख्या इस प्रकार की है—“गोलोक नामक अपने निज परमलोकसे प्रपञ्चमें प्रकट हुए हैं।”

इसके अतिरिक्त श्रीभागवतीय ब्रह्मस्तुतिमें भी देखा जाता है—

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले।

प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो॥

(श्रीमद्भा० १०/१४/३७)

अर्थात् हे भगवन्! आप प्रपञ्च (प्राकृत) जगत्से अतीत होकर भी प्राकृत जगत्का अनुकरण करते हुए इस भौतिक जगत्में आविर्भूत होते हैं। आपके द्वारा अपने शरणागत भक्तोंका आनन्दवर्द्धन ही आपकी इस करुणालीलाका एकमात्र उद्देश्य है।

मूल श्लोकमें महाराज श्रीपरीक्षित् के कथनमें 'अंशेन' पदके द्वारा यह समझा जाता है कि श्रीभगवान् अंश और पूर्ण दो रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं। यद्यपि भगवान् के अंश और पूर्ण स्वरूपमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है, तथापि श्रीलघु-भागवतामृतम्में कहा गया है—“शक्तेर्व्यक्तिस्तथाव्यक्तिः तारतम्यस्य कारणम् अर्थात् शक्तिका प्रकाश और अप्रकाश ही इस तारतम्यका कारण है।” श्रीभगवान् अचिन्त्य-अनन्त-शक्तिसे समन्वित हैं, वे अपनी किसी-किसी मूर्तिमें अपनी समस्त शक्तिका प्रकाश करके लीला करते हैं और किसी-किसी मूर्तिमें किञ्चित् शक्तिका प्रकाश करके लीला करते हैं। इस शक्ति-प्रकाशके तारतम्यसे ही कोई-कोई मूर्ति पूर्ण और कोई मूर्ति अंशके रूपमें शास्त्रोंमें कथित हुई है।

ऐसा होनेपर इस श्लोकमें कहे गये 'अंशेन' पद द्वारा यह प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंशमें अंश रूपमें अवतीर्ण हुए हैं, पूर्ण रूपमें नहीं। इस विषयमें विशेषतः 'अवतीर्णो जगत्पर्यं स्वांशेन बलकेशवौ' (श्रीमद्भा० १०/३८/३२), 'अथाऽहमंशभागेन देवक्याः पुत्रता' (श्रीमद्भा० १०/२/९) तथा श्रीनारायणके केशावतार होनेके सम्बन्धमें 'क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः' (श्रीमद्भा० २/७/२६), विष्णुपुराण और महाभारतके वचनोंसे यह प्रतीति होती है कि वे अंशावतार या श्रीनारायणके केशावतार हैं। इसीलिए श्रीश्रीधरस्वामीपाद इस 'अंशेन' पदकी व्याख्यामें कहते हैं—'अंश शब्द लोक-प्रतीतिके अनुसार कहा गया है।' श्रील सनातन गोस्वामीपादने श्रीश्रीधरस्वामीपादके अभिप्रायको इस प्रकार स्पष्ट किया है—“किन्तु, यह प्रतीति साधारणजनोंको ही होती है, ऐसा जानना होगा।” इसका मर्म यह है कि साधारण लोग अर्थात् जो श्रीकृष्णतत्त्वके विशेषज्ञ नहीं हैं, वे ही उन्हें अंशावतार या श्रीनारायणके केशावतारके रूपमें समझते हैं।

यदि आपत्ति हो कि श्रीकृष्णतत्त्वको जाननेवाले श्रीपरीक्षित् महाराजने फिर क्यों 'अंशेन' शब्दका प्रयोग किया? उनका कहनेका यह उद्देश्य था कि वे जिस सभामें बैठकर कथा श्रवण कर रहे थे, उस सभामें उपस्थित श्रोताओंमें सभी श्रीकृष्णतत्त्वज्ञ नहीं थे। उनमेंसे अधिकांश श्रीकृष्णको अंशावतारके रूपमें जाननेवाले थे। यदि

श्रीपरीक्षित् महाराज प्रश्न करते समय उस सभामें उपस्थित लोगोंकी धारणाके विरुद्ध कोई प्रश्न करते, तब श्रीकृष्णकथाके प्रारम्भसे ही उन सभीमें सन्देह उत्पन्न होनेके कारण उनका चित्त चञ्चल हो जाता तथा ऐसा होनेपर वक्ताको कथा कहनेमें उल्लास प्राप्त नहीं होता। इसीलिए श्रीपरीक्षित् महाराजने इस प्रकार प्रश्न किया जिससे किसीको भी कोई सन्देह न हो तथा जो श्रीकृष्णतत्त्वज्ञ हैं, वे तो 'अंशेन' शब्दका वास्तव अर्थ समझनेमें समर्थवान हैं ही।

इस 'अंशेन' पदके यथाश्रुत अर्थको ग्रहणकर श्रीकृष्णको अंशावतारके रूपमें माननेसे "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् अर्थात् किन्तु श्रीकृष्ण तो स्वयं-भगवान् हैं" श्रीमद्भागवतम् (१/३/२८) के अवतार-निर्णायक इस श्लोक तथा "रामादिमूर्तिषु कला नियमेन तिष्ठन् आदि अर्थात् जो परम पुरुष अपने अंशकला आदिके नियमन द्वारा राम आदि मूर्तियोंमें स्थित होकर भुवनमें बहुत-से अवतारोंको प्रकाश करते हैं तथा स्वयं कृष्णरूपमें प्रकट होते हैं, उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ" ब्रह्मसंहिता (५/३९) श्लोकके साथ विरोध उपस्थित होगा।

श्रील सनातन गोस्वामीपादने 'अंशेन अवतीर्णस्य' पदकी एक और व्याख्या इस प्रकार की है—"जिनका स्वरूप सभीके लिए सुबोध्य नहीं है, अर्थात् जिन्हें परिपूर्ण रूपमें जाननेमें सभी समर्थ नहीं होते हैं।"

श्रीश्रीधरस्वामिपाद, श्रीवीरराघवाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती आदि श्रीमद्भागवतके जितने भी टीकाकार हुए हैं, उनमेंसे किसीने भी श्रीकृष्णको अंशावतार नहीं बतलाया है। उन सभी टीकाकारोंने 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इस मूलमन्त्रके आधारपर ही अनेकों प्रकारसे इस श्लोककी व्याख्या की है।

श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, परन्तु उनके ऐश्वर्य, माधुर्य और स्वरूपकी परिपूर्णता सभी ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इसलिए साधारण व्यक्तिकी दृष्टिमें वे अंश हैं। श्रीसनातन गोस्वामीपाद तथा श्रीजीव गोस्वामीपाद कहते हैं—"अंशेन" शब्द 'सहित' अर्थमें तृतीयाके योगसे

निष्पन्न होनेपर 'अंशेन श्रीबलदेवेन सह' अर्थात् अपने अंश बलदेवके साथ अवतीर्ण हुए—यह अर्थ पाया जाता है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धमें श्रीकृष्णलीलाका वर्णन हुआ है, उसी प्रकार दशम स्कन्धमें श्रीबलदेवकी लीलाका भी वर्णन हुआ है। विशेषकर श्रीबलदेवकी लीला—श्रीकृष्णलीलाके माधुर्यका ही पोषण करती है। अतः श्रीपरीक्षित् महाराजके प्रश्नमें श्रीबलदेवकी कथाका उल्लेख रहना अयौक्तिक या असम्भव नहीं है। दशावतारकी गणनामें भी श्रीबलदेवका नाम पाया जाता है, अतः उन्हें अंशावतार कहनेसे शास्त्रविरोधकी भी कोई आशङ्का नहीं है। 'धर्मशील यदुके वंशमें श्रीबलदेवके साथ अवतीर्ण श्रीकृष्णकी लीला मेरे निकट वर्णन करें'—यही इस व्याख्याका प्रतिपाद्य अर्थ है।

श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीकृष्णलीला श्रवण करनेकी इच्छासे श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—“श्रीकृष्णकी लीलाओंका हमारे निकट वर्णन कीजिये।” यहाँ उन्होंने 'मेरे निकट' न कहकर 'नः' अर्थात् हमारे निकट' क्यों कहा? श्रीवैष्णव-तोषणी टीकाकार श्रील जीव गोस्वामीपाद कहते हैं कि श्रीपरीक्षित् महाराज श्रीकृष्णलीलाकथाके सम्बन्धमें प्रश्न करके अपनेको गौरवान्वित मान रहे थे, इसीलिए गौरव अर्थमें उन्होंने बहुवचनका प्रयोग किया है। अथवा वे सुमधुर श्रीकृष्णलीला अकेले श्रवण करना नहीं चाहते थे, इसीलिए उन्होंने 'हमारे निकट' इस बहुवचनका प्रयोग किया है। इसके द्वारा गङ्गाके तटपर उपस्थित सभी श्रोताओंपर श्रीपरीक्षित् महाराजकी अपार कृपा और उनका भक्तोचित विनय प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

अवतीर्य यदोर्वशे भगवान् भूतभावनः।

कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥

अन्वयः—भूतभावनः (जो अपने प्रति प्रेम प्रदानकर समस्त प्राणियोंका अर्थात् सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाले हैं) विश्वात्मा (चेतनादि शक्तिके प्रेरक रूपमें सबके स्वाभाविक हितकर्ता तथा सभी जीवोंके आत्मा होनेके कारण सबके प्रेमके विषय) भगवान् (समस्त ऐश्वर्यसे परिपूर्ण श्रीकृष्ण) यदोः (यदु नामक भक्त-चूड़ामणिके) वंशे

(वंशमें) अवतीर्य (आविर्भूत होकर) यानि (जो परम-अन्तरङ्ग लीलाएँ) कृतवान् (की हैं) तानि (उन सभी लीलाओंको) नः (हमारे निकट) विस्तरात् (प्रयोजन आदि निर्देशपूर्वक विस्तारसे) वद (कीर्त्तन करें) [‘समस्त लीलाओंको कहिये’—यह उक्ति परम-लालसाके कारण ही कही गयी, ऐसा जानना होगा] ॥ ३ ॥

अनुवाद—प्रेमदानके द्वारा समस्त प्राणियोंका पोषण करनेवाले एवं सबके अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णने यदुकुलमें अवतीर्ण होकर जिन-जिन लीलाओंको किया, उनकी उस लीला-चरितावलीका हमारे समक्ष क्रमपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, ‘जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थः’ (श्रीमद्भा० ९/२४/६६) इत्यादिना अंशेनोक्तान्येव? सत्यं, सामस्त्येन तद्वीर्याणि संक्षिप्तीकृत्यापि वक्तुम-शक्यान्त्येव। त्वया त्वंशेन यान्युक्तानि, तान्यपि संक्षिप्तीकृत्य श्लोकाभ्यामुक्तानि; अतो बहुभिः श्लोकैस्तान्येव विस्तृतीकृत्य ब्रूहीत्याह—अवतीर्येति। भूतानि भाववन्ति प्रेमवन्ति करोतीति प्रयोजनमुक्तम्; ‘नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया’ (श्रीमद्भा० ९/२४/६४) इति, ‘अवितृप्तदृशां नृणाम्’ (श्रीमद्भा० ३/२/११) इति, ‘स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या’ (श्रीमद्भा० ११/१/६) इत्यादिभ्यस्तथैवावगमात्। यतो विश्वात्मा, देह-जीवाभ्यां सकाशादपि परमात्मा प्रेमास्पदीभवितुमर्हत्येवेति ब्रह्म-स्तवान्ते व्यक्तीभविष्यति। विस्तरात्, अस्मदादिमन्दबुद्धिसुगम्यार्थं विस्तारं शब्दबाहुल्यं प्रापयेत्यर्थः। ‘विस्तरा विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः’ इत्यमरः ॥ ३ ॥

भावानुवाद—यदि श्रीपरीक्षित् महाराज श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहें कि “लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण श्रीवसुदेवके घरमें प्रकट हुए तथा वहाँसे वे व्रजमें चले गये। व्रजमें उन्होंने व्रजवासियोंकी आर्त्तिको वर्धित किया तथा पूतनादि शत्रुओंका संहार किया। उसके बाद वे अपनी अन्य लीलाओंके सम्पादनके लिए मथुरा और द्वारका गये। द्वारकामें रहकर उन्होंने बहुत-सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया और सैंकड़ों पुत्र उत्पन्न किये। ऐसा करके उन्होंने वर्णाश्रमधर्मका संस्थापन एवं प्रदर्शन किया। लोगोंमें अपनी वाणीरूप श्रुतियोंकी मर्यादा स्थापित करनेके लिए उन्होंने अनेक यज्ञोंके द्वारा अपनी ही आराधना की।” इस (श्रीमद्भा० ९/२४/६६) आदि श्लोकमें वर्णित वचनोंके द्वारा आपने

आंशिक रूपमें ही श्रीकृष्णलीलाका वर्णन किया है, पूर्ण रूपसे नहीं। इसके उत्तरमें [श्रीशुकदेव गोस्वामी] कहते हैं कि यह सत्य है कि मैंने आंशिक रूपमें ही श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन किया है, क्योंकि उनकी समस्त लीलाओंको संक्षिप्त रूपमें भी कहनेका मुझमें सामर्थ्य नहीं है। पुनः यदि श्रीपरीक्षित् महाराज कहें कि आपने आंशिक रूपसे जो उनकी लीलाओंका वर्णन किया है, उसे भी संक्षेपमें मात्र दो श्लोकों (श्रीमद्भा० ९/२४/६६-६७) में ही वर्णन किया है, अतएव बहुत-से श्लोकोंके द्वारा उसीका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। इसी उद्देश्यसे श्रीपरीक्षित् महाराज 'अवतीर्य' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'भूतभावनः' अर्थात् आप प्राणियोंको प्रेमवान् करते हैं, इसके द्वारा भगवान्के अवतरित होनेका प्रयोजन कहा गया है। यथा—“भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रेमभरी मन्द-मन्द मुस्कान, स्निग्ध एवं सरस चितवन्, कृपापूर्ण वचन, गोवर्धन धारण आदि वीररस एवं शौर्यकी प्रकाशक लीलाओंसे तथा अपने सर्वाङ्गसुन्दर विग्रहसे मनुष्यमात्रको आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर दिया था।” (श्रीमद्भा० ९/२४/६४) आदि; “उन भगवान् श्रीकृष्णने तपस्यासे हीन लोगोंको भी इतने दिनों तक दर्शन देकर—अब उनकी दर्शन-लालसाको तृप्त किये बिना ही पुनः जगत्के नयन-स्वरूप अपने त्रिभुवन-मोहन श्रीविग्रहको उनलोगोंके नेत्रोंसे छिपाकर अन्तर्धान कर लिया है।” (श्रीमद्भा० ३/२/११) आदि; “भगवान् श्रीकृष्णकी वह मूर्ति त्रिलोकीके सौन्दर्यका तिरस्कार करनेवाली थी। उन्होंने अपनी सौन्दर्य-माधुरीसे सबके नेत्र अपनी ओर आकर्षित कर लिये थे। उनकी मधुर वाणी, उनके परम मधुर दिव्यातिदिव्य उपदेश सब लोगोंके लिए कल्याणकारी थे। इन सबके द्वारा उन्होंने अपनेको स्मरण करनेवालोंके चित्तको आकर्षित कर लिया था।” (श्रीमद्भा० ११/१/६) आदि वचनोंसे सबको प्रेममय करनेवाले श्रीभगवान्के प्रयोजनसे अवगत हुआ जाता है। इसका कारण है कि वे 'विश्वात्मा' हैं अर्थात् विश्वासी प्राणियोंमें चेतनादि शक्तिके प्रेरक होनेसे स्वभावतः ही उनके हितकारी हैं। वे देह और जीवात्मा—इन दोनोंकी तुलनामें (श्रेष्ठ) परमात्मा हैं, इसीलिए जीवोंके परमप्रेमका विषय होनेमें निश्चय ही योग्य हैं—यह ब्रह्मस्तुतिके अन्तमें

व्यक्त होगा। 'विस्तरात्'—मुझ जैसे मन्दबुद्धिजनके लिए जिस प्रकारसे सहज बोधगम्य हो, ऐसे बहुत-से शब्दोंके प्रयोग द्वारा विस्तारपूर्वक श्रीकृष्णलीलाओंका वर्णन कीजिये—यह अर्थ है ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान्की लीला अप्रकट और प्रकटके भेदसे भी दो प्रकार की है। श्रीभगवान् जगत्-जीवोंके अगोचर अपने नित्यधाममें जो लीला करते हैं, उसे 'अप्रकट' और जगत्-जीवोंके समक्ष इस प्रपञ्चमें जो लीला करते हैं, उसे 'प्रकट' लीला कहते हैं। प्रकटलीलामें श्रीभगवान् जगत्के जीवोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें कृतार्थ करते हैं। विशेषतः श्रीपरीक्षित् महाराजका श्रीभगवान्की प्रकटलीलाके साथ ही सम्बन्ध है, क्योंकि प्रकटलीलामें श्रीभगवान् महाराज श्रीपरीक्षित्की पितामही (दादी) सुभद्राके भाई हैं। इसीलिए श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीकृष्णकी प्रकटलीला श्रवण करनेके लिए ही प्रश्न किया था। 'अवतीर्य यदोर्वशे' श्लोककी आलोचनासे यह स्पष्ट समझा जाता है ॥ ३ ॥

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्—

भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।

क उत्तमःश्लोकगुणानुवादात्

पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥

अन्वयः—निवृत्ततर्षैः (जिनकी श्रीकृष्णभक्तिके अतिरिक्त विषयभोगकी अन्य समस्त वासनाएँ समाप्त हो चुकी हैं, ऐसे मुक्तजनों द्वारा भी) उपगीयमानात् (श्रौत-परम्परा अर्थात् श्रीगुरुमुखसे श्रवणकर सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें निरन्तर कीर्तित होनेवाले) भवौषधात् (संसारसे निवृत्तिकी औषध-स्वरूप, समस्त दुखोंका विनाश करनेवाले एवं साध्य और साधन स्वरूप) श्रोत्रमनोऽभिरामात् (शब्दमात्रसे कानमें तथा अर्थज्ञानसे मनमें सम्पूर्ण रूपसे आनन्द अनुभव करानेवाले) उत्तमः (सर्वश्रेष्ठ) श्लोकः (श्रीभगवान्के भक्तवात्सल्य आदि गुणोंके निरन्तर कीर्तनसे) पशुघ्नात् (पशुओंको मारनेके स्वभाववाले बहेलियेके) विना (अतिरिक्त दूसरा) कः पुमान् (कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो) विरज्येत (इन कथाओंसे विरत होगा) ॥ ४ ॥

अनुवाद—उत्तमश्लोक श्रीहरिका गुणानुकीर्तन श्रौत-परम्परासे साधित होता है अर्थात् श्रीगुरुमुखसे श्रवणके बाद ही कीर्तित होता है। उन श्रीहरिका गुणकीर्तन कृष्णेतर-विषय-तृष्णासे रहित मुक्तकुलके द्वारा यथायोग्य रूपसे कीर्तित होता है। यह सङ्कीर्तन (मुमुक्षुओंके लिए) भव-रोगकी अचूक औषधि-स्वरूप है तथा (रुचिपरायण भक्तोंके लिए) हृत्-कर्ण-रसायन है। पशुघाती व्याध अथवा आत्मघाती अपराधियोंके अतिरिक्त ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो इस हरिकीर्तनसे विमुख हो जाय? ॥ ४ ॥

सारार्थदर्शिनी—

श्रीधरस्वामिभिः श्रीमत्प्रभुभिश्च सनातनैः।

ऋजुत्वात्यक्तमुच्छिष्टं भुजिष्योऽहमुपाददे ॥

अस्मदादयस्तु संसाररोगग्रस्ताः परमभाग्यलब्धैर्भिषक्शिरोमणिभिस्तत्र भवद्विर्दीय-मानात् कृष्णलीलामृतमहौषधात् कथं विरता भवितुमर्हन्तीत्याह—निवृत्तेति। भवौषधात् संसारव्याधेरौषधरूपात्। निवृत्ततर्षैर्यदेव निषेव्य विगततृष्णा-व्याधिभिः; तृष्णैव संसारः, तस्मान्मुक्तैः; ज्ञानादिभ्योऽपि उप आधिक्येन गीयमानात् 'भो भो वयमिव एतन्निषेव्यैव निरामया भवत' इत्युच्चैरुपदिश्यमानात्। अन्यौषधवन्नास्य कट्वादिरसत्त्वमित्याह—श्रोत्रमनःसुखप्रदात्, श्रोत्रमनोभ्यामेवैतदौषधं पीयत इति भावः। पशुघ्नः स्वर्गसुखाभिलाषी कर्मी, तस्माद्विना; स एव विरज्येत नान्यः। यदुक्तम्—*त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः। कथायाम्* (श्रीमद्भा० ३/३२/१८) इत्यादि। यद्वा, अत्र वक्तु-श्रोत्रोरुभयोरिवानन्द इत्याह—निवृत्तेति। उत्तमःश्लोकस्य गुणानामनुवादात् गुरोर्मुखादाकर्ण्य पश्चादनुकीर्तनात् कः पुमान् वक्ता विरज्येत? न कोऽपि, यतो निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् कृष्णस्य गुणानामनुकीर्तनमपि उप सर्वाधिक्येन गीयते। किं पुनस्तेषामास्वादनमिति, भवादृशो वक्तास्तेषामास्वादकोऽपीति भावः। अत्र वर्तमानप्रयोगादाधिक्य-वाचकोपशब्दोपन्यासाच्च निवृत्ततर्षशब्देन शुद्धभक्ता एव व्याख्येया, न तु ज्ञानिनः। तेषां निदिध्यासनस्यैव शाश्वतिकस्तुतिदृष्टेः, न त्वनुकीर्तनस्य। तथैव गुणानुवादं प्राप्य कः खलु मादृशः सांसारिकः श्रोता विरज्येत? यतो भवौषधात्। द्वयोरेव विरागाभावे हेतुः—श्रोत्रमनोऽभिरामात्। कथञ्चिद्धनादिककामनया यदि कर्मी वक्ता श्रोता वा स्यात्तदा स विरज्येदेवेत्याह—पशुघ्नाद्विना ॥ ४ ॥

भावानुवाद—श्रील श्रीधरस्वामिपाद एवं श्रील सनातन गोस्वामी प्रभुने अपनी टीकाओंमें जिस विषयको सहज और बोधगम्य जानकर परित्याग किया है, उन्हींका दास मैं उनके उस उच्छिष्टको ग्रहण कर रहा हूँ।

संसाररूपी रोगसे ग्रस्त हमलोगोंको अत्यधिक सौभाग्यवशतः आप जैसे सद्बुद्ध-शिरोमणिकी प्राप्ति हुई है, जो संसार रोग-निवारक श्रीकृष्णलीलामृतरूपी महौषधि हमें प्रदान कर रहे हैं। अतएव इस औषधिके सेवनसे हम कैसे विरत हो सकते हैं? श्रीपरीक्षित् महाराज 'निवृत्ततर्षैः' इत्यादि श्लोकके द्वारा श्रीशुकदेव गोस्वामीको यही कह रहे हैं। 'भवौषधात्' अर्थात् जो संसाररूपी व्याधिकी औषध-स्वरूप है। 'निवृत्ततर्षैः' अर्थात् जिनकी संसार-तृष्णा (संसार-वासना) रूपी व्याधि दूर हो चुकी है। अर्थात् श्रीकृष्णलीलामृत महौषधिका सेवन करके जो तृष्णारूप व्याधिसे मुक्त हो चुके हैं। तृष्णा अर्थात् जड़-सुख भोगनेकी लालसा—यही संसार है। जो इस संसाररूपी तृष्णासे मुक्त हो चुके हैं, ऐसे मुक्त पुरुषोंके द्वारा जिसका 'उपगीयमानात्'—ज्ञान आदिसे भी 'उप'—अत्यधिक रूपमें कीर्तन किया जाता है। अर्थात् ऐसे जीवन्मुक्त महात्मा भवरोगसे ग्रस्त मनुष्योंके लिए उच्चस्वरसे उपदेश प्रदान करते हैं कि—“हे भवरोगसे ग्रस्त मानव-समुदाय! जिस प्रकार हमलोग श्रीकृष्णचरितामृतरूप महौषधिका सेवन करके भवरोगसे मुक्त हुए हैं, उसी प्रकार आपलोग भी इसका सेवनकर भवरोगसे मुक्त हो जाओ।” यह श्रीकृष्णलीलामृतरूपी औषधि दूसरी औषधियोंकी भाँति कड़वे, तीखे आदि रससे युक्त नहीं है। इसलिए कह रहे हैं—‘श्रोत्र-मनोऽभिरामात्’ अर्थात् यह औषधि कानों और मनके लिए सुख प्रदानकारी है अर्थात् कान और मनके द्वारा ही इस औषधिका पान करें—यह भाव है। ‘विना पशुघ्नात्’—पशुघाती कहनेसे स्वर्गसुखको चाहनेवाले कर्मियोंको जानना चाहिये, अतः उसके अतिरिक्त भवरोग-ग्रस्त कौन व्यक्ति उत्तमश्लोक श्रीभगवान्के गुणानुवादके श्रवणसे विरत रह सकता है? अर्थात् पशुतुल्य कर्मों ही श्रीभगवान्की लीलाकथाओंके श्रवण-कीर्तनसे विरत होते हैं, दूसरे नहीं। जैसा कि श्रीमद्भागवतम् (३/३२/१८) में कहा गया है—“जो व्यक्ति केवल धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गके साधनमें ही व्यस्त रहते हैं, वे ही संसार-दशाका नाश करनेवाले मधुसूदन भगवान् श्रीहरिके एकमात्र कीर्तन-योग्य महत्-विक्रम-सम्पन्न गुणकीर्तनसे विमुख रहते हैं।”

अथवा, श्रीकृष्णलीलामृतके द्वारा वक्ता और श्रोता दोनोंको ही आनन्द होता है—इसे कहनेके लिए ‘निवृत्ततर्पैः’ आदि श्लोक कहा गया है। उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंका ‘अनुवादात्’ अर्थात् श्रीगुरुदेवके श्रीमुखसे श्रवण करनेके बाद उसे अनुकीर्त्तन करनेसे कौन वक्ता विरत होगा? अर्थात् कोई भी नहीं, क्योंकि ‘निवृत्ततर्पैरुपगीयमानात्’ अर्थात् मुक्त महापुरुषोंके द्वारा पूर्वोक्त श्रीकृष्णके गुणोंका अनुकीर्त्तन भी ‘उप’ अर्थात् सर्वाधिक रूपसे कहा गया है। फिर उन कथाओंके आस्वादनके सम्बन्धमें क्या कहा जाय? अर्थात् हे श्रीशुकदेव गोस्वामी! आप जिस प्रकार लीलाकथाओंके वक्ता हैं, उसी प्रकार उनके आस्वादक भी हैं—यह भाव है।

‘उपगीयमानात्’—‘गीयमानात्’—यहाँ वर्त्तमान कालका प्रयोग होनेसे तथा आधिक्य-वाचक ‘उप’ शब्दका उल्लेख रहनेसे ‘निवृत्ततृष्ण’ शब्द द्वारा भगवान्के शुद्धभक्तोंको ही लक्ष्य किया गया है, ज्ञानियोंको नहीं। इसका कारण है कि ज्ञानियोंका ‘निदिध्यासन’ अर्थात् निरन्तर ध्यानादि करनेमें ही सर्वाधिक आदर देखा जाता है, भगवत्-कथाके निरन्तर कीर्त्तनमें नहीं। अतएव ऐसे हरिगुणकीर्त्तनको पाकर हमारे जैसा कौन संसारी श्रोता उससे विरत रह सकता है? इसका कारण है कि यह हरिगुणकीर्त्तन भवरोग-विनाशकारी महौषधि है। वक्ता और श्रोता (अथवा मुक्त और विषयी)—दोनोंका ही इस हरिगुणकीर्त्तनसे विराग न होनेका कारण यह है कि यह उनके कानों और मनको आनन्द प्रदान करनेवाला है। यदि कोई कर्मी व्यक्ति किसी प्रकारके धन आदिको प्राप्त करनेकी कामनासे वक्ता या श्रोता होता है, तो वही ऐसे गुणकीर्त्तनसे विमुख हो सकता है। इसलिए कहा गया है—‘पशुघ्नात्’ पशुघातीके अतिरिक्त दूसरा कोई भी हरिगुणकीर्त्तनसे विरत नहीं होता ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीकृष्णलीलाकथा सुननेकी प्रबल लालसासे श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीके समीप प्रकटलीला-विषयक प्रश्न किया।

यहाँ आपत्ति हो सकती है कि भगवान्की लीलाएँ तो अनन्त हैं, अतः श्रीशुकदेव गोस्वामी कितना कहेंगे और श्रीपरीक्षित् महाराज

भी कितना सुनेंगे? विशेषकर यदि श्रीशुकदेव गोस्वामी विस्तारपूर्वक लीलाकथा सुनाने लगें, तब तो कुछ देरके बाद श्रीपरीक्षित् महाराजका उससे विरक्त होना कोई असम्भव नहीं है। इसका कारण है कि जिस प्रकार भोजन करते समय बहुत कुछ खानेकी इच्छा होती है, परन्तु पेट भर जानेपर थालीमें भोज्य पदार्थोंके बचे रहनेपर भी उसे खाया नहीं जाता, बल्कि उसके प्रति विरक्ति ही होती है, वैसे ही श्रीपरीक्षित् महाराजको सुनते-सुनते विरक्ति नहीं होगी, यह कौन कह सकता है? अतएव इस आशङ्कासे यदि श्रीशुकदेव गोस्वामी विस्तारपूर्वक लीलाकथाका वर्णन न करना चाहें, तो इसके समाधानके लिए श्रीपरीक्षित् महाराज 'निवृत्ततर्षैः' श्लोकके द्वारा युक्ति, तर्क स्थापितकर कहते हैं—हे श्रीशुकदेव महाराज! श्रीकृष्णलीलाकथा सुननेमें किसीको कभी भी विरक्ति नहीं हो सकती है।

सामान्य रूपसे जीवोंको मुक्त, मुमुक्षु और विषयी—इन तीन भागोंमें विभक्त किया जाता है। श्रीकृष्णकथा सुननेमें इन तीनोंमेंसे किसीको भी विरक्ति नहीं हो सकती है। अथवा कोई भी श्रीकृष्णलीलाकथा श्रवणसे विरत नहीं हो सकता, यह कारणके साथ मूल श्लोकमें अलोचित हुआ है।

'निवृत्ता विगता तर्षा विषय-भोग-वासना येषां'—जिनकी विषय-भोगकी वासना निवृत्त हो गयी है—इस व्युत्पत्तिके द्वारा श्लोकमें वर्णित 'निवृत्ततर्ष' शब्दका अर्थ है—विषयभोग-वासना-रहित अर्थात् मुक्तपुरुष है। वासनामुक्त जीवोंके लिए जन्म-मृत्युरूप संसार-दुःख नहीं रहता है। वे श्रीकृष्णकथा-प्रसङ्गमें परमानन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करते हैं। उनमेंसे जो भक्तिमिश्र-ज्ञान या योग-साधनाके द्वारा संसार-बन्धनसे मुक्त होते हैं, वे परब्रह्ममें सायुज्यको प्राप्त करते हैं। जो शुद्धाभक्तिकी साधना करते हैं, वे संसारसे 'मुक्त' होकर पार्षद-देहको प्राप्त करते हैं। किन्तु, साधना करते-करते जिनकी संसार-वासना समाप्त हो गयी है, परन्तु अभी वे साधक-शरीरमें ही अवस्थित हैं, ऐसे व्यक्तिको 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है। श्लोकमें वर्णित 'निवृत्ततर्ष' शब्दसे मुक्त और जीवन्मुक्त—दोनों प्रकारके अर्थ ग्रहण करने होंगे। श्रील सनातन गोस्वामीपादने वैष्णव-तोषणी टीकामें कहा

है—ज्ञानीभक्त एवं स्वभावभक्त भेदसे मुक्त दो प्रकारके हैं। फिर वे जीवन्मुक्त एवं सालोक्यादि मुक्ति प्राप्तिके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। अतएव श्लोकगत 'निवृत्ततर्ष' शब्द द्वारा चार प्रकारके मुक्त जीवोंका निर्देश किया गया है।

ज्ञानमिश्र-भक्त या योगमिश्र-भक्त अथवा शुद्धभक्तिकी साधना करनेवाले जब संसारसे मुक्त होते हैं, तब वे मुक्तिके पश्चात् भी भगवान्‌के गुणानुवादमें ही निमग्न रहते हैं। जो ब्रह्मलीन या परमात्मलीन हो जाते हैं, उनका कृष्णभजनके योग्य शरीर न रहनेसे वे भगवान्‌के गुणानुवादसे वञ्चित रहते हैं। परन्तु संसारमुक्त व्यक्ति सदा-सर्वदा श्रीकृष्णका गुणानुवाद करके अर्थात् श्रीकृष्णकी लीलाकथाके श्रवण तथा कीर्तनादिके द्वारा यह घोषणा करते हैं कि ऐसा आनन्द और किसी भी क्रियामें नहीं है। यही जीवनका श्रेष्ठ फल, समस्त साधनोंका सार है एवं सबसे श्रेष्ठ साधन है। मुक्तश्रेष्ठ देवर्षि नारद आदि ऋषिगण एवं ब्रह्मा, शिव, अनन्तदेव आदि सदा-सर्वदा श्रीकृष्णके गुणानुवादमें ही निमग्न रहते हैं। अतएव देखा जाता है कि भवसिन्धुको पार करनेपर भी श्रीकृष्णगुणकथा-सिन्धुको पार नहीं किया जा सकता।

भवरोगसे ग्रस्त व्यक्ति जब अपनी स्थितिको समझता है, तब उससे मुक्त होनेके लिए चेष्टारत होता है, ऐसे व्यक्तिको मुमुक्षु कहा जाता है। मुमुक्षु व्यक्ति भवरोग दूर करनेके लिए इस हरिकथारूप महौषधिका सेवन करते हैं। इस रोगसे मुक्तिके लिए दूसरी कोई भी औषधि नहीं है। अतएव श्रीकृष्णका गुणानुवाद मुक्त और मुमुक्षु—इन दोनोंके लिए परम उपादेय है।

चक्षु-कर्ण आदि इन्द्रियोंके द्वारा रूप, रस आदि विषयोंको ग्रहण करना ही जिनके जीवनका प्रधान लक्ष्य है, वे विषयी कहलाते हैं। श्रीकृष्णलीलाकथाके श्रवणसे कानोंकी तृप्ति और उस कथाके तात्पर्यको समझनेसे मनकी भी तृप्ति होती है। अतएव विषयीजन भी श्रीकृष्णकथाको परम आदरके साथ श्रवण करते हैं। विचार करनेपर ऐसा समझा जा सकता है कि श्रीकृष्णका रूप, उनका भुक्तावशेष रस, उनकी कथारूप शब्द, उनके भक्तोंका सङ्ग तथा उनके चरणोंके

निर्माल्यकी भाँति परम उत्कृष्ट वस्तु या विषय और क्या हो सकता है? जो इन विषयोंका परित्याग करके प्राकृत विषयोंमें अनुरक्त होता है, वह कुविषयी है।

इसलिए मुक्त, मुमुक्ष और विषयी कोई भी श्रीकृष्णके गुणानुवादसे विमुख नहीं हो सकता। श्रीकृष्णकथामें एक ऐसी अचिन्त्य शक्ति है, जिससे सभी आकृष्ट हो जाते हैं। श्रीपरीक्षित् महाराजकी विनयोक्ति यही है कि “मैं मुक्त या मुमुक्ष न होनेपर भी विषयी तो हूँ ही। अतएव कर्णरसायन और मनोरसायनके रूपमें श्रीगोविन्दके गुणानुवादमें आकृष्ट हो जाऊँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।”

हे गुरो (श्रीशुकदेव गोस्वामी)! मैं श्रीकृष्णकी लीलाकथाके श्रवणसे विमुख हो जाऊँगा—ऐसा न समझें, क्योंकि श्रीकृष्णके गुणानुवाद-श्रवणसे किसीको भी विरक्ति नहीं हो सकती है ॥ ४ ॥

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैः
देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं
कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं
सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-
मन्तर्बहिः पुरुषकालरूपैः ।
प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतञ्च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥

अन्वयः—मे (मेरे) पितामहाः (पिता अभिमन्युके पितृवर्ग अर्जुन आदि पाण्डवगण) यत् प्लवाः (जिन श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी नौकाका आश्रय लेकर) समरे (युद्धमें) अमरञ्जयैः (देवताओंको जीतनेमें समर्थ) तिमिङ्गलैः (तिमिङ्गल (अर्थात् एक विशालकाय

जलजन्तु विशेष) देवव्रताद्यातिरथैः (भीष्म आदि महान्-महान् रथियोंके द्वारा) [परिवेष्टित, अतएव] दुरत्ययं (जिसे पार करना कठिन हो, ऐसे) कौरवसैन्यसागरं (दुर्योधन आदिकी विपुल सेनारूपी समुद्रको) वत्सपदं कृत्वा (बछड़ेके खुर जैसा अतितुच्छ बनाकर) अतरन् स्म (पार हो गये) ॥ ५ ॥

यः (जिन श्रीकृष्णने) द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टं (अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्धप्राय) कुरुपाण्डवानां सन्तानबीजं (कौरव और पाण्डवोंके वंश-रक्षाका निदानस्वरूप) इदं (आपके समीप स्थित) मदङ्गं (मुझ परीक्षित्का शरीर) शरणं गतायाः (भगवान्के शरणागत हुई) च (तथा) मे मातुः (मेरी माता उत्तराके) कुक्षिं गतः (गर्भमें प्रविष्ट होकर) आतचक्रः (सुदर्शनचक्रको धारण करके) [श्रीभगवान्ने] जुगोपः (ब्रह्मास्त्रका निवारण करके उससे मेरी रक्षा की) ॥ ६ ॥

विद्वन् (हे कृष्णलीलाके रहस्यको जाननेवाले!) अखिलदेहभाजां (समस्त प्राणीयोंके) अन्तर्बहिः (अन्दर और बाहरमें) पुरुषकालरूपैः (हृदयमें अन्तर्यामीरूपमें और बाहरमें अखण्डकाल-यमके रूपमें) मृत्युं उत अमृतञ्च (बाहरी दृष्टिमें यम आदिके रूपमें संसार-दुःखको तथा अन्तर्यामीरूपमें मोक्ष-वैकुण्ठ आदि) प्रयच्छतः (प्रदान करनेवाले) तस्य (मेरे कुलकी एकमात्र गति तथा मेरे जीवन-रक्षक) मायामनुषस्य (योगमायाके प्रभावसे साधारण मानव जैसे प्रतीत होनेवाले उन श्रीकृष्णके) वीर्याणि (स्वाभाविक लीला-चरित्रका) वदस्व (गुह्य होनेपर भी वर्णन करें) ॥ ७ ॥

अनुवाद—जिन भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी नौकाका सम्पूर्ण आश्रय लेकर मेरे पितामह—पाण्डव कुरुक्षेत्र-युद्धमें देव-विजयी अतिरथी भीष्मादिरूप तिमिङ्गिलोंसे परिपूर्ण दुष्पार विपुल कौरव सेनारूप समुद्रको गोवत्सके पद (बछड़ेके खुरसे बने गड्ढे) की भाँति तुच्छ मानते हुए पार कर गये थे, जिन श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्र धारण करके अपनी शरणमें आयी हुई मेरी माताके गर्भमें प्रवेश करके अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तापसे दग्धप्राय कुरु एवं पाण्डुकुलके वंश-निदान-स्वरूप मेरे इसी शरीरकी रक्षा की थी। हे विद्वन्

श्रीशुकदेवजी! इच्छाशक्तिके द्वारा स्वरूपभूत (अपने स्वाभाविक) नर-वपुको प्रकट करनेवाले, सभी देहधारियोंके अन्तर एवं बाहरमें पुरुष एवं कालरूपमें अवस्थित होकर संसार और मोक्ष (वैकुण्ठ) प्रदाता उन श्रीहरिकी लीला-चरितावलीका वर्णन कीजिये ॥ ५-७ ॥

सारार्थदर्शिनी—मत्कुलदैवतत्वेनापि कृष्णस्य कथा मम श्रोतव्येत्याशयेनाह—
पितामहा इति। अमरान् जयन्तीति तैः, देवव्रतो भीष्मः, तिमिङ्गिलतुल्यैः दुरत्ययं दुष्पारमपि वत्सपदमिव कृत्वा अतरन्, यतो यः श्रीकृष्ण एव प्लवो येषां, ते यं समाश्रिता इत्यर्थः। तथाहि, 'समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवम्' (श्रीमद्भा० १०/१४/५८) इत्यत्र 'भवाम्बुधिर्वत्सपदम्' इति। तस्य वीर्याणि वदस्वेति तृतीयेनान्वयः ॥ ५ ॥

मदेकरक्षकत्वेनापि तत्कथा अवश्यश्रोतव्येत्याह—द्रौण्यस्त्रेण विप्लुष्टं दग्धम्, इदमिति तर्ज्जन्या स्ववक्षः स्पृशति। आतचक्रश्चक्रधारी। (श्रीमद्भा० १/१२/१०) 'अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः' इति प्रथमोक्तेर्गदयैव जुगोप। चकारान्मातुरङ्गं च जुगोप ॥ ६ ॥

सर्वगतिप्रदत्वेनापि श्रोतव्यानीत्याह—वीर्याणीति। अखिलदेहभाजां मध्ये ये अन्तरङ्गा भक्ताः, ये च बहिर्बहिरङ्गाः भक्तद्रोहिणः, तेभ्योऽमृतं मृत्युञ्च प्रयच्छतस्तस्य वीर्याणि वदस्वेत्यन्वयः। तत्रान्तरङ्गेभ्यो वासुदेवादिभ्यः, पुरुषरूपैश्चतुर्भुज-द्विभुजपुरुषाकारैः, अमृतं परमानन्दम्। बहिरङ्गेभ्यः कंसादिभ्यः, कालरूपैः 'कालोऽयमिति विह्वलः' (श्रीमद्भा० १०/४/३) इति, 'मृत्युर्भोजपतेः' (श्रीमद्भा० १०/४३/१७) इत्याद्युक्तरीत्या मत्स्यण्डिकाखण्डैः पित्तदूषितरसनया तित्तरसैरिव साक्षान्मारकत्वेन भातैर्मृत्युं, उत अनन्तरं, अमृतं मोक्षं च, प्रयच्छत इति वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवत्वम्। किम्वा, लीलाया नित्यत्वज्ञापनार्थं वर्तमान प्रयोगः। मायया स्वरूपेणैव मनुष्यस्य। 'स्वरूपभूतया नित्यशक्त्या मायाख्यया युतः। अतो मायामयं विष्णुं प्रवदन्ति मनीषिणः॥' इति माध्वभाष्यप्रमाणितश्रुतेः ॥ ७ ॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण हमारे कुलदेवता अर्थात् मेरे कुलके एकमात्र गति-स्वरूप हैं, इसलिए भी श्रीकृष्णकी लीलाकथा मुझे अवश्य ही सुननी चाहिये—इसी अभिप्रायसे श्रीपरीक्षित् महाराज 'पितामहाः मे' इत्यादि पद कह रहे हैं। मेरे पितामह युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवोंने 'अमरञ्जयैः'—देवताओंको भी जीतनेवाले भीष्म पितामह आदि तिमिङ्गिलोंके समान अतिरथियोंसे रक्षित कौरव-सेनारूपी समुद्रके दुष्पारणीय होनेपर भी उसे 'वत्सपद'—बछड़ेके खुरके तुल्य

जलाशय मानकर अनायास ही पार कर गये थे। इसका कारण यह था कि श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंकी नौका-स्वरूप थे अर्थात् उन पाण्डवोंने श्रीकृष्णका भलीभाँति आश्रय ग्रहण किया था। जैसे कि श्रीमद्भागवतम् (१०/१४/५८) में कहा गया है—“जिन्होंने महाजनोंके आश्रय-स्वरूप पवित्र-कीर्ति भगवान् मुरारिके चरणकमलरूपी नौकाका सम्पूर्ण रूपसे आश्रय लिया है, उनके लिए भवसागर गोष्पद (गायके खुर) तुल्य हो जाता है।” ऐसे श्रीकृष्णकी लीला-चरितावलीका वर्णन करें—इसका तृतीय अर्थात् श्लोक संख्या ७ के साथ अन्वय होगा॥५॥

विशेषतः जिन्होंने मेरे जीवनकी रक्षा की है, उनकी कथाका श्रवण करना ही मेरा एकमात्र कर्तव्य है, इसे ‘द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टम्’ पद के द्वारा कह रहे हैं। अर्थात् द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दाधप्राय (तर्जनीके द्वारा अपने वक्षःस्थलका स्पर्श करते हुए कह रहे हैं) मेरे इस शरीरकी जिन्होंने चक्र धारणपूर्वक रक्षा की है, उन श्रीकृष्णकी कथा अवश्य ही श्रवणीय है। यहाँ—“सूर्य जिस प्रकार कोहरेका नाश कर देता है, उसी प्रकार आपने भी अपनी गदाके द्वारा ब्रह्मास्त्रके तेजको नष्ट कर दिया था”—(श्रीमद्भा० १/१२/१०) की इस उक्तिके अनुसार श्रीकृष्णने चक्र धारणपूर्वक मेरी माताके गर्भमें प्रवेशकर गदाके द्वारा ही मेरे अङ्ग एवं ‘च’ कारके प्रयोगसे मेरी जननीकी देहकी भी रक्षा की है, यही समझना होगा॥६॥

सबके गतिको प्रदाता होनेके कारण भी उनकी कथाका श्रवण करना चाहिये—इसे बतलानेके लिए ‘वीर्याणि’ आदि श्लोक कह रहे हैं। समस्त देहधारियोंमें जो अन्तरङ्ग-भक्त हैं तथा जो बहिरङ्ग-भक्तद्रोही हैं, उन्हें जो क्रमशः अमृत और मृत्यु प्रदान करते हैं, उन्हींकी चरितावलीका वर्णन कीजिये, यही अन्वय है। उनमेंसे अन्तरङ्ग श्रीवसुदेव आदि भक्तोंको कभी चतुर्भुज और कभी द्विभुज स्वरूपमें दर्शन देकर उन्हें अमृत अर्थात् परमानन्द प्रदान करते हैं एवं बहिरङ्ग शत्रुरूपी कंस आदि असुरोंका कालके रूपमें विनाश करके उन्हें मृत्यु अर्थात् मोक्ष प्रदान करते हैं। “यह बालक मेरा काल स्वरूप है, ऐसा समझकर भयभीत चित्त” (श्रीमद्भा० १०/४/३) एवं “भोजराज कंसके निकट मृत्यु-स्वरूप” (श्रीमद्भा० १०/४३/१७) आदि उक्तियोंके अनुसार

जिस प्रकार अत्यधिक मीठी मिश्रीका टुकड़ा पित्तसे दूषित जिह्वापर कड़वा लगता है, उसी प्रकार जो आनन्दमय श्रीकृष्णको साक्षात् मृत्युरूपमें देख रहे हैं, उन कंस आदिको जो पहले मृत्यु और तदनन्तर अमृत अर्थात् मोक्ष भी प्रदान करते हैं, ऐसे श्रीभगवान्की रहस्यमय लीलाओंका आप हमारे समक्ष कीर्तन कीजिये।

‘प्रयच्छतः’—यहाँ लीलाका नित्यत्व कहनेके लिए वर्तमानका प्रयोग हुआ है। ‘मायामनुष्यस्य’—यहाँ ‘माया’ का अर्थ है कि जो स्वरूपसे ही नराकृति हैं, उन भगवान्की चरितावलीका कीर्तन कीजिये।

मध्वभाष्य द्वारा प्रमाणित श्रुतिमें कहा गया है—“वे नराकार पुरुष अपनी स्वरूपभूत माया नामक नित्यशक्ति (योगमाया) के द्वारा युक्त हैं, इसलिए विद्वान व्यक्ति उन्हें मायामय विष्णु कहते हैं ॥” ५-७ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पिछले श्लोकमें महाराज श्रीपरीक्षित्ने यह प्रतिपादन किया है कि श्रीकृष्णका गुणानुवाद सभीको सुनना चाहिये, और ऐसे कथाके श्रवणसे कोई विरक्त नहीं हो सकता और विरक्त होना उचित भी नहीं है। श्रीपरीक्षित् महाराज अब कह रहे हैं कि विशेषकर मुझे तो कदापि विरक्त नहीं होना चाहिये, क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे कुलके देवता हैं, उन्हींकी कृपासे हमारे कुलकी रक्षा हुई है।

भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ आदि कौरव रणनिपुण सेनानायकगणोंमेंसे कोई भी शौर्य, वीर्य, रणपाण्डित्यमें साधारण नहीं थे। अमर न होनेपर भी युद्धमें कोई अमर (देवता) भी उन्हें पराजित नहीं कर सकते थे। भीष्मकी इच्छामृत्यु थी, द्रोणका कण्ठतालु भेदकर ब्रह्मरन्ध्र भेदसे मरण था, कृपाचार्य अमर थे, यदि पृथ्वी रथचक्रको ग्रास न करती तो कर्णके मरणकी सम्भावना भी नहीं थी। जयद्रथको वरदान था कि जो उसके सिरको काटकर जमीनपर गिरा देगा, उसका मस्तक भी शरीरसे अलग होकर जयद्रथके मस्तकका अनुसरण करेगा अर्थात् वह भी मर जायेगा। अतएव इनमेंसे किसीकी भी मृत्यु मनुष्यके लिए सम्भव नहीं थी। इसलिए ये सभी रणमें दुर्जय थे। इनके रण-पाण्डित्यकी बात अधिक क्या कहें? महाभारतमें देखा जाता है—

एकादश सहस्राणि योधयेद् यस्तु धन्विनाम्।

अस्त्र शस्त्रा प्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः।

अमितान् योधयेद् यस्तु संप्रोक्तोऽतिशयस्तु सः॥

अर्थात् जो ग्यारह हजार धनुर्धारियोंका अधिनायक होकर अपने रणकौशलसे उन्हें युद्धक्षेत्रमें परिचालित करते हैं एवं स्वयं अस्त्र-शस्त्रकी विद्यामें महाप्रवीण होते हैं, वे महारथी कहलाते हैं। और जो इस प्रकारके असंख्य धनुर्धारी महारथियोंके परिचालक होते हैं, उन्हें अतिरथी कहा जाता है।

भीष्म, द्रोण आदि प्रायः सभी अतिरथी थे, दुष्पार कौरव सेनारूपी सागरमें ये सभी तिमिङ्गलकी भाँति विचरण करते थे। ऐसे भीषण महासिन्धुको भी पार करनेके लिए श्रीकृष्णकी चरण-तरणी अर्थात् चरणकमलरूपी नौका ही एकमात्र गति है, श्रीकृष्णके प्रति शरणागति ही पतवार है और उनकी करुणा ही अनुकूल वायु है। मेरे पितामहगण इस नौकाका सहारा लेकर इस अपार सिन्धुको पार कर गये।

साधारणतः यही देखा या सुना जाता है कि जलयानका आश्रय लेकर बड़े परिश्रमसे महासागरको पार किया जाता है, परन्तु मेरे पितामहोंको श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी नौकाका आश्रय करनेके कारण कौरवसेना-सागरको पार करनेमें तनिक भी परिश्रम नहीं करना पड़ा। श्रीकृष्णके चरणरूपी नौकाकी ऐसी अपूर्व महिमा है, जो इस महासागरको सुखाकर बछड़ेके खुरके समान क्षुद्र गड्ढेके समान कर देती है, जिसे अनायास ही पार किया जा सकता है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण महाराज श्रीपरीक्षित्के कुलदेवता एवं उनके जीवन-रक्षक हैं।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सभीके जीवनदाता हैं, तथापि उन्होंने जिस प्रकार महाराज परीक्षित्की रक्षाकी थी, ऐसे उन्होंने किसी दूसरेको रक्षाकी हो, ऐसा कहीं भी सुना नहीं जाता। अश्वत्थामाके द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्रसे परीक्षित् अपनी माताके गर्भमें दग्ध हो रहे थे, तब करुणामय श्रीकृष्णने चक्र, गदादि धारणकर उत्तराके गर्भमें प्रवेशकर ब्रह्मास्त्रके तेजसे परीक्षित्की देहकी रक्षा की थी।

पाण्डवोंके प्रति भक्तवत्सलतावशतः ही श्रीकृष्णने उनके कुलकी रक्षा हेतु मेरे देहकी रक्षा की थी। अन्यथा मुझमें ऐसा कोई गुण नहीं था, जिससे मुझपर ऐसी कृपा होती। आज उनकी कृपासे ही मैं इस गङ्गातीरपर बैठकर आपसे उनकी गुणकथा सुननेके लिए प्रार्थना करनेमें सक्षम हुआ हूँ। अतएव मेरे लिए श्रीकृष्णकी लीलाकथा श्रवण करना एकमात्र कर्तव्य है—इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

महाराज परीक्षित् द्वारा श्रीकृष्णकी लीलाकथा सुननेके लिए उत्कण्ठित होकर श्रीशुकदेव गोस्वामीको 'श्रीकृष्णस्य चरितानि वदस्व'—श्रीकृष्णकी लीलाकथाका वर्णन करें—यह न कहकर 'मायामनुष्यस्य चरितानि वदस्व'—उस माया-मनुष्यकी लीलाओंका वर्णन करें—ऐसा कहनेमें एक निगूढ़ रहस्य जान पड़ता है। 'माया-मनुष्य' शब्दका अर्थ—“मायया एव मनुष्यः प्राकृत मनुष्यतया प्रतीतः अर्थात् योगमायाके प्रभावसे प्राकृत मनुष्यकी भाँति प्रतीत होनेवाले।” श्रीकृष्णका वृन्दावनमें जन्म, यशोदाका स्तनपानकर दिन-प्रतिदिन वृद्धि (बढ़ना), मिट्टी खाना, माखन-चोरी आदि बाललीलाएँ और व्रजबालकोंके साथ गोष्ठमें गमन, गोचारण, हँसना, नाचना कूदना-फाँदना आदि लीलाओंके श्रवणसे ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण हमारे जैसे ही साधारण मनुष्य हैं। किन्तु उनके चरणकमलोंमें शरणागत होकर तनिक विचार करके देखनेपर प्रतीत होगा कि यह मधुर-लीला आपाततः प्राकृत (साधारण) की भाँति दीखनेपर भी प्राकृत-धर्मसे अतीत है। किन्तु मायामुग्ध जीव इस लीलाका अप्राकृत अंश ग्रहण करनेमें असमर्थ होनेके कारण श्रीकृष्णको प्राकृत मनुष्य समझ लेते हैं। कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि असुर एवं उनके परवर्ती कालसे आज वर्तमान कालतक ऐसे असुरोंके समजातीय-भाववाले बहिर्मुख-जीव श्रीकृष्णकी लीलाको प्राकृत ही मानते आ रहे हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण हमारे जैसे मनुष्य नहीं हैं तथापि मायादेवी अपने अधीन जीवोंके लिए उन्हें मनुष्य जैसा ही प्रतीत करा देती है, इसलिए श्रीकृष्णके लिए 'माया-मनुष्य' शब्दका प्रयोग हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मायाके अधिकारमें रहकर मायिक-बुद्धिसे इन लीलाओंका अप्राकृत-भाव किसी भी प्रकारसे हृदयङ्गम नहीं किया जा सकता है।

दूसरे अर्थमें 'माया-मनुष्य' शब्दका विचार करनेपर देखा जाता है—'मायया तादृश मनुष्यत्व प्रकाशिकया माययापि अमनुष्यस्य।' अर्थात् श्रीभगवान् अपने भक्तोंके साथ पुत्र, सखा, प्राणवल्लभ आदि सम्बन्ध स्थापितकर उनके प्रेमरसका आस्वादन करते हैं। वे अपनी योगमायाके द्वारा उन भक्तोंकी बुद्धिको ढककर उनके निकट मनुष्यरूपमें ही प्रतीत होनेका प्रयास करते हैं। परन्तु ऐसा करनेपर भी भगवान्का जो लोकातीत-भाव है, वह प्रकट हो ही जाता है। श्रीवृन्दावनलीलामें ब्रह्म-विमोहन, इन्द्रका दर्प-चूर्ण या वरुणलोकमें गमन, वरुणके द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा तथा स्तुति—ये सब मनुष्यातीत-भाव भी श्रीकृष्णमें प्रकाशित हुए हैं। इसीलिए यह स्पष्ट रूपसे समझा जाता है कि योगमायाके द्वारा अपने लोकातीत स्वरूपको छिपाकर भक्तोंका आनन्द-वर्द्धन करनेपर भी श्रीकृष्णका लोकातीत स्वरूप योगमायाके आवरणको उठाकर लीलाके अवसरपर आत्मप्रकाश कर देता है।

विश्वप्रकाश अभिधानमें देखा जाता है—'माया दम्भे कृपायाञ्च'—माया शब्दका अर्थ 'दम्भ' और 'कृपा' है। यहाँ 'कृपा' अर्थ लेनेपर एक अभिनव चमत्कारपूर्ण अर्थ दीखता है—'मायया कृपया मनुष्यस्य प्रकटित नराकारः।' अर्थात् जिन्होंने जगत्के जीवोंके प्रति कृपाकर अपने नराकार परब्रह्म-स्वरूपको प्रकाशित किया है—वे 'माया मनुष्य' हैं।

“आत्मा वा इदमग्र आसीत् पुरुषविधः अर्थात् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टिसे पूर्व नराकार परमात्मा विराजमान थे”—इस श्रुतिवाक्यसे; एवं 'वत्सैर्वत्सतरीभिश्च सरामो बालकैर्वृतः। वृन्दावनान्तरगतः सदा क्रीडति कंसहा॥' अर्थात् कंसनिसूदन श्रीगोविन्द-बलदेव, गोपबालकों एवं गोवत्स आदिके साथ वृन्दावनमें नित्य विहार करते हैं।—इस स्कन्दपुराणीय वचनसे तथा दूसरे-दूसरे बहुत-से श्रुति, पुराण और संहिताके वचनोंके द्वारा यही प्रमाणित होता है कि श्रीभगवान् नराकृति परब्रह्मरूपमें प्रपञ्चातीत धाममें नित्य लीला-विहार करते हैं। श्रीभगवान्की अनन्त लीलाएँ रहनेपर भी उनकी यह नरलीला ही उनकी सर्वोत्तम लीला है।

कृष्णेर यतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला, नरवपु ताहार स्वरूप।
गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नरलीलार हय अनुरूप॥

इस चैतन्यचरितामृतके वचनसे तथा 'यन्मर्त्य लीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् अर्थात् भगवान्ने जगत्-जीवोंको अपनी योगमायाका वैभव दिखलाकर कृतार्थ करनेके लिए नरलीलाके अनुरूप श्रीमूर्तिको ही प्रकाश किया है।' (श्रीमद्भा० ३/२/१२) आदि श्रीभागवतके श्लोकोंसे यह स्पष्ट हो जाता है।

त्रिकाण्डशेष नामके अभिधानमें कहा गया है—'माया-स्याच्छाम्बरीबुद्ध्यो' अर्थात् माया शब्दका अर्थ शम्बरादि असुरों द्वारा प्रयुक्त मोहिनीशक्ति एवं ज्ञान है। माया शब्दका 'ज्ञान' अर्थ ग्रहण करनेसे 'माया-मनुष्य' शब्दका और एक अभिनव अर्थ प्राप्त होता है। "मायायां तत्त्वज्ञान दशायामपि मनुष्यः नराकृति परब्रह्म रूपेण भक्तचेतसि प्रकाशमानः। अर्थात् तत्त्वज्ञानकी अवस्थामें भी भक्तके हृदयमें भगवान् नराकृति परब्रह्मके रूपमें प्रकाशित रहते हैं।" इसलिए यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्माण्डमें स्थित किसी भी वस्तुका तत्त्वविचार करनेपर समस्त कारणोंके कारण श्रीगोविन्दके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं देखा जाता। श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई भी पदार्थ या वस्तु अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखनेमें समर्थ नहीं है। इसीलिए संसारमें जो कुछ भी है, उन सबका मूल-कारण श्रीगोविन्द ही हैं। अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न जीव उनकी नराकृतिको देखकर अथवा उनकी नराकृतिकी कथाको सुनकर उन्हें प्राकृत नर मानते हैं तथा तत्त्वज्ञानयुक्त व्यक्ति उन्हीं नराकृति परब्रह्मके माधुर्य-समुद्रमें नित्य अवगाहनकर कृत-कृतार्थ होते हैं। वे अज्ञान या ज्ञान सभी स्थितियोंमें ही नराकार परब्रह्म हैं।

इसीलिए महाराज परीक्षितने अपने कुल-देवता और जीवन-रक्षक श्रीगोविन्दको 'माया-मनुष्य' रूपमें समझकर उनकी लीलाकथा सुननेके लिए उत्कण्ठित होकर श्रीशुकदेव गोस्वामीसे प्रार्थना की—हे विद्वान्! आप उन माया-मनुष्य श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करें॥ ५-७॥

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया।

देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥

अन्वयः—सङ्कर्षणः (जिनका दूसरा नाम श्रीसङ्कर्षण है) [उन] रामः (श्रीबलरामका) रोहिण्याः (श्रीरोहिणी नामकी श्रीवसुदेव पत्नीके) तनयः (गर्भजात पुत्र होना) त्वया (आपके द्वारा) प्रोक्तः (नवम स्कन्धमें कथित हुआ है) [पुनः] देवक्याः (देवकी नामकी श्रीवसुदेव-पत्नीके) गर्भसम्बन्ध (आपके द्वारा ही नवम-स्कन्धमें श्रीबलरामका देवकीके गर्भमें जन्म वर्णन किया गया है) [तब उनका] देहान्तरं विना (दूसरा देह धारण किए बिना रोहिणी गर्भमें जन्म) कुतः (किस प्रकार सम्भव हुआ?) ॥ ८ ॥

अनुवाद—हे शुक्रदेव गास्वामी! आपने पहले बतलाया कि सङ्कर्षण—श्रीबलराम रोहिणीके पुत्र हैं और उसके बादमें आपने वर्णन किया कि वे देवकीके गर्भमें प्रकटित हुए। किन्तु हे प्रभो! देहान्तर अर्थात् देह-परिवर्तन किये बिना एक ही देहसे दो माताओंके गर्भमें जन्म ग्रहण करना किस प्रकार सम्भवपर हो सकता है? ॥ ८ ॥

सारार्थदर्शिनी—अत्र विशेषं पृच्छति—रोहिण्या इति चतुर्भिः। प्रोक्तो नवमस्कन्धे (श्रीमद्भा० ९/२४/४६)। 'सङ्कर्षणमहीश्वरम्' (श्रीमद्भा० ९/२४/५४) इति देवकीपुत्रेष्वपि तस्यैव सङ्कर्षणस्य देवक्या गर्भसम्बन्धश्च उक्तः। स कुतो घटत इत्याक्षेपः ॥ ८ ॥

भावानुवाद—अब श्रीपरीक्षित् 'रोहिण्याः' आदि चार श्लोकोंके द्वारा विशेष प्रश्न पूछ रहे हैं। (हे श्रीशुक्रदेव गोस्वामी!) आपने नवम-स्कन्ध (श्रीमद्भा० ९/२४/४६) में श्रीबलरामको रोहिणीनन्दन कहा है। पुनः उन्हींको (श्रीमद्भा० ९/२४/५४) श्लोकमें नागराज सङ्कर्षण श्रीदेवकीके गर्भमें प्रकटित हुए—ऐसा कहा है। इस विषयमें मेरी यह जिज्ञासा है कि देहान्तरके बिना अर्थात् एक ही शरीरसे रोहिणीनन्दन बलरामका पुनः देवकीके गर्भसे सम्बन्ध किस प्रकार सम्भवपर हो सकता है? ॥ ८ ॥

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्द्धं कृतवान् सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥

अन्वयः—मुकुन्द (असुरोंको भी मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम देनेवाले) भगवान् (षडैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण) कस्मात् (किस कारणसे) पितुर्गेहात् (श्रीवसुदेव महाराजके वासस्थानसे) व्रजं (श्रीनन्दालयमें) गतः (गये) [और] सात्वतां पतिः (भक्तजनोंके परिपालक श्रीकृष्णने) ज्ञातिभिः सार्द्धं (गोपों तथा यादवोंके साथ) क्व (किस स्थानपर) वासं कृतवान् (निवास किया) ॥ ९ ॥

अनुवाद—भगवान् श्रीमुकुन्द किस कारणसे पितृगृह (श्रीवसुदेव-भवन, मथुरा) से व्रज (नन्दालय, गोकुल महावन) गये थे? भक्तोंके परिपालक श्रीकृष्णने ज्ञातियों—गोपों और यादवोंके साथ कहाँ-कहाँ पर निवास किया था? ॥ ९ ॥

सारार्थदर्शिनी—पितुर्वसुदेवस्य गेहाद्व्रजं महावनं गतः । व्रजं गतोऽपि पितुर्नन्दस्य गेहात् ज्ञातिभिर्गोपैः साकं क्व वासं कृतवान्? ॥ ९ ॥

भावानुवाद—‘पितुर्गेहात्’—भगवान् श्रीकृष्ण किस कारणसे पिता श्रीवसुदेवके घरसे व्रजके महावनमें (अर्थात् नन्दालय) में गये थे? फिर व्रजमें जाकर भी पिता श्रीनन्द महाराजके भवनसे अपने ज्ञाति (अर्थात् एक ही गोत्र या वंशमें उत्पन्न मनुष्य) गोपोंके साथ उन्होंने कहाँ-कहाँ निवास किया था? ॥ ९ ॥

व्रजे वसन् किमकरोन्मधुपुर्याञ्च केशवः ।
भ्रातरञ्चावधीत् कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥ १० ॥

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।
यदुपुर्या सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः ॥ ११ ॥

अन्वयः—केशवः (ब्रह्मा-शिव आदि देवताओंके भी प्रभु और नियामक श्रीकृष्णने) व्रजे (श्रीनन्द गोपके घरमें) [तथा] मधुपुर्या (मथुरा और द्वारकामें) वसन् (निवास करते समय) किम् अकरोत्

(कौन-कौन-सी परम अद्भुत लीलाओंको किया) [और] अतदर्हणम् (वधके अयोग्य) मातुः (माता श्रीदेवकीके) भ्रातरम् कंसं (भाई अर्थात् मामा कंसको) अद्धा (स्वयं ही श्रीकृष्णने) कथम् अवधीत् (किस कारणसे वध किया?) ॥ १० ॥

मानुषं (मनुष्य आकारवाली परम सुन्दर) देहम् (सच्चिदानन्दघन नित्यसिद्ध श्रीमूर्तिसे) आश्रित्य (नरलोकमें प्रकटित होकर) वृष्णिभिः सह (यादवोंके साथ) कति वर्षाणि (कितने वर्ष तक) यदुपुर्यां (द्वारका पुरीमें) अवात्सीत् (निवास किया) प्रभोः (सर्वसमर्थ श्रीकृष्णकी) कति (कितनी) पत्न्यः (पत्नियाँ) अभवत् (हुई अर्थात् कितनी स्त्रियोंको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ?) ॥ ११ ॥

अनुवाद—श्रीकेशवने व्रज और मथुरामें अवस्थान करके किन-किन लीलाओंका विस्तार किया था और किस कारणसे वधके अयोग्य मामा कंसका स्वयं ही वध कर दिया था? ॥ १० ॥

श्रीकृष्णने सच्चिदानन्दविग्रह नित्य-स्वरूप नरतनुको प्रकटित करके वृष्णिजनों (यादवों) के साथ द्वारकामें कितने वर्षों तक वास किया तथा उन प्रभु (श्रीकृष्ण) की कितनी महीषियाँ (रानियाँ) थीं? ॥ ११ ॥

सारार्थदर्शिनी—मधूनां पुर्यां—मथुरायां द्वारकायाञ्च। मातुर्भ्रातरं कंसं कस्मादवधीत्? अतदर्हणं मातुलत्वाद्ब्रानर्हम् ॥ १० ॥

वृष्णिभिः सह कति वर्षाणि अवात्सीत्? वर्षाणि कथम्भूतानि? मानुषं देहमाश्रित्य वर्तमानानीत्यर्थः। ततश्च मनुष्यमानेन कति वर्षाणीत्यर्थः फलितः। 'परमात्मा नराकृतिः' इति, 'नराकृति परं ब्रह्म' इति, 'गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्' (श्रीमद्भा० ७/१०/४८) इत्यादिभिर्मनुष्यत्वस्यैव स्वरूपलक्षणत्वाद्द्वयाख्यानतरं न घटते ॥ ११ ॥

भावानुवाद—'मधुपुर्यां'—मधुवंशियोंकी पुरी—मथुरा और द्वारकामें निवास करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कौन-कौन-से कार्य किये थे? अर्थात् कौन-कौन-सी लीलाएँ की थीं? 'मातुर्भ्रातरं'—श्रीकृष्णने अपनी जननीके भ्राता अर्थात् मामा होनेके कारण वधके अयोग्य होनेपर भी कंसका स्वयं वध क्यों किया था? ॥ १० ॥

श्रीभगवान्ने वृष्णियों (यादवों) के साथ कितने वर्षों तक निवास किया? वे कैसे वर्ष थे? श्रीकृष्ण द्वारा नराकृति अर्थात् मनुष्य देहका आश्रय करते हुए वर्तमान रहनेवाले वर्षसमूह, यह अर्थ है। अर्थात् मनुष्य परिमाणके अनुसार 'कितने वर्षों तक वास किया?' यह अर्थ हुआ। 'परमात्मा नराकृतिके रूपमें', 'नराकृति परमब्रह्म', 'मनुष्य रूपमें परब्रह्म अपनेको छिपाकर लीला करते हैं'—इत्यादि प्रमाणोंके अनुसार सच्चिदानन्दमय भगवान् श्रीकृष्णका नराकार ही उनका नित्य-स्वरूप अर्थात् स्वरूप-लक्षण है। इसलिए अन्य व्याख्या (अर्थात् नास्तिक व्याख्या) सङ्गत नहीं है ॥ ११ ॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम्।

वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्धधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—[हे] मुने (निरन्तर श्रीकृष्णलीला मननशील!) [हे] सर्वज्ञ (सम्पूर्ण रूपमें श्रीकृष्णलीलाको जाननेवाले!) एतत् (पहले मैंने जो पूछा है) अन्यत् च (और अज्ञानवशतः जो कुछ नहीं पूछा) सर्वं (वह समस्त) कृष्णविचेष्टितं (सर्वाकर्षक परमानन्दघन-विग्रह श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाएँ) श्रद्धधानाय (आपके अनुग्रहसे श्रीकृष्णलीला श्रवणमें श्रद्धालु मेरे लिए) विस्तृतं (तत्त्व-सिद्धान्त प्रयोजन आदि निर्देशपूर्वक) वक्तुं अर्हसि (वर्णन कीजिये) ॥ १२ ॥

अनुवाद—हे सर्वज्ञ मुनिवर! मेरे द्वारा पूछे गये इन समस्त प्रश्नोंका एवं इनके अतिरिक्त मेरे द्वारा अन्यान्य जो कुछ पूछा नहीं गया है, उन समस्त कृष्णलीलाओंका कृपापूर्वक मेरे समक्ष विस्तारसे वर्णन कीजिये। मुझमें उन्हें श्रवण करनेकी विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—महाराज श्रीपरीक्षित्ने श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंको श्रवण करनेके लिए विशेष लालसायुक्त होकर पहले साधारण भावसे श्रीकृष्णलीला-विषयक प्रश्न किया, किन्तु अब उस विषयमें उनकी जो विशेष जिज्ञासा है, उसीकी अवतारणा इन श्लोकों द्वारा कर रहे हैं।

नवम-स्कन्धमें युदवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा है (श्रीमद्भा० ९/२४/४६)—

बलं गदं सारणञ्च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम्।

वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत्॥

अर्थात् श्रीवसुदेव महाराजने अपनी रोहिणी नामक पत्नीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत आदि पुत्रोंको उत्पन्न किया।

उसके पश्चात् (श्रीमद्भा० ९/२४/५३, ५४, ५५) में वर्णन है—

वसुदेवस्तु देवक्यामष्टपुत्रानजीजनत्॥

कीर्तिमन्तं सुषेणञ्च भद्रसेनमुदारधीः।

ऋजुं सन्तर्दनं भद्रं संकर्षण-महीश्वरम्॥

अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल।

अर्थात् श्रीवसुदेवने अपनी देवकी नामक पत्नीके गर्भसे आठ पुत्र उत्पन्न किये। कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, मृदु, सन्तर्दन, भद्र और सङ्कर्षण—ये सात तथा अष्टम गर्भमें स्वयं श्रीहरि अवतीर्ण हुए।

यहाँ यह देखा जाता है कि रोहिणीके गर्भसे जन्म लेनेवाले बलदेव एवं देवकीके गर्भसे उत्पन्न सङ्कर्षण—दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसलिए महाराज श्रीपरीक्षितने सन्देहयुक्त होकर श्रीशुकदेव गोस्वामीसे पूछा कि श्रीबलदेवने एक ही शरीरसे दो गर्भोंमें कैसे जन्म लिया? श्रीबलराम श्रीभगवान्के ही द्वितीय देह हैं, अतएव वे भी अचिन्त्य-अनन्त-शक्तिसे सम्पन्न हैं, उनके लिए एक ही शरीरसे दो गर्भोंमें जन्म लेना कुछ भी असम्भव नहीं है। श्रीपरीक्षित महाराज यह तत्त्व नहीं जानते हैं, ऐसा भी नहीं है। तथापि उनके इस प्रकार प्रश्न पूछनेका उद्देश्य यह है कि श्रीबलराम दो रूपोंसे दो गर्भोंमें जन्म ले सकते थे अथवा पहले एक गर्भमें जन्म लेकर किसी अन्य समयमें दूसरे गर्भसे भी जन्म ले सकते थे। परन्तु एक ही देहसे दो गर्भोंसे जन्मकी व्यवस्था क्या उन्होंने स्वेच्छासे की या भगवान्की इच्छासे की—यह अवश्य जानना होगा। इसका कारण है कि यदि यह व्यवस्था स्वेच्छासे है, तब श्रीभगवान्के नित्यसेवक श्रीसङ्कर्षणकी कोई अचिन्त्य

भगवत्-सेवा-परिपाटी इस लीलामें निहित है और यदि भगवान्की इच्छासे यह व्यवस्था हुई है, तब तो इस लीलामें निश्चय ही श्रीभगवान्का भक्तवात्सल्य निहित है।

श्रीबलरामका जन्म-रहस्य जाननेकी लालसासे ही श्रीपरीक्षित् महाराजने ऐसा प्रश्न करनेके उपरान्त श्रीकृष्णलीला-विषयक कुछ प्रश्न भी अवतरण किये हैं—

श्रीशुकदेव गोस्वामीने नवम-स्कन्धमें (श्रीमद्भा० १/२४/६६) 'जातो गतः पितृगेहाद् व्रजमेधितार्थः' आदि श्लोकमें "श्रीकृष्ण मथुरामें जन्म लेकर व्रजमें गये तथा वहाँका कार्य पूर्णकर फिर मथुरा लौट आये।"—यह संक्षेपमें कहा है। इस लीलामें अवश्य ही कुछ गूढ़ रहस्य है, ऐसा विचारकर श्रीपरीक्षित् महाराजने प्रश्न किया—"भगवान् मुकुन्द पितृगृह मथुरासे किसलिए व्रजमें आये?" महाराज श्रीपरीक्षित्का यह प्रश्न बहुत उद्देश्योंसे पूर्ण है। "श्रीकृष्ण कंसके भयसे मथुरासे व्रजमें चले गये।"—इस सम्भावनाको महाराज श्रीपरीक्षित्ने 'भगवान्' शब्द द्वारा खण्डित कर रखा है। जो 'भगवान्' अर्थात् अचिन्त्य, अनन्त शक्तिमान, साक्षात् भयके भी भयदाता हैं, वे फिर किसके भयसे छिपेंगे? 'मुकुन्द' अर्थात् मुक्तिदाता, अतएव असुर आदि जीवोंको मुक्तिदान करनेके लिए ही जो नरलोकमें आविर्भूत हुए हैं। व्रजमें गो, गोप, गोपी—सभी प्रगाढ़ प्रेमसम्पन्न हैं, अतः वहाँ मुक्तिकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु जो देह-गृह आदिमें मायाबद्ध अज्ञानी जीव हैं, उन्हें मुक्तिकी आवश्यकता है। मथुरामें कंस और उनके अनुचर सभी बद्धजीव हैं, अतः उन्हें मुक्ति देनेके कारणसे ही श्रीभगवान्का 'मुकुन्द' नाम सार्थक होता है। अतः व्रजमें न जाकर कंसादिकी मुक्तिके लिए मथुरामें रहना ही उचित था। जहाँ बद्धजीव हैं, वही स्थान मुकुन्दके आविर्भावयोग्य तथा वासयोग्य है।

परन्तु, मुकुन्दका वास्तव अर्थ है—'मु' अर्थात् मुक्तिसुख, 'कु' अर्थात् कुत्सित (तुच्छ) अर्थात् जो मुक्तिसुखको अति तुच्छ बनाकर भक्तोंके लिए भक्तिरस प्रेमानन्दको प्रदान करनेवाले हैं—वे मुकुन्द हैं। फिर प्रेमानन्दके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुसे मुक्तिसुख हीन या तुच्छ हो नहीं सकता।

तत् साक्षात् करणाह्लाद—विशुद्धाब्धि स्थितस्य मे।

सुखानि गोष्पदायन्ते ब्रह्मण्यपि जगद्गुरो ॥

श्रीहरिभक्तिसुधोदय (१४/३६)

अर्थात् हे भगवन्! आपका दर्शनकर मैं जिस आनन्द-समुद्रमें निमग्न हो रहा हूँ, उसके समक्ष मुझे ब्रह्मानन्द भी गोष्पद अर्थात् बछड़ेके खुरके गड़ेके समान प्रतीत हो रहा है।

श्रीभगवान् जब प्रेमानन्द दान करनेके लिए ही अवतीर्ण हुए हैं, तब उनके लिए मथुरामें प्रकट न होकर केवल व्रजमें ही जन्म लेना उचित था।

श्रीभगवान्को मुक्तिदाता या प्रेमानन्द-दाता जो कुछ भी कहें, उनके मथुरामें आविर्भूत होनेके पश्चात् व्रजमें गमन एवं वहाँ बाल्यकाल बिताकर फिरसे मथुरा आनेमें निश्चित ही कोई गूढ़ रहस्य है, जिसे मैं कुछ भी हृदयङ्गम नहीं कर पा रहा हूँ। अतएव हे तत्त्वज्ञ-चूड़ामणि! आप इस रहस्यका भलीभाँति वर्णन करें।

श्रीपरीक्षित् महाराजने और भी पूछा—“हे गुरो! भक्तजन-परिपालक भगवान्ने अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया?” महाराज परीक्षित्के इस प्रश्नमें भी गूढ़ रहस्य है। उनका मनोभाव यह है कि जन्म-सम्बन्धके बिना कोई किसीका बन्धु-बान्धव नहीं होता। एक वंशमें उत्पन्न व्यक्ति ही एक दूसरेके ज्ञाति (कुटुम्बी या बन्धु-बान्धव) होते हैं। भगवान् अज अर्थात् जन्म-रहित हैं, अतएव उनका कोई ज्ञाति सम्बन्ध नहीं होता है। परन्तु सर्वेश्वर होनेपर भी भगवान् कभी प्रेमाधीनता और भक्तवात्सल्यताको त्याग नहीं सकते। इसलिए वे अज होकर भी भक्तके वात्सल्यप्रेमके अधीन होकर भक्तके वंशमें जन्म ग्रहण करते हैं।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

(श्रीगीता ४/६)

गीताके इस वचनमें भगवान्ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वे अज होकर भी अपनी प्रकृति अर्थात् स्वभावसे स्वेच्छापूर्वक जन्म

ग्रहण करते हैं। किन्तु जीवके जन्मके साथ उनके जन्मका पार्थक्य यह है कि जीवका जन्म कर्माधीन और भगवान्‌का जन्म प्रेमाधीन है। भगवान् भक्तवात्सल्यवशतः जिस वंशमें जन्म लेकर ऐसा सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उस वंशमें उत्पन्न महाभाग्यवान् व्यक्ति ही भगवान्‌के ज्ञाति (कुटुम्बी) होते हैं।

श्रीमद्भागवतमें यादवगण और गोपगण श्रीकृष्णके ज्ञातिके रूपमें निर्दिष्ट हुए हैं। श्रीभगवान्‌ने वृन्दावनसे मथुरा जाते समय वृन्दावनवासियोंको यह कहा था—‘ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम्’ (श्रीमद्भा० १०/४५/२३) अर्थात् “मथुरावासी सुहृदोंका आनन्द-विधानकर मैं इस वृन्दावनमें पुनः अपने ज्ञातियोंको देखने आऊँगा।” श्रीकृष्णका महाराज श्रीवसुदेवके पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करना श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट रूपसे वर्णन है, अतएव यादवगण उनके ज्ञाति हैं। महाराज परीक्षित भी अपने सम्बन्धके अनुसार श्रीकृष्णको वसुदेवनन्दनके रूपमें जानते हैं, अतः उनके मतमें यादवगण ही श्रीकृष्णके ज्ञाति हैं। परन्तु श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—‘ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामः’ (श्रीमद्भा० १०/४५/२३)—श्रीकृष्णके श्रीमुखनिःसृत इस वचनके अनुसार गोपोंको वे अपने ज्ञातिके रूपमें जानते हैं। इसलिए श्रीशुकदेव गोस्वामीने गोपोंके साथ श्रीकृष्णके निवासकी बात कही है।

अपने ज्ञातियोंके साथ भक्तवत्सल श्रीकृष्णके वासस्थानका नाममात्र सुनकर महाराज परीक्षित तृप्त नहीं हो पाये, इसलिए उन्होंने प्रश्न किया—“हे गुरो! श्रीकृष्णने ब्रज और मधुपुरीमें वासकर कौन-कौन-सी लीलाएँ की हैं?” यहाँ ‘ब्रज’ शब्दका अर्थ ‘गोकुल एवं वृन्दावन’ तथा ‘मधु-पुरी’ शब्दका अर्थ ‘मथुरा और द्वारका’ है। अतएव इन तीन स्थानोंपर श्रीभगवान्‌की लीलाएँ एवं द्वारका वासकालीन हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र आदि स्थानोंकी लीलाएँ भी इस प्रश्नके द्वारा सूचित होती हैं।

महाराज परीक्षितने श्रीभगवान्‌की गोकुल, मथुरा और द्वारका—इन तीनों धामोंमें वासकालीन लीलाओंके विषयमें प्रश्नकर पुनः उनकी मथुरालीलामें कंसवधके विषयमें सन्देहयुक्त होकर प्रश्न किये—“हे गुरो! श्रीकृष्णकी जन्मलीलाकी चर्चा करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि

कंस उनकी जननी देवकीके चचेरा भाई हैं, अतएव श्रीकृष्णका मामा है। परन्तु श्रीकृष्ण तो समस्त सद्गुणोंकी खान हैं, फिर भी उन्होंने स्वयं ही सबके सामने मामा कंसका वध किया। मामाका वध करना तो कदापि उचित नहीं है, अतः इसका क्या कारण है? न जाने इस लीलामें भगवान् श्रीकृष्णकी कैसी अपार करुणा छिपी हुई है।”

महाराज परीक्षितने और भी एक प्रश्न किया—“श्रीभगवान्ने नरदेहका आश्रयकर कितने वर्षों तक यादवोंके साथ यदुपुरीमें निवास किया?”—इस प्रश्नसे ऐसा लगता है कि जीव जिस प्रकार अपने कर्मफलके अनुसार मनुष्य, पशु, देवता आदि देह धारणकर अपना कर्मफल भोग करता हुआ उस देहका परित्याग करता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी अपने प्रयोजनके अनुसार मनुष्य, पशु, देवता आदि देह धारणकर यथासम्भव लीला करनेके बाद पुनः उस देहको त्याग देते हैं। परन्तु यहाँ यह अवश्य ही जानना होगा कि जीवके साथ भगवान्के जन्मका पार्थक्य है, अर्थात् जीव अपने कर्मफलसे शरीर धारण करता है और भगवान् स्वेच्छासे शरीर धारण करते हैं।

निराकारवादी और ब्रह्म-सायुज्यकी कामना करनेवाले ही इस सिद्धान्तका अनुसरण करते हैं, किन्तु इसके द्वारा श्रीभगवान्की श्रीमूर्तिको कर्मफलसे प्राप्त जीवकी प्राकृत देहकी भाँति अनित्य स्वीकार करनेपर महा अपराध-समुद्रमें डूबना होगा। श्रीमन्महाप्रभुके साथ श्रीकाशीके अद्वैतवादी वैदान्तिक आचार्य प्रकाशानन्द सरस्वतीका भगवत्तत्त्वके विषयमें विचार-विमर्श हुआ था। उस समय श्रीचैतन्यमहाप्रभुने उनसे कहा था—

प्राकृत करिया माने विष्णुकलेवर।

विष्णु निन्दा आर नाहि इहार ऊपर॥

(श्रीचै० च० आ० ७/११५)

अर्थात् सच्चिदानन्द श्रीभगवान्के शरीरको प्राकृत समझना उनकी निन्दा करना है। यह महा-अपराध है, क्योंकि इससे बढ़कर विष्णुकी और कोई निन्दा नहीं हो सकती है।

निराकारवादके विषयमें भी श्रीमन्महाप्रभुने कहा—

ताँहार विभूति देह,—सब 'चिदाकार'।

चिद्विभूति आच्छादिया कहे 'निराकार' ॥

चिदानन्द—देह, तार स्थान, परिवार।

ताँरे कहे,—प्राकृत सत्त्वेर विकार ॥

(श्रीचै० च० आ० ७/११२-११३)

अर्थात् श्रीभगवान्का देह और उनकी विभूति सभी कुछ सच्चिदानन्द और सर्वसद्गुण सम्पन्न हैं। किन्तु आप उनकी चित्-विभूतिको ढककर उन्हें निराकार बतला रहे हैं। उनके स्थान और परिकरोंका शरीर आदि सभी 'चिदानन्द' हैं। किन्तु, उसे आप प्राकृत सत्त्वगुणका विकार बतला रहे हैं।

श्रीमन्मध्वाचार्यने अपने वेदान्तभाष्यमें वराहपुराणका श्लोक उद्धृत कर दिखाया है—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।

हेयोपादेय रहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥

अर्थात् भगवान्के सभी शरीर नित्य, शाश्वत और हेय-उपादेय रहित सच्चिदानन्द हैं। वे कदापि प्राकृत नहीं हैं।

इस प्रकार अनेकों शास्त्र-प्रमाणोंके द्वारा वैष्णव-आचार्योंने अति सूक्ष्म विचार द्वारा यही स्थापित किया है कि श्रीभगवान्की श्रीमूर्ति जीवके जड़देहकी भाँति नहीं है।

इस श्लोकपर श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीवीरराघवाचार्य, श्रीविजयध्वज तीर्थ आदि वैष्णव-आचार्योंके विचारोंका आश्रय लिये बिना इस श्लोकका तात्पर्य समझा नहीं जा सकता। उनके मतमें श्रीभगवान्का श्रीविग्रह नित्य है। अतः उनकी लीला भी जब जगत्में प्रकाशित होती है, तब मायातीत धाममें स्थित नित्यसिद्ध श्रीमूर्ति ही जगत्में प्रकट होती है। जगत्में लीला करनेके लिए उन्हें जीवकी भाँति देह धारण करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती है।

इसके पश्चात् महाराज श्रीपरीक्षित्ने प्रश्न किया—“श्रीकृष्णकी कितनी पत्नियाँ थीं? पतिभावसे श्रीकृष्णकी सेवाका अधिकार प्राप्त

करनेवाली कितनी सौभाग्यवती रमणियाँ थीं?” विशेषकर श्रीकृष्णकी सभी प्रेयसियाँ श्रीकृष्णकी शक्तियाँ हैं। श्रीकृष्णने इस लीलामें अपनी अनन्त शक्तियोंमेंसे कौन-कौन-सी शक्तियोंको लेकर दाम्पत्यलीलाका सम्पादन किया है। सब जाननेकी इच्छा ही उक्त प्रश्नका अन्यतम उद्देश्य है।

महाराज श्रीपरीक्षितने श्रीकृष्णलीलाका गूढ़ रहस्य जाननेके लिए श्रीशुकदेव गोस्वामीसे इस प्रकारके अनेकों प्रश्न किये तथा अन्तमें यह कहा—“हे गुरो! मैं कृष्णलीलाके विषयमें कुछ भी नहीं जानता हूँ और मुझमें प्रश्न करनेकी योग्यता भी नहीं है। अतएव हे करुणासमुद्र! आप कृपापूर्वक सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करके मुझे अधम-जीवका निस्तार करें॥” ८-१२॥

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।

पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोज-च्युतं हरिकथामृतम्॥ १३॥

अन्वयः—त्वन्मुखाम्भोज-च्युतं (आपके मुखकमलसे निःसृत) हरिकथामृतं (श्रीकृष्णकी कथारूपी अमृतका) पिबन्तं (परम आसक्तिके साथ सेवा अर्थात् पान करनेसे) मां (मेरे द्वारा) त्यक्तोदमपि (जल तकका भी त्याग किये जानेपर भी) एषा (सभीके द्वारा विदित यह) अतिदुःसहा (अत्यन्त असहनीय) क्षुत् (भूख) मां न बाधते (मुझे पीड़ा नहीं देती है)॥ १३॥

अनुवाद—यद्यपि मैंने (प्रायोपवेशन अर्थात् अनशनव्रत द्वारा प्राणत्याग करनेके लिए) जल तकका भी त्याग कर दिया है, तथापि आपके मुखकमलसे झरनेवाली कृष्णलीलाकी अमृतधाराका पान करनेके कारण अत्यन्त असहनीय भूख मेरे श्रवणमें किसी भी प्रकारकी बाधा उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो रही है॥ १३॥

सारार्थदर्शिनी—क्षुधा-तृषा व्याकुलस्त्वं क्षणं विश्राम्येति मावादीरित्याह— नैषेति। या क्षुत् ब्रह्मण्यमपि मां मुनिगले सर्पं न्यधापयदिति भावः। त्यक्तोदं सम्प्रति तु त्यक्तजलमपि। तस्या अपि बाधाभावे हेतुः—पिबन्तमिति। वर्तमाननिर्देशेन क्षणमपि पानविगमे सैव विवेकहारिणी क्षुधा प्रादुर्भविष्यतीति ज्ञापयति। अत्राम्भोजपदेन

कथामृतस्य मधुत्वमारोपितम्। तेन च तस्य मादकत्वमभिव्यज्य स्वस्य मत्तत्वादेव विप्रशापादिसर्वदुःसहदुःखविस्मारकत्वं ध्वनितम्। यद्वा, अमृतपदेन मुखाम्भोजस्य चन्द्रत्वमारोपितम्। तेन मुखस्याम्भोजत्वात्, सौरभ्यं चन्द्रत्वात्—आह्लादकत्वं, सर्वश्रोतृजन-तमोहारित्वं, स्वस्य च चकोरत्वं व्यञ्जितम्। सर्वथैव कथायां गाढासक्तिर्द्योतिता ॥ १३ ॥

भावानुवाद—यदि श्रीशुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षितसे ऐसा कहें कि आप भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे होंगे, अतः कुछ समयके लिए विश्राम कर लो। इसीके उत्तरमें महाराज परीक्षित 'नैष' आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं—हे प्रभो! ऐसे वचन मुझे न कहें। क्योंकि समस्त अनर्थोंकी मूल 'प्यास' है, जिससे पीड़ित होकर ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले मैंने ही मुनिके गलेमें मरा हुआ साँप डाल दिया था। 'त्यक्तोदम्'—अब मेरे द्वारा जल तकका भी परित्याग कर देनेपर वही प्यास मुझे पीड़ा प्रदान नहीं कर रही है। इसका कारण है कि 'पिबन्तम्' अर्थात् मैं आपके मुखकमलसे निकलनेवाले सर्वदुःखहारी श्रीहरिके कथामृतका पान कर रहा हूँ। 'पिबन्तम्' अर्थात् पान कर रहा हूँ—इस वर्तमान कालके निर्देशके द्वारा यह ज्ञापन कर रहे हैं कि यदि क्षणकाल भी हरिकथामृतका पान नहीं करूँ, तब पुनः वही विवेकका हरण करनेवाली भूख प्रकट होगी। यहाँ 'अम्भोज' पदके द्वारा कथामृतकी मधुरता (मादकता) आरोपित हुई है। इसके द्वारा उस कथामृतकी मादकतामें अपनी मत्ततावशतः ही वह विप्रशाप आदि समस्त दुःसहनीय दुःखोंको भूल गये हैं—यह ध्वनित हुआ है। अथवा—'अमृत' पदके द्वारा मुखकमलका चन्द्रके समान होना आरोपित हुआ है। इसके द्वारा मुखके कमल सदृश होनेसे उसकी सौरभ, चन्द्र सदृश होनेसे—उसका आह्लादकत्व (आनन्द प्रदान करना) तथा समस्त श्रोताओंके अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवालेके रूपमें व्यञ्जित होनेके साथ-साथ स्वयंका चकोर होना भी व्यञ्जित हुआ है। इस प्रकार श्रीहरिकथामें श्रीपरीक्षित महाराजकी सर्वथा ही प्रगाढ़ आसक्तिका होना ध्वनित हुआ है ॥ १३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीकृष्णकी लीलाकथाके श्रवणमें जिनकी बलवती लालसा है, ऐसे श्रीपरीक्षित महाराज बहुत-से प्रश्नकर उनका

उत्तर पानेके लिए उत्कण्ठित चातककी भाँति श्रीशुकदेव गोस्वामीकी ओर देखने लगे। अपने प्रश्नोंका उत्तर पानेकी लालसामें राजा परीक्षितको क्षणभर भी युग-युगान्तरके समान प्रतीत होने लगा। इधर परमहंस-चूडामणि श्रीशुकदेव गोस्वामी भी श्रीपरीक्षित महाराजके श्रीकृष्णकथा-विषयक प्रश्नको सुनकर आनन्दसे विभोर होकर अपनी सुध-बुध खो बैठे तथा स्तम्भ, स्वेद आदि सात्त्विक विकारोंसे युक्त होकर जड़वत् हो गये।

महाराज परीक्षित उत्तर सुननेके लिए बहुत व्याकुल थे, अतएव वे श्रीशुकदेव गोस्वामीके इन भावोंको लक्ष्य नहीं कर सके तथा मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—“मैं चार दिनोंसे लगातार श्रीशुकदेव गोस्वामीसे हरिकथा श्रवण कर रहा हूँ। इन चार दिनोंमें भोजन तो बहुत दूर रहे, मैंने जलकी एक बूँद भी ग्रहण नहीं की। इसीलिए श्रीशुकदेव गोस्वामी शायद मुझे भूख-प्याससे व्याकुल समझकर कुछ नहीं बोल रहे हैं।”

ऐसी चिन्ता करके महाराज परीक्षितने श्रीशुकदेव गोस्वामीको कहा—हे गुरो! ये भूख-प्यास ही मेरे जीवनके शत्रु हैं। प्यासके कारण ही मैंने महानुभव ब्राह्मणके गलेमें मृत-सर्प डाल दिया जिस कारणसे मैं महा-अपराधी बन गया हूँ। उसी दिनसे मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं भूखके कारण अन्न और प्यासके कारण जल तक भी ग्रहण नहीं करूँगा, अर्थात् अनशन करूँगा। भूख-प्यासको कोई सहन नहीं कर पाता है। विशेषकर मेरे इस राजभोगके द्वारा पुष्ट कोमल शरीरमें इन्हें सहन करना बड़ा ही कठिन है। परन्तु कैसे आश्चर्यकी बात है कि मुझे बिन्दुमात्र भी कष्ट-अनुभव नहीं हो रहा है। दैहिक-सुखभोगकी बात तो दूर रहे, मैं अपने इस शरीरकी सुधबुध भी भूल चूका हूँ। यह केवल आपके मुखकमलसे निःसृत हरिकथामृत पान करनेका ही फल है।

स्वर्गका अमृत मधुर और मादक होता है, परन्तु इस हरिकथामृतके साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। इस हरिकथामृतकी मधुरताका एकबार भी आस्वादन करनेपर व्यक्तिका चित्त अन्य किसी भी प्रकारके माधुर्यके प्रति आकृष्ट नहीं होगा। स्वर्गके अमृतकी

मादकता कुछ समयके लिए ही है, परन्तु इस हरिकथामृतकी मादकता कभी लुप्त नहीं होती। इस अमृतका पान करनेसे व्यक्ति संसार तकको भूल जाता है, तो फिर देहका विस्मृति होनेमें आश्चर्य ही क्या है?

इस हरिकथामृतकी ऐसी ही शक्ति है और फिर यदि आपके मुखकमलरूपी पात्रसे यह अमृत परिवेशित (वितरण) हो, तब तो यह अमृत और भी अधिक शक्तिका विकास करनेमें समर्थ होगा। महाराज परीक्षित्के इस वचनसे वैष्णव-चूड़ामणिके मुखसे ही हरिकथामृत श्रवण करनेका माहात्म्य समझा जाता है। श्रीमन्महाप्रभुने भी कहा है—“जाह भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने।” (श्रीचै० च० अन्त्य ५/१३१) अर्थात् यदि श्रीमद्भागवतका यथार्थ तात्पर्य समझनेकी अभिलाषा है, तो शुद्ध वैष्णव महाभागवतोंसे ही भागवत शास्त्र सीखना आवश्यक है। श्रीजीव गोस्वामीने श्रीभक्तिसन्दर्भमें श्रवणाङ्गके विचारके प्रसङ्गमें सिद्धान्त दिया है—“श्रीभगवान्के नाम, रूप, लीलादिका श्रवण ही जीवके परम मङ्गलका हेतु है, वह फिर महत् अर्थात् श्रीभगवद्भक्तोंके द्वारा कीर्तित होनेपर अत्यधिक फलदायक होता है।”

इस श्लोकके ‘त्वन्मुखाम्भोजच्युतम्’ अंशको देखनेसे ऐसा लगता है—‘अम्भोज’ शब्दका अर्थ है कमल, परन्तु कमलसे अमृत कैसे निकलेगा? इसके उत्तरमें श्रीसनातन गोस्वामीपादने कहा है—श्रीशुकदेवके मुखकमलसे अमृत निकलता है, अतः यह ‘अम्भोज’ प्राकृत नहीं है—यह अप्राकृत, अलौकिक और असाधारण कमल है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपादने भी यही कहा है—अम्भोज और अमृत—इन दोनों शब्दोंसे असीम माधुर्य प्रकाशित होता है। ‘अम्भोज’ पदसे कथामृतकी मधुरता—मादकता प्रकाशित होती है और ‘अमृत’ पदसे मुखकमलका चन्द्रधर्म—आनन्द प्रदाता भी जाना जाता है। अतएव दोनों शब्दोंसे एक-दूसरेका माधुर्य वर्द्धित हुआ है।

श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे आग्रह करते हुए कहा कि हे गुरो! आप काल विलम्ब न करें, मुझे शीघ्र ही हरिकथामृतका पान कराइये। यद्यपि मैं मृत्युका सङ्कल्प लेकर यहाँ

अनशनपर बैठा हूँ, फिर भी हरिकथाके लिए जीवन धारण कर रहा हूँ। अतः आप मुझे हरिकथा सुनाकर कृतार्थ करें ॥ १३ ॥

सूत उवाच—

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं
वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं
व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥

अन्वयः—भृगुनन्दन (हे शौनकजी!) अथ (परीक्षित्के प्रश्न करनेपर) सः (सर्वलोक प्रसिद्ध) भगवान् (सर्वज्ञ-शिरोमणि) भागवत-प्रधान (श्रीभगवद्भक्त चूड़ामणि) वैयासकिः (व्यासनन्दन श्रीशुकदेव) एवं (पूर्वोक्त) साधुवादं (परीक्षित्के समुचित प्रश्नोंको) निशम्य (श्रवणकर) विष्णुरातं (उन राजा परीक्षित्को) प्रत्यर्च्य (विविध प्रकारसे प्रशंसा आदि द्वारा सम्मानितकर) कलिकल्मषघ्नं (कलिके दोषोंका हरण करनेवाली) कृष्णचरितं (श्रीकृष्णकी लीलाकथाको) व्याहर्तुं (कीर्तन करना) आरभत (प्रारम्भ किया) ॥ १४ ॥

अनुवाद—श्रीसूत गोस्वामीने कहा—हे भृगुनन्दन शौनक! अनन्तर परमपूज्य महाभागवत सर्वज्ञ-शिरोमणि व्यासनन्दन श्रील शुकदेवने श्रीपरीक्षित् महाराजके इन अति उपयुक्त और युक्तिपूर्ण प्रश्नोंको श्रवण करके उन्हें साधुवाद प्रदान करते हुए उनका सम्मान किया एवं कलिके कल्मषको नाश करनेवाली श्रीहरिकी लीलाकथाको कहना प्रारम्भ कर दिया ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शनी—हे भृगुनन्दन शौनक। कलौ जनिष्यमाणानामपि कल्मषं संसारदुःखं हन्तीति तत्। यद्वा, कलिरूपं कल्मषं हन्तीति विष्णुरातविशेषणमपि। भागवतेषु प्रधान इति पुंस्त्वमार्षम्। यद्वा, भागवता एव मान्यत्वेन प्रधानानि यस्य सः ॥ १४ ॥

भावानुवाद—‘भृगुनन्दन’—हे शौनक! ‘कलिकल्मषघ्नम्’—भविष्यकालमें कलियुगमें जन्म लेनेवालोंके भी ‘कल्मष’—संसार दुःखको नाश करनेवाली श्रीकृष्णकी लीलाकथा। अथवा, जिन्होंने कलिरूप कल्मषको

नाश किया था, अतः 'कलिकल्मषघ्नम्'—उन विष्णुरात अर्थात् महाराज परीक्षित्का भी यह विशेषण है। 'भागवतप्रधानः' अर्थात् भागवतोंमें प्रधान श्रीशुकदेव गोस्वामी। अथवा, जिनके लिए भागवत-जन ही मान्य अर्थात् प्रधान हैं, वे 'भागवतप्रधान' श्रीशुकदेव गोस्वामी ॥ १४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—महाराज श्रीपरीक्षित्ने श्रीकृष्णकी लीला-कथाको सुननेके लिए श्रीशुकदेव गोस्वामीके समक्ष जिन-जिन प्रश्नोंको किया था, श्रीसूत गोस्वामीके मुखसे उन्हें सुनकर शौनक आदि ऋषि भावाविष्ट हो गये। यह देखकर श्रीसूत गोस्वामीने उच्चस्वरसे कहा—हे भृगुनन्दन! हे शौनकादि ऋषियो! आप इन प्रश्नोंको सुनकर ही सुध-बुध खो बैठे हैं, तो फिर इन प्रश्नोंके उत्तर सुनकर आपकी क्या अवस्था होगी—यह मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।

यहाँ श्रीसूत गोस्वामीने श्रीशौनकादि ऋषियोंको 'हे भृगुनन्दन!' कहकर जो सम्बोधित किया है, वह हृदयमें प्रकृष्ट रूपसे आनन्दके उदय होनेके कारण ही किया है।

श्रीसूत गोस्वामीने शौनक ऋषिको 'भृगुनन्दन' कहकर सम्बोधित किया है—इससे श्रीभगवान्का भक्तवात्सल्य गुण प्रकाशित होता है, क्योंकि श्रीशौनक ऋषि भृगुमुनिके वंशके हैं (भृगुवंशके शुनकके पुत्र शौनक हैं)। भगवान्के भक्तवात्सल्य गुणको भृगुमुनि भलीभाँति जानते हैं। श्रीभगवान्ने उनके पद-चिह्नको अपने वक्षःस्थलपर धारण किया है। हे शौनक! आप उन्हींके वंशज हैं, इसलिए आप पूर्वजोंके सम्पदके अधिकारी हैं। उन भक्तवत्सल श्रीभगवान्की लीलाकथा-विषयक प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेव गोस्वामीने क्या किया तथा क्या उत्तर दिया—यह भी आप एकाग्रचित्तसे श्रवण करें।

श्रीसूत गोस्वामीने नैमिषारण्यवासी ऋषियोंको कहा—हे ऋषियो! भागवत-प्रधान भगवान् वैयासकि (श्रीशुकदेव) ने श्रीपरीक्षित् महाराजसे पूर्वोक्त साधुवाद सुनकर 'विष्णुरात'—महाराज परीक्षित्को धन्यवाद देते हुए कलिकल्मष-विनाशकारी श्रीकृष्णचरित कहना प्रारम्भ किया।

इस श्लोकमें श्रीसूत गोस्वामीने अपने गुरुदेव श्रीशुकदेव गोस्वामीका परिचय तीन विशेषणोंके द्वारा दिया है—भागवत-प्रधान, भगवान् और वैयासकि।

भागवत-प्रधान—भागवत अर्थात् भक्तिरस श्रीमद्भागवत शास्त्र ही जिनका प्रधान आश्रय है, अथवा भगवद्भक्तोंमें जो प्रधान हैं, वे भागवत-प्रधान। श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णन है—

एक भागवत हय—भक्तिरस शास्त्र।

आर भागवत हय—भक्तिरस पात्र॥

(श्रीचै० च० आ० १/९९)

अर्थात् एक भागवत है 'श्रीमद्भागवतम्' नामक भक्तिरस-शास्त्र तथा और एक भागवत हैं भक्तिरसके पात्र-स्वरूप भक्तश्रेष्ठ।

परमहंस-चूडामणि श्रीशुकदेव गोस्वामीमें ये दोनों ही अर्थ सङ्गत होते हैं। श्रीशुकदेवने अपने जन्मसे श्रीमद्भागवतके अतिरिक्त न तो किसी दूसरे शास्त्रका श्रवण किया और न ही कीर्तन किया है। अतः श्रीकृष्णलीला-वर्णनका ग्रन्थ श्रीमद्भागवत ही उनका प्रधान लक्ष्य है। श्रीशुकदेव गोस्वामी जन्मसे ही संसारसे विरक्त और तत्त्वध्यानमें निरत थे। उनके चिन्तनमें भागवतके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था।

श्रीमद्भागवतके एकादश-स्कन्ध (श्रीमद्भा० ११/२/५५) में कहा गया है—

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्भरिवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।

प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥

अर्थात् जिन श्रीहरिका नाम उच्चारण करनेमात्रसे संसारकी ज्वालामें जलते हुए व्यक्तिके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं, ऐसे सर्वपापहारी और सर्वमनोहर श्रीहरिके चरणकमलोंके साथ जिनका हृदय प्रणय-सूत्रमें बँध गया है, वे व्यक्ति ही भागवत-प्रधान हैं।

'भगवान्'—विश्वके मूल कारण सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीभगवान्में 'भग' अर्थात् ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये छह प्रकारके ऐश्वर्य विराजमान हैं, इसलिए वे भगवान् हैं। शास्त्रोंमें किसी-किसी स्थानपर व्यासदेव, शुकदेव आदि ऋषियोंके विश्वनियन्ता

न होनेपर भी उनको भगवान् कहा है। इसका कारण अनुसन्धान करनेपर श्रीविष्णु-पुराणमें देखा जाता है—

उत्पत्तिं प्रलयश्चैव भूतानामगतिं गतिम्।

वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति॥

अर्थात् जगत्की उत्पत्ति और प्रलय, जीवकी गति और अगति (अर्थात् अपने-अपने कर्मोंके द्वारा वे कहाँसे आ रहे हैं और कहाँ जायेंगे) तथा भवरोगकी महौषधि-स्वरूप विद्या (तत्त्वज्ञान) एवं भवरोगके मूलकारण अविद्या—इन छह तत्त्वोंको जो जानते हैं, उन्हें भी 'भगवान्' कहा जाता है।

श्रीव्यास, शुक आदि इन छह तत्त्वोंमें अभिज्ञ हैं, अतएव विश्वनियन्ता भगवान् न होनेपर भी तत्त्वज्ञरूपमें शास्त्रोंमें उन्हें भगवान् शब्दसे अभिहित किया गया है।

श्रीमद्भागवतके नवम-स्कन्ध (९/४/६८) में विश्वनियन्ता भगवान्ने स्वयं कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयन्त्वहम्।

मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

अर्थात् मेरे भक्त-चूड़ामणि-स्वरूप साधु ही मेरे हृदय हैं एवं मैं भी उनका हृदय हूँ। वे मेरे बिना किसीको नहीं जानते और मैं भी उनके बिना किसीको नहीं जानता हूँ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् अपने भक्तोंको अपनेसे पृथक् नहीं समझते। विशेषकर भक्तोंको किस प्रकारसे सम्मान देना चाहिये, इसे वे भलीभाँति जानते हैं। इसलिए भगवान्ने कहा है—'स च पूज्यो यथा ह्यहम्' (श्रीहरिभक्तिविलास १०/१२७) अर्थात् 'मेरे भक्त मेरे जैसे ही पूजनीय हैं।' इसलिए भगवान्के आदेशसे शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर भगवान्के साथ अभेदरूपमें भक्तोंको भी भगवान् कहा गया है।

'वैयासकि'—इस श्लोकमें श्रीशुकदेव गोस्वामीका नाम उल्लेख न करते हुए 'वैयासकि' अर्थात् व्यासनन्दन कहकर उनका परिचय दिया गया है। इससे श्रीशुकदेवकी श्रीकृष्णलीलाकथाका वर्णन करनेकी

शक्तिका परिचय मिलता है। उनके पिता श्रीव्यासदेवने वेदके तत्त्वसे अवगत होकर उसे चार भागोंमें विभक्त किया, इसलिए उनका नाम 'वेदव्यास' हुआ है एवं श्रीशुकदेव उन्हींके पुत्र हैं, अतः वे पितृ-सम्पत्तिके अधिकारी हैं। वेदोंके अर्थोंको जाननेवाले श्रीव्यासदेवकी तपस्याके फल-स्वरूप, जन्मसे ही संसारसे विरक्त और तत्त्वज्ञानी श्रीशुकदेव उनके पुत्ररूपमें प्रकट हुए, इसलिए वेद-गोप्य श्रीकृष्ण-लीलाकथा कहनेकी शक्ति श्रीशुकदेवमें ही सम्भव है। इसलिए 'वैयासकि' शब्दकी ऐसी प्रसिद्धि है।

श्रीसूत गोस्वामीने श्रीपरीक्षित्को 'विष्णुरात' कहा है। 'विष्णुरात'—महाराज परीक्षित्जीका दूसरा नाम है। श्रीमद्भागवतके प्रथम-स्कन्धमें देखा जाता है कि श्रीपरीक्षित्के जन्मके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरके द्वारा बुलानेपर दैवज्ञ ब्राह्मणोंने आकर नवजात बालकको देखकर कहा (श्रीमद्भा० १/१२/१६-१७)—

रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना।

तस्मात्रामा विष्णुरात इति लोके भविष्यति॥

अर्थात् सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जगत्के प्रति कृपा-परवश होकर यह बालक आपको दान किया है। इसलिए विष्णुके द्वारा 'रात' अर्थात् प्रदत्त होनेसे इस बालकका नाम 'विष्णुरात' होगा।

इससे यह स्पष्ट रूपसे समझा जाता है कि श्रीभगवान्ने किसलिए अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे परीक्षित्की रक्षाकर उन्हें युधिष्ठिरको दान किया। यदि महाराज परीक्षित्की रक्षा नहीं होती, तो कौन इतने आग्रहके साथ भगवान्की लीलाकथाओंको सुनता और जगत्में परम पावनी हरिकथा कैसे प्रकाशित होती? श्रीकृष्णलीलाकथाके प्रकाशका उपयुक्त पात्र जानकर ही श्रीकृष्णने मातृगर्भमें परीक्षित्की रक्षा की थी।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने विष्णुरात—श्रीपरीक्षित्को साधुवाद प्रदान करते हुए 'कलिकल्मषघ्नं कृष्णचरितम्' अर्थात् कलिकालके कल्मषको नाश करनेवाली श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंका वर्णन करना प्रारम्भ किया। 'कृष्ण' नामसे ही समझा जाता है कि वे स्वरूपतः सर्व-चित्ताकर्षक हैं तथा परमानन्दघन-विग्रह हैं। उनका चरित्र अर्थात्

उनकी लीला सभीके चित्तको आकर्षित करेगी, इसमें कहना ही क्या है। कृष्णनामसे समस्त पाप दूर हो जाते हैं, विशेषकर कलि-कलह भी समाप्त हो जाता है।

और भी 'कलिकल्मषघ्न'—यह महाराज परीक्षित्का भी विशेषण है—जिन्होंने कलिके प्रचण्ड वेगका दमन किया था।

इस प्रकार श्रीशुकदेव गोस्वामीने कलिनिग्रहकारी महाराज परीक्षित्के समक्ष श्रीकृष्णचरितका वर्णन करना प्रारम्भ किया ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच—

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम।

वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥

अन्वयः—[हे] राजर्षिसत्तम (राजर्षियोंमें श्रेष्ठ!) यत् (क्योंकि) ते (तुम्हारी) वासुदेवकथायाम् (श्रीकृष्णकी लीलाकथाके श्रवणमें) नैष्ठिकी (परम श्रेष्ठताको प्राप्त) रतिः (भावभक्तिः) जाता (उत्पन्न हुयी है) [इसलिए] तव बुद्धिः (तुम्हारी बुद्धि) सम्यक् व्यवसिता (सम्पूर्ण रूपसे श्रीकृष्णकथाके श्रवणमें निश्चयात्मिका हो चुकी है) ॥ १५ ॥

अनुवाद—श्रील शुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ! आपकी बुद्धि भलीभाँति स्थिर हो गयी है अर्थात् उपयुक्त विषयमें ही प्रवृत्त हुई है। इसका कारण है कि श्रीवासुदेवकी कथाके श्रवणमें आपकी निश्चयात्मिका अर्थात् गाढ़-रति (भावभक्ति) उदित हुई है ॥ १५ ॥

सारार्थदर्शनी—सम्यग्व्यवसिता सम्यङ्निश्चया, यद्यतो बुद्धेः। राजर्षि-सत्तमेति—भो महामानद! मुनिसत्तमेति त्वया सम्बोधितान्मत्तोऽपि त्वयि राजत्वमधिकमस्तीति ज्ञापयति। श्लेषेण तु राजदण्डादित्वात्, त्वमृषीणां सत्तमानां च राजा; श्रीकृष्णप्रियतमत्वादेव, यतो जन्ममरणकालयोर्ब्रह्मतेजोऽपि व्यर्थो—करोषीत्यर्थमप्यन्तरुपचिक्षेप ॥ १५ ॥

भावानुवाद—'सम्यग् व्यवसिता'—आपकी बुद्धि सम्पूर्ण रूपसे स्थिर अर्थात् दृढ़निश्चय हो गयी है, क्योंकि श्रीवासुदेवकी कथाके

श्रवणमें आपकी नैष्ठिकी-रति अर्थात् प्रगाढ़-आसक्ति उत्पन्न हुई है। 'राजर्षिसत्तम'—इस सम्बोधनसे यह ज्ञापित हुआ कि हे महामानद (दूसरेको महान मान देनेवाले)! यद्यपि आपने मुझे 'मुनिसत्तम' कहकर सम्बोधित किया है, परन्तु मुझसे भी अधिक श्रेष्ठता तो आपमें है। अर्थात् मैं तो केवल ऋषिसत्तम हूँ, परन्तु आप तो राजर्षिसत्तम हैं। किन्तु, श्लेषमें—आप राजदण्ड आदि देनेवाले होनेके कारण राजा हैं तथा भगवान् श्रीकृष्णके प्रियतम होनेके कारण ही आप ऋषियों और साधुओंके राजा हैं। इसका कारण है कि जन्म और मृत्यु दोनों कालोंमें ही आपने ब्रह्मतेजको भी व्यर्थ कर दिया है—ऐसा अर्थ भी प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि।

वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥

अन्वयः—तत्पादसलिलं यथा (भगवान् श्रीवासुदेवके चरणोदक— गङ्गाकी भाँति) वासुदेवकथाप्रश्नः (श्रीकृष्णकथाकी जिज्ञासा भी) वक्तारं (प्रश्नका उत्तर देनेवालेके रूपमें निर्द्धारित व्यक्तिको) प्रच्छकं (प्रश्नकर्त्ताको) श्रोतृन् (श्रवणके इच्छुक व्यक्तियोंको) पुरुषांस्त्रीन् हि (तीनों प्रकारके व्यक्तियोंको ही) पुनाति (विषयोंके आवेशरूपी मलसे शोधन करती है) ॥ १६ ॥

अनुवाद—भगवान् श्रीविष्णुके श्रीचरणकमलोंसे निकली गङ्गा अथवा श्रीविष्णुका चरणामृत जिस प्रकारसे ऊर्ध्व, मध्य एवं अधः लोकों (त्रिभुवन) को ही पवित्र करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीवासुदेवके चरित्र-विषयक प्रश्न—वक्ता (प्रश्नका उत्तर देनेवाले), प्रश्नकर्त्ता और श्रोता—इन तीनोंको ही पवित्र करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

सारार्थदर्शिनी—तत्पादसलिलं श्रीशालग्रामादिचरणामृतम्। त्रीन् पुरुषान्—सेत्तारं, सिच्यमानं, तदुभयसङ्गिनश्च पुरुषान्। यद्वा, गङ्गा यथा त्रीन् ऊर्ध्वमध्याधोलोकान् पुनाति, तथैव वक्त्रादीन् त्रीन् पुरुषान्; यथापूर्वं श्रैष्ठ्यम् ॥ १६ ॥

भावानुवाद—‘तत्पादसलिलम्’—श्रीशालग्राम आदिका चरणामृत, ‘त्रीन् पुरुषान्’—जो पिलाता है, जो पीता है तथा जो इन दोनोंका सङ्ग करता है—इन तीनों प्रकारके व्यक्तियोंको पवित्र करता है। अथवा, श्रीवासुदेवके चरणकमलोंसे उदित गङ्गा जिस प्रकार ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग), मध्यलोक (मर्त्यलोक), अधोलोक (पाताल)—इन तीनों लोकोंको पवित्र करती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीवासुदेवके चरित्र-विषयक प्रश्न भी वक्ता, प्रश्नकर्त्ता और श्रोता—इन तीनों प्रकारके व्यक्तियोंको पवित्र करते हैं। यहाँ यथापूर्व श्रेष्ठता सूचित हुई है अर्थात् श्रोतासे प्रश्नकर्त्ता श्रेष्ठ है तथा प्रश्नकर्त्तासे वक्ता श्रेष्ठ है॥ १६॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वक्ता और श्रोता दोनोंका एक-दूसरेके प्रति प्रीतियुक्त होनेपर तथा एक दूसरेके गुणोंसे आकृष्ट होनेपर वक्तव्य विषयका रसास्वादन होता है। महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेव गोस्वामीके गुणोंसे आकृष्ट होकर उनकी महिमा प्रकाशकर प्रश्न किया और उसी प्रकार श्रीशुकदेव गोस्वामीने भी परीक्षित्के गुणोंसे आकृष्ट होकर उन्हें धन्यवाद दिया। तदनन्तर दोनोंने श्रीकृष्णलीलाकथाका रसास्वादन किया।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने महाराज परीक्षित्से कहा—हे राजर्षिसत्तम! जब आपका श्रीकृष्णकी लीलाकथा सुननेके लिए इतना आग्रह है, तब तो आपकी बुद्धि निश्चित ही व्यवसित हुई है अर्थात् कर्त्तव्य निर्णयमें समर्थ हुई है। श्रीगीता (२/४१) में भी भगवान्ने अर्जुनको कहा है—“हे अर्जुन! व्यवसायात्मिका बुद्धि एकनिष्ठ होती है और अव्यवस्थित व्यक्तियोंकी बुद्धि विचलित रहती है।” इससे यह समझा जाता है कि जागतिक बुद्धि अव्यवसित और परतत्त्वनिष्ठ बुद्धि व्यवसित है।

महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेव गोस्वामीको ‘मुनिसत्तम’ कहकर सम्बोधन किया था। श्रीशुकदेव गोस्वामी भी अब परीक्षित् महाराजके प्रश्नोंके उत्तर देनेके प्रसङ्गमें उन्हें ‘राजर्षिसत्तम’ कह रहे हैं। इससे उनका वक्तव्य यह है कि भरत आदि राजा राजर्षि थे, परन्तु आप राजर्षिसत्तम अर्थात् उन राजर्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। राजाओंमें जो

साधन-अनुष्ठानके द्वारा सिद्धि लाभ करते हैं, वे राजर्षि हैं। राजर्षियोंमें जो कृष्णभक्त हैं—वे सत् हैं, जो कृष्णमें अनुरक्त हैं—वे सत्तर हैं और जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंके प्रति प्रेमसे युक्त हैं—वे सत्तम हैं।

श्रीशुकदेव गोस्वामीका महाराज परीक्षितको इस प्रकार सम्बोधन करनेका अभिप्राय यह है कि आपके वचनके अनुसार मेरे मुनिसत्तम होनेपर भी आप मुझसे भी श्रेष्ठ हैं। इसका कारण है कि आप ऋषिसत्तम होनेपर मेरे समान होते, परन्तु आपके पास राजत्व अधिक है—इसलिए आप राजर्षिसत्तम हैं।

महाराज परीक्षितकी बुद्धि भगवान् 'श्रीवासुदेव' में स्थिर हो गयी है। जो अपने असीम ऐश्वर्य-माधुर्यको प्रकाशकर जगत्को कृतार्थ करनेके लिए श्रीवसुदेवके घरमें अवतीर्ण हुए हैं—वे 'वासुदेव' हैं। उन श्रीवासुदेवकी ऐश्वर्य-माधुर्यमयी-लीलामें आपकी प्रगाढ़ आसक्ति है एवं उनकी लीलाकथा ही आपके जीवनका सार और आधार है, इसलिए आपकी बुद्धि निश्चल (स्थिर) हो गयी है।

श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें-स्कन्ध (११/२/१२) में कहा गया है—

श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः।

सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि॥

अर्थात् श्रीभगवद्भक्तोंके द्वारा आचरित श्रवण-कीर्तन आदिरूप धर्मके श्रवण, कीर्तन, ध्यान, आदर और अनुमोदनसे देवद्रोही और विश्वद्रोही व्यक्ति भी तत्क्षण पवित्र हो जाते हैं।

अतएव हे महाराज! आप धन्य हैं एवं आपके कारण मैं भी धन्य हो जाऊँगा ॥ १५-१६ ॥

भूमिर्दृप्तनृपव्याज-दैत्यानीकशतायुतैः ।

आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥

अन्वयः—भूमिः (पृथिवी देवी) दृप्तनृपव्याज-दैत्यानीक-शतायुतैः (महा-अभिमानसे गर्वित होकर कुमार्गमें चलनेवाले राजाओंके वेशमें दैत्य-दानवों तथा उनकी असंख्य सेनाओंके) भूरिभारेण (अत्यन्त

उत्पीड़नसे) आक्रान्त (पीड़ित होकर) ब्रह्माणं (सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीके) शरणं ययौ (शरणमें गयी) ॥ १७ ॥

अनुवाद—अभिमानी कपटी-राजाओंका रूप धारण करनेवाले दैत्यों और उनकी असंख्य सेनाओंके अत्यधिक भारसे पीड़ित होकर पृथ्वीदेवी ब्रह्माजीके शरणागत हुई ॥ १७ ॥

सारार्थदर्शिनी—तत्र तावद्भगवदवतारे प्रसिद्धं कारणमाह—भूमिरिति। दृप्त-नृपव्याजाः दितिवंशत्वाभावेऽपि कर्मणैव ये दैत्याः, तेषामनीकशतानामयुतैर्यो भूरिभारस्तेनाक्रान्ता। ब्रह्माणं सुमेरुमूर्ध्वस्थितमेव, न तु सत्यलोकस्थम्। कृष्णावतारादिति-पूर्वमेव ककुब्जिना रेवत्याः कन्यायाः सम्प्रदानप्रश्नार्थं तत्र गतवता, तेन सहित एव क्षणानन्तरं ब्रह्मा तं प्रत्याह—‘सम्प्रत्यवतीर्णाय बलदेवाय कन्या दीयताम्’ इत्यतस्तस्य तन्मध्ये क्षीरोदतीरागमनं न वृत्तम्। ‘जगाम धरणी मेरोः समाजे त्रिदिवौकसाम्’ इति पराशरेणाप्युक्तम् ॥ १७ ॥

भावानुवाद—अब ‘भूमि’ आदि श्लोकके द्वारा भगवान्‌के अवतरित होनेके प्रसिद्ध कारणका वर्णन कर रहे हैं। ‘दृप्तनृपव्याजदैत्या’—गर्वित राजाओंके छलमें जो दैत्य हैं अर्थात् वस्तुतः दितिके वंशमें उत्पन्न न होनेपर भी जो कर्मोंके द्वारा दैत्य हैं, उन असुर-राजाओं तथा उनकी असंख्य सेनाओंके अत्यधिक भारसे उत्पीड़ित होकर पृथ्वीदेवी ब्रह्माके शरणागत हुई। पृथ्वीदेवी सुमेरुके ऊपरि भागमें अवस्थित श्रीब्रह्माके निकट ही गयी थी, किन्तु सत्यलोकमें निवास करनेवाले ब्रह्माके निकट नहीं। इसका कारण यह है कि श्रीकृष्ण-अवतारसे बहुत पहले कुकुब्जी नामक राजा अपनी रेवती नामक कन्याको किसके हाथोंमें समर्पित करें—यह पूछनेके लिए सत्यलोकमें निवास करनेवाले श्रीब्रह्माके पास गये थे। उस समय ब्रह्मलोकमें गन्धर्व-अप्सराओं आदिके नृत्य, गीत और वाद्यका महोत्सव चल रहा था। अतः ब्रह्माजीके व्यस्त रहनेके कारण वे मिलनेके लिए क्षणभरके लिए वहीं पर ठहर गये। इतनेमें पृथ्वीलोकमें सत्ताइस चर्तुयुग बीत गये। क्षणभरके बाद श्रीब्रह्माजीसे पूछनेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—इस समय पृथ्वीपर अवतीर्ण श्रीबलदेवको अपनी कन्या दान करो।

अतएव उसके बीचके समयमें श्रीब्रह्माका क्षीरसमुद्रके तटपर जानेका वर्णन नहीं हुआ। महर्षि पराशरने भी कहा है—“धरणीदेवी

मेरुके ऊपरि भागमें देवताओंके समाजमें (अर्थात् ब्रह्माके निकट) गयी थीं ॥ १७ ॥

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः।

उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं समवोचत ॥ १८ ॥

अन्वयः—[उन पृथ्वी देवीने] गौः भूत्वा (ब्रह्माजीकी कृपा प्राप्त करनेके लिए गायका रूप धारण किया) [तथा] अश्रुमुखी (आँसुओंसे पूर्ण मुखसे) खिन्ना (कातर होकर) करुणं क्रन्दन्ती (करुण स्वरसे रोती हुई) विभोः (ब्रह्माजीके) अन्तिके (निकटमें) उपस्थिता (उपस्थित होकर) तस्मै (ब्रह्माजीके समक्ष) स्वं (अपना) व्यसनं (दुःख) अवोचत (निवेदन किया) ॥ १८ ॥

अनुवाद—दुःखसे कातर पृथ्वीदेव गायका रूप धारण करके करुण स्वरसे क्रन्दन करते-करते अश्रुपूर्ण मुखसे श्रीब्रह्माके समीप उपस्थित हुई तथा उन्हें अपने दुर्भाग्यकी समस्त बात कह सुनायी ॥ १८ ॥

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह।

जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

अन्वयः—ब्रह्मा तदुपधार्य (ब्रह्माजीने पृथ्वीके दुःखका वृत्तान्त सुनकर) अथ (तत्पश्चात् ही) देवैः सह (इन्द्रादि देवताओंके साथ) तया सह (पृथ्वीके साथ) [और] सत्रिनयनः (श्रीशङ्करके साथ) क्षीर पयोनिधेः (क्षीर सागरके) तीरं (तटपर) जगाम (गमन किया) ॥ १९ ॥

अनुवाद—पृथ्वीके कष्टका वृत्तान्त सुननेके उपरान्त ही श्रीब्रह्मा उसे अपने साथ लेकर त्रिलोचन शिव एवं अन्यान्य देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदुपधार्य अथ जगामेत्यथशब्दाधिकादिदं लभ्यते—विश्व-सृष्टिरेव मत्कर्म, पालनं तु विष्णोरेव कर्म। स च विष्णुः क्षीराब्धिस्थ इति तत्रैव गत्वेदं निवेदनीयमिति परामर्शः, ततो जगामेति। तत्र कार्यद्वयमुपस्थितं—पृथ्वीपालनं, दैत्यसंहरणञ्च। तत्र प्रथमार्थं देवेन्द्रं वा आज्ञापयेत्, द्वितीयार्थं रुद्रं वेति देवसाहित्यं त्रिनयनसाहित्यञ्च कृतम् ॥ १९ ॥

भावानुवाद—इस प्रकार पृथ्वीदेवीका दुःख सुननेके ‘अथ’ अर्थात् पश्चात् ब्रह्माजीने देवताओंके साथ प्रस्थान किया। यहाँ ‘अथ अर्थात् पश्चात्’—इस अधिक शब्दके प्रयोगसे यह अर्थ प्राप्त होता है कि श्रीब्रह्माने मन-ही-मन विचार किया—“विश्वकी सृष्टि करना मेरा कार्य है, किन्तु विश्वका पालन करना विष्णुका कार्य है। विश्वके पालनकर्त्ता भगवान् विष्णु क्षीरसागरमें वास करते हैं, अतएव वहीं जाकर उन्हें निवेदन करना ही उचित है।” ऐसा विचार करनेके बाद श्रीब्रह्मा देवताओं और पृथ्वीके साथ क्षीरसागरके तटपर गये।

श्रीब्रह्माने यह भी विचार किया कि इस समय दो कार्य उपस्थित हुए हैं—(१) पृथ्वीका पालन और (२) दैत्योंका संहार। भगवान् श्रीविष्णु इनमेंसे प्रथम कार्यके लिए देवराज इन्द्रको आज्ञा दे सकते हैं एवं द्वितीय कार्यके लिए श्रीरुद्रको आदेश दे सकते हैं। इसलिए श्रीब्रह्मा इन्द्रादि देवताओंके साथ त्रिलोचन महादेवको भी साथमें लेकर क्षीरसागरके तटपर गये॥ १९॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्।

पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः॥ २० ॥

अन्वयः—तत्र (क्षीरसागरके तटपर) गत्वा (उपस्थित होकर) [ब्रह्माजी] समाहितः (भगवान्के चरणोंमें एकाग्रचित्त होकर) जगन्नाथं (जगत्के पालक) देवदेवं (देवताओंके भी परमपूज्य) वृषाकपिं (शरणागतजनोंके दुःखको निवारणकर उनके मनोरथ पूर्ण करनेवाले) पुरुषं (श्रीभगवान्को) पुरुषसूक्तेन (‘पुरुषसूक्त’ नामक वैदिक स्तोत्रके द्वारा) उपतस्थे (भक्तिपूर्वक आराधना करने लगे)॥ २० ॥

अनुवाद—श्रीब्रह्माने क्षीरसागरके तटपर उपस्थित होकर स्थिर-चित्तसे जगत्-पालक, देवताओंके भी पूज्य, शरणागतजनोंके विघ्न-विनाशक एवं समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले क्षीरोदकशायी पुरुषावतारकी पुरुषसूक्त-स्तवके द्वारा उपासना करने लगे॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—जगन्नथमिति, तत्र गमने न्यायः। देवदेवमिति, स्वेषां विज्ञापने चाधिकारः। वृषाकपिमिति, वर्षति कामान् आकम्पयति क्लेशानिति प्रयोजनञ्चोक्तम्॥ २० ॥

भावानुवाद—भगवान् श्रीहरि 'जगन्नाथ' हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करते हैं, अतएव उनके पास जाना ही न्यायसङ्गत है। वे 'देवदेवम्' अर्थात् देवताओंके भी देवता हैं, अतएव उनके पास जाकर उन्हें इस विषयसे अवगत करानेका हम देवताओंको अधिकार है। भगवान् श्रीहरि 'वृषाकपिम्' हैं, अर्थात् सबकी मनोवाञ्छाको पूर्ण करते हैं एवं सबके क्लेशोंका हरण करते हैं। इसके द्वारा श्रीब्रह्माके उनके पास जानेका प्रयोजन भी कहा गया ॥ २० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—महाराज परीक्षितके प्रश्नके अनुसार परमहंस शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्णलीलाकथाके वर्णनके प्रारम्भमें प्रथमतः श्रीकृष्ण-अवतारसे पहले जगत्की कैसी अवस्था थी, जगत्की उस शोचनीय-दशामें जगत्-वासी भक्तोंकी कैसी दशा हुई थी एवं उसे परिवर्तन करनेके लिए ब्रह्मा आदि देवताओंने क्या-क्या उपाय किये तथा उन उपायोंके द्वारा भगवान् किस धामसे किस मूर्तिमें अवतीर्ण हुए—ये सभी वृत्तान्त कहने लगे।

द्वापरके अन्तिम कालमें पृथ्वीपर असुर-स्वभाववाले राजाओं तथा उनकी सेनाओंने केवलमात्र दूसरोंके राज्योंको लूटना, परपीड़न, धार्मिकजनोंपर अत्याचार, अधर्मका प्रश्रय, तुच्छ स्वार्थके लिए दूसरोंको पीड़ित करना आदिको ही अपने जीवनका व्रत बना लिया था। इस प्रकार अधर्म बढ़ने लगा और धर्मका हास होने लगा। उस समय पृथ्वीदेवी इन समस्त भगवत्-भजनके गन्धसे रहित स्वार्थमें अन्धे व्यक्तियोंके भारको वहन करनेमें असमर्थ होकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके शरणागत हुई।

'गौर्भूत्वाश्रुमुखी'—इससे जाना जाता है कि पृथ्वीदेवी गायके रूपमें ब्रह्माजीके समीप गयी थीं। श्रीमद्भागवतमें महाराज परीक्षितके द्वारा कलिको दण्ड देते समय, पृथु राजाके राज्यकालमें और श्रीकृष्णावतारसे पूर्वका वृत्तान्त वर्णन करनेके प्रसङ्गमें पृथ्वीकी कथा पायी जाती है। इन तीनों स्थानोंमें ही गोरूपी पृथ्वीका वर्णन मिलता है। विशेषकर 'गो' शब्दका एक अर्थ 'पृथ्वी' भी है। इसलिए पृथ्वीके अधिष्ठात्री देवता स्वभावतः गोरूप हैं। श्रीवैष्णव-तोषणीमें कहा

है—‘गोरूपेति कृपाविशेषजननार्थम्’—अर्थात् ब्रह्माकी विशेषकृपा पानेके लिए पृथ्वीने गोरूप धारण किया है।

गोरूपी पृथ्वी उच्चस्वरसे रोती हुई ब्रह्माके समीप गयीं। वह अत्यन्त दुबली-पतली और चलते समय काँप भी रही थी। पृथ्वी ब्रह्माजीके समीप अपना दुःख कहने लगी। श्रीमद्भागवतमें इसका कहीं वर्णन नहीं है, परन्तु श्रीविष्णुपुराणमें कहा गया है—पृथ्वी ब्रह्मासे कहने लगी—“इस समय कालनेमि आदि दैत्य पृथ्वीपर राजाओंके रूपमें आकर धार्मिक लोगोंपर अत्याचार कर रहे हैं। देवासुर युद्धके समय हिरण्याक्षका पुत्र कालनेमि विष्णुके चक्रसे मारा गया था, परन्तु उसीने इस समय उग्रसेनके पुत्र कंसरूपमें जन्म ग्रहण किया है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिपुत्र वाण आदि असंख्य महाबली और पराक्रमी दैत्योंने पृथ्वीमें स्थित राजाओंके वंशमें जन्म ग्रहण किया है तथा वे बहुत-सी अक्षौहिणी सेनाओंसे युक्त हैं। सभी दिव्यमूर्तिधारी और महावीर हैं। इन अहंकारी बलशाली दैत्योंके भारसे मैं पीड़ित हो रही हूँ, इसलिए आपसे निवेदन कर रही हूँ कि जिस किसी उपायसे भी हो आप मेरे इस भारको उतार दें, अन्यथा दैत्यभारसे दबकर मुझे रसातलमें जाना होगा।”

यहाँ पृथ्वीका वक्तव्य यह है कि वह ‘सर्वसंह’ अर्थात् सभी प्रकारके भारोंको सहन कर सकती हैं। सुमेरु, हिमालय आदि पर्वतोंका भार भी उसके लिए भार नहीं है, परन्तु हरिभजन-विहीन व्यक्तिका भार वह किसी प्रकारसे भी सहन नहीं कर सकती है, क्योंकि ऐसे दैत्योंका भार सुमेरु और हिमालयसे भी अधिक है।

यह सुनकर ब्रह्माजी इन्द्रादि देवताओं और श्रीशङ्करजीको साथ लेकर पालनकर्ता श्रीविष्णुके समीप क्षीरसमुद्रके तटपर गये। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि यदि पालनकर्ता विष्णु पृथ्वीकी रक्षाके लिए इन्द्रादि देवताओंको कुछ आदेश दे सकते हैं तथा दैत्य-संहारके लिए श्रीरुद्रको भी आदेश कर सकते हैं। विशेषकर श्रीशङ्करजी भगवान्‌के अतिशय प्रिय हैं। उन्हें साथमें लेनेसे मेरे लिए भी श्रीविष्णुका दर्शन सुलभ होगा।

बृहद्-विष्णु-सहस्रनाम-स्तोत्रमें देखा जाता है—‘विष्णुः क्षीराब्धि मन्दिरः’ अर्थात् क्षीरसागरके बीचस्थित श्वेतद्वीपमें श्रीविष्णु अपने मन्दिरमें लक्ष्मीजी और अपने पार्षदोंके साथ निवास करते हैं। परन्तु श्वेतद्वीपपर जाना ब्रह्मादि देवताओंके लिए सम्भव नहीं है—इसलिए वे सभी क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए।

वहाँपर जगत्-स्रष्टा चतुर्वेद-वक्ता चतुर्मुख ब्रह्माने पुरुषसूक्त मन्त्रका उच्चारणकर भगवान्की आराधना की। जब श्रीब्रह्मा अपने आठों नेत्रोंको मूँदकर ध्यानस्थ हुए, तब इन्द्रादि देवता सोचने लगे कि इसबार अवश्य ही पृथ्वीका भार हरण होगा और पृथ्वीपर यज्ञादि प्रारम्भ होंगे। जब ब्रह्माजीको वर देनेके लिए श्रीभगवान् अवतीर्ण होंगे, तब हमलोग भी उनका दर्शन पाकर कृतार्थ होंगे।

इस भावि-सौभाग्यकी आशासे सभी देवता आनन्दसागरमें निमग्न होकर क्षीरसमुद्रके तटपर प्रतीक्षा करने लगे ॥ १७-२० ॥

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—वेधाः (ब्रह्माने) गगने समीरितां (आकाशमें उच्चारित अदृष्ट वक्ताके) गिरः (वाणीको) समाधौ (समाधि-योग द्वारा) निशम्य (श्रवणकर) त्रिदशान् (देवताओंको) उवाच ह (स्पष्ट रूपसे कहा) अमराः (हे देवताओ!) मे (मेरे निकट) पौरुषीं (भगवान्का आदेश) गां (वाणी) शृणुत (श्रवण करो) [तथा] पुनः (फिर अर्थात् उसे सुनकर) आशु (अतिशीघ्र) तथैव (उनके आदेशके अनुसार) विधीयतां (अनुष्ठान करो) ॥ २१ ॥

अनुवाद—श्रीब्रह्माने समाधि अवस्थामें ही उस भगवान्के द्वारा उच्चारित आकाशवाणीको सुनकर देवताओंको सम्बोधित करते हुए कहा—“हे देवताओ! आपलोग मुझसे क्षीरोदशायी महापुरुषकी वाणी श्रवण करें और अविलम्ब उसका पालन करें ॥” २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—समाधौ, तत्रापि गगने समीरिताम्—इति क्षीरोदनाथस्यापि ब्रह्मणापि दुर्लभदर्शनत्वमभिव्यज्य, तदादि-परमांशिनः साक्षात् पुरुषोत्तमस्य कृष्णस्याग्रे प्रापञ्चिकलोकमात्रदृश्यत्वे तदीय-कृपातिशयैव हेतुर्व्यञ्जितः। पौरुषी पुरुषस्य क्षीरोद-नाथस्य, गां वाचम्॥ २१ ॥

भावानुवाद—‘समाधौ’ अर्थात् जब ब्रह्मा समाधिमें स्थित थे, उस अवस्थामें भी उन्होंने अपने भीतरमें ही आकाशवाणीको सुना। इससे यह अभिव्यक्त हुआ है कि क्षीरोदनाथ श्रीविष्णुका दर्शन श्रीब्रह्माके लिए भी दुर्लभ है। अर्थात् जब ब्रह्माके लिए ऐसा है, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या तथा जब क्षीरोदनाथके ही दर्शन दुर्लभ है, तब क्षीरोदनाथके अंशी श्रीकृष्णके दर्शनकी तो बात ही क्या? जब ऐसे क्षीरोदशायी विष्णुका दर्शन श्रीब्रह्माके लिए भी दुर्लभ है, तब क्षीरोदशायी विष्णुके भी मूल अर्थात् परम अंशी साक्षात् लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका प्रपञ्च जगत्में अवतीर्ण होकर जगत्-वासियोंके नयनगोचर होकर सबको दर्शन देना उन भगवान्की जीवोंपर अपार करुणाके कारण ही सम्भव हुआ है, यह भी व्यञ्जित हुआ।

‘पौरुषीम्’ अर्थात् क्षीरोदनाथ विष्णुकी ‘गाम्’ अर्थात् वाणी॥ २१ ॥

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥

अन्वयः—पुंसा (स्वयं-भगवान्ने) पुरैव (मेरे द्वारा निवेदन करनेसे पहले ही) धराज्वरः (पृथ्वीका भारके विषयमें) अवधृतः (जान लिया) ईश्वरेश्वरः (परमेश्वर) सः (श्रीभगवान्) यावत् (जब तक) स्वकालशक्त्या (अपनी काल नामक शक्तिके द्वारा) [अर्थात् अपनी स्वेच्छासे] उर्व्याः (पृथ्वीका) भरम् (भार) क्षपयन् (हरण करनेके लिए) भुवि (पृथ्वीमें) चरेत् (प्रकट रूपसे विराजमान रहेंगे) [तब तक] भवद्भिः (अपने-अपने अंशसे आप देवगण) यदुषु (यदुवंशमें तथा यदुओंके आत्मीयवंशमें) उपजन्यतां (जन्म ग्रहणकर अवस्थान करें)॥ २२ ॥

अनुवाद—हमारे द्वारा निवेदन करनेसे पहले ही श्रीभगवान् पृथ्वीदेवीके दुःखको जान गये। वे समस्त ईश्वरोंके पति अपनी कालशक्तिके द्वारा भू-भार हरण करते हुए जब तक भू-मण्डल पर विचरण करेंगे अर्थात् प्रपञ्चमें प्रकटित रहेंगे, तब तक आपलोग भी भगवान्के अंशभूत पार्षदों (उद्धव, सात्यकि आदि) के साथ यदुकुलमें (कुरु आदिके कुलमें) पुत्र-पौत्र आदिके रूपमें आविर्भूत होकर उन भगवान्के साथ ही अवस्थान करें ॥ २२ ॥

सारार्थदर्शिनी—पुरुषस्य वाचमेवानुवदति—पुरैवेति चतुर्भिः। विज्ञापनात् पूर्वमेव। पुंसा, 'कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यः' (ब्र०सं० ५/३९) इत्यनुसारात् स्वयं भगवता श्रीकृष्णेनेत्यर्थः। अवधृतः ज्ञातः। अंशैः तदंशभूत-पार्षदैरुद्धवसात्यक्यादिभिः सह मिलितोभूय। यदुष्वित्युपलक्षणं कुरुष्वपि। क्षीरोदनाथादयो वयमीश्वरा अस्माकमपीश्वरः ॥ २२ ॥

भावानुवाद—श्रीब्रह्मा भगवान् क्षीरोदनाथकी वाणीको ही 'पुरा एव' आदि चार श्लोकोंके द्वारा पुनः वर्णन कर रहे हैं। हमारे निवेदन करनेसे पहले ही परम पुरुष भगवान्ने पृथ्वीके सन्तापको जान लिया है। यहाँ 'पुंसा' कहनेसे "जो परमपुरुष हैं, वे स्वयं श्रीकृष्ण पूर्ण रूपसे आविर्भूत हुए" (ब्र० सं० ५/३९) को समझना होगा, अतः इसके अनुसार यह अर्थ होगा कि स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने ही 'अवधृतः'—अर्थात् जान लिया है। इसलिए आप सभी 'अंशैः' अर्थात् भगवान्के अंश स्वरूप उद्धव, सात्यकि आदि पार्षदोंके साथ मिलित होकर यदुकुलमें, तथा इसके उपलक्षणसे कुरुवंशमें भी जन्म ग्रहण करें। 'ईश्वरेश्वरः' अर्थात् स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण हम क्षीरोदशायी आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं ॥ २२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्माजी क्षीरसमुद्रके तटपर उपस्थित होकर पुरुषसूक्त मन्त्रके द्वारा भगवान्की आराधना करते हुए समाधिस्थ हो गये और उसी समाधि अवस्थामें ही उन्होंने भगवान्की आदेशवाणीको श्रवण किया। यह वाणी केवल ब्रह्माजी ही सुन सके, दूसरे नहीं सुन सके। "जिन श्रीकृष्णके अंशके अंशके अंश क्षीरोदशायीकी वाणी भी ब्रह्माजी बिना समाधिके नहीं सुन सके, ऐसे स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके

साथ व्रजवासी गोप-गोपियाँ स्वच्छन्द रूपसे विविध प्रकारके आलाप-विहारादि करते हैं, अतः उन व्रजवासियोंके जैसा सौभाग्य दूसरा किसका होगा?”—महाराज परीक्षितके प्रश्नानुसार मधुर-व्रजलीलाका वर्णन करनेके उपक्रममें ही ब्रह्माके समाधियोगमें भगवान्की इस आदेशवाणीके श्रवणके प्रसङ्गमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने इस तत्त्वकी सूचना दी है।

श्रीब्रह्माने देवताओंसे कहा—“अब आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं है, क्योंकि अब आपलोगोंको भगवान्की कृपासे उनकी लीलामें सहायता (सेवा) करनेका अवसर मिला है। भगवान् क्षीरोदशायी विष्णुने आदेश दिया है कि पृथ्वीके भार-हरणकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं जिनके आदेशसे ब्रह्माण्डका पालन कर रहा हूँ, मेरे उन परम अंशी गोलोकपति स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने धरतीके प्रति कृपादृष्टि की है। आपलोगोंके यहाँ आनेसे पहले ही वे पृथ्वीके सन्तापसे अवगत हैं। अब वे पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करेंगे तथा भू-भार भी हरण करेंगे।”

“भगवान् श्रीहरि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, इसलिए वे हमारे (क्षीरोदशायी विष्णुके) भी ईश्वर हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनकी कालशक्तिके अधीन है और वे उस कालशक्तिके अधिष्ठाता हैं, इसलिए किसपर कैसे कृपा करनी होगी, वे ही जानते हैं। अतः जब तक वे पृथ्वीपर लीला करते रहेंगे, तब तक आप सभी देवता अपने-अपने अंशके द्वारा सेवक, पार्षद आदिके रूपमें यदुवंशमें एवं यादवोंके आत्मीय कुरु आदिके वंशमें जन्म ग्रहणकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामें सेवा करेंगे।”

पद्मपुराणमें देखा जाता है—

एते हि यादवाः सर्वे मद्रणा एव भाविनि।

सर्वथा मत्प्रिया देवि मत्तुल्यगुणशालिनः॥

अर्थात् भगवान्ने कहा—“यदुवंशी मेरे नित्य पार्षद हैं, अतएव वे मेरे अतिशय प्रिय हैं एवं मेरे जैसे गुणोंसे युक्त हैं।”

परन्तु, भागवतमें देखा जाता है—भगवान्के आदेशसे देवताओंने यदुकुलमें जन्म ग्रहण किया। महाभारत एवं श्रीहरिवंशमें देखा जाता

है कि कुरुक्षेत्र युद्ध एवं यदुवंशके ध्वंसके पश्चात् यादव और उनके आत्मीय-जन स्वर्गमें गये।

पद्मपुराणके वचनके अनुसार यादवोंको भगवान्का नित्य-पार्षद स्वीकार करनेसे उनके स्वर्ग जानेकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि पार्षदगण श्रीभगवान्के प्रकटलीलाके समाप्त होनेपर भगवान्के साथ ही नित्यधाममें चले गये।

वैष्णव-तोषणीकार श्रील जीव गोस्वामीपादने इसकी मीमांसा करते हुए कहा है—‘एषामेव स्वर्गगमनम्, अधिकारान्ते च तत्प्राप्तिर्ज्ञेया।’ अर्थात् यादव असंख्य हैं। उनमें जो देवता हैं, वे ही श्रीकृष्णकी प्रकटलीलाकी समाप्तिके बाद स्वर्गमें गये और अपने अधिकारके अनुरूप आयुके अन्तमें देवदेह त्यागकर नित्यधाममें पहुँचे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने इस सिद्धान्तको स्पष्ट करनेके लिए इस श्लोकमें कथित ‘भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम्’ पदकी व्याख्या इस प्रकार की है—‘अंशैस्तदंशभूतपार्षदैरुद्धवसात्यक्यादि-भिर्मिलितोभूय।’ अर्थात् श्रीकृष्णके अंश उद्धव, सात्यकि आदि पार्षदोंके साथ मिलित होकर देवगण जन्म ग्रहण करें। इस व्याख्यासे श्रीमद्भागवतम् एवं पद्मपुराणकी व्याख्याओंका सामञ्जस्य होता है कि श्रीकृष्णकी प्रकटलीलाके समाप्त होनेपर यादवोंमें मिलित देवांश स्वर्गमें गये और पार्षदांश नित्यधाममें गये।

महाभारतमें देखा जाता है—अर्जुन इन्द्रके पुत्र हैं, अतः अर्जुनमें इन्द्रका अंश है, इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु महाभारतमें अर्जुनका देहत्याग भी वर्णित है। श्रीहरिवंशमें वर्णन है—युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके नित्यधाममें जाकर अर्जुनको देखा। ‘ददर्श तत्र गोविन्दं फाल्गुनेन समं मुदा।’ अर्थात् ‘युधिष्ठिरने वहाँ अर्जुन-सहित श्रीगोविन्दका दर्शन किया।’ हिमालयमें अर्जुनका देहत्याग और नित्यधाममें युधिष्ठिरको अर्जुनका दर्शन—ये दोनों मिथ्या नहीं हैं। सामञ्जस्यके लिए जानना होगा कि देवदेह प्राकृत है, इसलिए हिमालयमें उसका पतन दिखलाया है और पार्षददेह सबके अलक्ष्यमें नित्यधाममें गया—यही सिद्धान्त है।

क्षीरोदशायी भगवान्ने आदेश दिया कि जब तक श्रीकृष्ण पृथ्वीपर लीला करेंगे, तब तक देवगण यदुवंशमें अवतीर्ण होकर पृथ्वीपर रहेंगे। परन्तु, स्कन्दपुराणमें देखा जाता है कि—

वत्सैर्वत्सतरीभिश्च सरामो बालकैर्वृतः।

वृन्दावनान्तर गतः सदा क्रीडति माधवः॥

अर्थात् श्रीभगवान् माधव गोपबालकों, गाय-बछड़ों और बलदेवके सहित वृन्दावनमें नित्य क्रीड़ा करते हैं।

यह नित्य अप्रकटलीलाकी बात है। इस विषयमें वक्तव्य यह है कि श्रीभगवान् श्रीगोलोक वृन्दावनमें नित्य लीलाविलास करते हैं। परन्तु वह लीला सर्वसाधारणके लिए अदृश्य है। श्रीभगवान् कभी-कभी ब्रह्माण्ड-स्थित जीवोंके प्रति कृपावशतः इस लीलाको प्रकट करते हैं। अतएव वह लीला जब सर्वसाधारणको दिखलायी पड़ती है, तब उसे प्रकटलीला कहते हैं और जब सर्वसाधारणको नहीं दीखती, केवल पार्षदोंके द्वारा ही आस्वादनीय होती है और बिल्वमङ्गल आदि जैसे भक्तोंके प्रेमनेत्रोंके गोचर होती है, तब उसे अप्रकटलीला कहते हैं।

इसलिए क्षीरोदशायी भगवान्ने देवताओंको प्रकटलीलामें उपस्थित रहनेके लिए आदेश दिया ॥ २१-२२ ॥

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥ २३ ॥

अन्वयः—भगवान् (सर्वैश्वर्यशाली) परः पुरुषः (पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण) वसुदेवगृहे (वसुदेवके भवनमें, न कि उनके औरस अर्थात् वीर्यतेजसे) साक्षात् (स्वयं ही, न कि केवल अंश आदिके द्वारा) जनिष्यते (प्रकट होंगे) तत् प्रियार्थं (उन श्रीकृष्णकी प्रीति सम्पादनके लिए अथवा प्रिया श्रीराधा आदि और श्रीरुक्मिणी आदिकी सेवाके लिए) सुरस्त्रियः (देवरमणियाँ भी) सम्भवन्तु (योग्यताके अनुसार व्रजमें और अन्यत्र भी जन्म ग्रहण करें) ॥ २३ ॥

अनुवाद—सर्वैश्वर्यशाली पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण महाराज वसुदेवके घरमें स्वयं ही आविर्भूत होंगे। देवपत्नियाँ उनकी प्रसन्नताके लिए ब्रज आदिमें जन्म ग्रहण करें ॥ २३ ॥

सारार्थदर्शिनी—सुरस्त्रियः तत्प्रियांशभूताया उपेन्द्रादिमन्वन्तरावतारस्त्रियः। ता एव तत्प्रियाणां सख्यार्थं कृतचरतद्भजनप्रभाववशात् पृथग्भूतास्तत्प्रियसख्यो भवन्तु। यदुक्तमुज्ज्वलनीलमणौ (३/५२-५३)—‘नित्यप्रियाणामंशास्तु या जाता देवयोनयः।’, ‘ता अंशिनीनामेवासां प्रियसख्योऽभवन् ब्रजे।’ इति ॥ २३ ॥

भावानुवाद—‘सुरस्त्रियः’—यहाँ देवपत्नी कहनेसे उन श्रीकृष्णकी नित्यसिद्धा प्रियाओंकी अंश-स्वरूपा भगवान् श्रीउपेन्द्र आदि मन्वन्तर-अवतारोंकी लक्ष्मियाँ हैं। वे सभी श्रीकृष्णकी प्रियाओंकी सखी होनेके लिए पूर्व जन्मकृत भजनके प्रभावसे अपनी अंशिनीसे पृथक् होकर उनकी सखी बनकर जन्म ग्रहण करें।

जैसा कि श्रीउज्ज्वलनीलमणि (३/५२-५३) में कहा गया है—“मन्वन्तरावतार रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने अंशसे देवयोनिमें जन्म ग्रहण करते हैं, तब उनकी प्रीतिके लिए नित्य-कान्ताओंके अंश भी देवियोंके रूपमें प्रकट होती हैं। इस श्रीकृष्ण-अवतारमें अंशिनी नित्य-प्रियाओंकी अंशरूपा देवियाँ ब्रजमें गोपकन्याओंके रूपमें जन्म ग्रहणकर उन नित्यप्रिया अंशिनी गोपियोंकी प्रियसखियाँ हुई हैं ॥” २३ ॥

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।

अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥

अन्वयः—वासुदेवकला (श्रीकृष्णके प्रथम अंश) अनन्तः (काल-देशकी सीमासे रहित) सहस्रवदनः (श्रीकृष्णका गुणगान करनेकी इच्छासे नित्य ही हजारों मुखोंको प्रकट करनेवाले) स्वराट् (अपने भ्राता श्रीकृष्णके साथ विराजमान होनेके कारण जो स्वराट् हैं, ऐसे श्रीबलदेव अर्थात् श्रीकृष्णके बिना अन्यत्र कहीं अवस्थान करनेमें असमर्थ) देव (श्रीकृष्णके अंश होनेके कारण सबके पूज्य श्रीसङ्कर्षण) हरेः प्रियचिकीर्षया (श्रीकृष्णके सुखके लिए) अग्रतो भविता (राम आदि अवतारोंमें कनिष्ठ भ्राता होकर अवतीर्ण होनेपर भी श्रीकृष्ण अवतारमें श्रीबलरामके रूपमें ज्येष्ठ भ्राता होकर अवतीर्ण होंगे) ॥ २४ ॥

अनुवाद—जो भगवान् श्रीवासुदेवके प्रथम अंश (प्रकाश विग्रह) श्रीसङ्कर्षण हैं; देश, काल और सीमादिसे रहित होनेके कारण जो ‘अनन्त’ नामसे कीर्तित हैं तथा जो अपने एक अंशसे सहस्रमुखवाले शेष हैं, वे स्वतःप्रकाशित स्वयं मूल-सङ्कर्षण ही भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करनेकी इच्छासे उनसे पहले आविर्भूत होंगे ॥ २४ ॥

सारार्थदर्शिनी—स्वेन भ्रात्रा कृष्णेन सह राजत इति स्वराट्। देवो बलदेवः। अग्रतः प्रथममाविर्भविष्यति। य एवांशेन सहस्रवदनोऽनन्तः, ‘यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पतेः।’ (श्रीमद्भा० १०/६५/२८) इति वक्ष्यमाणात्। योऽनन्तो वासुदेवस्य कला ॥ २४ ॥

भावानुवाद—‘स्वराट्’—अपने भ्राता श्रीकृष्णके साथ विराजमान होनेके कारण जो स्वराट् हैं, ऐसे श्रीबलदेव प्रभु श्रीकृष्णका प्रियकार्य करनेके लिए उनसे भी पहले आविर्भूत होंगे। वे श्रीबलदेव ही अपने अंशसे सहस्रवदन अनन्तदेव हैं, क्योंकि आगे श्रीमद्भागवतम् (१०/६५/२८) में श्रीयमुनादेवीके द्वारा इस प्रकार कहा जायेगा—“हे जगत्पते! आपने अपने (शेष नामक) एक अंशके द्वारा यह पृथ्वी धारण की है।” जो अनन्तदेव हैं, वे भगवान् श्रीवासुदेवके कला हैं ॥ २४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—क्षीरोदशायी भगवान्के आदेशानुसार ब्रह्माजीने सभी देवताओंसे लीलामय श्रीकृष्णकी सेवाके लिए यदुवंशमें जन्म ग्रहण करनेके लिए कहा।

तदनन्तर श्रीभगवान् यदुवंशको कैसे धन्य करेंगे? यह ‘वसुदेवगृहे साक्षात्’ आदि श्लोकमें कहा गया है। श्रीब्रह्माने कहा—हे देवताओ! दूसरे दूसरे समय भगवान् पृथ्वीके भारको हरण करनेके लिए तथा धर्मकी स्थापनाके लिए मत्स्य, कूर्म आदि अपने अंशोंको प्रकट कराते रहे हैं; परन्तु इस बार हमलोगोंके भाग्यकी कोई सीमा नहीं, क्योंकि हमारे ब्रह्माण्डमें भगवान् स्वयं अवतीर्ण हो रहे हैं। मत्स्य, कूर्म आदि भगवान्के अवतार किसीके पुत्र होकर जन्म नहीं लिये हैं, वे अचानक ही आत्म-प्रकाशकर जगत्-कार्यका समाधानकर अन्तर्हित हो गये हैं। परन्तु इसबार श्रीभगवान् ब्रह्माण्डके नियमानुसार जन्म ग्रहण करते हुए अवतीर्ण होंगे। चन्दन जैसे मलय पर्वतके बिना

अन्यत्र उत्पन्न नहीं होता, वैसे ही श्रीभगवान् भी अपने भक्तके वंश बिना अन्यत्र कहीं भी जन्म ग्रहण नहीं करते हैं। इसलिए वे अपने परमभक्त यदुके वंशमें वात्सल्यप्रेमकी मूर्ति श्रीवसुदेव महाराजके घरमें प्रकट होंगे।

श्रीब्रह्माने और भी कहा—हे देवताओ! इस लीलामें देवरमणियोंके भाग्यकी भी सीमा नहीं है। वे भी इस बार श्रीकृष्णकी प्रियाओंकी सेवाके लिए पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करेंगी।

देवरमणियोंका श्रीकृष्णलीलाके समय जन्म ग्रहण करनेके विषयमें पद्मपुराणमें भी देखा जाता है—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोप कन्यका।

देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कदाचन॥

अर्थात् श्रीवृन्दावनलीलामें श्रीकृष्णकी प्रेयसी गोपियाँ कोई भी मानवी नहीं हैं। साधनसिद्धा (मुनिचरी और श्रुतिचरी) गोपियाँ, देवकन्याएँ एवं नित्यसिद्धा गोपियाँ ही इस लीलाकी परिकर हैं।

पूर्वकल्पमें श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंको सुनकर जो देवकन्याएँ गोपीभावसे भगवान् श्रीगोपीनाथकी सेवा करनेके लिए उत्सुक हुई थीं, उन्होंने ही इस वृन्दावनलीलामें गोपीरूपमें मातृस्थानीय गोपियोंके गर्भसे जन्म ग्रहणकर नित्यसिद्धा प्रेयसियोंके अनुगत होकर श्रीगोपीनाथके सेवाधिकारको प्राप्त की हैं।

श्रीउज्ज्वलनीलमणिग्रन्थ (३/५२-५३) में श्रीरूपगोस्वामिपादने कहा है—

नित्यप्रियाणामंशास्तु या जाता देवयोनयः।

ता अंशिनीनामेवासां प्रियसख्योऽभवन् ब्रजे॥

अर्थात् श्रीकृष्ण जब अपने अंशसे देवयोनिमें आविर्भूत होते हैं, उस समय उनके प्रीतिविधानके लिए उनकी नित्य-कान्ताओंकी अंश भी देवियोंके रूपमें प्रकट होती हैं। वे देवरमणियाँ ही अब श्रीकृष्ण-अवतारके समय ब्रजमें गोपकन्याएँ होकर अपनी अंशिनि नित्य प्रियाओंकी नित्य सखियाँ होती हैं।

इसके अतिरिक्त देवरमणियाँ अपने भावके अनुसार श्रीरुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण-प्रेयसियोंकी सेवाके लिए विभिन्न स्थानोंमें जन्म लेकर श्रीकृष्णकी द्वारकालीलाके समय कोई रुक्मिणी आदि महीषियोंकी सखीके रूपमें, कोई दासीके रूपमें सेवाधिकारको प्राप्त करती हैं। प्रस्तुत श्लोकमें 'सम्भवन्तु सुरस्त्रियः' पदके द्वारा ब्रह्माजी इस विषयको देवताओंसे कह रहे हैं।

श्रीकृष्णके द्वितीय व्यूह सङ्कर्षण सभी लीलाओंमें उनके साथ रहते हैं, क्योंकि वे स्वराट् हैं, वे कभी भी श्रीकृष्णको छोड़कर नहीं रह सकते। जिस लीलामें जैसी आवश्यकता होती है, वैसे ही अवतीर्ण होकर श्रीकृष्णकी सेवा करते रहते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि ५/८) में—

श्रीबलराम गोसाजि मूल संकर्षण।

पञ्चरूप धरि करे कृष्णोर सेवन॥

अनन्त-संहितामें देखा जाता है—

निवास शय्यासन पादुकांशुकोपाधान वर्षातपवारणादिभिः।

शरीरभेदैरवशेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीरितो जनैः॥

अर्थात् श्रीसङ्कर्षण—श्रीकृष्णके निवास-स्थान, शय्या, आसन, पादुका, वस्त्र, उपाधान, छत्र आदि अनेकों मूर्तियाँ धारणकर श्रीकृष्णकी यथायोग्य सेवा करते हैं, इसलिए सङ्कर्षणका एक नाम 'शेष' है।

श्रीभगवान् जब भी कोई लीला करते हैं, तब सङ्कर्षण यथायोग्य रूपमें उस लीलाके अनुरूप सेवामें नियुक्त रहते हैं। भगवान् जब श्रीरामरूपमें लीला करते हैं, उस समय सङ्कर्षण लक्ष्मणके रूपमें उनकी सेवा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक लीलामें वे किसी-न-किसी रूपमें उनकी सेवामें निमग्न रहते हैं। इसलिए सङ्कर्षण 'स्वराट्' हैं। महाप्रलयमें भी जब भगवान् सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें लीनकर शयन करते हैं, तब भी सङ्कर्षण शेषरूपमें उनकी शय्या बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे भक्त-चूड़ामणि भी हैं। वे निरन्तर हजारों मुखोंसे श्रीकृष्णका गुणगान करते हैं।

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे देवगण! श्रीसङ्कर्षण प्रत्येक लीलामें ही श्रीकृष्णके साथ रहते हैं। किन्तु, इस बारकी लीलामें कुछ विशेषता होगी, क्योंकि इस बार श्रीसङ्कर्षण श्रीकृष्णके बड़े भाई होकर आयेंगे। इसका कारण है कि श्रीरामलीलामें उन्होंने छोटे भाईके रूपमें श्रीरामचन्द्रकी सेवाकर बड़ा दुःख अनुभव किया है। इसलिए इसबार वे बड़े भाई होकर सेवा करेंगे।

वह दुःख किस प्रकारका है? यथा—जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिए वन जानेके लिए प्रस्तुत हुए, तब श्रीसङ्कर्षणके अवतार श्रीलक्ष्मणने भी अयोध्या त्यागकर श्रीरामचन्द्रकी सेवा करनेके उद्देश्यसे उनका अनुगमन किया। जब श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चलते थे, तब वे मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करते थे—यदि मैं राजा दशरथका ज्येष्ठ पुत्र होता, तब हमारी कुलप्रथाके अनुसार मुझे ही राजा बननेका अधिकार प्राप्त होता। तब माता कैकेयी पिता दशरथसे मेरे ही वनवासका वर माँगती, इसमें सन्देह नहीं है। इसका कारण है कि माता कैकेयीने भरतको राजा बनानेके लिए ही श्रीरामके वनवासका वर माँगा था, किन्तु उनकी श्रीरामसे कोई व्यक्तिगत शत्रुता नहीं थी। ऐसा विचार करके श्रीलक्ष्मण बहुत ही खेद करते कि हाय! मैं श्रीरामका ज्येष्ठ भ्राता क्यों नहीं बना।

भक्तवत्सल श्रीभगवान्ने श्रीसङ्कर्षणके उस दुःखको दूर करनेके लिए श्रीकृष्णलीलामें उन्हें अपना बड़ा भाई बना लिया। इसीलिए श्रीबृहत्सहस्रनाम-स्तोत्रमें श्रीबलदेवका एक नाम है 'पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रज' अर्थात् पूर्व रामलीलामें श्रीरामकी सेवा नहीं कर पानेके खेदसे जो बादमें (श्रीकृष्णलीलामें) अच्युत श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भ्राता बने, वे श्रीबलदेव ॥ २३-२४ ॥

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।

आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥ २५ ॥

अन्वयः—यया (जिस मायाके द्वारा) जगत् (अखिल विश्वके जीव) सम्मोहितं (देह-गृह आदिमें आसक्त होते हैं) [वह] भगवती

(समस्त शक्तियोंसे युक्त) विष्णोः (सर्वव्यापक श्रीभगवान्की) माया (माया नामकी शक्ति) अंशेन (श्रीकृष्णकी इच्छासे युक्त) [और] प्रभुणा आदिष्टा (श्रीकृष्णकी आज्ञासे) कार्यार्थे (देवकीके गर्भसे सङ्कर्षणका आकर्षण, यशोदा-मोहन आदि कार्य करनेके लिए) सम्भविष्यति (यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण करेगी अथवा असमर्थ होनेपर भी देवकीके गर्भका आकर्षण आदि कार्य करनेके लिए श्रीकृष्णकी इच्छासे योग्य अर्थात् समर्थ बनेगी) ॥ २५ ॥

अनुवाद—[अद्वयज्ञान परतत्त्व श्रीभगवान्की एक ही मायाशक्ति स्वरूप भेदसे—उन्मुखमोहिनी और विमुखमोहिनी है। उन्मुखमोहिनी माया गोकुलेश्वरी अन्तरङ्गाशक्ति 'योगमाया' के नामसे प्रसिद्ध है एवं विमुखमोहिनी माया अखिलेश्वरी बहिरङ्गा 'जड़माया' के नामसे कीर्तित है। एक ही मायाके इन दो प्रकारके स्वरूपोंके द्वारा अप्राकृत एवं प्राकृत दोनों ही जगत् सम्मोहित हैं।] जिस मायाके द्वारा अप्राकृत एवं प्राकृत—ये दोनों प्रकारके जगत् मोहित होते हैं, भगवान्के आदेशसे वही भगवत्-शक्ति विष्णुमाया अपनी अंशभूत बहिरङ्गा मायाशक्तिके साथ श्रीभगवान्के सेवा-कार्यके लिए अर्थात् उन्मुखमोहिनी योगमाया-स्वरूपके द्वारा देवकीके सप्तम गर्भका आकर्षण, यशोदाको सुलाने आदि जैसे कार्य एवं विमुखमोहिनी जड़माया-स्वरूपके द्वारा कंस आदिकी वञ्चनारूप कार्योंको पूर्ण करनेके लिए प्रादुर्भूत होंगी ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—किञ्च, स्वलीला-परिकराणां भक्तानां भक्तद्विषां कंसादीनाञ्च मोहनार्थं योगमायां मायाञ्चादिशदित्याह—विष्णोर्माया। 'योगमायां समादिशत्' (श्रीमद्भा० १०/२/६) इत्यग्निमोक्तेः। प्रभुणा कृष्णेन आदिष्टा सती अंशेन सह स्वांशभूत-बहिरङ्गमायासहितैव कार्यार्थे प्रादुर्भविष्यति। यया जगत् सम्मोहितं, स्वांशभूत-माययेत्यर्थः। यद्वा, जगत्—अप्राकृतं, प्राकृतञ्च; स्वेन, स्वांशेन च सम्मोहितम्। मायया योग-मायांशत्वं दृष्टं नारदपञ्चरात्रे श्रुति-विद्यासम्वादे—'जानात्येका परा कान्तं सैव दुर्गा तदात्मिका। या परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी ॥ यस्या विज्ञानमात्रेण पराणां परमात्मनः। मुहूर्तादेव देवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा ॥ एकेयं प्रेमसर्वस्व-स्वभावा गोकुलेश्वरी। अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वरः ॥ अस्या आवरिकाशक्तिर्महा-मायाखिलेश्वरी। यया मुग्धं जगत्सर्वं सर्वं देहाभिमानिनः ॥' इति। एका एकविधैव एकानंशापरपर्यायेत्यर्थः। कार्यार्थे इति, कार्यमत्र द्विविधं—प्रथमं

देवकीसप्तमगर्भाकर्षण-यशोदा-स्वापनादि। तद्धि योगमायया एव कार्यं, न तु मायायाः। स्वनियन्तुर्बलभद्रस्याकर्षणे प्रभुत्वाभावात्, यशोदास्वापनस्य राजसत्त्वाभावाच्च; यदुक्तम्—‘व्यतीत्य तुर्यामपि संश्रितानां तां पञ्चमीं प्रेममयीमवस्थाम्। न सम्भवत्येव हरिप्रियाणां स्वप्नो रजोवृत्तिविजृम्भितो यः॥’ (उ० नी० १५/२१९) इति; तादृशसिद्धभक्तेषु मायायाः प्रभवितुमशक्यत्वाच्च। द्वितीयं तु देवकीकन्यारूपेण यत् कंसवञ्चनम्, तन्मायया एव कार्यं, न तु योगमायायाः। तादृश-दुष्टलोकेषु तस्या अनुपयोगादेव सैव कंसहस्तादाकाशमुत्प्लुत्य विन्ध्यवासिन्यादिरूपेण बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह। यदुक्तं स्वयमेव मायया—‘वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे। नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा॥ ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥’ इति। तथा रासलीलादिसिद्ध्यर्थं भगवत्प्रेयसीनां पति-श्वश्रादिमोहनं योगमायाया एव कार्यं, न तु मायायाः। तेषां भगवद्वैमुख्यादर्शनात्, मायामोहितत्वे तद्वैमुख्यस्यावश्यभावात्, ‘योगमायामुपाश्रितः’ (श्रीमद्भा० १०/२९/१) इति तत्रोक्तेश्च। दुर्योधनादि-शाल्वाद्यसुरेषु विश्वरूप-गरुडवाहनादित्व-दर्शिष्वपि नायमीश्वरः, किन्तु धृष्टो यादव इति मोहनं माययैव, न तु योगमायया। तेषां भगवद्वैमुख्यदर्शनात्। इत्येवं विमुखमोहनं मायया, उन्मुखमोहनं योगमाययेति व्यवस्थितिः। यत्तु वात्सल्यादिमहाप्रेमवतां श्रीयशोदा-नन्दादीनां विश्वरूप-वरुणलोकादि-दर्शनान्ते वात्सल्यादि-भावाधिक्यत्वेनैश्वर्यज्ञानेऽप्य-संभ्रमादेवैश्वर्याननुसन्धानलक्षणं मोहनं, तत् न योगमायया, नापि मायया। किन्तु, प्रेम्ण एव स स्वभावः, यः खलु भगवदैश्वर्यज्ञानमावृण्वन् चिन्मय-ममता-रशनया श्रीकृष्णं निबध्य प्रतिक्षणं तस्मिन् स्नेहाधिक्यमुत्पादयन् तन्माधुर्यास्वादमहोदधौ भक्तजनं निमज्जय-तीत्यसाधारणलक्षणज्ञाप्यो भवति। अतएव तत्रोक्तं—‘वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः।’ (श्रीमद्भा० १०/८/४३) इति पुत्रस्नेहमयत्वं वात्सल्यप्रेम्णोऽसाधारणं लक्षणम्। मोहनत्वेन माया-साधर्म्यान्मायामिति ॥ २५ ॥

भावानुवाद—अपने लीला-परिकर भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए एवं भक्तद्वेषी कंस आदि असुरोंको मोहित करनेके लिए श्रीभगवान्ने क्रमशः योगमाया और महामायाको आदेश दिया, इसीको श्रीब्रह्माजी ‘विष्णोर्माया’ आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। “योगमायां समादिशत् अर्थात् भगवान्ने योगमायाको आदेश दिया था”—आगे (श्रीमद्भा० १०/२/६) में इस प्रकार कहा जायेगा। इसलिए ‘प्रभुणा आदिष्टा’ अर्थात् अपने प्रभु श्रीकृष्णके आदेशसे योगमाया ‘अंशेन’ अर्थात् अपने अंश-स्वरूप बहिरङ्गा-मायाके साथ ही भगवत्-कार्यको पूर्ण करनेके लिए आविर्भूत होंगी।

‘यया सम्मोहितं जगत्’—योगमायाकी अंशभूता बहिरङ्गा जड़मायाके द्वारा यह जगत् विमोहित होता है। अथवा, अप्राकृत और प्राकृत भेदसे जगत् दो प्रकारके हैं। योगमाया स्वयं ही अप्राकृत जगत्को एवं अपनी अंशभूता जड़मायाके द्वारा प्राकृत जगत्को मोहित करती हैं। श्रीनारदपञ्चरात्रके श्रुति-विद्या संवादमें जड़मायाको योगमायाका अंश कहा गया है, “उन परमपुरुष भगवान्की एक पराशक्ति है, वही दुर्गा है, जो पराशक्तिसे तदात्मिक है। जो परा अर्थात् परमशक्ति है, वह श्रीमहाविष्णु-स्वरूपिणी है। इस महाविष्णु-स्वरूपिणी पराशक्तिके विज्ञान-मात्रसे ही एक मुहूर्त्तमें ही देवोंके भी देव परमपुरुषकी प्राप्ति होती है, अन्य किसी रीतिसे नहीं। ये एक ही प्रकारकी पराशक्ति प्रेम-सर्वस्व-स्वभावभूता ह्लादिनीशक्ति गोकुलेश्वरी हैं। इनका आश्रय ग्रहण करनेसे आदिदेव अखिलेश्वर भगवान्को सहज रूपमें ही जाना जा सकता है। इनकी आवरणी शक्ति ही अखिल विश्व-ब्रह्माण्डकी ईश्वरी ‘महामाया’ है, जिनके द्वारा निखिल-जगत् और समस्त देहाभिमानी जीव मुग्ध हो रहे हैं।” यहाँ ‘एका’ का अर्थ है कि माया एक ही प्रकारकी है। इन्हींका दूसरा नाम ‘एकानंशा’ अर्थात् अखण्ड-स्वरूपा माया है।

‘कार्यार्थे’—वे माया दो प्रकारके कार्य करनेके लिए अवतरित हुई—योगमायाका कार्य और जड़मायाका कार्य। प्रथमतः देवकीके सप्तम-गर्भका आकर्षण, माता यशोदाको निद्राके वशीभूत करना आदि योगमायाका ही कार्य है, न कि जड़मायाका। इसका निम्नलिखित कारण हैं—(१) अपने नियन्ता श्रीबलदेवका आकर्षण करनेका सामर्थ्य जड़मायामें नहीं है। (२) माता यशोदाका निद्राके वशीभूत हो जाना प्राकृत रजोगुणका कार्य नहीं है। जैसा कि उज्ज्वलनीलमणि (१५/२१९) में कहा गया है—“गोपियाँ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत चतुर्थ तुरीय अवस्थाको भी अतिक्रम करके पञ्चम प्रेममयी अवस्थामें स्थित हैं। इसलिए हरिप्रिया गोपियोंका कभी भी रजोवृत्तिसे उत्पन्न स्वप्न आदि सम्भवपर हो ही नहीं सकता।” (३) ऐसे सिद्ध-परिकरोंपर जड़माया अपना प्रभाव विस्तार करनेमें असमर्थ है।

किन्तु, दूसरी ओर देवकीकी कन्याके जन्म होनेके विषयमें कंसकी वञ्चना आदि जो कार्य है, वे जड़मायाके ही कार्य हैं, न कि योगमायाके। इसका कारण है कि कंस जैसे कृष्ण-विमुख दुष्टलोगोंके प्रति योगमायाकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। वे जड़माया ही कंसके हाथसे निकलकर आकाशमें उठकर विन्ध्यवासिनी आदि रूपोंमें बहुत-से स्थानोंमें बहुत-से नामोंको धारण करके विराज रही हैं। जैसा कि मायाने स्वयं ही मार्कण्डेयपुराणके अन्तर्गत देवी-महात्म्य (चण्डी ११ अध्याय) में कहा है—“वैवस्वतमन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगके उपस्थित होनेपर मैं नन्दगोपके घरमें यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण करूँगी एवं विन्ध्याचल वासिनी होकर असुरोंका नाश करूँगी।” इत्यादि।

इसी प्रकार रासलीला आदिका सम्पादन करनेके लिए भगवत्-प्रेयसियोंके पति, ससुर आदि आत्मीयजनोंको मोहित करना—योगमायाका ही कार्य है, जड़मायाका नहीं। इसका कारण इस प्रकार है—(१) उन आत्मीयजनोंमें भगवत्-विमुखता नहीं है, (२) जड़मायाके द्वारा मोहित होनेके लिए भगवान्से विमुख होना आवश्यक है तथा (३) विशेषकर उसी रासलीला (श्रीमद्भा० १०/२९/१) में कहा गया है—“श्रीभगवान्ने (अर्थात् षड्-ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होनेपर भी) योगमायाको अधिक रूपमें आश्रयकर रमण करनेकी इच्छा की।”

दुर्योधन आदि तथा शाल्व आदि असुरोंने भगवान्के गरुड़-वाहन तथा विश्वरूप आदि ऐश्वर्योंके दर्शन करनेपर भी कहा—“यह ईश्वर नहीं है, निर्लज्ज यादव है।”—इस प्रकारसे असुरोंका मोहन-कार्य जड़मायाका ही कार्य है, योगमायाका नहीं, क्योंकि दुर्योधनादि असुर भगवत्-विमुख थे। इस प्रकार विमुख-मोहन कार्य जड़मायाका तथा उन्मुख-मोहन कार्य योगमाया का है—यही वास्तव सिद्धान्त है।

किन्तु, वात्सल्यके महाप्रेमवान श्रीनन्द-यशोदा आदिके द्वारा विश्वरूप-दर्शन या वरुणलोक-दर्शन आदिके अन्तमें वात्सल्य आदि भावकी अधिकताके कारण ऐश्वर्य-ज्ञानके उपस्थित होनेपर भी असम्भ्रम भावके कारण ही उस ऐश्वर्यका अनुसन्धान नहीं करनेवाला जो मोहन-कार्य है, वह न तो योगमायाका कार्य है और न ही

जड़मायाका, बल्कि यह उसी प्रेमका स्वभाव है, जो भगवान्‌के ऐश्वर्य ज्ञानको आच्छादित करके चिन्मय ममতারूप रस्सीके द्वारा श्रीकृष्णको बाँधकर प्रतिक्षण उनके प्रति अत्यधिक स्नेहको उत्पन्नकर उनके माधुर्य आस्वादनरूप महासमुद्रमें उन भक्तोंको निमज्जित करता है—इसके द्वारा प्रेमका असाधारण लक्षण सूचित होता है। इसीलिए श्रीमद्भागवतम् (१०/८/४३) में कहा भी गया है—“विभु ईश्वर श्रीकृष्ण यशोदाके प्रति पुत्र-स्नेहमयी वैष्णवी मायाका विस्तार करने लगे।” इससे यही जाना जाता है कि पुत्रस्नेहमयता ही वात्सल्यप्रेमका असाधारण लक्षण है। मोहन-कार्यमें जड़मायासे साधर्म्य होनेके कारण ही इस उद्धृत श्लोकमें ‘माया’ कहा गया है ॥ २५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्माजीने कहा—हे देवताओ! अचिन्त्य-अनन्त-शक्तियोंसे युक्त श्रीभगवान्‌की जिस मायाशक्तिसे समस्त जगत् चिरकालसे मुग्ध है, जिस मायाके प्रभावसे कोई भी अपने स्वरूपको जान नहीं पाता तथा देह-गृह आदिमें आसक्त होकर उनके करोड़ों जन्म निकल जाते हैं, ऐसी जगन्मोहिनी माया भी मायाधीश श्रीकृष्णके आदेशका पालन करनेके लिए स्वयं आविर्भूत होंगी और भगवान्‌की इच्छाके अनुरूप मोहन-कार्य करके लीलामें सहायता करेंगी।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित श्रीकृष्णलीलाकथाका विवेचन करनेसे देखा जाता है कि श्रीकृष्णके आदेशसे मायाने श्रीबलदेवको देवकीके गर्भसे आकर्षणकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित किया, श्रीकृष्णके जन्मके समय ब्रजवासी गोप-गोपियोंको निद्राके वशीभूत किया, स्वयं यशोदाकी कन्यारूपमें जन्म लेकर मथुरामें आयी एवं कंसके हाथसे निकलकर कंसको डाँट-डपटकर अन्तर्हित हो गयी। उसके पश्चात् विन्ध्याचल आदि अनेक स्थानोंमें अनेक मूर्तियोंमें तथा बहुत-से नामोंसे विराजमान हुई। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्णकी रास आदि लीलाओंमें भी श्रीराधिका आदि प्रेयसी गोपियोंके पति, भ्राता, सास आदिको मोहितकर श्रीकृष्णलीलाकी सहायता की।

इन सब बातोंके अति गोपनीय होनेके कारण ही ब्रह्माजीने देवताओंके निकट कुछ भी प्रकाश नहीं किया, केवलमात्र ‘आदिष्टा

प्रभुणांशेन कार्यार्थं संभविष्यति' अर्थात् 'सर्वनियन्ता भगवान्के आदेशसे माया मोहन-कार्य (मुग्ध) करनेके लिए जन्म ग्रहण करेंगी' इतना कहकर अपना वक्तव्य समाप्त किया ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यादिश्यामरगणान्

प्रजापतिपतिर्विभुः ।

आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

अन्वयः—प्रजापतिपतिः (दक्ष आदि प्रजापतियोंके भी पति) विभुः (जगत्-ऐश्वर्यके अधिपति ब्रह्मा) अमरगणान् (देवताओंको) इति (पूर्व कथित श्रीभगवान्के आविर्भावका प्रकार) आदिश्य (वर्णनकर) गीर्भिः (हे पृथ्वी! तुम धन्य हो, अतिशीघ्र श्रीगोविन्दके चरणकमलों द्वारा तुम अलंकृत होओगी इत्यादि मधुर वचनोंसे) महीं (पृथ्वीको) आश्वास्य (आश्वासन वाक्योंके द्वारा सन्तुष्ट करके) परमं (श्रेष्ठ) स्वधाम (अपने भवनमें) ययौ (चले गये) ॥ २६ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—दक्षादि प्रजापतियोंके भी पति ऐश्वर्यशाली श्रीब्रह्माने देवताओंको इस प्रकार श्रीभगवान्के अवतारसे सम्बन्धित आदेश सुनाया तथा पृथ्वी देवीको विविध वचनोंके द्वारा सान्त्वना देकर वे अपने परमधाम ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥

सारार्थदर्शिनी—इति, श्रीविष्णवादेशानुवाद-प्रकारेण ॥ २६ ॥

भावानुवाद—प्रजापतियोंके पति श्रीब्रह्माने देवताओंको भगवान् श्रीविष्णुका आदेश सुनाया तथा अनेक प्रकारके मधुर वचनोंके द्वारा पृथ्वीदेवीको भी सान्त्वना दी ॥ २६ ॥

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ।

माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥

अन्वयः—पुरा (पूर्वकालमें) शूरसेनः (इस नामसे प्रसिद्ध) यदुपतिः (यादवराज) मथुरा पुरीम् (हजारों दलोंवाले कमलके समान

मथुरा-मण्डलके कर्णिका-स्वरूप मध्यस्थानमें) आवसन् (वास करते हुए) माथुरान् (मथुरा-मण्डल) शूरसेनान् (इस नामसे प्रसिद्ध स्थान विशेष) [आदि] विषयान् (देशोंको) बुभुजे (राज्य किया) ॥ २७ ॥

अनुवाद—प्राचीनकालमें यादवोंके राजा शूरसेन मथुरापुरीमें वास करते हुए मथुरा-मण्डल एवं शूरसेन नामक प्रदेशोंका उपभोग अर्थात् उनपर शासन करते थे ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका—वसुदेवगृहे जन्म वक्ष्यंस्तदुपयोगिनीं कथामाह—शूर इति। विषयान् देशान् ॥ २७ ॥

भावानुवाद—श्रीवसुदेवके घरमें अर्थात् मथुरामें श्रीभगवान्के अवतरित होनेके प्रसङ्गको कहनेके लिए ही श्रीशुकदेव गोस्वामी सर्वप्रथम 'शूरसेनः' इत्यादि श्लोकके द्वारा उस प्रसङ्गके उपयोगी कथाओंको प्रस्तुत कर रहे हैं। पुराकालमें महाराज शूरसेन मथुरा-मण्डल और शूरसेन देशोंपर शासन करते थे ॥ २७ ॥

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम्।

मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥

अन्वयः—ततः (शूरसेनके निवासकालसे प्रारम्भकर) सा (पूर्व कथित महिमासम्पन्न वह मथुरापुरी) सर्व यादव भूभुजां (राज दुर्लभ ऐश्वर्यशाली यादवोंकी) राजधानी (राजधानी) अभूत् (बन गयी) यत्र (जहाँ) भगवान् (समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण स्वयं-भगवान्) हरिः (विलक्षण रूप, गुण, लीला माधुरीसे युक्त सर्वमनोहर श्रीकृष्ण) नित्यं सन्निहितः (नित्य विराजमान रहते हैं) ॥ २८ ॥

अनुवाद—उसी समयसे वह मथुरापुरी यदुवंशीय राजाओंकी राजधानीके नामसे प्रसिद्ध हो गयी। उस मथुरापुरीमें भगवान् श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥

सारार्थदर्शिनी—नित्यं सन्निहित इत्यनेन स्वयं भगवान् परिपूर्णः श्रीकृष्णस्तत्र स्वधामनि सदा वर्तमान एवाविर्भूय प्रपञ्च-गोचरी भवति, न तु कुतश्चिद्वैकुण्ठादिभ्यः

आगत्यावतरतीति व्यञ्जितम्। किञ्च, तदाविर्भावसमये वैकुण्ठ-श्वेतद्वीपादिभ्यस्तदंशा आगत्य तत्र मिलिती भवन्ति, लीलान्ते त एव पुनस्तत्र तत्र यान्तीति तेषामेव वैकुण्ठादिभ्योऽवतरणं वैकुण्ठाद्यारोहणं चेति प्रसिद्धिर्ज्ञेया। ‘परावरेणो महदंशयुक्तो ह्यजोपि जातो भगवान् यथाग्निः।’ (श्रीमद्भा० ३/२/१५) इत्यादिषु तृतीये तथा व्याख्यानात् ॥ २८ ॥

भावानुवाद—‘भगवान् श्रीहरि मथुरा-मण्डलमें नित्य ही विराजमान रहते हैं’—इस वाक्यके द्वारा यही व्यञ्जित हुआ है कि स्वयं-भगवान् परिपूर्ण-स्वरूप श्रीकृष्ण अपने उस मथुराधाममें सदा-सर्वदा वर्तमान रहते हुए ही वहाँपर आविर्भूत होते हैं अर्थात् प्रपञ्चमें गोचरीभूत होते हैं, न कि वैकुण्ठ आदि किसी अन्य स्थानसे आकर वहाँ अवतीर्ण होते हैं। भगवान् के आविर्भावके समय वैकुण्ठ और श्वेतद्वीप आदि स्थानोंसे उनके अंशावतार भी आकर उनमें मिलित होते हैं एवं लीलाके अन्तमें वे सब अंशावतार अपने-अपने धामोंमें चले जाते हैं। अतएव अन्य-अन्य अवतारोंके ही वैकुण्ठ आदि धामोंसे अवतरित होने तथा पुनः वहाँ लौट जाने की प्रसिद्धि है—ऐसा जानना होगा। जैसा—“श्रीकृष्णके अनुरागपूर्ण हास-परिहास, आमोद-प्रमोद और लीलामय चितवनसे सम्मानित होकर व्रजसुन्दरियाँ अभिमानवती हो जाया करती थीं। श्रीकृष्ण जिस समय जहाँ भी जाते, उन व्रजरमणियोंके नेत्र उनकी ओर ही लगे रहते थे। उनके नेत्रोंके साथ-साथ उनका चित्त भी श्रीकृष्णमें ऐसा आविष्ट हो जाता था कि वे अपने घरके कार्योंको अधूरा ही छोड़कर काठकी पुतलियोंकी भाँति खड़ी-की-खड़ी रह जाती थीं।”—श्रीमद्भागवतम् (३/२/१५) में पहले व्याख्या की गयी है ॥ २८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीपरीक्षित् महाराजको कहा—जगत्के जीव मायामोहसे मुग्ध होकर जगन्नाथको स्मरण करना भूल जाते हैं, परन्तु भगवान् जगन्नाथ जगत्-जीवोंको कभी नहीं भूलते, जगत्-जीवोंके प्रति अत्यन्त करुणा प्रकाशकर वे स्वयं ही आविर्भूत होते हैं। दैत्योंके भारसे आक्रान्त पृथ्वीका ब्रह्माके निकट गमन, क्षीरसागरके तटपर भगवान् की आराधना

एवं क्षीरोदशायी भगवान्की दैववाणीका वर्णनकर श्रीशुकदेव गोस्वामीने इस परमतत्त्वको प्रकाश किया।

श्रीकृष्णने मथुरा-मण्डलमें अवतीर्ण होकर जगत्को कृतार्थ कर दिया। अतः श्रीकृष्णका अवतार होनेसे पहले मथुराकी कैसी अवस्था थी एवं श्रीभगवान् मथुरा-मण्डलमें ही क्यों अवतीर्ण हुए तथा मथुरावासी भक्तजन कैसे थे? आदि तथ्योंको प्रकाश करनेके लिए श्रीशुकदेव गोस्वामी अब मथुरा-मण्डलके विषयमें कुछ कहने लगे।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—“हे परीक्षित् महाराज! पूर्वकालमें शूरसेन नामक एक नरपति श्रीभगवान्की नित्य-विलास भूमि मथुरापुरीमें निवास करते थे और वहाँ शासन संरक्षणदि करते थे।”

इस परम पवित्र भूमिका नाम ‘मथुरा’ क्यों हुआ, यह गोपालतापनी श्रुतिमें देखा जाता है—

मथ्यते तु जगत् सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।

तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते॥

(श्रीगोपालतापनी उप० उत्तर० ६४)

अर्थात् जिस प्रकार दहिका मन्थन करनेसे उसका सारभूत नवनीत उत्पन्न होता है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान द्वारा समस्त जगत्का मन्थन करनेपर उसकी सारस्वरूप श्रीमदनगोपाल मूर्ति आविर्भूत हुई है—इन्हीं कारणोंसे इस पुरीका नाम ‘मथुरा’ है।

अथवा, ‘मथ्नाति तदितरत् सर्वं खण्डयति’ अर्थात् जो धाम श्रीकृष्ण-सम्बन्धके अतिरिक्त दूसरी समस्त विषयासक्तियोंका खण्डन करता है, उस धामको ‘मथुरा’ कहते हैं।

यह मथुरा-मण्डल चौरासीकरोस तक व्याप्त सहस्र-दल कमलके समान है। इसके मध्यस्थलमें श्रीभगवान्का आविर्भाव-स्थान है। इस स्थानका नाम मथुरापुरी है एवं वर्तमान समयमें मथुरापुरी ही मथुराके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीवृन्दावन भी मथुरा-मण्डलके अन्तर्गत है, परन्तु मथुरापुरी कहनेसे श्रीवृन्दावन नहीं समझा जायेगा, परन्तु मथुरा-मण्डल कहनेसे मथुरापुरी और श्रीवृन्दावन आदि सभी स्थानों को ही समझना होगा।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

अर्थात् अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, विष्णुकाञ्ची, अवन्तिका और द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं।

इस श्लोकमें 'मथुरा' शब्द मथुरा-मण्डलवाची है। किन्तु, श्रीकृष्णलीलाकथाके वर्णनमें 'मथुरा' शब्द मथुरापुरीको ही लक्ष्य करता है, मथुरा-मण्डलको नहीं।

यदुपति शूरसेनके समयसे मथुरापुरी यादवोंकी राजधानी रही है। यद्यपि ययातिके अभिशापसे यदुवंशियोंका राज्याभिषेक नहीं होता था और यदुवंशी राजमुकुट धारण नहीं करते थे, फिर भी उनका सम्मान और सम्पद् तात्कालिक राजाओंकी तुलनामें कुछ कम नहीं था। इसलिए श्रीमद्भागवतमें मथुरापुरीका यादवोंकी राजधानीके रूपमें वर्णन हुआ है।

महाराज परीक्षितके निकट मथुराका पुरातन वृत्तान्त वर्णन करते समय श्रीशुकदेव गोस्वामीको मथुराका माहात्म्य और मथुरा-वासियोंका सौभाग्य स्फूर्ति होनेके कारण उन्होंने परमानन्दसे कहा—'भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः।' अर्थात् भगवान् मथुरामें नित्य ही निवास करते हैं। जिनके ऐश्वर्य एवं माधुर्यकी तुलना प्राकृत-अप्राकृत अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंमें तथा वैकुण्ठमें भी खोज करनेपर नहीं मिलती, ऐसे स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ अपने रूप, गुणसे युक्त और लीला-विलास परायण हैं एवं जिस मथुराके अधिवासी कीट, पतङ्ग, वृक्ष, लता तक भी श्रीभगवान्के अतिप्रिय हैं, ऐसी मथुरापुरीकी महिमाका क्या अन्त है?

पद्मपुराणमें मथुराका इस प्रकार अतुलनीय माहात्म्य वर्णन हुआ है—“अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी।” अर्थात् स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ नित्य नये-नये लीलारसका आस्वादनकर परितृप्त होते हैं, ऐसी मधुपुरी वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है और वैकुण्ठसे भी अधिक सौभाग्यवती है।

गोपालतापनी श्रुतिमें कहा गया है कि श्रीभगवान्की नित्यलीला विलासभूमि मथुरा हमारे वासस्थानकी भाँति जड़पदार्थ नहीं है, बल्कि

मथुरा चिद्-पदार्थ और ब्रह्मस्वरूप है। करुणामय श्रीभगवान् जगतके जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए उनके चिन्मयधामको प्राकृतकी भाँति सजाकर मर्त्यलोकमें प्रकाश कर रखे हैं, किन्तु चिन्मयधामको देखनेके चक्षु हमारे पास नहीं हैं। महाप्रलयके समय अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड चूर्ण-विचूर्ण हो जानेपर भी मथुरा-मण्डल अविकृत भावसे ही रहता है, प्रलयका कम्पन मथुरा-मण्डलको स्पर्श नहीं कर पाता है। मथुरामें कालका प्रभाव नहीं है, समस्त कालोंके नियन्ता श्रीभगवान् अपने प्रिय वासस्थानकी सर्वदा ही रक्षा और पालन करते हैं। अतएव भगवान्के स्वरूप, नाम तथा भगवान्के धामके प्रति प्राकृत बुद्धि रखना महापराध-जनक है। उनमें अप्राकृत बुद्धि आनेसे ही जीव कृतकृतार्थ हुआ करता है, इसमें सन्देह नहीं है।

पद्मपुराणमें श्रीभगवान्ने स्वयं कहा है—“अहो! दुराशय व्यक्ति मेरे नित्यधाम मथुराका तत्त्व नहीं जानते। ब्रह्मादि सुरेन्द्रगण, अनन्त जैसे नागेन्द्र एवं नारदादि मुनीन्द्रगण सर्वदा इस धामकी स्तुति करते हैं, यह धाम मेरे लिए भी मनोहर है। यहाँ तक कि मेरे ही श्रीविग्रह-तुल्य है।” पद्मपुराणमें और भी कहा गया है—“मथुरा सकाम व्यक्तियोंके लिए कामप्रद, मुक्तिकामीके लिए मुक्तिप्रद और भक्तिकामीके लिए भक्तिप्रद है। अतः कौन व्यक्ति ऐसे स्थानका आश्रय करनेका अभिलाषी नहीं होगा?”

अयोध्या, मथुरा जैसे सात मुक्तिक्षेत्र समस्त शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे छह क्षेत्रोंमें मुक्ति प्राप्ति ही सर्वश्रेष्ठ फल है, किन्तु मुक्तोंके लिए भी प्रार्थनीय हरिभक्ति मथुरामें ही प्राप्त होती है। वराहपुराणमें वर्णन है—“अन्य स्थानोंपर जो समस्त पाप किये जाते हैं, वे तीर्थोंमें गमन करनेसे ही क्षय होते, किन्तु तीर्थमें कोई पाप करनेसे वह वज्रलेपकी भाँति होता है, अर्थात् वह किसी भी प्रकारसे क्षय नहीं होता है। सभी तीर्थोंमें यही नियम है, किन्तु मथुराकी कुछ विशेषता है, मथुरामें कोई भी पाप करनेसे वह मथुरावाससे ही क्षय होता है। मथुरापुरी स्वयं-भगवान्का लीला-क्षेत्र होनेसे स्वभावतः ही वह परम पुण्यशाली है, अतः वहाँ किसी भी प्रकारसे पाप रह नहीं सकता ॥” २७-२८ ॥

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।

देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥

अन्वयः—तस्यां तु (उस मथुरापुरीमें) कर्हिचित् (कदाचित् कालमें) शौरिः (शूरवंशमें उत्पन्न) वसुदेव (श्रीवसुदेवजी) कृतोद्वह (विवाह करके) सूर्यया (नव-विवाहिता) देवक्या सार्द्धं (देवकीके साथ) प्रयाणे (विवाहके पश्चात् अपने घरमें जानेके लिए) रथम् आरुहत् (रथमें जाकर बैठे) ॥ २९ ॥

अनुवाद—एक समय शूरवंशीय श्रीवसुदेव उसी मथुरापुरीमें विवाह करके अपनी नव-विवाहिता पत्नी देवकीके साथ अपने घर जानेके लिए रथपर सवार हुए ॥ २९ ॥

सारार्थदर्शिनी—सूर्यया नवोदया । प्रयाणे विवाहोत्तरदिवसे निजगृहं प्रयातुम् ॥ २९ ॥

भावानुवाद—‘प्रयाणे’—विवाहके दूसरे दिन श्रीवसुदेव महाराजने ‘सूर्यया’—नव-विवाहिता पत्नी देवकीके साथ, अपने घर जानेके लिए रथपर आरोहण किया ॥ २९ ॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।

रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥

अन्वयः—उग्रसेनसुतः (उग्रसेनका पुत्र) कंस (कंस नामक राजा) रौक्मैः (स्वर्ण-मण्डित) रथशतैः (बहुत-से रथों द्वारा) वृतः (परिवेष्टित होकर) स्वसुः (अपनी बहन देवकीका) प्रियचिकीर्षया (प्रिय कार्य करनेके लिए) हयानां (देवकीके रथवाहक घोड़ोंकी) रश्मीन् (लागाम) जगृहे (धारण कर ली अर्थात् देवकीके रथके सारथीका कार्य किया) ॥ ३० ॥

अनुवाद—उग्रसेन महाराजके पुत्र कंस सैकड़ों स्वर्णमय रथोंसे परिवृत होकर (घिरकर) वहाँ पहुँचा तथा अपनी बहन देवकीके प्रीतिविधानकी इच्छासे उसने देवकीके रथवाहक घोड़ोंकी लगाम पकड़ ली ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—भग्न्या इत्यपि पाठः। भग्नीं भगिनीञ्चेति द्विरूपकोषः। रश्मीन् प्रग्रहान् ॥ ३० ॥

भावानुवाद—कहीं-कहीं 'स्वसुः' के स्थानपर 'भग्न्याः'—ऐसा पाठान्तर भी पाया जाता है। 'भग्नी' और 'भगिनी'—ये दोनों ही शब्द 'द्विरूप' नामक कोषमें पाये जाते हैं। अपनी बहन देवकीका प्रिय कार्य करनेकी कामनासे महाराज उग्रसेनका पुत्र कंस स्वयं ही देवकीके रथवाहक घोड़ोंकी लगाम पकड़कर सारथीका कार्य करने लगा ॥ ३० ॥

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम्।
अश्वानामयुतं सार्द्धं रथानाञ्च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥
दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते।
दुहित्रे देवकः प्रादाद् याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—याने (देवकीके अपने पतिके घर जानेके समयमें) दुहितृवत्सलः (कन्याके प्रति स्नेहपरायण) देवकः (देवकीके पिता देवकने) दुहित्रे (कन्या देवकीके विवाहमें) चतुःशतम् (चारसौ) हेममालिनाम् (स्वर्णमालासे परिशोभित) गजानां (हाथी) अयुतं (दस हजार) अश्वानां सार्द्धम् (घोड़ोंके साथमें) त्रिषट्शतम् (अठारह सौ) रथानां (रथ) च (और) द्वे शते (दो सौ) सुकुमारीणां (सौन्दर्य माधुर्यवती) [तथा] समलंकृते (वस्त्र, अलङ्कार आदि द्वारा विभूषित) दासीनां (दासियाँ) पारिबर्हम् (दहेजके रूपमें) प्रादात् (प्रीतिपूर्वक दान दी) ॥ ३१-३२ ॥

अनुवाद—देवकीके पिता देवक अपनी पुत्रीसे अत्यन्त प्रीति करते थे। इसलिए उन्होंने अपनी पुत्रीका दामादके गृह गमनके समय स्वर्णकी मालाओंसे विभूषित चार-सौ हाथी, दस हजार घोड़े, अठारह-सौ रथ तथा विविध वस्त्र-अलङ्कारोंसे परिशोभित दो-सौ नव-यौवना दासियाँ दहेजके उपहार-स्वरूपमें प्रदान कीं ॥ ३१-३२ ॥

सारार्थदर्शिनी—पारिबर्हम् उपस्करम्। याने प्रयाणसमये ॥ ३१-३२ ॥

भावानुवाद—‘पारिबर्ह’—विवाहमें दिये जानेवाले उपहार। ‘याने’—वर-वधुके गृहगमनके समय ॥ ३१-३२ ॥

शङ्खतुर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुभयः समम्।
प्रयाणप्रक्रमे ^(१)तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—तात (हे वत्स परीक्षित्!) वरवध्वोः (वसुदेव-देवकीके) प्रयाणप्रक्रमे (जानेके समय) शङ्ख-तुर्य-मृदङ्गाः (शङ्ख, तुरी, मृदङ्ग) दुन्दुभयः च (और दुन्दुभि नामक वाद्ययन्त्र विशेष आदि) समं (सभी एकसाथ) सुमङ्गलं (मङ्गल ध्वनि करते हुए) नेदुः (बजने लगे) ॥ ३३ ॥

अनुवाद—हे वत्स परीक्षित्! वर-वधूकी यात्राके प्रारम्भमें शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि सभी वाद्य-यन्त्र एक साथ मङ्गल-ध्वनि करने लगे ॥ ३३ ॥

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक्।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥

अन्वयः—पथि (रास्तेमें) प्रग्रहिणं (घोड़ेकी लगाम पकड़नेवाले) कंसम् आभाष्य (कंसको सम्बोधितकर) अशरीरवाक् (अकाशवाणीने) आह (कहा) अबुध (हे बुद्धिहीन!) [तुम्] यां (जिस देवकीको) वहसे (रथमें उसके पतिके घर ले जा रहे हो) अस्या (इसी देवकीके) अष्टमगर्भः (आठवें गर्भकी सन्तानके द्वारा) त्वां हन्ता (तुम्हारा वध होगा) ॥ ३४ ॥

अनुवाद—कंस घोड़ोंकी लगाम पकड़कर रथ चला रहा था, उसी समय मार्गमें दैववाणी (आकाशवाणी) उसे सम्बोधितकर कहने लगी—“रे मूर्ख! तू जिसे रथमें बिठाकर ले जा रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तेरे प्राणोंका संहार करेगा ॥” ३४ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रग्रहिणं गृहीताश्वपाशम्। आभाष्य—‘अरे कंस!’ इति सम्बोध्य। पुत्र इत्यनुक्त्वा गर्भपदोपन्यासोऽष्टम्यां कन्यायां दृष्टायामपि कंसस्य सन्देहाभावाय। ‘देवक्यां स्वजनन्यामतिस्नेहवन्तं कंसं कथं भगवान् हन्यात्?’ इति

(१) ‘तावत्’ के स्थानपर ‘तात’ पाठान्तर है।

चिन्ता-व्यग्राणां देवानां तस्यां कंसस्यापराधोत्पादनार्थमियमाकाशेऽदृष्टशरीराणां तेषां वाणी ज्ञेया। स्वजन्मनि आनकदुन्दुभिघोषं स्वस्माद्भावि भगवदवतार-सूचकं मात्रादि-मुखात् श्रुतवतो वसुदेवस्य तदर्थ-निश्चयार्थं। वसुदेवमुखात् श्रोष्यन्त्या देवक्याश्च, 'हन्त मत्कुक्षौ भगवान् जनिष्यत' इत्यानन्दार्थं। मरीचिसुतानां षण्णां कंसहस्तवधेन शापोद्धारार्थञ्च ॥ ३४ ॥

भावानुवाद—आकाशवाणीने 'प्रग्रहिणं'—घोड़ोंकी लगाम पकड़नेवाले सारथी कंसको 'आभाष्य'—'रे मूढ़ कंस!' इस प्रकारसे सम्बोधन करके कहा—'तू जिसे इतनी प्रीतिसे उसके पतिके घर ले जा रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तेरे प्राणोंका संहार करेगा।' यहाँ 'पुत्र' न कहकर गर्भ (आठवें गर्भकी सन्तान) कहा गया है। इसका कारण यह है कि देवकीकी गोदमें आठवें गर्भके रूपमें कन्याको देखकर भी कंसके मनमें उसके द्वारा अपने संहारके विषयमें कोई सन्देह न हो।

यदि प्रश्न हो कि आकाशवाणी क्यों हुई? तो इसके समाधानके लिए टीकाकार निम्नलिखित कारण दे रहे हैं—(१) भगवान् श्रीकृष्ण अपनी जननी देवकीके प्रति अत्यधिक स्नेहशील कंसका किस प्रकारसे वध करेंगे?—इस चिन्तासे व्याकुल होकर देवताओंने देवकीके प्रति कंसके अपराधको उत्पन्न करनेके लिए बादलोंमें छिपकर अदृष्ट अर्थात् अशरीरि रूपसे वाणी कही अर्थात् आकाशवाणी की। अतएव बादलोंमें छिपकर जो वाणी कही गयी, वह देवताओंकी ही वाणी है, ऐसा समझना चाहिये।

(२) श्रीवसुदेव महाराजने अपनी माता आदिसे सुना था कि उनके जन्मके समय आकाशमें आनक-दुन्दुभि (नगाड़े) बजे थे, जो भविष्यमें उनके माध्यमसे भगवान्‌के अवतरित होनेके सूचक थे। श्रीवसुदेव महाराजको इस विषयमें दृढ़-निश्चय करानेके लिए आकाशवाणी हुई थी।

(३) श्रीवसुदेवके मुखसे श्रवण करके देवकी देवीने भी कहा—'अहो! मेरे गर्भसे भगवान् अवतीर्ण होंगे'—इस प्रकारसे देवकीके ऐसे आनन्दको बढ़ानेके लिए।

(४) मरीचिके छह पुत्रोंकी कंसके हाथोंसे मरकर शापसे मुक्ति भी आकाशवाणीके प्रयोजनको व्यञ्जित कर रही है ॥ ३४ ॥

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः।

भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—इति उक्तः (दैववाणी सुनकर, किन्तु उसका अर्थ विचार न करके ही) खलः (सर्पोंकी भाँति क्रूरमति) पापः (पाप स्वभावयुक्त) भोजानां कुलपांसनः (भोजकुलके कलङ्क-स्वरूप) सः (कंसने) खड्गपाणिः (हाथमें खड्ग धारणकर) भगिनीं (अपनी बहन देवकीका) हन्तुम् (वध करनेके लिए) आरब्ध (प्रवृत्त होकर) कचे (उसके केशोंको) अग्रहीत् (पकड़ लिया) ॥ ३५ ॥

अनुवाद—भोजकुलके कलङ्क-स्वरूप, पापात्मा और क्रूरमति कंसने इस आकाशवाणीका श्रवण करनेके साथ-ही-साथ बहन देवकीका विनाश करनेके उद्देश्यसे एक हाथमें तलवार धारण कर ली और दूसरे हाथसे देवकीके केशोंको पकड़ लिया ॥ ३५ ॥

सारार्थदर्शिनी—कुलं पांसुं करोतीति कुलपांसनः, कुलदूषण इत्यर्थः। आरब्ध इत्यादि, कर्त्तरि कर्मणि चेति क्तः। कचेऽग्रहीदिति—येनैव वामहस्तेन भगिन्याः प्रीत्यतिशयार्थं रथवाहकाश्चपाशं जग्राह, तेनैव हस्तेन सहसा तदैव भगिन्या वधार्थं तस्याः केशपाशं जग्राह। एवं प्रतोदं त्यक्त्वा दक्षिणपाणिना खड्गं जग्राह, इत्यहो खलजनस्नेहस्य लोकलज्जा-धर्मभयनिरपेक्षमेव घातुकत्वमिति भावः ॥ ३५ ॥

भावानुवाद—कुलको कलङ्कित करनेवाला अर्थात् भोजकुलका कुलांगार-स्वरूप कंस। 'आरब्धः' अर्थात् हत्या करनेके लिए उद्यत हो गया। 'कचेऽग्रहीत्'—कंसने अपनी बहन देवकीके प्रति प्रीतिकी अधिकताके कारण रथके सारथीके रूपमें अपने जिस बायें हाथसे घोड़ोंकी लगामको पकड़ी थी, सहसा उसी बायें हाथसे उसने अपनी प्यारी बहनका वध करनेके उद्देश्यसे उसके केश पकड़ लिये। उसी प्रकार दाहिने हाथसे चाबुकको छोड़कर तलवार उठा ली। अहो! दुष्टजनोंके स्नेहमें लोकलज्जा अथवा धर्मभय आदिकी कोई अपेक्षा ही नहीं होती, वह स्वयं ही घातक-तुल्य होता है—यह भाव है ॥ ३५ ॥

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम्।

वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—[तब] महाभागः (महात्मा) वसुदेव (श्रीवसुदेवने) जुगुप्सितकर्माणं (स्त्रीवधरूप पाप आचरणमें प्रवृत्त) नृशंसं (अतिशय क्रूर) निरपत्रपं (निर्लज्ज) तं (कंसको) परिसान्त्वयन् (स्तुति आदि साम मार्गके उपायों द्वारा समझाते हुए) उवाच (कहा) ॥ ३६ ॥

अनुवाद—उस समय महात्मा श्रीवसुदेव उस स्त्री-हननरूप निन्दित कर्ममें उद्यत, निर्लज्ज और क्रूर कंसको स्तुति आदि साम-मार्गके द्वारा सान्त्वना देते हुए कहने लगे ॥ ३६ ॥

सारार्थदर्शिनी—नृशंसं क्रूरं। महाभाग इति—स्वसाक्षादेव स्वभार्या हन्तुं प्रवृत्तमपि तं प्रति क्रोधानुदयात्, धैर्य-गाम्भीर्य-क्षमा-चातुर्यादि-गुणसमुद्रत्वाच्च। यद्वा, ननु तादृशो महाक्रूरः कथं तस्य सान्त्वनं शृणुयात्? तत्राह—महाभाग इति। भाग्यवतो जनस्य प्रातिकूल्यं व्याघ्र-सर्पादिरपि नैव करोतीति भावः ॥ ३६ ॥

भावानुवाद—कंस 'नृशंस' अर्थात् क्रूर है। श्रीवसुदेव 'महाभाग' अर्थात् प्रशान्तचित्त हैं, क्योंकि (१) अपने ही समक्ष अपनी पत्नीका वध करनेमें प्रवृत्त कंसके प्रति उनमें तनिक भी क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ, तथा (२) वे धैर्य, गम्भीरता, क्षमा और चतुरता आदि गुणोंके महान् समुद्र हैं।

अथवा यदि प्रश्न हो कि वैसा महाक्रूर कंस किसलिए श्रीवसुदेव महाराजके सान्त्वनापूर्ण वचनोंको सुनेगा? इसके उत्तरमें कहते हैं कि श्रीवसुदेव 'महाभागः' अर्थात् महात्मा हैं। भाग्यशाली व्यक्तियोंके प्रति बाघ तथा सर्प आदि कोई भी प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकते—यह भाव है ॥ ३६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पतितपावनी गङ्गाके स्पर्शसे या दर्शनमात्रसे ही जीवोंके समस्त पाप दूर हो जाते हैं और जीव संसारसे मुक्त हो जाता है, परन्तु ऐसी गङ्गामें भी मगरमच्छ आदि हिंसक प्राणी रहते

हैं और उनके अत्याचारसे गङ्गाभक्ति-परायण व्यक्ति भी भयभीत होते हैं, पीड़ित भी होते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी उन्हें मृत्युग्रस्त भी होना पड़ता है। पूर्वश्लोकमें वर्णित श्रीभगवान्‌के लीलाक्षेत्र परम पवित्र मथुरामें भी कंस आदि असुरोंको स्थान मिला था एवं उनके अत्याचारोंसे श्रीकृष्णके भक्त अत्यन्त उत्पीड़ित हुए थे। न जाने, इस भक्त-निग्रह (दण्ड) के पीछे भक्त-रक्षक भगवान् श्रीकृष्णकी कौन-सी करुणा छिपी हुई है?

श्रीभगवान्‌के आविर्भावसे पूर्व मथुरामें जिस प्रकारसे असुरोंने भक्तोंपर अत्याचार किया था, श्रीकृष्णके जनक-जननी श्रीवसुदेव-देवकीके विवाहके वर्णन-प्रसङ्गमें श्रीशुकदेव महाराज उसीको श्रीपरीक्षित् महाराजसे कहने लगे—हे महाराज परीक्षित्! श्रीकृष्ण-अवतारके कुछ दिन पहले मथुरामें शूरसेन नामक नरपतिके पुत्र वसुदेवजी देवकराज-नन्दिनी देवकीके साथ विवाह करके दूसरे दिन अपने घर जाने लगे। देवकने अपनी कन्याकी विदायीके समय बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, अलङ्कार आदि उपहार दहेजमें दान दिये। यात्राके समय बहुत प्रकारके वाद्ययन्त्रोंकी ध्वनि और पुरवासियोंकी आनन्द ध्वनि मथुरापुरीमें चारों ओर गूँजने लगी। वर-वधू भी सुसज्जित होकर रथमें चढ़कर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। ऐसे समयमें कंस वहाँ उपस्थित हुआ। कंस देवकके भ्राता उग्रसेनका पुत्र और देवकीका बड़ा भाई था। यद्यपि कंस देवकीका सहोदर (सगा) भाई नहीं था, तथापि वह देवकीको सगे भाईसे भी अधिक प्यार करता था। देवकी कंससे आयुमें बहुत छोटी थी, इसलिए सम्बन्धसे बहन होनेपर भी आयुमें कन्याके समान थी। इसीलिए कंस अपने रथसे उतरकर बड़े स्नेहसे देवकी-वसुदेवके रथमें बैठकर सारथिके हाथसे घोड़ोंकी लगाम लेकर स्वयं रथ चलाने लगा।

श्रीवसुदेव महाराज कंसके लिए कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं थे—

तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो नृप॥

शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देव रक्षिता।

सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः॥

(श्रीमद्भा० ९/२४/२२-२३)

अर्थात् देववान, उपदेव आदि देवकके चार पुत्र थे और धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी ये सात कन्याएँ थीं। श्रीवसुदेव महाराजने इन सात बहनोंका ही पाणिग्रहण किया था।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकसे जाना जाता है कि देवकी देवककी सबसे छोटी कन्या थी। इसके पूर्व वसुदेवजीने देवकीकी छह बहनोंसे विवाह किया था, इसलिए श्रीवसुदेवका कंसके साथ बहुत दिनोंसे परिचय था। आज कन्याके समान स्नेहपात्री सबसे छोटी बहनके साथ विवाहसे कंसके साथ वसुदेवकी घनिष्ठता मानो और भी गाढ़ी हो उठी, अतएव कंस राजपुत्र होकर भी सारथीका कार्य करनेमें कुण्ठित नहीं हुआ। प्रबल स्नेहमें सबकुछ ही सम्भवपर होता है। कंस श्रीवसुदेव महाराजसे वार्त्तालाप करते हुए और बहन देवकीकी ओर स्नेह दृष्टिपात करते-करते धीरे-धीरे रथ चला रहा था कि इतनेमें सहसा आकाशवाणी हुई—“अरे मूर्ख! जिस बहनको तू इतने प्यारसे ले जा रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तुम्हारा वध करेगा।”

यह सुनते ही सचकित नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए कंसने घोड़ेकी लगाम छोड़कर तलवार निकाल ली तथा दूसरे हाथसे देवकीकी चोटीको पकड़ लिया। किन्तु हाय! श्रीकृष्ण-विमुखजनोंकी प्रीति-स्नेहका कुछ भी मूल्य नहीं है, क्योंकि उनकी प्रीति स्वार्थयुक्त है। स्वार्थमें थोड़ी-सी भी हानि होनेके साथ-ही-साथ उसका पर्वत-तुल्य स्नेह-प्रेम आकाशमें बिजली चमकनेकी भाँति विलीन हो जाता है। जिस बहनके प्रति कंसकी इतनी स्नेह-प्रीति थी, दैववाणी सुनते ही वह क्षणभरमें बादलोंमें बिजली चमकनेकी भाँति शून्यमें मिल गयी। कंस दुष्टस्वभाववाला, मूर्तिमान पाप और भोजकुलका कुलांगार था और यही उसका उपयुक्त कर्म था। प्रीति-स्नेह करना उसका स्वाभाविक धर्म नहीं था, उसका प्रेम-प्रीति स्वार्थका ही रूपान्तर था। नीच व्यक्तिका स्वभाव ऐसा ही होता है। वे बिना कारण ही दूसरोंकी हिंसा करते हैं, दूसरोंपर अत्याचार करते हैं। भोजकुलमें कंसके अतिरिक्त दूसरा कोई और भी पापी था, ऐसा सुना नहीं गया है।

‘देवकीके आठवें गर्भकी सन्तान द्वारा तुम्हारा वध होगा’—यह सुननेके साथ-ही-साथ कंसने विचार करनेका भी अवसर नहीं लिया और हिंसामें प्रवृत्त हो गया।

जब असुरोंके अत्याचारसे श्रीभगवान्‌के भक्तगण उत्पीड़ित होते हैं, उसी समय भक्तवत्सल श्रीभगवान्‌ भक्तोंकी रक्षाके लिए मर्त्यजगत्‌में आविर्भूत होते हैं। किन्तु, यदि असुरगण भगवद्भक्तोंके शरणागत या उनकी सेवामें रत रहें, तब श्रीभगवान्‌का पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेका कोई प्रयोजन नहीं रहता। यहाँ देखा जा रहा है कि श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त वात्सल्यप्रेमके आधार वसुदेव और देवकीपर यदि कंस अत्याचार करना आरम्भ करे, तो श्रीभगवान्‌ अपने भक्तोंकी रक्षाके अतिशीघ्र अवतीर्ण होंगे। किन्तु कंस वसुदेव-देवकीपर अत्याचार न कर उनकी सेवामें रत हुआ है, सारथी होकर उनका रथ चला रहा है, अतः श्रीभगवान्‌के अवतीर्ण होनेका प्रयोजन क्या है? श्रीकृष्णलीला प्रकट होगी तथा उसे दर्शनकर हम कृतार्थ होंगे—यह सोचकर देवतागण पूर्ण रूपसे व्याकुल हो गये। किन्तु कंसके भावको देखकर उन्होंने सोचा कि कंस यदि वसुदेव-देवकीका सेवक हो जाता है, तो हम श्रीकृष्णलीलाके दर्शनसे वञ्चित होंगे। इसलिए देवताओंने ऐसी आकाशवाणी की। इससे देवताओंका मनोरथ पूर्ण हुआ—कृष्णकी भावि जननी देवकीका वध करनेके लिए कंसके उद्यत होनेपर देवता भी आश्वस्त हुए कि अब श्रीकृष्णके अवतारमें अधिक विलम्ब नहीं होगा।

श्रीभगवान्‌के भक्तोंकी सेवा करनेसे असुरोंका हृदय शोधित होता है और सुरपूज्य होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु कंसने वसुदेव-देवकीकी सेवा श्रीभगवद्भक्तकी बुद्धिसे नहीं की, अपितु बहन और दामाद (जीजा) बुद्धिसे की। अतः वह सेवा भक्तकी सेवा नहीं, वह स्वार्थपर सेवा है। ‘श्रीभगवान्‌के भक्त’ इस बुद्धिसे श्रीभगवान्‌के साथ सम्बन्ध रखकर भक्तोंकी सेवा करनेसे असुरभाव दूर होता है और श्रीभगवान्‌की कृपाका सञ्चार होता है। किन्तु, ‘मेरे आत्मीय सम्बन्धी’—इस बुद्धिसे अपनेसे सम्बन्धित भक्तोंकी सेवा करनेसे वह अभिमानमें ही पर्यवसित होती है। विशेषतः आत्मसम्बन्धीय

सभी कार्य स्वार्थमूलक होते हैं एवं स्वार्थमें हानि होनेसे वह कार्य नहीं होता। श्रीभगवान्से सम्बन्धित कार्य स्वार्थ-विरोधी होते हैं, उनमें स्वार्थ-बुद्धि रहनेपर भी श्रीभगवत्-सम्बन्धके गुणसे स्वार्थ दूर हो जाता है। इसीलिए देवताओंने विचार किया कि इस आत्मीय बुद्धिसे सेवा करनेपर कंसका हृदय तनिक भी शोधित नहीं होगा। केवलमात्र श्रीभगवान्के पृथ्वीपर आनेमें विलम्ब होगा। यदि दैववाणीके द्वारा कंसके स्वार्थमें हानि पहुँचायी जाय, तब ऐसा सेवाभास (सेवा अनुकरण) उसमें नहीं रहेगा, तथा उसका बहिर्मुख स्वभाव प्रकाशित हो पड़ेगा। स्वार्थ-हानिकी बात सुनकर भी यदि कंस वसुदेव-देवकीकी सेवामें रत रहता है, तब इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि इससे धीरे-धीरे कंसका हृदय विशुद्ध हो जायेगा और पृथ्वीका भार भी अपने-आप उतर जायेगा। अतएव देवताओंने केवलमात्र स्वार्थ और हिंसासे प्रेरित होकर ही दैववाणी नहीं की, अपितु कंसके स्वार्थमें विघ्नकी घोषणा करके कंसकी सेवाकी परीक्षा करनेकी वासना भी उनमें थी।

ऐसे स्वार्थसे अन्धे क्रूर कंसके हृदयमें स्नेहका अङ्कुर उत्पन्न करानेके लिए श्रीवसुदेवजीने निश्चय किया। नीतिशास्त्र कहते हैं—कोई भी कार्य सिद्ध करनेके लिए साम, दान, भेद और दण्ड—ये चार उपाय अपनाने चाहिये। श्रीवसुदेवने विचार किया कि इन चार उपायोंमें 'दान' एवं 'दण्ड' के द्वारा कंसको बाध्य करना मेरे वशकी बात नहीं है। इसका कारण है कि विषयासक्त व्यक्तियोंको कभी भी 'दान' देकर सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनकी अभिलाषाका अन्त भी नहीं होता है। कंसको 'दण्ड' देनेकी शक्ति भी मेरे पास नहीं है, इसलिए 'साम' और 'भेद' ही यहाँ मेरे लिए अवलम्बनीय हैं।

वैष्णव-तोषणीकार नीतिशास्त्रका उदाहरण देते हुए कह रहे हैं—

सम्बन्धलाभोपकृति ह्यभेदो गुण कीर्तनं ।

साम पञ्चविधं भेदो दृष्टादृष्टा भयं वचः ॥

अर्थात् सम्बन्ध, लाभ, उपकार, अभेद एवं गुणकीर्तन भेदसे 'साम' पाँच प्रकारका है, एवं इहलोक और परलोक—दोनोंमें भय दिखलानेका नाम 'भेद' है।

श्रीकृष्णके चरणकमलोंके भजनके प्रभावसे श्रीवसुदेव महाराजके हृदयमें कंसके प्रति तनिक भी क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। परन्तु वे कंसको उसकी बहनकी हत्याके पापसे निवृत्त करानेके लिए धीर-स्थिर चित्तसे बहुत-से सद्-उपदेश देने लगे ॥ २९-३६ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः।

स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥

अन्वयः—श्रीवसुदेव उवाच (महाराज श्रीवसुदेवने कहा) भोजयशस्करः (भोजकुलके यश विस्तारकारी) शूरैः (वीर पुरुषोंके द्वारा) श्लाघनीयगुणः (प्रशंसनीय शौर्य-वीर्य आदि गुणवाले) सः (लोक प्रसिद्ध) भवान् (आप जैसे व्यक्ति) कथं (कैसे) उद्वाहपर्वणि (इस विवाहरूप मङ्गल उत्सवमें) स्त्रियं (स्त्रीजाती अबला) [और विशेषकर] भगिनीं (असीम स्नेहपात्री छोटी बहनको) हन्यात् (वध कर सकते हैं?) [अर्थात् आप जैसे व्यक्तिके लिए ऐसा करना कदापि उचित नहीं है] ॥ ३७ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेव महाराजने कहा—हे कंस! तुम भोजराजवंशके गौरव-स्वरूप हो। वीरपुरुष तुम्हारी गुणावलीकी प्रशंसा किया करते हैं। तुम्हारे जैसा गुणवान् व्यक्ति अबला स्त्री-जातिकी—विशेषकर अपनी छोटी बहनके विवाहोत्सवके ही दिन कैसे उसका वध कर सकता है? ॥ ३७ ॥

सारार्थदर्शिनी—सम्बन्धलाभावपकृत्यभेदौ गुणकीर्तनमिति प्रथमं पञ्चविधं सामाह—श्लाघनीयेति गुणकीर्तनं, भोजेति सम्बन्धः, भगिनीमित्यभेदः, स्वहन्तृजनन्या अपि स्त्रिया अवधेन धार्मिकत्व-यशोलाभः, मम स्वभार्याप्राप्त्या परोपकारः। स्त्रियं, तत्रापि भगिनीं, तत्राप्युद्वाहपर्वणि, तत्रापि भवान् महायशस्वीति हनने ऐहिकं दुर्यशः पारत्रिकं नरकज्येति दृष्टादृष्टभयलक्षणो द्विविधो भेदश्च दर्शितः। वास्तवार्थस्तु विपरीतलक्षणया। यद्वा, श्लाघनीयेषु मध्ये गुणः न्यूनः। भोजः कलहवत्त्वेन

प्रसिद्धास्तेषां यशः कलहाधिक्यम्। स कथमेकां भगिनीं हन्यात्, अपि तु सर्वमेव कुलम्॥ ३७॥

भावानुवाद—कंसको देवकीकी हत्या करनेके लिए उद्यत देखकर श्रीवसुदेव महाराजने नीतिशास्त्रके अनुसार प्रारम्भमें सम्बन्ध, लाभ, उपकार, अभेद और गुणकीर्तन—इन पाँचों प्रकारके सामवचनोंके द्वारा, तत्पश्चात् इहलोक और परलोकके विषयमें भय-लक्षणरूपी दो प्रकारके भेद दिखलाकर उसे सान्त्वना देनेकी चेष्टा की।

पाँच प्रकारका 'साम' इस प्रकार है—(१) 'श्लाघनीयगुणः' अर्थात् वीरगण तुम्हारे गुणोंकी प्रशंसा करते हैं—इस वाक्यसे 'गुणकीर्तन', (२) 'भोजयशस्करः' अर्थात् भोजवंशके यशको वर्धित करनेवाले—इस वाक्यसे 'सम्बन्ध', (३) 'भगिनी' अर्थात् देवकी तुम्हारी बहन है—इस वाक्यके द्वारा 'अभेद', (४) 'स कथं स्त्रियं हन्यात्' अर्थात् तुम किस प्रकार स्त्रीकी हत्या करोगे—इस वाक्यके द्वारा अपना वध करनेवाले बालकको जन्म देनेवाली माता होनेपर भी, स्त्री होनेके कारण देवकीका वध नहीं करनेपर धार्मिक कहलानेसे यश प्राप्तिरूपी 'लाभ' तथा इससे (५) 'उद्वाहपर्वणि' अर्थात् विवाहोत्सवके अवसरपर मुझे मेरी पत्नीको प्रदान करके अर्थात् उसे जीवित छोड़नेसे तुम्हारा 'परोपकार' होगा।

'स्त्रियं'—एक तो देवकी स्त्री है, उसपर भी तुम्हारी बहन है, उसपर भी फिर उसके विवाहका उत्सव है, उसपर भी तुम महा-यशस्वी व्यक्ति हो, अतएव यशस्वी तुम्हारे द्वारा अपनी बहनकी हत्या करनेपर इसलोकमें तुम्हारा दुर्यश (निन्दा) होगा तथा परलोकमें भी नरक भोगना पड़ेगा—इस प्रकार दृष्ट और अदृष्ट भय लक्षणरूपी दो प्रकारका 'भेद' भी दिखलाया।

परन्तु वास्तविक अर्थ ठीक इसके विपरीत है, ऐसा समझना होगा। जैसे—'श्लाघनीय गुणः' अर्थात् यशस्वियोंमें अतिनिकृष्ट। 'भोजयशस्करः'—'भोज' अर्थात् भोजवंशके लोग कलह करनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध हैं, उनके 'यशः' अर्थात् उन सबसे अधिक कलह करनेमें समर्थ होनेके कारण तुम 'भोजयशस्कर' हो। ऐसा व्यक्ति

केवलमात्र एक बहनकी ही हत्या क्यों करेगा, वह तो सम्पूर्ण कुलका ही विनाश कर सकता है ॥ ३७ ॥

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।

अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—वीर (हे शौर्य-वीर्यशील कंस!) जन्मवतां (पुनः-पुनः जन्मग्रहणकारी जीवमात्रका ही) देहेन सह (शरीरकी सृष्टिके साथ-साथ) मृत्युः जायते (विधाताने ललाटमें मृत्यु भी लिख दी है) [उसके अनुसार ही] अद्य (जन्म लेते ही) वा (अथवा) अब्द शतान्ते वा (सौ वर्षके बाद भी) प्राणिनां (देहधारी जीवोंका) वै (निश्चित रूपसे) मृत्यु (मरण) ध्रुवः (अवश्यम्भावी है) ॥ ३८ ॥

अनुवाद—(यदि तुम कहो कि मृत्युके भयसे स्त्री-वधमें प्रवृत्त हुए हो, तो भी यह उचित नहीं है, क्योंकि) हे वीर! जो जन्म ग्रहण करते हैं, उनकी देहकी उत्पत्तिके साथ मृत्युकी भी उत्पत्ति होती है। आज ही हो अथवा सौ वर्षोंके पश्चात् हो, देहधारियोंकी मृत्यु अवश्यम्भावी है—यह अन्यथा होने अर्थात् टलनेवाली नहीं है ॥ ३८ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदप्यनिवृत्तं तं युक्त्या प्रबोधयन्, 'भो राजन्! मृत्युभयेनेमां हंसि चेत्, स मृत्युरपरिहार्य एव' इत्याह—मृत्युरिति। वस्तुतः तावज्जीवानां जन्ममृत्यु नैव स्तः, तदपि देहेन स्थूलदेहसम्बन्धेनैव हेतुना जन्मवतां स प्रसिद्धोऽस्पष्टमेव मृत्युर्जायते। कदा? अद्य वा अब्दशतान्ते वा। वा-शब्दाभ्यां सर्वथैव कालनिश्चयाभावे अब्दशतमध्ये वेत्यर्थः। तत्र प्रमाणमाह—मृत्युर्वै इति। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्योऽर्थ न त्वं शोचितुमर्हसि॥' (श्रीगी० २/२७) इति शास्त्रं स्मारयति। हे वीरेति—त्वं तु तस्माद्विभेतुं नैवार्हसीति भावः ॥ ३८ ॥

भावानुवाद—इतना कहनेपर भी कंसको देवकीका वध करनेसे पीछे हटता न देखकर श्रीवसुदेव महाराजने युक्तिपूर्वक सान्त्वना देते हुए कंससे कहा—“हे राजन्! यदि तुम अपनी मृत्युके भयसे इस देवकीका वध करना चाहते हो, तब वह मृत्यु तो अपरिहार्य है अर्थात् उससे तो कोई बच ही नहीं सकता।” इसीको बतलानेके लिए

ही श्रीवसुदेव महाराज 'मृत्युर्जन्मवता' आदि पद कह रहे हैं। वस्तुतः जीवात्माका जन्म या मृत्यु नहीं है, फिर भी 'देहेन सह' अर्थात् स्थूलदेहके सम्बन्धके कारण ही जन्म ग्रहणकारी जीवोंकी वह प्रसिद्ध मृत्यु भी अस्पष्ट रूपसे ही देहके साथमें ही उत्पन्न हो जाती है। वह मृत्यु कब होगी? वह आज ही हो अथवा सौ वर्षोंके पश्चात्, किन्तु मृत्यु अनिवार्य है। मूल श्लोकमें दो बार 'वा' शब्दका प्रयोग हुआ है। इसका यही अर्थ है कि सर्वथा ही कालकी अनिश्चिततावशतः सौ वर्षोंके अन्दर कभी भी मृत्यु हो सकती है।

इस विषयमें श्रीवसुदेव महाराज 'मृत्युवै' आदि पदके द्वारा कंसको शास्त्र-प्रमाणका स्मरण करा रहे हैं—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' (श्रीगी० २/२७) अर्थात् जिसने जन्म ग्रहण किया है उसकी मृत्यु निश्चित है और मृत व्यक्तिका पुनः जन्म भी निश्चित है। अतः इस अपरिहार्य (अवश्यम्भावी) विषयमें शोक करना उचित नहीं है। 'हे वीर!' अर्थात् तुम वीर हो, अतएव तुम्हारे लिए उस मृत्युसे भयभीत होना युक्तिसङ्गत नहीं है—यह भावार्थ है ॥ ३८ ॥

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।

देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—देहे (शरीरके) पञ्चत्वम् आपन्ने (मृत्युग्रस्त-प्राय होनेपर, किन्तु यथार्थतः मृत्युके पूर्वक्षणमें) कर्मानुगः (कर्माधीन) अवशः (अस्वतन्त्र) देही (जीव) देहान्तरं (कर्मफलके भोगके उपयुक्त दूसरा शरीर) प्राप्य (कर्मवशतः बिना प्रयासके ही प्राप्तकर) अनु (उसके पश्चात्) प्राक्तनं (पुराना अर्थात् पहला भोग किया हुआ) वपुः (शरीरको) त्यजते (त्याग देता है) ॥ ३९ ॥

अनुवाद—पाञ्चभौतिक देहके पञ्चतत्त्वोंमें मिल जानेपर (किन्तु यथार्थतः मृत्युके पूर्व क्षण ही) देही (जीवात्मा) कर्मवशतः बिना यत्नके ही दूसरे देहको प्राप्त करके पूर्व शरीरका परित्याग कर देता है ॥ ३९ ॥

सारार्थदर्शिनी—देहप्राप्तित्यागावेव जीवस्य जन्ममृत्यु, तौ त्वावश्यकावेवेत्याह—
देहे पञ्चत्वं मृत्युं आपन्ने आपन्नप्राये देहान्तरं प्राप्य अनु पश्चात् प्राक्तनं
वपुस्त्यजति। न च विषयभोगसाधनमेव देहो मे नङ्क्ष्यतीति विषीदितुमर्हसीत्याह—
कर्मानुग इति। यदि तव सुखभोगादृष्टमस्ति, तर्हि तत्रैव प्राप्तव्ये देह एव भोगो
भविष्यतीति भावः। तस्मादिदं स्त्रीवधलक्षणं पापं दुःखभोगसाधनं माकार्षीरिति
द्योतितम्॥ ३९ ॥

भावानुवाद—देहकी प्राप्ति और उसका त्याग ही जीवका जन्म
एवं मृत्यु है, किन्तु ये दोनों अवश्यम्भावी हैं। इसलिए कह रहे हैं
कि इस देहकी मृत्युदशाके उपस्थितप्राय होनेपर (अर्थात् मृत्युके कुछ
क्षण पहले) जीव दूसरा एक देह प्राप्त करनेके पश्चात् अपना पूर्व
देह त्याग देता है। अर्थात् नव देह प्राप्त करनेके बाद ही जीव
वर्तमान देहको त्यागता है। विषय भोग करनेके लिए साधन-स्वरूप
मेरा यह देह नष्ट हो जायेगा—इस कारणसे भी खेद करना उचित
नहीं है, इसीको 'कर्मानुग' इत्यादि पदके द्वारा बतला रहे हैं। यदि
तुम्हारे भाग्यमें सुखभोग है, तो वह भोग वहींपर अर्थात् भविष्यमें
प्राप्त होनेवाले देहमें ही अवश्य प्राप्त होगा। अतएव उस सुखकी
प्राप्तिके लिए स्त्री-वधरूप दुःखभोगके साधन-स्वरूप पाप-कार्य मत
करो—यह सूचित हुआ है॥ ३९ ॥

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।

यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः॥ ४० ॥

अन्वयः—यथैव व्रजन् (जैसे मार्गपर चलता हुआ) [कोई व्यक्ति]
एकेन पदा तिष्ठन् (पिछले पैरपर शरीरका भार धारणकर) एकेन
(दूसरे पैरसे) गच्छति (चलता है) [तथा] यथा (जैसे) तृणजलौका
(जोंक दूसरे तृणको पकड़नेके बाद ही पिछले तृणको छोड़ती है)
[वैसे] देही (जीव) कर्मगतिं गतः (कर्मके अनुरूप ही दूसरे देहको
धारणकर पूर्वदेहका त्याग करता है)॥ ४० ॥

अनुवाद—जिस प्रकार व्यक्ति चलते समय एक पैरको भूमिपर
स्थापित करनेके बाद ही दूसरे पैरको उठाता है, जिस प्रकार जोंक

एक नये तृणको पकड़नेके बाद ही पहले पकड़े हुए तृणको छोड़ती है, उसी प्रकार देहाभिमानी जीव भी अपने कर्मोंके अनुरूप शुभ या अशुभ किसी भी देहको ग्रहण करनेपर ही पूर्वदेहका परित्याग करता है ॥ ४० ॥

सारार्थदर्शिनी—उत्तरदेहप्राप्त्यनन्तरमेव पूर्वदेहत्यागे दृष्टान्तः—व्रजन् गन्ता पुरुषः यथा एकेनाग्रतो निहितेन पदा उत्तरप्रदेशे तिष्ठन्नेव पूर्वप्रदेशादुत्पाट्य पुरो निहितेनैकेन गच्छति, न तु युगपद् द्वाभ्यामेव पद्भ्यां पूर्वप्रदेशं परित्यज्यैव उत्तरं प्रदेशं गच्छतीत्यर्थः। अत्र प्राप्तित्यागौ वस्तुतः पृथिव्या एकस्यैवेत्यपरितुष्यन् दृष्टान्तान्तरमाह—यथा तृणजलौकेति। सा हि तृणान्तरमवष्टभ्यैव पूर्वं तृणं त्यजति। जलूकेति षष्ठस्वरमध्योऽपि पाठो ज्ञेयः ॥ ४० ॥

भावानुवाद—जीवात्मा दूसरी देहकी प्राप्तिके बाद ही वर्तमान देहको त्यागता है, इसीको उदाहरणके द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं। जिस प्रकार व्यक्ति चलते समय एक पैरको आगेकी भूमिपर स्थापित करनेके बाद ही दूसरे पैरको उठाता हुआ आगे बढ़ता है, न कि एक ही साथ दोनों पैरोंसे पहलेवाले स्थानको छोड़कर आगे बढ़ता है। इस उदाहरणमें पकड़ना और छोड़ना दोनों वस्तुतः एक ही पृथ्वीरूप आधारपर ही हैं, इसलिए इससे सन्तुष्ट न होकर दूसरा उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—जिस प्रकार जोंक दूसरे तिनकेको पकड़नेके बाद ही पहलेवाले तिनकेको छोड़ती है, उसी प्रकार देही जीव भी अपने कर्मानुसार दूसरे देहको धारण करनेके बाद ही वर्तमान देहका त्याग करता है। यहाँ 'जलुका'—ऐसा पाठान्तर भी है ॥ ४० ॥

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं
मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्
प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—दृष्टश्रुताभ्यां (राजा आदिका दर्शन और इन्द्र आदिका श्रवण अर्थात् दर्शन-श्रवणादि इन्द्रियों द्वारा सञ्चित संस्कारसे) मनसा

(मनके द्वारा) अनुचिन्तयन् (जाग्रत अवस्थामें पुनः-पुनः चिन्तन करते हुए) स्वप्ने (स्वप्नावस्थामें) यथा (जिस प्रकार) देहं (अपने शरीरको) ईदृशं (जाग्रत अवस्थामें सुने और दर्शन किये हुए विषयके अनुरूप देखता है) [अथवा] मनोरथेन (मनोरथके द्वारा अर्थात् राजादिका दर्शनकर वैसे ही राज-ऐश्वर्यके भोगकी लालसासे विभिन्न प्रकारकी कल्पनात्मक चिन्तनके द्वारा) अभिनिविष्टचेतनः (गाढ़ अभिनिवेशवशतः अपने शरीर-घरादिकी सुधबुध खोकर अपने शरीरको उस मनोरथके अनुरूप ही देखता है) (और फिर) तत् किमपि (अपने देहमें रहकर भी राजा आदि देहकी चिन्ता करके उसीमें आविष्ट होकर अपनेको) प्रपद्यते (मैं राजा हूँ, मैं इन्द्र हूँ, आदि मानता है) [उसके फलस्वरूप] अपस्मृति (अपनी देहको भी भूल जाता है) [उसी प्रकार कर्मवशः जीव पूर्वदेहको त्यागकर दूसरे देहको प्राप्त करता है] ॥ ४१ ॥

अनुवाद—जिस प्रकार कोई दरिद्र मनुष्य जाग्रत अवस्थामें राजादिका ऐश्वर्य देखकर और पारलौकिक इन्द्रादिके ऐश्वर्यको श्रवणकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और जब उसका चिन्तन करते-करते उसीमें आविष्टचित्त होकर स्वप्नमें अपनेको ही राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करता है, तो उस समय अपनी वह दरिद्रावस्थाके शरीरको भूल जाता है। अथवा कोई व्यक्ति ऐश्वर्यकी लालसासे जाग्रत दशामें भी मन-ही-मन उन्हीं विषयोंका प्रगाढ़ चिन्तन करते-करते उन्हींमें निविष्ट होकर अपनेको राजादि मानकर अपने स्थूलदेहको भूल जाता है। उसी प्रकार जीव भी अपने कर्म और कामनाके वशीभूत होकर दूसरे शरीरको प्राप्तकर अपने पूर्वदेहको भूल जाता है अर्थात् त्याग करता है ॥ ४१ ॥

सारार्थदर्शिनी—जीवत्यपि देहे प्रतिदिनं देहप्राप्तित्यागावनुभावेन दर्शयति—स्वप्ने यथा ईदृशं जाग्रद्देहतुल्यं देहं पश्यति। स्वप्नं विनापि दर्शयति—मनोरथेन, मनोरथे चेत्यर्थः। कः पश्यति? इत्यत आह—अभिनिविष्टा अभिनिवेशवती चेतना यस्य सः। यद्वा, मनोरथेन विषयवाञ्छया चित्ताभिनिवेशाधिक्यवान् पुरुषः स्वप्ने ईदृशं देहं पश्यति। अभिनिवेश-प्रकारमाह—दृष्टं राजादि, श्रुतम् इन्द्रादि, ताभ्यामभ्यस्ताभ्यां जनितसंस्कारवता मनसा अनुचिन्तयन् तत् किमपि राजादिरूपमेव प्रपद्यते

राजाद्युचितविषयभोगवद्देहमात्मानं पश्यतीत्यर्थः। अपस्मृतिः, वास्तवदेहस्मरण-
शून्यः ॥ ४१ ॥

भावानुवाद—जीवित रहते समय भी प्रतिदिन देह प्राप्ति और देह-त्याग होता है—इसे अनुभवके द्वारा दिखा रहे हैं। ‘स्वप्ने यथा’—स्वप्नमें जिस प्रकार जाग्रत देहकी भाँति ही देहका दर्शन होता है। ‘मनोरथेन’—स्वप्नके अतिरिक्त अर्थात् जाग्रत अवस्थामें भी मनोरथके द्वारा अन्य देहका दर्शन होता है। कौन देखता है? इसके लिए कह रहे हैं कि ‘अभिनिविष्टा’ अर्थात् जिसकी चेतना अभिनिवेशवशतः तन्मयताको प्राप्त हुई है, वह व्यक्ति दर्शन करता है।

अथवा, ‘मनोरथेन’ अर्थात् विषयकी अभिलाषासे उस अभिलषित वस्तुमें चित्तको अत्यधिक अभिनिविष्ट करनेवाला व्यक्ति स्वप्नमें जाग्रत देहकी ही भाँति देहको देखता है।

अभिनिवेशका प्रकार बतला रहे हैं—‘दृष्ट’ अर्थात् राजादि अर्थात् इहलौकिक विषय तथा ‘श्रुत’ अर्थात् इन्द्रादि अर्थात् परलौकिक विषयके चिन्तनके फलसे उत्पन्न संस्कारसे युक्त मनके द्वारा निरन्तर चिन्तन करते हुए अपनेको ही (उन दृष्ट और श्रुत) राजादिके रूपमें मानकर भावना करते-करते राजादिके उचित विषयभोगके अनुरूप अपने देहको देखता है—यह अर्थ है। उस समय अपने वास्तविक देह तकका भी विस्मरण हो जाता है ॥ ४१ ॥

यतो यतो धावति दैवचोदितं

मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु।

गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ

प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

अन्वयः—दैवचोदितं (दैव प्रेरित अर्थात् देहके पञ्चत्व (मृत्यु) प्राप्त होते समय फलोन्मुख कर्म द्वारा प्रेरित विकारात्मक अर्थात् विविध प्रकार सङ्कल्पादिसे युक्त) मनः (मन) मायारचितेषु (मायाके द्वारा नाना देहके रूपमें रचित) [विविध] पञ्चसु गुणेषु (पाञ्चभौतिक

शरीरोंमेंसे) यतो यतः (जिस-जिस देहके प्रति) धावति (दौड़ता है) [और] आप (जिस जिस शरीरको अभिनिवेशके द्वारा प्राप्त होता है) असौ देही (वह जीव भी) प्रपद्यमानः (मैं वही हूँ, ऐसा मानकर) तेन सह (उस शरीर और मनके साथ) जायते (जन्म प्राप्त करता है) ॥ ४२ ॥

अनुवाद—देहान्तरके समय विकारात्मक अर्थात् विविध प्रकारके सङ्कल्पादिसे युक्त चञ्चल मन फलोन्मुख कर्मोंके द्वारा प्रेरित होकर मायाके द्वारा विभिन्न देहोंके रूपमें रचित विभिन्न पाञ्चभौतिक देहोंमेंसे जिस-जिस देहके प्रति धावित होता है और अभिनिवेशवशतः जिस-जिस रूपको प्राप्त करता है, वैसे मनोधर्मके वशीभूत होकर जीव उस-उस देह और मनको ही 'मैं' 'मेरा' ऐसी बुद्धि अर्थात् अभिमानके साथ दूसरा जन्म स्वीकार करता है ॥ ४२ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, दृष्टः श्रुतश्च विषयो दैवप्रेरितेन मनसा स्मर्यमाणत्वान्मनस एवास्तु, ततो भिन्नेनात्मना स्वभोगार्थं स कथं लब्धताम्? तत्राह—यत इति। पञ्चसु विषयेषु मध्ये यतो यतो यत्र यत्र विकारात्मकं मनो धावति धावच्च सत्, आप तं-तं विषयमेव प्राप्तं भवति। असौ देही जीवः, तेन विषयाभिनिविष्टेन मनसा, सह साहित्याद्धेतोः, तं विषयं प्रपद्यमानो जायते भुञ्जानो भवतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

भावानुवाद—यदि प्रश्न हो कि दृष्ट और श्रुत विषय दैवप्रेरित मनके द्वारा स्मरण किये जानेके कारण मनके ही विषय हों अर्थात् मनसे ही प्राप्त हों, किन्तु उस मनसे भिन्न आत्मा (जीवात्मा) अपने भोगके लिए उसे (अर्थात् मनके द्वारा स्मरण किये जानेवाले दृष्ट और श्रुत विषयोंको) कैसे प्राप्त कर सकता है? इसीके उत्तरमें 'यत' आदि पद कह रहे हैं। मायारचित विविध पाञ्चभौतिक देहोंमेंसे विकारात्मक चञ्चल मन जिस-जिस देहके प्रति धावित होता है तथा अभिनिवेशके द्वारा जिस-जिस रूपको प्राप्त होता है, वह अविवेकी 'देही' अर्थात् जीवात्मा विषयाभिनिविष्ट मनके सहित उन-उन विषयोंका आश्रय लेते हुए अर्थात् 'मैं वही हूँ' ऐसा मानते हुए जन्म ग्रहण करता है अर्थात् भोग करता है, यह अर्थ है ॥ ४२ ॥

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः

समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।

एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्

गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥

अन्वयः—अदः (आकाशमें स्थित) [होनेपर भी] ज्योतिः (चन्द्र, सूर्य आदिका बिम्ब) यथा (जिस प्रकार) उदक-पार्थिवेषु (जलसे पूर्ण घड़े आदिमें) [प्रतिबिम्बित होकर] समीरवेगानुगतं (वायुवेगके कारण कम्पन आदिसे युक्त होनेके रूपमें) विभाव्यते (प्रतीत होता है) एवं (उसी प्रकार) स्वमायारचितेषु (श्रीभगवान्की मायाके द्वारा निर्मित) गुणेषु (शरीरमें) असौ (वह) पुमान् (जीव) [शुद्ध होनेपर भी] रागानुगतः (मैं यह शरीर हूँ, इस बुद्धिसे नियन्त्रित होकर) विमुह्यति (जन्म-मरण आदि देहधर्मको भोग करता है) ॥ ४३ ॥

अनुवाद—जिस प्रकार सूर्य-चन्द्र आदि ज्योतिर्मय पदार्थ जलसे भरे हुए मिट्टीके घड़ोंमें अथवा जल और तेल आदिमें प्रतिबिम्बित होकर वायुके वेगवशतः कम्पित प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तवमें सूर्य, चन्द्रादिमें कम्पन नहीं होता। उसी प्रकार यह सच्चिदानन्द-स्वरूप जीव अपनी अविद्यासे कल्पित देह एवं मन आदिमें आसक्तियुक्त होकर विमोहित होता है अर्थात् श्रीभगवान्की माया द्वारा निर्मित देहमें 'मैं' अभिमानकर देहके धर्म जन्म-मरणादिका भोग करता है। किन्तु, वास्तवमें शुद्धजीव जन्म-मरणादिसे रहित है ॥ ४३ ॥

सारार्थदर्शनी—ततश्च मनःसहितस्य जीवस्य मनोधर्मप्राप्तिं सदृष्टान्त-माह। ज्योतिश्चन्द्रसूर्यादिकिरणः, उदकेषु पार्थिवेषु तैलघृतादिषु च, प्रतिबिम्बरूपेण स्थितं समीरवेगानुगतं सत्, वि-भाव्यते—विविधं कम्पवशाद्दीर्घ-ह्रस्वादिरूपं, भाव्यते भावितं भवति। एवमेव, स्वे स्वीयाश्च ते मायारचिताश्चेति स्वमायारचिताः, तेषु गुणेषु देहेषु, पुमान् जीवः, रागानुगतः—रागो विषयभोगेच्छालक्षणो मनोधर्मस्तमनुगतो, विमुह्यति तदीयविषयभोगेच्छाव्याप्यो भवति। तेन, त्वमपि तथाभूत एव जीवः। स्वीयविषयसुखभोग-सिद्ध्यर्थं यदेतां हंसि, तद्व्यर्थमेव। देहनाशेऽपि त्वदीयशुभादृष्ट-स्यानश्वरत्वाद्देहान्तरस्य सुलभत्वाच्च तत्रैव ते भोगः सेत्स्यति, स्त्रीवधे तु प्रत्युत देहान्तरे दुःखमेव भोक्तव्यं स्यात्। किञ्च, कर्मणः प्रबलत्वादाकाशवाण्युद्दिष्टो

मृत्युर्देवकीजन्मान्तरपुत्रादप्य-वश्यंभावी, इत्यतो वरं मृत्युप्रतीकारार्थं मार्कण्डेयेनेव सत्कर्मैव क्रियतामिति द्योतितम् ॥ ४३ ॥

भावानुवाद—तत्पश्चात् मनके साथ युक्त जीवको मनोधर्मकी प्राप्ति कैसे होती है, इसे उदाहरण सहित कह रहे हैं। जिस प्रकार चन्द्र और सूर्य आदिकी किरणें जलमें अथवा तेल या घीमें प्रतिबिम्बके रूपमें अवस्थित होकर वायुके वेगसे कम्पित जलमें सूर्य और चन्द्रके प्रतिबिम्ब ह्रस्व और दीर्घ आदि विविध रूपोंमें प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तवमें चन्द्र-सूर्यादिमें कम्पनादि कुछ भी नहीं है। उसी प्रकार 'स्वमाया' अर्थात् अपनी अविद्या द्वारा रचित विभिन्न देहोंमें जीव 'रागानुगतः' अर्थात् विषयभोग अभिलाषारूपी मनोधर्मके अनुगत होकर विमोहित होता है अर्थात् विषयभोगकी इच्छामें उसका अभिनिवेश होता है।

हे कंस! उसी प्रकार तुम भी वैसे ही जीव हो। अपने विषयसुखभोगकी सिद्धिके लिए तुम जो इस स्त्रीकी हत्या करने जा रहे हो, वह व्यर्थ ही है। देहका नाश होनेपर भी तुम्हारा शुभ अदृष्ट (अप्रारब्ध) अनश्वर है एवं देहान्तरकी प्राप्ति सुलभ है, इसलिए देहान्तरके बादमें तुम्हारा भोग सम्पन्न हो सकता है। किन्तु स्त्री-वध करनेपर देहान्तरके उपरान्त सुखके स्थानपर तुम्हें दुःख ही भोग करना पड़ेगा।

कर्मकी प्रबलता हेतु आकाशवाणीके द्वारा कथित तुम्हारी मृत्यु देवकीके अगले जन्मके पुत्रसे भी अवश्यम्भावी ही है, अतएव इससे अच्छा है कि मृत्युके प्रतिकारके लिए महर्षि मार्कण्डेयकी भौति^(१) सत्कर्म ही करो—ऐसा सूचित हुआ है ॥ ४३ ॥

तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत् स तथाविधः।

आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोधुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥

(१) महर्षि मार्कण्डेयकी सात वर्षकी निर्धारित आयु थी, परन्तु मृत्युकालके उपस्थित होनेपर उन्होंने महामृत्युञ्जय कवचका पाठकर श्रीशिवको प्रसन्न कर लिया, जिसके फलस्वरूप उन्हें सात-कल्पकी लम्बी आयु मिल गयी।

अन्वयः—तस्मात् (क्योंकि कर्मवशतः ही देहकी प्राप्ति और त्याग होता है, एवं देहका आवेश भी मायाकृत ही होता है, इसलिए) तथाविधः (वैसे कर्माधीन) सः (वह जीव) [यदि] आत्मनः (अपने) क्षेमम् (हितकी) अन्विच्छन् (अभिलाषा रखता है) [तब] कस्यचित् (किसी भी प्राणीके प्रति) द्रोहम् (अनिष्टका) न आचरेत् (आचरण न करे) [क्योंकि] द्रोग्धुः (दूसरेका अनिष्ट करनेवालेको) परतः (इस लोकमें तथा परलोकमें भी शत्रुओंसे) वै (निश्चित रूपमें ही) भयम् (भयकी आशङ्का रहती है) ॥ ४४ ॥

अनुवाद—अतएव जब असत् कर्म ही अशुभ देहका कारण है, तब शुभाशुभ कर्माधीनताके विषयमें जाननेवाले मङ्गल-कामी व्यक्तिको किसीके प्रति हिंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि परद्रोही व्यक्तिके लिए इस लोक एवं परलोकमें दूसरोंसे निश्चय ही भयकी सम्भावना बनी रहती है ॥ ४४ ॥

सारार्थदर्शनी—स तथाविधः अविद्यावृतः, द्रोग्धुर्द्रोहकर्तुः पुंसः, परतो यमादिभ्यो यस्माद्भयं, तस्मादिति भेदो दर्शितः ॥ ४४ ॥

भावानुवाद—‘तथाविधः’ अर्थात् अविद्यासे आवृत उस जीवको। ‘द्रोग्धुः’ अर्थात् द्रोह करनेवाले व्यक्तिको। ‘परतः’ अर्थात् बादमें यमराज आदिसे भयकी प्राप्त होगी, इसलिए दूसरोंके प्रति अनिष्टका आचरण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार श्रीवसुदेव महाराज कंसको ‘भेद’ दिखला रहे हैं ॥ ४४ ॥

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा।

हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—एषा (तुम्हारे सामने वर्तमान यह) कृपणा (मरणभयसे अति दीन) पुत्रिकोपमा (कन्यातुल्य या कठपुतलीकी भाँति अर्थात् मरण-भयसे अचेतनप्रायः) बाला (बालिका) तव अनुजा (तुम्हारी छोटी बहन) [है] दीनवत्सलः (दीनोंके प्रति अनुग्रह करनेमें कातर) त्वम् (तुम्हारे लिए) इमां कल्याणीं (इस निरपराधिको) हन्तुम् न अर्हसि (वध करना उचित नहीं है) ॥ ४५ ॥

अनुवाद—यह दीन बालिका देवकी तुम्हारी कन्याके समान, स्नेहपात्री और छोटी बहन है। तुम दीनवत्सल हो, अतएव इस निरपराधी वत्सला अर्थात् अपने वात्सल्यकी पात्रीका वध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदप्यनिवृत्तं तमत्युग्रं स्तुतिभिरिति न्यायेन पुनः सामाह—
एषेति। पुत्रिकोपमा अनुकम्पनीय-पुत्रीतुल्या पुत्तलिकावद्भयेनाचेतना वा। वास्तवार्थे
तु शिरश्चालने नञ्—दीनादतिदरिद्रादपि, वत्समपि राजकरत्वेन, लासि गृहासी—
त्यर्थः ॥ ४५ ॥

भावानुवाद—इतना कहनेपर भी कंसको देवकीका वध करनेसे निवृत्त नहीं हुआ देखकर, 'दुर्जनको मीठी बातोंसे सन्तुष्ट करना चाहिये'—इस न्यायके अनुसार श्रीवसुदेव महाराज पुनः 'साम' का प्रयोग अर्थात् चापलूसीपूर्ण वचनोंका प्रयोग करते हुए 'एषा' आदि श्लोक कहने लगे। 'पुत्रिकोपमा' अर्थात् तुम्हारी अनुकम्पाकी पात्री पुत्रीतुल्य अथवा भयसे कठपुतलीकी भाँति अचेतनप्रायः हो गयी यह देवकी। 'दीनवत्सलः' अर्थात् तुम दीन-वत्सल हो, अतएव इस निरपराधी बालाका वध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। किन्तु, वास्तवमें 'दीन' कहनेसे अति दरिद्र व्यक्तिसे भी तुम सामान्य बछड़े तकको भी राजकर-के रूपमें ग्रहण करते हो—यह अर्थ है ॥ ४५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीवसुदेव महाराजने कंसको बहनके वधसे होनेवाले महापापसे निवृत्त करनेके लिए पहले साम-नीतिका अवलम्बन किया। सम्बन्ध, लाभ, उपकार, अभेद और गुणकीर्तन—इन पाँच प्रकारकी साम-नीतिमेंसे अन्तिम गुणकीर्तनका ही उन्होंने सर्वप्रथम आश्रय किया। भगवद्विमुख विषयी व्यक्ति अपने गुणकीर्तनसे प्रसन्न होता है और भगवद्भक्तगण अशेष-गुणोंके पात्र होकर भी अपने गुण सुननेमें विमुख होते हैं। इसलिए परम-नीतिज्ञ श्रीवसुदेव महाराज पहले बहिर्मुख पशुको दमनके लिए दण्डकी भाँति उसका गुणकीर्तन करने लगे।

श्रीवसुदेवने कहा—हे कंस! पृथ्वीके समस्त वीरगण सदा-सर्वदा तुम्हारी वीरताकी प्रशंसा करते हैं और तुम मृत्युके भयसे बहनका

वध कर रहे हो? इस कारण वीर-पुरुष कहेंगे कि महावीर कंसने भयवशतः अपनी वीरताको जलाज्जलि देकर प्यारी बहनकी हत्या की। यह ग्लानि और निन्दा क्या तुम सहन कर सकोगे? विशेषकर तुम 'भोज यशस्करः' अर्थात् तुम्हारे कारण भोजकुल उज्ज्वल हुआ है। तुम यदि ऐसे पापकर्म करते रहोगे, तब तो भोजकुलकी गरिमा सदाके लिए समाप्त हो जायेगी। विशेषकर इस विवाहपर्वमें एक स्त्रीकी हत्या करके महापापका बोझ सिरपर उठा रहे हो। इससे भोजवंश कलङ्कित होगा।

इहकाल-परकालमें दुष्कर्मोंका भोग अनिवार्य है, इसे दो प्रकारके भेदोंसे बतलाया। जैसे—बहनकी हत्या करनेपर इस जगत्में सर्वत्र तुम्हारी अपकीर्ति घोषित होगी। यह भी कम भीतिप्रद नहीं है। "सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते अर्थात् सभी लोग जिनका सम्मान करते हैं उनकी अपकीर्ति मरणसे भी अधिक होती है।" बहनका वध परकालमें भी भीतिप्रद है, क्योंकि स्त्रीकी हत्या पाँच प्रकारके महापातकोंमेंसे एक है।

श्रीवसुदेव महाराजने इस प्रकार चाटुकारकी भाँति कंसका गुणकीर्तन किया, क्योंकि विषयासक्त पशुको चाटुवाक्यरूप तृण दिखलाकर वशमें करना होता है। फिर उनके कथनका एक दूसरा अर्थ भी पाया जाता है—'भवान् शूरैः श्लाघनीयगुणः' अर्थात् हे कंस! वीर-पुरुष जिनका गुणगान करते हैं, उनमें तुम अति तुच्छ हो, क्योंकि तुम मृत्युके भयसे एक स्त्रीकी हत्या करने जा रहे हो। वीर-पुरुष तो सम्मुख युद्धमें शत्रुका प्राणनाश करता है या अपने प्राण विसर्जन कर देता है, परन्तु कभी भी असहाय अबला नारीकी हत्या नहीं करता।

इस प्रकार श्रीवसुदेव महाराजके निन्दागर्भ (निन्दाके बहाने) स्तुतिवाक्यको सुनकर कंस समझने लगा कि श्रीवसुदेवजी मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। श्रीवसुदेवने बहुत-से वचनोंके द्वारा युक्ति कौशलसे कंसको समझानेका प्रयास किया, फिर भी वह देवकीका वध करनेसे निवृत्त नहीं हुआ, यह देखकर उन्होंने कहा कि हे कंस! तुम निर्दयी नहीं दीनवत्सल हो। राज्यके सभीलोग तुम्हारे गुणोंकी प्रशंसा करते

हैं। तुम एकबार देवकीकी ओर देखो तो। यह तुम्हारी छोटी बहन है, आयुमें बालिका, तुम्हारी इस संहारक-मूर्त्तिको देखकर भयभीत होकर कठपुतली-सी बन गयी है, क्या इससे तुम्हारा हृदय तनिक भी पिघलता नहीं है? देवकीने तुम्हारे निकट कोई अपराध नहीं किया, फिर भी इसका वध करके तुम्हारा कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होगा? तुम मृत्युके भयसे भीत होकर देवकीको मारकर मृत्युसे बचनेकी चेष्टा कर रहे हो। किन्तु थोड़ा विचार करके देखो कि देवकी भी तो तुम्हारी ही भाँति भयभीत हो रही है, किन्तु इसके पास तुम्हारा प्रतिकार करनेका सामर्थ्य नहीं है। तुम महाबली हो और यह अबला है एवं तुम्हारे स्नेहसे लालित-पालित है। यह देखकर भी तुम्हें दया नहीं आती?

इन श्लोकोंका विश्लेषण करनेपर ऐसा देखा जाता है कि श्रीवसुदेव महाराजने कंसको आत्मज्ञान, विषय-वैराग्य एवं कुकर्मसे निवृत्त होनेके विषयमें कहकर उसे पापकार्यसे हटानेका प्रयास किया। श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीकृष्णलीलाकथाके प्रारम्भमें महाराज परीक्षितको इन उपदेशोंको सुनाकर शास्त्रके प्रयोजनका निर्देश किया है ॥ ३७-४५ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः।

न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) कौरव्य (हे परीक्षित!) दारुणः (नृशंस) पुरुषादान् अनुव्रतः (अघ, वक आदि राक्षसोंके सहचर) सः (कंस) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) सामभिः (सान्त्वनापूर्ण वाक्योंके द्वारा) भेदैः (दृष्ट-अदृष्टके सम्बन्धमें भय प्रदर्शनकारी वाक्योंके द्वारा) बोध्यमानः अपि (समझाये जानेपर भी) न न्यवर्तत (देवकीका वध करनेसे निवृत्त नहीं हुआ) ॥ ४६ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे कुरुकुलभूषण! एक तो कंस अतिशय क्रूर था और फिर उसपर भी वह सर्वदा दैत्योंके परामर्शके अनुसार ही चलता था, इसलिए श्रीवसुदेवके पूर्वोक्त प्रकारके

‘साम’ अर्थात् सान्त्वनापूर्ण वचनोंके द्वारा मित्रता बढ़ाने तथा ‘भेद’ अर्थात् लौकिक और पारलौकिक भयजनक वचनोंके द्वारा भय दिखलाकर समझानेपर भी कंस देवकीका वध करनेसे निवृत्त नहीं हुआ ॥ ४६ ॥

सारार्थदर्शिनी—चोद्यमान उपदिश्यमानः। पुरुषादान् दैत्यान् ॥ ४६ ॥

भावानुवाद—[‘बोध्यमानः’ के स्थानपर ‘चोद्यमानः’ पाठान्तर है] ‘चोद्यमानः’ अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे उपदेश दिये जानेपर भी। ‘पुरुषादान्’ अर्थात् दैत्योंके ॥ ४६ ॥

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः।

प्राप्तं कालं प्रतिवोढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

अन्वयः—आनकदुन्दुभिः (श्रीवसुदेव) तस्य (कंसका) तं निर्बन्धं (देवकी-वधके लिए आग्रह) ज्ञात्वा (जानकर) विचिन्त्य (क्षणकाल मनमें विचारकर) प्राप्तं (उपस्थित) कालं (देवकीकी मृत्युका) प्रतिवोढुं (प्रतिकार करनेके लिए) तत्र (उस समय) इदं (यह) अन्वपद्यत (उपाय मनसे निश्चय किया) ॥ ४७ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेव देवकीका वध करनेके विषयमें कंसके अत्यधिक आग्रहको जान गये तथा उन्होंने विशेष रूपसे विचार करके उपस्थित मृत्युके प्रतिकारके उद्देश्यसे आगे कहे जानेवाले उपायको स्थिर किया।

सारार्थदर्शिनी—आनकदुन्दुभिरिति—मज्जन्मनि देवैर्दुन्दुभिवादानादिदममङ्गलं न मे भविष्यतीति निश्चिन्वन्। प्रतिवोढुम् यापयितुं, इदं अन्वपद्यत परामर्शः ॥ ४७ ॥

भावानुवाद—‘आनकदुन्दुभिः’—मेरे जन्मके समय देवताओंने दुन्दुभि (नगाड़े) की ध्वनि की थी, इसलिए मेरा ऐसा अमङ्गल नहीं हो सकता है—ऐसा निश्चय किया। ‘प्रतिवोढुं’ अर्थात् उपस्थित मृत्युको किसी भी प्रकारसे टालना ही उचित है। मन-ही-मन यह ‘अन्वपद्यत’ अर्थात् परामर्श किया ॥ ४७ ॥

मृत्युबुद्धिमतापोह्यो यावदबुद्धिबलोदयम्।

यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः॥ ४८ ॥

अन्वयः—बुद्धिमता (विचक्षण व्यक्तिके द्वारा) यावत् बुद्धिबलोदयम् (जब तक बुद्धि-बलका उत्कर्ष रहता है, तब तक) मृत्युः अपोह्यः (मृत्युका प्रतिकार करना चाहिये) यदि (यथाशक्ति बल-बुद्धिके द्वारा प्रतिकार करनेपर भी यदि) असौ (मृत्यु) न निवर्तेत (निवारित नहीं होती है) [तब] देहिनः (चेष्टाकारी व्यक्तिको) अपराधः (उपेक्षा करनेका दोष) न अस्ति (नहीं होता है)॥ ४८ ॥

अनुवाद—[श्रीवसुदेवने विचार किया कि] बुद्धिमान् व्यक्तिको अपने बुद्धि एवं बलके रहते मृत्युसे रक्षा पानेके लिए प्रतिकार करना चाहिये। यदि पूर्वोक्त प्रणालीसे प्रयत्न करनेपर भी मृत्युका निवारण न किया जा सके, तो फिर देही (शरीरधारी जीव) का कोई अपराध नहीं होता है॥ ४८ ॥

सारार्थदर्शिनी—अपोह्यः प्रतिकार्यः। यावान् बुद्धिबलयोरुदयो यत्र, तद्यथा स्यात्तथा। अस्मात् कंसहस्तान्मृत्युप्रतीकारे मम तु बलस्योदयो विफल एव, बुद्धेरुदयस्तु सफलो भवितुमर्हतीति भावः। असौ मृत्युः॥ ४८ ॥

भावानुवाद—‘अपोह्यः’ अर्थात् जब तक बुद्धि और बल विद्यमान है, तब तक मृत्युका निवारण करनेके लिए प्रयास करना चाहिये। किन्तु, यहाँ कंसके हाथसे देवकीकी मृत्युके प्रतिकार करनेके विषयमें मेरा बलका प्रयोग करना विफल ही है, परन्तु बुद्धिके प्रयोगसे कार्य सफल हो सकता है, यह भाव है। ‘असौ’ अर्थात् वह मृत्यु॥ ४८ ॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणामिमाम्।

सुताः मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत चेत्॥ ४९ ॥

विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया।

उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत्॥ ५० ॥

अन्वयः—मे (मेरा) यदि सुताः (यदि देवकी गर्भमें पुत्रोंका) जायेरन् (जन्म होता है) [और] मृत्यु (कंस) वा चेत् (यदि) न म्रियेत (मेरे पुत्रोंके जन्म होनेसे पहले ही नहीं मरता है) [तब उस समय विचार करूँगा, किन्तु इस समय] मृत्यवे (कंसके लिए) पुत्रान् (देवकीके पुत्रोंको) प्रदाय (दान करूँगा) [ऐसी प्रतिज्ञा करके] कृपणां (दीन) इमां (इस देवकीको) मोचये (मृत्युके हाथसे बचा लूँ) ॥ ४९ ॥

विपर्ययः वा किं न स्यात् (अथवा क्या मेरे पुत्रोंसे ही कंसका मरण नहीं हो सकता है अर्थात् वह भी हो सकता है) [क्योंकि] धातुः (विधाताका) गतिः (विधान) दुरत्यया (दुर्ज्ञेय है) उपस्थितः (मृत्यु उपस्थित होनेपर भी) [श्रीमार्कण्डेय, अजामिल आदिकी] निवर्तेत (मृत्युका निवारण हो गया था) [और] निवृत्तः (तपस्या आदिके द्वारा मृत्युका निवारण किये जानेपर भी) पुनः आपतेत् (नमुचि, हिरण्यकशिपु आदिकी मृत्यु संघटित हुई) ॥ ५० ॥

अनुवाद—मैं मृत्युरूपी कंसको अपने सारे पुत्रोंको समर्पित करनेकी प्रतिज्ञा करके इस समय इस दीन पत्नीकी रक्षा कर लूँ। (यदि मेरी पत्नीके पुत्र उत्पन्न होनेसे पहले ही कंसकी मृत्यु हो जाती है, तो सब प्रकारसे मङ्गल ही होगा।) यदि मेरे पुत्रका जन्म हो और कंस भी यदि स्वतः मृत्युके कवलमें कवलित नहीं होता है, तो क्या मेरा पुत्र उसका विनाश नहीं कर पायेगा? क्योंकि विधाताके विधानको टालनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है। अतः अभी 'पुत्र दे दूँगा'—इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेसे उपस्थित मृत्युको रोका जा सकता है। बादमें यदि पुनः इसकी मृत्यु होती है, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं होगा ॥ ४९-५० ॥

सार्थदर्शिनी—तत्रैवं करिष्यामीति स्वगतमाह। मृत्यवे कंसाय। ननु, इदमप्यनुचितमित्याशङ्क्याह—सुता इति। यदि न जायेरन्, तदा न क्वापि चिन्ता। यदि जायेरन्, अथच मृत्युः कंसस्तावता कालेनाऽपि न म्रियेत, तदा अनुचितं स्यादेव। देवकी तु सम्प्रति जीवेत्। यदि च तावता कालेन कंसो म्रियते, तदा न काचिदपि चिन्ता। विपर्ययो वेति—मया तदानीमस्मै पुत्रे समर्प्यमाणे सति, स पुत्र एव सद्यः प्रबलीभूय कंसमिमं वधिष्यति वेत्यर्थः। ननु, प्रौढस्य कंसस्य तव

बालकात् कथं वधः सम्भवेत्? तत्राह—गतिरिति। ‘अस्यास्त्वामष्टमो गर्भः’ इत्युक्तवतो धातुः। एवञ्च सति, उपस्थितः कंसस्य हस्तादेवकीमृत्युर्निवर्तते। तथा मत्कर्तृकपुत्रार्पणप्रतिज्ञया निवृत्तोऽपि, कंसस्य मृत्युः पुनरापतेत् प्राप्तो भवेत्॥ ४९-५० ॥

भावानुवाद—श्रीवसुदेवने मन-ही-मन स्थिर किया—‘मैं ऐसा ही करूँगा’। ‘मृत्यवे’—मृत्यु-स्वरूप कंसके हाथोंमें पुत्रोंको समर्पण करनेकी प्रतिज्ञाकर अभी देवकीकी रक्षा करता हूँ।

यदि कहो कि ऐसा करना भी अनुचित है, ऐसे प्रश्नकी आशङ्काकर ‘सुताः’ आदि पद कह रहे हैं। यदि मेरे यहाँ पुत्र न होकर कन्याका जन्म हो जाय, तब तो चिन्ताकी कोई बात ही नहीं है। यदि मेरे यहाँ बहुत-से पुत्र जन्म ग्रहण करें और तब तक भी यदि कंसकी मृत्यु न हो, तो भी अनुचित होगा। जैसे भी हो, अभी तो देवकीके प्राणोंकी रक्षा हो जाय।

और यदि उस समय तक कालकी गतिसे कंस मर जाय, तब तो चिन्ताकी कोई बात ही नहीं है।

अथवा, विपरीत भी तो हो सकता है अर्थात् मेरे द्वारा उस समय इसे अपना पुत्र समर्पण करनेपर, मेरा वही पुत्र भी तो प्रबल होकर इस कंसका वध कर सकता है।

यदि प्रश्न हो कि तुम्हारे बालकसे बड़े कंसका वध कैसे हो सकता है? इसीके उत्तरमें ‘गति’ इत्यादि पद कह रहे हैं। ‘इसका आठवाँ गर्भ तुम्हारा वध करेगा’—ऐसा विधाताने कहा है। विधाताके विधानको कोई बदल नहीं सकता। इसलिए उपरोक्त प्रकारसे करनेपर कंसके हाथोंसे देवकीकी उपस्थित मृत्युका निवारण हो सकता है तथा मेरे द्वारा किये गये पुत्र-समर्पणकी प्रतिज्ञाके द्वारा कंसकी मृत्यु निवृत्त हो जानेपर भी कंसकी मृत्यु फिर भी हो सकती है॥ ४९-५० ॥

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यत्र निमित्तमस्ति।

एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः॥ ५१ ॥

अन्वयः—अग्नेः (किसी कारणसे प्रज्ज्वलित अग्नि) यथा (जिस प्रकार) दारुवियोगयोगयोः (निकटमें स्थित लकड़ी या घरोंको

न जलाकर दूरके घरोंको जलाते हैं) अदृष्टतः (गृहस्थोंके अदृष्टके अतिरिक्त) अन्यत् (दूसरा कुछ) निमित्तं (कारण) न अस्ति (नहीं है) एवं हि (वैसे ही) जन्तोरपि (जीवोंका भी) शरीर-संयोग-वियोग-हेतु (शरीरके संयोग-वियोगका कारण) दुर्विभाव्यः (जानना कठिन है अर्थात् अदृष्टके बिना दूसरा कारण कुछ नहीं हो सकता है) ॥ ५१ ॥

अनुवाद—जिस प्रकार अदृष्टके अतिरिक्त लकड़ियोंके अग्निके साथ संयोग और वियोगका अन्य कोई भी कारण नहीं है (अर्थात् वन अथवा ग्राममें आग लगनेपर दहन करते-करते वह अग्नि कभी-कभी समीपमें स्थित लकड़ी या गृहादिको छोड़कर दूरमें स्थित गृह अथवा वनको जला डालती है, इसका कारण जिस प्रकार दैवके अतिरिक्त और कुछ नहीं है), उसी प्रकार देही (जीवात्मा) का भी देहके साथ संयोग और वियोगका—अदृष्टके अतिरिक्त अन्य किसी कारणको स्थिर करना दुःसाध्य है ॥ ५१ ॥

सारार्थदर्शिनी—मच्चिन्तितमेतन्नासम्भवं, यतः प्राणिनामदृष्टं दुर्वितर्क्यमिति सदृष्टान्तमाह। अग्नेर्वने वृक्षान् प्रदहतो दारुणो यौ वियोग-योगौ—कदाचित् सन्निहितस्यापि वियोगः, कदाचिद्विप्रकृष्टस्यापि योगः; तयोरदृष्टोऽन्यत्रेति—वृक्षाणां दुःखादृष्टमेव कारणमित्यर्थः। एवमेव शरीराणां संयोग-वियोगयोः—जन्म-मरणयोर्हेतु, दुर्विभाव्योऽविचिन्त्यः ॥ ५१ ॥

भावानुवाद—जैसा मैं सोच रहा हूँ, वैसा घटना सम्पूर्ण रूपसे असम्भव भी नहीं है, क्योंकि प्राणियोंका अदृष्ट—प्रारब्ध तर्कसे अतीत है। इसे उदाहरणके साथ कह रहे हैं—वनमें लगी आग (दावानल) वृक्षोंको दहन करते समय उनसे वियोग और संयोग करती हैं अर्थात् निकट रहनेपर भी किसी वृक्षसे वियोग करती है अर्थात् उसे छोड़कर दूरके किसी वृक्षसे संयोग करती है, अर्थात् उसे जला डालती है। जिस प्रकार इसमें उन वृक्षोंके अदृष्टके बिना अन्य कोई कारण नहीं है अर्थात् वृक्षोंका दुःख-भोगमय अदृष्ट (प्रारब्ध) ही कारण है। उसी प्रकार प्राणियोंके संयोग-वियोग अर्थात् जन्म-मरणका कारण भी अचिन्त्य है अर्थात् अदृष्टके बलसे ही घटित होता है ॥ ५१ ॥

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम्।

पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम्॥५२॥

अन्वयः—शौरिः (श्रीवसुदेवने) यादवदात्मनिदर्शनम् (अपनी बुद्धिकी अवधि तक) एवं (पुर्वोक्त प्रकारसे) विमृश्य (विचारकर) तं पापं (पापमति कंसको) बहुमानपुरःसरम् (बहुत आदर प्रदानपूर्वक) पूजयामास (स्तुति आदिके द्वारा सम्मानित किया)॥५२॥

अनुवाद—श्रीवसुदेवका जितना ज्ञान था, उसके अनुसार उन्होंने इस प्रकार विचार किया एवं बहुत सम्मान प्रदान करते हुए उस पापात्मा कंसका समादर किया॥५२॥

सारार्थदर्शिनी—यावत् यत्प्रमाणकम्, आत्मना बुद्ध्या, निदर्शनं ज्ञानं, यत्र यद्यथा स्यात्तथा विमृश्य, तं पापं कंसं, पूजयामास बहिस्तुष्टाव॥५२॥

भावानुवाद—श्रीवसुदेवने इस प्रकार अपना जहाँ तक ज्ञान था उसके अनुसार विचार करते हुए बाहरमें बहुत सम्मान दिखाते हुए उस पापात्मा कंसकी स्तुति की॥५२॥

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम्।

मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत्॥५३॥

अन्वयः—प्रसन्नवदनाम्भोजः (सद्य विकसित कमलकी भाँति प्रसन्न मुखकमलसे) [किन्तु] दूयमानेन मनसा (अन्दरसे दुःखित वसुदेवने) नृशंसं (क्रूर) निरपत्रपं (निर्लज्ज कंसको) विहसन् (मन्द मुसकानके साथ) इदं (इस प्रकार) अब्रवीत् (कहा)॥५३॥

अनुवाद—श्रीवसुदेवका हृदय विषादपूर्ण था। फिर भी बाह्य रूपसे कंसके विश्वासके लिए वे विकसित कमलकी भाँति प्रसन्न मुखकमलवाले होकर मुसकराते हुए उस निर्लज्ज क्रूर कंसको इस प्रकार कहने लगे॥५३॥

सारार्थदर्शिनी—स्वान्तः-प्रसाद-ज्ञापनार्थं प्रत्यग्रं स्निग्धीकृतं वदनाम्भोजं येन सः, दूयमानेन सन्तापपीड्यमानेन मनसा युक्तः॥५३॥

भावानुवाद—‘प्रसन्नवदनाम्भोजः’ अर्थात् भीतरकी प्रसन्नता व्यक्त करनेके लिए बाहरमें स्निग्ध विकसित कमलकी भाँति प्रफुल्लित मुख जिनका है, ऐसे श्रीवसुदेव। परन्तु उनका हृदय दुःखानलसे पीड़ित हो रहा था। ऐसे हृदयसे युक्त श्रीवसुदेवने निष्ठुर निर्लज्ज कंसको मुसकराते हुए कहा ॥ ५३ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक्।

पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—सौम्य (हे शान्त स्वभाववाले!) सा (इससे पहले प्रकाशित) अशरीरवाक् (आकाशवाणीने) यत् वै आह (‘इसका आँठवा गर्भ तुम्हारा हन्तारक होगा’—ऐसा जो कहा है) [उसके अनुसार] अस्याः (देवकीसे) ते (तुम्हें) भयं (मरणका भय) न हि (नहीं है) यतः (क्योंकि) [जिन देवकीके पुत्रोंसे] ते (तुम्हारा) भयं उत्थितं (मरणका भय उत्पन्न हुआ है) अस्याः (इस देवकीके) पुत्रान् (उन पुत्रोंको) समर्पयिष्ये (मैं तुम्हें समर्पण करूँगा) ॥ ५४ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेवने कहा—हे सौम्य! पूर्वमें सुनी गयी आकाश-वाणीने जैसा कहा है, उसके अनुसार इस देवकीसे निश्चय ही तुम्हें कोई भय नहीं है। जिससे तुम्हारा भय उदित हुआ है, उन देवकीके पुत्रोंको मैं तुम्हारे हाथोंमें सौंप दूँगा ॥ ५४ ॥

सारार्थदर्शिनी—अस्याः सकाशात्ते भयं नास्ति, किन्त्वस्या अष्टमात् पुत्रात्, यद्यथा। अहन्तु पुत्रानष्टावेव समर्पयिष्ये। यतः पुत्रात्ते भयमुत्थितं, स वा वध्यतां, अष्टावेव वा वध्यन्तामिति भावः ॥ ५४ ॥

भावानुवाद—‘न ह्यस्याः’—जैसे आकाशवाणी हुई है, उसके अनुसार इस देवकीसे तुम्हें कोई भी भय नहीं है, परन्तु इसके अष्टम पुत्रसे ही तुम्हें भय है। परन्तु मैं अपने आठों पुत्रोंको ही तुम्हें सौंप दूँगा। जिस पुत्रसे तुममें भय उत्पन्न हुआ है, केवल उसका या फिर आठों पुत्रोंका ही तुम वध कर सकते हो—यह भाव है ॥ ५४ ॥

श्रीशुक उवाच—

स्वसुर्वधात्रिववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित्।

वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—तद्वाक्यसारवित् (वसुदेवके वचनोंकी यौक्तिकता जानकर) कंस (कंस) स्वसुर्वधात् (बहनको वध करनेसे) निववृते (निवृत्त हो गया) वसुदेवः अपि प्रीतः (श्रीवसुदेव भी सन्तुष्ट होकर) तं (कंसको) प्रशस्य (प्रशंसा आदिके द्वारा सम्मानितकर) गृहं प्राविशत् (अपने घरमें प्रविष्ट हुए) ॥ ५५ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—उस समय कंस श्रीवसुदेवके युक्तिसङ्गत वचनोंकी यथार्थता समझ गया तथा उसने अपनी बहन देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया। श्रीवसुदेव भी उसके प्रति सन्तुष्ट हो गये तथा कंसकी प्रशंसा करनेके उपरान्त उन्होंने अपने घरमें प्रवेश किया ॥ ५५ ॥

सारार्थदर्शनी—वाक्यस्य सारः सत्यत्वं, वसुदेवो मिथ्या न ब्रूते इति सर्वथा जानातीत्यर्थः। तवेदं धर्मशीलत्वं भुवि प्रकटीभूतमिति प्रशस्य ॥ ५५ ॥

भावानुवाद—वचनोंकी सत्यता अर्थात् श्रीवसुदेव कभी भी झूठ नहीं बोलते—कंस यह सब जानता था। तुम्हारी इस धर्मशीलताका जगत्में विस्तार हो—इस प्रकार कंसकी प्रशंसाकर श्रीवसुदेवने अपने घरकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितसे कहा—हे कुरुकुल-चूड़ामणि! वसुदेवजी देवकीको निकटस्थ विपत्तिसे मुक्ति दिलानेके लिए अनेक प्रकारसे विचार करने लगे।

उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि जीव-जगत्में जैसी व्याधि है, वैसी ही औषधि भी है। इस प्रकार विपत्ति और उसका प्रतिकार दोनों ही हैं। जिस प्रकार बीमार होनेपर औषधिका सेवन न करनेसे बीमारी बढ़ जाती है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति भी विपत्ति उपस्थित होनेपर कभी भी उसकी उपेक्षा न कर बुद्धि कौशल या बल प्रयोगसे—जैसे भी हो उससे रक्षा पानेकी चेष्टा करते हैं। उससे यदि

रक्षा नहीं होती है, तब दोष किसे दिया जायेगा? यही समझना होगा कि उस विपदका प्रतिकार सामर्थ्यसे अतीत है। कंस देवकीका वध करनेके लिए उद्यत हुआ है, यह मुझपर एक महान विपत्ति है। अतएव इसका प्रतिकार करनेके लिए मुझे भी यथासाध्य चेष्टा करनी चाहिये।

ऐसा विचारकर वसुदेवजीने कंसको अनेक प्रकारकी मीठी-मीठी बातोंसे समझानेका प्रयास किया, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। दैववाणीको सुनकर वसुदेवजीने निश्चय कर लिया था कि देवकीके आठवें गर्भकी सन्तान इसका अवश्य ही वध करेगी। अतः यदि मैं उसे इसको समर्पण कर दूँ, तो देवकीके प्राण बच सकते हैं। इसलिए उन्होंने कहा—‘मैं देवकीके जितने भी पुत्र होंगे, उन्हें तुम्हारे हाथोंमें सौंप दूँगा।’

फिर भी आठवें गर्भमें श्रीकृष्णने जब जन्म ग्रहण किया, उस समय वसुदेवजी उन्हें कंसके हाथोंमें समर्पण न कर नन्दालयमें रख आये, इसमें कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्णने उन्हें ऐसा करनेके लिए आदेश दिया था। ‘कंस मुझे मारेगा यदि तुम्हें ऐसा भय है, तो तुम मुझे गोकुलमें रख आओ।’ भगवान्‌का साक्षात् आदेश पाकर वसुदेवजीको अपनी प्रतिज्ञाके विषयमें स्मरण करनेका अवकाश भी नहीं रहा।

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महाराज! वसुदेवजीके कंसके समक्ष इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेपर कंसने भी मन-ही-मन विचार किया कि यह ठीक है। यदि मैं देवकीका वध करूँगा, तो लोग मेरी निन्दा करेंगे और देवकीके पिता, भ्राता आदि आत्मीयजनोंके साथ मेरा विरोध बढ़ेगा। परन्तु देवकीकी गर्भजात सन्तानका निर्जनमें वध करनेपर कोई भी जान नहीं पायेगा और मेरे प्राण भी बच जायेंगे। विशेषकर वसुदेवजी परम सत्यवादी हैं। अतः उन्होंने जो प्रतिज्ञा की है, वह कभी झूठी नहीं होगी। अतः वृथा ही इसे मारनेसे कोई लाभ नहीं है। ऐसा सोचकर कंसने देवकीकी चोटीको छोड़ दिया और तलवार भी म्यानमें रख ली।

अब वह वसुदेवजीसे कहने लगा—“हे वसुदेवजी! मैंने आपके कहनेसे देवकीको छोड़ दिया। देवकी मेरी स्नेहपात्री है, परन्तु क्या करूँ, अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए मुझे ऐसा निन्दनीय कार्य करना पड़ा।” वसुदेवजी भी सन्निकट आयी विपत्तिसे मुक्ति पाकर इसे श्रीभगवान्की अपार करुणा जानकर परम प्रसन्न हुए तथा कंसकी झूठी प्रशंसा करते हुए देवकीके साथ अपने घर चले गये॥ ४६-५५॥

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता।

पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्याञ्चैवानुवत्सरम्॥ ५६॥

अन्वयः—अथ (अनन्तर) काल (कुछ समय) उपावृत्ते (बीतनेपर) सर्वदेवता (श्रीकृष्ण-जननी होनेसे समस्त देवताओंके आश्रय-स्वरूपा) देवकी (श्रीदेवकी) अनुवत्सरम् (प्रतिवर्ष) [एक-एक करके] अष्टौ पुत्रान् (आठ पुत्रोंको) कन्यां च एव (और एक कन्याको भी) प्रसुषुवे (जन्म दिया)॥ ५६॥

अनुवाद—अनन्तर कुछ समय बीतनेपर सर्वदेवतामयी देवकीने प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्रों और सुभद्रा नामकी एक कन्याको जन्म दिया॥ ५६॥

सारार्थदर्शिनी—सर्वेषां देवादीनामपि देवता, भगवन्मातृत्वात् पूज्या। कन्यां सुभद्रां, अनुवत्सरमष्टसु वत्सरेष्वित्यर्थः। विभक्त्यर्थऽव्ययीभावः। कन्याञ्च काले प्रतिवर्षमिति वीप्सा तु न व्याख्येया, एकैकस्मिन् वर्ष एवाष्टपुत्रोत्पत्तिप्रसक्तेः। अत्र कारणमग्रे व्याख्यास्यते॥ ५६॥

भावानुवाद—‘सर्वदेवता’—समस्त देवताओंके भी देवता-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी जननी होनेके कारण श्रीदेवकी सबकी पूज्या हैं। ‘कन्याम्’—कन्या सुभद्राको भी जन्म दिया था। ‘अनुवत्सरम्’ अर्थात् आठ वर्षोंमें। ‘प्रति वर्ष एक कन्याको भी जन्म दिया’—ऐसी व्याख्या नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उससे प्रत्येक वर्षमें ही आठ-आठ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई, ऐसे अर्थकी सम्भावना होगी। इसके कारणकी आगे व्याख्या की जायेगी॥ ५६॥

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।

अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—अनृतात् (मिथ्यावचनसे) अतिविह्वलः (अतिभयभीत) सः ('इसके पुत्रको समर्पण करूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञाबद्ध होकर समर्पण करनेवाले उन) आनकदुन्दुभिः (श्रीवसुदेवने) कीर्तिमन्तं (कीर्तिमान् नामके) प्रथमजं (देवकीके प्रथम पुत्रको) कृच्छ्रेण (अतिदुःखसे विह्वल होकर) कंसाय अपर्यामास (कंसके हाथमें समर्पण किया) ॥ ५७ ॥

अनुवाद—प्रतिज्ञा-भङ्गरूप असत्यके भयसे अत्यन्त भीत होकर उन श्रीवसुदेवने अतिशय मानसिक कष्टके साथ कीर्तिमान् नामक प्रथम पुत्रको कंसके हाथोंमें सौंप दिया ॥ ५७ ॥

सारार्थदर्शिनी—कीर्तिमन्तमिति, जन्मदिन एव कृतनामकरणमित्यर्थः ॥ ५७ ॥

भावानुवाद—'कीर्तिमन्तम्' अर्थात् श्रीवसुदेवने पहले पुत्रके जन्मके दिन ही उसका नाम कीर्तिमान् रखा था ॥ ५७ ॥

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।

किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—साधूनां (भगवान्के भक्तोंके लिए) किं नु दुःसहं (क्या असहनीय है!) [बल्कि यह श्रीभगवान्की इच्छा है, ऐसा जानकर वे सभी कुछ सहन करते हैं, यह भाव है] विदुषां (श्रीभगवान् ही तत्त्व अर्थात् सत्य वस्तु हैं, इसके अतिरिक्त अन्य सबकुछ उनकी मायाका विलास है—ऐसे समझनेवालेको) किम् अपेक्षितं (किस वस्तुकी अपेक्षा है? अर्थात् उन्हें किसी वस्तुसे कोई अपेक्षा नहीं रहती है) कदर्याणां (विषयोंमें आविष्ट बहिर्मुख जीवोंका) किम् अकार्यं (क्या अकरणीय है?) [अर्थात् वे अपने स्वार्थके लिए सभी कुछ कर सकते हैं] धृतात्मनाम् (श्रीहरिके चरणोंमें समर्पित चित्तवाले) किं दुस्त्यजं (क्या नहीं छोड़ सकते?) [अर्थात् वे सभी कुछ त्याग करनेमें समर्थ होते हैं] ॥ ५८ ॥

अनुवाद—सत्य-प्रतिज्ञ साधुओंके लिए कौन-सा कार्य असहनीय होता है? जो भगवान्‌को ही एकमात्र वास्तव-वस्तु जानते हैं, उन्हें फिर अन्य किस विषयकी अपेक्षा रह सकती है? जिनका स्वभाव निन्दित है, उनके लिए अकरणीय कुछ भी नहीं है और जिन्होंने भगवान्‌को अपनी आत्मा समर्पित कर दी है, वे किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते? ॥ ५८ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, अनृताद्बिभेतुतमां नाम, स्वसाक्षादेव पुत्रवधः कथं सोढव्यः? तत्राह—किं दुःसहमिति। ननु, अष्टममेकं पुत्रं स्वभार्याप्राणरक्षार्थं समर्पयतुतमां नाम, 'पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या' इति निखिलपुत्रार्पणप्रतिज्ञां तदा कंसस्याज्ञां विनैव कथमकरोत्? गृहस्थस्य तस्य पुत्रमात्रोपेक्षा न युज्यते, तत्राह—विदुषामिति। वसुदेवः खलु कर्मिलोक इव नाविद्वानतो भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-महोदधेस्तस्य किं पुत्रैरिति भावः। ननु, एतादृशस्य स्वयमेव वधार्थमानीत-पुत्रस्य तस्य कंसः कथं पुत्रं हन्तुमर्हत्? किमत्राप्याद्रचित्तो न भवेत्? तत्राह—किमकार्यमिति। ननु, तर्हि सर्वदोषपरिहाराय वसुदेवो गार्हस्थ्यमेव किं न तत्याज? तत्राह—दुस्त्यजमिति। तेन तद्गार्हस्थ्यमपि त्यक्तुं शक्यमेव, केवलं मत्पुत्रत्वं प्राप्स्यतो हरेर्मुखं कदा द्रक्ष्यामीति मनोरथेनैव गृहे स्थीयते। अतएव, धृत आत्मा हरिः पुत्ररूपी यैस्तेषाम्; तेनैव हेतुना पुत्रान्तरेष्वपि न स्निह्यते स्म, अष्टमपुत्रस्य समयः शीघ्रं भवत्वित्युत्कण्ठयैव प्रतिवर्षमेकैको गर्भं आधीयते स्म, बालवधे स्वस्यानुमन्तृत्वलक्षणपापस्वीकारश्चेत्यादि तत्त्वमवधेयम् ॥ ५८ ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि—प्रतिज्ञा-भङ्गरूप मिथ्याचारसे श्रीवसुदेव भय कर सकते हैं, परन्तु अपने ही समक्ष पुत्रवधको कैसे सहन कर सकते हैं? इसके लिए ही 'किं दुःसहम्' आदि श्लोक कह रहे हैं अर्थात् साधु पुरुषोंके लिए क्या असहनीय है, कुछ भी नहीं।

यदि कहो कि वे अपनी पत्नीकी रक्षाके लिए केवल आठवें पुत्रको ही समर्पित करनेकी प्रतिज्ञा कर सकते थे, किन्तु 'देवकीके सभी पुत्रोंको ही सौंप दूँगा'—इस प्रकार सभी पुत्रोंको ही अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा उन्होंने उस समय कंसकी बिना आज्ञाके ही किसलिए की? गृहस्थ होनेके कारण उनके लिए पुत्रकी उपेक्षा करना युक्तिसङ्गत नहीं है। इसीके उत्तरमें 'विदुषाम्' आदि पद कह रहे हैं। जो वास्तवमें तत्त्वज्ञ हैं, उनकी किस वस्तुके प्रति अपेक्षा रहती है?

श्रीवसुदेव निश्चय ही कर्मी व्यक्तियोंकी भाँति अविद्वान नहीं हैं। अतएव भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके महासमुद्र-स्वरूप उन्हें पुत्र आदिकी क्या अपेक्षा है? यह भाव है।

यदि कहो कि इस प्रकार श्रीवसुदेवके द्वारा स्वयं ही वधके लिए लाये गये उनके पुत्रका कंस कैसे वध कर सकता है? ऐसे अवसरपर भी क्या उसका चित्त द्रवित नहीं होगा? उसके लिए 'किम् अकार्य' आदि पद कह रहे हैं—अर्थात् नीच व्यक्तिके लिए अकरणीय क्या है? कुछ भी नहीं।

यदि कहो कि तब इन समस्त दोषोंको दूर करनेके लिए श्रीवसुदेव गृहस्थ-आश्रमका ही त्याग क्यों नहीं कर देते? उत्तरमें 'किं दुस्त्यजम्' आदि पद कह रहे हैं अर्थात् श्रीभगवान्‌में समर्पित चित्तवाले क्या नहीं परित्याग कर सकते हैं? इससे यही समझा जाता है कि श्रीवसुदेव उस गृहस्थको भी परित्याग करनेमें समर्थ हैं। परन्तु केवल 'मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण होनेवाले श्रीहरिके मुखका कब दर्शन करूँगा'—इस मनोरथके कारण ही वे गृहस्थ आश्रममें रह रहे थे।

अतएव 'धृतात्मा' अर्थात् पुत्ररूपी श्रीहरि ही जिनके द्वारा धारण किये गये हैं, वे श्रीवसुदेव उपरोक्त कारणसे दूसरे पुत्रोंके प्रति कोई स्नेह नहीं रखते थे। आठवें पुत्रके आविर्भावका समय शीघ्र ही उपस्थित हो, इसी उत्कण्ठाके कारण ही उन्होंने प्रतिवर्ष एक-एक गर्भका आधान (स्थापन) किया एवं बालकोंके वधमें अपने अनुमोदन रूप पापको भी स्वीकार किया—आदि तत्त्वोंको भी यहाँ स्वीकार करना होगा ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम्।

कंसस्तुष्टमना राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—राजन् (हे परीक्षित्!) शौरेः (श्रीवसुदेवकी) तत् समत्वं (शत्रु-मित्रमें समान बुद्धि) सत्ये चैव (और सत्यके प्रति) व्यवस्थितिं (निष्ठाको) दृष्ट्वा (देखकर) कंस तुष्टमनाः (कंस आनन्दित होकर) प्रहसन् (हँसता हुआ) इदम् (इस प्रकार) अब्रवीत् (कहने लगा) ॥ ५९ ॥

अनुवाद—हे महाराज परीक्षित्! कंस श्रीवसुदेवके समत्व अर्थात् शत्रु और मित्रके प्रति समान-दृष्टि तथा सत्यमें उनकी ऐसी पूर्ण निष्ठाका दर्शनकर सन्तुष्ट हुआ तथा उसने मुसकराते हुए इस प्रकार कहा ॥ ५९ ॥

सारार्थदर्शिनी—समत्वं, पुत्रेऽपि ममत्वाभावात् सर्वत्र साम्यम् ॥ ५९ ॥

भावानुवाद—‘समत्व’ अर्थात् पुत्रके प्रति भी ममताके अभावके कारण सर्वत्र समता ॥ ५९ ॥

**प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम्।
अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥**

अन्वयः—अयं कुमारः (इस बालकको) प्रतियातु (घर वापस ले जाओ) अस्मात् (प्रथम गर्भसे उत्पन्न इस बालकसे) मे (मेरा) भयं (मरणका भय) न हि अस्ति (नहीं है) युवयोः (श्रीवसुदेव-देवकीके) अष्टमात् गर्भात् (अष्टम गर्भसे) मे (मेरा) मृत्यु (मरण) विहितः किल (आकाशवाणी द्वारा निर्द्धारित हुआ है) ॥ ६० ॥

अनुवाद—हे वसुदेव! अपने इस पुत्रको वापस ले जाइये, क्योंकि मुझे आपके इस प्रथम पुत्रसे कोई भय नहीं है। आकाशवाणीके अनुसार आपके आठवें पुत्रसे ही मेरी मृत्यु निर्दिष्ट हुई है ॥ ६० ॥

**तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः।
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥**

अन्वयः—आनकदुन्दुभिः (श्रीवसुदेवजी) तथेति (ऐसा ही हो, कहकर कंसके वाक्योंका अनुमोदन करते हुए) सुतं (पुत्रको) आदाय (लेकर) ययौ (अपने घर गये) [किन्तु] असतः (पापमति) अविजितात्मनः (अजितेन्द्रिय तथा अव्यवस्थित चित्तयुक्त पापमति कंसकी) तत् (पूर्वोक्त अर्थात् ‘अपने इस कुमारको वापस ले जाओ’ रूपी) वाक्यं (वचनोपर) न अभ्यनन्दत (विश्वास नहीं किया) ॥ ६१ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेवने 'तथास्तु' कहकर पुत्रको लेकर अपने भवनकी ओर प्रस्थान किया, किन्तु श्रीवसुदेव उस अजितेन्द्रिय क्रूर कंसके वचनोंपर विश्वास स्थापित नहीं कर पाये॥६१॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे—हे महाराज! श्रीवसुदेवजी इस प्रकार देवकीको मृत्युके विकराल मुखसे मुक्त कराकर अपने घर गये। वहाँ कुछ दिन गृहसुख-आस्वादन करनेके पश्चात् वसुदेवजीको देवकीके गर्भसे आठ पुत्र और एक कन्या हुई। उन आठ पुत्रोंमेंसे छह मरीचिके शापग्रस्त पुत्र हैं (इनका विवरण दूसरे अध्यायमें वर्णन होगा)। सातवाँ पुत्र श्रीबलदेव, आठवाँ पुत्र स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण और एक कन्या सुभद्रा है। देवकीके आठ पुत्रों और एक कन्याने नौ वर्षोंमें जन्म लिया। भगवान् अपने भक्तोंके दुःखको मिटानेके लिए अर्थात् शीघ्र ही आविर्भूत होनेके लिए प्रति वर्ष एक-एक पुत्रको देवकीके गर्भमें प्रदानकर आठवें वर्षमें स्वयं प्रकट हुए। वे सुभद्राके पुत्र अभिमन्युके साथ अनेकों लीलाएँ करेंगे, इसलिए सुभद्राको अपने जन्मके दूसरे वर्षमें ही देवकीगर्भमें प्रदान किया।

'युवैव वसुदेवोऽभूद्ब्रिहायाभ्यागतां जराम्' (श्रीविष्णुपुराण) अर्थात् श्रीकृष्णके जन्मके समयमें श्रीवसुदेवजी वृद्धकालमें भी युवा-पुरुषकी भाँति थे तथा 'वृद्धौ तवाद्यपितरौ' आदि अर्थात् 'हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे 'माता-पिता' वृद्ध हैं इत्यादि श्रीहरिवंशमें अक्रूरका वचन है। पूर्वोक्त श्रीविष्णुपुराण और श्रीहरिवंशके वचनानुसार समझा जाता है कि श्रीवसुदेवजीके वृद्धकालमें श्रीभगवान् पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए। अपने भक्तजनोंके प्रेमको बढ़ानेवाले श्रीभगवान् वसुदेवजीके परिपूर्ण वात्सल्यप्रेम-रसके आस्वादके लोभसे उनकी वृद्ध आयुमें सात पुत्रोंके वियोगके पश्चात् स्वयं अवतीर्ण हुए हैं।

वसुदेवजी भक्त-चूड़ामणि हैं, इसलिए झूठ बोलनेसे डरते हैं। उन्होंने देवकीके प्रथम पुत्रके जन्मके साथ-साथ कोई भी विचार न करके नवजात पुत्रको साक्षात् मृत्यु-स्वरूप कंसके हाथोंमें सौंप दिया। इस कार्यमें वे अत्यन्त कोमल हृदयवाले होकर भी बिन्दुमात्र विचलित

नहीं हुए, क्योंकि उन्होंने कंससे देवकीके सभी पुत्रोंको जन्म होनेपर उसके हाथोंमें सौंप देनेकी प्रतिज्ञा की थी। इसलिए उन्होंने पुत्रस्नेहवशतः प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं समझा। परन्तु उनका पुत्रस्नेह नहीं था, ऐसा भी नहीं है। यदि स्नेह नहीं होता, वे भगवान्को वात्सल्य-भावसे कैसे प्राप्त करते? वास्तवमें वसुदेवजीका हृदय पुत्रवात्सल्य-स्नेहसे परिपूर्ण होनेपर भी उन्होंने केवलमात्र प्रतिज्ञा-भङ्ग होनेके भयसे ही इस असह्य पुत्र-वियोगके दुःखको छिपाते हुए कठोर हृदयसे नवजात पुत्रको कंसके हाथोंमें समर्पणकर अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया—

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।

लोकोत्तराणां चेतांसि कोऽपिविज्ञातुमर्हति॥

अर्थात् कठोरतामें वज्रसे भी अति कठोर और कोमलतामें फूलसे अति कोमल चित्तवाले लोकातीत साधुपुरुषोंके चित्तको कौन जाननेमें समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

श्रीमद्भागवतमें देवकीके पहले पुत्रका नाम 'कीर्त्तिमान्' बताया गया है। इसमें ऐसा प्रश्न हो सकता है कि वसुदेवजीके नवजात पुत्रका नामकरण कैसे हुआ? वैष्णव-तोषणीमें इसका इस प्रकार समाधान हुआ है—“ब्रह्माके मानसपुत्र मरीचि ऋषिसे उत्पन्न पुत्ररूपी पहले जन्ममें तथा श्रीदेवकीके गर्भजात पुत्ररूपी तीसरे जन्ममें—दोनोंमें ही उनके 'कीर्त्तिमान्' आदि एक ही नाम थे तथा कालनेमिके पुत्ररूपी द्वितीय जन्ममें 'स्मर' आदि नाम थे। इस प्रकार श्रील श्रीधर स्वामीपादने श्रीकृष्ण द्वारा छह पुत्रोंको सुतलसे ले आनेके प्रसङ्ग (श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध ८५ अध्याय) में वर्णन किया है।” अतएव 'कीर्त्तिमन्तं प्रथमजं' आदि श्लोकका अर्थ इस प्रकार होगा—पहले और तीसरे जन्ममें कीर्त्तिमान् नामवाले देवकीगर्भसे उत्पन्न प्रथम पुत्रको वसुदेवजीने कंसके हाथोंमें समर्पण किया।

वसुदेवजीने जब कंसके हाथोंमें अपना पहला पुत्र सौंप दिया, तब कंसको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। विषयासक्त कंस इतने बड़े त्यागकी धारणा कभी नहीं कर सकता था। विषयासक्त बहिर्मुख

व्यक्तियोंका स्वार्थ ही प्राण है, भोग ही व्रत है, अपना-पराया भेद-बुद्धि ही उनका मूलमन्त्र है तथा झूठ बोलना उनके स्वार्थ-देवताकी पूजाका उपकरण है। समता और सत्यनिष्ठारूप महायज्ञमें भोग, स्वार्थ आदिकी आहुति देनी होती है। विषयासक्त एवं बहिर्मुख व्यक्ति इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। कंस मन-ही-मन सोचने लगा—देवकीके आठवें गर्भकी सन्तानसे मेरे वध होनेकी बात है, अतः प्रथम गर्भकी सन्तानका वध करनेसे क्या लाभ होगा? वसुदेवजी जैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं, उससे यह स्पष्ट है कि वे कभी भी अष्टम गर्भकी सन्तानको नहीं छिपायेंगे, निश्चित ही उसे मेरे हाथोंमें समर्पण करेंगे। अतएव प्रथम सात पुत्रोंका वध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह समझकर कंस वसुदेवजीसे कहने लगा—“वसुदेवजी! आपके सत्य व्यवहारसे मैं अतीव प्रसन्न हूँ। आप अपने पुत्र लेकर घर जाइये। आपके पहले पुत्रसे मुझे कोई आशङ्का नहीं है, परन्तु आठवें पुत्रके जन्म होनेके साथ-साथ उसे मुझे दे देना। उसी पुत्रसे मुझे प्राणहानिकी आशङ्का है।”

वसुदेवजी भी कंसकी बात सुनकर पुत्रको लेकर अपने घर लौटे। परन्तु वे कंसकी बातोंपर विश्वास न कर सके, क्योंकि विषयासक्त बहिर्मुखोंकी बातें विश्वासयोग्य नहीं होती। उनके अनुग्रह और निग्रहमें भी कोई भेद नहीं है। वे क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं।

इसलिए कंस जो कुछ कह रहा है, अभी वैसा ही किया जाय, बादमें जो होगा देखा जायेगा॥ ५६-६१ ॥

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषाञ्च योषितः।

वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः॥ ६२ ॥

सर्वे वै देवताप्रायाः उभयोरपि भारत।

ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः॥ ६३ ॥

अन्वयः—भारतः (हे परीक्षित्!) व्रजे (बृहद्वन-महावनमें) नन्दाद्याः ये (नन्द महाराज आदि जो) गोपा (गोप और गोपालकगण हैं) याश्च अमीषां (और नन्द महाराज आदिकी जो) योषितः (स्त्रियाँ

हैं) च (और) वसुदेवाद्याः (वसुदेव आदि) वृष्णयः (वृष्णि वंशमें उत्पन्न) [तथा] देवक्याद्याः (देवकी प्रमुख) [जो] यदुस्त्रियः (यदु-स्त्रियाँ हैं) [तथा] उभयोः अपि (नन्द-वसुदेव दोनोंके ही) ये ज्ञातयः (वंशजात जो) बन्धु-सुहृद् (बन्धु-बान्धव हैं) ये च कंसम् अनुव्रता (और जो कंसमें अनुरक्त हैं) सर्वे वै (वे सभी) देवता प्रायाः (प्रायः देवतागण ही हैं अर्थात् देवतागण उन-उन रूपोंमें अवस्थान कर रहे हैं) ॥ ६२-६३ ॥

अनुवाद—हे भरतवंश मुकुटमणि परीक्षित्! ब्रजवासी श्रीनन्द आदि गोपवृन्द और उनकी पत्नियाँ, श्रीवसुदेव आदि वृष्णवंशीगण, श्रीदेवकी आदि यदुकुलकी ललनाएँ, श्रीनन्द और श्रीवसुदेवके ज्ञाति, बन्धु और सुहृद्-वर्ग एवं जो बाह्य रूपसे कंसके अनुगतजन हैं, वे सब-के-सब देवताओंके समान हैं ॥ ६२-६४ ॥

सारार्थदर्शिनी—नन्दाद्या इति—श्रीशुकोक्तिः। यद्वा, श्रीनारदोक्तिः। तथाहि अवतरिष्यतः स्वाभीष्टदैवस्य शीघ्रदर्शनेन स्वमानन्दयितुं, शीघ्रं तत्प्रादुर्भावकारणं कंसकर्तृकवैष्णवद्रोहं प्रवर्तयन् देवानानन्दयितुं, तेन भक्तद्रोहेणैव कंसञ्च घातयितुं, कंसदास्यमानखेदानामपि तेषामभिज्ञभक्तानां भगवदाविर्भावनिश्चयज्ञापकाय स्वस्मै प्रीत्यतिशयमाशीः सहस्रञ्च दास्यमानानां भगवद्विदृक्षानन्दञ्च प्रवर्द्धयन्, हरिर्नो पुत्रौ भविता न वा? इति सन्दिहानौ देवकीवसुदेवौ सन्देहोच्छेदनेनानन्दसिन्धुषु निमज्जयन्, तेनैव बन्धनक्लेशोत्कर्षमपि हर्षविशेषं मानयन् सूचकेऽपि स्वस्मिन् सन्तोषयन्, मिथ्यासौहार्दाविष्कारेण सानुग कंसमपि स्वानुकूली-कुर्वन्नारदो मुनिरागत्य कंसं प्रति रहस्यमाह—नन्दाद्या इति द्वाभ्याम्। केषाञ्चिद्वैत्यत्वात् प्रायशब्दप्रयोगः। भा तामसी कान्तिस्तस्यां रतेति कंस सम्बोधनम्। उभयोर्वसुदेवनन्दकुलयोः ॥ ६२-६३ ॥

भावानुवाद—‘नन्दाद्याः’ आदि वचन श्रीशुकदेव गोस्वामी अथवा देवर्षि श्रीनारदकी उक्ति है।

अवतरित होनेवाले अपने अभीष्टदेवताके शीघ्र दर्शनके द्वारा स्वयं आनन्दित होनेके लिए, उनके शीघ्र आविर्भावके लिए कारण-स्वरूप कंसके द्वारा वैष्णवोंके उत्पीड़नको प्रवर्तनकर देवताओंको आनन्दित करनेके लिए, उस भक्तद्रोहसे ही कंसका विनाश करानेके लिए, कंसके द्वारा दिये जानेवाले दुःखोंको झेलनेवाले भगवान्के अभिज्ञ

भक्तोंको भगवान्‌के आविर्भावके सम्बन्धमें विश्वास दिलानेके लिए, अपने प्रति उनकी अतिशय प्रीतिके कारण उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिए तथा उनका भगवद्दर्शनका आनन्द वर्धन करनेके लिए, 'श्रीहरि और श्रीबलदेव हमारे पुत्ररूपमें आयेंगे या नहीं'—इस विषयमें सन्दिग्ध चित्तवाले देवकी और वसुदेवके सन्देहको दूरकर उन्हें आनन्द-सागरमें निमज्जित करनेके लिए तथा इसीसे भयङ्कर बन्धनरूपी कष्टमें भी उन्हें आनन्दका अनुभव करानेके लिए—फिर इसकी सूचनासे अपनेको भी सन्तोषित करनेके लिए, मिथ्या मित्रताका भाव दिखलाकर अपने अनुगत कंसको भी अपने अनुकूल करनेके लिए श्रीनारद मुनि कंसके निकट आकर 'नन्दाद्या' आदि दो श्लोकोंके द्वारा रहस्यपूर्ण बातें बतला रहे हैं।

'सर्वे वै देवताप्रायाः' अर्थात् प्रायः ये सभी देवता हैं। किन्तु, इनमेंसे किसी-किसीके दैत्य होनेके कारण यहाँ 'प्रायः' शब्दका प्रयोग हुआ है।

'भारत'—यहाँ 'भा' शब्दसे तामसी कान्ति अर्थात् अन्धकार, उसमें जो 'रत' है, वह 'भारत' है—यह कंसका सम्बोधन है। 'उभयोः' अर्थात् श्रीवसुदेव और श्रीनन्दके कुल ॥ ६२-६३ ॥

एतत् कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः।

भूमेभारायमाणानां दैत्यानाञ्च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः—भगवान् (सर्वज्ञ) नारदः (नारद ऋषि) अभ्येत्य (स्वर्गसे मथुरा आकर) एतत् (पूर्वोक्त नन्द-वसुदेव आदिका वृत्तान्त) च (और) भूमेः (पृथिवीके) भारायमाणानां (भारस्वरूप) दैत्यानां वधोद्यमम् (दैत्योंका वध करनेकी चेष्टाको) कंसाय शशंस (कंसके सामने प्रकाश्य रूपमें कह दिया) ॥ ६४ ॥

अनुवाद—भगवान्‌के अभिन्न विग्रह भक्तप्रवर श्रीनारदने एक समय कंसके समक्ष उपस्थित होकर उपरोक्त रहस्यपूर्ण बातोंको प्रकाशित किया। उन्होंने और भी बतलाया कि पृथ्वीके भारस्वरूप दैत्योंके संहारके लिए तैयारी चल रही है ॥ ६४ ॥

सारार्थदर्शिनी—शंसयामास शशंस ॥ ६२-६४ ॥

भावानुवाद—भगवान् श्रीनारदने कंसको इन सभी रहस्यपूर्ण बातोंसे अवगत कराया ॥ ६४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—कंसने देवकीके प्रथम पुत्रका वध न कर उसे छोड़ दिया। साधारण रूपसे देखा जाता है कि कंसने अच्छा काम किया। क्योंकि वह बालककी हत्याके पापसे छूट गया एवं वसुदेव-देवकीको पुत्रशोकसे बचाकर उन्हें उसके पालनके लिए अधिकारी बनाया।

परन्तु, कंसका यह सत्कर्म देवताओंको अच्छा नहीं लगा। वे सभी व्याकुल हो उठे एवं कंस वसुदेवसे उस पुत्रको लेकर वध करे, इसका प्रयास करने लगे। वास्तवमें इसमें देवताओंकी कोई बुरी नियत नहीं थी। वे जगत्का कल्याण करनेके लिए ही इस कार्यके लिए प्रयास करने लगे।

उसका पहला कारण यह था कि कंस यदि वसुदेव-देवकीके साथ सद्-व्यवहार करता है, तो श्रीभगवान्के भूतलपर अवतीर्ण होनेमें विलम्ब होगा। क्योंकि अपने भक्तोंपर अत्याचार न होनेपर वे कभी भी पृथ्वीमें अवतीर्ण नहीं होंगे।

दूसरा कारण यह भी है कि देवकीके गर्भसे उत्पन्न प्रथम छह पुत्र पहले मरीचि ऋषिके पुत्र थे। ब्रह्माके शापसे वे पृथ्वीमें आये हुए थे। कंसके हाथसे मृत्यु न होनेपर वे शापमुक्त नहीं हो सकते हो। इसलिए कैसे कंसके हाथोंसे उनकी मृत्यु हो, इस विषयमें देवता लोग विशेष रूपसे चेष्टा करने लगे।

देवताओंके इस प्रकार चिन्तित होनेपर देवर्षि नारद वहाँ उपस्थित हुए। देवताओंने उनसे अपनी चिन्ताकी बात बतलायी। देवताओंके कार्यको सम्पन्न करनेके लिए एवं शीघ्र ही भगवान्को अवतीर्ण कराकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिए वे स्वर्गसे पृथ्वीमें आये। यहाँ आकर उन्होंने कंससे भेंटकी तथा जिससे वह देवकीके गर्भसे उत्पन्न पुत्रोंका वध कर सके एवं वसुदेव-देवकी और यादवोंपर विशेष रूपसे अत्याचार करे, इसकी भी व्यवस्था कर गये।

श्रीनारद ऋषिके मथुरा-आगमनके विषयमें श्रीहरिवंशपुराणमें वर्णन हुआ है—‘त्रिपिष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः’ आदि अर्थात् श्रीनारदजी स्वर्गसे चलकर मथुरा-स्थित कंसके उपवनमें उपस्थित हुए। वहाँसे उन्होंने कंसके समीप दूत भेजा। कंस अपने दूतसे नारदजीके आगमनकी वार्ता सुनकर शीघ्र ही अपने राजभवनसे उपवनमें उपस्थित हुआ। वहाँपर अतिथि, पूजनीय, पापरहित, तेजस्वी श्रीनारद मुनिका दर्शनकर उसने उन्हें प्रणाम किया तथा पाद्य-अर्घ्य आदि पूजोपहार समर्पणकर उन्हें उत्तम आसन प्रदान किया। नारदजी भी उसके प्रदत्त आसनको ग्रहणकर कहने लगे—हे वीर! मैं तुम्हारी पूजासे अतीव प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें एक गुप्त बात कहता हूँ, सुनो! मैं एकदिन ब्रह्मादि देवताओंसे मिलनेके लिए सुमेरु पर्वतपर गया, वहाँ जाकर मैंने देवताओंको परस्पर कुछ गुप्त परामर्श करते हुए सुना। वे तुम्हें मारनेके लिए विविध प्रकारकी चर्चा कर रहे थे। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करो।

नारदजीने मन-ही-मन विचार किया कि कंसके द्वारा देवकीके गर्भसे उत्पन्न छह पुत्रोंका संहार कराना होगा एवं व्रजके गोपगण, मथुराके यादवगण आदि जितने भी भगवान्‌के पार्षद हैं, उन सबपर भयानक अत्याचार कराने होंगे। तभी श्रीभगवान् जल्दी-से-जल्दी अवतीर्ण होकर पृथ्वीका भार हरण करेंगे और अनेकों प्रकारकी मधुर लीलाओंके द्वारा हम सबका आनन्द वर्द्धन करेंगे।

नारदजीने मन-ही-मन ऐसा विचारकर कंससे कहा—हे कंस! मैं तुम्हें एक और गुप्त बात बतलाता हूँ—नन्द आदि जितने भी व्रजवासी, नन्द आदि गोप, यशोदा आदि उनकी पत्नियाँ एवं मथुरा और दूसरे स्थानोंके निवासी जितने भी यादव हैं तथा वसुदेव-देवकी आदि कोई भी मानव नहीं हैं अथवा तुम्हारे कोई हितैषी नहीं हैं। ये सभी तुम्हारे मित्र बनकर मीठी-मीठी बातें तो करते हैं, परन्तु ये सभी देवता हैं। तुम पिछले जन्ममें महाबली-महापराक्रमी हिरण्याक्षके पुत्र कालनेमि नामक असुर थे। देवासुर संग्रामके समय विष्णुने तुम्हारा वध किया था। इस बार तुम कंसके रूपमें पैदा हुए हो। इस बार भी तुम्हें मारनेके लिए विष्णु विशेष प्रयास कर रहे हैं। परन्तु

तुम महापराक्रमी हो, वे अकेले तुम्हारे साथ लड़ नहीं सकेंगे, इसलिए उन्होंने अपने पार्षदोंको पहले भेज दिया है। उसके पश्चात् वे स्वयं देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहण करेंगे। तुमने जो देवकीके पहले पुत्रका वध नहीं किया, यह कार्य भी अच्छा नहीं हुआ, क्योंकि तुम्हें दैववाणीमें विश्वास नहीं है। अष्टमगर्भकी सन्तान तुम्हारा वध करेगी, यह सुनकर तुम निश्चिन्त हो, परन्तु कौन-सा आठवाँ होगा? यह कौन जानता है? सबको घुमा फिराकर देखनेसे सभी अष्टम होते हैं। अब मैंने तुमसे सारी गुप्त बातें कह दी हैं, तुम बुद्धिमान हो, विचार-विवेचना करके जैसा अच्छा हो, वैसे करो ॥ ६२-६४ ॥

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून् मत्वा सुरानिति।

देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुञ्च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥

देवकीं वसुदेवञ्च निगृह्य निगडैर्गृहे।

जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥

अन्वयः—ऋषेः (श्रीनारदका) विनिर्गमे (मथुरासे प्रस्थान होनेपर) कंसः यदून् (कंसने वसुदेव आदि सभी यादवोंको) सुरान् इति मत्वा (श्रीनारदके उपदेशसे छद्मवेशधारी देवताओंके रूपमें जानकर) च (और) देवक्या गर्भसम्भूतं (देवकी गर्भमें जन्म लेनेवाले) विष्णुं (श्रीभगवान्को) स्ववधं प्रति (अपने संहारके लिए ही अवतरित होंगे) [ऐसा जानकर] देवकीं वसुदेवं च निगडैः (देवकी और वसुदेवको लौह शृङ्खलाओंके द्वारा) गृहे (कारागारमें) निगृह्य (आबद्धकर) अजनशंकया (श्रीभगवान्से मरण-भयकी आशङ्कासे) तयोः (वसुदेव-देवकीके) पुत्रं जातं जातं (पुत्रोंको जन्म लेते ही) अहन् (मारने लगा) ॥ ६५-६६ ॥

अनुवाद—जब देवर्षि नारद चले गये, तब कंसको यह दृढ़ निश्चय हो गया कि सभी यादवलोग देवता हैं। उसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न सन्तानमात्रको ही अपनी मृत्युका कारण विष्णु समझकर श्रीदेवकी और श्रीवसुदेवको जंजीरोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया और जन्मरहित विष्णुसे अपनी मृत्युकी आशङ्कासे जैसे-जैसे श्रीवसुदेव

और श्रीदेवकीकी एक-एक सन्तान आविर्भूत होती गयी, वैसे-वैसे वह कंस भी एक-एक करके उनका वध करता गया ॥ ६५-६६ ॥

सारार्थदर्शिनी—विष्णुञ्च स्ववधं प्रतीति—‘पूर्वशत्रुर्विष्णुर्देवक्यामाविर्भूय त्वां वधिष्यति’ इति नारदेनोक्तं तत्तत् सर्व एव शुश्रुवुश्चेत्यपि ज्ञेयम्। अजनो विष्णुस्तच्छङ्कया ॥ ६५-६६ ॥

भावानुवाद—‘तुम्हारे पूर्वशत्रु विष्णु ही देवकीके गर्भसे आविर्भूत होकर तुम्हारा वध करेंगे’—इस प्रकार देवर्षि नारदके द्वारा उक्त देवताओंके उद्यम आदि सभी विषयोंका भी कंसने श्रवण किया, ऐसा जानना होगा। ‘अजन-शंकया’—अर्थात् विष्णुकी आशङ्कासे ॥ ६५-६६ ॥

मातरं पितरं भ्रातृन् सर्वाश्च सुहृदस्तथा।

घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥

अन्वयः—भुवि (संसारमें) प्रायशः (प्रायः) असुतृपः (अपने प्राणोंको पोषण करनेके लिए तत्पर) लुब्धाः (विषयलोलुप) राजानः (राज-गण) मातरं पितरं भ्रातृन् सुहृदां तथा च सर्वान् (माता, पिता, भाई, बन्धु तथा सबका) घ्नन्ति (विनाश करते हैं) ॥ ६७ ॥

अनुवाद—इस पृथ्वीपर प्रायः भोग-लोभ-ग्रस्त, आत्मेन्द्रिय तर्पणमें रत राजा अपने माता, पिता, भ्राता और सभी सुहृदोंका विनाश किया करते हैं ॥ ६७ ॥

सारार्थदर्शिनी—कंसादीनां दुर्जनानामेतत्र चित्रमित्याह—मातरमपि, किमुत पितरम्? इत्येवं यथापूर्वं गुरुत्वाधिक्यम् ॥ ६७ ॥

भावानुवाद—कंसादि दुर्जनोंके द्वारा किया गया ऐसा कार्य बिल्कुल भी आश्चर्यजनक नहीं है। इसलिए कह रहे हैं कि जब वे अपनी गर्भ-धारिणी माँ तकको भी मार डालते हैं, तो फिर पिताके विषयमें तो कहना ही क्या? यहाँ बादवालेसे पहलेवालेका गुरुत्व अधिक है अर्थात् बन्धुसे भ्राताका, भ्रातासे पिताका तथा पितासे माताका गुरुत्व अधिक है ॥ ६७ ॥

आत्मानमिह सज्जातं जानन् प्राग्विष्णुना हतम्।
महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

अन्वयः—सः (कंसने) आत्मानं (अपनेको) प्राक् (पहले जन्ममें) विष्णुना हतं महासुरं कालनेमिं (विष्णु द्वारा मारे गये हिरण्याक्ष पुत्र महासुर कालनेमि) [ही] इह (इस जन्ममें) सज्जातं (कंस रूपमें जन्म ग्रहण किया है) (यह तथ्य) जानन् (नारदजीके वचनोंसे जानकर) यदुभिः (यादवोंसे) व्यरुध्यत (विद्वेष करना शुरु कर दिया) ॥ ६८ ॥

अनुवाद—पूर्व जन्ममें जब कंस इस पृथ्वीपर कालनेमि नामक दुर्दान्त असुरके रूपमें उत्पन्न हुआ था, तब भगवान् विष्णुने उसका संहार किया था। कंसने इस बातको (देवर्षि नारदसे) जानकर यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया ॥ ६८ ॥

सारार्थदर्शिनी—जानन्, नारदवचनात् ॥ ६८ ॥

भावानुवाद—श्रीनारदके वचनोंसे जान गया ॥ ६८ ॥

उग्रसेनञ्च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम्।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे
श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अन्वयः—यदुभोजान्धकाधिपम् (यदु-भोज-अन्धकादिके अधिपति) पितरं उग्रसेनञ्च (अपने पिता उग्रसेनको भी) निगृह्य (कारागारमें डालकर) महाबलः (महाबलशाली कंस) स्वयं शूरसेनान् (शूरसेन नामक जनपद-राज्यका स्वयं) बुभुजे (राज्य करने लगा) ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके प्रथम अध्यायका
अन्वयः समाप्तः ।

अनुवाद—यदु, भोज एवं अन्धक आदि वशोंके अधिपति अपने पिता उग्रसेनको कारागारमें कैदकर महाबलशाली कंस स्वयं 'शूरसेन' नामक राज्यपर शासन करने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके प्रथम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

सारार्थदर्शिनी—शूरसेनान्तर्गतत्वान्माथुरानपि ॥ ६९ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम् ।
दशमे प्रथमोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
प्रथमोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता ॥ १ ॥

भावानुवाद—शूरसेन राज्य कहनेसे उसके अन्तर्गत मथुराका भी राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके पहले अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके प्रथम अध्यायकी श्रील
विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका
भावानुवाद समाप्त ।

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीनारदजीने कंसको बहुत-से हितकर उपदेश प्रदानकर उसकी मृत्युका मार्ग प्रशस्त कर दिया तथा वहाँसे चले गये। कंसने भी नारदजीकी बातोंको श्रद्धापूर्वकमें ग्रहण किया। क्योंकि विषयासक्त बहिर्मुख जनोंका स्वभाव यह है कि उन्हें कुकर्म द्वारा स्वार्थ-पूरा करनेको कहनेसे वे इस उपदेशको सहज ही ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु उन्हें अपने स्वार्थके त्यागका तथा सत्कर्म करनेका उपदेश अच्छा नहीं लगता, इसलिए ऐसे उपदेशोंको ग्रहण करनेमें उन्हें आपत्ति होती है।

नारदजीकी बातोंसे कंसको दृढ़ विश्वास हो गया कि सभी यादव छद्मवेशधारी देवता हैं। देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु जन्म

ग्रहणकर उसका वध करेंगे एवं वह पहले जन्ममें कालनेमि नामका असुर था। उसका वध करनेके लिए भगवान् ने देवताओंके साथ परामर्शकर उन्हें पहले ही मथुरामें भेज दिया है और विष्णु भी ठीक समयपर देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहण करेंगे। श्रीनारदजीके इस वचनको सुनकर कंस स्पष्ट रूपसे समझ गया कि वह शत्रुओंसे घिर गया है।

इसलिए उसने पहले देवकीके प्रथम पुत्रको मार डाला एवं देवकी-वसुदेवजीको कारागारमें बन्द कर दिया। इसके पश्चात् देवकीके गर्भसे पुत्रोंके जन्म होनेके साथ साथ उन्हें मारने लगा। क्योंकि देवकीके कौन-से गर्भसे विष्णु आयेंगे, इसकी कोई स्थिरता नहीं है। कंसको श्रीनारदजीसे इस विषयकी जानकारी हो गयी थी। इसलिए पुत्रके जन्मके साथ-ही-साथ-यही मेरा पूर्व-शत्रु विष्णु होगा—ऐसा समझकर उस पुत्रको मार डालता।

श्रीभगवान् 'अजन्' अर्थात् उनका जीवकी भाँति भौतिक जन्म नहीं होता है, भक्तोंके परिपालन आदि लीलाओंके लिए उनका आविर्भाव होता है, परन्तु बहिर्मुख व्यक्ति इस प्रकार स्थूल बुद्धिवाले हैं कि वे समझते हैं कि भगवान् हमारे जैसे प्राकृत देह धारणकर जन्म ग्रहण करते हैं। कंस भी बहिर्मुख व्यक्तियोंकी भाँति समझने लगा कि विष्णु भी हमारे जैसे ही जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए जन्मके साथ-साथ उसे मारनेसे मेरी सभी समस्याएँ मिट जायेंगी। फिर मैं अमर हो जाऊँगा।

श्रीभगवान् की श्रीमूर्ति नित्य, सच्चिदानन्दमय है। वे सर्वशक्तिमान हैं, उनका जन्म-मृत्यु नहीं है, उनके इशारेपर अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड परिचालित होते हैं। परन्तु बहिर्मुख व्यक्तियोंके मनमें ये बातें नहीं आती, क्योंकि भगवत्-सम्बन्धीय सिद्धान्त केवल भक्तोंका अपना सम्पद है।

कंस अपने हाथोंसे बहनके पुत्रोंका वध कर रहा है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि जो स्वार्थ-परायण है, वह अपने माता, पिता, भाई, आत्मीय, स्वजन आदि सबका संहारकर आत्म-पोषण करता है। क्योंकि अपना स्वार्थ ही उसके जीवनका लक्ष्य होता है।

कंसने केवलमात्र वसुदेवजी और देवकीको कारागारमें बन्द किया, ऐसा नहीं; उसने अपने पिता उग्रसेनको भी कारागारमें बन्द कर दिया। उग्रसेन यादवपति हैं, अतएव वे भी छद्मवेशी देवता हैं, यादवोंकी सहायतासे वे भी मेरा वध कर सकते हैं—ऐसा कंसका विश्वास था। इसलिए कंसने यादवोंके प्रति घोर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। उसने विचार किया—केवलमात्र देवकीके पुत्रवधसे वह विपत्तिसे मुक्त नहीं हो सकता। आत्मीय, स्वजन, बन्धु-बान्धव सहित यादवोंका विनाश करनेसे ही वह पूर्ण रूपसे विपत्तिमुक्त होगा। इस प्रकार अपनी मृत्युको टालनेमें कंसने अपनी बुद्धि और बलका प्रयोग करनेमें कोई त्रुटि नहीं रखी। यादवोंको यथासाध्य उत्पीड़नकर वह स्वयं राजा बनकर मथुरा-मण्डलका शासन करने लगा ॥ ६५-६९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके प्रथम अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

द्वितीय अध्यायका कथासार

इस अध्यायमें कंसके विनाशके लिए देवकीके गर्भमें श्रीहरिका प्रवेश, ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा गर्भमें प्रविष्ट श्रीहरिकी वन्दना करना और देवकीको सान्त्वना प्रदान करना वर्णित हुआ है।

जब कंस जरासन्धके आश्रय तथा प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, बाण और भौम आदि असुरोंकी सहायतासे यादवोंका उत्पीड़न करनेमें प्रवृत्त हुआ, तब यादवोंने पाञ्चाल, केकय, शाल्व और विदर्भ आदि राज्योंकी शरण ली। केवल कुछेक यादव ही कंसके निकटमें अवस्थान करने लगे।

कंसके द्वारा देवकीके छह पुत्रोंका वध होनेके बाद श्रीसङ्कर्षण देवकीके सप्तम गर्भके रूपमें प्रकटित हुए। दूसरी ओर स्वयं-भगवान्ने देवकीके गर्भमें प्रविष्ट अनन्तदेवको आकर्षणकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित करनेके लिए योगमायाको आदेश दिया तथा उन्होंने योगमायाको यह भी बतलाया कि मैं भी शीघ्र ही देवकीके गर्भमें आविर्भूत होऊँगा एवं यशोदाके गर्भमें आपका आविर्भाव होगा। भगवान् और माया—दोनोंके आविर्भावसे कुछ लोग वैष्णव और कुछ लोग शाक्त हो गये। शाक्तगण मायाको दुर्गा, भद्रकाली और चण्डिका आदि भावानुयायी नाम प्रदान किया करते हैं।

श्रीभगवान्के आदेशसे योगमायाने देवकीके सप्तम गर्भको आकर्षितकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित किया था, इसलिए देवकीके वह सप्तम गर्भ मूल-सङ्कर्षण, श्रीकृष्णके प्रति लोगोंकी रति उत्पादन करनेके कारण राम और अत्यन्त बलशाली होनेके कारण 'बलभद्र' के नामसे अभिहित हुए। श्रीभगवान्के आदेशसे योगमायाने जब देवकीके गर्भको आकर्षणकर रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया, तब भगवान् श्रीवसुदेवके चित्तसे देवकीके हृदयमें प्रविष्ट हो गये। भगवान्के आविर्भाववशतः देवकीकी देह अत्यन्त तेजोमय हो गयी, जिसे देखकर यद्यपि कंसके मनमें भयका सञ्चार तो हुआ, तथापि उसने विवेकका

अवलम्बनकर देवकीका कोई अनिष्ट नहीं किया तथा वह प्रतिकूल भावसे सर्वदा भगवान्का चिन्तन करने लगा। इसी बीच भगवान्, जीव और माया—इस त्रिसत्यमेंसे भगवान्का नित्य सत्यत्व, देहसे जीवात्माका और जीवात्मासे परमात्माका श्रेष्ठत्व तथा सर्वेश्वरत्व, भगवान्का स्वतन्त्र कर्तृत्व, अवतारसमूहोंका विशुद्ध सत्त्वमयत्व, शरणागत भक्तोंका महत्त्व और अशुद्धचित्त जीवन्मुक्ताभिमानियोंके परिणाम, भक्तोंका निर्भयत्व तथा भगवान्के अवतारोंका प्रयोजनत्व प्रतिपादक ज्ञानमय वचनोंके द्वारा देवतागण देवकीके गर्भमें प्रविष्ट भगवान्की स्तुति करने लगे।

द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका देवकीके गर्भमें प्रवेश और
ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा उनकी स्तुति

श्रीशुक उवाच—

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ।
मुष्टिकारिष्टद्विविद-पूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥

अन्वयः—प्रलम्ब-बक-चाणूर-तृणावर्त-महाशनैः (इन-इन नामोंके प्रसिद्ध महा-असुर, इसमें महाशन 'अघासुर' का नामान्तर है) मुष्टिकारिष्ट-द्विविद-पूतना-केशि-धेनुकैः (इन-इन नामोंके महा-असुर) अन्यैश्च (और भी दूसरे-दूसरे) बाण-भौमादिभिः (बलिपुत्र बाणासुर और भौम अर्थात् नरकासुर आदि) असुरभूपालैः (असुर राजाओंसे) युतः (युक्त) बली (इन सबकी सहायतासे महाबलवान कंस) मागधसंश्रयः (जरासन्धकी सहायतासे) यदूनां (यादवोंका) कदनं (उत्पीड़न) चक्रे (करने लगा) ॥ १-२ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे महाराज परीक्षित! मगधराज जरासन्धके आश्रित पराक्रमशाली कंसने प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, नरकासुर एवं अन्यान्य असुर राजाओंके साथ मिलकर यादवोंका उत्पीड़ित करना आरम्भ कर दिया ॥ १-२ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

गर्भं सञ्चार्य रोहिण्यां देवक्या योगमायया ।

तस्याः कुक्षिं गतः कृष्णो द्वितीये विबुधैः स्तुतः ॥

‘यदुभिः स व्यरुध्यत’ इत्युक्तं तमेव विरोधं प्रपञ्चयति—प्रलम्बेति सार्धत्रयेण ।
महाशनोऽघासुरः ॥ १-२ ॥

भावानुवाद—इस द्वितीय अध्यायमें योगमायाके द्वारा देवकीके गर्भको आकर्षित करके रोहिणीके गर्भमें स्थापन करना एवं देवकीके गर्भमें प्रविष्ट श्रीकृष्णके उद्देश्यसे देवताओंके द्वारा की गयी स्तुतिका वर्णन हुआ है।

पिछले अध्यायके अड़सठवें श्लोकमें कहा गया है कि ‘कंस यादवोंके साथ विरोधाचरण करने लगा।’ उस विरोधाचरणका ही ‘प्रलम्ब’ आदि साढ़े तीन श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहे हैं। ‘महाशन’ अर्थात् अघासुर ॥ १-२ ॥

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ।

शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोशलानपि ॥ ३ ॥

अन्वयः—ते (वे यादवगण) पीडिताः (कंसके द्वारा उत्पीडित होकर) कुरु-पञ्चाल-केकयान् (कुरु, पाञ्चाल, केकय आदि देशोंमें) शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोशलान् अपि (शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, कोशल आदि देशोंमें भी) निविविशुः (गुप्त रूपमें अवस्थान करने लगे) ॥ ३ ॥

अनुवाद—समस्त यादवोंने असुरोंके अत्याचारोंसे उत्पीडित होकर कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह एवं कोशल आदि प्रदेशोंका आश्रय स्वीकार किया ॥ ३ ॥

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ।

हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।

गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥

अन्वयः—एके (अक्रूर आदि कुछ) ज्ञातयः (आत्मीयजन) तम् (कंसके) अनुरुन्धानाः (मतानुयायी होकर) पर्युपासते (उसकी आराधना करने लगे) [अनन्तर] औग्रसेनिना (उग्रसेन-पुत्र कंसके द्वारा) देवक्याः (वसुदेवकी पत्नी देवकीके) षट्सु (छह) बालेषु (पुत्रोंका) हतेषु (विनाश होनेपर) वैष्णवं (श्रीकृष्ण-सम्बन्धीय) धाम (धाम-स्वरूप) यम् अनन्तं (चतुर्व्यूह-तत्त्वमें जो द्वितीय तत्त्व हैं, जिन्हें अनन्त या सङ्कर्षणके नामसे) प्रचक्षते (अभिज्ञगण जानते हैं) [वे ही] देवक्याः (वसुदेव-पत्नी देवकीका) हर्षशोकविवर्द्धनः (आनन्दरूपका अवतार होनेसे हर्ष और साधारण दृष्टिमें पहले सन्तानोंकी भाँति उनके नाशकी आशंकासे शोक—इन दोनोंको बढ़ानेवाले, अतएव हर्ष-शोक विवर्द्धनकारी) सप्तमः गर्भः बभूव (सप्तम गर्भ हुए) ॥ ४-५ ॥

अनुवाद—कुछ आत्मीय लोग ऊपर-ऊपरसे कंसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवा करने लगे। जब उग्रसेन-पुत्र कंसने देवकीके छह पुत्रोंको मार डाला, तब देवकीके हर्ष और शोकको बढ़ानेवाला सप्तम गर्भ प्रकाशित हुआ। यह गर्भ श्रीकृष्णका अंश अथवा श्रीकृष्णमय धाम है। विद्वान लोग उनका चतुर्व्यूह-तत्त्वमें द्वितीय श्रीसङ्कर्षणके रूपमें वर्णन करते हैं ॥ ४-५ ॥

सारार्थदर्शिनी—एके अक्रूरादयः श्रीकृष्णावतारदर्शनोत्कण्ठावन्तः, तं कंसं, अनुरुन्धानाः तदाज्ञावर्त्तिनः। सप्तमो गर्भो बभूव यं गर्भमनन्तं प्रचक्षते। कीदृशं? वैष्णवं धाम, कृष्णस्यांशमित्यर्थः। साक्षादानन्दस्य कुक्षिगतत्वाद्धर्षः, कंसो वधिष्यतीति बुद्ध्या शोकः ॥ ४-५ ॥

भावानुवाद—अक्रूर आदि आत्मीय यादवगण श्रीकृष्णावतारके दर्शन करनेकी उत्कण्ठासे कंसके आदेशका पालन करते हुए मथुरामें ही रहने लगे। देवकीका सातवाँ गर्भ प्रकाशित हुआ, जिन्हें विद्वान लोग 'अनन्त' कहकर सम्बोधित करते हैं। वे कैसे हैं? 'वैष्णवं धाम' अर्थात् श्रीकृष्णके अंश हैं। साक्षात् आनन्दमय प्रभु उनके उदरमें हैं, इसलिए देवकीको हर्ष तथा साथ-ही-साथ कंस पूर्व-पूर्व पुत्रोंकी भाँति इसका भी विनाश करेगा—इस चिन्तासे शोक बढ़ने भी लगा। इस

प्रकार देवकीके हृदयमें युगपत् हर्ष और विषाद दोनों ही बढ़ने लगे ॥ ४-५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित्के समीप श्रीकृष्णका पृथ्वीपर अवतार लेनेके प्रसङ्गमें 'श्रीभगवत्-अवतारका एक कारण—असुरोंके अत्याचारसे अपने भक्तोंकी रक्षा करना है'—इसका अब वर्णन करने लगे।

कंसके पिता यादव-पति उग्रसेन जब मथुराके राजा थे, तब भक्त-चूड़ामणि यादवगण ही उनके विश्वास-पात्र, मित्र, सभासद, मन्त्री आदि थे। परन्तु कंसने उग्रसेनको कारागारमें बन्दकर राज सिंहासनपर बैठकर अपने मन-पसन्द पात्र-मित्र आदिको अपना सलाहकार नियुक्त किया। प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त्त आदि हिंसा-परायण और दूसरोंका उत्पीड़न करनेवाले राक्षसगण तब कंसके सभासद बन गये। बाणासुर, जरासन्ध, नरकासुर आदि कंसके सलाहकार हो गये।

उस समय राज्य और प्रजाओंकी क्या स्थिति होगी? इसका अनुमान सहज ही लगा जा सकता है। कहाँ भक्त-चूड़ामणि उग्रसेनका श्रीगोविन्द-चरणारविन्दकी सेवासे पवित्र बुद्धि द्वारा परिचालित राज्य और कहाँ दुरात्मा, परहिंसक, स्वार्थ-परायण, असुर कंसकी हिंसा-द्वेष आदि कलुषित-बुद्धिके द्वारा परिचालित स्वार्थपर राज्य-शासन। जिस राज्यकी प्रजा एक दिन श्रीगोविन्दकथाके श्रवण-कीर्त्तनादि प्रसङ्गमें परमानन्दपूर्वक निवास करती थी एवं जहाँ न्यायपूर्वक उपार्जित अर्थके द्वारा श्रीगोविन्दकी सेवा होती थी, आज उन प्रजाओंकी कैसी दुर्दशा है? श्रीभगवान्के नाम आदि श्रवण-कीर्त्तनकी उन्हें कोई भी सुविधा नहीं थी, बल्कि कोई छिपकर कुछ शुभ-अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि करता, तो उसे राजदण्डसे दण्डित होना पड़ता था। प्रजाओंका कष्ट द्वारा अर्जित धन बलपूर्वक छीन लिया जाता था तथा उससे आसुरिक आमोद-प्रमोदका अनुष्ठान होता था। प्रजासमूह कंसके अत्याचारसे उत्पीड़ित होकर कुरु, पाञ्चाल, केकय आदि देशोंमें जाकर उन राजाओंके शरणार्थी बनकर रहने लगे।

कोई-कोई कंसके अत्याचारको सहन करते हुए भी मथुरावासको अपना कर्त्तव्य मानकर उसके अनुगत होकर रहने लगे। उनकी

भावना थी कि मथुरा भगवान्की लीला-भूमि है, बड़े सौभाग्यसे इस स्थानमें निवास होता है और इसका फल भी सामान्य नहीं है। पद्मपुराणके अनुसार इस महापुण्य तीर्थमें एकदिन-मात्र निवास करनेसे ही श्रीगोविन्दके चरणारविन्दमें भक्ति प्राप्त होती है। अतः केवल कंसके अत्याचारसे इस स्थानको त्याग करना उचित नहीं होगा। अवश्य ही यह भगवान्की कोई परीक्षा है। इसलिए कैसे भी धैर्य धारणकर मथुरामें रहनेसे अतिशीघ्र हम भक्तवत्सल गोविन्दकी प्रकटलीलाका दर्शनकर कृतार्थ हो जायेंगे।

परन्तु, कंसका अत्याचार दिन-प्रतिदिन चरम स्तरपर बढ़ने लगा। यादवों तथा उनके बन्धु-बान्धवोंपर अत्याचार करना—उसने यही अपने जीवनका महाव्रत बना लिया था। उधर श्रीभगवान्के नित्यपार्षद वात्सल्यप्रेमके आधार वसुदेवजी और देवकी लोहेकी जंजीरोंमें बँधे हुए कारागारमें थे, प्रतिवर्ष उनके एक-एक पुत्रका जन्म होता था और कंस उन्हें मारता जाता था। इस प्रकार कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न छह पुत्रोंका विनाश कर डाला।

श्रीशुकदेवजीने परीक्षितजीसे कहा—हे महाराज! कंसके द्वारा देवकीके छह पुत्रोंको मारनेके पश्चात् उनका सप्तम गर्भ प्रकाशित होने लगा। श्रीशुकदेवजीने भक्तपीड़नकारी एवं बाल-हत्याकारी महापापीका नाम उच्चारण करनेमें घृणाका अनुभव किया, इसलिए उन्होंने यहाँपर कंस न कहकर 'औग्रसेनि' अर्थात् उग्रसेनका पुत्र कहा। देवकीके सातवें गर्भका लक्षण प्रकाशित होनेपर वसुदेव-देवकी—दोनों ही हर्ष-शोकसे अधीर हो गये। उनके हर्षका कारण यह था—वे विचार कर रहे थे कि हमारी दुःखकी रात्रि बीतनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है, इस गर्भके पश्चात् दूसरे गर्भमें ही श्रीभगवान् आयेंगे। उनका लालन-पालनकर हम कृतार्थ होंगे। शोकका कारण यह था कि पहले पुत्रोंकी भाँति सातवें गर्भका बालक भी दुरात्मा कंसके हाथोंसे मारा जायेगा।

श्रीशुकदेवजीने परीक्षितजीसे कहा—हे महाराज! देवकीका सातवाँ गर्भ पहले जैसा नहीं है, इसमें कुछ विशेषता है। तत्त्वज्ञ व्यक्ति जिन्हें अनन्त कहते हैं तथा श्रीभगवान्के चतुर्व्यूहके जो द्वितीय हैं, वे

श्रीसङ्कर्षण ही इस बार देवकीके सातवें गर्भमें आगमन कर रहे हैं। वे 'वैष्णवधाम' हैं। 'धाम' का अर्थ कला अर्थात् 'अंश' है। इस प्रकार श्रीभगवान्‌के अंश ही देवकीके सातवें गर्भमें उपस्थित हुए हैं।

इस विषयमें सभी वैष्णव आचार्योंका एक ही अभिमत है। श्रीसङ्कर्षण श्रीकृष्णके स्वांश और चतुर्व्यूहके द्वितीय हैं, परन्तु यहाँ विचारणीय यह है कि श्रीशुकदेवजी 'सप्तमो भगवदंशः' इस प्रकार सरलभावसे तत्त्वको प्रकाश न करके 'वैष्णवं धाम'—इस अनेकार्थ-बोधक सङ्कर्षणतत्त्वको क्यों प्रकाशित कर रहे हैं? 'धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्म प्रभावयोः' आदि अभिधानके वचनोंसे देखा जाता है कि 'धाम' शब्द—रश्मि, गृह, देह, स्थान, जन्म और प्रभावका वाचक है।

श्रीधरस्वामिपाद आदि टीकाकारोंके विचारसे 'धाम' शब्दका 'अंश' अर्थ ग्रहणकर सङ्कर्षणको श्रीकृष्णका अंश कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु वास्तवमें वे केवलमात्र अंश ही नहीं हैं। अनन्त-संहिता ग्रन्थमें देखा जाता है—

निवासशय्यासन पादुकांशुकोपाधान वर्षातप वारणादिभिः।

शरीरभेदैरवशेषतां गतैः यथोचितं शेष उदीरतो जनैः॥

अर्थात् श्रीसङ्कर्षण निवास, शय्या, आसन, पादुका आदि अनेकों मूर्तियोंमें श्रीभगवान्‌की सेवा करते हैं। अतएव 'धाम' शब्दका अर्थ गृह या स्थान कहनेसे असङ्गति नहीं है। देवकीके गर्भमें भगवान्‌ आर्येण—इसलिए उनके आसनके रूपमें वे पहले ही आये हैं। 'देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्' (श्रीमद्भा० १०/२/८) श्लोककी व्याख्यामें श्रीवैष्णव-तोषणीकारने भी कहा है—'मामकं सङ्कर्षण संज्ञं धाम रूपं आधारशक्तिमयत्वेनाश्रयं वा' अर्थात् सङ्कर्षण नामक 'धाम' अर्थात् आधार शक्ति-स्वरूप या आश्रय-स्वरूप है। अतएव श्लोकमें स्थित 'वैष्णवं धाम'—इस अंशसे श्रीभगवान्‌का आश्रय अर्थात् आसन, स्थान—यह अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है।

ताहाँर द्वितीय देह श्रीबलराम॥

गोविन्देर प्रतिमूर्त्ति श्रीबलराम॥

(श्रीचै० च० आ० ५/४, ७३)

अर्थात् श्रीबलराम (सङ्कर्षण) श्रीभगवान्की दूसरी मूर्ति हैं। अतएव 'धाम' शब्दका 'देह' अर्थ लेनेसे 'वैष्णवं धाम' इस श्लोकांशसे श्रीभगवान्के द्वितीय देह श्रीबलराम देवकीके सप्तम गर्भमें आये—यह तथ्य भी पाया जाता है।

श्लोकमें 'सप्तमो भगवदंशः' यह न कहकर 'सप्तमो वैष्णवं धाम' कहकर श्रीशुकदेवजीने इस तत्त्वको प्रकाश किया है कि—(१) श्रीभगवान्के अंश, (२) भगवान्के द्वितीय देह और (३) भगवान्के आसन-स्वरूप सङ्कर्षण देवकीके सप्तम गर्भमें आये हैं।

देवकी-गर्भजात पहले छह पुत्रोंको कंसने मारा था, इसमें भी दो सन्देह हो सकते हैं—(१) देवकी भगवान्की जननी हैं, अतएव वे शुद्धसत्त्व-स्वरूपा हैं, प्राकृत नहीं हैं। तब उनके पुत्र प्राकृत कैसे हो सकते हैं?

माता, पिता, स्थान, गृह, शय्यासन आर।

ये सब कृष्णे शब्दसत्त्वे विकार॥

(श्रीचै० च० आ० ४/६५)

अर्थात् श्रीकृष्णके माता, पिता, स्थान, घर, शय्या, आसन आदि जो कुछ है, वह सब शुद्धसत्त्वका विकार है, अर्थात् वे सभी शुद्धसत्त्वमय हैं।

विष्णुपुराणमें भी देखा जाता है—देवताओंने देवकीकी स्तुति करते हुए कहा है—'त्वं परा प्रकृति सूक्ष्मा' आदि अर्थात् तुम परा (अप्राकृत) प्रकृति अर्थात् शक्ति हो इत्यादि। इन शास्त्र-प्रमाणोंसे यही समझा जाता है कि—“देवकी हमारे जैसे जीव नहीं हैं और उनका देह भी प्राकृत नहीं है।” इसलिए अप्राकृत देवकीके गर्भमें प्राकृत छह पुत्रोंका जन्म कैसे सम्भव हुआ?

इसके उत्तरमें वैष्णव दार्शनिकगण कहते हैं—जैसे सच्चिदानन्दमय भगवान्के विराट देहमें प्राकृत समष्टि—व्यष्टि जीवोंका अवस्थान होता है, वैसे ही शुद्ध सत्त्वमयी देवकीके गर्भमें भी प्राकृत छह जीवोंका अवस्थान है। सच्चिदानन्दमय भगवान्के श्रीविग्रहमें एवं उनके सच्चिदानन्दमय पार्षदोंके शरीरमें प्राकृत वस्तुका अब स्थान होनेपर

भी वे सब वस्तुएँ भगवान् और पार्षदोंमें पृथक् रूपमें ही अवस्थान करती हैं, जैसे कि श्रीगीतामें कहा गया है—

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।

(श्रीगी० ९/४-५)

अर्थात् समस्त प्राणी मेरे भीतर अवस्थित हैं, परन्तु मैं सभीके भीतर स्थित होकर भी किसीमें अवस्थित नहीं हूँ। अर्जुन! तुम मेरी इस चिद्-विभूतिका अनुभव करो।

गीताके इस श्लोकमें भगवान् ने समस्त प्राणियोंसे अपनेको पृथक् रूपमें अवस्थान करते हुए दिखाया है।

भगवान् के नित्य-पार्षद—साधारण जीव नहीं हैं। उनका देह भी भगवान् की भाँति सच्चिदानन्दमय होता है। इसलिए प्रकटलीलामें उनका प्राकृत वस्तुके साथ संयोग होनेपर भी वे उनसे पृथक् ही रहते हैं।

देवकी-गर्भजात पहले छह पुत्रोंका नाश होनेमें और भी एक संशय हो सकता है—(२) वे छह पुत्र जीव होनेपर भी भगवान् जिस गर्भसे जन्म ले रहे हैं, उनका भी उसी गर्भके साथ सम्बन्ध होनेसे वे भी भाग्यवान् हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु देवकीके गर्भके सम्बन्धके कारण वे भी भगवान् के अग्रज हैं, अतएव कंसके हाथोंसे उनका निधन कैसे सम्भव हुआ?

श्रीश्रीधरस्वामिपाद इस विषयमें कुछ भी नहीं कह रहे हैं; परन्तु वैष्णव-तोषणीकार आदि वैष्णव आचार्यों द्वारा उद्धृत श्रीहरिवंश, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंके प्रमाणोंपर विचार करनेपर देखा जाता है कि देवकीके गर्भसे उत्पन्न प्रथम छह पुत्र पहले ब्रह्माजीके मानस-पुत्र मरीचि ऋषिके पुत्र थे एवं वे सभी ब्रह्मलोकमें निवास करते थे। ब्रह्माने तिलोत्तमा नामकी एक अप्सराका सृजन किया तथा उसका रूप दर्शनकर कामसे मोहित होकर उसका आलिङ्गन करनेके लिए दौड़ पड़े। यह देखकर मरीचिके छह पुत्रोंने ब्रह्माका परिहास किया। इससे ब्रह्माने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया कि 'तुम लोग

असुर-योनिमें जन्म ग्रहण करो।' तब शापमुक्तिके लिए ब्रह्माजीके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करनेपर ब्रह्माने उनसे कहा—“वैवस्वत मन्वन्तरके अट्टाईसवें चतुर्युगीय द्वापरमें श्रीभगवान्के अवतीर्ण होनेपर उनके उच्छिष्टको ग्रहण करनेसे तुमलोग शापसे मुक्त हो जाओगे।” तदनन्तर मरीचिके छहों पुत्रोंने हिरण्याक्षके पुत्र कालनेमिके पुत्रोंके रूपमें जन्म ग्रहण किया। मरीचिके पुत्रगण असुर होनेपर भी पूर्व संस्कारके कारण श्रीभगवत्-उपासनाका त्याग नहीं कर सके। इसलिए कालनेमिने भी बिगड़कर उन्हें शाप प्रदान किया कि ‘तुम पितृकुलकी मर्यादाका लंघनकर पिताके शत्रुकी उपासना कर रहे हो। अतएव पिताके द्वारा ही तुम्हारी मृत्यु होगी।' उसके पश्चात् देवासुर संग्राममें श्रीभगवान्के सुदर्शनचक्रसे कालनेमिका संहार हुआ। श्रीवामनदेवके आदेशसे बलि महाराजके सुतललोकमें जानेपर कालनेमिके पुत्रगण भी सुतलमें ही वास करने लगे।

परन्तु, पिताके हाथोंसे मृत्यु होनेपर कालनेमिके शापसे उनकी मुक्ति हो जायेगी एवं भगवान्का उच्छिष्ट भोजन करनेपर ब्रह्माके शापसे भी मुक्ति हो जायेगी। इसलिए श्रीभगवान्ने मरीचिके पुत्रोंको कालनेमिके शापसे मुक्ति दिलानेके लिए उन्हें योगमायाके द्वारा एक-एककर सुतललोकसे लाकर देवकीके गर्भमें स्थापन किया और कंसके हाथोंसे उनका वध कराया। मरीचिके छहों पुत्र देवकी-गर्भसे जन्म ग्रहणकर कंसके हाथोंसे निहत होकर कालनेमिके शापसे मुक्त होकर पुनः सुतललोक चले गये।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण व्रजलीला और मथुरालीला समापनके पश्चात् द्वारकालीलाके समय अपनी जननी देवकीकी प्रार्थनासे कंसके द्वारा निहत कालनेमिके शापसे मुक्त अपने अग्रजोंको सुतललोकसे द्वारकामें ले आये। वहाँ वे श्रीकृष्णका उच्छिष्ट देवकीके स्तनका दूध पानकर ब्रह्माके शापसे भी मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें चले गये।

पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः।

नारायणाङ्ग संस्पर्श प्रतिलब्धात्म दर्शनाः॥

(श्रीमद्भा० १०/८५/५५)

अर्थात् मरीचिके छहों पुत्र श्रीभगवान्‌के द्वारा पिया गया देवकीका स्तन पानकर एवं श्रीभगवान्‌का अङ्ग-स्पर्श पाकर कृतार्थ हो गये और उन्होंने अपने आत्म-स्वरूपको पुनः प्राप्त किया।

अतएव देवकीके पहले छह पुत्रोंका कंसके हाथोंसे विनाश होना—कोई अन्याय नहीं है। क्योंकि इस रूपमें शापमुक्त होकर उन्होंने भगवान्‌का अनुग्रह प्राप्त किया है ॥ १-५ ॥

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम्।

यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—विश्वात्मा (सबके मूल अंशी) भगवान् अपि (श्रीकृष्णने भी) निजनाथानां (अपने चरणोंमें शरणागत) यदूनां (यादवोंका) कंसजं (कंसके निमित्त) भयं (पीड़नादिको) विदित्वा (बिना किसीके कहे स्वयं जानकर) योगमायां (अपनी अचिन्त्यशक्ति योगमायाको) समादिशत् (प्रोत्साहन आदि देते हुए इस प्रकार आदेश दिया) ॥ ६ ॥

अनुवाद—कंसके अत्याचारोंसे अपने अनुगत निजजन यादवोंके हृदयमें उदित भयके विषयमें जानकर विश्वात्मा भगवान्‌ने भी योगमायाको इस प्रकार आदेश दिया ॥ ६ ॥

सारार्थदर्शिनी—इदानीं स्वयं भगवान् कृष्णोऽपि, योगमायां—विमलादीनां चिच्छक्तिवृत्तीनां पञ्चमीम् ॥ ६ ॥

भावानुवाद—अब स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने भी [अपने आश्रित यादवोंके प्रति कंसका अत्याचार हो रहा है, यह जानकर] योगमायाको आदेश दिया। 'योगमाया' अर्थात् विमलादि चित्-शक्तिकी वृत्तियोंमेंसे पञ्चमी वृत्ति ॥ ६ ॥

गच्छ देवि ब्रजं भद्रे गोप-गोभिरलङ्कृतम्।

रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले।

अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७ ॥

अन्वयः—देवि (हे जगत्पूज्ये!) भद्रे (हे सर्वमङ्गले!) [तुम] गोपगोभिः (नन्द महाराज आदि गोपों तथा उनके द्वारा परिपालित

गौओंके द्वारा) अलंकृतं (सुशोभित) व्रजं (बृहद्वनमें) गच्छ (जाओ) नन्दगोकुले (नन्दालयमें) वसुदेवस्य भार्या रोहिणी (वसुदेवकी पत्नी रोहिणी) आस्ते (निभृत स्थानमें) अन्याश्च (रोहिणीके अलावा श्रीवसुदेवजीकी अन्यान्य बहुत-सी पत्नियाँ) कंससंवित्नाः (कंसके अत्याचारसे पीड़ित होकर) विवरेषु (गुप्त स्थानोंमें) वसन्ति हि (निवास कर रही हैं) ॥ ७ ॥

अनुवाद—हे जगत्पूज्ये! सर्वमङ्गले! तुम गोप, गोपी और गायोंसे सुशोभित व्रजमें जाओ। उस नन्दगोकुलमें वसुदेव-महिषी रोहिणीदेवी निवास कर रही हैं। वसुदेवकी अन्यान्य पत्नियाँ भी कंसके भयसे भीत होकर गोपनीय स्थानोंमें निवास कर रही हैं ॥ ७ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘नन्दगोकुले रोहिण्यास्ते’ इति षड्गर्भवधानन्तरं रोहिण्या अपि जातं गर्भमालक्ष्य रहसि लोकद्वारा वसुदेवेनैव सा प्रेषिता। कंसात् संविग्ना भीताः, विवरेषु रहस्यस्थलेषु ॥ ७ ॥

भावानुवाद—उस नन्दगोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास कर रही हैं—ऐसा कहनेसे समझना होगा कि कंसके द्वारा देवकीके छह पुत्रोंका वध करनेके पश्चात् रोहिणीका भी गर्भ प्रकाशित होते हुए देखकर वसुदेवने स्वयं ही किसी व्यक्तिके द्वारा श्रीरोहिणीको गुप्त रूपसे नन्दालयमें भेज दिया था। कंसके भयसे भीत होकर वसुदेवकी अन्यान्य पत्नियाँ भी गुप्त स्थानोंमें निवास करने लगीं ॥ ७ ॥

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्।

तत् सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥

अन्वयः—देवक्याः (वसुदेव पत्नीके) जठरे (गर्भमें) शेषाख्यं (शेष नामक) मामकं धाम (मेरे अंशभूत बलदेव-स्वरूप आविर्भूत हुए हैं) तत् गर्भं (उस गर्भको) सन्निकृष्य (देवकी गर्भसे आकर्षणकर) रोहिण्याः (नन्द गोकुलस्थित वसुदेव पत्नी रोहिणीके) उदरे (उदरमें) सन्निवेशय (स्थापन करो) ॥ ८ ॥

अनुवाद—तुम वहाँ जाकर देवकीके उदरसे मेरे द्वितीय स्वरूप या आश्रय-स्वरूप जो सङ्कर्षण हैं, जिन्हें शेष भी कहा जाता है, उन्हें

बिना किसी कष्टके आकर्षणकर अलक्षित रूपसे रोहिणीके उदरमें स्थापित करो ॥ ८ ॥

सारार्थदर्शिनी—मामकं धाम मदंशभूतं बलदेवस्वरूपं। कीदृशम्? शेष इत्यंशेन आख्या यस्य; 'यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पतेः' (श्रीमद्भा० १०/६५/२८) इत्यग्निकेतेः। अतएव तस्य रोहिणी नित्यमातृकत्वेऽपि देवक्या गर्भे मत्प्रवेशानुरोधेनैव प्रथमं तेन प्रविष्टं, ततः स्वांशं मन्त्रिवासशय्यासनाद्यात्मकं शेषं तत्र देवकीगर्भे स्थापयित्वैव स्वमातु रोहिण्या गर्भे यियासदित्यर्थः। ननु, शुद्धसत्त्वस्वरूपायां भगवत्प्रकाशिकायां महाशक्तौ देवकीदेव्यां प्राकृतानां षड्गर्भाणां कथं प्रवेशः समुचितो भवति? सत्यम्। शुद्धसत्त्वस्वरूपे श्रीभगवति समष्टि-व्यष्टीनां प्रविष्टत्वेऽपि यथा न तद्योगः, तथैव देवक्यामपि षड्गर्भानामित्यर्थः। यदुक्तं (श्रीगी० ९/४-५)— 'मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्' इति। किन्तु, जनेषु भक्तिपरिपाटीप्रदर्शनार्थमेवेयं लीलावगम्यते। तथाहि—भक्तजने श्रवणकीर्तनादिलक्षणा भक्तिस्तिष्ठति, तद्गर्भ एव तदनुषङ्गिकफलभूतत्वात् षड्विषयभोगाश्च तिष्ठन्ति। 'हन्त एतैरेव संसारान्धकूपे पतिष्यामि' इति ततः प्रकटीभूताद्भयात् कालेन ते निवर्तन्ते च। ततो भगवद्यशःश्रवणकीर्तनपरिचर्यादिमयी भक्तिरिति प्रवृद्धा भवति। तस्यां च भगवान् रूपगुणमहोदधिः प्रादुर्भवति, भक्तेर्भगवत्प्रकाशक-शुद्धसत्त्व-स्वरूपत्वात्; 'भक्तिरेवैनं दर्शयति' इति श्रुतेः। एवमेव 'मरीचिर्मनसोऽभवत्' इति श्रवणान्मरीचेर्मनोऽवतारत्वं, तत्पुत्राणां षण्णां 'शब्दात्' इति षड्विषयावतारत्वं, देवक्या भगवत्प्रादुर्भावकत्वाद्भक्तावतारत्वम्, 'भयात् कंस' (श्रीमद्भा० ७/१/३१) इति श्रवणाद्भयमयत्वेन कंसस्य भयावतारत्वम्। अतो भक्तिगर्भगतानां षड्विषयाणां यथा संसारभयमेव निवर्तकं, तथैव देवकीषड्गर्भाणां कंसो हन्ता। विषयनिवृत्तौ सत्यां यथा भक्तिगर्भे भगवद्यशःपरिचर्यादिमयी प्रेमभक्तिरेव भवेत्, तथैव देवक्यां षड्गर्भनिवृत्त्यनन्तरं सप्तमो गर्भो भगवद्यशोनिवासशय्यासनच्छादि-रूपोऽनन्तः। ततः प्रेमभक्त्याविर्भावानन्तरं यथा भगवत्साक्षात्कारो भक्तेरष्टमो गर्भः, तथैव देवक्याश्चाष्टमो गर्भो भगवानिति तत्त्वं द्रष्टव्यम् ॥ ८ ॥

भावानुवाद—'मामकं धाम' अर्थात् मेरे अंशभूत श्रीबलदेव-स्वरूप। वे कैसे हैं? उसके उत्तरमें 'शेषाख्यं' कह रहे हैं, अर्थात् जो अंश रूपमें 'शेष' नामसे विख्यात हैं। जिस प्रकार आगे (श्रीमद्भा० १०/६५/२८ में) यमुनाजी श्रीबलदेवजीसे कहेंगी—“हे जगत्पते! आपके एक अंश (अर्थात् शेष नामक अंश) के द्वारा यह पृथ्वी धृत अर्थात् धारण की हुई है।” अतएव रोहिणीदेवी श्रीबलदेवकी नित्य माता होनेपर भी देवकीके गर्भमें मेरे प्रवेशके कारण ही वे पहले देवकीके

गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं। उसके पश्चात् मेरे निवास, शय्या, आसन आदि रूप अपने अंश शेषको उस देवकीके गर्भमें स्थापितकर वे अपनी माता रोहिणीके गर्भमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा कर रहे हैं—यह अर्थ है।

यदि कहो कि शुद्धसत्त्व-स्वरूपा, भगवत्-प्रकाशिका, महाशक्ति देवकीदेवीके गर्भमें प्राकृत षड्गर्भका प्रवेश कैसे सम्भव हो सकता है? उत्तरमें कहते हैं कि यह सत्य है। जैसे शुद्धसत्त्व-स्वरूप श्रीभगवान्‌में समष्टि और व्यष्टि जगत्‌के प्रविष्ट होनेपर भी श्रीभगवान्‌ उससे सम्बन्धयुक्त नहीं होते, उसी प्रकार देवकीमें भी षड्गर्भोंका प्रवेश जानना चाहिये। जैसे श्रीगीता (९/४-५) में स्वयं-भगवान्‌ने कहा है—“समस्त भूत मुझमें अवस्थित हैं, किन्तु मैं उनमें अवस्थित नहीं हूँ। मेरे असाधारण योगैश्वर्यको तो देखो, भूतसमूह मुझमें अवस्थित नहीं भी हैं।”

किन्तु, जगत्‌में भक्तिकी परिपाटीको दिखलानेके लिए ही ऐसी लीला हुई है, ऐसा जानना होगा। जिस प्रकार प्रथमावस्थामें भक्तके हृदयमें श्रवण-कीर्तनादि लक्षणमयी भक्तिके साथ-साथ उसके आनुषङ्गिक फलस्वरूप शब्दादि छह विषयभोग भी विद्यमान रहते हैं। परन्तु बादमें जब भक्तमें “हाय! इन समस्त विषयोंका भोग करनेके कारण ही मैं संसाररूपी अन्धकूपमें निमज्जित हो रहा हूँ”—इस प्रकारका भय उदित होता है, तब इसी भयके फलस्वरूप कालक्रमसे उसकी भोगवासना दूर हो जाती है। इसके बाद उसकी श्रीभगवान्‌के यशके श्रवण-कीर्तन-परिचर्यामयी भक्तिमें रति वर्धित होने लगती है तथा उस वर्धित होनेवाली भक्तिमें रूप-गुण-लीलाके वारिधि अर्थात् समुद्र-स्वरूप भगवान्‌ प्रकट होते हैं, क्योंकि भक्ति भगवान्‌को प्रकाशित करनेवाले शुद्धसत्त्व स्वरूपवाली है। जैसे श्रुतिमें कहा गया है—‘भक्तिरेवैनं दर्शयति’ अर्थात् भक्ति ही भगवान्‌का दर्शन कराती है।

इसी प्रकार ‘मरीचिर्मनसोऽभवत्’ अर्थात् मनसे मरीचिका आविर्भाव हुआ है—श्रुतिके इस वचनसे जाना जाता है कि मरीचि मनके अवतार हैं। मरीचिके छह पुत्र ही शब्द-स्पर्श आदि मनके द्वारा भोग्य छह विषयोंके अवतार हैं। देवकीसे भगवान्‌का आविर्भाव होनेके कारण देवकी भक्तिस्वरूपिणी हैं। ‘भयात् कंसः’ अर्थात् ‘भयसे कंस’

(श्रीमद्भा० ७/१/३१) के इस वचनसे भयमय अर्थात् भयस्वरूप होनेके कारण कंसको भयका अवतार कहा जाता है। अतएव भक्तिगर्भके अन्दर स्थित छह विषयसमूहका जिस प्रकार संसार-भय ही निवर्त्तक है, उसी प्रकार देवकीके छह गर्भोंका कंस हत्यारा है। विषयोंके दूर हो जानेपर जिस प्रकार भक्तिगर्भमें भगवान्‌के यश, परिचर्यामयी प्रेमभक्तिका आविर्भाव होता है, उसी प्रकार देवकीके छह गर्भोंके नष्ट हो जानेपर उनके सातवें गर्भके रूपमें भगवान्‌के यश, निवास, शय्या, आसन और छत्र आदि रूपी अनन्तदेवका आविर्भाव होता है। फिर प्रेमभक्तिके आविर्भूत होनेके बाद जिस प्रकार भगवान्‌के साक्षात्काररूपी भक्तिके आठवें गर्भका आविर्भाव होता है, उसी प्रकार देवकीके आठवें गर्भ भगवान्‌ हैं। उपरोक्त प्रकारसे भगवत्-अवतार तत्त्व द्रष्टव्य है ॥ ८ ॥

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।

प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥

अन्वयः—शुभे (हे सर्वमङ्गले!) अथ (देवकीके सातवें गर्भका आकर्षण करनेके पश्चात्) अहम् अंशभागेन (मैं परिपूर्ण स्वरूपमें) देवक्याः पुत्रतां प्राप्स्यामि (देवकीका पुत्र बनूँगा) त्वं नन्दपत्न्यां यशोदायां भविष्यसि (तुम नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म (मात्र) ग्रहण करोगी, परन्तु उनकी पुत्री नहीं बन पाओगी) ॥ ९ ॥

अनुवाद—हे भद्रे! इसके बाद मैं पूर्ण रूपसे देवकीके पुत्रत्वको स्वीकार करूँगा तथा तुम भी नन्दराजमहिषी यशोदाके गर्भसे आविर्भूत होओगी ॥ ९ ॥

सारार्थदर्शिनी—अंशेर्ज्ञानबलादिभिर्भजनमनुवर्त्तनं भक्तेषु यस्य तेन सर्वथा परिपूर्णस्वरूपेणेति भावार्थदीपिकायाम्। अंशानां भागः प्रवेशो यत्र तेन पूर्णेन स्वरूपेणेति, अंशानां ब्रह्मादीनां भागेन भागधेयेन हेतुनेति द्वयं वैष्णवतोषिण्याम्। यद्वा, अंशभागेन अंशांशेन पुत्रतां पुत्रभावं प्राप्स्यामि, न तु सर्वांशेनेत्यतः सा देवकी मयि वात्सल्यमैश्वर्यभावमयं करिष्यतीत्यर्थः। तेन भावान्तरशून्यं सम्पूर्णमेव वात्सल्यसुखं श्रीयशोदायामेव प्राप्स्यामीति द्योतितम्। त्वन्तु यशोदायां भविष्यसि

उत्पत्त्यसे मात्रं, यशोदायां पुत्रीत्वं समवाप्स्यसीत्यनुक्तेस्त्वयि सुतायामपि सा वात्सल्यं न करिष्यते। अलक्ष्यविग्रहत्वेनैव तव ब्रजे वर्तिष्यमाणत्वादिति भावः ॥ ९ ॥

भावानुवाद—‘अंशभागेन’—‘अंश’ कहनेसे ज्ञान-बल आदि ऐश्वर्यके द्वारा भक्तोंके हृदयमें जिनका अनुवर्त्तन होता है, अर्थात् भगवान् सब प्रकारसे सम्पूर्ण स्वरूपमें आविर्भूत होते हैं—भावार्थ—दीपिकामें इस प्रकारसे अर्थ किया गया है।

(१) ‘अंश’ अर्थात् अंशावतारसमूहका जिनमें ‘भागः’ अर्थात् प्रवेश हैं, ऐसे पूर्ण स्वरूपसे, (२) ‘अंश’ कहनेसे ब्रह्मादिके ‘भाग’ अर्थात् भाग्यवशतः जिनका आविर्भाव हुआ है—वैष्णव-तोषणीमें ‘अंशभाग’ शब्दकी यही दो तरह की व्याख्या की गयी है।

अथवा, ‘अंशभागेन’ अर्थात् अंशके अंश रूपसे देवकीका पुत्रत्व स्वीकार करूँगा, सर्वांशमें नहीं। अतएव इसका यह अर्थ है कि वह देवकी मेरे प्रति ऐश्वर्य भावमय वात्सल्यभावको प्रकट करेगी। इससे यह भी सूचित होता है कि भावान्तरशून्य सम्पूर्ण वात्सल्य सुख मैं एकमात्र यशोदासे ही प्राप्त करूँगा। किन्तु तुम ‘यशोदायां भविष्यसि’ अर्थात् यशोदाके गर्भसे प्रकटमात्र होओगी।

यहाँ ‘यशोदायां पुत्रीत्वं समवाप्स्यसि’ अर्थात् हे योगमाये! तुम यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होकर पुत्रीत्वको भलीभाँति प्राप्त करोगी—ऐसा न कहनेका कारण है कि तुम्हारे पुत्री रूपमें प्रकट होनेपर भी श्रीयशोदा तुम्हें वात्सल्यप्रेम नहीं करेगी, क्योंकि अलक्षित रूपमें ही तुम ब्रजमें रहोगी, यह भाव है ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—देवकीके प्रथम छह पुत्रोंके विनाशके पश्चात् सातवें गर्भका लक्षण प्रकाशित होनेके साथ-साथ कंसका अत्याचार और भी अधिक मात्रामें बढ़ गया। वसुदेवजी, देवकी एवं जितने भी यादवोंने कंसके अत्यचारको सहन करके भी मथुरावासका सङ्कल्प लिया था, वे सभी कंसके अत्याचारसे अत्यन्त व्यथित हो उठे। वसुदेवजी एवं देवकी कंसके कारागारमें लौह शृंखलाओंमें बँधे हुए थे, अतएव उनके लिए उस असहनीय घोर अत्याचारको सहनेके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं था। परन्तु दूसरे-दूसरे मथुरावासी

यादवगण मन-ही-मन सोचने लगे कि हमारे भाग्यमें मथुरावास अब सम्भव नहीं है, फिर भी उन्होंने अपने दुःखके विषयमें कभी भगवान्से निवेदन नहीं किया। भक्तोंका स्वभाव ही है कि, यदि उनपर दुःख भी आ जाय, तो वे अपना कर्मफल जानकर उसे चुपचाप सहन करते रहते हैं, कभी भी 'हे कृष्ण! मेरा दुःख दूर करो'—ऐसा नहीं कहते। ऐकान्तिक भक्तोंका श्रीगोविन्दके श्रीचरणकलोंके भजनके बिना दूसरा कोई आग्रह नहीं होता। भगवान्ने उन भक्तोंके दुःखको जानकर उनका कष्ट दूर करनेके लिए सङ्कल्प किया। वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि अब विलम्ब नहीं करना है, मेरे भक्तोंपर कंसका घोर अत्याचार चल रहा है, अतः मैं शीघ्र ही अवतीर्ण होकर कंसका विनाश करूँगा।

इसीलिए सर्वान्तर्यामी भगवान्ने योगमायाको आदेश दिया—हे देवि! (जगतपूज्ये!) हे सर्वमङ्गले! तुम एकबार गो-गोप-गोपियोंसे परिशोभित व्रजमें जाओ। व्रजधाम एवं व्रजवासी—गो-गोप-गोपी आदि मायासे परे हैं अर्थात् उनपर मायाका कोई भी प्रभाव नहीं है।

श्रीभगवान्ने 'देवि! भद्रे!' आदि सम्बोधनके द्वारा मायाको प्रोत्साहितकर व्रजमें जानेके लिए आदेश दिया। इसलिए वह व्रजमें जाकर व्रजवासियोंको मोहन आदि कार्य करनेमें समर्थ हुई। व्रजमें जाकर योगमायाको क्या-क्या कार्य करना होगा, इसे भी स्पष्ट करके समझानेके लिए भगवान्ने कहा—'हे योगमाये! वसुदेवजीकी देवकीके अतिरिक्त और भी बहुत-सी पत्नियाँ हैं। वे सभी कंसके भयसे भीत होकर गुप्त रूपसे विभिन्न स्थानोंमें निवास कर रही हैं। उनमेंसे रोहिणी नन्दालयमें वास कर रही है। जो निवास, आसन, शय्या आदि अनेकों मूर्तियोंमें मेरी परिचर्या करते हैं, मेरे अंश और द्वितीय स्वरूप वे सङ्कर्षण, इस बार देवकीके गर्भमें आयेंगे। तुम उन्हें देवकीके गर्भसे निकालकर रोहिणीके गर्भमें स्थापन करो। यद्यपि सङ्कर्षणका आकर्षण करना मायाके वशकी बात नहीं है, फिर भी श्रीभगवान्के आदेशसे कुछ भी असाध्य नहीं है—इसीलिए योगमाया सङ्कर्षणको आकर्षण करनेमें सक्षम हुई।

वसुदेवजीकी पत्नी रोहिणीके नन्दालयमें निवासका विषय इस प्रकार है—रोहिणी नन्दालयमें जानेसे पहले वसुदेवजीके ही पास थीं। यद्यपि वसुदेवजी उस समय कारारुद्ध थे, फिर भी कंसके आदेशसे वसुदेवजीकी दूसरी-दूसरी पत्नियाँ भी उस समय वसुदेवके निकट आती-जाती रहती थीं। उस समय वसुदेवजी देवकी और रोहिणी दोनों पत्नियोंके गर्भका लक्षण देखकर मन-ही-मन विचार करने लगे—“यदि देवकी और रोहिणी एक साथ बच्चोंको जन्म देती हैं, तो दुरात्मा कंस दोनोंके ही पुत्रोंका विनाश कर सकता है।” इसलिए उन्होंने अपने परम मित्र नन्द महाराजके पास गुप्त रूपसे रोहिणीको भेज दिया। मथुरामें देवकी सात महीनेकी गर्भवती थी और गोकुलके नन्दालयमें रोहिणी भी सात महीनेकी गर्भवती थी। ऐसे समयमें भगवान्ने योगमायाको आदेश दिया कि सङ्कर्षणको देवकीके गर्भसे आकर्षणकर (निकालकर) रोहिणीके गर्भमें स्थापित करो, जिससे वे चिरकाल ही रोहिणीनन्दन बने रहें।

श्रीभगवान्ने योगमायाको कहा—हे योगमाये! तुम्हारे देवकीके गर्भसे सङ्कर्षणका आकर्षण करनेके पश्चात् मैं परिपूर्ण स्वरूपमें देवकीका पुत्र बनकर आऊँगा। इस श्लोकमें स्थित ‘अंश भागेन’ पदका साधारण अर्थ ग्रहण करनेसे ऐसा लगता है कि श्रीभगवान्के अंश-विशेष देवकीके पुत्र बनकर आये हैं। परन्तु ‘अंश भागेन’ इस पदका यह साधारण अर्थ ग्रहण करनेपर ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’ श्रीमद्भागवतके इस अवतारतत्त्व निर्णायक सिद्धान्तके साथ महाविरोध उपस्थित होता है। इसलिए टीकाकार श्रीश्रीधरस्वामिपादने अनेक प्रकारकी व्याख्याकर ‘अंश भागेन’ पदसे देवकीनन्दनकी ही भगवत्ता स्थापन की है।

उन्होंने कहा है—

(१) जो ब्रह्मासे तृण तक स्थावर जङ्गमादि सभी वस्तुओंमें अपनी शक्ति द्वारा अवस्थित हैं—वे ‘अंशभाग’ हैं।

(२) जो अपने भक्तोंको अपना अंश—ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदिसे समन्वित करते हैं, वे ‘अंशभाग’ हैं।

(३) जो पुरुषावताररूप अपने अंश द्वारा मायाके प्रति ईक्षण करते हैं, वे 'अंशभाग' हैं।

(४) जो सत्त्व, रजः, तमः—इन त्रिगुणमयी मायाके नियन्ता रूपमें विष्णु, ब्रह्मा और शिव इन तीन गुणावतारोंके रूपमें प्रकटित होते हैं, वे 'अंशभाग' हैं।

(५) जिनके मत्स्य, कुर्म आदि स्वरूपोंका भजनकर सत्यव्रत आदि मुनिगण कृतार्थ हो गये—वे 'अंशभाग' हैं।

(६) जो अपने अंश—ज्ञान, बल आदिके द्वारा भक्तका अनुवर्त्तन अर्थात् मनोरथ पूर्ण करते हैं—वे 'अंशभाग' हैं।

इस प्रकार स्वामिपादने इन छह प्रकारकी व्याख्याओंके द्वारा देवकीनन्दन श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ताका प्रतिपादन किया है।

श्रीवैष्णव-तोषणीकारने स्वामिपादकी व्याख्याके साथ और भी तीन व्याख्याएँ दी हैं—

(१) 'अंशानां भागो भजनं प्रवेशो यत्र सः अंशभागः' अर्थात् जिनमें सारे अंशोंका प्रवेश अर्थात् मिलन होता है, वे 'अंशभाग' हैं। दूसरे-दूसरे अवतारलीलाओंमें भूभार-हरण एवं असुर-मारण लीलाएँ और धर्मस्थापन आदि देखा जाता है, परन्तु श्रीकृष्णलीलामें भगवान्की जैसी भक्त-वश्यता, प्रेमाधीनता आदि महामाधुर्य प्रकाशित होता है, वैसा दूसरे किसी अवतारमें नहीं होता है।

(२) 'अंशानां ब्रह्मादीनां भागेन भागधेयेन हेतुना' अर्थात् गुणावतार ब्रह्मादिके सौभाग्यके कारण अर्थात् पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए गुणावतार ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे जो अपने परिपूर्णतम स्वरूपमें अवतीर्ण हुए हैं।

(३) 'निगूढश्चायमर्थः—अंशभागेन प्रकाशभेदेन देवक्याः पुत्रतां प्राप्स्यामीत्येवं प्रकाशान्तरेण यशोदाया अपि पुत्रतां प्राप्स्यामीति ज्ञेयम्।' अर्थात् 'अंशभागेन' इस कथनका निगूढ अर्थ यह है कि मैं प्रकाश भेदसे देवकीका पुत्र बनकर आऊँगा और प्रकाशान्तरसे यशोदाका भी पुत्र होकर जन्म ग्रहण करूँगा।

'स्वांशेन बलकेशवौ' (श्रीमद्भा० १०/३८/३२)—इस श्लोककी व्याख्यामें स्वामिपादने 'अंशेन' पदको 'भूर्ति-भेदेन' कहा है।

नन्दपत्न्यां यशोदायां मिथुनं समपद्यत ।
 या स्त्री सा योगमाया तु यः पुमान् स हरिः स्वयम् ॥
 (कृष्णयामल)

अर्थात् नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे यमज सन्तान पैदा हुए, उनमेंसे कन्या योगमाया एवं पुत्र स्वयं-भगवान् थे।

इस कृष्णयामलके वचनसे स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्णने यशोदाके गर्भसे भी जन्म लिया था। परन्तु यह श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं हुआ है। किन्तु 'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने', 'पशुपाङ्गजाय' आदि पदोंसे श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर इस तत्त्वको गूढ़ रूपसे व्यक्त किया है। परन्तु साधारण व्यक्ति इसे समझ नहीं पाते। अथवा, वे यशोदानन्दनके माधुर्यको भी समझ नहीं सकते। इसलिए वैष्णव-तोषणीकार इस अर्थको निगूढार्थ कहा है।

यथार्थतः वैष्णव-तोषणीकारकी यह व्याख्या अति निगूढ़ है; क्योंकि श्रीभगवान्ने कहा—'अहं देवक्याः पुत्रतां प्राप्स्यामि' अर्थात् मैं देवकीका पुत्र होऊँगा। और भी देखा जाता है—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीत्यपि।

अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया ॥

अर्थात् नन्दपत्नी यशोदाके यशोदा एवं देवकी—ये दो नाम हैं, इसलिए वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके साथ उनका सखीभाव था।

इसी प्रकार बृहद्-विष्णुपुराणमें भी देखा जाता है—यशोदाका नाम भी देवकी है। अतएव देवकीका पुत्र होऊँगा—इस बातसे उनके मनके भावको कौन जान सकता है?

श्रीभगवान्ने योगमायासे कहा—हे योगमाये! तुम्हारे देवकीके सातवें गर्भको आकर्षणकर रोहिणीके गर्भमें स्थापन करनेपर मैं विलम्ब न कर देवकीका पुत्र होऊँगा और तुम नन्दपत्नीके गर्भसे जन्ममात्र ग्रहण करोगी। यहाँपर श्रीभगवान्ने योगमायाको कहा कि 'तुम नन्दपत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहणमात्र करोगी।' परन्तु यह नहीं कहा कि तुम नन्दपत्नीकी पुत्री बनोगी। क्योंकि उन्होंने जन्म ग्रहण तो

किया, परन्तु वात्सल्यरसका आस्वादन नहीं कर सकी। इससे ऐसा लगता है कि भगवान् श्रीकृष्ण यशोदाके वात्सल्यकारस किसी दूसरेको न देकर अकेले ही आस्वादन करना चाहते हैं ॥ ६-९ ॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्।

धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—मनुष्याः (संसारके लोग) सर्वकामवरेश्वरीं (समस्त प्रकारकी कामनाओंको तथा सबको वर प्रदान करनेवाली ईश्वरी) सर्वकामवरप्रदां (समस्त कामनाओंकी फलदात्री) त्वां (तुम्हें) धूपोपहारबलिभिः (धूप-दीप आदि पूजाके उपकरणोंके द्वारा) अर्चिष्यन्ति (पूजा करेंगे) ॥ १० ॥

अनुवाद—प्राकृत मनुष्यगण तुम्हें अर्थात् तुम्हारे विमुखमोहनकारी स्वरूपको सर्वविध प्राकृत कामनाओं और वरोंकी अधीश्वरी तथा समस्त प्रकारके भोगों और वरोंको प्रदान करनेवालीके रूपमें जानकर धूप-दीप, नैवेद्य आदि विविध प्रकारके उपहार सामग्रियोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १० ॥

सारार्थदर्शनी—तवांशभूतां मायान्तु वसुदेवेनानेष्ट्यमाणां कंसं वञ्चयित्वा विन्ध्यादिस्थानेषु प्रभविष्यन्तीं नरा आराधयिष्यन्तीत्याह—अर्चिष्यन्तीति। यतः सर्वकामानां लोकानां वरां श्रेष्ठामीश्वरीम् ॥ १० ॥

भावानुवाद—किन्तु तुम्हारे अंश-स्वरूप मायाको वसुदेव ब्रजसे मथुरा ले जायेंगे। वह माया कंसकी वञ्चनाकर विन्ध्याचल आदि अनेकों स्थानोंमें प्रकटित होगी। संसारके लोग उसकी आराधना करेंगे, यही 'अर्चिष्यन्ति' आदि श्लोकोंमें कह रहे हैं। 'सर्वकामवरेश्वरीम्'—क्योंकि, तुम कामना करनेवाले समस्त लोगोंकी श्रेष्ठ ईश्वरी हो ॥ १० ॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।

दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च॥ १२॥

अन्वयः—नराः (मनुष्य) भुवि (पृथ्वीमें) स्थानानि (तुम्हारा निकेतन (मन्दिर)) कुर्वन्ति (अतिशीघ्र करेंगे) (तथा) दुर्गा इति भद्रकाली इति विजया वैष्णवी इति च कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यका इति च माया नारायणी ईशानी शारदा अम्बिका इति च नामधेयानि (आदि नाम रखेंगे)॥ ११-१२॥

अनुवाद—पृथ्वीपर मनुष्य तुम्हारे लिए बहुत-से वासस्थान (मन्दिर) बनायेंगे तथा दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि नामकरण करेंगे॥ ११-१२॥

सारार्थदर्शिनी—कुर्वन्ति करिष्यन्ति, तदेवमिदानीं मदवतारेण त्वदवतारेण च लोकाः केचिद्वैष्णवाः केचित् शाक्ताश्च भविष्यन्तीति भावः॥ ११-१२॥

भावानुवाद—‘कुर्वन्ति’ अर्थात् करेंगे। इस प्रकार अब मेरे और तुम्हारे अवतारसे जगत्में कोई वैष्णव और कोई शाक्त बनेंगे—यह भावार्थ है॥ ११-१२॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान्ने योगमायाको आदेश देकर अन्तमें वर भी प्रदान किया कि जगत्के जो लोग तुम्हारी पूजा अर्चना करेंगे, तुम उन सबको पुत्र-परिवार, धन-दौलत आदि देकर उनके मनोरथोंको पूर्ण करोगी एवं उपासकोंके भाव-भेद, कामना-भेद एवं तुम्हारे वरदान आदिके भेदसे तुम दुर्गा, भद्रकाली, कुमुदा, चण्डिका आदि नामोंसे जगत्में पूजित होओगी। ‘प्रभावं ते करिष्यामि मत्प्रभवसमं भुवि’ अर्थात् पृथिवीमें मेरे प्रभावकी भाँति तुम्हारे प्रभावका भी विस्तार होगा—हरिवंशके इस वचनसे स्पष्ट समझा जाता है कि श्रीभगवान्ने योगमायाको आदेश दिया एवं वर भी प्रदान किया।

श्रीकृष्णके जितने भी नाम आदि हैं—ये सब नाम जगत्के लोगोंके द्वारा नहीं दिये हुए हैं या नहीं बनाये गये हैं। उनका नाम,

धाम, रूप, गुण और लीला सभी कुछ नित्य है। कृष्णनाम और कृष्णके स्वरूपमें किसी प्रकार भी मायाका गन्ध नहीं है। श्रीकृष्णका धाम कृष्णसे अभिन्न है अर्थात् उनका वैभव प्रकाश है। कृष्णकी सन्धिनीशक्ति ही कृष्णको धामके रूपमें विस्तार करती है।

परन्तु जो कृष्णकी छायाशक्ति है—जो जड़-जगत्के लोगोंकी समस्त प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करती है और बहिर्मुख लोगोंको मोहित करनेके लिए प्रकट हुई है, उसका नाम नरलोकमें मनुष्योंके द्वारा बनाये गये तथा प्रदान किये गये हैं। उनका धाम भी मनुष्योंके द्वारा निर्दिष्ट हुआ है। यही इस श्लोकमें स्पष्ट रूपसे बतलाया गया है। वैष्णव-तोषणीकारने कहा है कि मायादेवीके दुर्गा, भद्रकाली, विजया, कुमुदा आदि नाम भी उनके उपासकोंके पृथक्-पृथक् भावके अनुसार कल्पित हुए हैं या भिन्न-भिन्न स्थानोंमें मायादेवी विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुई है। वह किन-किन स्थानोंमें किन-किन नामोंसे प्रसिद्ध हुई है, इसे श्रीवल्लभाचार्यजीने अपनी सुबोधिनी टीकामें इस प्रकार लिपिबद्ध किया है—

“काशीमें दुर्गा, अवन्तीमें भद्रकाली, उत्कलमें विजया, कोल्हापुरमें वैष्णवी अर्थात् महालक्ष्मी, कामरूप देशमें चण्डिका, उत्तरप्रदेशमें माया और शारदा, अम्बिका वनमें अम्बिका, कन्याकुमारीमें कन्यका, इसी प्रकार दूसरे-दूसरे शक्तिपीठोंमें भी मायादेवी भिन्न-भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं।”

विजयध्वजतीर्थ पादने पदरत्नावली टीकामें मायादेवीके उन सभी नामोंका भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकाश किया है। जैसे—दुराधिगम्य अर्थात् जिन्हें अतिकष्टसे जाना जाता है, इसलिए वे ‘दुर्गा’ कही जाती हैं। भद्रा अर्थात् मङ्गला, नीले वर्णकी होनेसे काली, समस्त दिशाओंको जीतनेवाली होनेसे विजया, विष्णुशक्ति होनेके कारण वैष्णवी, भूमण्डलमें आनन्दविलास करनेके कारण कुमुदा, शत्रुओंके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकाश करनेके कारण चण्डिका, सदानन्दमयी होनेके कारण कृष्णा, विष्णुकी कृपापात्री होनेके कारण माधवी अथवा यदुवंशीय राजा देवक्षत्रके पुत्र मधुके वंशमें जन्म लेनेसे माधवी, नित्यकुमारी अथवा सुख प्रदान करनेवाली होनेसे कन्यका, सबके

निकट परिचिता होनेसे माया, समस्त जीवोंके आश्रय-स्वरूप होनेसे नारायणी, सबकी अभीष्ट देवी होनेसे ईशानी, संसार-बन्धनका खण्डन करती है, इसलिए शारदा और जगत्की माता होनेसे अम्बिका हैं ॥ १०-१२ ॥

गर्भसङ्कर्षणात् तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद्बलभद्रं बलोच्छ्रयात् ॥ १३ ॥

अन्वयः—तं वै (उस मेरे अंशको) गर्भसङ्कर्षणात् (देवकी गर्भसे आकर्षण करनेसे) भुवि (पृथिवीमें अर्थात् प्रकटलीलामें) सङ्कर्षणं (सङ्कर्षण नामसे) लोकरमणात् (लोगोंका आनन्दवर्धन करनेसे) रामेति (राम नामसे) बलोच्छ्रयात् (बलवानोंमें सर्वश्रेष्ठ होनेसे) बलभद्रं (बलभद्र नामसे) [लोग] प्राहुः (कहा करेंगे) ॥ १३ ॥

अनुवाद—देवकीके गर्भसे आकर्षण किये जानेके कारण रोहिणीनन्दन इस भूतलपर ‘सङ्कर्षण’ नामसे प्रसिद्ध होंगे, गोकुलवासियोंका आनन्द विधान करनेके कारण ‘राम’ एवं बलकी अधिकताके कारण अर्थात् सन्धिनीशक्तिके मूर्तिमान विग्रह होनेके कारण ‘बलभद्र’ के नामसे कीर्तित होंगे ॥ १३ ॥

सारार्थदर्शिनी—रामेति, ‘सहसुपा’ इति समासः ॥ १३ ॥

भावानुवाद—‘रामेति’—समस्त लोगोंके आनन्दको वर्धित करनेवाले होनेके कारण सभी उन्हें ‘राम’ कहेंगे ॥ १३ ॥

सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—भगवता (श्रीकृष्ण द्वारा) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) सन्दिष्ट (आदेश प्राप्त होकर) [देवी योगमाया] तद्वचः (श्रीभगवान्के वाक्यको) तथेति ओमिति (‘वैसा ही करूँगी’—ऐसा स्वीकार करते हुए) प्रतिगृह्य (श्रीभगवान्का अभिवादन) [तथा] परिक्रम्य (परिक्रमाकर) गां गता (पृथिवीमें गयी) [वहाँ] तत्तथा (श्रीभगवान्ने जैसा कहा था, वैसा) अकरोत् (किया) ॥ १४ ॥

अनुवाद—भगवान्से इस प्रकारके आदेशको प्राप्त करके 'ऐसा ही करूँगी' कहकर योगमायाने भगवान्के वचनोंको शिरोधार्य करके उनकी परिक्रमा की एवं पृथ्वीमें अर्थात् नन्दगोकुलमें आकर भगवान्के निर्देशके अनुसार कार्य किया अर्थात् उन्होंने देवकीके गर्भका आकर्षण करके उसे रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शिनी—तथेति, पुनरप्योमिति अत्यादरेण, तदीयं वचः प्रतिगृह्य, गां पृथ्वीं, तत्तदनन्तरम् ॥ १४ ॥

भावानुवाद—भगवान् श्रीहरिसे इस प्रकार आदेश प्राप्त करके योगमायाने 'तथा' अर्थात् 'वैसा ही होगा' ऐसा कहा। पुनः 'ओम्' कहनेसे यह अर्थ है कि उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक वैसा कहा। 'प्रतिगृह्य' अर्थात् भगवान्के वचनोंका अभिवादन करनेके बाद ही वे 'गाम्' अर्थात् पृथ्वीपर गयी। 'तत्' अर्थात् उसके बाद ही ॥ १४ ॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया।

अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥

अन्वयः—योगनिद्रया (श्रीभगवान्के द्वारा आदिष्ट योगमायाके द्वारा) देवक्याः (देवकीके) गर्भे (गर्भस्थित भगवत्-अंशको) रोहिणीं प्रणीते (रोहिणीके गर्भमें स्थापन करनेपर) पौराः (मथुरावासी) अहो गर्भः (अहो! देवकीका गर्भ) विस्रंसित (कंसने गिरा दिया) इति (इस प्रकार) विचुक्रुशुः (उच्चस्वरसे विलाप करने लगे) ॥ १५ ॥

अनुवाद—योगमायाके द्वारा देवकीके गर्भके आकृष्ट होकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित होनेके बाद मथुराके नगरवासी—'हाय! देवकीका गर्भ नष्ट हो गया'—ऐसा कहकर उच्चस्वरसे विलाप करने लगे ॥ १५ ॥

सारार्थदर्शिनी—विस्रंसितः, कंसेनैव केनचिन्मन्त्रौषधाद्युपायेनेत्यर्थः। विचुक्रुशुः, देवक्यां स्नेहवत्तया विलेपुः ॥ १५ ॥

भावानुवाद—'विस्रंसितः' अर्थात् कंसने ही किसी प्रकारके मन्त्र अथवा औषधि आदि उपायोंके प्रयोगसे देवकीके गर्भको नष्ट कर

दिया है—इस प्रकारसे सन्देह करते हुए देवकीके प्रति स्नेह रखनेवाले मथुरावासी विलाप करने लगे ॥ १५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—अनन्तर, देवकीके सातवें गर्भमें जो मेरे अंश जन्म ग्रहण करेंगे, तुम मेरे उस अग्रजको सातवें महीनेमें रोहिणीके गर्भमें संस्थापित करना। भगवान्‌के आदेशसे योगमायाने सङ्कर्षणको रोहिणी-गर्भमें कैसे स्थापित किया? इसके लिए कह रहे हैं—“देवकी अर्द्धरात्रिमें गाढ़ी नींदमें सो रही थी—ऐसे समयमें उसका गर्भनिपात हुआ। उसने अपनी स्वप्नावस्थामें अपने गर्भको स्खलित होते हुए देखा एवं कुछ समय पश्चात् देखा कि सत्य ही उसका गर्भ स्खलित हो गया है, तब वह बड़ी दुःखित हुई। देवकीके पीड़ित होनेपर योगमायाने उन्हें कहा—हे शुभे! मैंने तुम्हारे गर्भको निकालकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया है। इसलिए तुम्हारा यह पुत्र सङ्कर्षणके नामसे प्रसिद्ध होगा।” (हरिवंश विष्णुपर्व ४/३-६)

श्रीश्रीधरस्वामिपादने अपनी टीकामें ‘योगनिद्रा’ का अर्थ इस प्रकार किया है—आत्माकी अनुभूति-स्वरूप लक्षण ही योग है। आत्म-अनुभूतिके द्वारा बाहरी स्मृति विलुप्त होती है, इसलिए उसकी निद्राके साथमें तुलना की है। श्रीवैष्णव-तोषणीमें ‘योगनिद्रा’ का अर्थ इस प्रकार किया गया है—योगमाया ही योगनिद्रा है, क्योंकि वह निद्राकी भाँति सबके चेतन वृत्तिको हर लेती है ॥ १४-१५ ॥

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः।

आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥

अन्वयः—विश्वात्मा (विश्वकी-आत्मा) भक्तानां (अपने चरणोंमें आश्रित जनोंके) अभयङ्करः (समस्त प्रकारसे अभय-दाता) भगवान् अपि (सर्वैश्वर्यशाली श्रीकृष्ण भी) अंशभागेन (पुरुष आदि अवतारोंके साथ या परिपूर्ण स्वरूपमें) आनकदुन्दुभेः (वसुदेवके) मनः (हृदयमें) आविवेश (उस समय भाव-विशेषके द्वारा स्फुर्ति प्राप्त होने लगे) ॥ १६ ॥

अनुवाद—(दूसरी ओर) भक्तोंके भयका विनाश करनेवाले, विश्वके प्रेमास्पद, सर्वैश्वर्यपूर्ण भगवान् भी अपने पूर्ण स्वरूपसे अर्थात्

पुरुषावतारादि अंश तथा षडैश्वर्यके साथ श्रीवसुदेवके मनमें आविर्भूत हुए ॥ १६ ॥

सारार्थदर्शिनी—विश्वात्मा विश्वस्यैव प्रेमास्पदीभविष्यन् अंशेन पुरुषाद्यवतारवृन्देन सह भागेन भगसमूहेन षडैश्वर्येण सहित एव मनः आविवेश मनस्याविर्बभूव। ‘परावरेणो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्’ (श्रीमद्भा० ३/२/१५) इति तृतीयोक्तेः ॥ १६ ॥

भावानुवाद—‘विश्वात्मा’—विश्वके सभी जीवोंके प्रेमास्पद श्रीभगवान् अपने ‘अंश’ अर्थात् पुरुषादि अवतारों तथा ‘भाग’ अर्थात् षडैश्वर्यके साथ श्रीवसुदेवके मनमें आविर्भूत हुए। जैसे तृतीय-स्कन्ध (३/२/१५) में कहा गया है—“नित्यसिद्ध अग्नि जैसे लकड़ीसे उत्पन्न होती है, वैसे ही भगवान् परमेश्वर स्वयं अजन्मा होनेपर भी सङ्कर्षण नामक अंशके साथ वसुदेवजीके पुत्ररूपमें देवकीके गर्भसे आविर्भूत हुए ॥” १६ ॥

स विभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः।

दुरासदोऽतिदुर्द्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह ॥ १७ ॥

अन्वयः—सः (वे वसुदेव) पौरुषं धाम (श्रीभगवान्की श्रीमूर्ति या भगवान्के तेजको) विभ्रत् (भाव-विशेषके द्वारा आत्मामें धारण करते हुए) यथा रविः (सूर्यकी भाँति) भ्राजमानः (प्रकाशमान हो रहे थे) (अतएव) भूतानां (प्राणियोंका) दुरासदः (उनके निकटमें जाना असम्भव या नेत्रोंसे देखना भी असाध्य) [तथा] अतिदुर्द्धर्षः (उन्हें पराजित करना असम्भव) सम्बभूव ह (हो गये थे) ॥ १७ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेव श्रीभगवत्-सम्बन्धि तेजको धारणकर सूर्यके समान तेजस्वी हो गये। वे दुर्गम हो गये, क्योंकि कंस आदि किसी जीवका भी उनके सामने जानेका सामर्थ्य नहीं था तथा वे प्रचण्ड प्रतीत हो रहे थे, क्योंकि उनका वह तेज कंस आदि जीवोंके लिए असहनीय था ॥ १७ ॥

सारार्थदर्शिनी—पौरुषं धाम पुरुषोत्तमस्य प्रादुर्भावं दधानः, स्वस्मिन् प्रादुर्भूतं कृष्णं पश्यन्नित्यर्थः। धाम—‘देहे गृहे रश्मौ स्थाने जन्म-प्रभावयोः’ इति

विश्वः। दुरासदः प्राणिभिरासन्नीभवितुमशक्यः, अतएवातिदुर्द्धर्षः कंसादिभिरप्यभि-
भवितुमशक्यः ॥ १७ ॥

भावानुवाद—‘पौरुषं धाम’—पुरुषोत्तमके आविर्भावको धारणकर
अर्थात् स्वयंमें प्रादुर्भूत श्रीकृष्णका दर्शनकर। विश्वकोषमें उल्लेख है
कि ‘धाम’ शब्दका अर्थ ‘देह, गृह, रश्मि (किरण), स्थान, जन्म और
प्रभाव है।’ वे ‘दुरासदः’ हो गये अर्थात् प्राणिगण उनके निकट तक
जानेमें असमर्थ थे, अतएव वे ‘अतिदुर्द्धर्ष’ हो गये थे अर्थात् कंस
आदि भी उन्हें पराजित करनेमें सर्वथा असमर्थ हो गये थे ॥ १७ ॥

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं
समाहितं शूरसुतेन देवी।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥

अन्वयः—ततः (श्रीवसुदेवके हृदयमें भावविशेषके द्वारा श्रीकृष्णकी
स्फूर्ति होनेके बाद) देवी (शुद्धसत्त्वमयी श्रीदेवकी) काष्ठा (पूर्व
दिशामें) आनन्दकरं यथा (पूर्णचन्द्रकी भाँति) मनस्तः (मनमें)
शूरसुतेन (श्रीवसुदेव द्वारा) समाहितं (साक्षात् अर्पणकी भाँति प्रकाशित)
[वैदिक दीक्षा द्वारा अर्पित (श्रील श्रीधरस्वामीपाद)] सर्वात्मकं (समस्त
जीवोंके सुखदायी) आत्मभूतं (स्वयं ही आविर्भूत हुए, न कि
योगियोंकी भाँति यत्नसे धारण किये गये, यह अर्थ है) जगन्मङ्गलं
(समस्त जगत्के हितकारी) अच्युतांशं (जिनका एक भी अंश ऐश्वर्य
आदिसे च्युत नहीं होता, ऐसे सर्वांश परिपूर्ण श्रीभगवान्को) दधार
(भाव-विशेषके द्वारा धारण किया) ॥ १८ ॥

अनुवाद—इसके बाद पूर्व दिशा जिस प्रकार आनन्दप्रद चन्द्रको
धारण करती है, उसी प्रकार देवकीने भी श्रीवसुदेवके द्वारा वैध-दीक्षा
विधानसे समर्पित, जगन्मङ्गलकारी, अक्षय ऐश्वर्यशाली, सर्वमूलस्वरूप,
सर्वात्मा विष्णुको मनके द्वारा धारण किया ॥ १८ ॥

सारार्थदर्शिनी—ततो भगवांस्तद्देहाद्देवकीदेहे प्रविष्ट इत्याह—तत इति।
जगतां मूर्तिमत् मङ्गलं, च्युतिरहिता अंशा नारायणनृसिंहादयो यत्र तत्। सर्वेषां

भक्तानां सर्वस्य शम्भोर्वा, आत्मनो मनसः, कं सुखं यत्र तत्। आत्मभूतं आत्मनैव भूतं स्वयामाविर्भूतं, न तु योगिवद्यत्नेन धारणया मनस्यानीतं, मनस्तो मनसा, दधार। तेन जीववज्जननीजठरसम्बन्धो वारितः। अतएवानुरूपं दृष्टान्तमाह—काष्ठा प्राची दिक्, आनन्दकरं चन्द्रं, यथेति। कियद्दिनानन्तरं तन्तु सा स्वकुक्षिमध्येऽपि कृष्णं पश्यन्ती बभूवेति ज्ञेयं, 'दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान्' (श्रीमद्भा० १०/२/४१) इत्यग्निमोक्तेः ॥ १८ ॥

भावानुवाद—तदुपरान्त भगवान् श्रीहरिने श्रीवसुदेवके हृदयसे देवकीके मनमें प्रवेश किया, इसीको 'ततः' आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। 'जगन्मङ्गलम्' अर्थात् समस्त जगत्के मूर्तिमान् मङ्गल-स्वरूप, 'अच्युतांशम्' अर्थात् जिनका कभी पतन नहीं होता ऐसे नारायण, नृसिंह आदि अंशसमूह जिनमें अवस्थित हैं, 'सर्वात्मकम्'—समस्त भक्तजनोंके अथवा शम्भुके मनके सुखको वर्धित करनेवाले 'आत्मभूत' अर्थात् योगियोंकी भाँति यत्नपूर्वक ध्यान-धारणासे मनमें नहीं लाये गये, बल्कि जो स्वयं ही आविर्भूत हुए हैं, उन श्रीभगवान्को 'मनस्तः दधार'—देवकीने मनके द्वारा धारण किया। इससे जीवकी भाँति भगवान्का जननीके गर्भसे सम्बन्ध होना खण्डित हुआ है। इसलिए इसके अनुरूप उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कह रहे हैं—पूर्वदिशा जैसे आनन्दकर चन्द्रमाको धारण करती है, वैसे ही देवकी भी श्रीकृष्णको मनके द्वारा धारण करने लगी। कुछ दिनोंके बाद श्रीदेवकी अपने कोखमें भी कृष्णको देखने लगी, ऐसा जानना होगा। क्योंकि देवतालोग इसी अध्यायमें आगे (४१वें श्लोकमें) कहेंगे—हे मातः देवकी! परमपुरुष स्वयं-भगवान् सैभाग्यवशतः आपके गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ १८ ॥

सा देवकी सर्वजगन्निवास-

निवासभूता नितरां न रेजे।

भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा

सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥

अन्वयः—ज्ञानखले (ज्ञानवज्चकमें अर्थात् दूसरोंको ज्ञान देनेमें अनिच्छुक पुरुषमें) सरस्वती (विद्या) यथा सती (जैसे विराजमानमात्र

होती है, परन्तु प्रकाशित नहीं होती है) (वैसे) सा (वह शुद्धसत्त्वमयी) देवकी (वसुदेवकी पत्नी) सर्वजगन्निवास-निवासभूता (प्राकृत-अप्राकृत सम्पूर्ण जगत्के आधार-स्वरूप श्रीकृष्णका आश्रयत्व पाकर भी) भोजेन्द्रगहे (कंस कारागारमें) अग्निशिखा इव रुद्धा (अग्निशिखाकी भाँति आबद्ध होकर) नितरां (सबके आनन्ददायी स्वरूपमें) न रेजे (सुशोभित नहीं हो सकी) ॥ १९ ॥

अनुवाद—समस्त जगत्के आधार-स्वरूप श्रीभगवान्की आश्रय-स्वरूपिणी होकर भी श्रीदेवकीदेवीने कारागृहमें अवरुद्ध होनेके कारण घड़ेमें बन्द अग्निशिखा तथा अपनी विद्या दूसरोंको न देनेवाले ज्ञानवञ्चक जनमें आबद्ध विद्यादेवीकी भाँति सभीके आनन्दप्रदके रूपमें शोभा प्राप्त नहीं की ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्राकृताप्राकृतसर्वजगन्निवासस्य श्रीहरेरिवासरूपा सत्यपि नितरां सर्वजनस्याह्लादकतया न रेजे, किन्तु तत्रत्य स्वान्तरङ्ग-द्वित्रजन-सहितस्य स्वस्यैवेत्यर्थः । यतः कंसस्य गृहे रुद्धा अग्निशिखा इवेति सा यथा गृहे रुद्धा नगरं न प्रकाशयति, किन्तु गृहस्थितवस्त्वेव, तथा स्वसमीपवर्तिनां द्वित्रजनानां शीतादिनाशिका च, तथैवेत्यर्थः । यथा च सा प्रबला सती रोधकस्य गृहं दहति, तथैव देवक्यपि कंसस्यैश्वर्यं धक्ष्यतीत्यर्थः । ज्ञानखले ज्ञानवञ्चके रुद्धा सरस्वती सर्वलोकानुपकारिणी सती यथा न राजते, पापातिशयेन स्वरोधकञ्च कालेन यथा नाशयति, तथैव स्वापराधेन कंसमपि देवकी नाशयिष्यतीत्यर्थः ॥ १९ ॥

भावानुवाद—देवकी प्राकृत और अप्राकृत सम्पूर्ण जगत्के आश्रय-स्वरूप श्रीभगवान्के निवास-स्वरूप होनेपर भी 'नितराम्' अर्थात् सभी लोगोंके लिए अतिशय आनन्ददायक रूपमें सुशोभित नहीं हो पायी, किन्तु उस कारागारमें स्थित अपने अन्तरङ्ग दो-तीन जनोंके साथ स्वयं ही आनन्दका अनुभव करने लगी, यह अर्थ है । इसका कारण है कि श्रीदेवकीदेवी कंसके कारागृहमें अवरुद्ध होकर ऐसी अवस्थामें रह रही थी, जैसे अग्निकी शिखा घरमें अवरुद्ध होनेपर नगर आदि बाहरकी वस्तुओंको प्रकाशित नहीं कर पाती है, केवल घरमें अवस्थित वस्तुओंको या समीपवर्ती दो-तीन वस्तुओंको ही प्रकाशित करती है या उनके ही शीत आदिका नाश करती है,

परन्तु जिस प्रकार वही अग्नि-शिखा प्रबल होनेपर रोधन करनेवाले घरको ही जलाकर भस्म कर डालती है, वैसे ही देवकी भी कंसके वैभवरूप ऐश्वर्यको जला डालेंगी, यह अर्थ है।

‘ज्ञानखले’ अर्थात् ज्ञानवञ्चक व्यक्तिके अन्दर अवरुद्ध सरस्वती समस्त लोगोंका उपकार न करनेवाली होनेसे जैसे शोभित नहीं होती और अतिशय पापसे उत्पन्न अपने अवरोधकको कालक्रमसे विनाश कर डालती है, उसी प्रकार स्वयंके प्रति अपराध करनेवाले कंसका भी देवकी विनाश कर डालेगी, यह अर्थ है॥ १९॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम्।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यत्र पुरेयमीदृशी॥ २०॥

अन्वयः—अजितान्तरां (अजित श्रीकृष्ण जिन देवकीकी कोखमें अवस्थित हैं, वह श्रीदेवकी) प्रभया (अपनी अङ्गकान्ति द्वारा) भवनं (कारागृहको) विरोचयन्तीम् (जगमगा दिया) शुचिस्मितां (निष्कपट हास्ययुक्त) तां (उन देवकीको) वीक्ष्य (कारागृहमें देखकर) कंसः (कंस) आह (अपने-आपसे कहने लगा) एष (दैववाणी कथित) मे (मेरा) प्राणहरो (जीवनान्तकारी) हरिः (मेरे पूर्वशत्रु श्रीहरिने) ध्रुवं (निश्चित रूपमें) गुहां (देवकीके गर्भमें) श्रितः (आश्रय लिया है) यत् (क्योंकि) इयं (यह देवकी) पुरा (इससे पहले) ईदृशी (ऐसी कान्तिविशिष्ट) न (नहीं थी)॥ २०॥

अनुवाद—देवकीदेवीकी कोखमें अजित भगवान्के विराजमान रहनेके कारण वे अपनी प्रभासे कारागृहको आलोकित कर रही थी तथा उनके मुखपर पवित्र मुसकान थी। इस प्रकार देवकीको देखकर कंस मन-ही-मन विचार करने लगा—अब की बार मेरा प्राणनाशक हरि निश्चय ही देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया है, क्योंकि यह देवकी इससे पूर्व कभी ऐसी प्रभावती नहीं थी॥ २०॥

सारार्थदर्शिनी—प्रभया भवनं विरोचयन्तीं अजितः, अन्तरे कुक्षिमध्ये, यस्यास्ताम्। शुचिः स्वाभाविकमानन्दोत्थं, न तु पूर्ववद्वञ्चनार्थं सकपटं स्मितं यस्याः। तां वीक्ष्य स्वगतमाह—मे मतङ्गजस्य, हरिः सिंहः; यद्यस्मात् ईदृशी पूर्वं नासीत् ॥ २० ॥

भावानुवाद—अजित श्रीभगवान्के देवकीकी कोखमें अवस्थित होनेपर श्रीदेवकी अपनी प्रभा (कान्ति) के द्वारा 'भवन' अर्थात् कारागृहको आलोकित करने लगी। 'शुचि' अर्थात् स्वाभाविक आनन्दसे उत्पन्न निष्कपट मुसकराहटसे युक्त श्रीदेवकीदेवी, न कि पहलेकी भाँति ठगनेके लिए कपटतायुक्त हँसीसे। कंस देवकीकी ऐसी अवस्थाको देखकर मन-ही-मन सोचने लगा—'मे प्राणहरः हरिः'—सिंह जैसे हाथीको मार डालता है, वैसे ही हाथी-तुल्य मेरे प्राणोंको हरण करनेवाले हरिने निश्चित रूपमें इसके गर्भमें प्रवेश किया है, क्योंकि इससे पहले देवकी कभी ऐसी प्रभावती नहीं थी ॥ २० ॥

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे
यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम्।
स्त्रियाः स्वसुगुरुमत्या वधोऽयं
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

अन्वयः—अद्य (अब) तस्मिन् (मेरे शत्रु हरिके प्रति) आशु (अतिशीघ्र) मे (मेरा) किं करणीयं (क्या कर्त्तव्य है? अर्थात् उसका दमन करनेके लिए क्या करना चाहिये?) यत् (क्योंकि) [अन्य किसी भी उपायका अवलम्बन करनेपर भी] अर्थतन्त्रः (देवकार्य-साधक हरि) विक्रमं (अपना पौरुष दिखानेमें) न विहन्ति (संकोच नहीं करेगा) [(दूसरी ओर) देवकीका वध करनेसे उसके गर्भस्थित विष्णुका निग्रह सम्भव होनेपर भी] स्त्रियाः (रमणी) स्वसुः (उसपर भी बहन है) [उसमें भी] गुरुमत्याः (गर्भवती है) अयं (यह मेरे द्वारा) वधः (प्राणनाश किए जानेपर) यशः (प्रसिद्धि) श्रियं (ऐश्वर्य) आयुः (आयु) अनुकालं (सब समयके लिए) हन्ति (विनष्ट हो जायेंगे) ॥ २१ ॥

अनुवाद—अब शीघ्र-से-शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये? क्योंकि अन्य किसी भी उपायका अवलम्बन करनेपर भी देवताओंका कार्य पूर्ण करनेके लिए आविर्भूत श्रीहरि अपना विक्रम त्याग देंगे, ऐसा भी नहीं है। दूसरी ओर, देवकी स्त्री-जाति है, बहन है, उसपर गर्भवती भी है, अतः इसका वध करनेसे मेरा यश, श्री और आयु तत्काल ही नष्ट हो जायेंगे ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—स्पष्टमप्याह। तस्मिन् मद्वैरिणि, आशु इदानीं, किं करणीयं गर्भस्थमेव तमिमं हन्यां चेन्न, यद्यस्मादर्थतन्त्रः स्वार्थपरोऽपि लोकः विक्रमं न विनाशयति सम्प्रत्यस्य वधे मम वीरत्वव्यञ्जको विक्रमो नङ्क्ष्यति, तस्माज्जात प्रवृद्धतरुणीभूतेनानेन सह संग्रामे जये पराजये वा मम विक्रमस्तु स्थास्यत्येव, गर्भवधे तु को विक्रम इति भावः। न केवलं विक्रम हानिरेव धर्मादिहानिरपीत्याह—स्त्रिया इति। गुरुमत्या गुर्विण्याः। अत्र भयेनैव यत् स्वदौरात्म्यं स्तब्धं, तत्तु मद्विवेकेनैवेति स्वस्मिन्नभिमानसुखं कल्पितं कंसेनेति ज्ञेयम् ॥ २१ ॥

भावानुवाद—इसे ही स्पष्ट रूपमें कह रहे हैं। अब मुझे अपने शत्रु श्रीहरिका संहार करनेके लिए शीघ्रातिशीघ्र क्या करना चाहिये? क्या गर्भमें स्थित रहते समय ही उसे मार देना चाहिये? नहीं, क्योंकि 'अर्थतन्त्र'—स्वार्थी होनेपर भी लोग अपने पराक्रमको नष्ट नहीं करते हैं। इस समय इसका वध करनेसे मेरी वीरताका व्यञ्जक पराक्रम नष्ट हो जायेगा। अतएव इस गर्भस्थित श्रीहरिके जन्म लेनेके उपरान्त किशोरावस्थाको प्राप्त करनेपर इसके साथ संग्राम करते हुए जय या पराजय होनेपर ही जगत्में मेरा पराक्रम स्थायी रहेगा। परन्तु, इस गर्भको नष्ट करनेमें क्या पराक्रम है? कुछ भी नहीं, यह भाव है। इस समय गर्भस्थित हरिका विनाश करनेसे केवल मेरा विक्रम ही नष्ट होगा, इतना ही नहीं, बल्कि मेरे धर्म आदिकी भी हानि होगी। इसलिए 'स्त्रियाः' आदि पद कह रहे हैं। एक तो देवकी स्त्री-जाति है, उसपर मेरी बहन भी है, विशेषतः गर्भवती है। ऐसी स्थितिमें इसका वध करनेके साथ-ही-साथ मेरा यशः, श्री और आयु आदि सभी नष्ट हो जायेंगे। यद्यपि यहाँपर वास्तवमें भयके कारण ही कंसका दुराचार रुक गया था, किन्तु 'अपने विवेकके कारण ही मैंने

देवकीका वध नहीं किया'—ऐसे एक अभिमानरूपी सुखकी कंसके द्वारा कल्पना की गयी थी, ऐसा जानना होगा ॥ २१ ॥

स एष जीवन् खलु सम्परेतो
वर्त्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—यः (जो व्यक्ति) अत्यन्त नृशंसितेन (अतिशय हिंसापरायण होकर) वर्त्तेत (जीवित रहता है) स एषः खलु जीवन् (वह जीवित होनेपर भी) सम्परेतः (मृततुल्य है) देहे मृते (शरीरके विनाश होनेपर) [वह] तनुमानिनः (देहाभिमानी पापियोंका भोग्य) अन्धं तमः (अन्धतामिस्र आदि नरक) ध्रुवम् (निश्चित) गन्ता (जायेगा) तम् (ऐसे अत्यन्त हिंसा परायण व्यक्तिको) मनुजाः (लोग) शपन्ति (शाप देते हैं) ॥ २२ ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति अत्यन्त निष्ठुर होता है, वह जीवन धारण करते हुए भी मृत व्यक्तिके समान है; क्योंकि सभी लोग उस निष्ठुर व्यक्तिको शाप देते रहते हैं तथा मृत्युके बाद उस देहाभिमानीकी गति निश्चय ही अन्धतमः नरकमें होती है ॥ २२ ॥

सारार्थदर्शिनी—गर्भं हतवतो मम जीवितव्यमपि धिक्कृतमेवेत्याह—स इति। नृशंसितेन क्रौर्येण। देहे मृते सतीति—जीवितं तु यद्यपि तस्मात् विभ्यति, तदपीति भावः। शपन्ति—रे पापिन् कुम्भीपाके पतेति साक्षेपमुच्चैराक्रोशन्ति। ततश्च तनुमानिनः प्राण्यन्तरहिंसया स्वतनुं मानयतो लालयतो जनस्य भोग्यं यदन्धं तमस्तत् ध्रुवमेव गन्ता गच्छति ॥ २२ ॥

भावानुवाद—गर्भका विनाश करनेके बाद मेरा जीवन धारण करना भी निन्दनीय होगा, इसीको 'स' इत्यादि श्लोकमें कह रहे हैं। 'नृशंसितेन' अर्थात् क्रूर कर्म करता हुआ जो व्यक्ति जीवित रहता है, वह जीते जी मरे हुएके समान होता है। जीवित रहते समय यद्यपि लोग उससे भय करते हैं, तथापि मृत्युके पश्चात् लोग आक्रोशपूर्वक उच्चस्वरसे चिल्लाते हुए उसे 'अरे पापी! तू कुम्भीपाक नरकमें गिर'

ऐसा कहकर अभिशाप देते हैं। 'तनुमानिनः' अर्थात् दूसरोंका अनिष्टकर जो व्यक्ति अपना देह-पोषण करता है, वह देहान्तके उपरान्त निश्चय ही उसी अन्धतम नरकमें जाता है ॥ २२ ॥

इति घोरतमाद्वावात् सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः।

आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ २३ ॥

अन्वयः—स्वयं प्रभुः (अपनेको प्रभु माननेवाला कंस) इति (पूर्व कथित विचारोंके द्वारा) घोरतमात् (देवकीका वध करनेकी चेष्टारूप घोरतर) भावात् (अभिप्रायसे) सन्निवृत्तः (निवृत्त हुआ) [परन्तु] हरेः (सर्वमनोहर होनेपर भी श्रीभगवान्से) वैरानुबन्धकृत् (निरन्तर विद्वेष-परायण होकर) तज्जन्म (श्रीदेवकीके गर्भमें श्रीहरिके जन्मकी) प्रतीक्षन् आस्ते (प्रतीक्षा करने लगा) ॥ २३ ॥

अनुवाद—इस प्रकार विविध प्रकारसे सोच-विचार करके कंस स्वयं ही गर्भनाशादिरूप क्रूर कार्यसे निवृत्त हो गया, परन्तु भगवान् श्रीहरिके प्रति चिरस्थायी विद्वेष भावका पोषण करते-करते उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३ ॥

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम्।

चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥

अन्वयः—आसीनः (उपवेशन) संविशन् (शयन) तिष्ठन् (खड़े रहते समय) भुञ्जानः (भोजन करते समय) महीम् (पृथ्वीमें) पर्यटन् (भ्रमण करते समय—सभी अवस्थाओंमें) हृषीकेशं (सर्वेन्द्रियवृत्तिमें स्फूर्तिप्राप्त श्रीहरिको) चिन्तयानः (चिन्ता करते हुए) जगत् (सम्पूर्ण विश्वको) तन्मयं (श्रीहरिमय ही) अपश्यत् (देखने लगा) ॥ २४ ॥

अनुवाद—कंस बैठते, सोते, खड़े रहते, भोजन करते तथा भ्रमण करते समय अर्थात् सभी अवस्थाओंमें समस्त इन्द्रियोंके ईश्वर श्रीभगवान्की चिन्ता करते-करते सारे जगत्को हरिमय देखने लगा ॥ २४ ॥

सारार्थदर्शिनी—वैरानुबन्धजनितेन भयेन कंसस्य चित्तावेशं विवृणोति—आसीन इति। सम्विशन् शयानः, चिन्तयानः चिन्तयन्, हृषीकेशं सर्वेन्द्रियविषयीभूतं।

तन्मयत्वदर्शनं प्रेम्णा परमानन्दजनकं, भयेन तु परमदुःखजनकम्—इति भक्त-वैरिणोः तन्मयत्वदर्शनस्य भेदो द्रष्टव्यः ॥ २४ ॥

भावानुवाद—शत्रुताके कारण उत्पन्न भयसे कंसका चित्त भगवान्‌में आविष्ट हो गया। इसीको 'आसीन' श्लोकके द्वारा विस्तारसे कह रहे हैं। कंस 'सम्बिशन' अर्थात् सोते समय, 'चिन्तयानः' अर्थात् विचार करते-करते, 'हृषीकेशम्' अर्थात् समस्त इन्द्रियोंके ईश्वर श्रीभगवान्‌में आविष्ट हो गया। भक्तोंका प्रेमसे सम्पूर्ण जगत्‌का हरिमयके रूपमें दर्शन परमानन्दजनक होता है, किन्तु कंस आदिकी भाँति प्रतिकूल व्यक्तियोंका भयसे सम्पूर्ण जगत्‌का हरिमयके रूपमें दर्शन परम दुःखजनक होता है—इस प्रकार भक्त और शत्रुके तन्मयत्व दर्शनका अन्तर द्रष्टव्य है ॥ २४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितसे कहा कि भगवान् 'विश्वात्मा' अर्थात् समस्त प्राणियोंके आत्मा होकर भी 'भक्तानामभयङ्करः' अर्थात् भक्तोंके भयहारी हैं। यद्यपि वे कंस आदि सबके आत्मा हैं, परन्तु श्रीवसुदेव-देवकी आदि भक्तोंके साथ उनका एक विशेष सम्बन्ध है। इसलिए वे उनके दुःखको दूर करनेके लिए कृत-सङ्कल्प हुए। यद्यपि वे मत्स्य, कूर्मादिकी भाँति आविर्भूत होकर भक्तोंके दुःखोंको दूर करते हैं, फिर भी श्रीवसुदेव-देवकीके वात्सल्य-प्रेमके आकर्षणसे मनुष्यकी भाँति जन्म ग्रहण करनेको बाध्य हुए। इसलिए उन्होंने 'आविवेशांशभागेन मनः आनकदुन्दुभेः' अर्थात् उन्होंने श्रीवसुदेवजीके मनमें अंश-भागसे अर्थात् पुरुषादि अवतारोंके साथ पूर्ण रूपमें प्रवेश किया और नन्दबाबा एवं माता यशोदासे परिपूर्णतम रूपमें जन्म लिया।

विशेष रूपसे 'श्रीभगवान्‌ने श्रीवसुदेवजीके मनमें प्रवेश किया'—इस विषयमें श्रीश्रीधरस्वामिपादने कहा है कि 'जीवानामिव न तस्य धातुसम्बन्ध' अर्थात् जीवोंका जन्म ग्रहण पिता-माताके शुक्र-शोणितके सम्पर्कसे होता है, परन्तु भगवान्‌का स्वरूप सच्चिदानन्दघन है, उन्हें शुक्र-शोणितरूप पाञ्चभौतिक देहकी कोई आवश्यकता नहीं होती, जीवका जन्म कर्मफलसे होता है और भगवान्‌का जन्म स्वेच्छासे होता है। 'यथा क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति, प्रेत्य तथैव भवति' अर्थात्

कर्मोंके अनुरूप जीवका जैसा संस्कार या सङ्कल्प होता है, देहान्त होनेपर जीव वैसी ही योनिमें जाकर जन्म ग्रहण करता है—इत्यादि श्रुतिके वचनोंसे यह जाना जाता है कि जीव अपने-अपने कर्मोंके द्वारा भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

(श्रीगी० ४/६)

अर्थात् 'जन्मरहित, अव्यय एवं सर्वेश्वर होकर भी अपने स्वाभाविक (भक्तवात्सल्य) गुणके द्वारा मैं स्वेच्छासे जन्म ग्रहण करता हूँ।' जीवकी भाँति कर्मफल उनके जन्मका नियन्ता नहीं है। पिता-माताके शुक्र-शोणितके संयोगसे माताके गर्भकोषमें जीवका देह प्रस्तुत होता है, परन्तु भगवान्का देह इस प्रकार नहीं बनता। उनका स्वरूप माता-पिताके शुक्र-शोणितके संयोगसे नहीं होता, वे सच्चिदानन्दमय नित्यवस्तु हैं। 'सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः' (वराहपुराण) अर्थात् परमात्मा भगवान्की सभी श्रीमूर्तियाँ अनादि एवं अनन्त हैं।

भगवान् भक्तोंके पूर्ण वात्सल्यरसका आस्वादन करनेके लिए सन्तानके रूपमें आते हैं, जिससे उनके अन्दर वात्सल्यमय पूर्ण ममता जाग्रत हो। इसीलिए देवकी-वसुदेवके मनमें भी पुत्ररूपमें लालन-पालन करनेकी वासना क्षण-क्षणमें वर्द्धित होने लगी। इससे देवकी-वसुदेवका हृदय भगवत्-तेजसे परिपूर्ण हो गया। 'यस्य भासा सर्वमिदं विभाति' अर्थात् जिनकी अङ्गकान्तिसे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि सभी प्रकाशित होते हैं—इस श्रुतिवचनसे स्पष्ट ही समझा जाता है कि श्रीभगवान्की श्रीमूर्ति सर्वविध दीप्ति, कान्ति तथा उज्ज्वलताका मूल केन्द्र है। इसीलिए देवकी-वसुदेव सूर्यके समान तेजस्वी हो गये। 'ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी' इत्यादि (१८ वें) श्लोकमें श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितके सामने यह तत्त्व प्रकाशित किया है।

तदनन्तर पूर्वदिशा जैसे जगदानन्दकर चन्द्रबिम्बको धारणकर सुशोभित होती है, वैसे ही देवकी भी अच्युत श्रीकृष्णको गर्भमें

धारणकर परिशोभित होने लगी। पूर्णचन्द्र जैसे पूर्व दिशामें ही उदित होता है और किसी दिशामें नहीं वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र भी सोलह कला अर्थात् ऐश्वर्य, माधुर्य आदि गुणोंसे युक्त होकर शुद्धसत्त्व-स्वरूपा देवकी गर्भमें ही आते हैं।

अनन्त ब्रह्माण्ड एवं अनन्त वैकुण्ठ—प्राकृत एवं अप्राकृत दोनों जगत्के एकमात्र आश्रय श्रीगोविन्द हैं। देवकी उन सर्वजगदाधार श्रीगोविन्दके भी आधार रूपमें विराजमान हुई। श्रीशुकदेवजीने 'भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथासती'—इस उदाहरणसे यह सिद्धान्त प्रकाश किया है—प्रज्ज्वलित अग्निशिखा घरमें आबद्ध होनेपर जिस प्रकार उससे नगर आदि बाहरी वस्तुएँ प्रकाशित नहीं होती अथवा अत्यधिक ज्ञानवान व्यक्ति यदि किसीको भी ज्ञानका उपदेश न देकर अपनेमें उसे छिपाकर रखता है, तो उससे जैसे किसीका भी अज्ञान दूर नहीं होता है, वैसे ही देवकी भी आनन्द-निकेतन श्रीगोविन्दको अपने गर्भमें रखकर भी किसीको भी आनन्द प्रवाहमें बहा नहीं पा रही थी। क्योंकि वह कंसके कारागारमें आबद्ध थी। इसका तात्पर्य यह है कि इन्धनसे आच्छादित अग्नि जैसे कुछ देर पश्चात् इन्धनको जलाकर आत्मप्रकाश करती है, वैसे ही कंसके कारागारमें आबद्ध वस्तु भी ठीक समयमें कंसका ध्वंसकर आत्म-प्रकाश करेगी। ज्ञानी जैसे किसीको ज्ञान न देनेके पापसे निष्प्रभ होता है, वैसे ही कंस भी इस आनन्दसे लोगोंको वञ्चित करनेके कारण उस पापसे विनष्ट होगा—इसमें क्या सन्देह है?

देवकीके आठवें गर्भका समाचार मिलनेके साथ-साथ कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने विचार किया कि इसे तुरन्त मार डालना चाहिये। इस बार रक्षा होनेसे मैं मृत्युभयसे रहित हो जाऊँगा। वसुदेव-देवकीको कारागारमें रखकर भी उसके मनमें शान्ति नहीं थी, अनुचर द्वारा संवाद पाकर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था, इसलिए वे कारागारमें है या नहीं, कहीं भागनेके प्रयासमें हैं या नहीं—यह जाननेके लिए वह स्वयं कारागारमें जाकर उपस्थित हुआ। वहाँ कंसने देखा—देवकीकी अङ्गज्योतिसे कारागारकी कोठरीका घोर अन्धकार दूर होकर चारों ओर प्रकाश फैला हुआ था। यह देखकर कंस डर

गया। देवकी स्वाभाविक रूपसे मुसकरा रही थी और उसकी मुसकराहटमें दूसरे समयकी अपेक्षा इस समय कुछ विशेषता दीख रही थी। यह होना अत्यन्त स्वाभाविक है, क्योंकि देवकी 'अजितान्तरा' है। भगवान् 'अजित' हैं अर्थात् कोई उन्हें वशीभूत नहीं कर सकता है। परन्तु वशीभूत तो बहुत दूरकी बात है, देवकीने उन्हें अपने गर्भमें धारण किया है। जिनके आनन्दकी एक बूँदके स्पर्शसे जड़-जगत् आनन्दसे नाच उठता है, उस आनन्दकी मूर्तिको ही गर्भमें धारण करनेके कारण असीम आनन्द और हास्यसुधाके द्वारा देवकीका सर्वाङ्ग परिपूर्ण हो गया है। सूर्यकी ओर देखना किसी प्रकारसे सम्भव हो भी सकता है, परन्तु कंस देवकीकी ओर आँखें उठाकर देख नहीं सका—

न शोके देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यति तेजसा ।

जाज्ज्वल्यमानां तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोभमाययुः ॥

(विष्णुपुराण)

अर्थात् अति तेजसे युक्त देवकीकी ओर देखना किसीके लिए भी सम्भव नहीं हो रहा था, बल्कि अङ्गच्छटासे जाज्ज्वल्यमाना देवकीकी ओर देखनेसे ही बहिर्मुख व्यक्तियोंके मनमें अभूतपूर्व भयका सञ्चार हो रहा था।

कंस भी देवकीको देखकर भयभीत और आश्चर्यचकित हो गया। महाभयके कारण उसका समस्त शरीर थरथर काँपने लगा एवं वह मन-ही-मन सोचने लगा—इसबार मेरे प्राणनाशक हरिने निश्चित ही देवकीके गर्भमें प्रवेश किया है। नहीं तो देवकीके शरीरसे इतना तेज कैसे निकल रहा है। देवकीको मैं शैशवकालसे देखता आ रहा हूँ, परन्तु ऐसा तो उसे कभी देखा ही नहीं। निश्चित रूपमें मेरी हत्या करनेवाले हरिने देवकीके गर्भमें प्रवेश किया है। इससे वाग्देवी सरस्वतीने कंसके मुखसे सच ही कहलवाया है कि हरि अर्थात् सिंह, हाथीका विनाश करनेसे पहले पर्वतकी गुफामें छिपकर रहता है और अवसर देखकर उसे मारता है। इसी प्रकार श्रीभगवान् भी कंसरूपी हाथीको ध्वंस करनेके लिए वात्सल्यप्रेमरूपी पर्वतकी गुफामें (देवकीके गर्भमें) छिपे हुए हैं। ठीक समयपर प्रकट होकर अपना कार्य करेंगे।

कंस देवकीको देखकर मन-ही-मन विचार करने लगा—इस बार देवकीका आठवाँ गर्भ है एवं इस गर्भमें ही मेरा पूर्व-शत्रु हरिका आगमन हुआ है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है; परन्तु अब मुझे क्या करना चाहिये?

यदि मैं अभी देवकीका वधकर गर्भमें ही हरिका विनाश करूँ तो यह उचित नहीं होगा क्योंकि देवकीका वध करनेसे स्त्रीहत्या, बहनकी हत्या एवं भ्रूणहत्या—सभी महापाप एकसाथ ही हो जायेंगे। इससे अपयश, धनकी हानि और आयुक्षय अनिवार्य है। और फिर ऐसा निष्ठुर व्यवहारकर जीवित रहना, न रहना एक समान है, क्योंकि जीवित दशामें भी मेरी लोकनिन्दा होगी और मृत्युके पश्चात् भी लोकनिन्दा होती रहेगी। उस समय भी सभी लोग कहेंगे कि यह महापापी निश्चित ही 'अन्ध-तामिस्र' नरकमें जायेगा। इस प्रकार बहुत-सी बातोंको सोचकर कंसने देवकीका वध नहीं किया, परन्तु आठवें गर्भके बालकका जन्म होते ही मार डालूँ—ऐसा सोचा।

इस प्रकार कंस दिन-रात इसी चिन्तामें विभोर होकर जगत्को हरिमय देखने लगा। खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते उसे एक ही चिन्ता लगी रहती—मुझे मारनेवाला विष्णु आ रहा है। कितने योगीन्द्र, मुनीन्द्रगण निर्जन वनमें कई-कई वर्षों तक तीव्रतम तपस्या करनेपर भी जगत्को हरिमयके रूपमें दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हो सके, किन्तु वही कंस कुछ ही दिनोंमें सम्पूर्ण विश्वको हरिमय दर्शन करनेमें समर्थ हो गया। इसका कारण शत्रुतासे उत्पन्न भयसे हरिकी तीव्र चिन्ताके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १६-२४ ॥

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।

देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिवृषणमैडयन् ॥ २५ ॥

अन्वयः—तत्र (श्रीदेवकीके गर्भमें भगवान्का आविर्भाव होनेपर) ब्रह्मा (जगत्-स्रष्टा) भवश्च (और संहार कर्ता श्रीरुद्र) नारदादिभिः (नारद, सनक-सनत्कुमार आदि) मुनिभिः (श्रीकृष्णलीला मननशील महात्मागण) सानुचरैः (अपने-अपने अनुचरोंके साथ) [तथा] देवैः (इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण आदि देवतावृन्दके) साकं (साथ) एत्य (कंस

कारागारमें आकर) गीर्भिः (श्रीगोविन्द माहात्म्य-सुचक वाक्योंके द्वारा) वृषणं (सर्वकाम प्रदाता श्रीदेवकीके गर्भकोश में उदित श्रीकृष्णरूप बादलकी) ऐड़यन् (स्तुति की) ॥ २५ ॥

अनुवाद—चतुर्मुख ब्रह्मा और शिव देवकीके वासगृहमें आये। उनके साथ नारद आदि मुनिगण तथा अपने-अपने अनुचरोंसे परिवेष्टित देवता भी थे। वे लोग एकसाथ सुमधुर वचनोंसे देवकीके गर्भमें विराजमान सर्वकामवर्षी अर्थात् समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्रीहरिका इस प्रकार स्तव करने लगे— ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—वृषणं लीलामृतवर्षिणं कृष्णाम्बुदम्। ब्रह्मा भुवनचतुर्दशकेदार-महाकृषीबल इव, भवश्चोल्लासित-साधुपक्षो नृत्यविनोदी महानीलकण्ठ इव, नारदादिभिस्तदेकजीवनैर्महासोत्कण्ठचातकैरिव, देवैः कंसजरासन्धादिदावान-लावृतैर्महामतङ्गजैरिव, सह ऐड़यन् ऐड़यत तुष्टुवुरिति यावद्। बहुवचनमार्षम् ॥ २५ ॥

भावानुवाद—‘वृषणं’—श्रीहरिलीलामृत वर्षणकारी कृष्णमेघ। श्रीब्रह्मा चतुर्दश भुवनरूप क्षेत्रके किसानस्वरूप हैं, श्रीशिव उल्लसित साधुजनोंका पक्ष अवलम्बन करनेवाले नृत्यविनोदी मयूरके समान हैं, नारदादि कृष्णैक-जीवन भक्तजन उत्कण्ठित चातक पक्षीके समान हैं तथा देवता लोग कंस, जरासन्ध आदिरूप दावानलसे घिरे हुए मातङ्ग (हाथी) के समान हैं। इसलिए ब्रह्मा, महेश्वर, नारदादि मुनिगण एवं अनुचरोंके साथ देवता—सभी लोग उस स्थानपर आकर विविध प्रकारके मधुर वचनोंके द्वारा श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं,
सत्यस्य योनिं निहितञ्च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥

अन्वयः—सत्यव्रतं (सत्यसङ्कल्प) सत्यपरं (सत्यसाधन-लभ्य) त्रिसत्यं (भूत, भविष्य, वर्तमानरूप तीनों कालमें विराजमान) सत्यस्य योनिं (मिट्टि, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पञ्चभूतोंके उत्पत्तिका कारण) सत्ये च निहितं (इन पञ्चभूतोंमें अन्तर्यामीके रूपमें

जो अवस्थित हैं) सत्यस्य सत्यं (पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंका पारमार्थिक तत्त्व) ऋतसत्यनेत्रं (सुमधुर सत्य वाणी, समदर्शनके प्रवर्तक) सत्यात्मकं (सर्वथा सत्य-स्वरूप) त्वां (भगवान् श्रीगोविन्दके) शरणं प्रपन्नाः (शरणागत हो रहे हैं) ॥ २६ ॥

अनुवाद—हे भगवन्! आप जो सङ्कल्प करते हैं, उसकी सत्यताकी रक्षा करते हैं; अतएव आप सत्यव्रत हैं। सत्य ही आपको प्राप्त करनेका श्रेष्ठ उपाय है, इसलिए आप सत्यपर हैं। सृष्टि, स्थिति एवं लय—इन तीनों कालोंमें आप समान रूपसे वर्तमान रहते हैं, इसलिए आप त्रिसत्य हैं। आप पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) की उत्पत्तिके कारण हैं, पुनः पञ्चभूतकी उत्पत्तिके पश्चात् भी आप उनमें अन्तर्यामीके रूपमें विराजमान रहते हैं तथा उन पञ्चभूतोंके नष्ट हो जानेके बाद अर्थात् प्रलयकालमें भी आप ही एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। आप ऋत अर्थात् सुसत्य वचन एवं सत्य अर्थात् समदर्शन—इन दोनोंके प्रवर्तक हैं। अतः हम सत्यात्मक आपके शरणागत हो रहे हैं ॥ २६ ॥

सारार्थदर्शिनी—

त्वमेव वास्तवं वस्तु संसारेऽस्मिन्नवास्तवे।

त्वं भक्तैर्गम्यसे नान्यैरिति स्तुत्यर्थ ईक्षितः॥

स्वभक्तपालनैकव्रतत्वात्रित्यसत्यत्वाच्च त्वमेव प्रपत्यर्ह इत्याहुः—सत्यं व्रतं यस्य तम्; 'सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतद्ब्रतं मम॥' इति तदुक्तेः। न च स्वभक्तपालकदेवतान्तरवत् त्वमनित्योऽनुत्-कृष्टश्च इत्याह—सत्यः सर्वकालदेशवर्ती, परः श्रेष्ठश्च तम्। यद्वा, सत्यं सत्यनामानं—'सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम्। सत्यात्सत्यो हि गोविन्दस्तस्मात्सत्यो हि नामतः॥' इत्युद्यमपर्वोक्तेः, परं परमेश्वरम्। त्वदबुद्धिबलादयोऽपि सत्या एवेत्याहुः—तिस्रः ज्ञान-बल-क्रियाशक्तयः सत्या यस्य तम्; 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥' (श्वे० उ० ६/८) इति श्रुतेः। त्वदंशा अपि सत्या इत्याहुः—सत्यस्य मत्स्यकूर्माद्यवतारवृन्दस्य, योनिमुद्गमस्थानमवतारिणमित्यर्थः। त्वद्धामापि नित्यमित्याहुः—निहितं सन्निहितं स्थितमित्यर्थः, सत्ये मथुरावैकुण्ठादिलोके। किञ्च, सारस्य सार इतिवत् समस्तचिद्वस्तुसारस्त्वमेवेत्याहुः—सत्यस्य सत्यमिति। यद्वा,

सत्यस्य यत्किञ्चित् कालवर्तिनो मायिकप्रपञ्चस्य प्रकाशकत्वात्, सत्यं सर्वकाल-वर्तिनं; 'चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्' इतिवत्, 'सत्यं ह्येवेदं विश्वमसृजत' इति माध्वभाष्यप्रमाणित श्रुतेः। हे ऋत नित्यसत्यस्वरूप। सत्यं नेत्रं सर्वेन्द्रियोपलक्षकं नयनेन्द्रियं यस्य तम्। सत्य आत्मा श्रीविग्रहो यस्य तम्॥ २६ ॥

भावानुवाद—हे भगवन्! इस अवास्तव संसारमें आप ही एकमात्र वास्तव वस्तु हैं, आप एकमात्र भक्तोंके द्वारा प्राप्य हैं, दूसरोंके लिए नहीं—यही देवताओंकी स्तुतिका तात्पर्य है।

अपने भक्तोंकी रक्षा करना—यह आपका एकमात्र व्रत है एवं आप नित्य-सत्य हैं, इसलिए आपकी ही शरण ग्रहण करनी चाहिये, अतएव कह रहे हैं—'सत्यव्रत' अर्थात् जिनका व्रत सत्य है, वे भगवान्। क्योंकि आपने ही कहा है—“जो व्यक्ति 'मैं' तुम्हारा हूँ' ऐसा एकबार भी कहकर मेरा शरणागत होता है, मैं उसे सर्वदा अभय प्रदान करता हूँ, यह मेरा व्रत है।” अपने भक्तजनोंका पालन करनेवाले अन्य देवताओंकी भाँति आप अनित्य और निकृष्ट नहीं हैं। अतएव कह रहे हैं—'सत्यपर' अर्थात् आप 'सत्य' अर्थात् सर्वकालवर्ती, सर्वदेशवर्ती और 'परम्' अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं। अथवा, 'सत्य' यह आपका एक नाम है, जैसे महाभारतके उद्योग पर्वमें कहा गया है—“श्रीकृष्ण सत्यमें प्रतिष्ठित हैं और सत्य श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित है, सत्यमें भी परमसत्य श्रीकृष्ण हैं, इसलिए उनका नाम 'सत्य' है।” 'परम्' अर्थात् परमेश्वर अर्थात् 'सत्य' नामक परमेश्वर। आपका बुद्धि और बल आदि सबकुछ सत्य ही है, यही कह रह हैं—'त्रिसत्य' अर्थात् ज्ञान, बल और क्रिया—ये तीन शक्तियाँ जिनकी सत्य हैं, क्योंकि श्वेताश्वतर उपनिषद (६/८) में कहा गया है—“उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्त पादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होतीं। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिए उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वरकी अलौकिकी शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति या सम्बित्-शक्ति, सत्-शक्ति या सन्धिनीशक्ति

और आनन्दशक्ति या ह्लादिनीशक्ति कहते हैं।” तुम्हारे अंशसमूह भी सत्य हैं, इसलिए कह रहे हैं—‘सत्यस्य योनिं’—‘सत्य’ अर्थात् मत्स्य, कूर्मादि अवतारोंका ‘योनिम्’ अर्थात् उद्गम स्थान आप ही हैं अर्थात् आप सर्व-अवतारी हैं। आपका धाम भी नित्य है, इसीलिए कह रहे हैं—‘निहितं च सत्ये’—‘सत्ये’ अर्थात् मथुरा, वैकुण्ठादि लोकोंमें ‘निहितम्’ अर्थात् आप सर्वदा अवस्थित हैं।

‘सारके भी सार’—इस वचनकी भाँति समस्त चित्-वस्तुओंके सार आप ही हैं, इसीलिए कह रहे हैं—‘सत्यस्य सत्यं’ अर्थात् आप सत्यके भी सत्य, परम सत्य हैं। अथवा ‘चक्षुके भी चक्षु, कानके भी कान’ इत्यादि श्रुतिके वचनोंकी भाँति ‘सत्यस्य’ अर्थात् सामान्य कालवर्त्ती मायिक प्रपञ्चके प्रकाशक हेतु आप ‘सत्यम्’ अर्थात् सर्वकालवर्त्ती हैं, जिस प्रकार श्रीमध्वभाष्य प्रमाणित श्रुतिमें भी कहा गया है—“सत्यने ही इस विश्वकी सृष्टि की है” इत्यादि। हे ‘ऋत’ अर्थात् नित्यसत्यस्वरूप! ‘सत्यनेत्रं’—समस्त इन्द्रियोंके उपलक्षक नयनेन्द्रिय जिनका सत्य है, वे भगवान्। ‘सत्यात्मक’ अर्थात् सत्य ‘आत्मा’ अर्थात् श्रीविग्रह जिनका है, वे भगवान्॥ २६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवतावृन्द कंस कारागारमें आकर स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आप सत्य-विग्रह हैं, हम आपके शरणागत हो रहे हैं। भूः, भुवः आदि चौदह भुवनोंमें बहुत-से देहधारी जीव निवास करते हैं, परन्तु उनमें कोई भी सत्य विग्रह नहीं है। अपना-अपना कर्मफल भोगके पश्चात् क्षुद्र कीटसे लेकर ब्रह्मा तक सभीके विग्रह (देह) का पतन होता है, अतएव इनमें किसीके भी शरणागत होकर कोई भी निश्चिन्त नहीं रह सकता है। परन्तु, आप सत्य विग्रह हैं, आपके शरणागत होनेसे कोई दुःखी नहीं रह सकता है। कोई भी जागतिक वस्तु सत्य नहीं है, एकमात्र जगन्नाथ सत्य हैं। जो कोई उनके शरणागत होता है, वह भी सत्यको प्राप्त करता है। कोई भी जीव स्वर्गमें जाकर चिरकाल वहाँ रह नहीं सकता है, क्योंकि (श्रीगी० ९/२१) ‘क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति’ अर्थात् पुण्य क्षय होनेपर फिरसे मर्त्यलोकमें प्रवेश करता है। परन्तु,

श्रीगोविन्दके चरणारविन्दमें शरणागत होनेपर उनकी कृपासे पार्षद-देह लाभ करनेपर कभी पतन नहीं होता है। 'यद्रत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' अर्थात् मेरे धाममें जानेपर वहाँसे फिर कभी लौटकर आना नहीं होता है—यह गीता (१५/६) का वचन है। और 'न स पुनरावर्त्तते' अर्थात् वह पुनः संसारमें नहीं लौटता है—इस श्रुतिवाक्य द्वारा भी यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है। अतएव 'सत्य आत्मा यस्य' अर्थात् जिनकी 'आत्मा' अर्थात् देह सत्य है एवं 'सत्य आत्मा यस्मात्' अर्थात् जिनका भजन करनेसे सत्य देह (पार्षद-देह) प्राप्त होता है, वे ही भगवान् हैं।

ब्रह्मादि देवगणके सत्यमूर्ति भगवान्‌के चरणोंमें शरणागत होनेसे उन्हींकी कृपासे उन्हें सत्यताकी स्फुर्ति होने लगी एवं वे 'सत्यव्रत' आदि विशेषणोंसे उसे ही व्यक्त करने लगे।

जिनका अपने भक्तोंका पालनरूप व्रत सत्य है, उनका नाम 'सत्यव्रत' है। अतएव ब्रह्मादि देवताओंका वक्तव्य यह है कि हे भगवन्! आप प्रपञ्चातीत नित्यधाममें स्थित होकर भी प्रपञ्च जगत्‌के भक्तोंका पालन करनेके लिए प्रपञ्चमें अवतीर्ण हुए हैं। कोई भी व्यक्ति अपना व्रत तोड़ना नहीं चाहता है अतएव आप भी अपने इस महाव्रतका पालन करनेके लिए ही अवतीर्ण हुए हैं। कंसादि असुरोंके अत्याचारसे प्रपीड़ित भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिए आपका गोलोकसे इस भूलोकमें आगमन हुआ है।

श्रीभगवान् ही 'सत्यपर' हैं अर्थात् सत्य ही उनकी प्राप्तिका साधन है। जो व्यक्ति सत्यका आश्रय ग्रहण करता है, वही उनकी चरण-सेवा प्राप्त करता है। यहाँ सत्य शब्दका अर्थ 'भक्तियोग' है। ज्ञानयोग, अष्टाङ्गयोग एवं भक्तियोग—इन तीन साधनोंसे जीव संसार-बन्धनसे मुक्त होकर सच्चिदानन्द वस्तुका अनुसन्धान करता है। इनमेंसे भक्तियोग ही परमसत्य है। क्योंकि साधन और सिद्धि—दोनों कालोंमें ही भक्तियोग समान रूपमें रहता है, परन्तु दूसरा कोई भी योग ऐसा नहीं है। क्योंकि ये योग साधनकालमें अनुष्ठित होते हैं, परन्तु सिद्धिकालमें उनका नाम-गन्ध भी नहीं रहता है। ज्ञानयोगी और अष्टाङ्गयोगी साधक साधनकालमें ज्ञान एवं यम नियमादि

अष्टाङ्गयोगका साधन करते हैं, परन्तु उस साधनकी सिद्धिमें जब वे ब्रह्म-सायुज्य एवं ईश्वर-सायुज्यको लाभ करते हैं, तब ज्ञान या यम-नियमादिका कोई भी अनुष्ठान नहीं होता है। अतएव ये दोनों साधन सत्य नहीं हैं अर्थात् साधन और सिद्ध दशामें समान रूपसे स्थित नहीं हैं। परन्तु भक्तका भक्तियोग साधकावस्थासे सिद्धावस्था तक समान रूपसे रहता है। भक्तिसाधक श्रवण, कीर्तनादि साधनभक्तिका अनुष्ठान करते-करते जब सिद्धावस्थाको प्राप्त करता है, तब भी उस परमानन्दमय साधनका त्याग नहीं करता है, उस समय भी वह सर्वदा श्रवण-कीर्तनादि रस-सिन्धुमें निमग्न रहता है।

इस समय भगवान् देवकीके गर्भमें आविर्भूत हुए हैं। इसके पश्चात् यथा समयमें पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर वे पिता-माता, सखा और प्रेयसियोंके साथ वात्सल्य, सख्य, और मधुर रसका आस्वादनके लिए बाल्य, पौगण्ड एवं कैशोर—इन तीन अवस्थाओंमें प्रकाशित होंगे। प्रत्येक कल्पमें भगवान् श्रीकृष्ण आविर्भूत होकर अपनी नित्य लीलाओंको प्रकट करते हैं। परन्तु मत्स्य, कुर्मादि अवतारोंमें ऐसी मधुर लीलाएँ प्रकट नहीं होती हैं। भगवान्की कृपासे ब्रह्मादि देवताओंको पूर्व-कल्पकी श्रीकृष्ण लीलाकथाका स्मरण होनेपर वे कहने लगे—‘त्रिसत्य’ अर्थात् हे भगवन्! आप सबके आदि, सर्वकारण-कारण एवं सदा ही एकरूप हैं अर्थात् भौतिक देहकी भौति क्षण-क्षणमें आपका रूप परिवर्तन नहीं होता है। फिर भी आप पिता, माता, सखा एवं प्रेयसियोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए बाल्य, पौगण्ड और कैशोर—इन तीन स्वरूपोंको प्रकाश करते हैं—ये तीनों स्वरूप ही नित्य हैं।

या यथा भुवि वर्तन्ते पूर्यो भगवतः प्रिया।

तास्तया सन्ति वैकुण्ठे कृष्णलीलार्थमादृताः ॥

(स्कन्धपुराण)

अर्थात् श्रीभगवान्की प्रकटलीलामें रसास्वादनके लिए उनकी जो-जो प्रिय लीलास्थलियाँ अयोध्या, मथुरा आदि समस्त धाम पृथ्वीमें विराजमान हैं, वे सभी धाम अप्रकटलीलाका रस आस्वादनके लिए श्रीवैकुण्ठमें भी नित्य विराजमान हैं।

वैकुण्ठे भुवने नित्ये निवसन्ति महोज्ज्वलाः ।

अवताराः सदा तत्र मत्स्यकुर्मादयोऽखिलाः ॥

अर्थात् नित्य-सच्चिदानन्दमय (महा उज्ज्वल) वैकुण्ठमें श्रीभगवान्‌के समस्त मत्स्य, कुर्मादि सच्चिदानन्दधन-विग्रह अवतारवृन्द भी सदा निवास करते हैं।

श्रीभगवान्‌की कृपासे ब्रह्मादि देवताओंके हृदयमें उनका धाम एवं अवतारोंकी सत्यता स्फूर्ति प्राप्त होनेसे वे कहने लगे—‘सत्यस्य योनिं’ और ‘निहितञ्च सत्ये’। श्रीभगवान्‌ सत्यस्वरूप मत्स्य, कूर्मादि अवतारोंकी योनि अर्थात् मूलकारण एवं सत्यस्वरूप सच्चिदानन्दमय धाममें ‘निहित’ अर्थात् नित्य विराजित हैं।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।

यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥

(श्रीमद्भा० १/३/२६)

अर्थात् जैसे अक्षय सरोवरसे असंख्य नद-नदियाँ निकलकर विभिन्न स्थानोंमें प्रवाहित होती हैं, वैसे ही शुद्धसत्त्वके अक्षय सरोवर भगवान्‌ श्रीकृष्णसे ही असंख्य अवताररूपी नदियाँ आविर्भूत होकर जगत्‌को कृतार्थ करती हैं।

इस प्रकार प्रथम-स्कन्धके वचनसे ‘श्रीकृष्ण ही समस्त अवतारोंके मूल कारण हैं’—यह स्पष्ट रूपसे समझा जाता है।

ब्रह्मादि देवगण श्रीगोविन्दका माहात्म्य कीर्तन करते-करते अन्तमें कहते हैं—‘सत्यस्य सत्यं’ श्रीभगवान्‌ समस्त सत्य वस्तुओंमें परम सत्य हैं। ‘नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां’ अर्थात् जो नित्य वस्तुओंमें भी परम नित्य और चेतनोंमें भी परम चेतन हैं—इस श्वेताश्वतर उपनिषदके वचनसे नित्यके भी नित्य रूपमें भगवान्‌का स्वरूप निर्णय हुआ है ॥ २६ ॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-

श्चतुरसः पञ्चविधः षडात्मा ।

सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो,

दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

अन्वयः—असौ (यह परिदृश्यमान) हि आदिवृक्षः (व्यष्टि-समष्टि देहरूप प्रपञ्च या संसार वृक्षका) एकायनः (आश्रय प्रकृति है) द्विफलः (इसके सुख-दुःखरूपी दो फल हैं) त्रिमूलः (सत्त्व, रज, तमो गुणरूपी तीन मूल है) चतुरसः (धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार रस है) पञ्चविधः (चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचारूपी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं) षडात्मा (शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख, प्यासरूपी छह लहरियाँ अथवा जन्म, स्थिति, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाशरूपी छह भाव-विकार या स्वभाव हैं) सप्तत्वक् (रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और शुक्ररूपी सात धातुओंका आवरण है) अष्टविटपः (मिट्टि, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पँचभूत और मन, बुद्धि, अहंकाररूपी आठ शाखाएँ हैं) नवाक्षः (मुख, दो नेत्र, दो नासिका, दो कान, पायु और उपस्थरूपी नौ छिद्र अर्थात् कोटरे हैं) दशच्छदी (प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय—ये दस प्राणरूपी पत्रसमूह हैं) [तथा इसमें] द्विखगः (जीवात्मा और परमात्मा नामक दो पक्षी निवास करते हैं) ॥ २७ ॥

अनुवाद—यह समष्टि-व्यष्टि देहात्मक प्रपञ्च आदि-वृक्षस्वरूप है। प्रकृति इसका आश्रय है एवं सुख-दुःख इसके दो फल हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन इसके मूल हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार इसके रस हैं। पाँच इन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका) इस वृक्ष द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेके पाँच उपाय हैं। शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और पिपासा—ये छह इसके स्वभाव हैं। त्वक्, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात इस वृक्षके छालस्वरूप हैं एवं मिट्टी, जल, तेज, मरुत्, व्योम, मन, बुद्धि और अहंकार—ये आठ इसकी शाखाएँ हैं। मुख आदि नौ द्वार इसके छिद्र हैं एवं दस प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय) इसके पत्ते हैं। इसमें जीवात्मा और परमात्मा नामके दो पक्षी विराजमान हैं ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, यदि देहेन्द्रियधामादिविशिष्टोऽहमेव सत्यस्तर्हि जगदिदं किमसत्यम्? तत्र जगतः सत्यत्वेऽपि कालच्छेद्यत्वं, तव तु तदभाव इत्याहुः—एकायन

इति। असौ प्रपञ्च, आदिवृक्षो भवति। प्रथमत एव प्रवृत्तत्वादादिः, वृश्च्यते कालेन छिद्यते इति वृक्षः—समष्टि—व्यष्टिदेहरूपः। एका प्रकृतिः, अयनमाश्रयो यस्य सः। द्वे सुखदुःखे फले यस्य सः। त्रयो गुणा मूलानि यस्य सः। चत्वारो वर्णधर्मा आश्रमधर्मा वा रसा यस्य सः। पञ्च इन्द्रियाणि, विधा ज्ञानप्रकारा यस्य सः। षडूर्मयः आत्मानः स्वभावा यस्य सः, अत्र शोकमोहजरामृत्युक्षुत्पिपासाः षडूर्मयः। सप्तधातवस्त्वचो यस्य सः, त्वगसृडमांसमेदोऽस्थिवसाशुक्राणि धातवः। अष्टौ पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशमनो बुद्ध्यहङ्कारा, विटपाः शाखा विस्तारा यस्य सः। नवद्वाराणि, अक्षाः छिद्राणि यस्य सः। दश प्राणाः, छदाः पत्राणि विद्यन्ते यस्य सः दशच्छदी। द्वौ जीवेश्वरौ खगौ यस्मिन् सः॥ २७॥

भावानुवाद—यदि गर्भस्थ श्रीकृष्ण कहें कि अगर देह, इन्द्रिय, धाम आदि विशिष्ट मैं ही सत्य हूँ, तब क्या यह जगत् असत्य या मिथ्या है? उत्तरमें देवता लोग कहते हैं कि जगत् सत्य होनेपर भी कालक्रमसे वह विनाशशील है, परन्तु आपका विनाश नहीं है—इसे कहनेके लिए देवता लोग ‘एकायनः’ आदि श्लोक कह रहे हैं। यह प्रपञ्च ही आदिवृक्ष है। पहलेसे ही इस प्रपञ्चकी प्रवृत्ति होनेके कारण ‘आदि’ है तथा यह कालके द्वारा विनष्ट होनेके कारण ‘वृक्ष’ है। यह आदिवृक्ष समष्टि—व्यष्टि देहरूप है। ‘एकायन’ अर्थात् एकमात्र प्रकृति ही इस संसाररूपी वृक्षका आश्रय है। ‘द्विफलः’ अर्थात् सुख और दुःख इसके दो फल हैं। ‘त्रिमूलः’ अर्थात् सत्त्व, रजः और तमः—ये तीन गुण इसकी जड़ हैं। ‘चतुरसः’ अर्थात् चार वर्णधर्म अथवा आश्रमधर्म (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चतुर्वर्ग) इसके चार रस हैं। ‘पञ्चविधः’ अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इसके ज्ञान संग्रहके प्रकार हैं। ‘षडात्मा’ अर्थात् शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और पिपासा—ये छह इसके स्वभाव हैं। ‘सप्तत्वक्’ अर्थात् त्वक्, मांस, रुधिर, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातुएँ इसके वल्कल [अर्थात् छाल] हैं। ‘अष्टविटपः’ अर्थात् भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार—ये आठ इसकी शाखाएँ हैं। ‘नवाक्षः’ अर्थात् मुख आदि नौ द्वार इसके नौ छिद्र हैं। ‘दशच्छदी’—दस प्राण इसके पत्ते हैं। ‘द्विखगः’ अर्थात् जीव और ईश्वर—ये दो इस संसाररूपी वृक्षपर बैठे हुए दो पक्षी हैं॥ २७॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने इस संसार-वृक्षका स्वरूप वर्णन किया है—यह सनतान वृक्ष है। इसका स्वभाव इन विशेषणोंसे दिया है—एकायनः, द्विफलः, त्रिमूलः, चतुरस्रः, पञ्चविधः, षडात्मा, सप्तत्वक्, अष्टविटपः, नवाक्षः, दशच्छदी और द्विखगः।

ब्रह्मादि देवतागण इस प्रकार व्यष्टि-समष्टि देहात्मक संसार-वृक्षका वर्णनकर अन्तमें बोले—द्विखग अर्थात् इस व्यष्टि-समष्टि देहात्मक संसार-वृक्षपर दो पक्षी निवास करते हैं। श्रीश्रीधरस्वामिपादने कहा है—‘द्वौ जीवेश्वरौ खगौ यस्मिन् सः’ अर्थात् जीव एवं ईश्वर—ये दो पक्षी इस वृक्षपर वास करते हैं।

‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते’ (श्वेताश्वतर उपनिषद्) अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा—ये दो पक्षी परस्पर सख्यभावसे मिलित होकर एक ही शरीर-वृक्षमें निवास करते हैं।

शाखा, पत्र आदि वृक्षके अङ्ग हैं, अतएव उनके साथ वृक्षका नित्य सम्बन्ध है। परन्तु पक्षीका वृक्षके साथ ऐसा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। पक्षी वृक्षपर वास करता है। इच्छा होनेसे वह वृक्ष छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। परन्तु वृक्षकी शाखा, लतादि विच्छिन्न होनेपर वृक्ष नष्ट हो जाता है। पक्षीके वृक्षसे विच्छिन्न होनेपर वृक्ष नष्ट नहीं होता है या वृक्षके क्षीण होनेपर भी पक्षीकी कोई भी हानि नहीं होती है।

जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध भी ठीक ऐसा ही है। “जीवात्मा और परमात्मा—ये दो पक्षी देहरूपी वृक्षपर निवास करते हैं”—यह भागवतका वचन है। परन्तु श्वेताश्वतर उपनिषद्में और भी पाया जाता है—“इस शरीररूपी वृक्षपर स्थित जीवात्मा एवं परमात्मारूपी पक्षियोंमेंसे जीव-पक्षी देह-वृक्षके सुख और दुःख—इन दो फलोंको खाता है एवं देह-वृक्षमें आबद्ध हो जाता है। सुख-दुःखके मोहजालमें फँसकर वह इस वृक्षको छोड़ना नहीं चाहता है, परन्तु परमात्मारूपी पक्षी इस देहवृक्षमें रहते हुए भी इसके फलोंका आस्वादन नहीं करता है, केवलमात्र जीवके इस फल-भोगको देखता रहता है।”

इससे ऐसा लगता है कि परमात्मा परमकरुणामय हैं। जीवके हितकारी और प्रिय सखा हैं। जीवको देह-वृक्षके सुख-दुःखरूपी फल

खानेके लिए मना भी करते हैं। परन्तु जीव उनकी बात न सुनकर फल खानेके साथ-साथ मोहजालमें फँस जाता है। परमात्मा जीवात्माको प्यार करते हैं, इसलिए उसे छोड़ते नहीं, परन्तु जीवके क्रिया-कलापको देखते रहते हैं एवं कैसे उसे इस वृक्षसे छुड़ाकर ले जायेंगे तथा अपने चरणकमलरूपी कल्पवृक्षका आश्रय प्रदान करेंगे—उसीके लिए प्रयास करते हैं ॥ २७ ॥

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्माययासंवृतचेतसस्त्वां,
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥

अन्वयः—एकः (असमोर्ध्व स्वरूप अर्थात् जिनके न कोई समान है और न कोई बढ़कर है) त्वं (तुम) एव (ही) सतः (प्रवाह रूपसे नित्य वर्तमान) अस्य (इस व्यष्टि-समष्टि देहात्मक संसार-वृक्षके) प्रसूतिः (उत्पत्तिका कारण हो) त्वं सन्निधानं (समुद्रकी लहरियाँ जैसे समुद्रमें लय प्राप्त होती हैं, वैसे ही आप इस संसार-वृक्षके लयका स्थान हो) त्वं अनुग्रहश्च (तथा तुम ही इसका पालन करनेवाले हो) त्वन्मायया (तुम्हारी जगन्मोहिनी बहिरङ्गा मायाके द्वारा) असंवृतचेतसः (बुद्धि आच्छादित नहीं हुई) ये विपश्चितः (ऐसे जो तत्त्वज्ञ हैं) [वे] त्वां (तुम्हें) नाना (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विविध मूर्तियोंमें होते हुए भी उन्हें तुमसे पृथक् रूपमें) न पश्यन्ति (नहीं देखते हैं) [अपितु, तुम्हारी अचिन्त्यशक्तिके द्वारा एक ही स्वरूप विभिन्न मूर्तियोंमें प्रकाशित हुआ है—ऐसा जानते हैं] ॥ २८ ॥

अनुवाद—(हे भगवन्!) इस संसाररूप आदिवृक्षके आप ही एकमात्र उपादान कारण हैं, आप ही इसके एकमात्र लयस्थान हैं तथा आप ही इसके एकमात्र पालक हैं; किन्तु, आपकी मायाके द्वारा आवृत चित्तवाले अज्ञ व्यक्ति आपको बहुत रूपोंमें देखते हैं, पण्डित व्यक्ति ऐसा नहीं देखते। (तात्पर्य यह है कि सृष्टि आदि कार्योंमें मूलतः विष्णु ही एकमात्र स्वतन्त्र कर्ता हैं। ब्रह्मा तथा रुद्रादिका स्वतन्त्र कर्तृत्व नहीं होनेके कारण उन्हें सृष्टि आदिका कर्ता नहीं

कहा जा सकता है। अज्ञ व्यक्ति विष्णुतत्त्वको नहीं जाननेके कारण ऐसा मान लेते हैं कि ब्रह्मा और शिव सृष्टि और संहारके स्वतन्त्र कर्ता हैं) ॥ २८ ॥

सारार्थदर्शनी—त्वच्छक्तिकार्यत्वात् वृक्षोऽयं तदीय एवेत्याहुः—त्वमेव, अस्य प्रपञ्चवृक्षस्य, सतः सत्यस्य, एक एव प्रसूतिरुत्पादकः। सन्निधानं लयस्थानम्, अनुग्रहः पालकः। भावप्रधाननिर्देशेन तत्तदाधिक्यमभिप्रेतम्। ननु, भवदादयो ब्रह्माविष्णु-रुद्रा एवंभूताः प्रसिद्धाः कथमहमिति चेत्? तत्राहुः—त्वन्मायया, असंवृतचेतसः अनावृतज्ञानाः, त्वां नाना न पश्यन्ति ये विपश्चितः, ते। ब्रह्मादीनां त्वदवतारत्वादिति भावः ॥ २८ ॥

भावानुवाद—आपकी मायाशक्तिका कार्य होनेके कारण यह संसाररूप आदिवृक्ष आपका ही (कार्य) है, इसलिए देवताओंने कहा—हे प्रभो! इस 'सतः' अर्थात् तात्कालिक सत्यरूपी संसार-वृक्षकी उत्पत्तिके आप ही एकमात्र कारण हैं, आप ही इसके लयस्थान हैं तथा आप ही इसके पालनकर्ता हैं। यहाँ भावप्रधान निर्देशके द्वारा उनके आधिक्यका अभिप्रेत हुआ है। यदि प्रश्न हो कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्ताके रूपमें प्रसिद्ध हैं, तब मैं कैसे हुआ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि आपकी मायाके द्वारा 'असंवृतचेतसः' अर्थात् जिनका ज्ञान आच्छन्न नहीं है, वे ही भिन्न-भिन्न कर्ताका दर्शन नहीं करते हैं। जो विपश्चित अर्थात् तत्त्वज्ञ हैं, वे विभिन्न कर्ताका दर्शन नहीं करते, क्योंकि ब्रह्मादि आपके ही अवतार हैं, यह भाव है ॥ २८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवता संसार-वृक्षका वर्णनकर श्रीदेवकीर्गर्भमें स्थित श्रीभगवान्से कहने लगे—हे भगवन्! यह परिदृश्यमान संसार-वृक्ष आपसे ही उत्पन्न हुआ है और आपकी कृपासे पालित हो रहा है एवं प्रलय कालमें आपमें ही लीन हो जायेगा। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अनेकों मूर्तियोंमें आप ही जगत्की सृष्टि, स्थिति और लय, धर्म-स्थापन, असुर-मारण एवं भूभार-हरण आदि बहुत-सी लीलाएँ कर रहे हैं—यह तत्त्व पुराण-शास्त्रोंमें पाया जाता है।

‘एकमेवाद्वितीय’ आदि श्रुति-वचनोंसे जाना जाता है कि आप एक हैं, अर्थात् आपके समान दूसरा कोई नहीं है, अज्ञ व्यक्ति आपके इस एकत्व और बहुत्वका सामञ्जस्य न कर पानेके कारण ही बहुत प्रकारके कुसिद्धान्त बना लेते हैं।

वैष्णवोंका कहना है—विष्णु ही एकमात्र परमेश्वर हैं, दूसरा नहीं है। शैवोंका कथन है—शिव ही एकमात्र देवादिदेव हैं, दूसरा नहीं है। शाक्तोंका कहना है—शक्ति ही सबकुछ हैं, वे ही जगत्-प्रसविनी हैं। उनकी कृपाके बिना किसीका कुछ भी नहीं हो सकता है। निराकारवादियोंका कहना है—एकमात्र निराकार, निर्विशेष ब्रह्म ही सत्य है और सबकुछ कल्पनामात्र है। कृष्ण, काली, शिव, दुर्गा, विष्णु आदि देवता आधुनिक एवं ब्राह्मणोंके द्वारा कल्पित हैं। उदार मतका पोषण करनेवाले और उदार-धर्मावलम्बी प्रचारकगण सबको सन्तुष्ट करनेके लिए कृष्णका मुख, कालीका हास्य, शिवकी जटा, ब्रह्माका कमण्डलु आदि सबकुछ एकत्र मिलाकर एक अभिनव मूर्ति बनानेका प्रयास करते हैं।

इन सारे कुसिद्धान्तों एवं भ्रान्त धारणाओंको दूरकर ‘एकमेवाद्वितीय’ एवं ‘एकोऽपि सन् यो बहुधा विभाति’ आदि श्रुति-वचनोंकी यथार्थ व्याख्या एवं भगवान्के एकत्व और बहुत्वका सामञ्जस्य रखनेके लिए ब्रह्मादि देवगण कथित ‘त्वमेकमेवास्य’ आदि श्लोकको देखना उचित होगा।

‘त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिः’ अर्थात् एकमात्र श्रीभगवान् ही जगत्के मूल कारण हैं—इस श्लोकांशका प्रतिपाद्य विषय यह है कि कोई भी एक वस्तु दूसरी वस्तुकी सहायताके बिना किसी भी कार्यका कारण नहीं बन सकती है एवं कोई भी व्यक्ति किसी वस्तुकी सहायता बिना कोई कार्य नहीं कर सकता है। मिट्टीसे घट होता है; परन्तु जल, अग्नि आदिके संयोगके बिना केवलमात्र मिट्टीसे घड़ा नहीं बनता है। कुम्भकार (कुम्हार) घड़ा बनाता है, परन्तु मिट्टी, जल, दण्ड, चक्र आदिके बिना अकेला कुम्हार घड़ा नहीं बना सकता है। परन्तु भगवान्की जगत्-कारणताके विषयमें ऐसा नहीं है। वे बिना

किसीकी सहायताके स्वयं ही इस विश्व ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं। वे स्वयं ही उपादान और स्वयं ही निर्माता हैं।

अविचिन्त्य शक्तियुक्त श्रीभगवान्।

इच्छाय जगत् रूपे पाय परिणाम॥

(श्रीचै० च० आ० ७/१२४)

अर्थात् अविचिन्त्य शक्तियोंसे युक्त श्रीभगवान् अपनी इच्छासे (अपनी मायाशक्ति द्वारा) इस जगत्-रूपमें परिणत हुए हैं (शक्ति परिणामवाद)।

‘तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेय’ (छान्दोग्य उपनिषद्) अर्थात् श्रीभगवान्ने जगत्-रूपमें बहुत होनेकी इच्छा करते हुए अपनी बहिरङ्गाशक्ति मायाके प्रति ईक्षण किया इत्यादि श्रुति-वचनोंसे यह स्पष्ट होता है कि जगत्-सृष्टि करनेकी इच्छासे भगवान् अपनी शक्तिके द्वारा जगत्-रूपमें परिणत हुए।

भगवान् जगत्के मूलकारण हैं—इस सिद्धान्तमें किसीकी कोई आपत्ति न रहनेपर भी दार्शनिकोंके विभिन्न मतोंमें कुछ भिन्नता देखी जाती है।

नैयायिक मतसे श्रीभगवान्के अतिरिक्त भी आकाश, काल, दिक्, जीवात्मा और पृथ्वी, जल, तेजः एवं वायु—ये चार प्रकारके परमाणु नित्य हैं। उनके मतमें भगवान्की इच्छासे पार्थिव, जलीय आदि परमाणु परस्पर मिलित होकर जगत् रूप धारण करते हैं। जगत्-कार्यमें परमाणु आदि उपादान कारण (समवायिकारण) हैं और भगवान् निमित्त कारण हैं। इस मतमें केवल भगवान् ही निमित्त कारण हैं, ऐसा नहीं अपितु काल और जीवका अदृष्ट भी कारण है।

सांख्य-मतमें पुरुष एवं प्रकृति—ये दो नित्य वस्तुएँ हैं। उनमें पुरुष चेतन और प्रकृति जड़ है। केवल पुरुष या एकमात्र प्रकृतिसे जगत्की सृष्टि नहीं होती है। अन्धमें चलनेकी शक्ति और लँगड़ेमें देखनेकी शक्ति होती है—उन दोनोंके मिलनेपर ही उनका चलना सम्भव होता है। वैसे ही परिणामशीला जड़ाप्रकृति और चेतन-पुरुष

दोनोंके परस्पर मिलनसे ही जगत्की सृष्टि होती है, अन्यथा सम्भव नहीं है। इस मतमें पुरुषका जगत्-कर्तृत्व सम्पूर्ण रूपसे स्वीकृत नहीं हुआ है।

वैदान्तिकगण कहते हैं—‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ (छान्दोग्य) अर्थात् ब्रह्मसे जगत् पृथक् नहीं है। जगत्की सृष्टि, स्थिति और लयका अधिष्ठान एकमात्र ब्रह्म है—इस श्रुति-सिद्धान्तका अवलम्बनकर वे केवलमात्र ब्रह्मको ही जगत्का कारण मानते हैं।

अद्वैतवादी वैदान्तिकोंके मतसे एकमात्र ब्रह्मसे ही जगत्की सृष्टि होती है परन्तु ब्रह्मके अतिरिक्त सबकुछ रस्सीमें सर्पकी भाँति अज्ञान-कल्पित है। अतएव रस्सी जैसे भ्रम-कल्पित सर्पका कारण है, वैसे ही ब्रह्म भी अज्ञान-कल्पित जगत्का कारण है। ‘एकमेवाद्वितीय’, ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’—आदि श्रुति-वाक्योंको वे अपने मतके पोषक रूपमें ग्रहण करते हैं।

ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुतिसे ‘त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिः’ आदि श्लोकांशका विचार करनेपर देखा जाता है—देवताओंकी प्रार्थनासे पूर्व कथित किसी भी दार्शनिकके साथ उनके मतका मेल नहीं है। ब्रह्मादि देवतागणने देवकीके गर्भस्थित सच्चिदानन्दधन-विग्रह भगवान् श्रीकृष्णको ही जगत्का कारण कहा है। अतएव जगत्का कारण कोई निराकार ब्रह्म नहीं हो सकता, साकार सच्चिदानन्दधन-विग्रह भगवान् ही जगत्के एकमात्र कारण हैं। इसलिए देवताओंने कहा कि एकमात्र आप ही इस परिदृश्यमान जगत्के मूल कारण हैं।

भगवान् सृष्टि, स्थिति, लय एवं भूभार-हरण, असुर-मारण, धर्मस्थापन, भक्त-अनुग्रह, स्व-स्वरूप आस्वादन आदि विविध लीलाएँ प्रकट करनेके लिए विभिन्न धामोंमें अनेकों मूर्तियोंमें अवस्थित हैं।

साधक भक्त जिन मूर्तियोंकी सेवाके लिए उपासना करते हैं, भगवान् भी उन मूर्तियोंसे उनकी मनोवासना पूर्ण करते हैं। भगवान्की बहुत-सी मूर्तियाँ स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है, परन्तु एकत्वका लोप करना ही दोष है। वैसे ही केवल एकत्वको स्वीकारकर बहुत-सी मूर्तियोंको अस्वीकार करनेपर महा अपराध होता है एवं पूर्ण रूपसे भगवत्-तत्त्वका आस्वादन नहीं हो सकता है।

एइ छय-रूपे हय अनन्त विभेद।

अनन्तरूपे एकरूपे, नाहि किछु भेद॥

(श्रीचै० च० आ० २/१००)

अर्थात् स्वांश आदि छह रूपोंमें फिर अनन्त प्रकारके विभेद होते हैं। इस प्रकार अनन्त रूप प्रकाशित करनेपर भी वे सभी एकरूप हैं, उनमें कोई भेद नहीं है।

‘मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति’ अर्थात् जो व्यक्ति भेद-दर्शी होता है, वह पुनः-पुनः मृत्युका ग्रास बनता है। इस श्रुति-वचनमें एकत्वको स्वीकार न कर केवलमात्र बहुत्वदर्शी होनेसे दोषका वर्णन हुआ है।

एकत्ववादिगण जगत्के उदाहरणसे जगन्नाथको समझनेका प्रयास कर सच्चिदानन्दधन-विग्रहको जान नहीं पाते हैं। वे मायाके वैभव समुद्रमें डूबकर चिद्-विभूतिको खो देते हैं। इसलिए उनके सिद्धान्तमें भगवान् निर्विशेष और निराकार हैं। इधर बहुत्ववादिगण भगवान्की बहु मूर्तियोंमें परस्पर भेद वर्णनकर एककी निन्दा तथा दूसरेकी वन्दना करते हुए महापापरूपी कीचड़में गिरते हैं।

एक ही भगवान् अपनी अचिन्त्यशक्तिके द्वारा एक ही श्रीमूर्तिको अनेकों रूपोंमें प्रकाशितकर बहुत-सी लीलाएँ करते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, विष्णु, सदाशिव आदि अनन्त मूर्तियोंमें एक ही भगवान् बहुत-सी लीलाएँ कर रहे हैं। इसलिए ब्रह्मादि देवताओंने कहा—‘तन्मायया संवृतचेतसः त्वां नाना पश्यन्ति’ तथा ‘तन्मायया असंवृतचेतसः त्वां नाना पश्यन्ति’—हे भगवन्! आपकी मायाके द्वारा जिनकी बुद्धि समाच्छन्न है, वे ही आपको अनेकों रूपोंमें देखते हैं एवं जिनकी बुद्धि माया द्वारा आच्छादित नहीं है, वे भी आपको बहुत मूर्तियोंमें देखते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि मायामोहित व्यक्ति भगवान्के एकत्वको न समझकर केवलमात्र बहुत्वको देखते हैं और मायामुक्त भक्त एक ही भगवान्की बहुत-सी मूर्तियोंको देखते हैं। ब्रह्मा आदि देवगण अन्तमें कह रहे हैं— ‘न विपश्चिता य’ तत्त्वज्ञ व्यक्ति ऐसा

नहीं देखते अर्थात् वे एकत्व और बहुत्वका एकत्र समावेशकर आपके स्वरूपानन्दका आस्वादन करते हैं।

ब्रह्मादि देवताओंने श्रीदेवकीके गर्भस्थित भगवान्की स्तुति करते हुए इस श्लोकमें यह तत्त्व प्रकाश किया कि—मूर्ख जीव चाहे कुछ भी कहें, उनके प्रलाप-वचनोंसे कुछ भी नहीं बिगड़ता, परन्तु आपकी कृपासे हमें यह समझमें आ रहा है कि आप वात्सल्यप्रेमरसका आस्वादन करनेके लिए देवकीके गर्भमें उपस्थित हुए हैं तथा आप ही विष्णुरूपमें जगत्का पालन कर रहे हैं तथा रुद्ररूपमें जगत्का संहार कर रहे हैं। आप ही मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें अनन्त लीलाएँ कर रहे हैं, आप ही अन्तर्यामीरूपमें अनन्त जीवोंके हृदयमें अवस्थान कर रहे हैं, आप ही ब्रह्मरूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं, आप ही भगवान् रूपमें भक्तमनोरथ-पूरणकारी हैं एवं आप ही सबके मूल हैं। जो आपको जानता है, वह सभीको जानता है और जो आपको नहीं जानता है, वह किसीको भी नहीं जानता है। 'गोपीजनवल्लभज्ञानेन तज्ज्ञातं भवति' (गोपाल-तापनी श्रुति—५) अर्थात् गोपीजनवल्लभको जाननेसे सबकुछ जानना हो जाता है ॥ २७-२८ ॥

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा,
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि,
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—अवबोध आत्मा (सबके मूल-स्वरूप आप ही) चराचरस्य लोकस्य (स्थावर-जङ्गम आदि समस्त जीवोंका) क्षेमाय (पालन करनेके लिए) सतां (धर्म-मर्यादा रक्षाकारी सन्तोंके लिए) सुखावहानि (सुखदायी) [तथा] खलानां (धर्म-मर्यादा लंघनकारी दुष्टोंके लिए) अभद्रानि (दुःखदायी) सत्त्वोपपन्नानि (श्रुति पुराणादि वाक्य-युक्तिसिद्ध सच्चिदानन्दघन) रूपाणि (मत्स्य, कूर्म आदि विविध रूपोंको) मुहुः (जब जैसा प्रयोजन होता है, वैसा ही प्रति युग-युगमें) बिभर्षि (जगत्की सृष्टि और पालन आदिके लिए प्रकट करते हैं) ॥ २९ ॥

अनुवाद—एकमात्र ज्ञानस्वरूप आप स्थावर और जङ्गम आदि जीवोंके पालनके लिए धार्मिक लोगोंके लिए सुखदायक और दुष्टोंके विनाशक विशुद्धसत्त्वमय मत्स्य आदि रूपोंको पुनः-पुनः प्रकटित किया करते हैं ॥ २९ ॥

सारार्थदर्शिनी—अन्येऽपि मत्स्यकूर्मादयो बहवस्त्वदवताराः सन्तीत्याहुः— बिभर्षीति। अवबोधः चिदघनरूपः। सत्त्वोपपन्नानि शुद्धसत्त्वस्वरूपाणि, खलानाम् अभद्रकराणि ॥ २९ ॥

भावानुवाद—हे भगवन्! आपके मत्स्य, कूर्मादि बहुत-से अन्य अवतार भी हैं, इसीको 'बिभर्षि' आदि श्लोकमें कह रहे हैं। 'अवबोधः' अर्थात् आप चिदघन-स्वरूप हैं। 'सत्त्वोपपन्नानि' अर्थात् विशुद्धसत्त्व स्वरूपको। 'खलानाम्' अर्थात् दुष्टोंके लिए दुःखदायी ॥ २९ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—देवताओंने भगवान्की स्तुतिके प्रसङ्गमें कहा कि वे अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके मूलकारण तथा सभी प्रकारसे सत्यस्वरूप हैं। इसमें सर्वकारण-कारण भगवान्का जन्म, असीमकी देवकीगर्भमें स्थिति, स्वप्रकाशका अप्रकाशकी स्थितिमें रहना, पिता-माताके द्वारा प्रकाश होना इत्यादि बहिर्मुख जनोचित बहुत प्रकारके सन्देह उपस्थित होते हैं। इसलिए ब्रह्मादि देवगण ऐसे बहिर्मुख-जनोंका सन्देह दूर करनेके लिए कह रहे हैं—'अवबोध आत्मा त्वं रूपाणि बिभर्षि' अर्थात् आप सबके मूल-स्वरूप एवं स्वप्रकाश-स्वरूप हैं। जगत्-कल्याणके लिए आप नित्यसिद्ध सच्चिदानन्दघन श्रीविग्रह-स्वरूपमें प्रकाशित होते हैं।

इसलिए ब्रह्मादि देवताओंका कहना है कि श्रीभगवान्का देवकीगर्भमें आगमन या देवकीनन्दनके रूपमें आत्म-प्रकाश करनेसे उनकी सर्वेश्वरता, स्वप्रकाशकता आदिकी कुछ भी हानि नहीं होती है, क्योंकि वे देवकीनन्दनके रूपमें सर्वेश्वर और स्वप्रकाश ही हैं।

“सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञान स्वरूप और अनन्त हैं” आदि श्रुति-वचनोंमें, “वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयं अर्थात् तत्त्वविद् गण उस अद्वयज्ञान परतत्त्वको ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहते हैं।” इत्यादि भागवत (१/२/११) वाक्य एवं “अद्वयज्ञान

तत्त्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन अर्थात् अद्वयज्ञान परतत्त्व व्रजके व्रजेन्द्रनन्दन हैं” इत्यादि श्रीचैतन्यचरितामृत (मध्य० २०/१५२) के वचनोंसे जाना जाता है कि भगवान् अद्वयज्ञान-स्वरूप हैं।

श्रीभगवान्‌के स्वरूपभूत ज्ञान पदार्थकी समालोचना करनेपर देखा जाता है कि भगवान् प्राकृत इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानके द्वारा अनुभूत घट-पट आदिकी भाँति प्राकृत पदार्थ नहीं हैं। भगवान्‌का अप्राकृत ज्ञान—स्वप्रकाशकमात्र है। इसलिए भगवान् ज्ञान-स्वरूप अर्थात् स्वप्रकाश-स्वरूप हैं।

संसारकी कोई भी वस्तु स्वप्रकाश नहीं है; क्योंकि वे समस्त वस्तुएँ किसी कारणवश प्रकाशित होती हैं। पार्थिव वस्तुका कोई व्यक्ति या वस्तु प्रकाशक होता है। परन्तु भगवान्‌का कोई प्रकाशक नहीं है। वे स्वयं ही प्रकाशित होते हैं, इसलिए वे स्वप्रकाश हैं। भगवान्‌के स्वप्रकाश-स्वरूपमें कोई शक्ति अवश्य स्वीकार करनी होती है। शास्त्रकारोंने इस शक्तिको भगवान्‌की स्वप्रकाशिका शक्ति या विशुद्ध-सत्त्व कहा है।

श्रीभगवत्-प्रकाशक सत्त्वका नाम विशुद्ध-सत्त्व है। वही उनकी स्वप्रकाशिका शक्ति है, वह प्राकृत सत्त्वकी भाँति नहीं है।

श्रीमद्भागवत (४/३/२३) में श्रीशिवजीने पार्वतीको कहा है—“सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं, यदीयते तत्र पुमान् अपावृतः अर्थात् विशुद्धसत्त्व ही शास्त्रोंमें वसुदेवके नामसे उल्लिखित हुआ है, उसमें ही भगवान्‌का प्रकाश होता है।” भगवान्‌को जगत्‌में प्रकाश करनेके लिए उनकी स्वप्रकाशिका-शक्ति (विशुद्धसत्त्व) ही पिता-माताके रूपमें अवतीर्ण होते हैं।

पिता, माता, स्थान, गृह, शय्यासन आर।

ए सब कृष्णेर शुद्ध सत्त्वेर विकार॥

इस श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि० ४/६५) के वचनसे स्पष्ट होता है कि श्रीभगवान्‌के पिता-माता आदि उनके विशुद्धसत्त्वकी घनीभूत मूर्ति हैं।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोककी टीकामें श्रीश्रीधरस्वामिपादने कहा है—‘अवबोधैकस्वरूप आत्मा त्वमेव रूपाणि धत्से, न तु त्वं कस्यापि

पुत्र इत्यर्थः।' अर्थात् आप अवबोध-स्वरूप अर्थात् ज्ञान-स्वरूप हैं, आप ही आत्मा हैं, आप ही जगत्को कृतार्थ करनेके लिए स्वयं-प्रकाश होते हैं। आप किसीके भी पुत्र नहीं हैं।

‘सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः’ अर्थात् श्रीभगवान्की सभी श्रीमूर्तियाँ नित्य हैं—इस वरहापुराणके वचनसे तथा ‘ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः’ अर्थात् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं एवं उनका विग्रह सच्चिदानन्दमय है—इस ब्रह्मसंहिताके वचनसे स्पष्ट होता है कि श्रीभगवान्का श्रीविग्रह पार्थिव-वस्तुकी भाँति नहीं है, वह नित्यसिद्ध है। इसी स्वरूपमें ही वे स्वयं प्रकाशित होते हैं ॥ २९ ॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि,
समाधिनावेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन,
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—अम्बुजाक्ष (हे कमलनयन!) एके (मुख्यतः विवेकी व्यक्तिगण) अखिलसत्त्वधाम्नि (शुद्धसत्त्व-विग्रह) त्वयि (आपमें) समाधिना (एकाग्रतासे) आवेशितचेतसा (समर्पित-चित्त होकर) महत्कृतेन (गुरुकृपालब्ध) त्वत्पादपोतेन (तुम्हारे चरणकमलोंकी सेवारूपी नावके द्वारा) भवाब्धि (संसार-समुद्रको) गोवत्सपदं कुर्वन्ति (बछड़ेके खुर जैसा तुच्छ मानकर पार हो जाते हैं) ॥ ३० ॥

अनुवाद—हे कमलनयन! कुछ विरले बुद्धिमान लोग ही विशुद्धसत्त्वगुणके आश्रय आपमें समाधिके द्वारा अपना चित्त निविष्ट किया करते हैं। उसके द्वारा वे महत् व्यक्तियोंके आदरणीय आपके चरणकमलरूपी नौकाका अवलम्बनकर भव-सागरको बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके समान मानते हैं अर्थात् उसे अनायास ही पार कर जाते हैं ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—क्षेमायेत्युक्तम्, तदेव क्षेमं वास्तवमभिव्यञ्जयन्ति—त्वयीति। खिलं निकृष्टं, सत्त्वं गुणात्मकम्, अखिलसत्त्वं विशुद्धसत्त्वं निर्गुणं धाम स्वरूपं यस्य तस्मिन्। अमलसत्त्वेति च पाठः। समाधिना पृथिव्यामवतीर्णस्य तव

रूपगुणलीलादि ध्यानातिशयेन त्वय्यावेशितं यच्चेतः, तेन हेतुना प्राप्तेन त्वत्पादपोतेन, महत्कृतेन महद्भिर्भवाब्धेः पोततुल्यीकृतेनेत्यर्थः। गोवत्सपदं कुर्वन्ति भवाब्धेरस्तित्वमपि न जानन्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥

भावानुवाद—पिछले श्लोकमें “भगवान् श्रीहरि समस्त जगत्के मङ्गलके लिए अवतरित होते हैं।”—ऐसा कहा गया है। उसी मङ्गलको ‘त्वयि’ आदि प्रस्तुत श्लोकमें वास्तविक रूपमें प्रकाशित कर रहे हैं। ‘खिल’ अर्थात् निकृष्ट और ‘सत्त्व’ अर्थात् गुणात्मक, अतएव इसके ठीक विपरीत ‘अखिलसत्त्वं’ अर्थात् विशुद्धसत्त्व—निर्गुण ‘धाम्नि’ अर्थात् धाम—स्वरूप आपमें। इसके स्थानपर ‘अमलसत्त्व’—ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध है। ‘समाधिना’ अर्थात् पृथ्वीपर आविर्भूत आपके रूप, गुण और लीला आदिके अतिशय रूपमें ध्यान करनेसे आपमें ‘आवेशितचेतसा’ अर्थात् आविष्ट चित्तवशतः प्राप्त हुए आपके चरणकमलरूपी नौकासे। ‘महत्कृतेन’ अर्थात् महत् व्यक्तियोंके द्वारा भव—सागरकी नौका—तुल्य स्थिर किया गया जो श्रीचरणकमल हैं, इसका—यह अर्थ है। ‘गोवत्सपदं कुर्वन्ति’ अर्थात् भव—सागरका अस्तित्व तक भी नहीं जान पाते हैं, यह अर्थ है ॥ ३० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—भगवान् जब कृपापूर्वक अपनी नित्यसिद्ध श्रीमूर्ति जगत्में प्रकाश करते हैं, तब उनका साक्षात् दर्शनकर जगत्के जीव कृतार्थ होते हैं। इससे सज्जनोंका आनन्द-वर्द्धन और दुर्जनोंका दमन होता है। ऐसे समयमें जो भाग्यवान जीव जन्म ग्रहण करते हैं, वे भगवान्का साक्षात् दर्शनकर कृतार्थ होते हैं एवं असुरगण भी मोक्ष लाभ करते हैं। परन्तु दूसरे समयमें भाग्यवान जीव ही उनका ध्यानकर कृतार्थ होते हैं। इसलिए यहाँ इस श्लोकसे पहलेवाले श्लोकमें साक्षात् दर्शन और दूसरे श्लोकमें ध्यानके द्वारा जीव कृतार्थ होते हैं, यह कहा गया है।

ब्रह्मादि देवताओंने इस श्लोकमें भगवान्को ‘अम्बुजाक्ष’ कहकर सम्बोधन किया। इसका तात्पर्य यह है कि प्रस्फुटित कमलदल जैसे सन्तापको दूर करता है, वैसे ही भगवान्की कृपादृष्टि भी जीवोंके अशेष जन्मोंके सञ्चित सन्तापको दूर करनेवाली है। भगवान्की

कृपादृष्टिरूपी यह कमल शराणागतिरूप उदयाचलमें प्रेमसूर्यके उदय होनेपर ही विकसित होता है। जो लोग श्रीगोविन्दके चरणोंमें शरणागत नहीं हैं, वे ज्ञान-योग आदि साधनोंके द्वारा सामान्य रूपसे भगवान्‌के कुछ आंशिक स्वरूपकी उपलब्धि भले ही करे लें, परन्तु उनकी कृपादृष्टिका भाजन नहीं बन सकते।

यह भव-समुद्र अपार, असीम और अनन्त है। इसके एक ओर मायामोह तथा दूसरी ओर सच्चिदानन्द है। मायामोहके जालमें फँसकर कामना वासनाके कोड़ेकी मारसे जर्जरित होकर कोई विरला भाग्यवान् व्यक्ति ही इस भव-समुद्रको पारकर सच्चिदानन्दके सम्मुख जानेकी इच्छा करता है। ('मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये' (श्रीगी० ७/३)) इस भव-समुद्रको पार करनेकी इच्छासे प्रायः सभी ज्ञान, योग, कर्म, आदिका सहारा लेकर इसे पार करना चाहते हैं, परन्तु क्या वे इस अगाध और असीम समुद्रको पार कर सकते हैं? क्या कुत्तेकी पूँछ पकड़कर कोई समुद्रको पार कर सकता है? कभी नहीं। परन्तु जो बुद्धिमान हैं, वे तैरनेकी बात न सोचकर किसी दृढ़ जहाजकी खोज करते हैं। अवश्य ऐसे बुद्धिमानोंकी संख्या अतिविरल है।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥

(श्रीमद्भा० ६/१४/५)

कोटि ज्ञानी मध्ये हय एकजन 'मुक्त' ।

कोटि मुक्तमध्ये 'सुदुर्लभ' कृष्ण भक्त ॥

(श्रीचै० च० मध्य० १९/१४८)

अर्थात् करोड़ों ज्ञानियोंमेंसे एक मुक्त होता है और करोड़ों मुक्तोंमें एक कृष्णभक्त सुदुर्लभ होता है।

इस संसार-समुद्रको पार करनेके लिए एकमात्र श्रीगोविन्दके चरणकमल ही दृढ़ जहाजके समान आश्रय है, जो इस जहाजका सहारा लेता है वही यथार्थ बुद्धिमान है।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(श्रीमद्भा० २/३/१०)

अर्थात् जो उदार-बुद्धिवाले व्यक्ति हैं—वे चाहे स्वसुखरूपी समस्त कामनाओंसे युक्त हों, निष्काम अर्थात् अप्राकृत-बुद्धिसे युक्त एकान्त भक्त हों अथवा मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले हों—उन सबको तो शुद्ध एवं तीव्र (ऐकान्तिक) भक्तियोगके द्वारा परम पुरुष भगवान् श्रीविष्णुका भजन करना चाहिये।

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकामी 'सुबुद्धि' यदि हय।

गाढ़ भक्तियोगे तबे कृष्णोरे भजय॥

(श्रीचै० च० मध्य० २२/३५)

अर्थात् जब भुक्ति, मुक्ति तथा सिद्धिकामीकी सुबुद्धि होती है, तब वह गाढ़ भक्तियोगसे श्रीकृष्णका भजन करता है।

संसार-समुद्रको पार करनेके लिए दूसरे सभी प्रकारके प्रयासोंको छोड़कर जिस व्यक्तिने श्रीगोविन्दचरणरूपी जहाजका आश्रय ग्रहण किया है, वही सभी साधकोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

श्रीश्रीधरस्वामिपादने भी 'एके' शब्दका 'मुख्य' अर्थ लिया है।

कोई-कोई ज्ञानी ऐसा चाहते हैं कि हम ज्ञान-साधनासे मुक्त होंगे और योगी चाहते हैं कि हम योग-साधनासे सिद्ध होंगे। परन्तु, इन अभिमानोंको छोड़कर जो लोग केवल 'कृष्ण तोमार होऊ यदि बले एकबार। मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार॥' (श्रीचै० च० मध्य० २२/३३) अर्थात् यदि कोई एकबार भी हे कृष्ण! मैं आपका हूँ, ऐसा कहता है, तो कृष्ण उसे माया-बन्धनसे मुक्त कर देते हैं। उनके लिए यह संसार-समुद्र 'गोष्पद' अर्थात् बछड़ेके खुरसे बने क्षुद्र गड्ढेके समान बन जाता है। उस गड्ढेको पार करनेमें जैसे कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, वैसे ही भक्तोंके लिए यह संसार भी अति क्षुद्र बन जाता है और वे इसे अति सहज ही पार कर जाते हैं। इसलिए वे ही यथार्थ भाग्यवान् पुरुष हैं॥ ३० ॥

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्,
 भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
 भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते,
 निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—द्युमन् (हे स्वप्रकाश!) भवान् सदनुग्रहः (आप भक्तोंके प्रति अनुग्रहकारी हैं) [अतः आपकी कृपासे ही] अदभ्रसौहृदाः (विषय आसक्त दीन-हीन जनोंके प्रति कृपा करनेके लिए) ते (आपके चरणाश्रित भक्तजन) सुदुस्तरं (दुष्पार) भीमं (भयानक) भवार्णवं (भव-समुद्रको) स्वयं समुत्तीर्य (आपके चरणकमलोंके आश्रयसे स्वयं पार कर) भवत्पदाम्भोरुहनावम् (आपके चरणकमलरूपी नावको) अत्र (इसी जगत्में) निधाय याताः (जगत्के जीवोंके तरनेके लिए सत्सम्प्रदायके रूपमें रख कर गये हैं) ॥ ३१ ॥

अनुवाद—हे स्वप्रकाश! आप भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं। आपके चरणाश्रित महाजनगण इस भीषण सुदुस्तर भव-सागरको स्वयं पारकर आपके चरणकमलरूपी नौकाको इसी जगत्में (गुरुपरम्परा या श्रौतपन्थाके रूपमें) रख गये हैं, क्योंकि वे सभी प्राणियोंके प्रति अतिशय प्रीतियुक्त हैं ॥ ३१ ॥

सारार्थदर्शिनी—किञ्च, त्वत्पादपोताश्रयणमात्रेणैव भवाब्धौ गोष्पदतुल्ये जाते वैष्णवा भवाब्धिम् अजानन्त एव पद्भ्यामेवोल्लङ्घयन्तीत्याहुः—स्वयमिति। तरणसाधननिरपेक्षमेव, अन्यैः सुदुस्तरमपि भीममपि समुत्तीर्या याताः। द्युमन् हे सूर्य! इति त्वं येषामन्तःकरणे नोदेषि, तेषामेव तमः पुञ्जरूपः संसारोऽर्णवतुल्यो भीमो दुस्तरश्च भवति। प्रेमभक्त्युदयपर्वते त्वयुदिते तु समस्त-तमसि स्वयमेव नष्टे सति स्वयमेव संसारतरणं भवेत्। अतो भवत्पदाम्भोरुहनावमत्रैव कूले, निधायैव भक्तिमार्गसम्प्रदायं प्रवर्त्यैव, यातास्ते यथान्येष्वेवं तरेयुरित्यभिप्रायेणेत्युत्प्रेक्षते इति भावः। अत्र संसारस्य सामस्त्येन नष्टत्वेपि 'वयं संसारिण एव' इति भक्तानां मिथ्याभिमान एव गोवत्सपदाकारः संसारः। यथा च गोवत्सपदजलं पावनं श्लाघनीयञ्च भवेत्, तथैव तेषां सोऽभिमानोऽप्यन्येषां भक्तमानिनामभिमानरोगहरोऽभिज्ञजनैः श्लाघनीयश्च भवतीति भावः। यतः सत्सु वैष्णवेष्वेव, अनुग्रह एतादृशो, नान्येषु यस्य सः ॥ ३१ ॥

भावानुवाद—आपके चरणकमलरूपी नौकाका आश्रय करने-मात्रसे ही इस संसार-समुद्रके बछड़ेके खुरसे बने क्षुद्र गड्ढेके समान हो जानेपर वैष्णवजन इस भव-सागरको अनायास ही अपने चरणोंसे ही लांघ लेते हैं, इसीलिए 'स्वयम्' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'स्वयम्' अर्थात् तरनेवाले साधनके बिना ही। जो दूसरोंके लिए अतिभयानक तथा सुदुस्तर है, ऐसे भव-सागरको वे पारकर चले जाते हैं।

'द्युमन्'—हे सूर्य! इस प्रकार कहनेका भाव यह है कि—आप जिनके अन्तःकरणमें उदित नहीं होते हैं, उनके लिए ही घन अन्धकाररूप संसार समुद्र-तुल्य, भयानक और दुस्तर होता है। परन्तु, प्रेमभक्तिरूप उदयाचलपर आपके उदित होनेसे समस्त अन्धकार अपने-आप दूर हो जाता है और स्वयं ही संसारसे तरना हो जाता है। अतएव वे आपके श्रीचरणकमलरूपी उस नौकाको इसी किनारेमें छोड़कर ही जाते हैं अर्थात् वे जगत्में भक्तिमार्गके सम्प्रदायका प्रवर्तन करके ही जाते हैं। वे इस अभिप्रायसे ऐसा करते हैं, ताकि अन्य लोग भी इसी प्रकार भव-सागरसे पार हो जाएँ।

यहाँ संसारके सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो जानेपर भी 'हम संसारी ही हैं'—भक्तोंका ऐसा मिथ्याभिमान ही 'गोवत्सपद'—तुल्य संसार है। जिस प्रकार गोवत्सका पदजल पवित्र और प्रशंसनीय होता है, उसी प्रकार उन भक्तोंका वैसा अभिमान भी अन्यान्य भक्तब्रुवोंके (भक्त अभिमानियोंके) अभिमानरूपी रोगको दूर करनेवाला होता है तथा विज्ञ लोगोंके लिए प्रशंसनीय होता है—यह भाव है, क्योंकि 'सत्' अर्थात् वैष्णवजनोंके प्रति ही आपका ऐसा अनुग्रह प्रकाशित होता है, दूसरोंके प्रति नहीं ॥ ३१ ॥

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-

स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः,

पतन्त्यथोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—अरविन्दाक्ष (हे कमलनयन अर्थात् दृष्टिमात्रसे सबके सन्तापको दूर करनेवाले!) अन्ये (तुम्हारे चरणाश्रित भक्तजनोंके

अलावा अन्य) ये त्वयि (जो तुम्हारे प्रति) अस्त भावात् (भक्तिशून्य होनेके कारण या श्रद्धारहित होनेके कारण) अविशुद्धबुद्धयः (मलिनचित्त) विमुक्तमानिनः ('हम विमुक्त हैं'—ऐसा अभिमान करनेवाले शुष्कज्ञान-परायण) अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः (कृष्ण और कृष्णभक्तोंके प्रति आदर-रहित हैं) [वे] कृच्छ्रेण (बहुत जन्मोंकी तपस्याके द्वारा) परं पदं (जीवन्मुक्तिपद अथवा मोक्ष प्राप्तिके उपायस्वरूप सत्कुल, तपस्या, पाण्डित्य आदिके द्वारा उच्च पदको) आरुह्य (प्राप्त होकर) [भी] ततः अधः पतन्ति (वहाँसे अधःपतित हो जाते हैं) ॥ ३२ ॥

अनुवाद—यदि कोई कहे कि भगवत्-चरणाश्रयकी क्या आवश्यकता है? शुष्कज्ञानके द्वारा ही तो भव-सागरको पार किया जा सकता है! इसके उत्तरमें कहते हैं—हे कमललोचन! आपके भक्तोंके अतिरिक्त अन्य जो व्यक्ति स्वयंको 'मुक्त' मानकर अभिमान करते हैं, आपके प्रति उनकी प्रीति न रहनेके कारण वे मलिनचित्तवाले हैं। वे व्यक्ति अतिशय कष्ट उठाकर किसी प्रकार मोक्ष सन्निहित प्रदेशमें आरोहण करनेपर भी आपके चरणकमलोंका अनादर करनेके कारण वहाँसे गिर जाते हैं ॥ ३२ ॥

सारार्थदर्शनी—वैष्णवानामेव भवार्णवो गोष्पदीभवति, ये तु तव विशुद्ध-सत्त्वमयवपुषि मायाभाववन्तो ज्ञानिनः, तेषान्तु सुदुस्तरो भीम एव। 'कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशः षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षन्ति। तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोदुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥' (श्रीमद्भा० ४/२२/४०) इति यथा सनत्कुमारोक्तम्, 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्' (श्रीगी० १२/५) इति यथा भगवतापि, 'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्' (श्रीमद्भा० १/५/१२) इति यथा नारदेनापि, तथैव देवा अप्याहुः—ये इति। अन्ये उक्तलक्षणेभ्यस्त्वदनुगृहीतेभ्यः सद्भ्यो भिन्नाः। अरविन्दाक्षेति, त्वत्कृपावलोकनमाधुर्याननुभविन इति भावः। विमुक्तमानिन इति, त्वद्भक्ता यथा संसारोत्तीर्णा अपि संसारिमानिनः, तथैवैते संसारमध्यपतिता अपि विमुक्तमानिनः। तत्र हेतुः त्वय्यरविन्दाक्षे मधुराकारे, अस्तभावात् मायाशाबल्यमननेन प्रीत्यभावात्; 'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।' (श्रीगी० ९/११) इति भगवदुक्तेर्मौढ्यात्। अविशुद्धज्ञानाः कामादिनिर्जयमूलक अन्तःकरणशुद्धिमत्वादुत्पन्नमपि ज्ञानं न विशुद्धमित्यर्थः। तदपि कृच्छ्रेण तपःशमदमादिकृच्छ्रजनितेन विज्ञानेन, परं पदं जीवन्मुक्तदशामारुह्य। एतेषां गुणीभूतभक्त्या युक्तत्वं ज्ञेयं, तां विना परमपदारोहासम्भवात्; 'श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति' (श्रीमद्भा०

१०/१४/४) इत्यादेः। तां विना ज्ञानस्य मरीचिकाजलायमानत्वात्, ततोऽधः पतन्ति। ननु, भक्तिसत्त्वे कथमधः पतन्ति? तत्राहुः—न आदृतौ मायिकत्वबुद्ध्या युष्मदङ्घ्री यैस्ते। अयमर्थः—ज्ञानिनां ज्ञानाङ्गभूता भक्तिर्द्विविधा—भक्तिं विना ज्ञानं न सिद्ध्येदिति शास्त्राज्ञयैव किञ्चिन्मात्री क्रियमाणा भजनीयभगद्विग्रहादिषु मायिकबुद्ध्या मायाबुद्ध्या वा अनादरवती अनादरहिता च। आद्यया, तेषां तपःशमदमादिमतां बहुकालेनाविद्या निरसनीं विद्यामुत्पाद्य ब्रह्मभूतत्वदशामुत्पाद्य च सहसैवान्तर्द्ध्यते। ते विमुक्तमानिन एवोच्यन्ते, न तु वस्तुतो जीवन्मुक्ताः; ‘भक्त्याहमेकया ग्राह्य’ (श्रीमद्भा० ११/१४/२१) इति भगवदुक्तेः। भक्तिं विना तत्पदार्थस्यापरोक्षानुभवालाभात्, भगवदपराधसम्भवाच्च, दग्धानामपि कर्मणां पुनः प्ररोहादधः पतन्ति च। यदुक्तं रथयात्राप्रसङ्गे विष्णुभक्तिचन्द्रोदयधृतं पुराणवचनम्—‘नानुब्रजति यो मोहाद्व्रजन्तं परमेश्वरम्। ज्ञानाग्निदग्धकर्मापि स भवेद्ब्रह्मराक्षसः॥’ इति। वासनाभाष्योत्थापितं परिशिष्टवचनं च—‘जीवन्मुक्ता अपि पुनर्बन्धनं यान्ति कर्मभिः। यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥’ इति। द्वितीयया तु, तेषां ब्रह्मभूतत्वदशामुत्पाद्य अविद्या-विद्ययोरुपरामेऽप्यनुपरमन्त्या तत्पदार्थसाक्षात्कारमनु-भाव्यमाना जीवन्मुक्ताः सिद्धा एव स्युः। यदुक्तम्—‘ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परम्॥ भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥’ (श्रीगी० १८/५४-५५) इति॥ ३२॥

भावानुवाद—वैष्णवोंके लिए ही भव-सागर बछड़ेके खुरसे बने हुए क्षुद्र गड्डेके समान बन जाता है, परन्तु जो आपके विशुद्धसत्त्वमय श्रीविग्रहमें मायिक बुद्धि (प्राकृत बुद्धि) रखनेवाले ज्ञानी हैं, उनके लिए यह भवसागर दुस्तर और भयानक ही है। जैसे पृथु महाराजके प्रति सनत्कुमारकी उक्ति है (श्रीमद्भा० ४/२२/४०)—“यह संसार-समुद्र मन एवं इन्द्रियाँ आदिरूपी मगरमच्छोंसे भरा पड़ा है। जो इस भव-सागरको नौका-सदृश भगवान्‌के आश्रयके बिना ही योगादि दुष्कर साधनोंके द्वारा पार करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें अत्यन्त क्लेश उठाने पड़ते हैं। अतः हे राजन्! आप भी उन भजनीय भगवान्‌के चरणकमलोंको नौका बनाकर इन इन्द्रियाँ आदि विपत्तियोंसे भरे हुए सुदुस्तर भव-सागरको पार करें।” जैसे श्रीभगवान्‌ने भी कहा है (श्रीगी० १२/५)—“निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपमें आसक्तचित्त व्यक्तियोंको अधिकतर क्लेश होता है, क्योंकि देहाभिमनियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक निष्ठा दुःखपूर्वक प्राप्त होती है।” जैसे देवर्षि नारदने भी कहा है

(श्रीमद्भा० १/५/१२)—“समस्त प्रकारकी कर्म-वासनाओंसे रहित होनेपर भी मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन—निर्मल ब्रह्मज्ञान यदि भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे रहित हो, तो वह भी शोभा नहीं देता। तो फिर जो साधन और सिद्धि—दोनों ही अवस्थाओंमें सदा ही अमङ्गलस्वरूप तथा दुःखप्रद हैं, ऐसे काम्य कर्म और यहाँ तक कि निष्काम कर्म यदि भगवान्को अर्पण नहीं किये गये हों, तो वे कर्म कैसे सुशोभित हो सकते हैं? इसका कारण है कि वे भगवत्-सेवा और सत्त्व-शुद्धिके भावसे रहित होते हैं।” वैसे ही यहाँ ब्रह्मादि देवता भी ‘ये’ इत्यादि श्लोक कह रहे हैं। ‘ये अन्ये’ अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त आपके अनुगृहीत भक्तोंके अतिरिक्त। ‘अरविन्दाक्ष’ अर्थात् हे कमलनयन! कहनेका यह भाव है कि आपकी कृपा-कटाक्षका माधुर्य जिन्होंने अनुभव नहीं किया है। ‘विमुक्तमानिनः’—आपके भक्तजन जिस प्रकार संसारसे पार होकर भी स्वयंको संसारी मानते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीगण संसारमें पतित होनेपर भी स्वयंको विमुक्त मानकर अभिमान करते हैं। इसका कारण है—‘त्वयि अस्त भावात्’ अर्थात् पद्मलोचन आपके मधुराकार श्रीविग्रहमें मायिक बुद्धि रखनेसे प्रीति भावनाके अभावके कारण। जैसे भगवान्ने श्रीगीता (९/११) में कहा है—“मूर्ख व्यक्ति मनुष्याकृति-श्रीविग्रह-आश्रित मेरे परमभावको न जानकर मायिक मनुष्य-बुद्धिसे भूतसमुदायके महान् ईश्वर मेरे प्रति अवज्ञा करते हैं।” इस प्रकारकी ‘मूढ़ता’ के कारण विमुक्त होनेका अभिमान करते हैं। ‘अविशुद्धज्ञानाः’ अर्थात् काम, क्रोध आदिको जीतनेसे शुद्ध हुए अन्तःकरणवाले होनेपर भी उनका ज्ञान विशुद्ध नहीं है। उस पर भी ‘कृच्छेण’—तपः, शम, दम आदि अति कठोर साधनोंसे उत्पन्न विज्ञानसे ‘परं पदम्’ अर्थात् जीवन्मुक्त दशाको ‘आरुह्य’ अर्थात् पाकर भी वहाँसे अधःपतित हो जाते हैं। उन्हें जीवन्मुक्त दशाकी प्राप्ति भी गुणीभूता भक्तिके कारण सम्भव हुई है, ऐसा जानना होगा, क्योंकि बिना भक्तिकी सहायताके ऐसी जीवन्मुक्त दशाकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। जैसे श्रीब्रह्माने अपनी स्तुतिमें कहा है (श्रीमद्भा० १०/१४/४)—“हे प्रभो! जो ज्ञानमार्गका अवलम्बन करनेवाले व्यक्ति अपने मङ्गल प्राप्तिके पथ-स्वरूप भगवद्भक्तिको परित्याग कर केवल अर्थात्

भक्तिशून्य ज्ञानकी प्राप्तिके लिए कष्ट स्वीकार करते हैं, उन्हें थोथी भूसी कूटनेवाले व्यक्तिकी भाँति केवल कष्टकी ही प्राप्ति होती है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं होता।” इत्यादि प्रमाणोंके अनुसार भक्तिकी सहायताके बिना ज्ञान लाभका प्रयास भी मृग-मरीचिकाकी भाँति व्यर्थ है। इसलिए उस जीवन्मुक्त अवस्थासे भी उसका अधःपतन हो जाता है।

यदि प्रश्न हो कि गुणीभूता-भक्तिके रहनेपर भी उनका किस प्रकार अधःपतन हो जाता है? उत्तरमें कहते हैं कि जो व्यक्ति मायिक बुद्धिसे आपके श्रीचरणकमलोंके प्रति अनादरकी भावना रखते हैं, ऐसे व्यक्ति ही अधःपतित हो जाते हैं। इसका यह अर्थ है—ज्ञानियोंकी ज्ञानाङ्गभूता-भक्ति दो प्रकारकी होती है—भक्तिके बिना ज्ञान सिद्ध नहीं होता है—इस शास्त्र-आज्ञाके कारण ही किञ्चितमात्र भजनीय भगवान्के प्रति या उनके श्रीविग्रह आदिमें मायिक बुद्धिसे अथवा मायाबुद्धिसे (१) अनादरयुक्त और (२) अनादर रहित।

उनमें पहले अर्थात् जो मायिक बुद्धिसे अनादरयुक्त बुद्धिवाले हैं, उन तप, शम, दम आदिमें निष्ठासम्पन्न ज्ञानियोंको बहुत कालके बाद अविद्याको दूर करनेवाली विद्या और ब्रह्मभूत दशाको उत्पन्न कराकर भक्तिदेवी सहसा अन्तर्हित हो जाती है। वे ही अपनेको ‘विमुक्तमानिनः’ अर्थात् मैं जीवन्मुक्त हो गया—ऐसा कहते हुए अभिमान करते हैं, परन्तु वास्तवमें वे जीवन्मुक्त नहीं हैं। क्योंकि—(१) भगवान्ने (श्रीमद्भा० ११/१४/२१) में कहा है—“एकमात्र श्रद्धायुक्त भक्तिके द्वारा ही मुझे प्राप्त किया जाता है।”, (२) भक्तिके बिना तत् पदार्थकी अपरोक्ष अनुभूति नहीं होती है और (३) भगवान्के प्रति अपराध होनेसे कर्मसमूह दग्ध होनेपर भी पुनः उत्पन्न होनेके कारण वे अधःपतित हो जाते हैं। जैसे, रथयात्राके प्रसङ्गमें विष्णुभक्ति-चन्द्रोदयमें उद्धृत पुराण-वचनमें कहा गया है—“जो व्यक्ति मोहवशतः रथारूढ श्रीभगवान्के पीछे-पीछे नहीं चलते, ज्ञानरूपी अग्निके द्वारा उनके कर्म दग्ध हो जानेपर भी ऐसे व्यक्ति ब्रह्म राक्षस बनते हैं।” तथा वासना-भाष्यमें उत्थापित परिशिष्ट वचनमें कहा है—“यदि कोई

अचिन्त्य महाशक्ति सम्पन्न श्रीभगवान्‌के प्रति अपराधी होता है, तो वह जीवन्मुक्त होकर भी कर्म-बन्धनको पुनः प्राप्त करता है।”

किन्तु दूसरे, जो अनादरशून्य होते हैं, गुणीभूता भक्तिदेवी उनकी ब्रह्मभूत दशाको उत्पन्न कराकर अविद्या और विद्याके उपशमन होनेपर भी उस भक्तिका उपशमन नहीं होने देती हैं अर्थात् वे व्यक्ति उस भक्तिकी सहायतासे ही तत् पदार्थका साक्षात्कार अनुभव करते हुए जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त करते हैं, वास्तवमें वे ही सिद्ध हैं। जैसे श्रीगीता (१८/५४-५५) में कहा है—“ब्रह्ममें अवस्थित प्रसन्नचित्त व्यक्ति न तो शोक करते हैं और न ही आकांक्षा करते हैं। वे सभी भूतोंमें समदर्शी होकर प्रेमलक्षणयुक्त मेरी भक्ति प्राप्त करते हैं। मैं जिस प्रकार विभूतिसम्पन्न हूँ और मेरा जो स्वरूप है, उसे वे शुद्धाभक्तिके द्वारा ही तत्त्वतः जान सकते हैं। उस प्रेमाभक्तिके बलसे मुझे तत्त्वतः जानकर वे मेरी नित्यलीलामें प्रवेश करते हैं॥” ३२॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पहले दो श्लोकोंमें यह वर्णन किया गया है कि आपका तथा भक्तोंका आश्रय ग्रहणकर जीव अनायास ही मुक्त होकर आपके चरण-सान्निध्यको प्राप्त होते हैं।

अब ब्रह्मादि देवता श्रीभगवान्‌से कह रहे हैं—हे कमलनयन! जो व्यक्ति आपके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किये बिना ही केवलमात्र अहंकार-अभिमानमें मग्न होकर अपनेको विमुक्त समझते हैं, ऐसे व्यक्ति बड़े कष्टसे उच्चपदपर पहुँचकर भी आपका तथा आपकी भक्तिका अनादर करनेके कारण पतित हो जाते हैं।

जो अपनेको विमुक्त होनेका अभिमान करते हैं और मेरे लिए कुछ भी करना अवशेष नहीं है, मेरे सभी साधनोंकी सिद्धि हो गयी है—ऐसा मानते हैं, उन्हींको ब्रह्मादि देवताओंने ‘विमुक्तमानिनः’ कहा है।

ऐसे विमुक्तमानियोंकी स्थिति ‘त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः’ है। श्रीश्रीधरस्वामिपादने कहा है—‘त्वयि अस्त निरस्तः अतएवासन् यो भावस्तस्मात् भक्तेरभावादित्यर्थः, न विशुद्ध बुद्धिर्येषां ते तथा’ अर्थात् तीव्र साधनाके द्वारा ब्रह्मभावतक प्राप्त होकर भी यदि अपनेको यह

समझता है कि 'मैं मुक्त हो गया हूँ, मुझे कोई और साधन नहीं करना है। मैं और भगवान् एक ही वस्तु हूँ, अतएव उनके चरणकमलोंकी आराधनाकी कोई आवश्यकता नहीं है।' जब ऐसे भक्तिहीन भावका उदय होता है, तब समझना चाहिये कि ऐसे भक्तिहीन-भावयुक्त विमुक्तमानीका चित्त अभी तक शुद्ध नहीं हुआ है।

ज्ञानी जीवन्मुक्त दशा पाइनु करि माने।

वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्ण भक्ति बिने॥

(श्रीचै० च० मध्य० २२/२९)

अर्थात् ज्ञानी मान लेते हैं कि मैंने जीवन्मुक्त दशाको पा लिया है। परन्तु, वस्तुतः श्रीकृष्णभक्तिके बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती है। जो अपनेको मुक्त समझनेका अभिमानकर ब्रह्म-भावमें डूबे रहते हैं, वे सर्वेश्वर भगवान्को समझ नहीं पाते हैं। 'अविशुद्धबुद्ध्यः' अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ', 'जीवो ब्रह्मैव नापरः अर्थात् जीव ब्रह्म ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है' आदि श्रुति, पुराण आदिके वचनोंका अवलम्बनकर वे विवाद करनेमें ही चतुर होते हैं, परन्तु उन्हें शास्त्रोंके प्रतिपाद्य तत्त्वका अनुभव नहीं होता है। श्रीश्रीधरस्वामिपादने कहा है—'कृच्छ्रेण बहु जन्मतपसा, परं पदं मोक्षसन्निहितं सत्कुल-तपः-श्रुतादि, पतन्ति विघ्नैरभिभूयन्ते' अर्थात् 'कृच्छ्रेण' अर्थात् बहुत जन्मोंकी तपस्याके बाद, 'परं पदम्' अर्थात् मोक्षके निकटस्थ सत्कुल, तप, विद्या आदि पाकर भी 'पतन्ति' अर्थात् विघ्नोंसे अभिभूत हो जाते हैं।

दूसरी ओर भगवान्ने कहा है—“हे अर्जुन! मेरा चरणाश्रयकर स्त्री, शूद्र, वैश्य, अन्त्यज आदि सभी परम गतिको प्राप्त करते हैं। तो फिर ब्राह्मण, भक्त एवं राजर्षिगण मेरे चरणोंमें आश्रय लेनेपर कृतार्थ होंगे—इसमें कहना ही क्या है? अतएव हे अर्जुन! इस अनित्य एवं भयावह दुःखोंसे भरे हुए मर्त्य-जगत्में जन्म लेकर मेरा भजन करना ही जीवका एकमात्र कर्त्तव्य है।”

इसलिए गोविन्दके चरणोंमें शरणागति-विहीन व्यक्तिके विद्या, कुल आदि सब-के-सब निरर्थक हैं। उनका सत्कुलमें जन्म, शास्त्रज्ञान, जप, तपस्या आदि व्यर्थ है, क्योंकि उनसे भक्तिहीन

व्यक्तिका कोई उपकार नहीं होता है। इसलिए श्रीश्रीधरस्वामिपादने तथा सभी वैष्णव आचार्योंने अपनी व्याख्यामें यह प्रतिपादन किया है—श्रीगोविन्दके चरणोंमें भक्तिहीन व्यक्ति अनेकानेक जन्मकृत तीव्र साधनाके द्वारा मुक्तिके सोपानपर पहुँचकर भी भक्ति-हीनता दोषके कारण मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते हैं, उसमें विघ्न आ जाता है। इसलिए भक्ति ही मुक्तिका कारण है। यही स्थिर सिद्धान्त है। यह भक्ति भी श्रीगोविन्द एवं उनके भक्तोंके आश्रयसे ही सम्भव होती है। यदि कोई श्रीगोविन्दका आश्रय तो ग्रहण करता है, परन्तु उनके भक्तोंकी अवज्ञा करता है, तो उसपर श्रीगोविन्दकी कृपा नहीं होती है।

महत्कृपा बिना कोन कर्म 'भक्ति' नय।

कृष्णभक्ति दूरे रहु, संसार नहे क्षय॥

(श्रीचै० च० मध्य० २२/५१)

अर्थात् महत् पुरुषोंकी कृपाके बिना अन्य किसी भी उपायसे 'भक्ति' उत्पन्न नहीं होती है। कृष्णभक्ति तो दूर रहे, संसारका क्षय भी नहीं होता है।

श्रीप्रह्लादजीने अपने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा (श्रीमद्भा० ७/५/३२)—हे पिताजी! श्रीगोविन्दके चरणोंमें मति होनेपर सभी प्रकारके अनर्थ दूर हो जाते हैं, परन्तु जब तक समस्त वासनाओंसे मुक्त भक्तोंका चरणाश्रय नहीं होता है, तब तक किसीकी मति भगवान्‌के चरणकमलोंका स्पर्श नहीं कर सकती है॥ ३२॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्-

भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः।

त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया,

विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥

अन्वयः—माधव (हे लक्ष्मीकान्त!) त्वयि (परम प्रेमास्पद आपमें) बद्धसौहृदाः (जिनका निश्चल प्रेम है) तावकाः ते (तुम्हारे चरणाश्रित वे भक्त) तथा (भक्तिशून्य ज्ञानियोंकी भाँति) मार्गात्

(भक्तिमार्गसे) क्वचित् (कभी भी) न भ्रश्यन्ति (विच्युत नहीं होते हैं) प्रभो (हे सर्वेश्वर!) त्वया (भक्तवत्सल आपके द्वारा) अभिगुप्ता (सम्पूर्ण रूपसे सुरक्षित होनेके कारण) निर्भयाः (समस्त प्रकारके भयसे रहित होकर) विनायकानीकपमूर्द्धसु (श्रेयःप्रतिबन्धकारी विघ्नोंके समूह या सेनाओंका भी उद्धार कर देते हैं, इसलिए उन विघ्नकारियोंके मस्तकपर) विचरन्ति (विचरण करते हैं अर्थात् तुम्हारे चरणाश्रयके प्रभावसे समस्त विघ्नोंको अतिक्रमकर तुम्हारा भजन करते हैं) ॥ ३३ ॥

अनुवाद—हे माधव! हे प्रभो! आपमें प्रीति-सम्बन्धयुक्त परम भागवतगण कभी भी ज्ञानाभिमानियोंकी भाँति शुद्धभक्तिपथसे भ्रष्ट नहीं होते, बल्कि वे आपके द्वारा सब प्रकारसे सुरक्षित होकर निर्भय चित्तसे विघ्न उत्पन्न करनेवालोंके सिरपर चरण रखकर विचरण करते हैं ॥ ३३ ॥

सारार्थदर्शनी—ननु, ज्ञानिन एव केवलं किमीत्याक्षिप्यन्ते, भरतेन्द्रद्युम्न-चित्रकेत्वाददृष्ट्या भक्ता अप्याक्षिप्यन्तामित्यत आहुः—तथेति। यथा विमुक्तमानिनोऽधः पतन्ति, तथा तावका मार्गात् भक्तियोगात् भ्रश्यन्ति, किमुत मृग्यात्वत्त इत्यर्थः। यदि वा भ्रश्यन्ति, तदापि त्वयि बद्धसौहृदा एव भवन्ति। चित्रकेतुभरतेन्द्रद्युम्नादीनां भ्रंशे सति वृत्रादित्वे प्रेम्णः शतगुणीभावदर्शनात् भक्तानां भ्रंशोऽपि प्रेमाधिक्यहेतुरेव दृष्टः। यद्वा, तथा न भ्रश्यन्ति, यतो भ्रष्टत्वेऽपि त्वयि बद्धसौहृदाः ‘न मे भक्तः प्रणश्यति’ (श्रीगी० ९/३१) इति प्रतिज्ञातवता ममोपकरिष्यतैव मत्प्रभुणा ममायं भ्रंशः कृत इति त्वयि दृढविश्वस्तमतयः। ततश्चाभितस्त्वया रक्षिता, विनायकानां विघ्नकारिणाम्, अनीकानि स्तोमाः, तानि पान्ति ये, तेषामपि मूर्द्धसु विचरन्ति, तानभिभवन्तीत्यर्थः। यद्वा, तच्चरणांस्तेऽपि भक्त्या स्वमूर्द्धसु धारयन्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि केवल ज्ञानियोंके प्रति ही कटाक्ष क्यों कर रहे हैं? महाराज भरत, इन्द्रद्युम्न, चित्रकेतु आदिके चरित्रोंको देखकर आपको भक्तोंके प्रति भी कटाक्ष करना चाहिये। इसीके उत्तरमें देवताओं द्वारा ‘तथा’ आदि श्लोक कहा गया है। स्वयंके मुक्त होनेका अभिमान करनेवाले आपके चरणोंका अनादर करनेके कारण जिस प्रकार अधःपतित होते हैं, आपके भक्त भक्तिमार्गसे जब कभी वैसे भ्रष्ट ही नहीं होते हैं, तब अन्वेषणीय आपसे कभी विच्युत

होनेकी तो बात ही क्या? अर्थात् अन्वेषणीय आपको कभी खो नहीं बैठते हैं—इस विषयमें और अधिक क्या कहना है?—यह अर्थ है।

कदाचित् यदि कोई भक्त भ्रष्ट हो भी जाता है, तब भी आपके प्रति उसकी 'बद्धसौहृदाः' अर्थात् निश्चल प्रेम रहता है। क्योंकि, चित्रकेतु, भरत तथा इन्द्रद्युम्न आदिके भ्रष्ट होकर वृत्रासुर, हिरण और हाथी आदि रूपोंको प्राप्त करनेपर भी भगवान्‌के प्रति उनके प्रेमकी सौगुणा वृद्धि ही देखी जाती है। इसलिए भक्तोंका भ्रष्ट होना भी उनके प्रेमको बढ़ानेका कारण-स्वरूप है, ऐसा देखा जाता है।

अथवा, वे ऐसे भ्रष्ट नहीं होते हैं, क्योंकि भ्रष्ट होनेपर भी आपके प्रति 'बद्धसौहृदाः' अर्थात् "मेरा भक्त कभी भी विनष्ट नहीं होता है"—(श्रीगी० ९/३१) में ऐसे प्रतिज्ञाबद्ध मेरे प्रभुने मेरा उपकार करनेके लिए ही मुझे इस प्रकार भ्रष्ट कराया है—इस प्रकार वे आपके प्रति दृढ़ विश्वासयुक्त मतिवाले होते हैं।

वे आपके द्वारा सब प्रकारसे सुरक्षित होकर विघ्नकारियोंके सेनानायकके अथवा गुरुतर विघ्नोंके मस्तकपर चरण रखकर बिना किसी भयके विचरण किया करते हैं अर्थात् सभी विपत्तियोंको पराभूत कर देते हैं। अथवा, विघ्न उत्पन्न करनेवाले भी उनके चरणोंकी वन्दना करते हुए भक्तिपूर्वक उन्हें अपने मस्तकपर धारण करते हैं, यही अर्थ है॥ ३३॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीगोविन्दके चरणाश्रित जीव अति सहज ही संसारसे मुक्त हो जाते हैं। किन्तु उनके प्रति अनादर करनेसे ज्ञान, योग आदि तीव्र साधनाकी सिद्धिसे जीवन्मुक्त पद पाकर भी ज्ञानी और योगी उससे भ्रष्ट हो जाते हैं। यह तत्त्व ब्रह्मादि देवताओंने प्रकाश किया है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयं।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानीति शब्द्व्यते॥

(श्रीमद्भा० १/२/११)

अर्थात् तत्त्वज्ञ व्यक्ति अद्वयज्ञान अर्थात् नित्य स्वप्रकाश परमानन्द स्वरूप वस्तुको ही परम तत्त्व कहते हैं। साधन भेदसे ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्—इन तीन रूपोंमें परतत्त्वका साक्षात्कार होता है।

इससे स्पष्ट होता है—ज्ञान, योग और भक्ति—ये तीन परतत्त्व-साक्षात्कारके साधन हैं। परन्तु ज्ञान और योग साधनामें बहुत-से विघ्न हैं। इन दो साधनोंसे सबको सिद्धि प्राप्त नहीं हो पाती है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

(श्रीगी० ७/३)

अर्थात् सहस्र-सहस्र लोगोंमेंसे कोई एक सिद्धिके लिए यत्न करता है और ऐसे यत्न-परायण सिद्धोंमें भी कोई एक मुझे स्वरूपतः जानता हैं।

सभी मनुष्य ज्ञानके लिए प्रयास नहीं करते हैं अथवा सबका ज्ञानमें अधिकार भी नहीं होता है। हजारों मनुष्योंमेंसे कोई एक विरला ही ज्ञान साधनामें प्रवृत्त होता है और ऐसे यत्नकारियोंमें कोई एक व्यक्ति तत्त्वतः मुझे जानता है।

कृष्ण भक्ति हय अभिधेय प्रधान ।

भक्तिमुख-निरीक्षक कर्म-योग-ज्ञान ॥

एइ सब साधनेर अति तुच्छ बल ।

कृष्णभक्ति बिना ताहा दिते नारे फल ॥

(श्रीचै० च० मध्य० २२/१७-१८)

अर्थात् 'कृष्णभक्ति' सभी प्रकारके अभिधेयोंमें सर्वप्रधान है। अन्य कर्म, योग, ज्ञान भक्तिके मुख अर्थात् उसकी कृपाके निरीक्षक हैं। क्योंकि इन सब साधनोंका अतिशय तुच्छ बल है तथा कृष्णभक्तिके बिना वे फल नहीं दे सकते हैं।

अतएव भक्ति परम स्वतन्त्र एवं महाशक्तिशाली है। ज्ञान एवं योग आदिकी अपेक्षा न रखकर केवलमात्र भक्ति ही जीवके

संसार-बन्धनको छुड़ाकर श्रीगोविन्दके चरणोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेमें समर्थ है। भक्तिशून्य ज्ञानी, योगी आदि साधनमार्गमें बढ़कर भी भ्रष्ट हो जाते हैं, परन्तु भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेपर कभी पतनकी आशङ्का नहीं होती है, जैसे भगवान्‌ने कहा है (श्रीगी० ९/३१)—‘कौन्तेय! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति’ अर्थात् अर्जुन! मेरा भक्त कभी भी विनष्ट नहीं होता है।

इस श्लोकमें देवताओंने कहा—हे माधव! हे लक्ष्मीपति! आपके चरणाश्रित भक्त कभी भी ज्ञानियोंकी भाँति साधनमार्गसे पतित नहीं होते हैं। इससे भगवान्‌के भक्तवात्सल्य-गुणका प्रकाश होता है।

उनके चरणाश्रित भक्तोंको समस्त प्रकारका सम्पद लाभ होता है। ‘मा’ अर्थात् जो सर्व सम्पदकी अधिष्ठाता देवी लक्ष्मी हैं, उनके ‘धव’ अर्थात् पति ही ‘माधव’ हैं। इस प्रकार जिन्होंने लक्ष्मीपतिका आश्रय ग्रहण किया है—उन्हें कोई अभाव नहीं रहता है। भगवान्‌की कृपासे भक्तोंको अयाचित रूपसे ही समस्त सम्पद् प्राप्त हो जाती है।

श्रीभगवान्‌ मधुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं, इसलिए भी वे ‘माधव’ हैं। श्रीभगवान्‌ मायातीत धाममें नित्यलीला-परायण होकर भी अपने भक्तोंका आनन्द बढ़ानेके लिए मधुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। यही उनके भक्तवात्सल्यका परिचय है। भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिए गोलोकसे भूलोकमें दौड़कर आनेमें भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती है। अतः ऐसा कौन मूढ़ व्यक्ति होगा जो ऐसे माधवके चरणोंमें आश्रय ग्रहण नहीं करेगा?

हे माधव! ‘तावकाः तथा न मार्गात् भ्रश्यन्ति’—ब्रह्मादि देवताओंके इस वाक्यकी विशद आलोचना करनेपर समझा जाता है कि—जो श्रीगोविन्दके चरणोंमें शरणागत हैं, वे ही ‘तावकाः’ हैं। ‘तावकाः त्वदीयाः तवैवाहं न तु त्वमेवाहमिति मन्यमाना इत्यर्थः’ अर्थात् ‘मैं आपका हूँ’ ऐसा माननेवाले, न कि ‘मैं आप ही हूँ’ ऐसा माननेवाले। ज्ञानमार्गके साधक साधन-स्थितिमें ही ‘सोऽहं’ अर्थात् ‘मैं वही हूँ’—इस प्रकार ध्यान-परायण होते हैं और सिद्धावस्थामें वे ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होते हैं। परन्तु भक्तिमार्गके साधकका साधनावस्थासे सिद्धावस्था तक ‘मैं तुम्हारा ही हूँ’—ऐसा अभिमान रहता है। इसलिए ये शरणागत

भक्त हैं। परन्तु ज्ञानमार्गके साधक कभी भी कृष्णदासका अभिमान नहीं करते। उनके साधनपथमें भी कोई सहायक नहीं होता है, क्योंकि वे समझते हैं कि जगत् मिथ्या है और जगन्नाथ भी मुझसे कोई पृथक् नहीं है, मैं ही जगन्नाथ हूँ। परन्तु भक्तगण 'जगन्नाथ मेरे प्रभु हैं और मैं उनके अनुग्रहका पात्र हूँ'—यह जानकर उनके चरणकमलोंका आश्रयकर भजनपथमें अग्रसर होते हैं।

भक्तिर्भगवतः सेवा मुक्तिस्तत् पदलम्भनं।

को विद्वान् दासतां त्यक्त्वा प्रभवं पदमिच्छति॥

अर्थात् श्रीगोविन्दकी सेवाका नाम 'भक्ति' है, उनकी सेवाके लिए उनके चरणकमलोंकी प्राप्तिका नाम 'मुक्ति'—है। ऐसी उनकी सेवाको छोड़कर कौन बुद्धिमान श्रीगोविन्दके साथ एकत्व प्राप्त करना चाहेगा?

कृष्णदास अभिमाने ये आनन्द सिन्धु।

कोटि ब्रह्मसुख नहे तार एक बिन्दु॥

(श्रीचै० च० आदि० ६/४४)

अर्थात् कृष्णका दास होनेके अभिमानमें जो आनन्दका समुद्र प्राप्त होता है, अनन्तकोटि ब्रह्मसुख उसके एक बिन्दुके समान भी नहीं है।

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-

ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।

सा ब्रह्मणि स्वमहीमन्यपि नाथ मा भूत्

किं त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात्॥

(श्रीमद्भा० ४/९/१०)

अर्थात् ध्रुवजीने भगवान्से कहा—हे माधव! आपके भक्तोंका चरित्र सुननेसे जो आनन्द होता है, उसके साथ स्वानुभवरूप ब्रह्मानन्दकी कोई तुलना नहीं हो सकती। विनाशशील स्वर्गकी तो बात ही क्या है?

श्रीगोविन्दके भक्तगण उनकी कृपाका आश्रयकर साधनपथमें अग्रसर होते हैं। इसलिए उन्हें पतनका कोई डर नहीं होता; परन्तु

ज्ञानी-योगी आदि साधक किसीकी कृपाकी अपेक्षा न कर अभेद भावनाकी ओर बढ़ते हैं, इसलिए पतनका कोई कारण उपस्थित होते ही पतित हो जाते हैं। परन्तु श्रीगोविन्दके भक्तोंके लिए पतनका कारण उपस्थित होनेपर भी वे पतित नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि भगवान्ने अपनी कृपारूप रस्सीसे उन्हें बाँध रखा हैं।

‘तद्रूपोपासकास्तु आत्मतत्त्वादि ज्ञानाभावेऽपि, स्वधर्म परित्यागेऽपि, कथञ्चित् पातकापातेऽपि, नैव पतन्तीत्याहुः—तथेति।’ (वैष्णव-तोषणी) वैष्णव-तोषणीकारने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है कि जो व्यक्ति भक्तियोगके द्वारा श्रीगोविन्दकी उपासना करते हैं, उनके आत्मतत्त्वादि ज्ञानके अभावमें भी, स्वधर्मका परित्याग करनेपर भी या किसी प्रकार अज्ञानकृत पाप हो जानेपर भी उनका पतन नहीं होता है।

वे भक्तिभावसे भगवान्का भजन करते हैं। कोई विघ्न उपस्थित होनेपर उनकी दीनता और उत्कण्ठा और भी अधिक बढ़ जाती है। उससे वे अधिकतर कृपा लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। चित्रकेतुका असुर योनिमें जन्म ग्रहण, राजर्षि भरतके हिरण-जन्म आदिसे स्पष्ट होता है कि भगवत्-भक्तोंका किसी कारणसे पतन होनेपर भी वे भक्तिपथसे कभी विच्युत नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ,

शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः।

वेदक्रियायोगतपःसमाधिभि-

स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥

अन्वयः—भवान् स्थितौ (आप जगत्-पालनके लिए) शरीरिणां (जीवोंके) श्रेय उपायनं (समस्त पुरुषार्थोंके आश्रय-स्वरूप) विशुद्धं सत्त्वं (शुद्धसत्त्वमय) वपुः (श्रीमूर्तिको) श्रयते (प्रकट करते हैं) येन (जिससे) जनः (चारों आश्रमोंमें स्थित जन) वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिः (वेदपाठ, योग, तप और समाधि आदि चार प्रकारके आश्रम-धर्मके द्वारा) तव अर्हणं (आपकी पूजा) समीहते (सम्यक् रूपसे अनुष्ठान किया करते हैं) ॥ ३४ ॥

अनुवाद—(हे भगवन्!) आप स्थितिके समय जीवोंके मङ्गलदायक विशुद्धसत्त्वमय शरीरको प्रकटित करते हैं, क्योंकि इस विशुद्धसत्त्वमय शरीरके माध्यमसे सभी लोग वेदक्रिया, योग, तपस्या और समाधिके द्वारा आपकी पूजा किया करते हैं ॥ ३४ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदेवं 'बिभर्षि रूपाणि' इत्यनेन शुद्धसत्त्वात्मक-शरीराणां चराचरलोके प्राकट्यमुक्तं। 'क्षेमाय' इति तत् प्रयोजनं क्षेमञ्च। भक्तेः कैवल्यं 'त्वय्यम्बुजाक्ष' इति चतुर्भिर्विवृतम्। तन्मध्ये एव 'येऽन्येऽरविन्दाक्ष' इत्यनेन भक्तेर्गुणभावश्च मोक्षफलको भगवच्चरणादरे सति ध्वनितः। इदानीं भक्तेः प्राधान्यमपि प्रयोजनं शुद्धसत्त्वात्मकवपुः प्राकट्यस्येत्याहुः—सत्त्वमिति। विशुद्धं मायातीतं, सत्त्वं चिन्मयं, वपुर्भवान् श्रयते। कीदृशं स्थितौ? पालनसमये श्रेयसाम्, उप आधिक्येन, अयनं प्राप्तिर्यतः, तत्। श्रेय एवाहुः—वेदादिभिः चतुराश्रमधर्मैः सह, अर्हणम् ईहते। येन वपुषेति, वपुषोऽनाश्रयणेऽर्हणासिद्धेः ॥ ३४ ॥

भावानुवाद—इस प्रकार (२९ वें श्लोक में) 'बिभर्षि रूपाणि' आदिके द्वारा स्थावर-जङ्गमात्मक इस लोकमें आपके शुद्धसत्त्वमय स्वरूपके प्राकट्यके विषयमें कहा गया है और उसी श्लोकमें 'क्षेमाय' शब्दके द्वारा ऐसे अवतारका प्राकट्य जीवोंके कल्याणके लिए है, ऐसा कहा गया है। भक्तिसे कैवल्यकी प्राप्तिको भी 'त्वय्यम्बुजाक्ष' आदि (३०से ३३ तक) चार श्लोकोंमें विस्तृत रूपसे दिखलाया गया है। उनमेंसे (३२ वें श्लोक) 'येऽन्येऽरविन्दाक्ष' द्वारा उस भक्तिके गुणीभूत होने तथा आपके चरणकमलोंका समादर करनेके कारण ही वह भक्ति मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाली है, ऐसा ध्वनित हुआ है।

अब यहाँ भक्तिका प्राधान्य प्रयोजन भी आपकी शुद्धसत्त्वात्मक शरीरको प्रकटित करना है, इसलिए 'सत्त्वं विशुद्धम्' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'विशुद्ध' कहनेसे मायातीत 'सत्त्वं' अर्थात् चिन्मय शरीरको आप धारण किया करते हैं। कैसा शरीर? 'स्थितौ' अर्थात् पालनके समयमें 'श्रेय' अर्थात् मङ्गलसमूहकी 'उप' अर्थात् अधिक रूपसे 'अयनम्' अर्थात् प्राप्ति जिससे होती है, वैसा शरीर। उस श्रेयको ही कह रहे हैं—'वेदादिभिः' अर्थात् चारों आश्रम-धर्मोंके साथ लोग श्रीविग्रहोंका 'अर्हणम्' अर्थात् पूजा किया करते हैं। 'येन' अर्थात् जिन शरीरोंको प्रकटित करनेके कारण—ऐसा कहनेका अर्थ है कि यदि

आप ऐसे श्रीविग्रहोंको प्रकटित नहीं करते, तो फिर उनका अर्चन-पूजा आदि कुछ भी सम्भव नहीं हो पाता।

(अर्थात् चार आश्रमधर्म—वेद अध्ययनरूप ब्रह्मचारियोंका धर्म, क्रियायोगरूप गृहस्थका धर्म, वनवास आदिरूप वानप्रस्थका धर्म एवं समाधिरूप सन्यासियोंका धर्म—इन चार प्रकारके स्वधर्मके द्वारा आपकी पूजा करते हैं। यदि आप प्रकटित नहीं होते, तो पूजा-अर्चनके अभावमें लोगोंका कर्मफल भी सिद्ध नहीं होता) ॥ ३४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने पहले 'बिभर्षि रूपाणि' (श्लोक २९) आदि श्लोकोंमें इस तत्त्वको प्रकाशित किया है कि भगवान् जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए अपनी नित्यसिद्ध श्रीमूर्ति जगत्में प्रकाश करते हैं। उसी प्रसङ्गमें यहाँ वर्णन करते हैं—हे भगवन्! आप जगत् पालनके लिए विशुद्धसत्त्वमय श्रीमूर्तिको प्रकाश करते हैं।

श्रीमद्भागवत तृतीय-स्कन्धमें देखा जाता है कि ब्रह्माजीने भगवान्के स्तव प्रसङ्गमें कहा है—

नातः परं परम यद्भवतःस्वरूप-

मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।

पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्

भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥

(श्रीमद्भा० ३/९/३)

अर्थात् “हे परमपुरुष! देश, काल आदिके आवरणसे रहित आपका जो प्रकाशमय, निर्भेद, आनन्दमात्र ब्रह्मस्वरूप है, उसे मैं इस सविशेष अद्वयतत्त्वके रूपसे भिन्न नहीं देख रहा हूँ, अपितु यह ब्रह्मस्वरूप उसी अद्वयतत्त्वकी ही आंशिक प्रतीति है। हे आत्मन्! इसीलिए उपास्योंमें मुख्य, विश्वकी सृष्टि करनेवाले, अतः विश्वसे भिन्न एवं जीवोंकी इन्द्रियोंके अधिष्ठान आपके इस अद्वितीय सविशेष रूपका ही मैं आश्रय लेता हूँ।”

जीवकी देह और आत्मा अलग-अलग है, क्योंकि देह स्थूल—जड़ है और आत्मा सच्चिदानन्दमय है। परन्तु, भगवान्के शरीर और

आत्मामें कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों ही सच्चिदानन्द विग्रह हैं। इसलिए देवताओंके कथनमें भगवान्का श्रीविग्रह विशुद्धसत्त्वात्मक सच्चिदानन्दमय है।

देवताओंने कहा कि भगवान्का श्रीविग्रह—‘शरीरिणां श्रेय उपायनम्’ अर्थात् जीवोंके सर्वविध कल्याणके लिए उपहार-स्वरूप अपनी श्रीमूर्तिको जगत्में प्रकाश करते हैं। ‘श्रेय उपायनम्’ का अर्थ श्रीधरस्वामिपादने कहा है—‘कर्मफल दातृ’ अर्थात् भगवान् श्रीविग्रहरूपमें जीवोंके कर्म फलदाता हैं।

वैष्णव-तोषणीकारने कहा है—‘शरीरिणाम् अशेषजीवानां श्रेयसः सत्कर्मफलस्य तत् प्रेमान्त पुरुषार्थं वर्गस्य उपायनम् उपढौकनमिव करुणया सादरदानं येन’ अर्थात् श्रीमूर्तिकी उपासनासे जीव समस्त प्रकारके सत्कर्मफलको प्राप्त होता है एवं भव-बन्धनसे मुक्त होकर उनके चरणोंमें प्रेम प्राप्तकर कृतार्थ हो जाता है। भगवान् जब जगत्में अपनेको प्रकट करते हैं, तब वे जगत्-जीवोंके प्रति करुणापूर्वक यह उपहार प्रदान करते हैं।

वैष्णव-तोषणीकारने एक दूसरा अर्थ भी किया है—‘श्रेयसां सर्वविध मङ्गलस्य उप आधिक्येन अयनम् आश्रयरूपं परमानन्द स्वरूपमित्यर्थः’ अर्थात् भगवान्की श्रीमूर्ति समस्त प्रकारके मङ्गलका श्रेष्ठ आश्रय-स्वरूप है। इससे समझा जाता है कि समस्त प्रकारके दुःखोंका अन्त होनेपर परमानन्द-स्वरूप श्रीगोविन्दके चरणकमलोंकी प्राप्ति—यही सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है ॥ ३४ ॥

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्,
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्,
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—धातः (हे मत्स्य, कूर्म आदि विविध मूर्तिधर!) इदं (लीलामय हेतु शास्त्र दृष्टिसे और साधन अनुष्ठानके द्वारा अनुभूत इस) निजं (अपना असाधारण) सत्त्वं (विशुद्धसत्त्वात्मक स्वरूपको) न भवेत् (यदि कृपापूर्वक प्रकाश नहीं करते) [तब] अज्ञानभित् (अनादि

विमुखताका निवारक) विज्ञानं (आपका प्रत्यक्ष ज्ञान) मार्जनं (नाश) आप (प्राप्त होता)। गुणप्रकाशैः (घटपट आदि भौतिक ज्ञानके द्वारा या ज्ञान प्रकाशक रूपमें) यस्य (जिस परमात्मके सम्बन्धसे) येन वा (अथवा जिन अधिष्ठातृके द्वारा) गुणः (जड़ होनेपर भी बुद्धि आदि गुणोंके) प्रकाशते (प्रकाशक हैं अर्थात् घट आदिका अनुभव कराते हैं, वही आप हैं—इस रीतिसे स्वयं अनुभव कराते हैं) भवान् अनुमीयते (इस प्रकार अर्थात् ज्ञानके आश्रय रूपमें और ज्ञानके प्रकाशक रूपमें केवल अनुमानका विषय होते हैं। किन्तु उससे आपके प्रत्यक्ष ज्ञानकी सम्भावना नहीं होती है—यह भाव है)॥ ३५ ॥

अनुवाद—हे विधाता ! यदि आपका यह विशुद्धसत्त्वमय शरीर प्रकटित नहीं होता, तो अज्ञान और अज्ञानकृत भेदको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान सम्भव नहीं होता। गुणसमूह जिनके सम्बन्धसे प्रकाशित होते हैं अथवा जो समस्त गुणोंके प्रकाशक हैं, वे जड़बुद्धि आदि गुणोंके अधिष्ठातृ-स्वरूप ईश्वर हैं—गुणप्रकाशके द्वारा आपका इस प्रकार केवल अनुमान होता है, साक्षात्कार नहीं। किन्तु जो आपके विशुद्धसत्त्वमय विग्रहके उपासक हैं, वे आपका साक्षात्कार करते हैं—यही तात्पर्य है ॥ ३५ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, केचिद्दार्शनिका मद्बुधः प्राकृतसत्त्वमयमेव मन्यन्ते? तत्राहुः—सत्त्वमिति। हे धातः, इदमिति तर्जन्या गर्भं लक्ष्मीकुर्वन्ति तव वपुरिदं, निजं सत्त्वं शुद्धं सत्त्वं, न भवेच्चेत्, किन्तु, प्राकृतमेव सत्त्वं भवेत्, तदा विज्ञानं तथाभूतत्वेन सतामनुभवः, मार्जनं लोपम्, आप प्राप्तम्। महदनुभव एवात्र प्रमाणमित्यर्थः। विज्ञानं कीदृशम्? अज्ञानभित् अज्ञाननिवर्तकमिति, त्वद्वपुषो विशुद्धसत्त्वत्वेन विज्ञानमात्रादेव संसारो निवर्तत इति तादृश विज्ञानस्य प्रामाण्यं नाशङ्क्यमिति भावः। किञ्चात्र प्रमाणान्तरमप्यस्तीत्याहुः—गुणप्रकाशैर्गुणस्य अति-तेजस्वितादस्मदादि सर्वमनःप्रसादकत्वप्रेमप्रदत्वादेः प्रकाशैरेव इदं वपुर्भवानेव न मायेत्यनुमीयते, सम्प्रत्यस्माभिरपीत्यर्थः। तथाहि—यस्य च यस्यैव गुणः प्रकाशते, चिन्मयत्वात्, न प्रकृतेर्जाड्यात्, प्रकाशेऽपि प्रयोजक सापेक्षत्वाच्च। येन वा शुद्धसत्त्वेनैव हेतुना प्रकाशते, न तु प्राकृतत्वेन। अतएव वक्ष्यते—‘यस्यावतारां ज्ञायन्ते शरीरिष्वशरीरिणः। तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः॥’ (श्रीमद्भा० १०/१०/३८) इति। यद्वा, इदं निजं सत्त्वं शुद्धसत्त्वात्मकं तव वपुः न भवेत्

नाविर्भवेच्चेत्, तदा अज्ञानभित् विज्ञानमपरोक्षानुभवो मार्जनम् आप नाशमेव प्राप्नुयादित्यर्थः। किन्तु, तदा गुणानां बुद्ध्यदीनां प्रकाशैर्भवान् अनुमीयते केवलमनुमीयते एव। अनुमानप्रकारमाहुः—यस्य गुणः प्रकाशते, येन वा बुद्ध्यधिष्ठात्रा हेतुना बाह्यो गुणः प्रकाशते, स ईश्वर इति ॥ ३५ ॥

भावानुवाद—यदि भगवान् कहें कि कोई-कोई दार्शनिक मेरे शरीरको प्राकृतसत्त्वमय ही मानते हैं। इसके उत्तरमें ही 'सत्त्वम्' आदि श्लोक कह रहे हैं। हे विधाता! 'इदम्' अर्थात् देवता तर्जनी अङ्गुलीके द्वारा गर्भको लक्ष्यकर कहने लगे—आपका यह शरीर यदि विशुद्ध-सत्त्वमय न होकर प्राकृतसत्त्वमय ही होता, तब 'विज्ञानम्' अर्थात् आपके वैसे विशुद्धसत्त्वात्मक होनेके रूपमें जो साधुओंका अनुभव है, वह लुप्त हो जाता। अर्थात् महत् पुरुषोंका अनुभव ही इस विषयमें प्रमाण है। कैसा विज्ञान? 'अज्ञानभित्' अर्थात् जो अज्ञानको दूर करनेवाला है। इस प्रकार आपका शरीर विशुद्धसत्त्व-स्वरूपके रूपमें विज्ञानमात्र होनेसे ही संसारकी निवृत्ति होती है, इसलिए ऐसे विज्ञानकी प्रमाणिकताके विषयमें कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये, यह भाव है।

यहाँ एक दूसरा प्रमाण भी है, इसीलिए कह रहे हैं—'गुणप्रकाशैः' अर्थात् आपके गुणोंके अतिशय तेजस्वित्व होनेके कारण हमारे समान सभीके मनकी प्रसन्नता और प्रेमप्रदत्व आदि प्रकाशके द्वारा ही यह स्पष्ट है कि यह आपका शरीर चिन्मय है, किन्तु आपकी माया नहीं—इसका इस समय हम भी अनुमान कर रहे हैं। उसी प्रकार 'यस्य च' अर्थात् चिन्मय होनेके कारण ही इसके गुण प्रकाश पा रहे हैं परन्तु प्रकृति जड़ है तथा उसे प्रकाशित करनेके लिए भी प्रयोजककी अपेक्षा रहती है। 'येन वा' अर्थात् शुद्धसत्त्व होनेके कारण ही प्रकाशित हो रहा है, न कि प्राकृतत्वके रूपमें। अतएव (श्रीमद्भा० १०/१०/३४) में कहेंगे—“हे भगवन्! आपका प्राकृत शरीर नहीं है, क्योंकि प्राकृत शरीरमें जैसा अतुलनीय निरतिशय वीर्य असम्भव है, रूपधारी प्राणियोंके बीचमें उसका दर्शनकर लोग उन मत्स्यादि प्राणियोंमें आपका अवतार हुआ है, ऐसा जान सकते हैं।”

अथवा, आपका विशुद्धसत्त्वमय यह शरीर यदि प्रकटित नहीं होता, तब अपरोक्ष अनुभव भी समाप्त हो जाता, यह अर्थ है।

किन्तु, उस समय बुद्धि आदि गुणोंके प्रकाशके रूपमें आपका केवल अनुमान किया जा सकता है। यह अनुमान भी इस प्रकार है—बुद्धि आदि जड़गुणोंके प्रकाशके द्वारा आपका साक्षित्व आदि गुण प्रकाशित हो सकते हैं अथवा जिसके बाह्यगुण प्रकाश पा रहे हैं, वे ईश्वर हैं केवल ऐसा अनुमान किया जा सकता है। किन्तु ऐसे अनुमानके द्वारा आपका साक्षात्कार नहीं होता, केवल आपकी कृपा द्वारा ही यह सम्भव है और कृपा प्राप्त होती है आपकी सेवा द्वारा॥ ३५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने पूर्व-पूर्व श्लोकोंमें यह प्रतिपादन किया है कि श्रीगोविन्दके चरणकमलोंका आश्रय लिये बिना किसी भी साधनके द्वारा संसार-बन्धनसे मुक्ति नहीं मिल सकती। एकमात्र भक्ति ही संसारसे मुक्तिका कारण है। भक्तिकी सहायतासे कर्मोंको कर्मफलकी प्राप्ति, ज्ञानीको ब्रह्म सायुज्यकी प्राप्ति, योगीको परमात्म साक्षात्कार एवं भक्तको भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति होती है। भक्तिकी सहायताके बिना किसी भी साधनसे सिद्धि लाभ नहीं होती है। 'सर्वेषामेव सिद्धिनां मूलं तच्चरणार्चनम्' अर्थात् समस्त विषयोंकी सिद्धिका मूल श्रीगोविन्दके चरणकमलोंका अर्चन है। अतएव भगवान्‌के अपने नित्यसिद्ध मूर्तिको जगत्‌में प्रकट नहीं करनेसे उनके श्रीचरणोंका अर्चन करना किसीके लिए भी सम्भव नहीं होता, इसीलिए परम कृपामय भगवान्‌ अपने नित्यसिद्ध सच्चिदानन्दधन-विग्रह जगत्‌में प्रकट करते हैं।

श्रील श्रीधरस्वामिपादके अनुसार—इसमें कोई-कोई ऐसा सन्देह करते हैं कि जब भगवान्‌ कर्मफल दाता हैं और उनकी भक्तिके बिना कर्मफलकी प्राप्ति नहीं होती, तब मुक्तिके साथ भक्तिका क्या सम्बन्ध है? क्योंकि मुक्तिका साधन केवल तत्त्वज्ञान है। 'त्वमेव विदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् श्रीभगवान्‌का तत्त्वज्ञान होनेसे जीवका संसार-बन्धन छूट जाता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है—इस श्रुतिवाक्यसे स्पष्ट होता है कि एकमात्र तत्त्वज्ञान ही मुक्तिका कारण है। 'ब्रह्मविदाप्नोति परं' अर्थात् ब्रह्मज्ञ व्यक्ति परम पुरुषार्थ लाभ करते हैं। 'ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे

ब्रह्मभाव प्राप्त होता है। 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' अर्थात् वेदज्ञ व्यक्ति यज्ञ, दान, तपस्या, उपवास आदि तीव्र साधनाकर उस परम तत्त्वको जाननेका प्रयास करते हैं—इन श्रुति-वचनोंसे एकमात्र ज्ञान ही मोक्षका कारण है, ऐसा प्रमाणित होता है। अतएव भक्तिको मोक्षका हेतु कैसे कहा जा सकता है?

ब्रह्मादि देवताओंने इस सन्देहको दूर करनेके लिए—'सत्त्वं न चेद्धातः' आदि श्लोककी अवतारणा की है। इस श्लोकमें देवताओंका कहना है कि परमानन्दघन-विग्रह भगवान्‌के प्रकट न होनेपर किसीको भी तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। 'तमेव विदित्वा' आदि श्रुति-वाक्योंसे जाना जाता है कि परतत्त्वके ज्ञानसे जीवकी संसारसे मुक्ति होती है। परन्तु केवलमात्र परतत्त्वके ज्ञानसे ही मुक्ति नहीं होती, परतत्त्वके प्रत्यक्ष ज्ञानसे ही मुक्ति होती है—यही श्रुतिका प्रतिपाद्य है। केवल अनुमान आदि ज्ञानसे यदि मुक्ति मिलती, तब तो संसारमें कोई बद्धजीव ही नहीं रहता।

स्वप्रकाश-स्वरूप सच्चिदानन्द विग्रहके प्रकट हुए बिना परतत्त्व विषयक प्रत्यक्ष ज्ञानकी कोई सम्भावना नहीं है।

इसलिए देवताओंने—विभिन्न रुचिवाले जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए उनके भावानुसार भगवान् अनन्तरूपोंमें आत्म-प्रकाश करते हैं—यही तत्त्व व्यक्त किया है॥ ३५ ॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-

निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः।

मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो

देवक्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६ ॥

अन्वयः—तस्य (बुद्धि आदिके) साक्षिणः (साक्षात् द्रष्टा अथवा नियन्ता) मनोवचोभ्यां (तर्कसे और आप्त वाक्य द्वारा) अनुमेयवर्त्मनः (यह है—ऐसा निश्चित होता है, किन्तु अनुभव गोचर नहीं होता है) तव (आप) गुण-कर्म-जन्मभिः (भक्तवात्सल्यादि गुणोंके द्वारा, भू-भार हरण आदि कर्मके द्वारा, वसुदेव आदिके पुत्र होकर अवतरित होनेपर

भी) [आपके] नामरूपे (भक्तवात्सल्य, भू-भारहारी, वासुदेव आदि नाम और श्यामसुन्दर आदि रूपोंमें) न निरूपितव्ये (नाम, रूप आदि विशिष्ट घट-पट आदिकी भाँति आपका निरूपण नहीं कर सकता है, क्योंकि श्रीभगवान्‌के नाम, रूप आदि अप्राकृत होनेसे सर्व विलक्षण है, यह भाव) देव (हे स्वप्रकाश!) अथापि (आपका सर्वथा अनिरूपणीय स्वरूप होनेपर भी) क्रियायां (श्रवण-कीर्तनादि लक्षणा भक्तिसे) हि (निश्चित रूपमें) प्रतियन्ति (तुम्हारे भक्तगण तुम्हारा साक्षात्कार करते हैं) ॥ ३६ ॥

अनुवाद—(देवतागण अनेक रूपोंमें प्रकाशमान भगवान्‌को सम्बोधित करके कह रहे हैं—) हे देव! गुण, जन्म और क्रिया द्वारा आपके नाम और रूपोंका निरूपण नहीं किया जा सकता। क्योंकि आप अनुमानके द्वारा निर्णय लेनेवाले साधकोंके मन और वचनोंके अगोचर और साक्षीस्वरूप हैं। परन्तु भक्तगण उपासना अर्थात् सेवाके द्वारा आपका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥

सारार्थदर्शनी—न केवलमेतद्रूपमेव ते विशुद्धसत्त्वात्मकं, अपि तु एतस्य वाचकं नामापि। ते च नामरूपे भक्त्यैवानुभवितुं शक्ये नान्यथेत्याहुः—नेति। गुणैः श्यामसुन्दर-कृपाद्रलोचनेति, कर्मभिः गोवर्द्धनोद्धरण-त्रिभङ्गललितेति, जन्मभिः नन्दनन्दन-वासुदेवनन्दनेति ये तव नामरूपे, ते यद्यपि यथा कथञ्चिद्वाच्यध्येये भवतः, तदपि साक्षिणो विषयद्रष्टुर्जीवस्य, निरूपितव्ये साक्षादनुभवनीय-माधुर्येण भवतः; तयोर्माधुर्याननुभव एव तदननुभवः। यथा पित्तदूषितरसनजनेन चर्वितस्यापि मत्स्यण्डिका खण्डस्य स्वादालाभादननुभव एव, एवञ्च भक्तिरहितजीव-कर्तृकानुभवाशक्तेरेव हेतोर्नामरूपयोर्द्वयोरपि विशुद्धसत्त्वात्मकत्वमवगतमिति भावः। यद्वा, साक्षिण इति तवेत्यस्य विशेषणं, नामरूपयोः स्वरूपभूतत्वात् न हि साक्षिणः स्वरूपं साक्षात् ज्ञातुं शक्नुवन्तीति भावः। हे देव, अथापि, क्रियायां त्वदीय-श्रवणकीर्तनादिभक्तौ सत्यां, प्रतियन्ति नामरूपे साक्षादनुभवन्ति च। तेषामनुभवस्त्व-न्यैरनुमानज्ञेय इत्याहुः—मनसा क्षान्ति-मानशून्यत्वादिलिङ्गेन, वचसा 'मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्' (श्रीमद्भा० ६/११/२६) इत्याद्यनुरागव्यञ्जकवाक्येन, अनुमेयं वर्त्म प्रेमभक्तियोगो यस्य तस्य ॥ ३६ ॥

भावानुवाद—न केवल आपका यह रूप ही विशुद्धसत्त्वात्मक है, बल्कि आपके वाचक नाम भी विशुद्धसत्त्वात्मक हैं। और आपके उन

नाम और रूपोंका भक्तिके द्वारा ही अनुभव होता है, दूसरे किसी उपायसे नहीं। इसीको यहाँ 'न' आदि श्लोकके द्वारा बतला रहे हैं।

'गुणैः' अर्थात् श्यामसुन्दर, कृपाद्रं लोचन आदि, 'कर्मभिः' अर्थात् गोवर्धन धारण, त्रिभङ्ग-ललित आदि, 'जन्मभिः' अर्थात् नन्दनन्दन, वसुदेवनन्दन आदि जो आपके नाम और रूप हैं, वे यद्यपि किसी प्रकारसे वाच्य और ध्येयका विषय होते हैं, तथापि 'साक्षिणः' अर्थात् विषयोंको देखनेवाले जीवोंको साक्षात् उनके माधुर्यका अनुभव नहीं होता है। उन नाम-रूप आदिके माधुर्यका अननुभव ही उनका अनुभव है अर्थात् जैसे मिश्रीके खण्डको चूसनेपर भी पित्तसे दूषित जिह्वावाले अर्थात् पीलिया रोगीको उसके स्वादका अनुभव नहीं होता, वैसे ही भक्तिरहित जीवोंके द्वारा माधुर्यके अनुभव की असमर्थताके कारण ही भगवान्‌के नाम और रूप विशुद्धसत्त्वात्मक है, यह समझा जाता है, यह भावार्थ है।

अथवा, 'साक्षिणः'—यह 'तव' पदका विशेषण है। नाम और रूप आपके स्वरूपभूत होनेके कारण साक्षीके स्वरूपको साक्षात् रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, यह भाव है। अर्थात् साक्षी स्वरूप आप मन और वाणीके अगोचर तत्त्व हैं। हे देव! फिर भी 'क्रियायां' अर्थात् आपके श्रवण-कीर्तनादि भक्तियोगसे भक्तगण आपके नाम और रूपका साक्षात् अनुभव किया करते हैं। उनका अनुभव दूसरोंके लिए अनुमानके द्वारा जानना सम्भव होता है। इसीको कह रहे हैं—'मनोवचोभ्याम् अनुमेयवर्त्मनः'—मन अर्थात् क्षान्ति, मान शून्यता आदि रूप लक्षणोंसे, वाणी अर्थात् (श्रीमद्भा० ६/११/२६) "हे कमलनयन! मेरा मन आपको देखनेकी इच्छा कर रहा है।" आदि वृत्रासुरकी भाँति अनुराग प्रकाशक वचनोंके द्वारा 'अनुमेयवर्त्म' अर्थात् जो प्रेमभक्तियोग करते हैं, वैसे भक्तगण आपको साक्षात् अनुभव किया करते हैं॥ ३६॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—भगवान्‌के अपने नित्यसिद्ध श्रीमूर्तिको प्रकाश करनेपर उनका नाम एवं रूप भी जगत्‌में प्रकाशित होता है। परन्तु उनका नाम और रूप कोई प्राकृत या घट-पट आदिकी भाँति कल्पित नहीं है। इस तत्त्वको कहनेके लिए देवताओंने 'न नाम रूपे' आदि श्लोककी अवतारणा की है।

श्रीश्रीधरस्वामिपादने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है—‘एवं तावद्भक्तानामभ्युदयापवर्गार्थं रूपाणि बिभर्षीत्युक्तं, तान्यपि भजनीयानि केवलं, न तु ज्ञातुं शक्यन्ते, अनन्तत्वात् अतर्क्यत्वाच्च मनोवचसोरगोचरत्वात्’ अर्थात् साधकभक्तोंकी सर्वार्थ सिद्धिके लिए भगवान् अपनी श्रीमूर्तिको प्रकट करते हैं। उनकी श्रीमूर्ति अनन्त एवं अचिन्त्य है—अतएव वह मन और वाणीके अगोचर है। स्वयं करुणापूर्वक प्रकाशित श्रीमूर्तिकी सेवा न करके यदि कोई उनके तत्त्वको जाननेका प्रयास करते हैं, तो वह व्यर्थ प्रयास है।

जैसे ब्रह्माजीने (श्रीमद्भा० १०/१४/३८) में कहा है—“हे भगवन्! यदि कोई आपका तत्त्व जानता है, वह जाने। उसमें मेरा कोई वक्तव्य नहीं है। परन्तु हे प्रभो! आपका स्वरूप-वैभव मेरे मन, वाणी और शरीरसे भी अगोचर है।” इसलिए देवताओंने कहा कि भगवान् भक्तोंके प्रति कृपा करनेके लिए स्वयं अवतरित होते हैं।

अब यहाँ यह वक्तव्य है कि भक्तवात्सल्य गुणके कारण भगवान् भक्तवत्सल हैं, गोवर्द्धन धारण आदि लीला करनेके कारण भगवान्का नाम गिरिधारी तथा वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव हैं। इस प्रकार भगवान्के अनन्त गुण, अनन्त नाम, अनन्त रूप हैं। इसलिए ये सभी जगत्में प्रकाशित होनेपर भी घट-पटादिकी भाँति अनित्य नहीं हैं।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति साऽर्जुन॥

(श्रीगी० ४/९)

अर्थात् हे अर्जुन! मेरा जन्म-कर्म प्राकृत जीवकी भाँति नहीं है, वह अलौकिक, अप्राकृत है। जो व्यक्ति तत्त्वतः मुझे जानता है, फिरसे उसका जन्म नहीं होता है, वह मुझे प्राप्त होता है।

यहाँ विवेच्य विषय यह है कि प्राकृत वस्तुके गुण, कर्म और जन्म आदि सीमाबद्ध एवं एक ही प्रकारके होते हैं। दाह करता है, इसलिए अग्निका एक नाम दहन है। सर्वदा प्रवाहित होनेके कारण पवन है। मनु वंशमें जन्म होनेसे मानव, धूमसे जन्म होनेसे बादलका

नाम धूमयोनि है—आदि गुण, कर्म जन्मके अनुसार नामका व्यवहार हुआ है। ये सभी प्राकृत वस्तुएँ हैं। अतः उनके गुण-कर्म आदि सब कुछ सीमाबद्ध हैं। परन्तु भगवान्‌के नाम, रूप सीमाबद्ध नहीं हैं। वे अणुसे भी अणु और महत्‌से भी महत्‌ हैं ('अणोरणीयान् महतो महीयान्') एवं वे जन्मरहित होकर भी पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। ('अजायमानो बहुधा विजायते')।

भगवान्‌के नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ है। फिर ब्रह्माकी नासिकासे भगवान्‌ने वराहके रूपमें जन्म लिया। भगवान्‌के रोम-रोममें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं। उधर भगवान्‌ अनेकों मूर्तियोंमें ब्रह्माण्डके भीतर विचरण करते हैं। भगवान्‌के गुण-कर्म असीम, अनन्त हैं। अतएव उनके स्वरूपका निर्णय करना बड़ा ही कठिन है। जीव मातृगर्भमें रहकर मातृभुक्त अन्न, रस आदिसे पुष्ट होकर ठीक समयपर जन्म लेता है, परन्तु भगवान्‌का जन्म ऐसा नहीं है। क्योंकि वे कभी देवकी आदिसे जन्म ले रहे हैं, कभी स्तम्भसे नृसिंह रूपमें, कभी ब्रह्माकी नाकसे वराह रूपमें एवं कभी मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें अचानक उनका जन्म हो जाता है। इसलिए भगवान्‌के जन्म या प्रकट होनेका कोई नियम नहीं है। वे कब, कैसे, कहाँ अवतीर्ण होंगे—यह कोई नहीं कह सकता है। इसलिए भगवान्‌ स्वेच्छामय है।

जन्म कर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः।

न शक्यतेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि॥

(श्रीमद्भा० १०/५१/३६)

अर्थात् भगवान्‌ने मुचुकुन्दसे कहा—मेरा जन्म, लीला एवं नाम अनन्त हैं, इसलिए मैं भी उनकी गिनती करनेमें अक्षम हूँ।

नाम चिन्तामणिः कृष्णचैतन्य रस विग्रहः।

पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नात्वात्राम नामिनोः॥

(पद्मपुराण)

अर्थात् कृष्णनाम चिन्तामणि, चैतन्य रसमूर्ति, पूर्णशुद्ध और नित्यमुक्त हैं और श्रीकृष्णका भी यही स्वरूप है। अतएव कृष्णनाम और श्रीकृष्णमें कोई भेद नहीं है। इस प्रकार बहुत-से शास्त्र वचनोंके

द्वारा जाना जाता है कि भगवान्‌के नाम, रूप, गुण आदि उन्हींके ही स्वरूप हैं। अतएव भगवान्‌की भाँति उनके नाम, रूप, गुणादि भी सच्चिदानन्द एवं जड़-बुद्धिके अगोचर हैं ॥ ३६ ॥

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्,
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥

अन्वयः—ते (तुम्हारे) मङ्गलानि (सर्वशुभप्रद) नामानि (कृष्ण, गोविन्द आदि नामोंका) रूपाणि च (और श्रीमूर्तिका) शृण्वन् (सुनते हुए) गृणन् (कीर्तन करते हुए) संस्मरयन् (दूसरोंको स्मरण कराते हुए) चिन्तयन् (ध्यान करते हुए) क्रियासु (तुम्हारे अर्चन आदि कर्मोंको करते हुए) त्वच्चरणारविन्दयोरविष्टचेता (तुम्हारे चरणारविन्द स्मरण-परायण) यः (जो भक्त हैं) [वे] भवाय (संसारके लिए) न कल्पते (पुनः नहीं आते हैं अर्थात् संसारके कारणमें विद्यमान होते हुए भी संसारसे मुक्त होते हैं) ॥ ३७ ॥

अनुवाद—हे भगवन्! आपके चरणकमल-युगलमें आविष्टचित्त होकर जो समस्त कार्योंमें आपके परम मङ्गलमय नाम और रूपका श्रीगुरुके मुखसे श्रवणकर ग्रहण करते-करते दूसरोंको भी स्मरण और चिन्तन कराते रहते हैं, उनका संसार-बन्धन नहीं रहता है ॥ ३७ ॥

सारार्थदर्शिनी—किञ्च, नामरूपयोः श्रवणादिभिरभ्यास एवानुभवे कारणमित्याहुः—शृण्वन्निति। क्रियासु स्वदैहिकव्यापारेषु वर्तमानोऽपि न भवाय कल्पते, किन्तु भगवदनुभवाय कल्पते ॥ ३७ ॥

भावानुवाद—श्रीभगवान्‌के नाम और रूपके श्रवण आदिका अभ्यास ही अनुभवका कारण है। इसीको 'शृण्वन्' आदि श्लोक द्वारा कह रहे हैं। 'क्रियासु'—भक्त अपने दैहिक कार्योंमें नियुक्त रहनेपर भी 'न भवाय कल्पते'—इस जन्म-मरण प्रवाहरूप संसारमें नहीं आते, परन्तु वे आपको अनुभव करनेके योग्य होते हैं ॥ ३७ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने भक्तियोगको ही संसारसे पार जानेका एकमात्र उपाय बताया है। अब इसका उपसंहार करते हुए देवताओंने 'शृण्वन् गृणन्' आदि कहा।

श्रीश्रीधरस्वामिपादने इसकी व्याख्यामें कहा है—'तस्माद् भक्त्यैव मोक्ष इत्युपसंहरति शृण्वन्निति' अर्थात् श्रीगोविन्दके चरणोंमें शरणागतिके बिना अपनी शक्तिसे कोई भी उनका तत्त्वानुभव करनेमें समर्थ नहीं है। अतएव भक्ति ही मोक्षका एकमात्र हेतु है—'शृण्वन्' आदि श्लोकमें इसी सिद्धान्तका उपसंहार हुआ है।

श्रीवैष्णव-तोषणीकारने भी यही कहा है—श्रीभगवान्के नाम, रूप, गुण, लीलादिके श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा अर्चनादिसे, 'मैं तुम्हारा दास हूँ'—ऐसा चिन्तन करते हुए भक्ति-अङ्गोंका पालन करनेसे जीवकी संसार-निवृत्ति और भगवान्के स्वरूपकी अनुभूति होती है—यही सार सिद्धान्त है।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणं।

लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

(श्रीमद्भा० २/४/१५)

अर्थात् जिनके नाम, रूप, गुण, लीलादिके कीर्तन और स्मरणसे, जिनके श्रीविग्रहके दर्शनसे, जिनके चरणोंमें नमन करनेसे, जिनके नाम, रूप, गुण, लीलादिके श्रवणसे, जिनके श्रीचरणोंमें सचन्दन तुलसीपत्र दानसे जीवमात्रके सब प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं, ऐसे परम मङ्गलमय श्रीगोविन्दके चरणोंमें करोड़ों प्रणाम निवेदन करता हूँ।

'क्रियासु त्वच्चरणारविन्दयोरविष्टचेता न भवाय कल्पते'—इस श्लोकार्द्धके द्वारा ब्रह्मादि देवताओंने यही प्रतिपादन किया कि श्रवण-कीर्तनादिके द्वारा श्रीगोविन्दके चरणोंमें जीवका चित्त आविष्ट होता है और उसीसे उसकी संसारनिवृत्ति होती है॥ ३७॥

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो,

भारोऽपनीतस्तव

जन्मनेशितुः।

दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-
द्रक्ष्याम गां द्याञ्च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हरे (हे सर्वदुःखहर!) दिष्ट्या (हमारे भाग्यसे) ईशितुः (सर्वेश्वर) तव जन्मना (आपके जन्मसे ही) भवतः (आपके विराट स्वरूपका) पदः (चरणकमल-स्वरूप) अस्या भुवः (इस पृथिवीका) भारः (दैत्यादि-कृत भार) अपनीतः (दूर हुआ है) दिष्ट्या (हमारे महाभाग्यसे) सुशोभनैः (शोभनीय ध्वज, वज्र आदि) त्वत्पदकैः (आपके चरणचिह्नोंके द्वारा) अङ्कितां (चिह्नित) तवानुकम्पितां (आपकी कृपाप्राप्त) गां (पृथ्वी) द्यां च (और स्वर्गका) द्रक्ष्यामः (दर्शन करेंगे) ॥ ३८ ॥

अनुवाद—हे हरि! आपके श्रीचरणकमलोंसे उत्पन्न इस पृथ्वीका भार आपके आविर्भावमात्रसे ही दूर हो गया है, यही हमारा परम सौभाग्य है। परन्तु हमारा और अधिक सौभाग्य होगा कि हम आपके शोभनीय ध्वज, वज्र और अङ्कुश आदि शुभ चरणचिह्नोंसे पृथ्वीको अङ्कित और देवलोकको आपके द्वारा अनुकम्पित देख सकेंगे ॥ ३८ ॥

सारार्थदर्शिनी—भारावतारणमवश्य कर्तव्यमिति भङ्ग्या विज्ञापयन्ति—दिष्ट्येति। पदः पदजन्यायाः, 'पद्भ्यां भूमिः' इति श्रुतेः। भारः अपनीतः, अधुनैव कंस-जरासन्धादीन् हतान् जानीम इति भावः। पदकैः सुकुमारैः पदैः, सुशोभनैर्ध्वजवज्रादिमङ्गलचिह्नवद्भिः। गां पृथ्वीं, द्यां स्वर्गञ्च ॥ ३८ ॥

भावानुवाद—हे प्रभो! पृथ्वीका भार उतारना आपका अवश्य कर्तव्य है, इसे वचनभङ्गिसे देवतागण 'दिष्ट्या' आदि श्लोकके द्वारा प्रकट कर रहे हैं। देवताओंने कहा—हमारे सौभाग्यवशतः आपके अवतीर्ण होनेसे 'भवतः पदः' अर्थात् आपके श्रीचरणकमल-प्रकटित पृथ्वीका बहुत बड़ा भार भी विदूरित हो गया। श्रुतिमें भी कहा है—“यह भूमि भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंसे उत्पन्न हुई है।” 'भारः अपनीतः' इसका भार मिट गया, अभी अर्थात् आपके अवतीर्ण होनेके साथ-ही-साथ कंस, जरासन्ध आदि मारे गये हैं—ऐसा हम जानते हैं, यह भाव है। 'पदकैः' आपके अति सुकुमार श्रीचरणोंके

ध्वज, वज्र और अङ्कुश आदि मङ्गलमय चिह्नोंके द्वारा अलंकृत 'गाम्' अर्थात् इस भूलोकका तथा 'द्याम्' अर्थात् देवलोकका दर्शन लाभ करेंगे ॥ ३८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने कहा—हे सर्व दुःखहर ! आप सर्वेश्वर होकर भी देवकीके गर्भमें जन्म ग्रहण कर रहे हैं। इसीसे आपके श्रीचरणकमलोंसे उत्पन्न पृथिवीका भार उतर गया है। देवताओंने भगवान्को 'हरिः' कहकर सम्बोधन किया है। भगवान् स्वभावतः ही 'हरि' अर्थात् शरणागत व्यक्तिके सब दुःखोंको हरण करनेवाले हैं। भगवान् ब्रह्माण्डमें आयें, चाहे न आयें, ब्रह्माण्डके जीव उनके श्रीचरणोंका दर्शन करें, चाहे न करें—उनके चरणोंमें शरणागत होनेसे ही समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। और जो उनके कृपाभाजन होते हैं, वे तो कृतार्थ होते ही हैं, उन्हें जो कोई दर्शन करते हैं, वे भी कृतार्थ हो जाते हैं। इसलिए ब्रह्मादि देवताओंने कहा—पृथ्वी और स्वर्ग—दोनों ही भगवान्की कृपा प्राप्त करेंगे; क्योंकि भगवान् इसबार पृथ्वी और स्वर्गमें लीला करेंगे। हमारा उनके साक्षात् चरणस्पर्श करनेका सौभाग्य न होनेपर भी श्रीभगवान्के चरणस्पर्शसे परम अनुगृहीत पृथ्वी एवं स्वर्गका दर्शनकर हम कृतार्थ होंगे ॥ ३८ ॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं,
विना विनोदं बत तर्कयामहे।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया,
कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥

अन्वयः—बत (हर्ष सूचक सम्बोधन है) ईश (हे सर्वनियन्ता !) अभवस्य (जन्मरहित होनेपर भी) ते (तुम्हारे) भवस्य (जन्मका) कारणं (उद्देश्य) विनोदं विना (अपना स्वरूप आनन्द आस्वादन बिना) [दूसरा जगत्की सृष्टि, स्थिति और लय आदि किसी भी कारणके लिए है] न तर्कयामहे (कोई ऐसा नहीं समझते हैं) यतः (क्योंकि) अभय (हे सबके भय मिटानेवाले !) आश्रयात्मनि (सबके आश्रय—स्वरूप) त्वयि (आपमें) [वर्तमान] अविद्यया (मायाके द्वारा

ही) भव (जगत्की उत्पत्ति) निरोधः (प्रलय) स्थिति अपि (और पालन) कृता (सम्पादित होता है) फिर इसके लिए आपका यह अवतार है, ऐसा कहना युक्तिसङ्गत नहीं है, यह भाव है ॥ ३९ ॥

अनुवाद—हे ईश! अजन्मा आपके जन्मका कारण क्रीड़ामात्र है, इसके अतिरिक्त हम और अन्य कारण स्थिर नहीं कर पा रहे हैं। (आपके जन्मादिका कर्मफलसे बाधित जीवके समान कोई कारण नहीं है।) क्योंकि, हे नित्यमुक्त! जीवात्माका भी जो जन्मादि है, वह आपमें अपाश्रित (अर्थात् भयके कारण पीछे छिपी हुई) अविद्याके द्वारा ही हुआ करता है ॥ ३९ ॥

सारार्थदर्शिनी—अस्मद्विज्ञापितोऽस्मदादिपालनार्थमवतीर्णोऽसीत्यस्माकमभिमान एव केवलं, वस्तुतस्तु स्वरजन्मकर्मलीलोऽसीत्याहुः—नेति। अभवस्य अजन्मनः, भवस्य प्रादुर्भावस्य। यत आश्रयात्मनि त्वयि त्वामाश्रित्य वर्तमाना या, अविद्या माया, तयैव भवादयो जगत्सृष्ट्यादयः कृता इत्यर्थः। नास्ति भयं यत इति, त्वत्स्मरणादेव कंसाद्यसुरभयं निवर्तते, तद्वधार्थं तव स्वयमेवाविर्भूयोद्यमो न घटत इति भावः ॥ ३९ ॥

भावानुवाद—हमारी प्रार्थनासे आप हमारा पालन करनेके लिए जगत्में अवतरित हो रहे हैं—ऐसा विचार केवल हमारा अभिमानमात्र है, वास्तवमें आपका जन्म, कर्म और लीला आपकी स्वेच्छासे सिद्ध है। यही 'न' आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। आप 'अभवस्य' अर्थात् अजन्मा हैं, फिर भी आपके 'भवस्य' अर्थात् आविर्भावका कारण लीलाविनोद ही है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है। 'यतः आश्रयात्मनि त्वयि'—क्योंकि आपकी आश्रित होकर रहनेवाली 'अविद्या' अर्थात् मायाके द्वारा आप ही जगत्की सृष्टि आदि कार्य सम्पन्न करते हैं, यह अर्थ है। 'अभय' अर्थात् जिनसे कोई भय नहीं है। आपके स्मरणमात्रसे ही कंस आदि असुरोंका भय दूर हो जाता है, फिर उनका वध करनेके लिए आपको स्वयं ही आविर्भूत होना पड़ा ऐसा नहीं हो सकता। यह भाव है ॥ ३९ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने पूर्व श्लोकमें कहा है—‘तव जन्मना भुवो भारः अपनीतः’—आपके जन्ममात्रसे ही पृथिवीका भार दूर हो गया है। इसमें ऐसा प्रश्न होता है कि भगवान्का जन्म क्या प्राकृत जीवकी भाँति है? भगवान्के शरीरका जन्म होता है, आत्माका नहीं—ऐसा सिद्धान्त करनेपर भी सन्देह नहीं मिट सकता है। क्योंकि जीवके भी शरीरका ही जन्म होता है, आत्माका नहीं। तब तो जीव और भगवान्का जन्म एक ही प्रकार हो जायेगा। परन्तु सभी शास्त्रोंका निर्णय यह है कि भगवान् और जीवके जन्ममें बहुत अन्तर है। जीव अपने-अपने कर्मफलके अनुसार मनुष्य, पशु, पक्षी आदि देह धारण करते हैं और भगवान् जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए मत्स्य, कूर्म आदि श्रीमूर्तियोंमें स्वेच्छासे प्रकट होते हैं। जीवके कर्मफलके अनुरूप देहकी सृष्टि होती है; परन्तु भगवान्की लीलाके अनुरूप श्रीमूर्तिकी सृष्टि नहीं होती है, वह नित्यसिद्ध तथा स्वतः प्रकाशित है। जीव और भगवान्के जन्मका पार्थक्य समझनेके लिए देवताओंने ‘न तेऽभवस्येश’ आदि वर्तमान श्लोककी अवतारणा की है।

श्रीश्रीधरस्वामिपादने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है—‘तव जन्मना भारोऽपनीतः इत्युक्त्वा ममापि किं जीववत् संसार उक्तो? न हि न हीत्याहुः—नेति’ अर्थात् श्रीभगवान्के जन्मसे ही पृथ्वीका भार अपनीत (दूर) हो गया है। ब्रह्मादि देवताओंकी इस उक्तिसे क्या भगवान्का भी जीवकी भाँति जन्म आदि स्वीकार करना होगा? देवताओंने इसके उत्तरमें कहा—नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है। जीव और भगवान्के जन्ममें बहुत अन्तर है। जीवका जन्म ‘कर्माधीन’ है, परन्तु भगवान्का जन्म ‘स्वेच्छाधीन’ है—लीलाके अनुरूप होता है।

इसलिए ब्रह्मादि देवताओंने कहा—हे भगवन्! आप ईश अर्थात् सर्वनियन्ता हैं, आप किसीके द्वारा नियमित नहीं होते हैं। जीव अपने कर्मके अनुरूप देह धारण करनेको विवश है, क्योंकि देह धारण नहीं करनेसे कर्मके अनुरूप फल-भोग नहीं होगा। परन्तु भगवान् जो लीलाएँ करते हैं, वे समस्त अपनी इच्छासे ही करते हैं।

भगवान् 'अभव' अर्थात् अज हैं। उनका जन्म स्वीकार करनेसे उनकी भी कोई जननी होगी, फिर उनका भी कोई जनक होगा—इस प्रकार जन्म-जनककी अविश्रान्त धारा चलती रहेगी। तब सबका मूल कौन है, इसका कोई निरूपण नहीं होगा। इसलिए शास्त्रमें कहा है—'स कारणं कारणाधिपाधिपः' अर्थात् वे ही सबके कारण हैं। वे सर्वकारण-कारण हैं, उनका कोई कारण नहीं है। भगवान् जन्मरहित होकर भी स्वेच्छासे जन्म ग्रहण करते हैं, यही उनकी अचिन्त्यशक्ति है। इसलिए उनका जन्म—दिव्य, अलौकिक तथा अप्राकृत है।

भगवान् जन्मरहित होकर भी जन्म ग्रहण क्यों करते हैं? इसके उत्तरमें सबका एक ही निर्णय है कि वे एकमात्र लीलाविनोदके लिए ही जगत्में जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए देवताओंने कहा—आपके लीलाविनोदके अतिरिक्त जन्म लेनेका दूसरा कोई कारण है, यह हम नहीं समझते हैं।

जिनके श्रीचरणोंमें आश्रय लेनेसे जगत्के जीवोंका भव-बन्धन दूर हो जाता है, उन्हें किसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिए संसारमें आना पड़ता है—यह सम्भव नहीं है।

इसलिए श्रीवैष्णव-तोषणीकारने इस श्लोकार्द्धकी व्याख्यामें कहा है—'यतः सर्वाश्रयात्मनि आश्रित्य वर्त्तमाना या माया तयैव नित्यं भवादयः कृता वर्त्तन्ते। ततस्तदन्तःपाति पालनमात्रार्थं नायं स्वस्वरूपेण प्रयन्तविशेषो युक्त इति।' अर्थात् भगवान् प्राकृत, अप्राकृत, स्थूल, सूक्ष्म, कार्य, कारण आदि सबके आश्रय हैं। उनकी बहिरङ्गाशक्ति (माया)से जगत्की सृष्टि, स्थिति, लय आदि होता है। पृथ्वीका भार हरण आदि पृथिवीके पालनके अन्तर्गत है। इसलिए स्वयं-भगवान्को इस कार्यके निमित्त जगत्में आनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

श्लोकमें उल्लिखित 'यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि'—इस अंशकी व्याख्यामें भगवान्को 'अभयाश्रय' कहकर सम्बोधन करते हुए उनकी नित्यमुक्तता दिखायी गयी है। वैष्णव-तोषणीकारने 'अभय' कहकर भगवान्की लीलाका एक अभिनव माधुर्य प्रकाश किया है—कंस आदि असुरोंके विनाशके लिए भगवान्को आनेकी कोई आवश्यकता नहीं है तथा

उनसे उन्हें कोई भय भी नहीं है। इसलिए वृन्दावनलीलामें उन्होंने खेल-कूद, गोचारण, वंशीवादन आदि करते हुए अपने स्वरूपानन्दका आस्वादन किया है ॥ ३९ ॥

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-

राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।

त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च यथाधुनेश,

भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥

अन्वयः—मत्स्य-अश्व-कच्छप-नृसिंह-वराह-हंस-राजन्य-विप्र-विबुधेषु (मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, क्षत्रिय—श्रीरामचन्द्र, ब्राह्मण—परशुराम, देवता—उपेन्द्र आदि रूपोंमें) कृतावतारः (अवतीर्ण होकर) त्वं यथा नः (आप जैसे हमलोगोंको) त्रिभुवनञ्च (और स्वर्ग-मर्त्य-रसातलकी) पासि (भूभार हरण आदिके द्वारा रक्षा करते हैं) ईश (हे सर्वेश्वर!) [उसी प्रकार] अधुना (इस अवतारमें भी) भुवः (पृथ्वीका) भारं (दैत्यकृत पराभवरूपी भारको) हर (दूर करें) यदूत्तम (हे यदुपते!) ते (तुम्हारी) वन्दनं (हम वन्दना करते हैं) ॥ ४० ॥

अनुवाद—हे ईश! आपने पहले मत्स्य, हयग्रीव, कूर्म, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामन आदिके रूपमें अवतार धारणकर हमलोगोंका और त्रिभुवनका जिस प्रकार पालन किया है, इस समय उसी प्रकार पृथ्वीका भार हरण कीजिये अर्थात् पृथ्वीका भार हरण करके हमारा पालन कीजिये। हे यदूत्तम! हम आपकी वन्दना कर रहे हैं ॥ ४० ॥

सारार्थदर्शिनी—तदप्यस्माकमधीराणां बहुधैवावगतचरं वैकल्यमवगम्यतां चेत्याहुः—मत्स्याश्वेति। तथैव भुवो भारं हरेति, भूभारहरणमेव सम्प्रत्यस्माकं पालनमिति भावः। वन्दनं ते इति, वदन्तः सर्वे शिरोभिः प्रणमन्ति ॥ ४० ॥

भावानुवाद—तथापि अधीर हम लोगोंके विविध प्रकारसे विज्ञापित वैकल्य (विह्वलता) को आप जानते ही हैं, इसीको ही 'मत्स्याश्व'

आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। पहले आपने मत्स्य आदि रूपोंमें अवतरित होकर हम सबकी तथा त्रिभुवनकी रक्षा की है, वैसे ही इस समय भी पृथ्वीका भार हरण करें। भूभार हरण ही इस समय हमारा पालन है, यह भाव है। इसलिए हे भगवन्! हम आपकी वन्दना करते हैं। ऐसा कहकर सभी देवताओंने सिर झुकाकर भगवान्को प्रणाम किया ॥ ४० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवताओंने श्रीभगवान् एवं उनके चरणाश्रय करनेका माहात्म्य वर्णनकर अन्तमें कहा—हे भगवन्! हम अधिक क्या कहें, आप अन्तर्यामीरूपमें हमारे हृदयमें अधिष्ठित होनेके कारण समस्त भावोंको जानते हैं। आप सभी जीवोंके हितकारी हैं। जीव अपनी दुःखकी कहानी बतलाये, चाहे न बतलाये, उनके कल्याणके लिए जिस समय जो कुछ आवश्यक होता है, वही आप करते हैं। फिर भी अपनी चञ्चलताके कारण हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप मत्स्य, हयग्रीव, कूर्म, नृसिंह आदि अनेकों रूपोंमें अवतीर्ण होकर त्रिजगत्का पालन करते हैं। उससे हमारी भी रक्षा होती है।

श्रीवैष्णव-तोषणीकारने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है—ब्रह्मादि देवताओंने कहा—‘हे ईश! भवान् मत्स्याद्यावतारेषु यथा त्रिभुवनं पासि, अधुनापि किं तथैव पास्यसि? हे यदुत्तम! भुवो भारं हर।’ अर्थात् हे ईश! आप इच्छा करनेसे सबकुछ कर सकते हैं। आपने मत्स्य, कूर्म आदि अंश अवतारोंमें जिस प्रकार जगत्का पालन किया, इसबार स्वयं रूपमें क्या वैसे ही पालन करेंगे? हे यदुवंश शिरोमणे! इसबार आप पृथिवीका भार हरण करें।

ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनाका यह वक्तव्य है कि—भगवान्ने वराह रूपमें हिरण्याक्ष एवं नृसिंह रूपमें हिरण्यकशिपुका वध किया था। परन्तु उन्होंने फिरसे रावण और कुम्भकर्णके रूपमें जन्म ग्रहण किया। भगवान् श्रीरामने उनका वध किया। अब उन दोनोंने शिशुपाल और दन्तवक्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया। अतएव भगवान्ने वराह आदि रूपमें अवतीर्ण होकर हिरण्याक्ष आदि असुरोंका

विनाशकर पृथ्वीका भार हरण किया। परन्तु उससे कुछ दिनोंके लिए ही पृथ्वीका भार दूर हुआ था, किन्तु इसबार आप स्वयंरूपमें चिरकालके लिए पृथ्वीका भार हरण कर दें। अर्थात् जिससे सब असुर पृथ्वीपर फिर लौटकर नहीं आयें, उन्हें चिरकालके लिए मुक्ति दान दीजिये। यदि भगवान् ऐसा कहें कि सैकड़ों व्यक्ति योग-ध्यान करके भी जिस मुक्तिको प्राप्त नहीं कर पाते, वह मुक्ति मैं असुरोंको क्यों प्रदान करूँ? इसके लिए ही देवताओंने कहा—‘वन्दनं ते’ अर्थात् इसमें हमारा कुछ भी कहना नहीं है। हम आपके चरणोंमें करोड़ों प्रणाम निवेदन करते हैं कि आप हमारे प्रति कृपा करके असुरोंको मुक्ति दान करें। क्योंकि बारम्बार असुरोंका अत्याचार सहन नहीं होता है॥ ४० ॥

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमा-
नंशेन साक्षाद्भगवान् भवाय नः।
माभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-
गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः॥ ४१ ॥

अन्वयः—अम्ब (हे मातः!) [जो] भगवान् (सर्वेश्वर) नः (हमारे) भवाय (पालन और समृद्धिके लिए) अंशेन (मत्स्य आदि आंशिक रूपसे) [अवतरित होते हैं, वे] परः पुमान् (पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण) दिष्ट्या (सौभाग्यसे) साक्षात् (स्वयं ही प्रकट हुए हैं, न कि अंश आदिके द्वारा) ते कुक्षिगतः (वात्सल्य रस आस्वादनके लिए तुम्हारे गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं) (इसलिए) मुमूर्षोः (आसन्नमृत्युग्रस्त) भोजपतेः (भोजपति कंससे) भयं मा अभूत् (भय मत करें) तव आत्मजः (तुम्हारे गर्भमें स्थित यह बालक) यदूनां (यदुवंशजात सभीका) गोप्ता (पालन करनेवाला) भविता (होगा)॥ ४१ ॥

अनुवाद—(भगवान्की स्तुति करनेके उपरान्त देवतागण देवकीसे कहने लगे—)हे मातः देवकि! सौभाग्यसे हमारे मङ्गलके लिए साक्षात् परमपुरुष भगवान् बलदेवके साथ आपके गर्भमें आये हैं। अतः मरनेकी इच्छा रखनेवाले कंससे आपको कोई भय नहीं है। आपका पुत्र श्रीकृष्ण यदुवंशका रक्षक बनेगा॥ ४१ ॥

सारार्थदर्शिनी—देवकीं स्तुवन्त आश्वासयन्ति—दिष्ट्येति। अंशेन बलदेवेन सह कुक्षिं गतः। यद्वा, योऽंशेन परः पुमान् प्रकृतीक्षणकर्ता भवेत्, स साक्षाद्भगवानित्यर्थः। भवाय भूत्यै ॥ ४१ ॥

भावानुवाद—‘दिष्ट्या’ आदि श्लोकके द्वारा देवतागण देवकीकी स्तुति करते हुए उन्हें आश्वासन देने लगे। यहाँ ‘अंशेन—अंश सहित’ अर्थात् श्रीबलरामके साथ परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण आपके गर्भमें आये हैं। अथवा, जो अपने अंशके द्वारा ‘परः पुमान्’ अर्थात् प्रकृतिके ईक्षण कर्ता हैं, वे साक्षात् भगवान् अवतरित हो रहे हैं, यह अर्थ है। ‘भवाय’ अर्थात् कल्याणके लिए ॥ ४१ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—ब्रह्मादि देवतागण प्रतिदिन कंस कारागारमें देवकीके गर्भमें विराजमान श्रीगोविन्दकी स्तुति करते थे, परन्तु इसे कोई जान नहीं पाया। ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुतिकी ध्वनिसे देवकीकी निद्रा भङ्ग हो जाती तथा वह विस्मित होकर उनकी ओर देखती रहती। यह देखकर ब्रह्मादि देवता श्रीगोविन्दकी जननी देवकीकी स्तुति करने लगते।

अदृष्टाः पुरुषास्त्रीभि देवकीं देवतागणाः।

विभ्राणां वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामर्हनिशम्॥

(विष्णुपुराण)

अर्थात् जगत्के लोगोंसे अदृश्य होकर ब्रह्मादि देवतागण कंस कारागारमें आकर श्रीकृष्णको गर्भमें धारण करनेवाली देवकीकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्मादि देवताओंने श्रीदेवकीसे कहा—हे मातः! हमें कृतार्थ करनेके लिए स्वयं-भगवान् आपके गर्भमें आये हैं। अतएव मरनेकी इच्छा रखनेवाले कंससे बिन्दुमात्र भी डरनेकी आवश्यकता नहीं है। आपके पुत्र त्रिजगत्का पालन करनेवाले हैं।

‘आविवेशांशभागेन मनः आनकदुन्दुभेः’ अर्थात् श्रीभगवान्ने वसुदेवजीके हृदयमें प्रवेश किया—आदि श्रीशुकदेव (श्लोक १६) के वचनोंसे जाना जाता है कि भगवान् जीवकी भाँति मातृगर्भमें वास नहीं करते हैं। ‘परः पुमान् ते कुक्षिगतः’ अर्थात् स्वयं-भगवान् आपके

गर्भमें आये हैं। उनके ऐसा कहनेका कारण यह है कि वात्सल्य-प्रेमवती देवकीकी धारणा यह है कि श्रीभगवान् पुत्रके रूपमें मेरे गर्भमें आये हैं। 'वे मेरे पुत्र हैं', 'मैं उनकी माता हूँ'। इसलिए 'श्रीभगवान् गर्भमें नहीं आते हैं', 'उनका कोई माता-पिता नहीं है'—आदि कहकर वे देवकीके वात्सल्यप्रेमकी धारणामें बाधा डालना नहीं चाहते हैं ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा।

ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अन्वयः—यद्रूपं (जिन भगवान्का रूप) अनिदं (प्रपञ्चातीत है) (उन) पुरुषं (पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दको) यथा (अपनी बुद्धिके अनुसार) इति (पूर्वोक्त प्रकारसे) अभिष्टूय (हाथ जोड़कर और घुटने टेककर स्तुति करते हुए) देवा (इन्द्र आदि देवतागण) ब्रह्मेशानौ (ब्रह्मा और रुद्रको) पुरोधाय (आगे करके) दिवं (स्वर्गको) प्रतिययुः (गये) ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके द्वितीय अध्यायका

अन्वयः समाप्त।

अनुवाद—देवतागण प्रपञ्चातीत पुरुषोत्तम श्रीविष्णुका इस प्रकार स्तव करते हुए ब्रह्मा और शिवको आगेकर देवलोकको चले गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके द्वितीय अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

सारार्थदर्शनी—यस्य रूपम्, अनिदं प्रपञ्चातीतं चिन्मयमित्यर्थः। अस्मान् वञ्चयित्वा एताविह किमपि रहस्यं अद्भुतं द्रक्ष्यत इति मन्यमाना ब्रह्मेशानौ पुरतः कृत्वा ॥ ४२ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।

द्वितीयो दशमेऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता

द्वितीयोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ २ ॥

भावानुवाद—जिनका रूप 'अनिदम्' अर्थात् प्रपञ्चातीत अर्थात् चिन्मय है, ऐसे भगवान्की स्तुति प्रार्थना करके देवताओंने ब्रह्मा और शिवको आगेकर स्वर्गकी ओर प्रस्थान किया। हमें वञ्चितकर ये ब्रह्मा और शिव यहाँ भगवान्की किसी रहस्यमयी अद्भुत लीलाको देखेंगे, ऐसा माननेके कारण वे उन्हें आगे करके चलने लगे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके दूसरा अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके द्वितीय अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विराचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

भावप्रकाशिका वृत्ति—इस प्रकार ब्रह्मादि देवताओंने गोलोक धामसे भूतलपर अवतीर्ण देवकीके गर्भमें विराजमान भगवान् श्रीगोविन्दकी स्तुति प्रार्थना करनेके पश्चात् अपने-अपने स्थानोंको प्रस्थान किया। जाते समय इन्द्रादि देवताओंने पीछे-पीछे गमन किया, ब्रह्मा और शिवको आगे किया। इसका अभिप्राय यह है कि देवताओंने समझा—हम श्रीगोविन्दकी जननीके समीप आकर भी श्रीगोविन्दका दर्शन नहीं कर सके। क्योंकि हमें भक्तिहीन समझकर उन्होंने दर्शन नहीं दिया। ब्रह्मा उनके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हैं और शङ्कर उनकी अभिन्न मूर्ति हैं। इसलिए हो सकता है कि हमारे जानेके पश्चात् श्रीगोविन्द एकान्तमें उन्हें दर्शन दें। इसलिए हम पहले नहीं जायेंगे। जब वे ब्रह्मा और शङ्करको जब दर्शन देंगे, तब हम भी उनका दर्शन कर लेंगे। इसलिए इन्द्रादि देवताओंने ब्रह्माजी और महादेवजीसे पहले कंस कारागारको छोड़नेका विचार नहीं बनाया ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके द्वितीय अध्यायकी भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

तृतीय अध्यायका कथासार

इस अध्यायमें स्वयं-भगवान् श्रीहरिका स्व-स्वरूपमें आविर्भाव, पिता-माताके द्वारा अपने पुत्रकी भगवत्-ज्ञानसे स्तुति करना एवं कंसके भयसे पिता वसुदेवके द्वारा अपने पुत्रको गोकुल ले जाने आदिका वर्णन हुआ है।

सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी देवकीके गर्भसे स्वयं-भगवान् श्रीहरि अपनी चतुर्भुज मूर्ति प्रकटकर आविर्भूत हुए, यह देखकर श्रीवसुदेव अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए तथा आनन्दमें भरकर उन्होंने मन-ही-मन ब्राह्मणोंको दस हजार गायें दान कर दीं। तदनन्तर अपने पुत्रको स्वयं-भगवान्, परमपुरुष, परमब्रह्म, सर्वान्तर्यामी, बाहर-भीतरके भेदसे रहित, समस्त कारणोंका कारण, प्रकृतिसे अतीत पुरुष परमेश्वर जानकर वे उनकी स्तुति करते हुए कहने लगे—“भगवान् जड़-जगत् और जैव-जगत्की सृष्टिकर परमात्माके रूपमें उसमें अनुप्रविष्ट रहकर भी ब्रह्मस्वरूपमें सबसे अतीत हैं, जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिए वे तीन गुणावतार प्रकट करते हैं।”

श्रीवसुदेवके द्वारा इस प्रकारके ज्ञानमय वचनोंके द्वारा भगवान्की स्तुति करनेपर देवकीने भी पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान्की स्तुति करते हुए कहा कि “उनका अप्राकृत ऐश्वरिक रूप, उनके जन्म, कर्मादि लीलाओंके तत्त्वको न जाननेवाले व्यक्तियोंके दृष्टिगोचर न हों।” देवकीके द्वारा इस प्रकारकी प्रार्थना करनेपर भगवान्ने अपने ऐश्वरिक रूपको सम्बरणकर अपना स्वाभाविक अर्थात् द्विभुज रूप प्रकटित किया तथा श्रीवसुदेव और देवकीको पूर्व दो जन्मोंके विषयमें स्मरण कराते हुए कहा कि वे इसी कृष्णाख्य देहसे ही पहले भी दो बार उनके समक्ष प्रकटित होकर ‘पृश्निगर्भ’ और ‘वामन’ के नामसे विख्यात हुए थे। अब इस तृतीय जन्ममें परिपूर्ण-स्वरूप भगवान् स्वयं उनके गृहमें आविर्भूत हुए हैं।

भगवान्‌के द्वारा श्रीवसुदेव और देवकीके समक्ष इस प्रकार कहनेके पश्चात्‌ श्रीवसुदेवने भगवान्‌की प्रेरणासे सूतिकागृहसे बाहर जानेका सङ्कल्प किया; उसी समय योगमाया यशोदाके गर्भसे आविर्भूत हुई। योगमायाके प्रभावसे श्रीवसुदेवके जानेका मार्ग मुक्त और निर्विघ्न हो गया। श्रीवसुदेव कृष्णको लेकर नन्दव्रजमें उपस्थित हुए। वहाँ भी योगमायाके प्रभावसे सभीको निद्राभिभूत देखकर श्रीवसुदेवने अपने बालकको यशोदाकी शय्यापर रख दिया एवं यशोदाकी कन्याको लेकर वे पुनः कारागारमें लौट आये तथा उस कन्याको देवकीकी शय्यापर रखकर वे पूर्ववत्‌ बेड़ियोंसे आबद्ध हो गये। दूसरी ओर, यशोदा भी योगमायाके प्रभावसे यह नहीं जान पायीं कि उनसे पुत्रने जन्म लिया है अथवा कन्याने। इस प्रसङ्गपर यह अध्याय समाप्त हुआ है।

तृतीयोऽध्यायः

भगवान्का आविर्भाव, पिता-माता द्वारा स्तुति और
उन्हें गोकुलमें लाया जाना

श्रीशुक उवाच—

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ।
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षं ग्रहतारकम् ॥ १ ॥

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोदुगणोदयम् ।
मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥

नद्यः प्रसन्नसलिला हृदा जलरुहश्रियः ।
द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥

मनास्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो समम्^(१) ॥ ५ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) अथ (अनन्तर अर्थात् श्रीभगवान्की जगत्में प्रकट होनेकी इच्छा होनेके साथ-साथ) यर्हि एव (जब) सर्वगुणोपेतः (सर्वगुण-सम्पन्न) परमशोभनः (सर्वाङ्गसुन्दर) कालः (वैवस्वत मन्वन्तरके अट्टाईसवें चतुर्युगके द्वापरके शेष भागमें भाद्र कृष्णाष्टमीके दिन रात्रिके मध्यभागमें जब श्रीभगवान्के आविर्भावका समय उपस्थित हुआ, तब) शान्तर्क्षं ग्रहतारकम् (उग्रदृष्टि आदिसे रहित अश्विनी आदि नक्षत्र, सूर्य आदि ग्रह एवं अन्यान्य तारागणसे युक्त जन्म-सम्पद आदि जिसमें है, वैसा) अजनजन्मर्क्षम्

(१) पाठान्तर—‘दिव’

(‘अजन’ अर्थात् भगवान्, उनसे जन्म लेनेवाले ‘अजनजन्म’ अर्थात् प्रजापति (ब्रह्मा), उन प्रजापतिका नक्षत्र अर्थात् रोहिणी नक्षत्र प्रवृत्त हुआ) ॥ १ ॥

(जब श्रीभगवान्‌के आविर्भावका समय उपस्थित हुआ, तब) दिशः (पूर्व आदि दसों दिशाएँ) प्रसेदुः (प्रसन्न हो गयीं) गगनम् (आकाशमें) निर्मलोदुगणोदयम् (उज्ज्वल रूपसे तारे सुशोभित हो गये) मही (पृथ्वीमें स्थित) मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा (समस्त नगर, गाँव, गोष्ठ अर्थात् गोपोंके आवासस्थान तथा रत्नादिकी खानें आदि नृत्य, गीत, शङ्ख-घोष आदिसे मङ्गलमय साजमें सुसज्जित हो गये) ॥ २ ॥

नद्यः (गङ्गा, यमुना आदि नदियोंका) प्रसन्नसलिलाः (जल अति निर्मल हो गया) हृदाः (सरोवरोंमें) जलरुहश्रियः (कमल प्रस्फुटित होने लगे) वनराजयः (वनसमूह) द्विजालिकुलसन्नादस्तवकाः (पक्षियोंके कूजन तथा मधुपान-मत्त भ्रमरोंके झंकारसे मुखरित तथा विकसित पुष्पश्रेणीसे सुशोभित हो गये) ॥ ३ ॥

[तब] सुखस्पर्शः (शीतलता आदि माधुर्यके द्वारा सुखसेव्य) पुण्यगन्धवहः (विकसित फूलोंके सुगन्धसे सुगन्धित) शुचिः (धूलकण आदिसे रहित) वायुः (मन्द-मन्द वायु) ववौ (दक्षिण दिशासे प्रवाहित होने लगा) तत्र (श्रीभगवान्‌के आविर्भाव-कालमें) द्विजातीनां (याज्ञिक ब्राह्मणोंका) शान्ताः (सन्ध्याकालके समय आहुति प्रदानके पश्चात् मध्यरात्रिमें प्रायः बुझ गयी) अग्नयश्च (होमकुण्ड-स्थित अग्नि) समिन्धत (बिना आहुतिके स्वयं ही दक्षिणावर्तके रूपमें प्रज्ज्वलित हो उठी) ॥ ४ ॥

अजने (कभी अन्य समयमें जन्म लेते हुए नहीं सुने जानेवाले स्वयं-भगवान्‌के) तस्मिन् (समस्त जगत् और वेद-प्रसिद्ध उस) जायमाने (आविर्भावके समयमें) असुरद्रुहाम् (असुरोंको छोड़कर दूसरे सभीके) [एवं] साधूनां (श्रीगोविन्दके भक्तोंके) मनांसि (चित्तमें) प्रसन्नानि (अकस्मात् परमानन्दका) [विकास] आसन् (हुआ) [तथा] समम् (साथ ही) दुन्दुभयः (दुन्दुभियाँ) नेदुः (बजने लगीं) ॥ ५ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—अनन्तर जब सर्वगुणसम्पन्न अतीव रमणीय काल उपस्थित हुआ, अश्विनी आदि नक्षत्र, सूर्य आदि ग्रह एवं अन्यान्य तारागण शान्त—सौम्य हो रहे थे, रोहिणी नक्षत्र उपस्थित हो गया था, सारी दिशाएँ प्रसन्न थीं, निर्मल आकाशमण्डल तारोंसे जगमगा रहा था, पृथ्वीपर स्थित बड़े-बड़े नगर, गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ, हीरे आदिकी खानें अति मङ्गलमय हो रही थीं, समस्त नदियाँ स्वच्छजलसे पूर्ण थीं, रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे एवं वनराजि कोकिलादि पक्षियों तथा भ्रमरोंकी मधुर झंकारसे गूँज रहा था, वृक्षोंकी पंक्तियाँ, रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयी थीं, परम पवित्र और शीतल-मन्द सुगन्ध समीर अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान करता हुआ प्रवाहित हो रहा था एवं याज्ञिक ब्राह्मणोंकी (कंसके अत्याचारसे बुझी हुई) शान्त यज्ञाग्नियाँ पुनः अपने-आप प्रज्ज्वलित हो उठीं, उस समय भगवान् विष्णुके अवतरणका समय उपस्थित होनेपर साधुजनोंका चित्त प्रसन्न हो गया एवं साथ ही स्वर्गमें दुन्दुभियाँ भी अपने-आप बज उठीं ॥ १-५ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

तृतीये देशकालादौ प्रसन्ने श्रीहरेर्जनिः ।
पितृभ्यां संस्तुतिः प्राप्तिर्यशोदासूतिकाग्रहे ॥

यह्यैवाजनस्य प्राकृतजन्मरहितस्य भगवतो जन्मनक्षत्रमभूत्, अथ तदैव, सर्वगुणोपेतः कालोऽभूदित्यन्वयः । श्लेषेण जन्मर्क्षनामाप्याह—अजनान्नारायणाज्जन्म यस्य, सोऽजनजन्मा प्रजापतिः, तस्य ऋक्षं रोहिणीनक्षत्रमित्यर्थः । श्लिष्टत्वेनोक्तिः ‘जन्मर्क्षं न प्रकाशयेत्’ इति नीतिशास्त्ररीत्या गोपनार्था । कीदृशं? शान्तानि ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि ग्रहाश्च तारकाश्च यस्मिंस्तत् ॥ १ ॥

सर्वगुणोपेतत्वमाह—दिश इति । वर्षास्वपि शरदो गुण उक्तः । तत्र सर्वाणि तत्त्वानि प्रसन्नानि । तत्र महाभूतस्योर्ध्वस्थस्य प्रसादमाह—गगनमिति । अधस्थस्य प्रसादमाह—महीति ॥ २ ॥

मध्यस्थानां त्रयाणां प्रसादमाह—नद्य इति द्वाभ्याम् । जलरुहश्रिय इति रात्रावपि दिवसस्य गुणः । द्विजालिकुलानां सन्नादः स्तवकाश्च यासु ता इति । वर्षास्वपि वसन्तस्य गुण उक्तः । सुखस्पर्श इति शैत्यं, पुण्येति सौरभ्यम् । ‘पुण्यन्तु चार्वापि’ इत्यमरः । शुचिर्निर्मल इति धूल्याद्यसम्बन्धेन मान्द्यमुक्तम् । शान्ता निर्वाणप्राया

अपि समिन्धत, अडागमाभाव आर्षः। सम्यग्दक्षिणावर्तत्वेन उद्दीप्ता बभूवुरिति द्वापरेपि त्रेताया गुण उक्तः ॥ ३-४ ॥

मनांसि मनो बुद्धीन्द्रियादीन्यपि तत्त्वानीत्यर्थः। असुरद्रुहामित्यसुरकर्तृकद्रोहवत्त्वेन साधूनामपि मनांसि पूर्वं अप्रसन्नान्येवासन्निति भावः। जायमाने आसन्न-प्रादुर्भावे, अजने श्रीकृष्णे ॥ ५ ॥

भावानुवाद—इस तृतीय अध्यायमें देश-काल आदिके प्रसन्न होनेपर श्रीहरिका आविर्भाव, वसुदेव-देवकीकी स्तुति एवं पुत्रको यशोदाके सूतिका-गृहमें ले जाना—आदिका वर्णन हुआ है।

‘यर्ह्येवाजनजन्मर्क्ष’—जिस समय प्राकृत जन्मरहित श्रीभगवान्का जन्म-नक्षत्र उपस्थित हुआ, ऐसे समयमें सर्वगुण-सम्पन्न परम रमणीय समय उपस्थित हुआ, यह अन्वय है। श्लेष-अर्थमें जन्म-नक्षत्रका नाम भी उल्लेख किया गया है—‘अजन’ अर्थात् जन्मरहित श्रीनारायणसे ‘जन्म’ अर्थात् जिनका जन्म हुआ है, ऐसे ‘अजनजन्म’ अर्थात् प्रजापति (ब्रह्मा) हैं। उनका नक्षत्र कहनेसे अर्थात् ‘रोहिणी’ नक्षत्र है। श्लेष रूपसे कहनेका तात्पर्य—“जन्मके नक्षत्रको प्रकाश नहीं करना चाहिये”—इस नीति-शास्त्रकी रीतिके अनुसार उसे गोपन करनेके लिए ऐसा कहा गया है। कैसा जन्म-नक्षत्र? इसके लिए कह रहे हैं—‘शान्तर्क्षं ग्रहतारक’—अश्विनी आदि नक्षत्रगण, रवि आदि ग्रहगण एवं दूसरे तारका आदि जिसमें शान्तभाव धारण किये हुए हैं।

सर्वगुणयुक्त कहनेका तात्पर्य यह है कि दिशः आदि—दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। इससे वर्षाकालमें भी शरत्-कालके गुणोंका वर्णन हुआ है। पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि और आकाश—सभी तत्त्व प्रसन्न हो गये। इसमें ऊर्ध्व-स्थित महाभूत अर्थात् आकाशकी प्रसन्नता दिखला रहे हैं। ‘गगन’—गगन-मण्डल उज्ज्वल नक्षत्रोंसे जगमगाने लगा। नीचे स्थित महाभूत (पृथ्वी) की प्रसन्नता भी दिखा रहे हैं। ‘मही’—पृथिवीपर गाँव, नगर, गोष्ठ और खानें मङ्गलमय हो गये।

मध्यमें स्थित तीन महाभूतों (जल, पवन और अग्नि) की प्रसन्नता ‘नद्यः’ आदि दो श्लोकोंमें कह रहे हैं। ‘जलरुहश्रियः’ अर्थात् तालाबसमूह कमलदलोंसे सुशोभित हो गया—इससे रात्रिमें भी दिनका गुण उक्त हुआ है। ‘द्विजालिकुलसन्नादस्तवकाः’ अर्थात् पक्षियों और

भ्रमरोंके झंकार तथा कूजनसे तथा रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पगुच्छोंसे लदे वृक्षोंकी पंक्तियोंसे वनश्रेणी शोभा पाने लगी। इससे वर्षाकालमें भी वसन्त ऋतुका गुण प्रकाश होने लगा। 'सुखस्पर्शः'—इससे शीतलता और 'पुण्यगन्ध' आदि द्वारा सौरभ्य भी प्रकाश होने लगा। अमरकोषमें 'पुण्य' शब्दका 'चारु अर्थात् सुन्दर' अर्थ भी लिखा गया है। 'शुचिः' अर्थात् निर्मल हो गया। इसमें धूल आदिका सम्बन्ध न रहनेसे मान्द्य कहा गया है। अर्थात् उस समय पवित्र गन्धवाही, शीतलता गुणयुक्त, सुखस्पर्श और धूल आदिसे रहित निर्मल वायु भी प्रवाहित होने लगी। 'शान्ता'—साग्निक या याज्ञिक ब्राह्मणोंकी बुझी हुई हवनाग्नि भी अपने-आप प्रज्ज्वलित हो उठी। यहाँ निर्वाण-प्राय अग्नि भी पूर्ण रूपसे दक्षिणावर्तमें प्रज्ज्वलित हो उठी। इससे द्वापर युगमें भी त्रेतायुगके गुण प्रकाश होने लगे।

'मनांसि' अर्थात् मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि तत्त्वसमूह भी प्रसन्न हो गये। देवताओं तथा साधुओंके मन प्रफुल्लित हो उठे। 'असुरद्रुहाम्'—असुरोंके द्वारा पीड़ित होनेसे साधुओंका भी मन पहले अप्रसन्न ही था, यह भाव है। 'अजने' अर्थात् जन्मरहित भगवान् श्रीकृष्णके 'जायमाने' अर्थात् आविर्भावका समय उपस्थित होनेपर स्वर्गमें भी अपने-आप दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ १-५ ॥

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।

विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं मुदा^(१) ॥ ६ ॥

अन्वयः—तदा (श्रीभगवान्के आविर्भावके समयमें) किन्नरगन्धर्वाः (किन्नर और गन्धर्व नामके स्वर्गके गायकगण) जगुः (परमानन्दमें श्रीगोविन्दका गुणगान करने लगे) सिद्धचारणाः (सिद्ध और चारण नामके देवतागण) तुष्टुवुः (श्रीगोविन्द माहात्म्य-सूचक स्तव करने लगे) विद्याधर्यश्च (स्वर्गकी नर्तकी—विद्याधरियाँ) अप्सरोभिः समं (ऊर्वशी, मेनका आदि अप्सराओंके साथ मिलकर) मुदा (परमानन्दमें) ननृतुः (नृत्य करने लगीं) ॥ ६ ॥

(१) पाठान्तर—'तदा'

अनुवाद—किन्नर एवं गन्धर्वगण आनन्दमें डूबकर मधुर-स्वरसे मङ्गलगान करने लगे, सिद्ध एवं चारुणगण स्तव करने लगे एवं विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ हर्षपूर्वक नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।

मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥

निशीथे तम-उद्भूते जायमाने जनार्दने ।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।

आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥

अन्वयः—देवाः (इन्द्रादि देवतागण) मुनयः (नारदादि मुनिगण) अन्विताः (परस्पर मिलकर) मुदा (आनन्दके साथ) सुमनांसि (नन्दन-काननके पारिजात पुष्पोंकी) मुमुचुः (वर्षा करने लगे) जलधराः (सजल जलधरवृन्द (बादल) अनुसागरम् (समुद्र-गर्जनके साथ) मन्दं मन्दं (मृदु मन्दनादके साथ) जगर्जुः (गर्जन करने लगे) ॥ ७ ॥

जनार्दने (श्रीब्रह्मादि भक्तजनोंके द्वारा की गयी प्रार्थनाके अनुसार प्रकट होनेवाले स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके) जायमाने (आविर्भावके समय) तम उद्भूते (सर्वत्र घनअन्धकार व्याप्त होनेपर) निशीथे (अर्द्धरात्रिके समय) देवरूपिण्यां (श्रीभगवान्के रूप जैसा सच्चिदानन्द-विग्रह अर्थात् विशुद्धसत्त्व मूर्ति) देवक्यां (देवकी नामकी श्रीवसुदेव पत्नीसे) प्राच्यां दिशि (पूर्व दिशामें) पुष्कलः (सोलह कलायुक्त) इन्दुः इव (चन्द्रकी भाँति) सर्वगुहाशयः (जो समस्त वैकुण्ठ आदि धामोंमें तथा समस्त जीवोंके हृदयमें श्रीभगवत्-रूपमें, अन्तर्यामीरूपमें और ब्रह्मरूपमें निश्चल होकर अवस्थान करते हैं, ऐसे भगवान्) विष्णुः (प्राकृत-अप्राकृत सर्वव्यापक श्रीकृष्ण) यथा (नरलीलाका अतिक्रम न करके मनुष्य जन्मके अनुकरणके द्वारा) आविरासीद् (प्रकट हुए) ॥ ८ ॥

अनुवाद—देवता एवं ऋषि-मुनि आनन्दमें भरकर पुष्प-वृष्टि करने लगे। जलसे भरे मेघ समुद्रके समीप जाकर मन्द-मन्द गर्जन करने लगे। भाद्र माहकी अष्टमीकी रातका समय था। जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनका आविर्भाव होनेवाला था। चारों ओर

घोर अन्धकारका साम्राज्य था। उस अन्धकारमय अर्द्धरात्रिमें श्रीजनार्दनके अवतीर्ण होनेके लिए उपक्रम करनेपर बादलसमूह समुद्रका अनुकरण करते हुए मन्द-मन्द रूपसे गर्जन करने लगे। उसी समय पूर्व दिशामें उदित सोलह कलाओंसे पूर्ण चन्द्रके समान सभी जीवोंके हृदय-गुहामें विराजमान श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी देवकीदेवीके गर्भसे आविर्भूत हुए ॥ ७-८ ॥

सारार्थदर्शिनी—अनुकृतः सदृशीकृतः, सागरः सागरगर्जनं, तद्यथा स्यात्तथा। ननु, 'दिशः प्रसेदुः' इति, 'गगनं निर्मलोद्गुणोदय' इति पूर्वोक्तेः, जलधराः खलु कदा जगज्जुरित्यपेक्षायामाह—निशीथ इति। तमसा उत्कर्षेण भूते व्याप्ते इति निशीथ एव मध्ये गगनं मेघखण्डोद्गमात्; भू प्राप्तावित्यस्य रूपम्। जनानां सर्वज्ञभक्तमुनिदेवादीनाम्, अर्दने 'भगवन्! आविर्भव समयोऽयं' इति याचने जायमाने सति। देवरूपिण्यां, विष्णुरूपिण्यामिति च पाठः। देवस्य विष्णोरिव रूपं सच्चिदानन्दघनं वर्तते यस्या, तस्याम्; आविरासीत् प्रकटीबभूव। सर्वासु गुहासु गुहावदगम्यस्थानेषु मथुराविकुण्ठादिषु जीवान्तःकरणेषु च सर्वजनपरोक्षत्वाच्छेते इति सः। अन्यो बालको यथा गर्भाद्यन्त्रितः सन्निःसरति, तथा नेत्यत्र दृष्टान्तः—यथेति। किञ्च, दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोर्युगपदेव आविर्भावमाह—तद्दिने निशीथे प्राच्यां दिशि अष्टम्या इन्दुरपुष्टोऽपि मद्दंशं मत्प्रभुर्जन्मना अलञ्चकारेत्यानन्दोद्रेकेण पुष्कलः पूर्णिमाया इन्दुरिव पुष्कलः सन् यथा आविरासीत्तथैव देवक्यां विष्णुरपि सर्वांशकला-परिपूर्ण आविरासीदित्यन्वयः। आविर्भावश्च कंसवञ्चनाद्यर्थमष्टमे मासि, यदुक्तं हरिवंशे—'गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ। देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥' इति। खमाणिक्यनाम्नि ज्योतिर्ग्रन्थे जन्मपत्री चोक्ता—'उच्चस्थाः शशिभौमचान्द्रिशनयो लगनं वृषो लाभगो जीवः सिंहतुलाविषुक्रमवशात् पूषोशनो राहवः। नैशीथः समयोऽष्टमी बुधदिनं ब्रह्मर्क्षमत्र क्षणे श्रीकृष्णाभिधमम्बुजेक्षणमभूदाविः परं ब्रह्म तत्॥' इति ॥ ७-८ ॥

भावानुवाद—'अनुसागरम्'—सागर जैसे गरजता है, वैसे ही सागरका अनुकरणकर बादल भी धीरे-धीरे गरजने लगे। यदि प्रश्न हो कि पहले जब ऐसा कहा गया है—'दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं', 'गगनमें निर्मल तारकाएँ सुशोभित होने लगीं', तब मेघका गर्जन कैसा हुआ? इसके उत्तरमें 'निशीथे तम उद्भूते' आदि पद कह रहे हैं, अर्थात् इसका कारण है कि घोर अन्धकारके द्वारा समाच्छन्न अर्द्धरात्रिके समय गगनमें मेघखण्डका उदय हुआ था। यहाँ 'भू' धातुका प्रयोग

प्राप्तिके अर्थमें हुआ है। 'जनार्दने'—श्रीकृष्णके आविर्भावके लिए सर्वज्ञ, भक्त, मुनि और देवताओंके, हे भगवन्! आप इस समय प्रकट हों, प्रकट हों! ऐसा कहकर प्रार्थना करनेपर 'जायमाने' (आविर्भूत होनेके लिए उद्यत श्रीभगवान्)। 'देवरूपिण्याम्'—यहाँ पाठान्तरमें—'विष्णुरूपिण्याम्' भी मिलता है। 'देवरूपिण्याम्' अर्थमें—विष्णुकी भाँति सच्चिदानन्दघन स्वरूप जिनका है, ऐसी देवकीके गर्भसे भगवान् आविर्भूत हुए। 'सर्वगुहाशय'—जो कन्दराकी भाँति अगम्य और दुर्वितर्क्य स्थान मथुरा, वैकुण्ठादिमें एवं समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें सबके अदृश्य-रूपमें अति गूढ़ रूपसे शयन करते हैं, वे देवकीके गर्भसे आविर्भूत हुए। परन्तु दूसरे-दूसरे शिशु जैसे मातृगर्भसे भूमिष्ठ होते हैं, वैसे भगवान् गर्भसे भूमिष्ठ नहीं हुए। इस विषयमें 'यथा' आदि पदके द्वारा उदाहरण भी प्रस्तुत कर रहे हैं—'यथा प्राच्यां दिशि'—जैसे पूर्व दिशामें पूर्णचन्द्रका उदय होता है, वैसे ही भगवान्का भी उदय हुआ है।

यहाँ दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक—दोनोंका एक साथ आविर्भाव कहा गया है। उस दिन निशाकालमें पूर्व दिशामें अष्टमीका चाँद अपुष्ट (क्षीण) होनेपर भी—'मेरे वंशको प्रभु जन्मके द्वारा अलंकृत कर रहे हैं'—इस आनन्दमें भरकर 'पुष्कलः' अर्थात् पूर्णिमाका चन्द्र जैसे पूर्णरूपमें उदित होता है, वैसे ही देवकीके गर्भसे विष्णु भी सर्वांश-कलासे परिपूर्ण होकर आविर्भूत हुए, ऐसा अन्वय है। और उनका आविर्भाव कंस आदि असुरोंकी वञ्चनाके लिए आठवें महीनेमें ही हुआ, जैसे 'हरिवंश' (४९ वें अध्याय) में वर्णन हुआ है—“गर्भकालके असम्पूर्ण अवस्थामें आँठवें महीनेमें देवकी और यशोदा दोनोंने एक ही समयमें सन्तान प्राप्त की थी।” (यहाँ विशेषता यह है कि—श्रीदेवकीके गर्भसे चतुर्भुजरूपमें श्रीविष्णु एवं श्रीयशोदाके गर्भसे द्विभुजरूपमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए थे।) 'खमानिक्य' नामके ज्योतिष ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी जन्मपत्रीका उल्लेख इस प्रकार हुआ है—“जब चन्द्र, मङ्गल, बुध और शनि उच्च स्थानोंमें स्थित थे, वृषलग्न, बुधवार, अष्टमी तिथि और रोहिणी नक्षत्र था, तब पद्मलोचन परब्रह्म श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए।” इत्यादि ॥ ७-८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान्की अपार करुणासे आज जगत्के भाग्यचक्रमें एक परम सुन्दर परिवर्तन हुआ। असुरोंके अत्याचारसे निपीड़ित, कामना-वासना, दुःख-दारिद्र्य, दैन्य, अभाव, अभियोग आदिकी तीव्र मारसे जर्जरित, अभिमानके लीलाक्षेत्र, बहिर्मुखता और जड़वादमें जकड़े हुए प्रेम-रसविहीन जड़-जगत्में भगवान्ने अपने घनीभूत परमानन्दमय लीला-विग्रहको प्रकट करनेकी इच्छा की।

वैवस्वत मन्वन्तरीय अष्टादशवें चतुर्युगके द्वापरके शेष भागमें भाद्र महीनेकी कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने मधुर लीलाके आविर्भाव-समयकी सीमाका निर्देश करनेके लिए कालको अङ्गीकार किया। काल भी उस समय परमानन्दमें मग्न होकर समस्त सद्गुणोंसे विभूषित होकर श्रीगोविन्दके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा।

‘अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः’—श्रीशुकदेवजीने भुवन-मङ्गल श्रीगोविन्दकी जन्म-लीला-कथाके प्रारम्भमें शङ्ख-ध्वनि, हुलु-ध्वनि एवं हरि-ध्वनिकी भाँति ‘अथ’ इस माङ्गलिक ध्वनिका उच्चारण किया।

ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।

कण्ठं भित्ता विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें ‘ॐकार’ और ‘अथ’ ये दो शब्द ब्रह्माके कण्ठको भेदकर स्वयं उच्चरित हुए थे। इसलिए ये दो शब्द मङ्गलप्रद हैं।

पृथ्वीमें श्रीगोविन्दकी आगमन-वार्ताको जानकर काल आज चुन-चुनकर अपने समस्त सद्गुणोंको एकत्रितकर सुशोभित हुआ है। वसन्तका मलय पवन, कोकिलोंका कूजन, भौरोंका गुञ्जन, आम्र-मुकुल, अशोक, चम्पकका दिलभरा हास्य, वर्षाका कदम्बानिल, शरत्की स्वच्छता, हेमन्तकी मालती, शिशिरके कुन्द-कुसुम, दिनकी नलिनी (कमल), निशीथकी कुमुदिनी, पूर्वाह्नकी देवपूजा, कर्म प्रवृत्ति, मध्याह्नके आत्मीय जनोंके साथ भोजनकी तृप्ति, अपराह्नका विश्राम-सुख, सायाह्नका आनन्द-उत्सव, निशीथका शान्त-भाव, रात्रि शेषका जागरण,

सत्ययुगकी तपस्या, त्रेताका यज्ञ, द्वापरकी परिचर्या, कलिका हरि-सङ्कीर्तन आदि कालके भाण्डारमें जितने भी सद्गुण थे, उन सबको अपने अङ्गोंमें धारणकर काल सर्वाङ्गसुन्दर रूपमें प्रकाशित हुआ।

सूर्यादि नवग्रह, अश्विनी, भरणी आदि सत्ताइस नक्षत्र—उग्र, शान्त, वक्र, उच्च, नीच आदि अनेकों प्रकारसे अवस्थित होकर कालका साथ देते रहते हैं। इसलिए इन्हें कालका सहचर कहा जाता है। कर्मफलके अनुसार काल जिसे जैसे सुख-दुःख आदि भोग करानेको प्रवृत्त होता है, वैसे ही ये ग्रह-नक्षत्र आदि कभी उग्र, कभी शान्त, कभी वक्र रूपसे रहकर कालका साथ देते रहते हैं। इसलिए गोविन्दकी आगमन-वार्त्ता जानकर काल सर्व सद्गुणोंसे परिमण्डित हुआ है, यह देखकर ग्रह-नक्षत्रोंने भी अपनी-अपनी उग्रता आदिको छोड़कर शान्त भाव धारण किया। कोई वक्रगतिमें, कोई अतिचार, कोई महातिचार गतिमें अपने-अपने उच्चस्थानमें अवस्थित होकर श्रीगोविन्दके आगमनका अभिनन्दन करने लगे एवं श्रीगोविन्दकी लीलाके लिए अनुकूल बनने लगे।

‘यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षं ग्रहतारकम्’—श्रीगोविन्दके जन्म समयमें रोहिणी नक्षत्र उपस्थित हुआ। अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रोंमें रोहिणी नक्षत्र ही धन्य है, क्योंकि भगवान्ने उसीको जन्म-नक्षत्रके रूपमें अङ्गीकार किया है। रोहिणी नक्षत्रके अधिष्ठाता प्रजापति भी धन्य हैं। उनका अधिष्ठित रोहिणी नक्षत्र भी श्रीकृष्णका जन्म-नक्षत्र है। दो पक्षोंमेंसे कृष्णपक्षको, तिथियोंमें अष्टमीको एवं वारमें भी बुधवारको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

श्रीकृष्णके जन्मके विषयमें परम सौभाग्यशाली नक्षत्रको श्रीशुकदेवजीने अति गुप्त रूपमें प्रकाश किया है। इसलिए ‘अजनजन्मर्क्षं’—इस गुप्त अर्थके द्वारा रोहिणी नक्षत्रका नाम प्रकाश किया है। जिनका प्राकृत जीवकी भाँति जन्म नहीं होता है, वे ‘अजन’ अर्थात् श्रीभगवान् हैं। उनके नाभि-कमलसे जिनका जन्म हुआ है, वे ‘अजन-जन्मा’—ब्रह्माजी हैं। वे जिस नक्षत्रके अधिष्ठाता हैं—वह रोहिणी नक्षत्र है। नीतिशास्त्रमें यह वर्णन है—‘जन्मर्क्षं न प्रकाशयेत्’ अर्थात् अपना अथवा अपने प्रियजनके जन्म-नक्षत्रको कदापि प्रकाश नहीं करना चाहिये। इसलिए

श्रीशुकदेव गोस्वामीने अपने परम प्रिय श्रीगोविन्दके जन्म-नक्षत्रको गुप्त रखनेके लिए, स्पष्ट रूपसे रोहिणी नक्षत्रका नाम-उच्चारण न करते हुए 'अजनजन्मक्ष' कहा है।

श्रीभगवान्के जन्म-समयमें ग्रह, नक्षत्र आदिने उग्रताका परित्यागकर शान्त भाव धारण किया। गरुड़की आगमनवार्ता जानकर विषधर सर्प जैसे भीषण गर्जन और विष उगलना छोड़कर शान्तभाव धारण करते हैं, वैसे ही श्रीभगवान्की आगमनवार्ता जानकर जीवोंके दुःखदायक शनि, राहु, केतु आदि पाप-ग्रहोंने भी शान्तभाव धारण कर लिया। श्रीकृष्णके जन्म-समयमें चन्द्र, मङ्गल, बुध और शनि उच्चस्थानपर अवस्थित थे। उस समय वृषलग्न एवं बृहस्पति वृषराशिमें, सूर्य सिंह राशिमें, शुक्र तुला राशिमें एवं राहु वृश्चिक राशिमें अवस्थित थे। उस दिन अष्टमी तिथि, बुधवार और रोहिणी नक्षत्र था। इन सभी शुभयोगोंमें निशीथ अर्द्धरात्रिके परब्रह्म श्रीकृष्ण इस भूतलपर अपने नित्यधाम मथुरामें आविर्भूत हुए।

जगत्में कोई भी कार्य होता है तो उसके लिए देश, काल, पात्र और दिशाकी अपेक्षा रहती है। उसके बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है। परन्तु भगवान्की लीलामें काल, दिक् और देशकी कोई बाध्य-बाधकताका नियम नहीं है, क्योंकि वे स्वयं सबके नियामक हैं। जब वे जन्म ग्रहण करते हैं, तब वे अनुग्रहकर काल, दिक्, देशका सम्बन्धमात्र ग्रहण करते हैं। इसलिए काल, दिक्, देश भी धन्य हो जाते हैं। भगवान्के आविर्भावके समयमें वे भी समस्त सद्गुणोंसे सुसज्जित हो जाते हैं।

‘दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्’—जगन्नियन्ता श्रीगोविन्दकी आगमनवार्ता जानकर पूर्व आदि दशों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। कहीं कोई मलिनता नहीं रही, सर्वत्र परमानन्दपूर्ण स्वच्छता थी। दिक्-पतिगण परमानन्दमें जगत्-पतिके आगमनका अभिनन्दन करनेके लिए सर्वदिक्को सुसज्जितकर दिशारूप बधुओंके सहित हाथमें अर्घ्यपात्र लेकर प्रतीक्षा करने लगे। गगनमें अनगिनत तारकाएँ जगमगाने लगीं। मानो वे अपने-अपने अङ्गपात्रमें रत्न-कुसुम आदिको सजाकर विष्णुके चरण-कमलोंमें अञ्जलि देनेके लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही हैं।

काल और दिशाओंकी भाँति देश भी मङ्गलमयी सज्जाकी साजमें सुसज्जित हो गया एवं भूः, भुवः, स्वः आदि सभी देश आनन्दमें विभोर हो गये और मङ्गलसे परिपूर्ण हो गये।

‘मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकराः’—पृथिवीके समस्त नगर, ग्राम, गोष्ठ आदि आनन्द और मङ्गलकी क्रीड़ाभूमि हो गये। पुत्रके जन्म आदि अनेकों बहानेसे नगरके राजमार्ग परिष्कृत और मार्जित हो गये, धनियोंके भवन आलोक सज्जासे सुसज्जित हो गये। अनेकों स्थानोंपर शङ्ख-ध्वनि, वाद्य-ध्वनि होने लगी। कहीं पूजादिके उपलक्ष्यमें स्तुति-स्तव आदि होने लगे। इस प्रकार पृथ्वीके नगर-ग्राम आदिमें सर्वत्र ही आनन्द व्याप्त हो गया।

‘नद्यः प्रसन्नसलिला हृदा जलरुहश्रियः’—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, शोण, सिन्धु आदि नद-नदियोंकी वर्षाकालीन मलिनता दूर हो गयी, मानो उन्हें अपने जन्मस्थान—पर्वत कन्दरासे आनन्दका कोई एक गुप्त संवाद प्राप्त हुआ है। इसलिए कलनादसे तटभूमिके कानोंमें उसे कहने लगीं तथा उत्ताल तरङ्गरूपी भुजाओंको उठाकर नृत्य करती हुई तीव्र वेगके साथ समुद्रकी ओर उस सुखद संवादको कहनेके लिए जा रही हैं।

हृदोंमें (तालाबोंमें) अनगणित कमल विकसित होने लगे। उस सीमाबद्ध जलाशयके ऊपर मानो श्रीकृष्णकी कृपा हुई है। इसलिए कमल अपने विकासके छलसे असंख्य श्रवण-नयनोंको फैलाकर उन नद-नदियोंके कलध्वनिको सुन रहे हैं तथा आनन्द उच्छ्वास ले रहे हैं।

वनमालीकी आगमनवार्ता जनहीन वनभूमिमें भी पहुँच गयी है। इसलिए वहाँ भी आनन्द कोलाहल मचा हुआ है। अरण्यकी शोभा कोई देखनेवाला नहीं है, फिर भी उन्होंने सजानेमें कोई कमी नहीं रखी। शाल, ताल, तमाल, आम्र, पियाल, अशोक, चम्पक, बकुल, वट (वरगद), अश्वत्थ (पीपल) आदि वृक्षसमूह अपने पुराने पत्तोंको फेंककर नये-नये पल्लवोंसे सुशोभित हो गये। पल्लवोंके अग्रभागमें नये-नये गुच्छ, मुकुल, मध्यभागमें प्रस्फुटित कुसुम स्तवककी आकृति धारणकर मृदु-मन्द पवनके हिल्लोलमें नृत्य करने लगे।

जाति-युथी, मल्लिका, मालती आदि पुष्पोंने अपने-अपने अङ्गोंको सम्पूर्ण रूपसे पत्रशून्य बनाकर फूलोंसे ढक लिया है। सुप्त भ्रमरकुल मानो स्वप्नयोगमें न जाने क्या देखकर गुप्त आनन्दके संवादसे चमकित होकर गुन्-गुन् शब्दोंसे फूलोंके निकट जाकर पूछने लगे। इधर वृक्षोंमें बने हुए घोंसलोंमें सुप्त विहङ्गकुल भ्रमरोंकी झंकारसे जाग्रत होकर आनन्दका कारण जाननेके लिए एक वृक्षसे दूसरे वृक्षोंपर जाने लगे। असमयमें आम्र-मुकुल देखकर कोकिलकुलके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रही। इसलिए वे भी पञ्चम तानसे गाने लगे। इस प्रकार आनन्द-कन्दके पूर्ण विकाससे वनभूमि भी आनन्दमयी बन गयी।

श्रीगोविन्दके आगमनके आनन्दसे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। सागर, भूधर, आकाश, समीर, ग्राम, नगर, वन, उपवन, स्वर्ग, मर्त्य—सर्वत्र ही लोग आनन्दमें विभोर होकर श्रीगोविन्दके गुण-गानमें झूम उठे। इसलिए देवतागण भी नन्दन-काननके पारिजात पुष्पोंका चयनकर पृथ्वीपर वर्षा करने लगे।

‘निशीथे तम-उद्धृते जायमाने जनार्दने’—ब्रह्मादि देवगण सदा-सर्वदा श्रीभगवान्की प्रकटलीला दर्शन करनेके लिए उनके चरणोंमें आर्त्ति निवेदन करते हैं—इसलिए उनका नाम जनार्दन है। उन जनार्दनने अजन्मा होकर भी भक्तजनोंकी प्रार्थना पूर्ण करनेके लिए जब जन्म ग्रहण करनेकी इच्छा की, तब अर्द्धरात्रिका समय था। मथुरानगरी उस महा-निशाके घने अन्धकारमें डूबी हुई थी एवं कंस आदि बहिर्मुख जनोंके मोहान्धकारने घनीभूत और विस्तृत होकर मानो उस मथुरानगरीको ग्रास कर लिया था। कहीं भी किसी प्रकारका शब्द नहीं हो रहा था। राजमार्गमें स्थान-स्थानपर निद्रामें अचेत होकर प्रहरीवृन्द सब-के-सब अपने-अपने वीरत्वके गर्वका विसर्जन देकर धूलमें धूसरित होकर पड़े हुए थे। कंस-कारागारके लौह किवाड़ भी दृढ़से दृढ़तर रूपमें आबद्ध होकर मानो यही कह रहे हैं कि यहाँ किसीको भी प्रवेशका अधिकार नहीं है। कारागारके पहरेदार अपने-अपने कर्तव्यको भूलकर निद्रामें अचेत होकर द्वारप्रान्तमें ही सो गये।

केवलमात्र कारागारमें शृंखलाबद्ध वसुदेवजी और देवकी जाग्रत हैं। उनके मुखमें कोई वाणी नहीं, हृदयमें कोई स्पन्दन तथा शरीरमें कोई चञ्चलता नहीं है। किसी एक अपूर्व भावावेशमें विभोर होकर वे उस अँधेरी रातमें चुप-चाप बैठे हुए हैं। उनके प्रेम-शृंखलमें अज्ञात जगत्के कोई बँध गये हैं, उनके स्पर्श-सुखने दूरसे विद्युत शक्तिकी भाँति सञ्चरित होकर उन्हें स्तब्ध कर दिया है।

भाद्र महीनेकी कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिके घने तिमिराच्छन्न निस्तब्ध अर्द्धरात्रिमें मायामें मत्त बहिर्मुख कंस आदि असुरोंको निद्रामें अचेत, भक्तोंको परमानन्दमें जाग्रत एवं आकाश, पवन, समुद्र, पर्वत, अरण्य आदिको परमानन्दमें विभोर देखकर ब्रह्मादि देवतागण भगवान्से प्रार्थना करने लगे।

ऐसे भाद्र कृष्णाष्टमीकी अर्द्धरात्रिमें उपयुक्त समय जानकर श्रीभगवान्ने भी विलम्ब नहीं किया। वे वसुदेव-देवकीकी वासनाको पूर्ण करनेके लिए कंसके कारागारमें अवतीर्ण हुए।

पूर्व दिशामें जैसे पूर्णचन्द्रका प्रकाश होता है, वैसे ही देवरूपिणी देवकीके गर्भसे सर्वगुहाशय सर्वव्यापी श्रीगोविन्द आविर्भूत हुए।

जो जगत्को कृतार्थ करनेके लिए जगत्में अवतरित हुए हैं, उनके चरणोंमें शरणागत होकर 'देवक्यां देवरूपिण्यां' श्लोकको देखनेसे समझा जाता है कि श्रीभगवान् देवकीनन्दन होकर भी स्वप्रकाश, पूर्ण एवं सर्वव्यापी हैं।

इसमें वैष्णव-तोषणीकारने 'देवरूपिण्यां' शब्दका अर्थ इस प्रकार किया है—'देवस्य श्रीभगवतो रूपमिव रूपं सच्चिदानन्द विग्रहः तद्वत्त्वामिति तद्वदाविर्भावेऽपि न कश्चिदोषः।' अर्थात् नाना प्रकारके विचित्र लीलामय श्रीभगवान्का नाम 'देव' है। उनका रूप अर्थात् श्रीमूर्ति सच्चिदानन्दमय है। यह 'ईश्वरः परम कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः' (श्रीब्र० सं० १) अर्थात् परम ईश्वर श्रीकृष्णका श्रीविग्रह सच्चिदानन्द है आदि श्लोकोंसे स्पष्ट समझा जाता है। देव अर्थात् भगवान्के रूपकी भाँति जिसका रूप है, उसका नाम देवरूप है। ऐसा देवरूप जिसका है, उसका नाम देवरूपिणी। इससे स्पष्ट होता है कि देवकीका देह भी हमारे जैसा प्राकृत नहीं है। वह भी सच्चिदानन्दमय

है। अतएव श्रीदेवकीसे श्रीभगवान्‌का प्रकाश होनेके कारण भगवान्‌के स्वप्रकाशताकी हानि नहीं होती। श्रीभगवान्‌ सच्चिदानन्दघन-विग्रह हैं, उनका प्रकाश सच्चिदानन्दसे ही होता है। अतएव वे स्वप्रकाश हैं।

श्रीजीव गोस्वामिपादने अपने क्रम-सन्दर्भकी टीकामें कहा है—‘देवो वसुदेवस्तद्रुपिण्यां शुद्धसत्त्ववृत्तिरूपायामित्यर्थः’—अर्थात् देव शब्दके द्वारा वसुदेवजीको ही समझा जाता है। ‘सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं’ (श्रीमद्भा० ४/३/२३) अर्थात् विशुद्धसत्त्वका नाम ‘वसुदेव’ है एवं विशुद्धसत्त्व श्रीभगवान्‌की स्वप्रकाशिका शक्तिका नामान्तर है।

‘तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति’ (श्वे० उ० ६/१४)—इस श्रुति-वाक्यसे जाना जाता है कि श्रीगोविन्दकी अङ्गज्योतिसे ही चन्द्र-सूर्य आदि सभी ज्योतिष्मान हैं एवं उनकी अङ्गच्छटासे सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। श्रीभगवान्‌का कोई प्रकाशक नहीं है। वे स्वयं ही प्रकाश होते हैं। इसलिए वे स्वप्रकाश हैं। जिस शक्तिसे भगवान्‌ स्वप्रकाश हैं, उस शक्तिका नाम स्वप्रकाशिका-शक्ति या विशुद्धसत्त्व है।

पिता-माता अपने गर्भस्थित पुत्रको जगत्‌में प्रकाश करते हैं। इसलिए वे पुत्रके प्रकाशक हैं। श्रीभगवान्‌के पिता-माता रूपमें जो श्रीभगवान्‌को जगत्‌में प्रकाश करते हैं, वे भी श्रीभगवान्‌के प्रकाशक हैं। भगवान्‌ स्वप्रकाश हैं। अतएव उनकी स्वप्रकाशिका-शक्ति ही भगवान्‌के पिता-माता रूपमें श्रीभगवान्‌को प्रकाश करती है। यही शास्त्र-सिद्धान्त है।

श्रीभगवान्‌ देवरूपिणी देवकीके गर्भसे आविर्भूत हुए। इससे स्पष्ट होता है कि—देवकीका देह सत्त्व, रजः, तमो गुणमयी प्रकृतिका परिणाम नहीं है। वे स्वप्रकाशिका-शक्ति (विशुद्धसत्त्व) की घनीभूत मूर्ति हैं। प्राकृत जीवका देह मातृगर्भसे जन्म ग्रहण करता है एवं मातृभुक्त अन्न-पान आदि रससे पुष्ट होकर यथा समयमें मातृगर्भसे भूमिष्ठ होता है। परन्तु श्रीभगवान्‌का देह सच्चिदानन्दमय और नित्य है, उनका मातृगर्भसे जन्म नहीं होता है। श्रीभगवान्‌ ही जगत्‌के पिता और जन्मदाता हैं, उनसे ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका जन्म होता है, उनका कोई जन्मदाता नहीं है। जो श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपमें प्यार करते

हैं, ऐसे वात्सल्यप्रेमवान् भक्तोंको भगवान् पिता-माताके रूपमें अङ्गीकार कर उनके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होते हैं। श्रीभगवान् कंसके कारागारमें वसुदेव-देवकीके निकट पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए। यथार्थ रूपमें वे देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहणकर भूमिष्ठ नहीं हुए। इसलिए मूल श्लोकमें श्रीशुकदेवजीने 'देवक्यां देवरूपिण्या'—इस भाषामें श्रीभगवान्के आविर्भावका वर्णन किया है। यहाँ 'देवक्यां' पदका अर्थ देवकीके सामने। 'श्रीभगवान् देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहणकर भूमिष्ठ हुए' यदि इस प्रकार श्रीशुकदेवका वक्तव्य होता, तब वे 'देवक्यां देवरूपिण्याः' कहकर वर्णन नहीं करते।

जिनका अगाध वात्सल्यप्रेम होता है, वही भगवान्की जननी बन सकती है। भगवान् भी उनके उस वात्सल्यप्रेममें अपनेको पुत्ररूपमें जानते हैं और वैसे ही उनके सामने आते हैं। वे स्वयं पुत्र बनकर उस वात्सल्यप्रेमका आस्वादन करते हैं।

जिनका वात्सल्यप्रेम ऐश्वर्य-ज्ञान मिश्रित है, उन्हें समय-समयपर पुत्रमें भगवत्ताकी स्फूर्ति होनेपर उनका वात्सल्यभाव स्थायी नहीं होता है। परन्तु शुद्ध वात्सल्यमें श्रीभगवान्का ऐश्वर्य सब समयके लिए अन्तर्हित रहता है। श्रीदेवकी और वसुदेवजीका वात्सल्यप्रेम ऐश्वर्य मिश्रित है। इसलिए वे समय-समयपर पुत्रको भगवान् मानने लगते हैं। वे भगवत्-भावसे पुत्रकी स्तुति और पुत्रभावसे लालन-पालन दोनों ही करते हैं। (शुद्ध वात्सल्यका स्थान वृन्दावन है। वह वृन्दावन-लीलामें व्यक्त होगा।)

श्रीशुकदेवजीने कंस कारागारमें आविर्भूत श्रीदेवकीनन्दनके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा—'विष्णु सर्वगुहाशयः'। श्रीवैष्णव-तोषणीकारने कहा है कि—कंसके कारागारमें आविर्भूत भगवान्को कोई साधारण बालक न समझे, इसलिए श्रीशुकदेवजीने 'विष्णु' शब्द द्वारा इसका समाधान किया है। वे कोई साधारण बालक नहीं, स्वयं 'विष्णु' हैं। उन्हें सर्व-गुहाशय भी कहा गया है—गुहा अर्थात् कन्दरा। पर्वत-कन्दराएँ जैसे दुर्गम होती हैं, वे कहाँ किस रूपमें है, यह सहज ही किसीके बुद्धिगोचर नहीं होता। वैसे ही भगवान् भी जहाँ विराजमान होते हैं, वह भी दुर्गम है, इसलिए शास्त्रकारोंने उन्हें सर्वगुहाशय कहा है।

सर्वव्यापी सर्वगुहाशय श्रीगोविन्द कंस कारागारमें देवकीनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुए। उनके आविर्भावतत्त्वको समझानेके लिए श्रीशुकदेवजीने 'प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः' इस उदाहरणको प्रस्तुत किया। जैसे पूर्वदिशामें पूर्णचन्द्रका उदय होता है, वैसे ही देवकीके गर्भसे श्रीगोविन्दका आविर्भाव हुआ। जैसे पूर्णचन्द्र पूर्वदिशामें उदित होता है, परन्तु उस पूर्वदिशामें चन्द्रका जन्म नहीं होता है। वैसे ही श्रीभगवान् ने देवकीके पुत्ररूपमें आत्मप्रकाश किया, परन्तु देवकीके गर्भसे जन्म नहीं लिया। श्रीदेवकी शुद्धसत्त्व-स्वरूप और वात्सल्यप्रेमवती हैं—इसीलिए भगवान् उनके पुत्रके रूपमें आये। पूर्णचन्द्र पूर्वदिशामें उदित होकर सर्वत्र गमन करते हैं तथा सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश देते हैं, वैसे ही भगवान् भी शुद्धसत्त्वसे प्रकट होकर भक्तोंके निकट जाते हैं तथा सबको प्रकाशित करते हैं ॥ १-८ ॥

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं,
चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं,
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥

अन्वयः—वसुदेवः (कंसके कारागारमें अवस्थित श्रीकृष्णके जनक) तं (अपने सम्मुख अवतीर्ण) अम्बुजेक्षणं (कमलनयन) चतुर्भुजं (चार भुजावाले) शङ्खगदाद्युदायुधम् (शङ्ख, गदा आदि उत्कृष्ट आयुध जिनमें हैं, ऐसे शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी) श्रीवत्सलक्ष्मं (श्रीवत्स-चिह्नयुक्त) गलशोभिकौस्तुभं (गलदेशमें कौस्तुभ नामकी महापद्मराग मणिको धारण किए हुए) पीताम्बरं (बिजलीके समान पीतवस्त्रको धारण किए हुए) सान्द्रपयोदसौभगं (सजल जलद बादलके समान श्यामल सुन्दर अङ्गवाले) महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलं

(समस्त रत्नोंमें परमोत्कृष्ट वैदूर्य अर्थात् नील, पीत, रक्त आदि विविध प्रकारके छवियुक्त रत्नविशेषके द्वारा विभूषित 'किरीट' अर्थात् त्रिकोण पत्रावलीरूप मुकुटविशेष और 'कुण्डल' अर्थात् कानोंके आभूषण-विशेषकी कान्तिसे ऊपर-नीचे स्फूर्ति प्राप्त होनेवाले केश कलापवाले) उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिः (अति उद्भट तेजसे युक्त काञ्ची, अङ्गद, कङ्कण आदि भूषण-विशेष द्वारा) विरोचमानं (परिशोभित) अद्भुतं बालकं (अद्भुत बालकके रूपमें प्रतीयमान विचित्र विश्वपालकको) ऐक्षत (नखसे सिरतक प्रत्येक अङ्गका अपलक दर्शन किया) ॥ ९-१० ॥

अनुवाद—उस समय वसुदेवजीने देखा कि इस अद्भुत बालकके दोनों नयन कमलके समान सुन्दर और विशाल हैं, यह चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखासे अलंकृत है, गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है, नवीन जलधरके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहर रहा है। महामूल्यवान् वैदूर्यमणिसे शोभित मुकुट और कुण्डल-युगलकी छटासे इसके सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। चमचमाती करधनी, बाजूबन्द एवं कङ्कन आदि अलङ्कारोंसे यह सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार वे उस विचित्र नवजात शिशुके आपाद-मस्तकका निरीक्षण करने लगे ॥ ९-१० ॥

सारार्थदर्शिनी—तमद्भुतं बालकं वसुदेव ऐक्षतेति द्वितीयेनान्वयः। अद्भुतत्वे हेतुगर्भाणि विशेषणानि—अम्बुजेक्षणमित्यादीनि। वैदूर्यं नीलपीतरक्तच्छविरत्नं, तद्युक्तं किरीटं त्रिकोणपत्रावलीरूपम् ॥ ९-१० ॥

भावानुवाद—‘तमद्भुतं’—वसुदेवजीने उस अपूर्व मूर्तिधारी अद्भुत बालकके रूपमें दीखनेवाले श्रीभगवान्का दर्शन किया, इस प्रकार दूसरे श्लोकके साथ अन्वय है। उसकी विचित्रताको कई विशेषणोंसे दिखाया गया है। अद्भुत होनेका कारण उनका स्वरूप ‘अम्बुजेक्षणम्’ आदि विशेषणसमूह हैं। ‘अम्बुजेक्षणं’ अर्थात् उसके नेत्रयुगल नीलकमलके समान हैं। महामूल्यवान् परमोत्कृष्ट नील और पीत छवि-विशिष्ट वैदूर्यमणिसे निर्मित ‘किरीट’ अर्थात् त्रिकोण-पत्रावलीरूप मुकुट किरीट

और कुण्डलकी कान्ति द्वारा उसके अपरिमित कुटिल कुन्तल (घुँघराले केश) सुशोभित हो रहे हैं ॥ ९-१० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—उस समय श्रीवसुदेवजी उन ब्रह्माण्ड-पालक भगवान्‌को पुत्रके रूपमें देखकर परम आश्चर्यसे उसका आपाद-मस्तक (पैरसे सिर तक) निरीक्षण करने लगे।

उन्होंने देखा—देवकी-गर्भजात पुत्रके नेत्र प्रस्फुटित कमलकी भाँति हैं, उनके चार हाथ हैं, जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म विराजमान हैं। वे इस प्रकार सुसज्जित हैं कि मानो अभी-अभी युद्धके लिए तैयार खड़े हों। वसुदेवजीने मन-ही-मन विचार किया कि जिन्हें ध्यानयोगमें दर्शन करनेका प्रयास करके भी मैं दर्शन नहीं कर पाता हूँ, वही प्रभु आज हमारे सामने अपने आनन्दघन-स्वरूप मूर्तिमें विराजमान हैं।

वे एक-एक कर उनके अङ्गोंका निरीक्षण करने लगे। वक्ष और कण्ठकी ओर देखा तो पाया कि उनके वक्षःस्थलमें दक्षिणावर्त स्वर्णवर्ण रोमावली (श्रीवत्स चिह्न) एवं कण्ठदेशमें समुज्ज्वल दिव्य पद्मराग मणि (कौस्तुभ मणि) विराजित है। तब वे आश्चर्यचकित होकर विचार करने लगे—यह तो भगवान्‌के अतिरिक्त दूसरे किसीमें सम्भव नहीं है। अब वसुदेवजीके मनमें कोई संशय नहीं रहा। वे प्रेमावेशमें बालकके एक-एक अङ्गकी ओर दृष्टिपात करने लगे। भगवान्‌के चिह्नोंको देखकर वे परमानन्दमें आत्मविस्मृत और चमत्कृत हो उठे।

वसुदेवजीने देखा—देवकीनन्दनके अङ्गकी छटा बादलोंकी शोभाको भी पराभूत करनेवाली थी, उनकी कमरमें फहराता पीताम्बर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह स्थिर सौदामिनी हो। वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि मैंने श्रुतियोंमें सुना है—‘आकाशवत् सर्वगतश्च नित्य’ अर्थात् श्रीभगवान् आकाशकी भाँति सर्वव्यापी एवं नित्य हैं, परन्तु अब तो मैं नयनोंसे देख रहा हूँ कि वे देवकीके पुत्ररूपमें आये हैं। श्रुतियोंके वचन और नयनोंका दर्शन—इनमें कौन सत्य है और कौन भ्रान्त है—यह कैसे निरूपण किया जायेगा। किससे यह संशय दूर होगा? शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें धारणकर किरीट कुण्डलादि

अलङ्कारोंसे सुसज्जित होकर कोई प्राकृत बालक जन्म ग्रहण करता है—आज तक कभी सुना नहीं गया है। विशेषकर प्राकृत बालकको श्रीभगवान्‌के आयुध कहाँसे प्राप्त होंगे? यदि श्रीभगवान् ही आविर्भूत हुए हैं, तब वे क्यों इस अन्धकाराच्छन्न कारागारमें आयेंगे? उनका कंस भयसे भीत होकर निर्जन कारागारमें आत्मगोपन करना क्या सम्भव है? उन्हें भय किस बातका? क्योंकि उनका नाम सुनकर स्वयं भय भी भयसे पलायन करता है। जैसे कोई भी बालक डरनेपर दौड़कर माँ-बापके पास जाता है, तो वैसे ही क्या भगवान् भी कंस आदि महाअसुरोंके भयसे भीत होकर हमें पिता-माता रूपमें अङ्गीकारकर हमारे निकट आये हैं। तब हम इनकी कैसे रक्षा करें। हम भी तो कंसके भयसे प्रति पल-पलमें निपीड़ित हो रहे हैं। हाय! अब हम क्या करें? इस प्रकार अनेकों आश्चर्य और विस्मयके बवण्डरमें घिरकर वसुदेवजी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये तथा आँखोंको बन्दकर मन-ही-मन नारायणके शरणागत हुए ॥ ९-१० ॥

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं,
 सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा।
 कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृश-
 न्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—तदा (श्रीकृष्ण दर्शनके पश्चात् उसी समय) स (परम भाग्यवान्) आनकदुन्दुभिः (वसुदेव) हरिं (कंस आदि सबके ज्ञानको हरण करनेवाले तथा अपने और देवकीके लिए मनोहर भगवान्‌को) सुतं (पुत्र रूपमें) विलोक्य (साक्षात् देखकर) विस्मयोत्फुल्लविलोचनः (परम आश्चर्यजनित उत्फुल्लित विकसित नेत्र होकर) मुदा (हर्षमें) आप्लुतः (डूब गये) कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमः (कृष्ण-अवतार उत्सवमें परम उल्लासयुक्त होकर) द्विजेभ्यः (ब्राह्मणोंके लिए) अयुतं (दस हजार) गवां (दूध देनेवाली बछड़ेवाली गायें) अस्पृशत् (मन-ही-मन दान कीं) [क्योंकि कारागारमें आबद्ध होनेसे यथार्थ दान असम्भव होनेके कारण मनसे दान दिया] ॥ ११ ॥

अनुवाद—उसी समय श्रीहरिको पुत्र-रूपमें दर्शन करके आनन्दमें वसुदेवजीकी दोनों आँखें विस्मयसे खिल उठीं। उन्होंने श्रीकृष्णका जन्म-महोत्सव मनानेकी उतावलीमें आनन्दसे मतवाले होकर मन-ही-मन उसी समय ब्राह्मणोंको दस हजार गायें प्रदान करनेका सङ्कल्प कर लिया ॥ ११ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘स विस्मय’—इत्यहो महामुक्तमुनीन्द्राणामपि दुर्लभदर्शनः परमेश्वरो मम पुनरविद्याबद्धजीवस्याविद्याबद्धजीवेन कंसेनापि बहिरपि बद्धस्य गृहेऽवतीयं दृश्यो बभूवेत्येको विस्मयः। सर्वव्यापकं परं ब्रह्मापि मानुषगर्भादजनिष्टेति द्वितीयः। विविधास्त्रवस्त्रकटककुण्डलकिरीटाद्यलङ्कारविशिष्ट एव बालको गर्भाभिष्क्रान्त इति तृतीयः। साक्षान्महाभयस्यापि भीषण आदिपुरुषो भगवानपि कंसभयभीतं मां स्वपितृत्वेनाङ्गीचक्रे इति चतुर्थः। ‘हरिं सुतं विलोक्य’ इति तस्मिन् स्वेष्टदेवत्व-पुत्रत्वयोर्भावना यौगपद्येनैव तस्याभूदिति भावः। ‘कृष्णावतार’ इत्यहो सामान्यबालकस्यापि जन्मनि पिता दानध्यानाद्युत्सवं करोति, मम तु कृष्ण एव पुत्रत्वेनावतीर्णः, सम्प्रत्यहं कमत्सवं करोमीति प्राप्तसम्भ्रमः, मुदा आप्लुतः आनन्दसमुद्रेण निमज्जितः सन्, अस्पृशत् मनसा ददौ। ‘विश्राणनं वितरणं स्पर्शनं प्रतिपादनम्’ इत्यभिधानात् स्पृशि दानार्थकोऽपि ज्ञेयः ॥ ११ ॥

भावानुवाद—‘स विस्मयोत्फुल्लविलोचनः’ अर्थात् श्रीहरिको पुत्ररूपमें प्रकट हुआ देखकर विस्मयसे वसुदेवजीके नयन-युगल उत्फुल्लित हो उठे। विस्मयका कारण यह है कि अहो! जिन परमेश्वरका दर्शन महामुक्त मुनीन्द्रोंके लिए भी दुर्लभ है, वे कैसे मेरे जैसे अन्दरसे अविद्या-बन्धनग्रस्त जीव अर्थात् जो बाहरसे भी अविद्याबद्ध है और कंसके द्वारा कारागारमें भी आबद्ध है, ऐसे मेरे गृहमें अवतीर्ण होकर नयन-गोचर हुए हैं—यह एक विस्मय है। द्वितीय—जो सर्वव्यापक, परमब्रह्म हैं—उन्होंने एक सामान्य मानवी-देवकीके गर्भसे कैसे जन्म ग्रहण किया? तृतीय—यह बालक शङ्ख-चक्र आदि विविध अस्त्र, वस्त्र, कङ्कण, कुण्डल, किरीटादि अलङ्कारोंके साथ गर्भसे भूमिष्ठ हुआ, यह कैसे सम्भव हुआ? चतुर्थ—जो महाकालके भी काल-स्वरूप साक्षात् आदिपुरुष भगवान् हैं, क्या उन्होंने कंसके भयसे अपनी रक्षाके लिए ही मुझे पिताके रूपमें अङ्गीकार किया?

‘हरिं सुतं विलोक्य’ अर्थात् पुत्ररूपी हरिको देखकर—इस वाक्यसे वसुदेवजीका भगवान्‌में युगपत् पुत्र और अपने इष्टदेवकी स्फूर्ति—दोनों ही होने लगे।

‘कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमः’—अहो! सामान्य बालकका भी जन्म होनेपर उनके पिता दान-ध्यान आदि न जाने क्या-क्या करके आनन्द-उत्सव मनाते रहते हैं, परन्तु मेरे यहाँ तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं, अब मैं कैसे उत्सव मनाऊँ? ऐसा सोचकर सम्भ्रम भावसे युक्त वसुदेवजी ‘मुदा आप्लुतः’ आनन्द-सिन्धुमें निमज्जित हो गये। ‘अस्पृशत्’ अर्थात् मन-ही-मन उन्होंने ब्राह्मणोंके लिए बछड़ों-सहित दश हजार गायें दान कर दीं। ‘अस्पृशत्’ शब्दसे—दान, वितरण, स्पर्शन, प्रतिपादन आदि अर्थ अभिधानसे प्रकाश होते हैं, इसलिए यहाँ अभिधानके अनुसार ‘स्पृश’ धातुका ‘दान’ के अर्थमें प्रयोग हुआ है, जानना होगा ॥ ११ ॥

अथैनमस्तौदवधार्य पुरुषं,
परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं,
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२ ॥

अन्वयः—भारत (हे भरतवंशमें अवतीर्ण परीक्षित्!) अथ (अनन्तर) एनं (उस बालकको) परं पुरुषं (परमपुरुष नारायण है) अवधार्य (ऐसा निश्चितकर) गतभीः (निर्भय होकर) प्रभाववित् (भगवत् प्रभावको जाननेवाले) कृतधीः (शुद्ध बुद्धि-परायण वे वसुदेव) नताङ्गः कृताञ्जलिः (साष्टाङ्ग प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए) स्वरोचिषा (अपनी कान्ति द्वारा) सूतिकागृहं (अन्धकारपूर्ण कंसके कारागारको) विरोचयन्तं (प्रकाशमान करनेवाले उस बालक की) अस्तौत् (स्तुति करने लगे) ॥ १२ ॥

अनुवाद—हे भरतकुलनन्दन! तदनन्तर यह बालक परमपुरुष नारायण है—इस प्रकार निश्चय करके भगवत्-प्रभावको जाननेवाले वसुदेवजी बिलकुल निर्भय हो गये एवं सिर झुकाकर हाथ जोड़कर

शुद्ध बुद्धिके साथ अपनी कान्ति द्वारा सूतिका-गृहको जगमगानेवाले उस बालककी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥

सारार्थदर्शिनी—कृतधीः, तस्मिन्नेव यौगपद्येन कृतैश्वर्य-वात्सल्यबुद्धिः। 'गतभीः प्रभाववित्' इति हन्तास्मिन्नप्यङ्गे कंसः सहसागत्यास्त्रं प्रयोक्ष्यतीति पुत्रबुद्ध्या यद्भयमुद्बभूव, तदैश्वर्यबुद्ध्या प्रभावज्ञानेन गतमित्यर्थः ॥ १२ ॥

भावानुवाद—'कृतधीः'—वसुदेवजीका उस बालकरूपी भगवान्में युगपत् ऐश्वर्य और वात्सल्य बुद्धिका उदय हुआ। 'गतभीः प्रभाववित्'—हाय! कंस सहसा आकर इस बालकको मार डालेगा—इस प्रकार पुत्रबुद्धिके कारण पहले भयका जो उदय हुआ। परन्तु ऐश्वर्य भावकी स्फूर्ति होनेपर उनके प्रभावके ज्ञानसे उनका वह भय भी दूर हो गया, यह अर्थ है ॥ १२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—देवकीनन्दनका आपाद-मस्तक निरीक्षण करते-करते आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र खुले-के-खुले रह गये। मानो वसुदेवके नेत्र इस अद्भुत आश्चर्यका दर्शनकर किसी भी प्रकारसे विश्वास नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए वे श्रुतियोंसे पूछने लगे, क्या यह सम्भव है? उन्होंने बहुत-से वेदान्तकी बातें सुनी हैं, परन्तु श्रुतिमें क्या ऐसा भी उल्लेख है? सर्वकारण कारण श्रीगोविन्द क्या किसीके पुत्र बनते हैं? वे तो जगत्के पिता हैं, अनन्त कोटि विश्व-ब्रह्माण्ड उन्हींसे ही प्रकट होता है। वसुदेवजी सम्पूर्ण रूपसे विस्मय सागरमें डूब गये और मन-ही-मन विचार करने लगे, कैसा आश्चर्य है? कितने-कितने योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण संसारमुक्त होकर भी श्रीगोविन्दको खोज नहीं पाते, कितनी तीव्र साधनाएँ भी जिन्हें पकड़ नहीं पातीं, ऐसे अज, भव वन्दित-चरण श्रीगोविन्द बिना साधनके ही मेरे जैसे बद्ध जीवके सामने उपस्थित हुए हैं। एक तो मैं अनादि-अविद्याके बन्धनमें फँसा हुआ हूँ, उसमें भी लौहशृंखलाओंमें आबद्ध हूँ, फिर कंसके कारागारमें पड़ा हुआ हूँ। ऐसी स्थितिमें जो मुक्तपुरुषोंके लिए भी परमदुर्लभ वस्तु है, ऐसे प्रभु मेरे जैसे अतितुच्छ बद्धातिबद्ध जीवके लिए सुलभ हुए हैं। इससे बड़कर क्या आश्चर्य हो सकता है।

क्षणभर बाद फिर उन्होंने देवकीनन्दनकी ओर जैसे ही देखा, वैसे ही युगपत् श्रीभगवान्‌के स्वरूप ऐश्वर्य-ज्ञान और वात्सल्यप्रेमने आकर उनके हृदयपर अधिकार कर लिया। तब वे ऐश्वर्य-ज्ञान मिश्रित वात्सल्यप्रेमसे मन-ही-मन चिन्तन करने लगे—मेरा कैसा सौभाग्य है! स्वयं-भगवान्‌ मेरे पुत्र बनकर आये हैं। प्राकृत पुत्र प्राप्त करनेके लिए जगत्‌में लोग कितने पुत्रेष्टि यज्ञ आदिका अनुष्ठान करते हैं और मैंने बिना किसी साधनाके ही फलस्वरूप स्वयं-भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त किया। इस प्रकार वसुदेवजी आनन्दमें अधीर हो उठे।

वे मन-ही-मन चिन्तन करने लगे कि साधारण बालकके जन्ममें दूसरे-दूसरे व्यक्ति कितना आनन्द उत्सव मनाते हैं और दान करते हैं, परन्तु भगवान्‌के अवतीर्ण होनेपर मैं अब क्या करूँ? क्या दान करूँ? मेरे पास दान-द्रव्यादि कुछ भी नहीं है। मैं तो कंसके कारागारमें आबद्ध हूँ। यहाँ दान ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण भी नहीं हैं। दान और ग्रहीता दोनोंका ही अभाव है। फिर भी श्रीवसुदेव महाराजको मन-ही-मन दान देनेमें कोई बाधा नहीं हुई। उन्होंने मन-ही-मन वेदज्ञ ब्राह्मणोंके लिए दस हजार बछड़ेवाली गायें दान कर दीं। इधर पुत्र प्राप्तिरूप आनन्द-सिन्धुमें निमज्जित होकर स्नान कार्य भी पूरा हो गया एवं उसी आनन्दने ही उन्हें बाह्य जगत्‌से मानस जगत्‌में ले जाकर दान-कार्य पूर्ण करा दिया। (श्रीमद्भगवत्‌म दशम-स्कन्ध ४५वें अध्यायमें देखा जाता है—वसुदेवजीका यह मानस-दान कंस-वधके पश्चात्‌ ब्राह्मणोंके हस्तगत हुआ था।)

श्रीकृष्णकी अङ्गछटासे सूतिका-गृह (कंस कारागार) जगमगाने लगा। यह देखकर वसुदेवजीने निश्चय किया कि ये ही परमपुरुष भगवान्‌ श्रीगोविन्द हैं, यही सबके मूल और सर्वेश्वर हैं।

भगवान्‌का ऐसा स्वरूप-ऐश्वर्य स्फूर्ति होनेपर वसुदेवजीका सारा भय दूर हो गया। तब वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि तुच्छ कंस मेरा क्या कर लेगा? आज करोड़ों-करोड़ों भय उपस्थित होनेपर भी इस पुत्ररूपी भगवान्‌के चरणाश्रयसे मैं उनका दमन करूँगा। आज मुझे किसीसे भी भय नहीं है क्योंकि सर्व-अभयप्रद श्रीगोविन्द मेरे घरमें हैं, केवल इतना ही नहीं इन्होंने मुझे पिताके रूपमें अङ्गीकार

किया है। इस प्रकार श्रीकृष्णका स्वरूप-ऐश्वर्य स्फूर्ति होनेपर वसुदेवजी श्रीकृष्णके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणामकर हाथ जोड़कर उनका स्तव करने लगे ॥ ११-१२ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।

केवलानुभवानन्द-स्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥

अन्वयः—प्रकृतेः (त्रिगुणात्मिका मायाके) परः (नियन्ता) केवलानुभवानन्द-स्वरूपः पुरुषः (विशुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म) सर्वबुद्धिदृक् (सबके अन्तर्यामी) भवान् (भक्तवात्सल्य गुणोंके द्वारा मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण स्वयं-भगवान् आप) साक्षात् (प्रत्यक्ष रूपमें) विदितोऽसि (मेरे द्वारा दृष्टिगोचर हो रहे हैं) ॥ १३ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेवजीने कहा—आप प्रकृतिसे अतीत पुरुष साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आप सर्वान्तर्यामी, विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हैं, आप साक्षात् भगवान् हैं—यह मैंने जान लिया है ॥ १३ ॥

सारार्थदर्शिनी—हे भगवन्स्त्वं मामेवं निज-स्वरूपं यद्वर्णयसि, तस्यायमभिप्रायः—‘मत्पिता मदर्थं कंसाद्विभेति, तन्मामीश्वरं प्रतीत्य निर्भयो भवतु’ इति, तत् सत्यं त्वयीश्वरत्वेन मम प्रतितिर्जातैव इत्याह—विदितोऽसि। कीदृशत्वेनेति चेत्? अत आह—यः प्रकृतेः परः पुरुषस्तदीक्षणकर्त्ता स भवानेव, यः केवलानुभवानन्दस्वरूपः परब्रह्माख्य आत्मा स भवान्, यः सर्वबुद्धिदृक् सर्वान्तर्यामी सोऽपि भवान्, साक्षादेव स्वयं भगवत्त्वेनैव इति सर्वमहं जानाम्येवेत्यर्थः ॥ १३ ॥

भावानुवाद—हे भगवन्! आपने जिस स्वरूपका दर्शन कराया है, इसका अभिप्राय यह है कि ‘मेरे पिता मेरे लिए कंससे डरे हुए हैं, अतएव मुझे ईश्वर जानकर निर्भय हों’—यह सत्य है कि मेरी आपके प्रति ईश्वरके रूपमें प्रतीति हुई है। यही कह रहे हैं—‘विदितोऽसि’ आदि श्लोकके द्वारा। इसके उत्तरमें वसुदेवजीने कहा—जो प्रकृतिसे अतीत परम ‘पुरुष’ हैं—जो प्रकृतिके ईक्षण-कर्त्ता हैं, वही आप गुणातीत परमपुरुष हैं। जो ‘केवलानुभवानन्दस्वरूपः’ अर्थात् जो केवल आनन्द एवं अनुभव-स्वरूप परब्रह्म नामक आत्मा हैं, वे आप ही

हैं। जो 'सर्वबुद्धिदृक्' अर्थात् सर्वान्तर्यामी हैं, वे भी आप हैं। आप साक्षात् स्वयं-भगवान्‌के ही हैं। मैं इस प्रकार आपके तत्त्वको समझ रहा हूँ, यह अर्थ है॥ १३॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वसुदेवजीने परमानन्दमें मग्न होकर पूज्यबुद्धिसे कहा—'भवान् विदितोऽसि'—हे भगवन्! आप मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं, आपकी अपार करुणासे मैं आपको पहचान पाया हूँ। क्योंकि 'न पश्यति चक्षुषा रूपमस्य'—इस श्रुति-वाक्यसे भगवान्‌का रूप इन आँखोंसे देखा नहीं जा सकता। जब वे अपने लीलाविग्रहको प्रकट करते हैं, तब उनकी कृपासे ही उस श्रीमूर्तिका दर्शन होता है।

यहाँ श्रीगोविन्दके दर्शनमें वसुदेवजीका कोई कर्तृत्व अभिमान नहीं है—इसलिए उन्होंने "अहं त्वां पश्यामि अर्थात् मैं आपको देख रहा हूँ" कर्तृवाच्यका प्रयोग न कर 'भवान् विदितोऽसि' अर्थात् हे भगवन्! आप कृपापूर्वक मुझे दिखायी दिये हैं—कर्मवाच्यका प्रयोग किया है। इसलिए उनके दर्शनमें द्रष्टा गौण और दृश्य भगवान् ही मुख्य हैं—यही तत्त्व प्रकाशित हुआ है।

अतः वसुदेवजीने परमानन्दमें विभोर होकर कहा—हे भगवन्! आपकी अपार करुणासे ही मैं आपको पहचान पाया हूँ। आप प्रकृतिके नियन्ता, ज्ञानियोंके ब्रह्म, योगियोंके परमात्मा एवं भक्तोंके भगवान् हैं। आप कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ १३॥

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम्।

तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे॥ १४॥

अन्वयः—स एव (ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् रूपमें तीन प्रकार विभावयुक्त आप ही) अग्रे (सृष्टिसे पहले) स्वप्रकृत्या (अपने अधीन मायाके द्वारा) इदं त्रिगुणात्मकं (सत्त्व, रज और तमो गुणात्मक इस परिदृश्यमान जगत्‌को) सृष्ट्वा (निर्माणकर) तदनु (सृष्टिके पश्चात्) अप्रविष्टः हि (प्राकृत गुणमय होनेसे विश्वका स्पर्श करना असम्भव होनेपर भी) त्वं प्रविष्ट इव (सबके अन्तर्यामी रूपमें सबके मध्यमें विराजमानकी भाँति) भाव्यसे (निरूपित होते हैं)॥ १४॥

अनुवाद—आपने ही सृष्टिके आरम्भमें अपनी विक्षेपात्मिका शक्तिके द्वारा पहले तो इस त्रिगुणमय विश्वकी सृष्टि की, तदनन्तर इसे स्पर्श न करते हुए भी इसमें प्रविष्टके समान जान पड़ रहे हैं ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शनी—ननु, भोः तात ! त्वद्गृहे प्रविष्टं मां परिच्छन्नमेव जातमेव जानासि, अतः किमपि मे तत्त्वं न जानासीत्याशङ्क्य स्वज्ञानमाविष्कुर्वन्नाह—स एव उक्त स्वरूप एव, त्वं, स्वप्रकृत्या स्वीय-प्रधानशक्त्या, इदं जगत्, सृष्ट्वा तदनु अप्रविष्ट इव प्रविष्ट इव च, भाव्यसे निरूप्यसे। जगतोऽन्तरुपलभ्यमानत्वात् अप्रविष्ट इव, नत्वप्रविष्टः; बहिश्चोपलभ्यमानत्वात् प्रविष्ट इव न तु प्रविष्ट इत्यर्थः। एवमेव सर्वत्र वर्तमानस्त्वं मद्गृहे प्रविष्ट इव, न तु प्रविष्टः; सर्वदैव वर्तमानस्त्वं जात इव, न तु जातः; तेन च सर्वव्यापक-मूर्तैस्तव कंसः किमपि कर्तुं न शक्नुयादिति जानाम्येवेति भावः ॥ १४ ॥

भावानुवाद—यदि कहें कि हे पितः ! आपके गृहमें मैंने परिच्छन्न रूपमें जन्म लिया है—ऐसा आप जानते हैं, अतएव मेरा कोई भी तत्त्व आप नहीं जानते हैं। ऐसी आशङ्काकर वसुदेवजी अपने ज्ञानको प्रकट करते हुए 'स एव' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'स एव' अर्थात् उक्त गुणातीत स्वरूपवाले आप ही हैं। 'स्वप्रकृत्या' अर्थात् अपनी प्रधानशक्ति मायाके द्वारा इस जगत्की सृष्टिकर उसमें अप्रविष्ट रहकर भी समस्त प्राणियोंमें प्रविष्टकी भाँति दिखायी देते हैं। जगत्के भीतर लक्षित होनेके कारण अप्रविष्टकी भाँति, परन्तु अप्रविष्ट नहीं तथा बाहरमें उपलब्धि होनेके कारण प्रविष्टकी भाँति, परन्तु प्रविष्ट नहीं—यह अर्थ है। अर्थात् आप आनन्दघन-स्वरूप हैं, अपनी मायाके द्वारा आपने इस त्रिगुणात्मक जगत्की सृष्टिकी है। सृष्टि करके उसकी परिचालनाके लिए अन्तर्यामी रूपमें आपने सृष्ट-जगत्में प्रवेश किया है। प्रवेश करके भी आपने प्रवेश नहीं किया है। अप्रविष्टकी भाँति रह रहे हैं। आप एक ही समयमें विश्वके भीतर और बाहर हैं। आप सर्वमय होकर भी मेरे सामने सूतिका-गृहमें विराजमान हैं। इस प्रकार सर्वत्र वर्तमान होकर भी आप मेरे गृहमें प्रविष्टकी भाँति प्रतीत हो रहे हैं, परन्तु प्रविष्ट नहीं हैं। आप सदा-सर्वदा वर्तमान हैं, अतः जन्म-ग्रहणकी भाँति लीला करनेपर भी आपने जन्म ग्रहण

नहीं किया—ऐसे सर्वव्यापक आपका कंस कोई भी अनिष्ट नहीं कर सकता है, मैं जानता हूँ, यह भाव है॥ १४॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वसुदेवजी कंसके कारागारमें अवतीर्ण देवकी-नन्दनको परतत्त्वरूपमें जानकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। इसमें ऐसा देखा जाता है कि वसुदेवजी मानो भ्रममें फँस गये हैं, क्योंकि भगवान् सर्वव्यापी हैं, क्या उनका देवकीके गर्भमें प्रवेश करना सम्भव है? अथवा वसुदेवजी जान-बूझकर देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालकको विश्व-पालक कहकर अतिस्तुति कर रहे हैं।

‘स एव स्वप्रकृत्येदं’ आदि वर्तमान श्लोकमें वसुदेवजी सबका सन्देह मिटानेके लिए देवकीनन्दनके विषयमें उनकी यथार्थ धारणा क्या है, वही यहाँ व्यक्त कर रहे हैं।

श्रीधरस्वामिपादने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है—‘स एव उक्त स्वरूप एव त्वं, न देवकी जठरे प्रविष्ट इत्यर्थः’ अर्थात् वसुदेवजीने कहा—हे भगवन्! मैं घबराया हुआ नहीं हूँ या आपकी अतिस्तुति भी नहीं कर रहा हूँ। आप देवकीके गर्भमें प्रविष्ट या देवकीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुए हैं। आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-व्यापी स्वयं-भगवान् हैं। “तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् अर्थात् भगवान्ने जगत्का सृजनकर अन्तर्यामी रूपमें उसमें प्रवेश किया”—आदि श्रुति-वाक्यसे देखा जाता है कि श्रीभगवान् बृहत् होकर भी अणुमें प्रवेश करते हैं। परन्तु यथार्थ रूपमें देखनेसे उनका प्रवेश नहीं है। सर्वत्र अवस्थित होनेके कारण ही वे प्रविष्टकी भाँति प्रतीत होते हैं। अतएव आप अखिल ब्रह्माण्ड-पालक हैं, देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालक नहीं हैं। आप असीम, अनन्त हैं—देवकी गर्भजात नहीं हैं।

वैष्णव-तोषणीकारने कहा है—‘तत्र दैन्येन तस्मिन्निज पुत्रत्वापलपनाय ‘सा देवकीसर्वजगन्निवास निवास भूत’ इति, ‘दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगत परः पुमान्’ इत्यादि लब्धमपि तत्प्रवेश वारयति—स एवेति चतुर्भिः।’

अर्थात् श्रीदेवकीके आठवें गर्भका लक्षण प्रकाश होनेपर श्रीशुकदेवजीने कहा—श्रीभगवान् समस्त जगत्के आधार हैं, श्रीदेवकी उन्हें गर्भमें धारणकर उनका भी आधार बन गयी। देवताओंने स्तुतिके पश्चात् देवकीको सम्बोधनकर कहा—‘हे जगन्मातः! पुरुषोत्तम गोविन्दने

आपके गर्भमें प्रवेश किया है'। इससे समझा जाता है कि—भगवान् ने सर्वव्यापी होकर भी पुत्ररूपमें देवकीके वात्सल्यप्रेमका रसास्वादनके लिए ही उनके गर्भमें प्रवेश किया।

वसुदेवजी श्रीभगवान् का देवकीके गर्भमें प्रवेश स्वीकार नहीं करते हैं। वे उन्हें सर्वव्यापी मानते हैं। इसका कारण यह है कि भगवान् भक्तवात्सल्य आदि गुणोंसे वसुदेवजीके पुत्र हुए हैं, परन्तु वसुदेवजीको अपने भक्त-स्वभाव-उचित दैन्यके कारण उनका पिता बनना स्वीकार नहीं है, इसलिए उन्होंने कहा—आप देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालक नहीं हैं, आप विश्वपालक हैं।

इसीलिए वसुदेवजी भगवान् को पुत्र भी समझते हैं और भगवान् भी। स्वयं-भगवान् ने देवकी-वसुदेवजीसे कहा है कि—

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्।

चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्भक्तिं पराम्॥

(श्रीमद्भा० १०/३/४५)

अर्थात् आपलोग मुझे पुत्ररूपमें एवं भगवान् के रूपमें जानकर यथासम्भव मेरे प्रति प्रीतिपूर्ण व्यवहार करते हुए मेरे ही धाममें जायेंगे।

श्रीभगवान् के इस वचनसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि वसुदेव-देवकीका भगवान् में पुत्रभाव और ब्रह्मभाव दोनों ही सत्य हैं।

जो भगवान् को ऐश्वर्य ज्ञान-मिश्रित प्रीतिभावसे देखते हैं, भगवान् उनके सामने कभी भगवान् रूपमें और कभी यथासम्भव पुत्र, सखा आदि रूपमें आत्मप्रकाश करते हैं। ऐश्वर्यमिश्रित वात्सल्यप्रेममें वसुदेवजी एवं देवकी श्रीभगवान् को दोनों रूपोंमें ही आस्वादन करते हैं। इस प्रकार उक्त श्लोकमें वसुदेवजीने जैसे प्रार्थना की है—ब्रह्माण्ड जड़-पदार्थ है, अतएव उसका श्रीगोविन्दके चरणोंमें प्रीति सम्भव नहीं है। परन्तु वे ब्रह्माण्ड-सृष्टिकर्ता हैं एवं ब्रह्माण्डके भीतर उनका प्रवेश होता है। वे त्रिगुणातीत हैं, उनका त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्डमें प्रवेश होनेपर भी उसके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है एवं वे निर्लेप रूपमें ही विराजमान रहते हैं। अतएव वे ब्रह्माण्डमें प्रवेश करके भी अप्रविष्ट हैं।

परन्तु, देवकी वात्सल्यप्रेमवती एवं शुद्धसत्त्वमयी हैं। उनके गर्भमें प्रवेशकर भगवान्‌का निर्लेप रूपमें रहना सम्भव नहीं है। इसलिए देवकीका वात्सल्यप्रेमरस आस्वादनके लिए वे देवकीनन्दनके रूपमें अवतीर्ण होते हैं और सर्वव्यापी होकर भी भक्तवात्सल्य-प्रेमका आस्वादन करनेके लिए अपने अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे अपने स्वरूपको प्रकाश करते हैं ॥ १४ ॥

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह।

नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव।

प्रागेव विद्यमानत्वात् तेषामिह सम्भवः ॥ १६ ॥

एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणै-

ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः।

अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते,

सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥

अन्वयः—यथा इमे (जिस प्रकार ये शास्त्र प्रसिद्ध) पृथग्भूताः (परस्पर पृथक् स्वरूप) नानावीर्याः (परस्पर पृथक् स्वभाव-सम्पन्न) अविकृताः (प्रकृति-विकृतिरूप) भावाः (महदादि) तथा (श्रीभगवान्‌की इच्छासे) विकृतैः (सोलह विकार) सह सन्निपत्य (एक दूसरेके साथ मिलकर) विराजं (ब्रह्माण्डको) जनयन्ति (उत्पन्न करते हैं) हि (यह शास्त्रमें प्रसिद्ध है) ते (वे महद् आदि और सोलह विकार) समुत्पाद्य (ब्रह्माण्डकी रचनाकर) अनुगताः इव (ब्रह्माण्डमें प्रवेशकी भाँति) दृश्यन्ते (दिखायी देते हैं, स्थूल दृष्टिसे अनुभूत होते हैं, किन्तु) प्रागेव (ब्रह्माण्ड सृष्टि होनेसे पहले ही) विद्यमानत्वात् (कारण रूपमें विद्यमान होनेसे) तेषां (महद् आदिका) इह (अपने रचित ब्रह्माण्डमें) न सम्भवः (प्रवेश नहीं होता है) ॥ १५-१६ ॥

एवं (उसी प्रकार) भवान् (आप) बुद्ध्यनुमेयलक्षणैः (बुद्धिके द्वारा रूप आदि ज्ञानसे अनुमित होनेवाले) गुणैः (इन्द्रियोंके द्वारा) ग्राह्यैः (ग्रहणयोग्य विषयसहित) सन् (वर्तमान) अपि (होनेपर भी)

तद्गुणाग्रहः (उन इन्द्रियग्राह्य विषयोंके द्वारा गृहीत नहीं होते हैं) अर्थात् आप इन्द्रियग्राह्य देह आदिमें अवस्थित होकर भी इन्द्रिय ज्ञानसे अतीत हैं) सर्वस्य (सम्पूर्ण लोकोंके) आत्मवस्तुनः (आत्मस्वरूपभूत) सर्वात्मनः (सर्वमय) ते (आप) अनावृतत्वात् (सर्वत्र अवस्थित होनेके कारण) न बहिः अन्तरं (बाहरमें एवं अन्दरमें नहीं हैं) [अतएव सर्वव्यापक होनेके कारण आपका प्रवेश सम्भव नहीं है]॥ १७॥

अनुवाद—ये सब महत्तत्त्व आदि अविकृत पदार्थ जिस प्रकार विभिन्न गुणोंसे युक्त एवं पृथक्-पृथक् होकर भी चैतन्यकी प्रेरणा द्वारा विकृत (इन्द्रियादि) सोलह पदार्थोंके साथ मिलित होकर ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं एवं सृष्टिके पश्चात् उसमें प्रविष्टसे जान पड़ते हैं, परन्तु ब्रह्माण्ड सृष्टिके पूर्व कारणरूपमें विद्यमान रहनेके कारण ब्रह्माण्डकी सृष्टिके बाद इनका प्रवेश सम्भवपर नहीं है, उसी प्रकार आप भी रूपादि ज्ञानके द्वारा अनुमेय इन्द्रियग्राह्य गुणोंके साथ वर्तमान रहकर भी आप उनके साथ नहीं रहते अर्थात् चक्षु द्वारा जिस प्रकार रूप ग्रहण किया जाता है, किन्तु उनसे रसका आस्वादन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इन्द्रियोंके द्वारा विषय ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु इन्द्रियातीत होनेके कारण आपको ग्रहण नहीं किया जा सकता। आप सभी लोगोंके आत्म-स्वरूप परमार्थभूत आत्मा हैं अर्थात् व्यापक वस्तु हैं, इसलिए अपरिच्छिन्न हैं, अतः बाहर-भीतरशून्य आपका (गर्भादिमें) प्रवेश असम्भव है॥ १५-१७॥

सारार्थदर्शिनी—अत्र दृष्टान्तः—यथा इमे अविकृता, भावा महदादयो, ब्रह्माण्डे प्रविष्टा अपि न प्रविष्टाः, तत्र पुनर्जातवत् प्रतीता अपि न जाताः, तथैव त्वमित्यर्थः। दृष्टान्तं विवृणोति—ते अविकृताः, विकृतैः षोडशविकारैः, सह, नानावीर्याः परस्पर-विसदृशस्वरूपा अपि, पृथग्भूताः परस्परममिलिता अपि, सन्निपत्य चैतन्यप्रेरणवशात् मिलितीभूय, विराजं जनयन्ति। ततश्च विराजं समुत्पाद्य, अनुगता इव तत्र प्रविष्टा इव, दृश्यन्ते, न तु प्रविष्टाः। तद्बहिरपि तेषां वर्तमानत्वादित्यर्थः। तथा तत्र विराजि समुद्भूता इव दृश्यन्ते, न तु समुद्भूताः, तत्र हेतुमाह—प्रागेवेति। इह विराजि, सम्भव उत्पत्तिः। किञ्च, इमे तत्तद्गुणैर्लिप्ता एव, भवांस्तु कारणत्वेन प्रविष्टोऽप्यलिप्ता एवेत्याह—एवं भवान् स्वप्रकृत्या सृष्टे जगति प्रविष्टोऽपि, बुद्ध्या अनुमेयमेव लक्षणं येषां तैः, स्वप्रकाशत्वाखण्डज्ञानानन्दादिभिर्ग्राह्यैः,

स्वोपादेयैर्गुणैः, सह सत्रपि सदा विराजमानोऽपि, तद्गुणाग्रहः तस्याः प्रकृतेर्गुणान् लेपकान् दुःखात्मकान् आनन्दैकमयस्त्वं न गृह्णासि। कुतः? अनावृतत्वात्, यो हि प्रकृतिगुणैरावृतो भवति, स एव तान् गृह्णाति लिप्तश्च भवति; यथा जीव इति भावः। अतस्तव बहिरन्तरं व्याप्य ते प्रकृतेर्गुणा न सन्ति; यथा जीवस्य बहिः शब्दस्पर्शादयः, अन्तश्च शोक-मोहादय इति भावः। सर्वात्मनः सर्वान्तर्यामितया प्रविष्टस्यापि। किञ्च, केवलं न तवैव, अपि तु आत्मवस्तुनः तव स्वीयपदार्थस्य, सर्वस्य कृत्स्नस्यापि, लीलाविलासधामभक्तादेर्बहिरन्तरञ्च व्याप्य, ते लेपकाः प्रकृति-गुणा, न सन्तीत्यर्थः ॥ १५-१७ ॥

भवानुवाद—इस विषयमें उदाहरण—जैसे ये अविकारी महत्तत्त्व आदि ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट होकर भी प्रविष्ट नहीं हैं, वैसे ही आप भी जन्मे हुएकी तरह प्रतीत होनेपर भी जन्म नहीं लेते हैं। उदाहरणके द्वारा समझाते हैं—महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व और पञ्चतन्मात्र—ये सभी अविकारी तत्त्व हैं। पञ्चमहाभूत और ग्यारह इन्द्रियाँ—ये सोलह पदार्थ विकारी हैं। ये सभी महत्तत्त्व आदि अविकारी पदार्थ ‘नानावीर्याः’ अर्थात् भिन्न-भिन्न गुणोंवाले एवं ‘पृथग्भूताः’ अर्थात् पृथक् होकर भी चैतन्यकी प्रेरणाके द्वारा विकारी षोलह पदार्थोंके साथ मिलित होकर ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं एवं सृष्टिके पश्चात् उनमें प्रविष्टकी भाँति दृष्ट होते हैं, परन्तु प्रविष्ट नहीं हैं, क्योंकि वे सृष्टिके पूर्व ही कारण रूपमें विद्यमान रहते हैं, अतएव सृष्टिके पश्चात् उनमें उनका प्रवेश सम्भवपर नहीं है।

इसके अतिरिक्त भी, ये सभी पदार्थ अपने गुणोंके द्वारा लिप्त हो जाते हैं, परन्तु आप कारण रूपमें प्रविष्ट होकर भी निर्लेप रहते हैं, यही कह रहे हैं—‘एवं भवान्’ आदि श्लोकके द्वारा—इस प्रकार आप अपनी प्रकृतिके द्वारा सृष्ट जगत्में प्रवेश करके भी ‘बुद्ध्यनुमेय लक्षणैः’—बुद्धिके द्वारा जिनके स्वरूपका अनुमान किया जाता है, उन रूप आदि विषयोंके साथ स्वप्रकाशकत्त्व, अखण्ड ज्ञानत्त्व और आनन्दादि अपने गुणोंके द्वारा आप सदा विराजमान होनेपर भी ‘तद्गुणाग्रहः’—आप उस प्रकृतिके गुणोंके द्वारा इन्द्रियग्राह्य नहीं होते हैं। क्योंकि प्रकृतिके गुण बन्धनकारी और दुःखदायी हैं। हे भगवन्! एकमात्र आनन्दमय होनेके कारण आप इस प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार

नहीं करते हैं। क्योंकि आप अनावृत हैं। जो व्यक्ति प्रकृतिके गुणोंके द्वारा आच्छादित होता है, वही व्यक्ति उन गुणोंको ग्रहण करता है और उन्हींमें लिप्त होता है, जैसे जीव—यह भाव है। अनावृत होनेके कारण आपके बाहर और भीतरमें कोई भेद नहीं है, इसलिए प्रकृतिके गुण भी आपमें नहीं हैं। जैसे जीवका बाहरमें शब्द और स्पर्श एवं भीतरमें शोक और मोह आदि होता है, यह भाव है, वैसा भगवान्का नहीं है।

‘सर्वात्मनः’—सर्वान्तर्यामीरूपमें प्रविष्ट होकर भी आप सर्वात्मा, व्यापक और परमार्थ वस्तु हैं, इसलिए आपका कोई आवरण नहीं है। केवल आपका ही नहीं, बल्कि आपके सभी पदार्थ, सम्पूर्ण—लीला-विलास, धाम और भक्त आदिका बाहर और भीतर कोई भेद नहीं रहनेके कारण बन्धकारी प्रकृतिके गुण उन्हें लिप्त नहीं कर पाते हैं, यह अर्थ है॥ १५-१७ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान् सर्वव्यापी, सर्वकारणोंके कारण हैं, उनका किसी स्थानमें प्रवेश नहीं होता है। परन्तु ‘तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्’ आदि श्रुति-वाक्यमें देखा जाता है कि भगवान् विश्वकी सृष्टिकर उसमें प्रवेश करते हैं। परन्तु यथार्थ रूपमें सर्वव्यापी होनेके कारण उनका प्रवेश नहीं होता है। स्थूल-दृष्टिमें देखनेपर लगता है कि उन्होंने प्रवेश किया है। वैसे ही भगवान् देवकीनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुए। यह देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने देवकीके गर्भमें प्रवेश किया है, परन्तु यथार्थतः उनका प्रवेश नहीं हुआ है। क्योंकि वे सर्वव्यापी, सर्वकारणोंके भी कारण हैं, फिर भी देवकी गर्भमें प्रवेश करते हुए उन्हें देखा जा रहा है। इसे इन श्लोकोंमें दृष्टान्त द्वारा सुदृढ़ कर रहे हैं।

इसलिए इन दो श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि जगत्-सृष्टिसे पहले भगवान्के सत्त्व, रज, तमो गुणमयी प्रकृतिके प्रति ईक्षण करनेपर प्रकृतिसे महत्तत्त्व, उससे अहंकारतत्त्व, उससे पञ्चतन्मात्रा इस प्रकार क्रमशः सृष्टि हुई है। महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व, पञ्चतन्मात्र (पृथिवी आदि पञ्च भूतोंका सूक्ष्मांश) परस्पर पृथक् शक्ति एवं पृथक्

गुणसम्पन्न हैं। इनके परस्पर मिलनके बिना कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। तैल, बत्ती और अग्नि—ये तीनों परस्पर पृथक् गुण और शक्ति सम्पन्न हैं, फिर भी इन तीनोंके मिलनसे जैसे दीप जलता है, वैसे ही महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व, पञ्चतन्मात्रा आदि पृथक्-पृथक् गुण-सम्पन्न वस्तुएँ भी भगवान्‌की इच्छासे एकत्र मिलित होकर ही ब्रह्माण्डरूपमें परिणत होती हैं।

महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व, पञ्चतन्मात्रा आदिके जिस प्रकार परस्पर मिलित होकर ब्रह्माण्डरूपमें परिणत होनेपर भी वे ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्माण्डके कारण-स्वरूप होनेके कारण वे सृष्टिके पहलेसे ही हैं। उसी प्रकार सर्वकारण कारण श्रीभगवान् भी सबके पहलेसे ही अवस्थित हैं, इसलिए श्रीदेवकीके गर्भमें प्रविष्टकी भाँति दिखायी देनेपर भी उनका उसमें प्रविष्ट होना सम्भव नहीं है।

वैष्णव-तोषणीकार आदि वैष्णव आचार्योंके मतसे श्रीभगवान्‌का धाम, पार्षद, लीला, श्रीविग्रह आदि सभी सच्चिदानन्दमय हैं एवं भगवान् अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सर्वव्यापी होकर भी देवकीके गर्भमें प्रवेश करते हैं और देवकीके गर्भमें प्रवेश करनेसे या मथुरा-वृन्दावन आदि धामोंमें विचरण करनेसे उनके सर्वव्यापकत्वकी हानि नहीं होती है। वसुदेव-देवकी आदि पार्षद एवं मथुरा-वृन्दावन आदि धाम उन्हींके स्वरूप हैं, वे ब्रह्माण्डकी भाँति सत्त्व, रजः, तमोगुणके विकार नहीं हैं।

माता पिता स्थान गृह शय्यासन आर।

ए सब कृष्णेर शुद्ध सत्त्वेर विकार॥

(श्रीचै० च० आ० ४/६५)

श्रीभगवान्‌की स्वप्रकाशिका शक्तिका नाम शुद्धसत्त्व है। श्रीभगवान्‌की इच्छासे उनके शुद्धसत्त्वसे पिता-माता, धाम आदिका प्रकाश होता है एवं वे लीलामयरूपमें आत्मप्रकाश करते हैं। त्रिगुणमयी मायाशक्ति जड़ है, श्रीभगवान्‌की इच्छासे उस मायाशक्तिके द्वारा ब्रह्माण्डका सृजन होता है। परन्तु शुद्धसत्त्व आदि उनकी चित्-शक्ति है। वह मायाशक्तिकी भाँति जड़-पदार्थ नहीं है। अतएव मायाशक्तिके साथ या मायाशक्तिके विकार ब्रह्माण्डके साथ श्रीभगवान्‌का जैसा सम्बन्ध है,

चित्-शक्ति और चित्-शक्तिके विकार धाम, पार्षद आदिके साथ भगवान्का वैसा सम्बन्ध नहीं है। मायाशक्तिके विकार ब्रह्माण्डमें या ब्रह्माण्डका विकार जीव-देहमें श्रीभगवान्का प्रवेश सम्भव नहीं है। परन्तु चित्-शक्तिके विकार मथुरा, वृन्दावन आदि धामोंमें या देवकी आदि वात्सल्यप्रेमवान पार्षदों शरीरमें प्रवेश करना भगवान्के लिए कोई असम्भव कार्य नहीं है।

वैष्णव आचार्योंके विचारसे—‘स एव स्वप्रकृत्येदं’ (१४वें) श्लोकका तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान्ने सर्वव्यापी होकर भी भक्तवात्सल्य गुणसे वात्सल्यप्रेमवती देवकीके गर्भमें प्रवेश किया है, इसमें उनकी स्वप्रकाशता या सर्वव्यापकत्वकी हानि नहीं होती है। क्योंकि वे अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सर्वव्यापी होकर भी सूक्ष्माकार धारण कर सकते हैं। अतएव ‘यथेमेऽविकृता भावाः’ आदि दो श्लोकोंमें यह प्रतिपादन हुआ है कि—भगवान्ने भक्तवात्सल्य गुणके द्वारा अपनी शुद्धसत्त्व मूर्तिसे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया है, परन्तु इस रूपमें ब्रह्माण्डमें प्रवेश करना सम्भव नहीं है। महत्तत्त्व आदि कारणसमूह जैसे ब्रह्माण्डमें प्रवेश नहीं कर सकते हैं, वैसे ही सर्वकारण-कारण बाहर-भीतरशून्य श्रीगोविन्दका ब्रह्माण्डमें प्रवेश करना सम्भव नहीं है। परन्तु मथुरा, वृन्दावन आदि धाम एवं वसुदेव, देवकी आदि पार्षद श्रीभगवान्के स्वरूप हैं, वे ब्रह्माण्डकी भाँति सृष्टि-वस्तु नहीं हैं। अतएव भगवान्का वहाँ प्रवेश और विचरण करना कुछ भी असम्भव नहीं है।

अब प्रश्न होता है कि भगवान् यदि कारणरूपमें सभी वस्तुओंमें हैं, तब जगत्के किसी भी वस्तुका दर्शन करनेसे उनका भी दर्शन होना चाहिये। एवं जगत्की किसी भी वस्तु किसी भी स्थानमें प्रवेश करनेपर उसके साथ भगवान्का भी प्रवेश माना जायेगा। अतएव देवकीके गर्भमें प्रविष्ट बालक यदि भगवान् न भी हो, तो भी भगवान्के सर्वत्र विराजमान होनेसे बालक देहके साथ उनका भी देवकीके गर्भमें प्रवेश एवं गर्भसे बाहर आना भी हो सकता है। इस सन्देहको दूर करनेके लिए वसुदेवजीने कहा—‘बुद्धयनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः’ अर्थात् आँख, कान

आदि इन्द्रियोंके द्वारा प्राकृत वस्तुके रूप, रसादि विषय ग्रहण किये जा सकते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भगवान् भी वैसे ग्रहण किये जा सकते हैं। भगवान्के सर्वत्र अवस्थित रहनेपर भी उनका अनुभव नहीं होता है। अर्थात् श्रीभगवान् इन्द्रिय ग्राह्य विषयोंमें अवस्थित हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इन्द्रियों द्वारा उनकी सत्ताका अनुभव किया जा सकता है। श्रीभगवान् सर्वकारण-स्वरूपमें सर्वत्र अवस्थित हैं, किन्तु आँख आदि इन्द्रियाँ उन्हें ग्रहण नहीं कर सकती हैं।

‘श्रीभगवान्का कहींपर भी प्रवेश करना सम्भव नहीं है’—इस सिद्धान्तके प्रतिपादनके लिए श्रीवसुदेव महाराजने कहा—‘अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते’ अर्थात् हे भगवन्! आप अनावृत अर्थात् अपरिच्छिन्न हैं, अतएव आपका भीतर और बाहर नहीं है। श्रीभगवान् सर्वव्यापी हैं, वे सब वस्तुओंकी अपेक्षा बृहत् हैं, उनसे बड़कर और कोई बृहत् नहीं है। अतएव उनका किसी स्थानमें प्रवेश या किसी स्थानसे बाहर आना किसी भी प्रकारसे सम्भवपर नहीं है। घट-पटादि परिच्छिन्न वस्तुओंमें कारणरूपमें अवस्थान करनेके कारण श्रीभगवान् भी परिच्छिन्न नहीं हो जाते हैं, वे अपरिच्छिन्न ही रहते हैं। इसलिए घट-पटादि परिच्छिन्न वस्तुके कहींपर प्रवेश करनेमात्रसे उसके साथ भगवान्का भी प्रवेश सिद्ध नहीं हो जाता है।

श्रीभगवान् ‘सर्वस्वरूप’ हैं, उनसे भिन्न अन्य किसी वस्तुकी पृथक् सत्ता नहीं है। इसलिए कौन-सी वस्तु द्वारा उनका आवरण हो सकता है? क्योंकि पृथक् वस्तुसे ही आवरण हो सकता है, अपनेसे अपना आवरण नहीं हुआ करता है।

“श्रीभगवान्ने जगत्की सृष्टि करनेके बाद उसमें अन्तर्यामिरूपमें प्रवेश किया”—इस श्रुति-वाक्यका तात्पर्य यह है कि वे जगत्के भीतर और बाहर सर्वत्र ही अवस्थित हैं, इसलिए जगत्के भीतर स्थित अंशको ‘प्रविष्ट अंश’ के रूपमें कहा जा सकता है। इसलिए श्रीभगवान्का किसी भी स्थानमें प्रवेश नहीं है, क्योंकि वे अनावृत सच्चिदानन्द-स्वरूप परमार्थ वस्तु हैं।

श्रील श्रीधरस्वामिपादने इस श्लोककी जो व्याख्या की है, उसमें कुछ-कुछ विवर्तवादका आभास पाया जा सकता है। यह विवर्तवाद वैष्णव-तोषणीकारके अनुसार असम्मत होनेपर भी उन्होंने श्रीधरस्वामिपादकी व्याख्याकी अमर्यादा नहीं की है, बल्कि उनकी व्याख्याके मर्मके अनुसार इस श्लोकके भावार्थको स्पष्ट किया है। “आपने सर्वस्वरूप, सर्वात्मा, सर्वव्यापी और परमार्थ वस्तु होकर भी हमारे पुत्ररूपमें जो आत्मप्रकाश किया है, यह आपकी कृपाके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।”—यही श्रीधरस्वामीपादकी व्याख्याका भावार्थ है।

श्रीवैष्णव-तोषणीकार इतनेमें ही चुप नहीं हो गये, बल्कि प्रकारान्तरमें इस श्लोकका अर्थास्वाद करके उन्होंने श्रीभगवान्की प्रेमवश्यता गुणको भी इङ्गित किया है। प्रकारान्तरसे इस श्लोकका अर्थ करनेसे जाना जा सकता है कि वसुदेव महाराजने श्रीभगवान्की प्रेमवश्यता गुणका वर्णन किया है। प्रकारान्तरसे इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार है—“हे भगवन्! आप सर्वव्यापी होकर भी भक्तवात्सल्य गुणके कारण वात्सल्यप्रेमवतीके गर्भमें प्रवेश करते हैं” आदि शास्त्र-वचनोंसे एवं सुदृढ़ विश्वाससे आपकी प्रेमवश्यता आदि गुणोंका परिचय मिलता है। आप भक्तवात्सल्य और प्रेमवश्यता आदि अनन्त कल्याणमय गुणोंसे परिपूर्ण होकर भी उन गुणोंका आस्वादन करनेका आग्रह छोड़ नहीं सकते हैं, इसलिए प्रेमीभक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर प्रेमवश्यताके कारण भक्तोंको प्यार देकर अपने भक्तवात्सल्य आदि गुणोंका आस्वादन करते हैं।

आप सर्वस्वरूप, सर्वमय, सर्वव्यापी एवं सर्वविध पुरुषार्थके शिरोमणि हैं। आपके स्वरूपतत्त्वका चिन्तन करनेपर ‘आप अपरिच्छिन्न स्वरूप हैं’—यह समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती है। परन्तु आप प्रेमवश्यता हेतु अपरिच्छिन्न होकर भी परिच्छिन्नकी भाँति देवकीके गर्भमें प्रवेश करते हैं। संसारकी कोई भी बृहद्-वस्तु क्षुद्र-वस्तुके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती, परन्तु आपकी अचिन्त्य-महाशक्तिके प्रभावसे सबकुछ सम्भव हो सकता है। आप अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंको आवरण कर सकते हैं तथा आवश्यकता होनेपर अत्यन्त क्षुद्र कीटाणुके अन्दर प्रवेशकर उससे आच्छादित होकर भी रह

सकते हैं। आपकी महिमा अपार-अचिन्त्य है। आप हमारे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं—यही आपके भक्तवात्सल्यका परिचय है। आपकी अपार करुणासे हम आपको पुत्ररूपमें प्राप्त किये हैं ॥ १५-१७ ॥

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति,
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं,
सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥ १८ ॥

अन्वयः—यः पुमान् (जो व्यक्ति) आत्मनः दृश्यगुणेषु (आत्माके दृश्यगुण देह आदिको) स्वव्यतिरेकतः (आत्माके अतिरिक्त पृथक्) सन् इति (वास्तव सत्ता-विशिष्टके रूपमें) व्यवस्यते (स्थिर करता है) अबुधः (वह यथार्थतः मूर्ख है, आत्मतत्त्वज्ञ नहीं) यतः (क्योंकि) मनीषितं (उस मूर्खके द्वारा विचारित) तत् (देह आदि) अनुवादं विना (वाक्यमात्रसे परिकल्पित होनेके अतिरिक्त) सम्यक् (और कुछ) न (नहीं है) [अतएव] त्यक्तं (जो वस्तु अवास्तव कहकर स्वीकृत नहीं है, उस देह आदिको वह) उपाययत् (वास्तव वस्तु-बुद्धिसे स्वीकार करता है) ॥ १८ ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति आत्माके दृश्यगुणयुक्त देहादि पदार्थोंको आत्मासे भिन्न पृथक् वास्तवसत्ता विशिष्टके रूपमें स्थिर करता है, वह वस्तुतः मूर्ख है। क्योंकि, विचार करनेपर देखा जाता है कि यह देह-गेह आदि केवल वाक्योंके द्वारा परिकल्पित वाग्विलासके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। अवास्तव वस्तु होनेके कारण जो परित्यक्त हुई है, ऐसे देह-गेहादिको जो व्यक्ति वास्तव समझकर स्वीकार कर लेता है उसे बुद्धिमान कैसे कहा जा सकता है? ॥ १८ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, लेपका अपि प्रकृतिगुणाः केचित्सुखदा भद्रा एवेत्यत आह—य आत्मनः स्वस्य, दृश्यगुणेषु भोग्य-स्रक्चन्दनवनितादिषु, सन्निति उत्तमोऽयं पदार्थ इति, व्यवस्यते निश्चिनोति, स अबुधः। कृतः? स्वव्यतिरेकतः, स्वस्मिंस्तेषां सदा संयोगाभावात्; ततश्च शोकमोहादिदुःखप्रदत्वात्, संसारप्रवाहप्रापकत्वाच्चेति भावः। नन्वसौ मीमांसको भोग्यस्रगादिः सन्निति वदन् मनीषिणमेवात्मानं मन्यते,

तत्राह—विनेति। नु निश्चितमेव, वादं विना। तन्मनीषितं न सम्यक् मनीषित्वं; तत्र प्रवाद एव, न तु स मनीषीत्यर्थः। यतस्त्यक्तमेव त्वदीयजनैर्घृणास्पदत्वेन यत्, तदेव उप आधिक्येनाददत् स्वीकृतवान्, ह्रस्वत्वमार्षम्॥ १८ ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि प्रकृतिके गुण-समुदाय जीवोंको केवल बाँधते ही नहीं है, बल्कि उनमें भी कुछ सुखप्रद और उत्तम वस्तुएँ भी हैं। जैसे—‘यः आत्मनः दृश्य गुणेषु’ जो व्यक्ति अपने ‘दृश्यगुणेषु’ अर्थात् भोग्य माला, चन्दन, वनिता आदिमें जिस किसी भी वस्तुको उत्तम पदार्थ कहकर मानता है, तो वह निश्चित ही मूर्ख है। कैसे? उसीको कह रहे हैं—‘स्वव्यतिरेकतः’ अर्थात् क्योंकि वे सभी वस्तुएँ अपनेमें सदा स्थिर नहीं रहती हैं। विशेषकर वे सारी वस्तुएँ शोक-मोह और दुःखप्रद हैं और संसार-प्रवाहको प्राप्त करानेवाली हैं।

यदि कोई कहे कि मीमांसकगण भी भोग्य माला-चन्दन आदिको उत्तम वस्तु बतलाकर अपनेको पण्डित मानते हैं अर्थात् उसीमें पाण्डित्य दिखाते हैं। उसके लिए कहते हैं—‘विना नु वादं’—अर्थात् निश्चित ही यह वचन केवल कल्पनामात्र है। क्योंकि वह पाण्डित्य भी पूर्ण पाण्डित्य नहीं है, केवल प्रवादमात्र है और वह मनीषि भी मनीषि नहीं है। ‘यतः त्यक्तमुपाददत्’—क्योंकि तुम्हारे भक्त जिन विषयोंको घृणास्पद कहकर परित्याग करते हैं, वे उन्हीं विषयोंको परम आदरके साथ ग्रहण करते हैं॥ १८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—इस श्लोकमें श्रीवसुदेवजीका अभिप्राय समझना बड़ा कठिन है। फिर भी वैष्णव आचार्योंके अभिमत ही एकमात्र सहारा हैं।

श्रीधरस्वामिपादने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है—सच्चिदानन्द वस्तुके बिना संसारमें दूसरे किसीका भी कोई अस्तित्व नहीं है। अतएव जड़-पदार्थमात्र ही अवस्तु हैं। परिदृश्यमान जड़-जगत्के अस्तित्वमें किसीकी भी अनास्था नहीं है अर्थात् दिखायी देनेवाले जड़-वस्तुके अस्तित्वमें किसीको भी अविश्वास नहीं है। सभी विश्वास करते हैं कि इसका भी अस्तित्व है। परन्तु जगत्को सत्य

नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह नाशवान और परिवर्तनशील है। तत्त्वकी दृष्टिसे जगत्की कोई पृथक् सत्ता नहीं है। प्राकृत व्यवहारिक दृष्टिमें जगत् भले ही सत्य रूपमें प्रतीत होता है, इससे जगत्की व्यवहारिक सत्ता स्वीकार की जा सकती है, परन्तु इसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'आत्मैवेदं सर्वं' आदि श्रुति-वचनोंमें एकमात्र सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् ही सर्वात्मा, सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी एवं परमार्थ सत्य-वस्तु कहे गये हैं।

श्रीधरस्वामिपादने इस श्लोककी व्याख्यामें जड़-जगत्का मिथ्यात्व स्थापनकर श्रीभगवान्के 'एवं भवान् बुद्ध्यनुमेय लक्षणैः' आदि (१७वें) श्लोकमें कहे गये 'सर्वात्मता', 'सर्वस्वरूपता', 'सर्वव्यापित्व' एवं 'परमार्थता' का प्रतिपादन किया है।

वैष्णव दार्शनिकोंने इस श्लोककी व्याख्यामें जड़-जगत्का मिथ्यात्व स्थापन करनेका प्रयास नहीं किया है। उनके मतमें जगत् सत्य होनेपर भी भगवान्की 'सर्वात्मता', 'सर्वस्वरूपता' में कोई बाधा नहीं होती। उनके मतमें जगत् भगवान्की मायाशक्तिका ही कार्य है। अतएव वह भगवान्से पृथक् नहीं है एवं उससे भगवान्की सर्वात्मता आदिमें कोई हानि नहीं होती है।

वैष्णव दार्शनिक आचार्यवर्य श्रीजीव गोस्वामिपाद कहते हैं कि वसुदेवजीने पहले श्लोकोंमें देवकीनन्दनकी सर्वेश्वर कहकर स्तुति की एवं उन्हें प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ—इस प्रकारका मनोभाव प्रकाश किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् वामनरूपमें अदिति और कश्यपके पुत्र होकर अवतीर्ण हुए, श्रीरामरूपमें कौशल्या और दशरथके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। इस प्रकार वे विभिन्न रूपोंमें विभिन्न भक्तोंके पुत्र आदिके रूपमें प्रकट हुए हैं। इसबार वे देवकीनन्दनके रूपमें आये हैं। प्रत्येक युगमें भिन्न-भिन्न भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिए भगवान्के बहुत-से अवतार होते हैं। परन्तु वसुदेवजीने एकमात्र देवकीनन्दनको ही सर्वेश्वररूपमें स्थापन करनेका प्रयास क्यों किया है?

इस श्लोकमें वसुदेवजीका कहना यह है कि श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं, उन्होंने ही भिन्न-भिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर विभिन्न

प्रकारके भक्तोंका मनोरथ पूर्ण किया है। कोई भी अवतार श्रीकृष्णसे पृथक् नहीं है। साधककी साधनाके कारण श्रीकृष्णके ही अंश, कला, विभूति, शक्ति आदि विभिन्न स्वरूपोंका आविर्भाव होता है। श्रीकृष्ण ही सर्वमूल-स्वरूप हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह आदि श्रीकृष्णके ही लीलावतार हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिव श्रीकृष्णके ही गुणावतार हैं। दुर्गा आदि श्रीकृष्णकी ही शक्तियाँ हैं। ब्रह्म श्रीकृष्णका निर्विशेष प्रकाशमात्र है, परमात्मा श्रीकृष्णका अंश है—ये श्रीकृष्णसे पृथक् परमार्थ वस्तु नहीं हैं, इसलिए श्रीकृष्ण ही स्वगत, सजातीय, विजातीय भेदरहित अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। कोई यदि श्रीकृष्णसे पृथक् स्वतन्त्र सत्ताशील परमार्थ वस्तुका अनुसन्धान करता है, तो उसका प्रयास विफल होगा। सृष्टि, स्थिति और प्रलयको देखकर यदि कोई सृष्टिकर्ता आदिको श्रीकृष्णसे पृथक् जानता है, तब वह यथार्थ तत्त्वज्ञ नहीं है। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण विभिन्न मूर्तियोंमें बहुत-सी लीलाएँ करते हैं, परन्तु उनकी सभी मूर्तियोंमें समस्त गुणोंका प्रकाश नहीं होता है। किसी भी मूर्तिमें प्रकाशित गुणोंके पक्षपाती होकर मूल स्वरूपको भूल जाना अबोध व्यक्तिका कार्य है। श्रीकृष्ण अनेकों मूर्तियोंमें विभिन्न प्रकारके काम्यफलोंको प्रदान करते हैं एवं स्वयं रूपमें प्रेमका दान करते हैं। काम्यफलके लोभसे स्वयरूप श्रीकृष्णको भूलकर कामनाबद्ध जीव काम्यफल दाताका पक्षपाती बन जाता है। परन्तु तत्त्वज्ञ व्यक्ति समस्त कामना-वासनाका त्यागकर श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत होता है।

इसलिए श्रीधरस्वामिपादने अद्वैत सिद्धान्तको स्थिर रखकर जगत्का मिथ्यात्व स्थापनाकर श्रीभगवान्की सर्वस्वरूपताका स्थापन किया और वैष्णव आचार्योंने जगत्को जगन्नाथकी विभूति जानकर भगवान्की सर्वस्वरूपताका आस्वादन किया है ॥ १८ ॥

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो,
 वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
 त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते,
 त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥

अन्वयः—विभो (हे सर्वव्यापक!) अनीहात् (चेष्टारहित) अगुणात् (प्राकृत सत्त्वादि तीनों गुणोंसे अतीत) अविक्रियात् (निर्विकार) त्वत्तः (सर्वकारण-कारण आपसे) अस्य (इस ब्रह्माण्डकी) जन्मस्थितिसंयमान् (उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होते हैं) वदन्ति (प्राज्ञगण कहते हैं) गुणैः (सत्त्वादि त्रिगुण सम्पादित सृष्टि आदि) त्वदाश्रयत्वात् (आपके अधीन होनेसे) त्वयि (गुणोंके नियन्ता आपके प्रति) उपचर्यते (सेवकके द्वारा किया हुआ कार्य जैसे राजापर आरोपित होता है, वैसे ही आपमें आरोपित होता है) [अतएव] ईश्वरे (सङ्कल्पमात्रसे ही सब करनेवाले) ब्रह्मणि (प्रयोजनशून्य होनेसे सृष्टि आदि कार्यमें निर्लिप्त) [आपके] न विरुध्यते (शास्त्रकथित सृष्टि आदिका कर्ता होनेमें कोई असामञ्जस्य नहीं होता है) ॥ १९ ॥

अनुवाद—हे विभो! विद्वज्जन निष्क्रिय, निर्गुण एवं निर्विकार आपसे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं संहार बतलाते हैं। ब्रह्म एवं ईश्वर-स्वरूप आपमें कुछ भी विरुद्ध नहीं है। सत्त्वादि गुणोंके द्वारा सृष्टि आदि कार्य होते हैं, किन्तु आप समस्त गुणोंके आश्रय हैं, इसलिए वे सृष्टि-कर्तृत्वादिका आपमें आरोप करते हैं ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, 'स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वा' इत्यादि त्वदुक्तेर्गुणमय-प्रकृतेश्च मच्छक्तित्वेनाभेदात् गुणमयजगदुपादानस्य मम कथमन्तर्बहिर्गुणयोगाभावः, तत्राह—त्वत्त इति। ननु, जगत्सृष्ट्यादिकर्तुः कुतोऽनीहत्वादि सम्भवेत्? तत्राह—त्वयि ईश्वरे ब्रह्मणि न विरुध्यते, त्वयि ब्रह्मत्वान्यथानुपपत्त्यैवेश्वरत्वेऽप्यनीहत्वादि-कमभ्युपगम्यमेव, 'स्वरूपद्वयाभावात्' (श्रीमद्भा० ६/९/३५) इति षष्ठोक्तेरित्यर्थः। नन्वेतेन विरोधो नापयातीत्यत आह—तदाश्रयत्वादिति। गुणैः कुर्वद्भिस्त्वयि सृष्ट्यादि-कर्तृत्वमुपचर्यते, गुणाश्रयत्वात्, यथा भृत्यकृतं राजनीत्यतः प्रकृतेस्त्वच्छक्तित्वेऽपि बहिरङ्गत्वेन त्वत्स्वरूपत्वाभावादन्तर्बहिस्त्व तद्गुणयोगाभाव उपपादितः। यद्वा, ननु, त्वत्पुत्रस्य चतुर्भुजस्य मम कथं ब्रह्मत्वं, कथं वेश्वरत्वं सम्भवेदिति चेत्? सत्यं, त्वं न ब्रह्म, नापीश्वरः; किन्तु, 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' (श्रीगी० १४/२७) इति त्वदुक्तेः, 'आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य' (श्रीमद्भा० २/६/४२) इति ब्रह्मोक्तेश्च तयोराश्रयस्त्वं भवसीत्याह—तदाश्रयत्वात् तयोर्ब्रह्मेश्वरयोरपि आश्रयत्वात्, गुणैरुपचर्यते इति स्रष्टृत्वादिगुणनिबन्धनोपचारादाश्रितधर्ममाश्रयोऽपि धत्त इति, 'पुण्यतमोऽयं देश' इतिवत्त्वमपि ब्रह्म ईश्वरश्च भवसीत्यर्थः। उक्तिरियं रसरीत्यैव, यदुक्तं—'रसेनोत्कृष्यते

कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः' (भ० र० सि० १/२/५९) इति, वस्तुतस्तु ब्रह्म ईश्वरः कृष्ण एक एव 'स्वरूपद्वयाभावात्' (श्रीमद्भा० ६/९/३५) इति षष्ठोक्तेः ॥ १९ ॥

भावानुवाद—यदि प्रश्न हो कि 'स एव स्वप्रकृत्या' (१४वाँ श्लोक) आपने ही पहले कहा है कि आप ही अपनी मायाशक्तिके द्वारा त्रिगुणात्मक विश्वकी सृष्टिकर उसमें प्रविष्ट हुए हैं—इत्यादि। आपकी इस उक्तिके अनुसार गुणमयी प्रकृतिके मेरी शक्तिके रूपमें मुझसे अभिन्न होनेपर गुणमय जगत्के उपादान कारण मेरे बाहर-भीतर उसके गुणोंके संयोगका अभाव कैसे हो सकता है? उसके उत्तरमें कहते हैं 'त्वत्तः' आदि। अर्थात् आप अविक्रिय, गुणातीत और निश्चेष्ट होकर भी जगत्की सृष्टि, स्थिति और लय करते हैं। यदि कहो कि जो जगत्की सृष्टि कर रहे हैं, उनका क्रियाराहित्य होना कैसे सम्भव हो सकता है? उसके उत्तरमें कह रहे हैं—'त्वयि ईश्वरे ब्रह्मणि न विरुद्धयते'—आप ईश्वर और साक्षात् ब्रह्म दोनों ही हैं। इसलिए आपमें कुछ भी विरुद्ध नहीं है। आप मायिक गुणोंको अङ्गीकारपूर्वक ईश्वर-स्वरूपमें सृष्टि आदि करके भी ब्रह्म-रूपमें निर्विकार हैं। जैसे षष्ठ-स्कन्ध (६/९/३५) में कहा गया है—'स्वरूपद्वयाभावात्' अर्थात् सविशेष और निर्विशेष दोनों स्वरूपोंके अभाव हेतु आपके एक ही स्वरूपमें भावनाके भेदसे दो प्रतीतियाँ होती हैं। यदि कहो कि इससे भी विरोध दूर नहीं होता है। उसके लिए कह रहे हैं—'त्वदाश्रयत्वात्' अर्थात् प्रकृतिके गुणसमूह सृष्टि आदि कार्य करते हैं। आप उनके आश्रय होनेके कारण आपमें सृष्टि आदि कर्तृत्वका आरोप होता है। जैसे भृत्यके द्वारा किया गया कार्य राजामें आरोप होता है। अतएव प्रकृति आपकी शक्ति होनेपर भी वह आपकी बहिरङ्गाशक्ति है। इसीलिए आपके स्वरूपत्वके अभावके कारण ही आपके बाहर-भीतर उसके गुण-संयोगका अभाव ही सिद्ध हुआ।

अथवा, यदि कहो कि मैं आपका पुत्र हूँ, चतुर्भुज-स्वरूपमें मुझमें कैसे ब्रह्मत्व या ईश्वरत्वकी सम्भावना कर रहे हैं? उसके उत्तरमें कह रहे हैं—यह सत्य है, आप ब्रह्म भी नहीं और ईश्वर भी

नहीं हैं, परन्तु आप उनके आश्रय हैं। जैसे गीतामें (१४/२७) आपने ही कहा है—“मैं ही ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हूँ।” ब्रह्माजीने भी कहा है (श्रीमद्भा० २/६/४२)—“प्रकृतिके प्रवर्तक जो पुरुष हैं, वे ही परब्रह्म भगवान् आद्य अवतार हैं। दूसरे काल, स्वभाव आदि सभी उनकी विभूतियाँ हैं।” अतएव आप उनके आश्रय हैं। इसीको कह रहे हैं—‘तदाश्रयत्वात्’ अर्थात् उस ब्रह्म और ईश्वरके भी आप आश्रय हैं। इसलिए उनके सृष्टृत्वादि गुण आपमें आरोपित हुए हैं। उपचारके कारण आश्रितका धर्म आश्रयमें ग्रहण किया जाता है। जैसे—‘यह पुण्यतम देश है’—इस वाक्यसे पुण्यजनोंका धर्म देशमें आरोप हुआ है। उसी प्रकार आप ही ब्रह्म और ईश्वर हैं, यह अर्थ है।

तात्पर्य यह है कि षष्ठ-स्कन्धमें कहे गये दोनों स्वरूपोंके अभाव हेतु ब्रह्म, कृष्ण और ईश्वर स्वरूपतः भिन्न नहीं हैं, परन्तु यहाँ रस विचारसे श्रीकृष्ण-स्वरूपका सर्वोत्कर्षत्व कथित हुआ है। जैसे भक्तिरसामृतसिन्धुमें कहा गया है (पूर्व० १/५९)—“यद्यपि श्रीनाथ और श्रीकृष्णमें स्वरूपतः सिद्धान्तगत कोई पार्थक्य नहीं है, फिर भी सर्वोत्कृष्ट प्रेममय रसके विचारसे श्रीकृष्ण-स्वरूपका उत्कर्ष देखा जाता है॥” १९॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वर्तमान श्लोकमें वसुदेवजीने श्रीभगवान्से कहा—हे विभो! आपसे ही इस परिदृश्यमान जगत्की सृष्टि, स्थिति और लय होता है—यही वेदादि शास्त्रोंका सिद्धान्त है। इसमें सन्देह होता है—जगत्में देखा जाता है कि उपादान कारण रूपान्तरित होकर ही कार्य रूपमें परिणत होता है, जैसे मिट्टीका रूपान्तर घट है। श्रीभगवान् यदि जगत्के उपादान कारण हैं, तब उनका भी रूपान्तर या विकार स्वीकार करना पड़ेगा। यह सन्देह दूर करनेके लिए ‘अनीहात्’, ‘अगुणात्’ एवं ‘अविक्रियात्’ ये तीन विशेषण श्लोकमें दिये गये हैं। इसमें वक्तव्य यह है कि श्रीभगवान् सत्त्व, रजः और तमः—इन तीन गुणोंसे अतीत हैं। अतएव उनकी कोई इच्छा या चेष्टा नहीं है, इसलिए उनका कोई विकार भी नहीं होता है। किसी प्रकारकी कोई चेष्टा नहीं रहनेसे कोई कार्य भी सिद्ध नहीं होता है

एवं रूपान्तर न होनेसे उपादान कारणसे कोई उत्पादन भी नहीं होता है, यही संसारका नियम है। परन्तु भगवान्‌की कोई चेष्टा या इच्छा न रहनेपर भी वे जगत्‌की सृष्टि कर सकते हैं एवं उनका कोई भी रूपान्तर न होकर भी वे जगत्‌के उपादान कारण बने रह सकते हैं।

‘त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते’—श्रीभगवान् ‘ब्रह्म’ अर्थात् सर्वव्यापी हैं। सर्वव्यापी वस्तुकी कोई भी चेष्टा सम्भव नहीं है। श्रीभगवान् ब्रह्म होकर भी ‘ईश्वर’ अर्थात् जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और लय-कर्त्ता हैं। ब्रह्मत्व और ईश्वरत्व ये दोनों परस्पर विरुद्ध होनेपर भी श्रीभगवान्‌में ये विरुद्ध नहीं होते हैं। ‘त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः’—सत्त्व, रजः एवं तमः—इन तीन गुणोंसे जगत्‌की सृष्टि होती है और ये तीन गुण ही जगत्‌ रूपमें परिणत होते हैं, परन्तु भगवान् इन तीन गुणोंके आश्रय होनेसे उन्हींको सृष्टिकर्त्ता और जगत्‌का उपादान कहा जाता है। राजाके स्वयं युद्ध न करनेपर भी जैसे उनके सेनापतिके द्वारा युद्धमें विजय प्राप्त करनेपर राजाकी ही जय होती है, वैसे ही भगवान्‌के स्वयं कुछ न करनेपर भी उनके द्वारा अधिष्ठित त्रिगुणमयी प्रकृतिसे ही जगत्‌की सृष्टि होती है—इसलिए उन्हें सृष्टिकर्त्ता कहा जाता है। अतएव भगवान्‌के ब्रह्मत्व एवं ईश्वरत्वमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार भगवान् केवलमात्र जगत्‌के निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी हैं। जगत्‌में देखा जाता है—कुम्भकार (कुम्हार) घटका निमित्त कारण और मिट्टी उपादान कारण है। अतः एक ही व्यक्ति या कोई एक वस्तु किसी कार्यके लिए निमित्त एवं उपादान—दोनों नहीं हो सकते। परन्तु भगवान् अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न हैं, वे निमित्त कारण और उपादान कारण—दोनों रूपोंमें ही जगत्‌की सृष्टि करते हैं।

श्रीवसुदेवजीने श्रीभगवान्‌को जगत्‌का उपादान और निमित्त—ये दोनों कारणोंके रूपमें प्रतिपादनकर विरोधी शङ्काको दूर करनेके लिए कहा—‘त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते।’ हे भगवन्! आप ‘ब्रह्म’ हैं अर्थात् आप निर्विकार, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द वस्तु हैं। आप ही ‘ईश्वर’ अर्थात् अचिन्त्य, अनन्त शक्तिशाली एवं सर्वकर्त्ता हैं, अतएव

आपके जगत्के उपादान और निमित्त कारण होनेमें कोई विरोध या असामञ्जस्य नहीं होता है। जैसे मणि, मन्त्र और औषधि आदि वस्तुओंमें अचिन्त्यशक्ति देखी जाती है। भगवान्के द्वारा सृष्ट अयस्कान्त-मणि (चुम्बक) स्वयं निश्चल रहकर भी लोहेको चला देता है। श्रीभगवान्के द्वारा सृष्ट स्पर्शमणि स्वयं अविकृत रहकर स्पर्शमात्रसे लोहेको स्वर्ण-रूपमें बदल देती है। भगवान्के द्वारा सृष्ट चन्द्रकान्तमणि निकटमें रहनेसे अग्निकी दाहिका शक्ति स्तब्ध हो जाती है। भगवान्के मुख-निःसृत मन्त्रके उच्चारणसे असाध्य भी साध्य हो जाता है और भगवान्के द्वारा सृष्ट महौषधिसे विविध प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

श्रुति-वाक्यसे यह समझा जाता है कि भगवान्की एक पाद विभूति—यह जगत् है एवं त्रिपाद विभूति उनका धाम है। अन्तरङ्गा और बहिरङ्गा भेदसे उनकी शक्ति दो प्रकारकी है। फिर अन्तरङ्गाशक्ति ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित् भेदसे तीन प्रकारकी है। श्रीभगवान्का ऐश्वर्य, वीर्य आदि षड-ऐश्वर्य भी इसी अन्तरङ्गाशक्तिके अन्तर्गत है। बहिरङ्गाशक्ति सत्त्व, रजः और तम त्रिगुणात्मिका है। सांख्य-दर्शन और वेदान्त-दर्शनके शाङ्कर-भाष्य आदिमें इस बहिरङ्गाशक्तिको लेकर ही विविध विचार विमर्श हुआ है, परन्तु अन्तरङ्गाशक्तिके विषयमें कोई भी चर्चा नहीं हुई। परन्तु वैष्णव दार्शनिकोंने दोनों शक्तियोंके विषयमें विचार-विश्लेषण किया है।

अतएव इस श्लोकमें देखा जाता है कि भगवान् ही जगत्के निमित्त और उपादन कारण हैं। अब यह आशङ्का होती है कि भगवान् अपनी अन्तरङ्गाशक्तिके द्वारा वैकुण्ठादि धामके भी निमित्त और उपादान कारण हो सकते हैं, क्योंकि उनकी अन्तरङ्गाशक्ति चिन्मयी है, उस शक्तिके साथ उनका सम्बन्ध होनेमें कोई भी आपत्ति नहीं है। परन्तु, बहिरङ्गाशक्ति जड़ एवं त्रिगुणमयी है, उसके साथ भगवान्का कैसे सम्बन्ध हो सकता है? इस सन्देहको दूर करनेके लिए वसुदेवजीने कहा—‘त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते त्वयि।’ इसमें वैष्णव-तोषणीकारका कहना है कि ‘तस्याः शक्तिच्छायास्वरूपत्वान्न तद्दोषेण लिप्यसे, तथापि त्वामाश्रयमन्तरेण तद्गुणा न सिद्ध्यन्तीति तैर्गुणैस्तत्कर्तृत्वादि-

कमुपचर्यते एवैतदप्यचिन्त्यता वैभवमेवेत्यर्थः।' अर्थात् सूर्यमण्डल स्वप्रकाश स्वरूप होनेपर भी जगत्में छाया (परछाई) दिखाई देती है। छायाके साथ सूर्यका कोई सम्बन्ध नहीं रहनेपर भी सूर्य न रहनेसे छाया भी नहीं रह सकती है। वैसे ही भगवान् भी चिन्मय और चित्-शक्तियुक्त हैं, त्रिगुणात्मिका मायाशक्ति भी चित्-शक्तिकी छाया स्वरूपा है एवं भगवान्की सत्ताके बिना मायाकी कोई सत्ता नहीं रह सकती है। अतएव जगत् कर्तृत्व श्रीभगवान्में ही आरोपित होता है। छायाके साथ सूर्यका सम्बन्ध रहनेपर भी जैसे छायाके अन्धकार आदि दोषोंके साथ सूर्यका कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही मायाके साथ श्रीभगवान्का सम्बन्ध रहनेपर भी स्वरूप-आच्छादन आदि मायाके दोषोंके साथ भगवान्का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यही श्रीभगवान्का अचिन्त्य प्रभाव है कि वे मायाके नियन्ता होकर भी मायाके साथ किसी प्रकारके सम्बन्धमें लिप्त नहीं होते हैं। श्रीभगवान् स्वयं-रूपमें सदा चिद्विभूतिसे युक्त रहकर ही नित्य लीला-रसका आस्वादन करते हैं एवं अंशरूपमें प्रकृतिके प्रति ईक्षण करते हैं। उसीसे ही प्रकृतिके गुणोंके क्षुब्ध होनेपर विश्व ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है। यही लीलामयकी अचिन्त्य अपूर्व लीलामाधुरी है ॥ १९ ॥

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया,
 बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः।
 सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं,
 कृष्णञ्च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥

अन्वयः—सः (गुणातीत) त्वं (आप) त्रिलोकस्थितये (त्रिभुवनकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिए) स्वमायया (अपनी मायाशक्ति द्वारा) आत्मनः शुक्लं वर्णं (अपनेको शुद्ध स्वरूपमें) खलु (बारम्बार) बिभर्षि (धारण करते हैं) सर्गाय (त्रिलोक सृष्टिके लिए) रजसा उपबृंहितं (रजोगुण बहुल) रक्तं (रक्तवर्ण) बिभर्षि (धारण करते हैं) च (और) जनात्यये (लोगोंका विनाश अर्थात् प्रलय करनेके लिए) तमसा (तमोगुण बहुल) कृष्णं वर्णं (कृष्णवर्ण) [धारण करते हैं] ॥ २० ॥

अनुवाद—गुणातीत होकर भी आप अपनी मायासे तीनों भुवनोंकी स्थितिके लिए स्व-स्वरूपमें विशुद्धरूपमें शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप), सृष्टिके लिए रजोगुण प्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) एवं प्रलयकालमें तमोगुण प्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) धारण करते हैं ॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, ब्रह्मादिभ्योऽप्यस्य सृष्ट्यादि प्रसिद्धं, कथं त्वत्त इति ब्रूषे? सत्यं, ब्रह्मादयोऽपि तवैव रूपाणीत्याहुः—स प्रसिद्धस्त्वमेव, स्वमायया स्वरूपेणैव, शुक्लं शुद्धमित्यर्थः, जगत्पालकस्य विष्णोः श्यामवर्णत्वात्। जनात्यये जनसंहारायेत्यर्थः। अत्र रजसोपबृंहितं रक्तमितिवत्, तमसोपबृंहितं कृष्णमितिवत्, सत्त्वेनोपबृंहितं शुक्लमित्यनुक्तेर्ब्रह्मरुद्रयो रजस्तमोयोग इव विष्णोर्न सत्त्वेन योगः। सत्त्वस्यावरण-विक्षेपाभावादौदासीन्यरूपत्वेन शुद्धसत्त्वे परमेश्वरे सान्निध्यमात्रं, न तु स्पर्शः। अतएवोक्तं त्रिदेवपरीक्षायां—‘हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्’ (श्रीमद्भा० १०/८८/५) इति; ‘सत्त्वादयो न सन्तीशे’ (विष्णुपु० १/९/४३) इति; ‘साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च’ इति श्रुतिश्च ॥ २० ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि ब्रह्मादि देवताओंसे इस जगत्की सृष्टि आदि हुई है ऐसा प्रसिद्ध है, तो फिर ‘त्वत्तः अर्थात् आपसे जगत्की सृष्टि हुई है’—ऐसा क्यों कह रहे हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं—यह सत्य है, ब्रह्मादि देवता भी आपके ही स्वरूप हैं। इसलिए कह रहे हैं—‘स त्वम्’ अर्थात् यह प्रसिद्ध है कि आप ही ‘स्वमायया’ अर्थात् अपनी मायाके द्वारा अपने स्वरूपसे ‘शुक्लम्’ अर्थात् शुद्धरूप धारण करते हैं, क्योंकि जगत्का पालन करनेवाले विष्णुका श्यामवर्ण है। ‘जनात्यये’ अर्थात् लोगोंके संहारके लिए। यहाँ रजोगुणात्मक रक्तवर्ण और तमोगुणयुक्त कृष्णवर्ण—इन उक्तियोंकी भाँति सत्त्वगुणसे युक्त शुक्लवर्ण नहीं कहा गया है, क्योंकि ब्रह्मा और रुद्रमें जिस प्रकार रजोगुण और तमोगुणका योग है, वैसा विष्णुमें सत्त्वगुणका कोई योग नहीं है। सत्त्वगुणमें आवरण और विक्षेप नहीं होनेसे विष्णु उदासीन रूपमें सत्त्वगुणमें अवस्थान करते हैं। वे निरन्तर शुद्धसत्त्वमें अवस्थित हैं, परन्तु उनमें मायाका कोई स्पर्श नहीं है। इसलिए भृगुऋषि द्वारा तीन देवताओंकी परीक्षामें भी कहा है (श्रीमद्भा० १०/८८/५)—“श्रीहरि सर्वदर्शी, प्रकृतिसे अतीत, साक्षी और साक्षात्

गुणातीत पुरुषोत्तम होनेके कारण उनकी आराधना करनेपर साधक पुरुष भी गुणातीत हो जाता है।” श्रीविष्णुपुराणमें (१/९/४३) कहा गया है—“जिस परमेश्वरमें प्राकृत सत्त्वादि गुण नहीं हैं, ऐसे परमशुद्ध आदिपुरुष वासुदेव प्रसन्न हों।” एवं श्रुतिमें भी कहा गया है—“आप साक्षी, चित्तके अधिष्ठाता, अद्वितीय और निर्गुण हैं॥” २० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वासुदेवजीने देवकीनन्दनका जो सर्वेश्वर और सर्वकारण-कारण रूपमें स्तव किया, उससे ऐसा प्रश्न हो सकता है—“श्रीविष्णु पालनकर्ता, ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, और रुद्र संहारकर्ता हैं”—यह समस्त शास्त्रोंका सिद्धान्त है, परन्तु वासुदेवजीने देवकीनन्दनको ही सृष्टि, स्थित आदि एकमात्र कर्ता क्यों कहा है? इसका समाधान उन्होंने इस श्लोकमें किया है—हे भगवन्! आपकी करुणाका कोई अन्त नहीं है, आप ही विष्णुरूपमें पालन, ब्रह्मारूपमें सृष्टि तथा रुद्ररूपमें संहार करते हैं।

“पालनकर्ता विष्णु कृष्ण वर्णवाले, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा रक्त वर्णवाले और संहारकर्ता रुद्र शुक्ल वर्णवाले हैं”—यही समस्त शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। परन्तु, वासुदेवजीने कहा—आप जगत्की स्थितिके लिए शुक्लवर्ण, सृष्टिके लिए रक्तवर्ण एवं संहारके लिए कृष्णवर्ण धारण करते हैं।

इसलिए इस श्लोककी वैष्णव-तोषणी टीकामें कहा गया है—‘अत्र चाक्षुषे गुणे न तात्पर्यं, परमतामसानां बकादीनामपि शुक्ल वर्णत्वात्, परम सात्त्विकानां श्रीव्यास शुकादि कृष्णवर्णत्वात्’ अर्थात् श्लोकस्थित शुक्ल, रक्त और कृष्ण शब्दका शुक्ल, कृष्ण, रक्त आदि आँखों द्वारा देखे जानेवाले रङ्ग—यह अर्थ नहीं है। विशेषकर तमोगुणका सम्बन्ध रहनेसे ही कृष्णवर्ण होगा एवं सत्त्वगुणका सम्बन्ध रहनेसे ही शुक्लवर्ण होगा—ऐसी बातें स्वीकार नहीं की जा सकती हैं, क्योंकि सर्वदा हिंसा-परायण परम तामसिक बगुला भी शुक्ल वर्णका होता है और श्रीभगवान्के भक्तचूड़ामणि परम सात्त्विक श्रीव्यासदेव, श्रीशुकदेव आदि कृष्णवर्णके हैं। अतएव श्लोकस्थित शुक्ल, रक्त आदि शब्दसे श्रीभगवान्के अवतार ब्रह्मा, विष्णु आदिके

वर्णके विषयमें कोई चर्चा नहीं हुई है, परन्तु उनके स्वरूपके विषयमें ही चर्चा हुई है।

‘अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णा’ आदि श्रुति-वाक्यमें भी रजः, सत्त्व एवं तमोगुणी प्रकृतिका भी लोहित, शुक्ल एवं कृष्णवर्णका उल्लेख देखा जाता है। वहाँ भी लोहित, शुक्ल आदि शब्दका चाक्षुष अर्थ समीचीन नहीं है। अतएव इस श्लोकस्थित शुक्ल शब्दका अर्थ—शुद्ध, रक्तका अर्थ—प्रवृत्ति प्रधान एवं कृष्ण शब्दका अर्थ—स्वरूप आवरक (अर्थात् स्वरूपका आच्छादन करनेवाला) समझना चाहिये।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः।

गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥

इस सांख्य-कारिकाके वचनसे देखा जाता है कि—सत्त्वगुण प्रकाशक, रजोगुण चालक और तमोगुण आच्छादनकारी होता है। श्रीभगवान् सत्त्वगुणके योगसे विष्णु-मूर्तिमें पालन, रजोगुणके योगसे ब्रह्मा-मूर्तिमें सृष्टि और तमोगुणके योगसे रुद्र-मूर्तिमें संहार करते हैं। उनमेंसे सत्त्वगुण निर्मल होनेसे उसके साथ विष्णुका कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु रजोगुण और तमोगुणके साथ ब्रह्मा और शिवका सम्बन्ध है। सफेद काँचके आवरणके अन्दर किसी वस्तुका रूपान्तर नहीं होता है, परन्तु लाल या नीले काँचके अन्दर कोई भी वस्तु लाल या नील वर्णकी दिखायी देती है। उसी प्रकार इस श्लोकमें ब्रह्मा और रुद्रके स्वरूपके वर्णनमें ‘रजसोपबृंहितं रक्तं तमसा कृष्ण’—रजोगुणके योगमें ‘रक्त’ एवं तमोगुणके योगमें ‘कृष्ण’ ऐसा वर्णन हुआ है, परन्तु श्रीविष्णुके स्वरूप-वर्णनमें ‘सत्त्वेनोपबृंहितं शुक्लं’ अर्थात् सत्त्वगुणके योगमें ‘शुक्ल’—ऐसा उल्लेख नहीं हुआ है।

श्रीमद्भागवत (१०/८८/५) में देखा जाता है—‘शिवः शक्तियुतः साक्षात् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः’ अर्थात् श्रीशिव मायाशक्तिसे युक्त हैं एवं मायागुणके द्वारा आवृत हैं, परन्तु ‘हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्’ अर्थात् श्रीहरिके साथ गुणोंका कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए वे निर्गुण हैं। वसुदेवजीने इस प्रकार गुणावतार स्वरूपका वर्णनकर भगवान्की सर्वेश्वरता स्थापन की है ॥ २० ॥

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
 गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर।
 राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
 निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥

अन्वयः—विभोः (हे सर्वव्यापिन्!) अखिलेश्वर (हे सर्वेश्वर!) त्वं (इस समय स्वयं ही तुम) अस्य लोकस्य (विविध दुःख-सागरमें मग्न यादवादि भक्तजन-प्रधान जगत्की) रिरक्षिषु (रक्षा करनेकी इच्छासे) मम (मेरे सम्बन्धमात्रसे) गृहे (कंस कारागारमें) अवतीर्णोऽसि (प्रकट हुए हो) [इसलिए तुम] राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैः (करोड़ों यूथोंमें क्षत्रिय वेशधारी असुरवृन्द) निर्व्यूह्यमानाः (परिचालित) चमूः (सेनाओंका) निहनिष्यसे (संहार करोगे) ॥ २१ ॥

अनुवाद—हे विभो! अखिलेश्वर! आप इस मर्त्यलोककी रक्षाकी अभिलाषासे मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हैं, आप क्षत्रिय नामधारी करोड़ों सेनापतियोंसे परिचालित सेनाओंका संहार करेंगे ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—भोः तात! सत्यं त्वयाहं विदिततत्त्व एवास्मि, त्वद्गृहे किमर्थमवातरमित्यपि जानासि चेत् ब्रूहि? इत्यत आह—त्वमिति। अस्य लोकस्य इमं लोकम्, अतः साधूनां रक्षणार्थं। राजन्यसंज्ञा येऽसुरकोटियूथपास्तैः निर्व्यूह्यमानाः इतस्ततश्चाल्यमानाः, चमूः सेनाः ॥ २१ ॥

भावानुवाद—यदि कहें कि—हे पितः! सचमुच आप मेरे तत्त्वसे अवगत हुए हैं, तब आपके घरमें मैं क्यों आया हूँ—यह भी यदि आप जानते हैं, तो कहिये? इसके उत्तरमें कहते हैं—‘त्वम् अस्य लोकस्य’ अर्थात् आप इस जगत्के साधुओंकी रक्षा करनेके लिए मेरे गृहमें अवतीर्ण हुए हैं। राजा नामधारी असंख्य असुर सेनानायकोंके द्वारा परिचालित सेनाओंका आप संहार करेंगे ॥ २१ ॥

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे,
 श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत् सुरेश्वर।
 स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं,
 श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥

अन्वयः—सुरेश्वर (हे देवदेव!) अयं तु असभ्यः (यह असभ्य कंसने) नौ (हमारे) गृहे तव जन्म (घरमें आपका आविर्भाव होगा) श्रुत्वा (दैववाणीसे जानकर) ते (तुम्हारे) अग्रजान् (अग्रज भाइयोंका) न्यवधीत् (वध कर दिया है) सः (वह कंस) पुरुषैः (अपने अनुचरोंके द्वारा) समर्पितं (निवेदन करनेपर) ते (तुम्हारे) अवतारम् (आविर्भावको) श्रुत्वा (सुनकर) अधुनैव (इसी समय) उदायुधः (अस्त्र उठाया हुआ) अभिसरति (दौड़कर आयेगा) ॥ २२ ॥

अनुवाद—हे देवाधिपते! इस दुष्ट कंसने हमारे घरमें आपका जन्म होगा—यह सुनकर आपके बड़े भाइयोंको मार डाला। अब उसके दूत उसे आपके जन्मका समाचार दे देंगे और वह इसी समय अस्त्र धारण करके यहाँ उपस्थित हो जायेगा ॥ २२ ॥

सार्थदर्शिनी—अतस्त्वत्कृपया तव सर्वमैश्वर्यमहं जानाम्येव, तदप्यविवेकसमुद्रो मया दुस्तर एव, यतः साम्प्रतिकस्य महादुष्ट कंसस्य दौरात्त्यं त्वां ज्ञापयामीत्याह—अयन्त्विति। ननु, ममैतत् अलौकिकरूपमाधुर्यास्वादनमग्नौ मां न प्रहरिष्यति, प्रत्युत प्रीणयिष्यतीति तत्राह—असभ्यः, रसास्वादहेतुर्हि सभ्यत्वमेवेति भावः। हिंसायां कैमुत्यमाह—तवेत्यादि। समर्पितं कथितम्, अभिमुखमेव सरतीति तमागतप्रायमहं पश्यामीत्यतोऽधुनैव रूपमिदमुपसंहर। तस्मिन्नागते तूपसंजिहीर्षातः पूर्वं किं भविष्यतीति मे महाकम्प इति भावः ॥ २२ ॥

भावानुवाद—अतएव आपके अनुग्रहसे मैं आपका समस्त ऐश्वर्य जान गया हूँ, फिर भी मेरे लिए अज्ञानरूप समुद्रसे पार होना बड़ा कठिन है, क्योंकि इस समय महादुष्ट कंसका दौरात्त्य आपको निवेदन करता हूँ, इसलिए 'अयं' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'अयं त्वसभ्य'—उस असभ्य कंसने मेरे घरमें आपका जन्म होगा—यह आकाशवाणीसे जानकर, आपके अग्रज भाइयोंको मार डाला है। यदि आप कहें कि मेरे इस अलौकिक रूप-माधुर्यके आस्वादनमें निमग्न होकर मुझपर वह प्रहार नहीं करेगा, बल्कि प्यार करेगा। इसलिए कह रहे हैं—'असभ्य', रसास्वादका कारण ही सभ्यत्व है अर्थात् सभ्य व्यक्ति ही रसास्वाद करते हैं, असभ्य नहीं—यह भाव है। नहीं, नहीं, वह ऐसा कदापि नहीं कर सकता है। वह क्रूर एवं असभ्य है। रसका

या प्रेमका अनुभव सभ्य, सुशील, भद्र व्यक्ति ही कर सकता है। असभ्य नहीं कर सकता है। हिंसाके विषयमें कैमुक्तिक न्यायके अनुसार 'तव' इत्यादि श्लोक द्वारा कह रहे हैं अर्थात् उसकी हिंसाके विषयमें क्या बताऊँ—आपके आविर्भावके विषयमें आकाशवाणीको सुनकर उसने आपके बड़े भाईयोंको मार डाला, तब आपके लिए क्या कहना है? 'समर्पितं'—अपने दूतके मुखसे आपके जन्म होनेकी बात सुनकर अस्त्र-शस्त्र-सहित वह दौड़कर आयेगा। 'अभिसरति' अर्थात् उसे मैं आगतप्राय ही समझ रहा हूँ, इसलिए कृपया आप अपने इस रूपको संवरण कर लीजिये। आपके अपने रूपको संवरण करनेसे पहले कंसके यहाँ आ जानेपर क्या स्थिति होगी, यह स्मरणकर मेरा शरीर काँपने लगा है—यह भाव है ॥ २२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वसुदेवजीने देवकीनन्दनसे कहा—हे भगवन्! आप ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र रूपमें जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं संहार कार्य करते हैं। आपकी करुणाके विषयमें क्या कहूँ? आप अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिए मेरे गृहमें प्रकट हुए हैं। मेरे प्रति आपकी जैसी अपार करुणा है—वह वर्णनातीत है। आपने जगत्-पिता होकर भी मुझे पितारूपमें अङ्गीकार किया है। मैं कारागारमें निवास कर रहा हूँ, फिर भी आप हमें कृतार्थ करनेके लिए कारागारमें ही आकर प्रकट हुए हैं। आपके नामसे जीवोंका भव-बन्धन खुल जाता है, परन्तु आप करुणावत्सल होकर मेरे बन्धन-आगारमें आये हैं। धन्य है प्रभो आपकी करुणा!

आप 'विभु' अर्थात् सर्वव्यापी हैं। आप सदा सर्वत्र ब्रह्मरूपमें सर्वत्र व्याप्त होकर विराजमान हैं, परन्तु आपके उस स्वरूपको ग्रहण करनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है। आप कृपा-परवश होकर जगत्को कृतार्थ करनेके लिए दृश्य-रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। आपने असीम होकर भी सीमामें प्रवेश किया है। आप सर्वेश्वर अर्थात् सर्वनियन्ता हैं। प्राकृत-अप्राकृत समस्त वस्तुएँ आपके ही अधीन हैं। आप जिससे जो कुछ कराना चाहते हैं, वह वही करता है। असुरोंका दमन करनेके लिए आपका आविर्भाव हुआ है। आपका अपना कोई

प्रयोजन नहीं है। फिर भी आप अपने भक्तवात्सल्य गुणके द्वारा स्वयं यहाँ प्रकट हुए हैं, क्योंकि आपके शक्ति सञ्चार करनेपर एक सामान्य क्षुद्र कीट भी विश्वपर विजय प्राप्त कर सकता है। अतएव भू-भार हरणके लिए आपका आगमन बहानामात्र है, आपके आगमनका मूल कारण भक्तोंपर कृपा करनेके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है।

हे अखिलेश्वर! विविध अवतारोंमें देवासुर युद्धमें और दूसरे-दूसरे समयमें आपके हाथोंसे मारे गये असुर इस बार क्षत्रिय कुलमें जन्म लेकर भूतलपर राज कर रहे हैं। उनके द्वारा परिचालित असुर सेनाएँ भी विविध प्रकारसे आपके भक्तोंपर अत्याचार कर रही हैं। आप उन्हें जड़से उखाड़नेके लिए इस बार स्वयं उपस्थित हुए हैं।

हे सुरेश्वर! आपकी अपार करुणासे मैं आपके अचिन्त्य ऐश्वर्य-सिन्धुका बिन्दुमात्र आस्वादन करके ही समझ रहा हूँ कि कंस आदि करोड़ों असुर मिलकर भी आपका कोई अनिष्ट नहीं कर सकते। आपका अनिष्ट करनेकी बात तो बहुत दूर रहे, आपके चरणाश्रित क्षुद्र कीटाणुके निकटमें पहुँचना भी किसीके लिए सम्भव नहीं है। परन्तु आपने मुझे पिताके रूपमें अङ्गीकार किया है, इसलिए मैं पितृ-स्नेह (वात्सल्य) से मूढ़ होकर समय-समयपर आपके ऐश्वर्यको भूल जाता हूँ तथा कंसके हाथसे आपकी रक्षाके लिए चिन्तित हो जाता हूँ। भूमण्डलमें जितने भी असुर हैं, उनमें कंसकी भाँति दुरात्मा कोई भी नहीं है। “देवकीके आठवें गर्भमें आपका जन्म होगा”—यह दैववाणी सुनकर उसने आपके बड़े भाइयोंको मार डाला है। आपके जन्म होनेका समाचार देनेके लिए कंसने चारों ओर कड़ा पहरा लगाया है। उनसे समाचार मिलते ही दुरात्मा कंस अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़कर आयेगा।

इस प्रकार ऐश्वर्यज्ञान और वात्सल्यप्रेम, दोनों ही वसुदेवके हृदयमें हिलोरे लेने लगे। वे इसके अतिरिक्त कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं हुए। केवलमात्र अपलक नेत्रोंसे देवकीनन्दनको सिरसे पैर तक टकटकी लगाकर देखने लगे। उनके नेत्र आँसुओंसे भर गये, गला भी रुद्ध हो गया, सम्पूर्ण शरीर जड़ हो गया तथा क्षण-क्षणमें कंसके

आगमनकी आशङ्कासे उनका हृदय भी काँपने लगा—इस प्रकार वसुदेवजी किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये ॥ २१-२२ ॥

श्रीशुक उवाच—

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।

देवकी तमुपाधावत् कंसाद्भीता सुविस्मिता ॥ २३ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेवजीने कहा) अथ (वसुदेवके स्तवके पश्चात्) एनं (दिव्यरूपमें प्रत्यक्ष गोचर उन) महापुरुषलक्षणं (महापुरुषोंके लक्षणोंसे युक्त शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी) आत्मजं (अपने उदरसे जन्म लिए हुए पुत्रको) वीक्ष्य (देखकर) कंसात् भीता (वात्सल्यप्रेमके प्राबल्यके कारण कंस मेरे पुत्रको मार डालेगा, इस भयसे विह्वल होकर) सुविस्मिता (पुत्र रूपसे श्रीभगवान्‌के आविर्भावको देखकर अत्यन्त विस्मित) देवकी (वसुदेव-पत्नी) तं (उन श्रीभगवान्‌की) उपाधावत् (स्तुति करने लगी) ॥ २३ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—अनन्तर कंसके भयसे डरी हुई देवकी महापुरुषके लक्षणोंसे युक्त पुत्रका दर्शनकर अत्यन्त विस्मयके साथ उनकी स्तुति करने लगी ॥ २३ ॥

सारार्थदर्शिनी—अथ पत्युर्भयं दृष्ट्वा, उप समीपं, भीतेति स्वरूपमनुपसंहरन्तं स्मयमानं तमालक्ष्य, परमेश्वरत्वाहङ्कारेण कंसभयं न गणयति, तदहं हन्त किङ्करोमीत्यतिविह्वलेत्यर्थः । सुविस्मितेत्यस्य परमेश्वरस्याग्रे कंसः खलु को वराकः, तदप्यावयोर्भयं वर्द्धत एवेति कोऽयमविवेको दुस्तर इति भावः ॥ २३ ॥

भावानुवाद—‘अथ’—अनन्तर पतिका भय देखकर देवकी भी ‘भीता’ अर्थात् स्वरूपका संवरण न कर हँसते हुए बालकको देखकर तथा यह बालक परमेश्वरत्वके अहंकारमें कंसकी कोई गिनती नहीं कर रहा है, यह देखकर वह कहने लगी—हाय! अब मैं क्या करूँ?—इस प्रकार वह अतिशय व्याकुल हो गयी। ‘सुविस्मिता’—अतिशय विस्मित होकर अर्थात् इस परमेश्वरके निकट कंस निश्चित ही अतितुच्छ है, फिर भी मेरा डर बढ़ता जा रहा है, इसलिए अहो! मेरी यह दुस्तर विवेक-हीनता कैसी है? ॥ २३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वसुदेवजी जब देवकीनन्दनका स्तव कर रहे थे, तब देवकी अपने पुत्रका आपाद-मस्तक निरीक्षण करती हुई मन-ही-मन विचार करने लगी—क्या ये वही हैं! असहनीय कारागारवासका क्लेश भी जिनके आगमनकी प्रतीक्षामें अति तुच्छ बोध हो रहा था, दैववाणीसे जिनके आगमनकी वार्ता सुनकर कंसने यादवोंपर भयङ्कर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया था, जिनका चरणाश्रय करनेसे जीवका अनायास ही भव-बन्धन दूर हो जाता है, क्या ये वही हैं!—देवकी बारम्बार देखने लगी।

वे विशेष ध्यानसे देखने लगी—उनके पहनावेमें पीत वसन, केयूर, अङ्गद आदि दिव्य मणियोंके द्वारा निर्मित आभूषण सर्वाङ्गमें झलमल कर रहे हैं, विशाल वक्षःस्थलमें वनमाला दोलायमान है, चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं, उनके अति समुज्ज्वल नीलाङ्गकी ज्योतिसे कारागृह जगमगा रहा है। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि ये समस्त महापुरुषके लक्षण हैं, ये किसी साधारण पुरुषमें सम्भव नहीं हैं। इतने दिनोंके पश्चात् अब सम्पूर्ण जगत्का अमङ्गल दूर होगा, सचमुच ही आज मङ्गलमयका आगमन हुआ है। परन्तु, कैसा आश्चर्य है? पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दने सामान्य मानवीके गर्भसे क्यों जन्म ग्रहण किया? हाय! अब मैं क्या करूँ? मेरे गर्भसे जन्म ग्रहण करनेके कारण कंसके अत्याचारसे इसकी रक्षा नहीं होगी। मैं कैसे इस पुत्रकी रक्षा करूँ?

तब ईश्वर-दृष्टिमें विस्मय एवं पुत्र-दृष्टिमें भयने आकर देवकीके हृदयपर पूर्ण अधिकार कर लिया। देवकी विस्मय एवं भयसे अधीर हो गयी। तब वह हाथ जोड़कर पुत्ररूपी भगवान्की स्तुति करने लगी ॥ २३ ॥

श्रीदेवक्युवाच—

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं,
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं,
स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥

अन्वयः—श्रीदेवकी उवाच (श्रीदेवकीने कहा) अव्यक्तं (वाणी, मन आदिके अगोचर) आद्यं (सर्वकारण-कारण) ब्रह्म (बृहत्) ज्योति (चेतनस्वरूप) निर्गुणं (त्रिगुणातीत) निर्विकारं (परिणामरहित) सत्तामात्रं निर्विशेषं (एकमात्र चित्-रसस्वरूप) निरीहं (चञ्चलतारहित) यत्तत् (जो अनिर्वचनीय) रूपं (स्वरूपकी) प्राहुः (वेदोंमें घोषणा होती है) त्वं स (आप वही हैं) अध्यात्मदीपः (बुद्धि आदिके प्रकाशक) साक्षात् (अनावृत सच्चिदानन्द-स्वरूप) विष्णुः (स्वयं-भगवान् हैं) ॥ २४ ॥

अनुवाद—माता देवकीने कहा—हे देव ! वेदोंमें जिस अव्यक्त रूपको जगत्का कारण बतलाया है—उसे ब्रह्म, ज्योतिर्मय, मायारहित, निर्विकार, निर्विशेष, केवल-स्वरूप कहकर वर्णन किया गया है, आप साक्षात् उसी बुद्धि आदिके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं। अर्थात् निराकार, निर्विशेष, ज्योतिर्मय ब्रह्म विष्णुसे पृथक् नहीं है, परन्तु उनकी अङ्गकान्तिमात्र है ॥ २४ ॥

सारार्थदर्शिनी—किञ्च, भक्ताः खलु स्तुत्या भगवन्तमपि वशीकुर्वन्तीति प्रसिद्धेरेन महाहठिनं स्तुत्यैव वशीकृत्य स्ववचने स्थपयामीति मनसि विमृश्य 'भो परमेश्वर ! आवयोः प्रतिक्षणमेवातिभये वर्द्धमानेऽपि तव भयशङ्कैव नास्ति' इत्याह—रूपमिति चतुर्भिः। यद्यस्य तव, तत् प्रसिद्धं, रूपमाकारं नारायण-राघव-हयशीर्षादिकम्, अव्यक्तं सर्वेन्द्रियागोचरम्, आद्यम् अजन्यं, प्राहुर्वेदाः। तथा निर्गुणं निर्विकारं ब्रह्म यस्य तव ज्योतिः प्राहुः—'यस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति श्रुतेः, 'सत्यं ज्ञानमनन्तम् यद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम्' (श्रीमद्भा० १०/२८/१६) इत्यग्निकोक्तेः, 'तत्परं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत्। ममैव तद्घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत ॥' इत्यर्जुनं प्रति हरिवंशे भगवदुक्तेः, 'यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्। तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥' (४०) इति ब्रह्मसंहितोक्तेः, 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' (श्रीगी० १४/२७) इत्यत्र स्वामिचरणैस्तथा व्याख्यानाच्च, विभूतिप्रसङ्गे 'विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम्' (श्रीमद्भा० ११/१६/३७) इत्यत्र परमिति शब्दस्य ब्रह्मेति तैर्व्याख्यानाच्च, 'मदीयं महीमानञ्च परं ब्रह्मेति शब्दितम्' (श्रीमद्भा० ८/२४/३८) इति मत्स्यदेवोक्तश्च, 'परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः' (१७) इति यामुनाचार्यस्तोत्राच्च, 'तद्ब्रह्मकृष्णयोरैक्यात् किरणार्कोपमायुजोः' (१/२/२७८) इति भक्तिरसामृताच्च। तथा यस्य तव सत्तामात्रं शुद्धसत्त्वसामान्यं शुद्धसत्त्वशक्तिविलासभूतमिति यावत् स्वविग्रहधामभक्तपरिकरादिकं, निर्विशेषं विशेषात् प्रपञ्चाभिर्गतं प्राहुः। अतएव निरीहं

स्वतः परिपूर्णत्वेन वितृष्णम्। यद्वा, सकामभक्तानपि निरीहयतीति निरीहम्। किम्वा, निःशेषेण हयति त्वमभिलाषयतीति निरीहं, 'स्पृहेहातृड्वाञ्छा' इत्यमरः। स त्वं विष्णुः, अध्यात्मदीपः सर्वतत्त्वप्रकाशक इत्यविज्ञाया अपि मम मनसि यथा स्फोरयसि, तथाहं वच्मीति भावः ॥ २४ ॥

भावानुवाद—भक्तगण स्तुतिके द्वारा भगवान्को भी वशीभूत कर सकते हैं, यही प्रसिद्धि है। अतएव इस महा हठीको मैं स्तुतिके द्वारा ही वशीभूतकर अपने वचनके अधीन बनाऊँगी—इस प्रकार मनमें विचारकर वे कहने लगी—हे परमेश्वर! हम दोनोंका भय बढ़ता जा रहा है—इसे चार श्लोकोंमें कह रही हैं। 'रूपम्'—संसारमें आपके जो नारायण, राघव, हयशीर्ष आदि स्वरूप हैं, वे 'अव्यक्त'—समस्त इन्द्रियोंके अगोचर और 'आद्य'—जन्म-रहित हैं—ऐसा वेद-शास्त्र वर्णन करते हैं। उसी प्रकार वे निर्गुण, निर्विकार ब्रह्मको आपकी ज्योति बताते हैं।

श्रुतिमें कहा है—“जिनकी अङ्गकान्तिके द्वारा सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है।” आगे (श्रीमद्भा० १०/२८/१६) में भी बतलायेंगे—“जो सत्य-स्वरूप, ज्ञानमय, अनन्त, परब्रह्म, स्वप्रकाश और सनातन हैं एवं जिन्हें मुनिगण प्रकृतिका सम्बन्ध त्यागकर समाहित चित्तमें दर्शन करते हैं—श्रीकृष्णने ऐसा अपना ब्रह्म-स्वरूपका दर्शन कराया है।” हरिवंशमें अर्जुनके प्रति श्रीभगवान् श्रीकृष्णका वचन जैसे—“हे भारत! जिस परब्रह्मने समस्त जगत्का विभाजन किया है, वह मेरा ही घनीभूत तेज है, ऐसा ही जानना।” ब्रह्म-संहिता (४०) में भी कहा गया है—“करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें पृथ्वी आदि जितनी विभूतियाँ हैं, उनसे पृथक् विभूतिरूप निष्कल अर्थात् निरूपाधिक, अनन्त, अशेष प्रकारसे अवस्थित वह ब्रह्म भी जिस प्रभावशाली श्रीगोविन्दकी अङ्गकान्ति है, उस आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।” गीता (१८/२७) में श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—“मैं ही ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हूँ।” यहाँपर व्याख्यान प्रसङ्गमें श्रील श्रीधरस्वामिपादने 'विकार पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम्'—यहाँपर 'परम्' शब्दका अर्थ ब्रह्म किया है। मत्स्यदेवके कथन (श्रीमद्भा० ८/२४/३८) में भी—“परब्रह्म नामक मेरी महिमा अपने हृदयमें प्रकाशित होते हुए देख सकोगे।”

श्रीयामुनाचार्य-कृत स्तोत्र (१७) में कहा गया है—“परात्पर ब्रह्म तुम्हारी विभूति है।” श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२७८) में कहा है—“उस ब्रह्म और श्रीकृष्णमें एकता हेतु किरण और सूर्यके समान समझना होगा।” अर्थात् श्रीकृष्ण उज्ज्वल भास्कर-सदृश हैं एवं ब्रह्म उनकी किरण-स्वरूप है।

उसी प्रकार तुम्हारा जो ‘सत्तामात्रम्’—शुद्धसत्त्व-सामान्य अर्थात् शुद्धसत्त्वरूप शक्तिके विलास-स्वरूप आपका श्रीविग्रह, धाम, भक्त, परिकर आदिको ‘निर्विशेष’—विशेष अर्थात् प्रपञ्चसे पृथक् हैं। अतएव ‘निरीह’—स्वतः परिपूर्ण हेतु वितृष्ण। अथवा, सकाम भक्तोंको भी जो निश्चेष्ट करते हैं, वे निरीह हैं। अथवा, सम्पूर्ण रूपमें सभीकी अपनी प्राप्तिके लिए अभिलाषा जो बढ़ा दें, वे निरीह हैं। अमरकोषमें कहा है—‘स्पृहा, ईहा, तृष्णा, अभिलाषा’—ये सभी समानार्थ वाचक हैं। आप ही सर्वतत्त्व प्रकाशक ‘अध्यात्मदीपः’ विष्णु हैं। अर्थात् बुद्धि आदि इन्द्रियसमूहके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं, समस्त तत्त्वोंके प्रकाशक कहनेका तात्पर्य है—मेरे अज्ञ होनेपर भी मेरे मनमें जैसे स्फूर्ति कराते हैं, वैसे ही मैं कह रही हूँ, यह भाव है॥ २४॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—देवकी पुत्ररूपी भगवान्का स्तव करने लगी। ऐसे समयमें उनके ऐश्वर्य-सिन्धुने उच्छसित होकर देवकीके हृदयको प्लावित कर दिया, उससे देवकीका भय, विस्मय ऐश्वर्य-सिन्धुके अतलतलमें डूब गया। तब देवकी भगवान्की अपार करुणासे उनकी महिमाका कीर्तन करने लगी।

वर्तमान श्लोकमें देवकी भगवान्के जिस स्वरूपका वर्णन कर रही है, उसे देखनेसे उसमें भगवान्की करुणा दृष्टि-गोचर होती है, क्योंकि श्लोकके प्रति पदमें विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तोंका सारतत्त्व प्रकाशित हो रहा है।

साधारण रूपमें देखनेपर—देवकी अन्तःपुरमें रहनेवाली कुल-रमणी है। गुरु-गृहमें वास या शास्त्रोंका अभ्यास करना उनके लिए सम्भव नहीं है। परन्तु इस श्लोकमें उन्होंने जो कुछ कहा है—उसकी आलोचना करनेसे ऐसा प्रतीत होता है—

मुकं करोति वाचालं पङ्क्तुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥

अर्थात् परमानन्द-विग्रह श्रीगोविन्दकी कृपासे कुछ भी असाध्य नहीं है। उनकी कृपासे गूँगा भी वाचाल हो जाता है तथा लँगड़ा भी पर्वतको लौंघ जाता है।

इसलिए देवकीने भी भगवान्‌से कहा—हे भगवन्! आपके स्वरूपका निर्णय करना या प्रकाश करना किसीके लिए सम्भव नहीं है। आपकी कृपासे चतुराननके चार मुखोंसे उच्चरित चतुर्वेद भी आपके स्वरूपका निरूपण करते समय 'यत्तत् रूपं अर्थात् कोई एक अनिर्वचनीय वस्तु' कहनेके अतिरिक्त दूसरा कुछ कह नहीं पाते। आप 'अव्यक्त' अर्थात् वचन, मन और इन्द्रियोंके अगोचर हैं। आपके स्वरूपको प्रकाश करनेके लिए हमारे पास कोई भाषा नहीं है। मन आपका मनन नहीं कर सकता है। अतएव 'यत्तत्' के अतिरिक्त कुछ भी कहनेके लिए कोई भाषा नहीं है। भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता और इन्द्रियशक्तिसे आपको अनुभव नहीं किया जा सकता, ऐसा होनेपर भी आपके अस्तित्वमें कोई अविश्वास नहीं कर सकता। क्योंकि, आप 'आद्य' अर्थात् सर्वकारण-कारण हैं। जगन्नाथको कोई न देखनेपर भी जगत्‌को देखकर सभीको यह धारणा होनी चाहिये कि इस विचित्र विश्वका कोई सृजनकर्ता है। हमने देखा नहीं, इसलिए उनका कोई अस्तित्व नहीं है, ऐसा न समझें। हमलोगोंका देखना, सुनना, चिन्तन करना, अनुभव करना आदि अपनी शक्तिके सामर्थ्यके अनुरूप है। दृश्यवस्तु किञ्चित् दूर होनेसे या निकटमें भी रहनेसे हम उसे देख नहीं पाते हैं। चित्तके चञ्चल होनेपर सुचिन्तित वाक्यकी स्फूर्ति नहीं होती है। जब साधारण घट-पट आदि वस्तुओंका भी कोई-न-कोई कारण होता है, तब अनगिनत नद, नदी, भूधर, सागर, वृक्षलता, पशुपक्षी, मानव आदिसे भरा-पूरा यह विराट विश्व-ब्रह्माण्ड क्या बिना कारणके यों ही प्रकट हो गया है?

इसलिए आपके अस्तित्वका किसी प्रकार अनुभव न होनेपर भी उस महान् अस्तित्वका परिचय देनेके लिए धूलिकणसे लेकर

सुमेरु तक, क्षुद्र कीटाणुसे लेकर ब्रह्मातक, जल बिन्दुसे लेकर महासमुद्र तक सभी अस्फुट-स्वरसे आपकी ओर इशारा करते हैं। जिसपर आपकी कृपा होती है, वही इस विश्वके नियन्ता आपके स्वरूपको जान सकता है ॥ २४ ॥

नष्टे लोके द्विपराद्धावसाने,
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते,
भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥

अन्वयः—कालवेगेन (कालके प्रभावसे) द्विपराद्धावसाने (ब्रह्माजीकी आयुके समाप्ति होनेपर अर्थात् प्रलयमें) लोके (चौदह भुवनात्मक ब्रह्माण्ड) नष्टे (लीन हो जानेपर) महाभूतेषु (आकाशादि पञ्च स्थूल महाभूत) आदिभूतं गतेषु (पञ्च महाभूत सूक्ष्म भूतोंमें प्रविष्ट होनेपर) व्यक्ते (सूक्ष्मभूत, अहंकार, महत्तत्त्व) अव्यक्तं (त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें) याते (प्राप्त अर्थात् लीन होनेपर) अशेषसंज्ञः भवान् एकः (धाम, परिकर, लीलासहित अशेष सच्चिदानन्दघन-विग्रह प्रकृतिके द्रष्टा एकमात्र श्रीभगवान् ही) शिष्यते (लीलामय रूपमें वैकुण्ठ आदिमें अवस्थान करते हैं) ॥ २५ ॥

अनुवाद—ब्रह्माजीकी पूरी आयु (दो परार्ध) समाप्त हो जानेपर अर्थात् महाप्रलयमें कालशक्तिके प्रभावसे चराचर सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, उस समय पञ्च महाभूत तन्मात्रको प्राप्त हो जाते हैं एवं सभी व्यक्त पदार्थ अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं। उस समय आप ही शेष रहते हैं। इसलिए आपका एक नाम शेष भी है ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—किञ्च, महाप्रलयेऽप्यवशिष्यमाणस्य तव कुतो भयमित्याह—नष्टे चराचरे लोके महाभूतेषु लीने सति, तेष्वप्यादिभूतमहङ्कारं गतेषु सत्सु, तस्मिन्नप्यहङ्कारे व्यक्ते व्यक्तम् प्रविष्टे सति, तस्मिन्नपि व्यक्ते महत्तत्त्वेऽव्यक्तं प्रधानं प्राप्ते सति, एको भवानेव शिष्यतेऽवशिष्टो भवतीति पूर्वश्लोकोक्तलक्षणं भवत एकस्यैव रूपं ज्योतिः सत्तामात्रञ्च शिष्यत इति सपरिवारस्थानपरिच्छदस्यैव तस्य नित्यत्वमभिप्रेतम्। अतः शेषसंज्ञः शेषनामा, शिष्यत इति व्युत्पत्त्या भवान् शेष उच्यत इत्यर्थः ॥ २५ ॥

भावानुवाद—महाप्रलयमें भी विद्यमान रहनेवाले आपको किससे भय हो सकता है? यही कह रहे हैं—‘नष्टे लोके’—अर्थात् महाप्रलय उपस्थित होनेपर जब चराचर विश्व-जगत्का प्रलय होता है, तब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत ‘आदिभूतम्’ अर्थात् अहंकारतत्त्वमें विलीन हो जाते हैं एवं उस अहंकारतत्त्वके प्रकृतितत्त्वमें लय होनेपर, ‘भवान् एकः शिष्यते’—एकमात्र आप ही अवशेष रहते हैं। अर्थात् पूर्व श्लोकमें कहे गये लक्षणके अनुरूप एकमात्र आपका ही रूप, ज्योति और सत्तामात्र अवशेष रहता है, इससे ऐसा समझना चाहिये कि उनके परिवार सहित स्थान, परिकर, वसन-भूषण आदि सभी नित्य हैं। इसलिए आप ‘शेषसंज्ञः’—शेष नामवाले हैं अर्थात् ‘शिष्यते’—जो अवशेष रहता है। इस व्युत्पत्तिके अनुसार आपको शेष कहते हैं। ‘अशेष-संज्ञ’—ऐसे पाठान्तरमें आप ही अशेषसंज्ञ होकर विराजमान हैं ॥ २५ ॥

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो,
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम्।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥

अन्वयः—अव्यक्तबन्धो (हे प्रकृतिके प्रवर्तक!) निमेषादिः वत्सरान्तः (निमेष, क्षण, दण्ड, प्रहर, दिन, मास, संवत्सरात्मक) महीयान् (पुनः पुनः वर्षोंकी आवृत्तिसे द्विपरार्द्ध काल बीतनेपर) योऽयं कालः (जो सर्वसंहारक काल अनुभूत होता है) [तथा] येन (जिस कालके द्वारा) विश्वं (जगत्) चेष्टते (परिणामको प्राप्त होता है) तं (वह काल) तस्य (प्रलय अवधि तक समस्त कारणोंके कारण-स्वरूप है) ते चेष्टां (आपकी लीलामात्र) आहुः (तत्त्वज्ञ कहते हैं) ईशानं (सर्वेश्वर) क्षेमधाम (समस्त मङ्गलोंके निकेतन) त्वां (तुम्हारे चरणोंमें) प्रपद्ये (शरण ग्रहण करती हूँ) ॥ २६ ॥

अनुवाद—हे प्रकृतिके प्रवर्तक! यह सारा विश्व जिस कालके अधीन होकर चलता है, निमेषकालसे वर्ष तक कालको सारे वेद विष्णु-स्वरूप आपकी लीलामात्र कहकर वर्णन करते हैं। आप

सर्वशक्तिमान ईश्वर एवं परम कल्याणके आश्रय हैं। मैं आपकी शरण लेती हूँ॥ २६॥

सारार्थदर्शिनी—‘कालवेगेन’ इत्युक्त्या प्राप्तं कालस्यापि स्वातन्त्र्यं वारयन्ती, सर्वभीषणात् कालादपि यद्भयं नास्ति तत्र हेतुमाह—योऽयं सर्वसंहारकः कालः, तमपि, तस्य तव, चेष्टामाहुः। हे अव्यक्तबन्धो प्रकृतिप्रवर्त्तक! येन त्वच्चेष्टारूपेण कालेनैव, विश्वं चेष्टते, स एव कालः कः? तत्राह—निमेषेति। महीयान् पुनः पुनर्वत्सरावृत्त्या द्विपराद्धरूपः। त्वा त्वां, प्रपद्ये—यथा त्वं निर्भयः, तथैव स्वमातरं मामपि निर्भयां कुर्विति भावः॥ २६॥

भावानुवाद—‘कालके प्रबल वेगसे’—इस प्रकार पिछले श्लोकमें कहे जानेसे कालकी भी स्वतन्त्रता होनेका जो अर्थ प्राप्त होता है, उसे यहाँ खण्डन कर रहे हैं। सर्वभीषण कालसे भी आपको जो भय नहीं है, उसका कारण बतला रहे हैं—जो सर्वसंहारक काल है, उसे भी पण्डितलोग आपकी चेष्टा या लीला कहते हैं। हे ‘अव्यक्तबन्धो’ अर्थात् प्रकृतिके प्रवर्त्तक! आपकी चेष्टारूप कालके अधीन होकर ही यह विश्व चल रहा है। यदि प्रश्न हो कि वह काल कैसा है? उसके उत्तरमें कहते हैं—‘निमेषादिवत्सरान्तः’ अर्थात् निमेषसे लेकर वर्ष तक एवं पुनः—पुनः वर्ष गणनाके द्वारा द्विपराद्ध समय तक काल प्रवर्त्तित हो रहा है। ‘त्वा प्रपद्ये’ अर्थात् उस सर्वेश्वर और अभयके आधार आपके शरणागत हो रही हूँ। जैसे आप निर्भय हैं, वैसे ही अपनी माता मुझे भी निर्भय करें, यह भाव है॥ २६॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—देवकी अनन्त ऐश्वर्य—माधुर्यके निकेतन श्रीगोविन्दके ऐश्वर्य—सिन्धुमें निमज्जित है। यद्यपि अखिल ब्रह्माण्डोंके पालक भगवान् देवकीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं, परन्तु उन्हें चतुर्भुजरूपमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारीके रूपमें दर्शनकर माता देवकीकी उनके प्रति ऐश्वर्यबुद्धि हो गयी, इसलिए वे अब उनका बाल्य-भाव आस्वादन नहीं कर सकते हैं। ‘नष्टे लोके’ आदि दो श्लोकोंमें उन्होंने भगवान्से कहा—हे भगवन्! आपको किस बातका भय? अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड कालक्रमसे विलीन हो जायेंगे, परन्तु हे अनन्त! आपका कभी भी अन्त नहीं होगा।

सूक्ष्म कीटसे ब्रह्मा तक सबका अन्त होता है एवं जगत्-स्रष्टा ब्रह्माजी भी द्विपरार्द्ध कालके अन्तमें कालकवलित होते हैं। ब्रह्माके परमायुका परिमाण शास्त्रमें कहा है—

सहस्रयुगपर्यन्तं अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।

रात्रिं युग-सहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥

(श्रीगी० ८/१७)

अर्थात् सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग एक हजार बार घुमनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। रात्रिका परिमाण भी दिनके समान है। अतः ब्रह्माजीके दिन-रातमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग दो हजार बार घूमते हैं। इस प्रकार तीस दिनमें महीना और बारह महीनेमें ब्रह्माका एक वर्ष होता है। ऐसे वर्ष परिमाणमें सौ वर्ष ब्रह्मा जीवित रहते हैं।

ब्रह्मणः स्वस्य मानेन ह्यायुर्वर्षशतं स्मृतम्।

तत्परं वै तदर्द्धं तु परार्द्धमभिधीयते॥

अर्थात् ब्रह्मा अपने परिमाणसे दिन, महीना, वत्सरादि गणनामें एक सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। ब्रह्माके इस शत वर्ष परमायुका नाम द्विपरार्द्ध है, उसका आधा अर्थात् ब्रह्माजीके पचास वर्षका नाम परार्द्ध है। इसलिए ब्रह्माकी परमायुका नामान्तर द्विपरार्द्ध है। इस द्विपरार्द्ध कालके अन्तमें महाप्रलय होता है।

द्विपरार्द्धं त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।

तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय हि॥

(श्रीमद्भा० १२/४/५)

अर्थात् ब्रह्माकी परमायुका द्विपरार्द्ध काल अतीत होनेपर महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व और पञ्चतन्मात्राएँ—ये सात प्रकृतियाँ अपने-अपने कारणोंमें लीन हो जाती हैं।

‘भवानेकः शिष्यतेऽशेष संज्ञः’—हे भगवन्! महाप्रलयमें धूलिकणसे लेकर ब्रह्माण्ड तक, क्षुद्र कीटसे लेकर ब्रह्मा तक जड़ या चेतन सभी पदार्थ आपमें ही विलीन हो जाते हैं। उस समय एकमात्र आप ही अवशेष रहते हैं। इस वाक्यसे यह भी समझना होगा कि उनके धाम,

लीला, परिकर आदि सभी कुछ रहते हैं। केवलमात्र इस भौतिक जगत्का ही प्रलय होता है।

जगत्पर कालका कर्तृत्व होता है, परन्तु जगन्नाथके ऊपर कालका कोई प्रभुत्व नहीं रहता है। काल जगन्नाथके इशारेपर चलता हुआ पार्थिव वस्तुको तोड़ता-बनाता है। इसलिए देवकीने कहा—हे भगवन्! आप सर्वनियन्ता हैं, अतएव कालके भी नियामक हैं। आप ही सर्वेश्वर हैं। आपपर किसीका कोई कर्तृत्व नहीं चलता है। तुच्छाति-तुच्छ कंससे आपको क्या भय? आपको किसी प्रकारके भयकी सम्भावना ही नहीं है एवं आपके चरणाश्रित जीवोंको भी किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं रहती है। आप 'क्षेमधाम' अर्थात् सर्वमङ्गलके आश्रय हैं। जीव जब तक आपके चरणाश्रय करनेके सौभाग्यसे वञ्चित रहता है, तभी तक उसे भय लगा रहता है। आपके अभय चरणोंमें एकबार आश्रय ग्रहण करनेसे और कोई भय नहीं रहता है। आप सर्वेश्वर हैं, आपके इशारेसे अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड परिचालित होते हैं। अतएव आप शरणागत जनोंका भय दूर करेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है? आप कृपापूर्वक हमारे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं। हम महाभयसे भीत होकर आपके चरणोंमें शरणागत हुए हैं, आप अपने चरण-प्रान्तमें हमें स्थान देकर कृतार्थ करें॥ २५-२६॥

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्,
लोकान् सर्वान् निर्भयं नाध्यगच्छत्।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य,
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥

अन्वयः—मर्त्यः (जन्म-मरणादि संसारग्रस्त जीव) मृत्युव्यालभीतः (मृत्युरूपी सर्पभयसे पीड़ित होकर) सर्वान् लोकान् (ऊर्ध्व, मध्य और अधः आदि सभी लोकोंमें सर्वत्र मृत्यु भयसे निर्मुक्त होनेके लिए सभी उपायोंका अनुष्ठान करके भी) पलायन् (कर्म गतिसे परिभ्रमण करते हुए) निर्भयं (निर्भय) नाध्यगच्छत् (नहीं हो पाता है) आद्य (हे सर्वकारण-कारण!) यदृच्छया (अज्ञात सुकृतिवशः) त्वत्पादाब्जं (तुम्हारे चरणकमलको) प्राप्य (आश्रयरूपमें लाभकर) स्वस्थः (भयरहित

होकर) शेते (सुखपूर्वक अवस्थान करते हैं) अस्मात् (तुम्हारे चरणाश्रित जनौकी) मृत्युः (जन्म मरणादि संसार परम्परा) अपैति (दूर हो जाती है) ॥ २७ ॥

अनुवाद—प्रभो! यह मर्त्यलोक मृत्युरूप भीषण सर्पसे भयभीत होकर लोक-लोकान्तरोंमें भटक रहा है, परन्तु उसे कहीं भी कोई निर्भय रहनेयोग्य स्थान नहीं मिलता। आज बड़े भाग्यसे इसे आपके श्रीचरणकमलोंकी शरण मिल गयी है। अतः यह मर्त्यलोक स्वस्थ रूपमें अवस्थान कर रहा है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग गयी है ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी—त्वच्चरणाश्रितोऽपि निर्भयः, किमुत त्वमित्याह—मर्त्य इति। सर्वान् लोकान् प्रति पलायन् निर्भयं भयाभावं न प्राप। यदृच्छया यादृच्छिकमहत्कृपा-लब्धभक्त्येत्यर्थः। त्वत्पादमेवाब्जं धन्वन्तरिं प्राप्य; ‘अब्जोऽस्त्रीशङ्खे ना निचुल धन्वन्तरौ च हिमकिरण’ इति मेदिनी। हे आद्य! तेन त्वद्भक्तापि, त्वया मातृत्वेन स्वीकृतापि, कंसादपि केवलमहमेव महाभयविह्वलेति भावः ॥ २७ ॥

भावानुवाद—जब आपके चरणाश्रितजन निर्भय हो जाते हैं, तब आपकी तो बात ही क्या है? इसे ‘मर्त्य’ आदि श्लोकके द्वारा कह रही हैं। मरण धर्मशील व्यक्ति मृत्युरूप कालसर्पके भयसे अपनेको बचानेके लिए इधर-उधर भागते रहते हैं, परन्तु कालसर्प पीछे-पीछे चलता रहता है, इसलिए वह कहीं भी निर्भय नहीं हो पाता है। ‘यदृच्छया’—यदृच्छापूर्वक महत्कृपासे प्राप्त भक्तिके द्वारा आपके चरणकमलरूप धन्वन्तरिको प्राप्त होकर वह निर्भय हो जाता है। तब उसके पास कालसर्प आ नहीं सकता एवं मृत्यु भी दूर भाग जाती है। मेदिनीकोषके अनुसार ‘अब्ज’ शब्दका अर्थ—शङ्ख, निचुल, धन्वन्तरि और हिमकिरण भी होता है। हे ‘आद्य’! हे सर्वजनक! आपकी भक्त होकर भी, आपके द्वारा माताके रूपमें स्वीकार किये जानेपर भी, इस कंससे केवल मैं ही महाभयसे विह्वल हो रही हूँ ॥ २७ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—साधारण कीड़ेसे लेकर ब्रह्मा तक समस्त जीव मृत्युके भयसे सर्वदा भीत रहते हैं एवं सदा मृत्युका निवारण

करनेके लिए अनेक प्रकारके उपायोंका अनुष्ठान करते रहते हैं। परन्तु इस अनिवार्य मृत्युसे किसी प्रकार छुटकारा नहीं मिल पाता है। एकमात्र श्रीगोविन्दका चरणाश्रय करनेपर ही जीव अमर हो जाता है। 'मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः' आदि श्लोकमें यही तत्त्व परिस्फुट हुआ है।

देवकीने भगवान्से कहा—हे आद्य अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ! जगत्के जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कभी स्वर्गमें, कभी पृथ्वीमें, कभी पातालमें और कभी ब्रह्मलोकमें—इस प्रकार चौदह भुवनोंमें भ्रमण कर रहे हैं, परन्तु मृत्युसर्प सबके पीछे-पीछे दौड़ रहा है। जीव अपनी मृत्युसे बचनेके लिए न जाने कितने-कितने उपाय करते रहते हैं, परन्तु किसी भी उपायसे मृत्युके हाथसे बच नहीं पाते हैं। रोग होनेपर औषधिका सेवन करते हैं, सर्दीमें पहनते हैं, गर्मीमें शीतल वायुका सेवन करते हैं, पुष्टिकर भोजन आदि ग्रहण करते हैं, अनेकों सुविधाओंसे जुड़कर जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं, किन्तु आज तक कोई भी मृत्युके हाथसे बच नहीं पाया। कुटियामें निवास करनेवाला भिक्षुक हो या महा प्रतापशाली राज-राजेश्वर ही क्यों न हों, मृत्यु किसीको भी क्षमा नहीं करती। लोग मृत्युके डरसे इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। परन्तु पुनः-पुनः मृत्युके गालमें जा रहे हैं, परन्तु हे भगवन् ! केवलमात्र आपका चरणाश्रय करनेपर ही मृत्यु दूर भाग जाती है, इसके अतिरिक्त मृत्युसे बचनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

'त्वत् पादाब्जं प्राप्य स्वस्थः शेते'—मृत्युका निवारण करनेके लिए जीव सदा-सर्वदा अनगिनत आश्रय ग्रहण करते हैं। व्याधिसे पीड़ित होकर चिकित्सकका आश्रय ग्रहण करते हैं, धूप, वृष्टि और हिमसे रक्षा पानेके लिए गृहका आश्रय लेते हैं—इस प्रकार जीव कितने-कितने सैकड़ों आश्रय ग्रहण करते हैं—उनकी कोई सीमा नहीं, परन्तु कोई भी आश्रय सुखकर नहीं है या किसी भी आश्रयसे मृत्युका निवारण नहीं होता है। केवलमात्र भगवान्के चरणकमलोंका आश्रय ही परम सुखकर और मृत्युनिवारक है। भगवान्के चरण 'अब्ज' अर्थात् कमल हैं। ये स्वभावतः ही ताप-शान्तिकर, नयन-सुखकर एवं करुणाके मधुर अफुरन्त भाण्डार हैं। जीव भ्रमरकी भाँति उनके

चरणोंमें आश्रय ग्रहण करनेपर समस्त प्रकारकी अशान्तियोंसे निर्मुक्त होता है।

मेदिनीकोषमें 'अब्ज' शब्दके बहुत प्रकारके अर्थ हैं। उनमें एक अर्थ 'धन्वन्तरि' है। भगवान्‌के चरणकमल धन्वन्तरि-स्वरूप हैं। धन्वन्तरिका आश्रय लेनेपर किसीको भी किसी व्याधिका भय नहीं रहता है। संसार-व्याधिसे पीड़ित जीवके लिए इस धन्वन्तरिका आश्रय लिये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है। मृत्यु-सर्पके विषसे जर्जरित जीवके श्रीगोविन्दके चरणकमलरूपी धन्वन्तरिका आश्रय ग्रहण करनेसे विषज्वाला नहीं रहती है। गरुड़के नाम-स्मरणसे सर्पका भय दूर होता है। यह सर्वजन विदित है। श्रीगोविन्दके चरणकमल गरुड़के कन्धेपर आरुढ़ हैं। अतएव उनका आश्रय लेनेसे मृत्युरूप सर्पभय सामने नहीं आता है।

‘मृत्युरस्मादपैति’—गरुड़वाहन श्रीगोविन्दके चरणाश्रित जीवको देखकर ही मृत्युरूप सर्प भयसे भाग जाता है॥ २७॥

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजात्र-
 त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि।
 रूपञ्चेदं पौरुषं ध्यानधिष्यं,
 मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥

अन्वयः—सः त्वं (समस्त दुःखोंका अपहरण करनेवाले आप) घोरात् (देखनेमें भी भयङ्कर) उग्रसेनात्मजात् (उग्रसेनके पुत्र कंससे) त्रस्तान् (भयभीत) नः (हम सबकी) त्राहि (रक्षा करें) [क्योंकि आप] भृत्यवित्रासहा (भक्तोंके विविध भयको हरण करनेवाले) असि (हो) इदं (इस परिदृश्यमान) पौरुषं (महापुरुष लक्षण चतुर्भुज) ध्यानधिष्यं (ध्यानास्पद) रूपम् (स्वरूपको) मांसदृशाम् (चर्मचक्षुके लिए) प्रत्यक्षं (दृष्टिगोचर) मा कृषीष्ठाः (नहीं करें)॥ २८॥

अनुवाद—आप अपने भक्तोंके भयहारी हैं, इसलिए भीषण स्वभाववाले कंससे भयभीत हमलोगोंकी रक्षा कीजिये एवं ध्यानगम्य अपने इस चतुर्भुज विष्णुरूपके अप्राकृत रूपको दर्शन करनेमें अयोग्य अज्ञानमय जड़-आँखोंके दृष्टिगोचर न करें॥ २८॥

साराथदर्शिनी—त्वं त्वदीयश्च निर्भयः, कथमावामेव महाभयग्रस्तौ करोषि इत्याह—स त्वमिति। घोरादिति महाभीषणत्वम्। उग्रति—पिता नोग्रः, सेना च नोग्रा, किन्तात्मज एवोग्र इति भयेनैव साक्षात्तन्नामाग्रहणम्। किञ्च, भृत्यानां विविधं त्रासं हंसि, पित्रोरावयोः किमन्तर्भयं न हरसीति भावः। 'भो मातः! कंसादिवधार्थमेवावतीर्णोऽस्मि, आयातु कंसः, तमधुनैव वधिष्यामि, चक्षुभ्यां पश्य' इति तदुक्तिमाशङ्क्य, वर्द्धिष्णुना पुत्रभावेन, तस्मात् कंसवधमसम्भावयन्ती, प्रत्युत कंसादेव तदनिष्टमाशङ्कमाना महाभयकम्पितसर्वाङ्गी 'हन्त हन्त परमेश्वरत्वादहङ्कारवति पुत्रेऽस्मिन् भेदादय उपाया न घटन्त' इत्यतः साम्नैव स्वकृत्यं साधयामीति मनसि विमृश्य, तद्रूपमुपसंहारयितुं युक्त्यन्तरमुत्थापयति—रूपमिति। पौरुषमैश्वरं, ध्यानधिष्यं ध्यानास्पदं, मांसदृशां मांसचक्षुषां, प्रत्यक्षं मा कृथाः ॥ २८ ॥

भावानुवाद—आप एवं आपके निजजन सभी निर्भय हैं, परन्तु केवल हम दो व्यक्ति ही भयसे व्याकुल हैं, इसे 'स त्वं' आदि श्लोक द्वारा कह रही हैं। हम उग्रसेनके इस महाभयङ्कर दुर्दान्त प्रतापशाली पुत्रसे डरे हुए हैं। इसके पिता उग्रसेन भी उग्र नहीं हैं और सेना भी उग्र नहीं है, परन्तु उनका पुत्र ही महा उग्र है। यहाँ देवकीने भयके कारण ही उसका नाम नहीं लिया। और भी, 'भृत्यवित्रासहासि'—आप अनुगत जनोंके विविध प्रकारका भय दूर करते हैं, केवल माता-पिता हम दोनोंका भय आप क्यों दूर नहीं कर रहे हैं? यह भाव है।

यदि कहो—हे मातः! मैं तो कंस आदि असुरोंको मारनेके लिए ही अवतीर्ण हुआ हूँ। कंसके यहाँ आनेपर उसे अभी मार डालूँगा, आप अपनी आँखोंसे देख लीजिये—इस प्रकार उक्तिकी आशङ्का करती हुई बढ़ते हुए वात्सल्यप्रेमके कारण उनके द्वारा कंसके वधकी असम्भावना करने लगी। बल्कि कंससे ही उनके अनिष्टकी आशङ्का बढ़ने लगी। इसलिए महाभयसे काँपती हुई—हाय! हाय! परमेश्वर होनेके कारण यह हठी पुत्र हमारी बात नहीं मानेगा अर्थात् यह अपना चतुर्भुजरूप नहीं छिपायेगा। अतएव साम, दाम, दण्ड, भेदकी नीतिमेंसे 'साम' नीतिके द्वारा मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगी—इस प्रकार सोचकर उस चतुर्भुजरूपको संवरण करनेके लिए उन्होंने दूसरा तर्क प्रस्तुत किया। 'रूपम्' आदि। अर्थात् आपके इस ध्यानास्पद अलौकिक पौरुष रूपको ज्ञानचक्षु विहीन मानवोंके चर्मचक्षुके गोचर न करें—उन अज्ञानी मनुष्योंको दर्शन न दें ॥ २८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पूर्व श्लोकमें कहा गया है कि श्रीभगवान् ‘क्षेमधाम’ अर्थात् सर्वमङ्गलके निकेतन हैं। जीव उनका चरणाश्रय करनेपर मृत्युके भयसे मुक्त होकर परमानन्द-सिन्धुमें अवगाहन कर सकते हैं। अब ‘स त्वं घोरात्’—आदि श्लोकमें देवकीने भगवान्को कहा है—हे भगवन्! आप ‘भृत्यवित्रासहा’ अर्थात् भक्तोंके समस्त प्रकारके दुःखोंको हरण करते हैं, यही आपका स्वभाव है। हृदयसे शरणागत न होकर भी यदि कोई एकबार भी मुखसे बस इतना कह दे ‘हे गोविन्द! आप मेरी रक्षा करें’, तब आप उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं। आपने अपने मुँहसे कहा है—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(श्रीरामायण युद्धखण्ड १८/३३)

कृष्ण तोमार होऊ यदि बले एक बार।

भवबन्ध हैते कृष्ण तारे करेन पार॥

(श्रीचै० च० म० २२/३३)

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति मेरे चरणोंमें शरणागत होकर ‘हे कृष्ण! मैं तुम्हारा ही हूँ’ इस प्रकार एकबार भी प्रार्थना करता है, तो मैं उसे सर्वदा अभय प्रदान करता हूँ और उसे भव-बन्धनसे पार करता हूँ।

आपकी करुणाकी बात अधिक क्या कहूँ, आप जगत्के पिता होकर भी हमारे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं। हमारे सर्वान्तःकरणसे आपका चरणाश्रय नहीं करनेपर भी आपने हमारी उपेक्षा नहीं की। आपने अपने गुणोंसे हमें पिता-माताके रूपमें अङ्गीकार किया है। अतएव हमारी प्रार्थना यह है कि ‘घोरादुग्रसेनात्मजात् नः त्राहि’—कंसके प्रति हमारे भयको दूर करें। कंस महा हिंसुक है, बिना कारण ही जीवोंकी हिंसा करता है। उसका नाम लेनेसे भी भय होता है। उसके अत्याचारसे हम कारागारमें बन्द हैं, उसके अत्याचारसे हम आज पुत्र-शोकसे कातर हो रहे हैं।

कितने योगीन्द्र-मुनीन्द्र निर्जनमें बैठकर समाधियोगमें आपकी जिस मूर्तिका ध्यान-धारणा करते हैं, आप उसी मूर्तिमें ही हमारे

पुत्र-रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। परन्तु हमारी विनीत प्रार्थना यह है कि आप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी इस चतुर्भुजरूपको अब छिपा लें, इसे चर्मचक्षुओंके गोचर न करें॥ २८॥

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन।

समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः॥ २९॥

अन्वयः—मधुसूदन (हे मधु नामके असुर घातक!) असौ पापः (पापमति यह कंस) मयि (मेरे गृहमें) ते (तुम्हारे) जन्म मा विद्यात् (जन्मको नहीं जान पाये) अधीरधीः (भयव्याकुल चित्तवाली) अहं (मैं) भवद्धेतोः (आपके लिए ही) कंसात् समुद्विजे (कंससे डर रही हूँ)॥ २९॥

अनुवाद—हे मधुसूदन! चञ्चलमति मैं आपके लिए कंससे अधीर उद्विग्न हो रही हूँ। अतएव मेरे गर्भसे आपके जन्म ग्रहणका समाचार वह पापी कंस जैसे जान नहीं पाये, ऐसा उपाय कीजिये॥ २९॥

सारार्थदर्शिनी—भो मातः! यदीदं रूपमन्तर्धापयामि, तदा कंस आगत्य 'गर्भस्ते क्व गत' इति गर्भचौर्यापराधेन त्वामधिकं ताडयिष्यतीति चेत्? तत्र मम का शङ्केत्याह—जन्मेति। मा विद्यात् मा जानातु। मधुसूदनेति—'मधुदैत्यं हतवतो मम कंसवधे कः प्रयास' इति मा मंस्थाः, तदानीन्तनात् मधोरप्ययमिदानीन्तनः कंसः कोटिगुणितबलाधिक इति भावः। भवद्धेतोरिति—मदपराधं प्रकल्प्य मत्ताडन-बन्धादिकं कुर्यात् चेत्, करोतु, केवलं भवतः कल्याणमाशासे इति भावः। ननु, तर्हि 'रूपं यत्तत्' (२४) इत्यनेन, 'नष्टे लोके' (२५) इत्यनेन मदैश्वर्यं वृथैव किमवादीः? सत्यं पुत्र! भवन्माताऽहमेवमधीरबुद्धिरेव, मा खिद्यस्व, ममैव दोषोऽयं, निर्मज्जनं ते यामि, मातृवात्सल्येनापि रूपमिदमुपसंहरति भावः॥ २९॥

भावानुवाद—यदि बालक कहे—हे मातः! यदि मैं इस रूपको छिपाता हूँ, तो कंस आकर मुझे ढूँढने लगेगा कि तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न नवजात शिशु कहाँ गया? इस प्रकार नवजात शिशुकी चोरीके अपराधके कारण वह और भी अधिक अत्याचार करेगा, तो उसके उत्तरमें कह रही हैं—'जन्म ते' मुझसे आपका जन्म हुआ है—इसे पापमति कंस जान न सके। 'मधुसूदन' अर्थात् 'मधु नामके दैत्यका

संहार करनेवाले आपको मेरे लिए कंसको मारनेमें कितना प्रयास करना होगा?’—ऐसा नहीं समझें, क्योंकि मधु दैत्यसे यह कंस करोड़ों गुणा अधिक बलशाली है—यह भाव है। ‘भवद्धेतोः’ अर्थात् वह कंस मेरे अपराधकी कल्पनाकर मुझपर भले ही अत्याचार करे, मारे-पीटे, या बाँधे—चाहे कुछ भी करे, परन्तु मैं तो केवल आपके लिए डर रही हूँ—यह भाव है। तो पहले ‘रूपं यत्तत्’ (२४ वें श्लोक) में तथा ‘नष्टे लोके’ (२५ वें श्लोक) में तुमने मेरे ऐश्वर्यकी बात क्या व्यर्थ ही कही है? इसका उत्तर दे रही हैं—आप यह सत्य कह रहे हैं, किन्तु हे पुत्र! मैं तुम्हारी माता हूँ, इसलिए मेरा चित्त बड़ा व्याकुल हो रहा है। तुम कोई खेद मत करो, तुम अपनी माताके प्रति वात्सल्यके कारण अपने इस चतुर्भुजरूपको छिपा लो—यह भाव है ॥ २९ ॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।

शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—विश्वात्मन् (हे अखिलमूर्तिधर!) अदः (इस परिदृश्यमान) शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया (शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुधोंकी शोभासे) जुष्टं (परिसेवित) अलौकिकं (लीकातीत) चतुर्भुजं रूपम् (चतुर्भुज स्वरूपविशेषको) उपसंहर (गोपन करें) ॥ ३० ॥

अनुवाद—हे विश्वात्मन्! शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे सुशोभित, अपना यह अलौकिक चतुर्भुजरूप संवरण कर लीजिये ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—विश्वात्मन्निति—विश्वमध्येऽहमप्यस्मि, तन्ममान्तर्मध्ये स्थित्वा कथमेवमधीरां धियं प्रवर्तयसीति? तवैवायं दोष इति भावः। अलौकिकमिति—लौकिकनरबालकाकारो भव यथा झटिति त्वामहं क्वापि गोपयानीति भावः ॥ ३० ॥

भावानुवाद—‘हे विश्वात्मन्!’ आप विश्वके अन्तर्यामी हैं और मैं भी विश्वके भीतर ही हूँ, तो फिर आप मेरे हृदयमें वर्तमान रहकर भी केवल मेरे चित्तको क्यों चञ्चल बना रहे हैं? यह आपका दोष है, अर्थात् क्या यह आपका असङ्गत कार्य नहीं है? ‘अलौकिकम्’—अब

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे सुशोभित इस अलौकिक चतुर्भुजरूपको छिपा लें। लौकिक नर बालकका रूप धारण करनेपर मैं आपको अनायास ही किसी स्थानमें छिपा सकती हूँ॥ ३० ॥

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते,
यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत्॥ ३१ ॥

अन्वयः—परः पुरुषः (महत् स्रष्टारूप पुरुषोत्तम) भवान् (आप) निशान्ते (प्रलयके अवसानमें) यत् (शास्त्र उद्दिष्ट) एतत् (एवं साक्षात् दृष्ट इस) विश्वं (अनन्तकोटि ब्रह्माण्डरूप जगत्को) यथावकाशं (निःसंकोच रूपमें) स्वतनौ (अपने विराट् देहमें) बिभर्ति (धारण करते हैं) सोऽयं (वही पुरुषोत्तम आप ही) मम (मानवी मेरे) गर्भगः (गर्भमें प्रविष्ट) अभूत् (हुए हैं) अहो तत् (जन्मरहित आपका ऐसा) जन्म) नृलोकस्य विडम्बनम् हि (मनुष्योंके लिए हास्यास्पद है)॥ ३१ ॥

अनुवाद—आपको ऐसा अलौकिक रूपको छिपानेके लिए क्यों कह रही हूँ, सुनिये—आप परमपुरुष हैं, प्रलयकालमें सम्पूर्ण विश्व—ब्रह्माण्डको अपने देहमें स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, वही विष्णुरूपी आप आज मेरे गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं। यह आपकी अद्भुत मनुष्यलीला नहीं तो और क्या है? अहो, यह मनुष्योंके लिए असम्भव होनेके कारण अत्यन्त उपहासका विषय है॥ ३१ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, किमित्युपसंहर्तव्यम्? मया परमेश्वरेण पुत्रेण तव महती प्रतिष्ठैवास्त्विति चेत्, नाहं प्रतिष्ठामाशासे इत्याह—विश्वमिति। निशान्ते मन्दिरे; 'निशान्तवस्त्य सदनभवनागारमन्दिरम्' इत्यमरः। स्वतनुमन्दिरे, यथावकाशम—सङ्कोचतः, नृलोकस्य मानुष्या, मम विडम्बनमेव तदिदम्। 'अयि मूढे! कोटिब्रह्माण्ड—विग्रहो भगवांस्तव मानुषपुत्र्या गर्भे स्थितोऽभूदिति वक्तुमभिमन्तुमपि किं न लज्जसे?' इति प्रतिवेशिन्यो मामुपहसिष्यन्तीति, प्रत्युताप्रतिष्ठैव मम स्यादिति भावः।

ननु, परब्रह्ममूर्तेर्भगवतः साक्षादपरोक्षानुभविनोः देवकी—वसुदेवयोरपि किमिदम—घटमानमाविद्यकं भयशोकादिकं? मैवं, विद्याविद्याभ्यां बहिरङ्गाभ्यां परभूता खलु

यान्तरङ्गा स्वरूपभूता चिच्छक्तिः, तस्यापि सारवृत्तिरूपो यः प्रेमा, तद्विलासभूतमेवेदं भयशोकादिकं, आविद्यकत्वप्रवादपात्रीभवितुं नैवार्हति। प्रेम्णो मायातीतत्वे किं प्रमाणमिति चेत्? भगवतः प्रेमवश्यत्वान्यथानुपपत्तिरेव, मायामयत्वे तस्य मायावश्यत्वमापद्येतेति। किञ्च, अत्र चान्यत्र च व्युत्पत्त्यर्थमिदमभ्यस्यते—‘भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः’ (श्रीगी० १८/५५), ‘भक्त्याहमेकया ग्राह्यः’ (श्रीमद्भा० ११/१४/२१) इति भगवदुक्तेस्तस्य स्वरूपं भक्त्यैव गम्यमित्यवसीयते। सा च भक्तिस्त्रिविधा—गुणीभूता प्रधानीभूता केवला च, तासाञ्च क्रमेण—ज्ञानं ज्ञानमयीरतिः प्रेमा चेति फलानि। तत्र ज्ञानेन केवलं चित्सुखैकमयं ब्रह्मस्वरूपमेव, ज्ञानमयरत्या चिदैश्वर्यमयं भगवत्स्वरूपमेव, प्रेम्णा तु माधुर्यमयं कृष्ण-रामादि-स्वरूपमेवास्वाद्यते। स्वरूपस्य वस्तुतः ऐक्येऽप्यास्वादनभेदाद्भेदातिदेशः। तच्च माधुर्यं—श्रीविग्रहनिष्ठरूपदिपञ्चकस्य भक्तवात्सल्यस्य लीलायाश्चेति सप्तविधं, व्रजस्थस्य तस्य तु वेण्वैश्वर्ययोराधिक्यान्नवविधम्। यदुक्तम्—‘चतुर्धा माधुरी तस्य व्रज एव विराजते। ऐश्वर्यक्रीडयोर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च॥’ (लघुभा० २८५ कारिका) इति।

प्रेमा च दास्यसख्यवात्सल्योज्ज्वलभेदाच्चतुर्विधः। तेष्वपि मध्ये, वात्सल्यप्रेमा स्वस्वभावमहिम्नैव कृष्णमनुकम्प्यत्वेन ममत्वातिशय-विषयीकृत्य स्पष्टमप्यैश्वर्यं स्वयमनुभूयमानत्वं प्राप्तमपि तथाच्छादयति, यथा तन्ममता-रसनया निबद्धो वशीभूय स कृष्णः स्वमाधुर्यमपारमन्यानास्वाद्यं वात्सल्यप्रेमवज्जनमास्वादयति। ज्ञानेन वा ज्ञानमयरत्या वा सच्चिदानन्दात्मकवस्तूनां य आस्वादः, तस्मात् कोटिकोटिगुणितं ममता हेतुकमास्वादं प्रेमा प्रवर्तयति। तथाहि—सर्वसन्तापनिवर्त्तकात् परमाह्लादकात् दृश्यमानात् चन्द्रादपि सकाशात्सर्वगुणहीनोऽपि कालत्वादितोषयुक्तोऽपि दृश्यमानः स्वपुत्रो यत्सुखमधिकं दत्ते, तत्र ममतैव यदि कारणं; सर्वगुणमण्डिते स्वभावादेव निरवधिकसुखप्रदे श्रीकृष्णे पुत्रीभूते निरवधिकैव सा ममता प्रेमनिष्ठा किमुत? इति ज्ञानप्रेम्णोर्भेदो विवृतः। यथा ह्यविद्या स्ववृत्त्या ममतया जीवं दुःखयितुमेव बध्नाति, तथैव प्रेमा स्ववृत्त्या ममतयेश्वरं सुखरूपमप्यतिसुखयितुं बध्नाति। यथा दण्डनीयजनस्य गात्रबन्धनं रज्जुनिगडादिना, माननीयजनस्यापि गात्रबन्धनमनर्घसुगन्ध-सूक्ष्म-श्लक्ष्ण-कञ्चुकोष्णीषादिना, इत्यविद्याधीनो जीवो दुःखी, प्रेमाधीनः कृष्णोऽतिसुखीति। किञ्च, यथैवाविद्या स्वतारतम्येन ज्ञानावरण-तारम्याज्जीवस्य पञ्चविधं क्लेशतारतम्यं विधीयते, तथैव प्रेम्णापि स्वतारतम्येन ज्ञानैश्वर्याद्यावरणतारतम्यात् स्वविषयाश्रययोः अनन्तप्रकारं सुखतारतम्यं विधीयते इति। तत्र केवलः प्रेमा श्रीयशोदादि निष्ठः स्वविषयाश्रयौ ममता-रसनया निबध्य परस्परवशीभूतौ विधाय ज्ञानैश्वर्यादिकमावृत्य यथाधिकं सुखयति, न तथा देवक्यादि निष्ठ ऐश्वर्यज्ञानमिलितत्वेन, प्राबल्याभावात्। तत्तत्प्रेम्णस्तथा तथा भूतत्वे कारणन्तु नान्वेष्टव्यम्। तासां यशोदादिदेवक्यादीनां नित्यसिद्धत्वादेव तत्तत्तादृशप्रेमविशेषाणामपि नित्यसिद्धत्वादिति सर्वं निरवद्यम्॥ ३१ ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि क्यों मेरे इस रूपको छिपानेकी बात करती हो? परमेश्वर मुझे पुत्ररूपमें पानेसे आपकी महान् प्रतिष्ठा ही होगी। उसके उत्तरमें कहती हैं—‘मैं प्रतिष्ठाकी आशा नहीं रखती हूँ’ यही कहनेके लिए—‘विश्वम्’ आदि श्लोक कह रही हैं। ‘निशान्ते’ अर्थात् मन्दिरमें। अमरकोषमें उक्त हुआ है—निशान्त, अर्थात् रातमें जहाँ जाया जाता है। वस्त्य अर्थात् जहाँ वास किया जा सकता है, सदन, भवन, आगार और मन्दिर—ये पर्यायवाची शब्द हैं। प्रलयके अन्तमें जो इस विश्वको आप अपने मन्दिरमें—अपने शरीररूपी मन्दिरमें निःसंकोच रूपसे धारण करते हैं, ऐसे आपने मेरे गर्भसे जन्म ग्रहण किया है। यह मनुष्यलोकके लिए अर्थात् मानुषी मेरे लिए विडम्बनामात्र है। इसलिए ऐसे अलौकिक पुत्रके द्वारा मेरी प्रतिष्ठा तो दूर रहे, मेरी लोग हँसी ही उड़ायेंगे, क्योंकि पड़ोसी लोग कहेंगे—अरे मूर्ख देवकी! अनन्तकरोड़ ब्रह्माण्डके आधार-स्वरूप भगवान् तुम्हारी जैसी मानवीके गर्भसे आविर्भूत हुए हैं, यह कहने या चिन्ता करनेमें भी तुम्हें लज्जा नहीं आती?—इस प्रकार लोग कितना उपहास करेंगे, इससे बल्कि मेरी प्रतिष्ठा भी मारी जायेगी। इसलिए आप अपने रूपको छिपा लें।

यदि कहें कि परब्रह्म-मूर्ति श्रीभगवान्का साक्षात् अनुभव करनेवाले देवकी और वसुदेवके हृदयमें भी किस प्रकार अविद्या जनित भय-शोक आदि उत्पन्न हुआ? उसीके उत्तरमें कहते हैं—नहीं, कभी भी नहीं। बहिरङ्गा विद्या या अविद्याशक्तिके द्वारा जो कभी पराभूत नहीं होती है, ऐसी जो अन्तरङ्गा स्वरूपभूता चित्-शक्ति है, उसका भी सार वृत्तिरूपा जो प्रेम है, उस प्रेमका विलास ही यह शोक, मोह आदि है, वह कभी भी अविद्या-जनित या निन्दनीय नहीं हो सकता है। यदि कहो कि प्रेम मायातीत है—इसका क्या प्रमाण है? उत्तरमें कह रही हैं—भगवान् प्रेमके वशीभूत होते हैं—यही यथार्थ प्रमाण है। प्रेम यदि मायामय होता, तब भगवान् भी मायाके वशीभूत होते।

और भी ‘भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः’ (श्रीगीता १८/५३) अर्थात् मैं जैसा एवं स्वरूपतः जो हूँ, उस रूपमें

ज्ञानी व्यक्ति मुझे भक्तिके द्वारा ही यथार्थ रूपमें जान पाते हैं, 'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः' (श्रीमद्भा० ११/१४/२१) अर्थात् एकमात्र भक्तिके द्वारा ही मैं ग्रहणीय होता हूँ—आदि—आदि भगवान्की उक्तियाँ हैं। इससे स्पष्ट है कि उनका स्वरूप भक्तिके द्वारा ही जाना जाता है। यह भक्ति तीन प्रकारकी होती है—गुणीभूता, प्रधानीभूता और केवला है। [कर्मी, ज्ञानी और योगी जिस भक्तिको अप्रधान रूपमें ग्रहण करते हैं, वह अस्वतन्त्रा या गुणीभूता-भक्ति है। प्रधानीभूता—गौण या मिश्रिता भक्ति है। केवला-भक्ति कहनेसे जो ज्ञान, कर्म आदिके द्वारा मिश्रित नहीं है, वह शुद्धा या अनन्या-भक्ति है] उनमें क्रमशः—ज्ञान, ज्ञानमयी रति एवं प्रेम—ये तीन फल देखे जाते हैं। उनमें ज्ञानके द्वारा एकमात्र चित् सुखैकमय ब्रह्मस्वरूपका बोध होता है। ज्ञानमयी रतिके द्वारा चिदैश्वर्यमय भगवत्स्वरूपका आस्वादन होता है। परन्तु, प्रेमके द्वारा माधुर्यमय कृष्ण-राम आदि स्वरूपोंका ही आस्वादन होता है। वास्तवमें स्वरूपतः वे एक हैं, फिर भी आस्वादनके तारतम्यसे उनमें भेद है। वह माधुर्य—श्रीविग्रह-निष्ठ रूपादि पञ्चक, भक्त वात्सल्य और लीला—यह सात प्रकारका है। परन्तु, ब्रजस्थित श्रीकृष्णमें वेणु और ऐश्वर्यकी अधिकताके कारण नौ प्रकारका माधुर्य देखा जाता है। जैसे लघु-भागवतामृत (२८५ कारिका) में कहा गया है—“नराकृति परब्रह्म श्रीकृष्णका ऐश्वर्य, क्रीड़ा, वेणु और श्रीविग्रह—ये चार प्रकारकी माधुरियाँ गोकुलमें ही विराजमान हैं।”

फिर वह प्रेम भी दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वल (मधुर) भेदसे चार प्रकारका है। उनमें भी फिर वात्सल्यप्रेमने अपनी स्वाभाविक महिमा और स्वभावसे श्रीकृष्णको अनुकम्पाका पात्र अर्थात् लाल्य-पाल्य भावसे अतिशय ममताका विषय बना दिया है। उन्हें माताकी अतिशय ममताका आस्पद बना दिया है। उसमें श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका स्पष्ट रूपसे अनुभव होनेपर भी वह वात्सल्यप्रेम वात्सल्यप्रेमवान जनोंको इस प्रकारसे आच्छादित करता है कि जिससे वैसे ममतारूप रज्जुसे निबद्ध कृष्ण उस वात्सल्यप्रेमके वशीभूत होकर अन्योके लिए अनास्वाद्य अपने अपार माधुर्यका वात्सल्यप्रेमवान जनोंको आस्वादन कराया करते हैं।

ज्ञान या ज्ञानमय रतिके द्वारा सच्चिदानन्दात्मक वस्तुका जो आस्वादन होता है, उससे कहीं करोड़ों गुणा अधिक ममताके कारण प्रेमका आस्वादन होता है। जैसे सर्व-सन्ताप निवारणकारी परम आह्लाददायी दृश्यमान चन्द्रसे भी सर्वगुणहीन और बहरा आदि अनेकों दोषयुक्त होनेपर भी अपना पुत्र अधिक सुखदायी होता है, इसमें ममता ही एकमात्र कारण है, फिर सर्वगुण-मण्डित स्वभावतः अतिशय सुखप्रद श्रीकृष्णके पुत्र होनेपर उसमें असीम ममता होगी, इसमें क्या सन्देह है? इससे ज्ञान और प्रेममें आकाश-पातालका भेद प्रदर्शित हुआ है। फिर जैसे अविद्या अपनी वृत्ति ममताके द्वारा जीवको दुःख देनेके लिए बन्धन करती है, वैसे ही प्रेम भी अपनी वृत्ति ममताके द्वारा सुखस्वरूप ईश्वरको भी अतिशय सुख प्रदान करनेके लिए बन्धन करता है। अपराधी व्यक्तिको जैसे रस्सीसे बाँधकर ले जाया जाता है, वैसे ही माननीय व्यक्तिको भी सुगन्धित द्रव्य, कपड़े, सूक्ष्म वस्त्र, पगड़ी आदि द्वारा बाँधते हैं। परन्तु उससे उन माननीय व्यक्तिको सुख होता है। इसी प्रकार अविद्याके वशीभूत जीव दुःखी हैं, किन्तु प्रेमाधीन श्रीकृष्ण अत्यन्त सुखी होते हैं।

जैसे अविद्याके द्वारा अपने तारतम्यके अनुरूप होनेवाले ज्ञान-आवरणके तारतम्यसे जीवके पञ्चविध क्लेशोंका तारतम्य होता है, वैसे ही प्रेमके द्वारा भी उसके तारतम्यके कारण ज्ञान और ऐश्वर्य आदिके आवरणके तारतम्यसे प्रेमके विषय और आश्रयके सुखका भी तारतम्य होता है। उनमेंसे यशोदादि-निष्ठ केवल अर्थात् शुद्धप्रेम अपने विषय और आश्रय (ब्रजमें वात्सल्यप्रेमके विषय श्रीकृष्ण हैं और आश्रय श्रीयशोदा, श्रीनन्द आदि हैं) को ममतारूप रस्सीसे बाँधकर अधिक सुख प्रदान करता है। किन्तु वैसे प्रबल वात्सल्यप्रेमके अभावमें अर्थात् ऐश्वर्यज्ञानके मिश्रणवशतः देवकी आदिका प्रेम उतना सुखकर नहीं हो पाता है। यहाँ उस-उस प्रेमके वैसा होनेका कारण ढूँढ़ना उचित नहीं है, क्योंकि श्रीयशोदा, देवकी आदि नित्यसिद्ध हैं, उनका प्रेम भी नित्यसिद्ध है। इसमें कोई दोष नहीं होता है। वे सभी निर्मल हैं ॥ ३१ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—देवकीने कहा—हे भगवन्! महाप्रलयमें आपके अन्दर अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड धूलकणोंकी भाँति विलीन हो जाते हैं। प्रलयरूप निशाके अवसान होनेपर आप अपने श्रीअङ्गमें विलीन ब्रह्माण्डोंको फिरसे प्रकाशकर पालन करते हैं। आप अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके भाण्डोदर है, ऐसे आपने मेरे गर्भसे जन्म लिया है, यह कौन विश्वास करेगा? ‘आप मेरे गर्भजात पुत्र’ हैं—ऐसा प्रचार होनेपर मेरी कीर्तिके स्थानपर अपयश ही घोषित होगा, क्योंकि यह सुनकर सभी कहेंगे कि यह झूठ बोलनेवाली है। अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डपति क्या एक नारीके गर्भसे जन्म ले सकते हैं? अतएव आप इस अलौकिक रूपको छिपाकर नारीके गर्भसे उत्पन्न बालककी भाँति द्विभुज नराकृति स्वरूपको प्रकट करें। आप नरलीलाका अनुकरण करेंगे, इसलिए सामान्य नारीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है। अतः द्विभुजमूर्ति ही आपके नरलीलाके अनुरूप है। अतएव आप चतुर्भुजरूपको छिपाकर द्विभुज-स्वरूपको प्रकट करें।

ऐश्वर्यज्ञान—मिश्रित वात्सल्यप्रेमवती देवकीका हृदय कभी ऐश्वर्यमें और कभी वात्सल्यमें दोलायमान होने लगा। वह देवकी कभी कंसके भयसे भीत और कभी भगवान्का पुत्ररूपमें आगमन जानकर विस्मयसे अभिभूत होकर बहुत प्रकारके मनोभाव प्रकट करने लगी। अन्तमें अत्यधिक प्रेमके आवेगके कारण उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे और उनका गला भर आया। वे निर्वाक, निस्पन्दन होकर अपलक नेत्रोंसे कृष्णको देखने लगी ॥ २९-३१ ॥

श्रीभगवानुवाच—

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति।

तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥

युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥

वर्षवातातपहिम—धर्मकालगुणाननु ।

सहमानौ श्वासरोध—विनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥

शीर्णपर्णानिलाहारवुपशान्तेन चेतसा ।
 मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥
 एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
 दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥
 तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
 तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥
 प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ।
 त्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—सति (हे पतिव्रताशिरोमणि!) स्वायम्भुवे (स्वायम्भुव मन्वन्तरमें) पूर्वसर्गे (प्रथम जन्ममें) त्वमेव (इस समय देवकीरूपमें अवतीर्ण तुम ही) पृश्निः (पृश्नि नामवाली) अभूः (थी) तदा (उस समय) अकल्मषः (राग-द्वेषरहित) अयं (ये वसुदेव) सुतपानाम प्रजापतिः (सुतपा नामक प्रजापति थे) ॥ ३२ ॥

युवां वै ब्रह्मणा (आप दोनों सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माके द्वारा) यदा प्रजासर्गे (जब प्रजासृष्टिके लिए) आदिष्टौ (आदिष्ट हुए) ततः (उस समय) इन्द्रियग्रामं (चक्षु आदि इन्द्रियोंको) संनियम्य (अपने-अपने विषयोंसे लोटाते हुए उन्हें नियमितकर) परमम् (अति दुश्कर) तपः तेपाथे (तपस्या की थी) ॥ ३३ ॥

वर्ष-वातातप-हिम-घर्म-कालगुणान् (वर्षा, वायु, ताप, हिम, गरमी आदि समयके सभी गुणोंको) अनु (निरन्तर) सहमानौ (सहन करते हुए) श्वासरोध-विनिर्धूत-मनोमलौ (प्राणायाम आदिके द्वारा सम्पूर्ण रूपसे मनके मलको नाशकर) शीर्णपर्णानिलाहारौ (मात्र गिरे हुए पत्ते और वायुका भोजनकर) मत्तः (मुझसे) कामान् (अभिलषित वरकी) अभीप्सन्तौ (प्रार्थना करते हुए) [आप दोनोंने] उपशान्तेन (भक्तियुक्त) चेतसा (चित्तके द्वारा) मदाराधनं (मेरी आराधना) ईहतुः (की थी) ॥ ३४-३५ ॥

एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे वर्षा, वायु आदि सहन करते हुए) परमदुष्करम् (अत्यन्त दुःसाध्य) तीव्रं तपः तप्यतोः (तीव्र तप करते

हुए) मदात्मनोः (मुझमें अर्पितचित्त) वां (आप दोनोंका) द्वादश दिव्यवर्ष-सहस्राणि (देवताओंके परिमाणमें बारह हजार वर्ष) ईयुः (अतिक्रम हुआ था) ॥ ३६ ॥

अनघे (हे सर्वपापरहिते!) तदा वां (तब आपके प्रति) परितुष्टः (सुप्रसन्न होकर) [तथा] तपसा (मेरी प्रसन्नताके लिए वायु, वर्षा आदि सहनकर) श्रद्धया (साधन-भक्तिमें निष्ठाके द्वारा) च (और) भक्त्या (मेरे प्रति पुत्रभावमयी प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा) नित्यं (सर्वक्षण) हृदि भावितः (हृदयमें चिन्तन करते हुए) वरदराट् (वरदाताओंमें शिरोमणि) अहं (मैं) अमुना वपुषा (इस परिदृश्यमान चतुर्भुज-मूर्तिके द्वारा) युवयोः कामदित्सया (आपको प्रार्थित वर देनेके लिए) प्रादुरासं (आपके सामने प्रादुर्भूत हुआ था) त्रियतां वर इत्युक्ते ('वर माँगिये'—मेरे द्वारा ऐसा कहनेपर) वां (आप दोनोंने) मादृशः (मेरे समान) सुतः (पुत्रकी) वृतः (प्रार्थना की) ॥ ३७-३८ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान्ने कहा—हे पतिव्रता-शिरोमणे! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पूर्वजन्ममें तुम पृश्नि नामसे उत्पन्न हुई थीं एवं शुद्धचित्त ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे।

अनन्तर तुमलोगोंने ब्रह्माके आदेशसे प्रजाकी सृष्टिके लिए इन्द्रियोंका संयम करके कठोर तपस्या आरम्भ कर दी।

तुम दोनोंने वर्षा, वायु, धूप, शीत, उष्ण आदि कालके समस्त गुणोंको निरन्तर सहन किया, जिससे क्रमशः प्राणायाम आदिके द्वारा तुम्हारे चित्तका मल दूर हो गया। तुमने वृक्षसे गिरे हुए सुखे पत्ते खाकर एवं हवा पीकर मुझसे अभीष्ट फलप्राप्तिकी इच्छासे शान्त चित्तसे मेरी आराधना की थी।

मुझमें ही अपने चित्तको आविष्टकर इस प्रकार परम दुष्कर और घोर तपस्या करते-करते बारह हजार दैव-वर्ष बीत गये।

हे पुण्यमयी देवि! उस समय तुम्हारी निरन्तर कठोर तपस्या, श्रद्धा एवं भक्तिसे सन्तुष्ट होकर वरदाताओंमें श्रेष्ठ 'मैं' तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करनेकी इच्छासे इसी रूपमें तुम्हारे सम्मुख आविर्भूत हुआ था एवं मेरे 'अभीष्ट वर माँगो'—यह कहनेपर तुम दोनोंने मेरे—जैसा पुत्र माँगा ॥ ३२-३८ ॥

सारार्थदर्शिनी—भो मातः ! न केवलमस्मिन्नेव जन्मनि त्वद्गर्भगतोऽहं, अपितु जन्मान्तरेष्वपि, अतस्त्वं किमिति स्वदन्यं मन्यसे, न त्वं प्राकृत्येव मानुषीत्याह—त्वमेवेत्यादि चतुर्दशभिः। अभूः आसीः, स्वायम्भुवे मन्वन्तरे, सति वर्तमाने, अयं वसुदेवः ॥ ३२ ॥

आतपः सौरकिरणोत्थस्तापः, घर्मो निदाघोत्थः ॥ ३४ ॥

मदात्मनोः मच्चित्तयोः ॥ ३६ ॥

मदीय व्रतरूप-तपः श्रद्धाभक्तिपूर्वकं निरन्तरं मद्ब्रह्मानमेव मत्परितोषे कारणमित्याहुः—तदेति। अमुना अनेन चतुर्भुजेन। अत्र—भवत्येति श्रद्धयेति नित्यमिति भावित इति पदत्रयाधिक्येन नेयं तपो योगाङ्गभूता भक्तिर्व्याख्येया, सा तु मदात्मनोरित्येतावन्मात्रेणैव सिद्ध्येत्, अतस्ततः पृथग्भूता प्रेमहेतुभूतैव। ततश्च तपो-योगावेवाधिकावनयोरैश्वर्यज्ञानहेतु ज्ञेयाविति केचिदाहुः। अन्ये तु नित्य-सिद्धयोर्देवकी-वसुदेवयोः प्रेमायैश्वर्यज्ञानमिश्रो नित्य एव, तदंशयोः पृश्नि-सुतपसोर्ज्ञान-योगौ त्वंशिनोस्तयोरकिञ्चित्करावित्याहुः। अत्र चिन्तित इत्यनुक्त्वा भावितो भाव-विषयीकृत इत्यनेन रागभक्तिरवगम्यते ॥ ३७-३८ ॥

भावानुवाद—हे मातः ! मैं केवल इस जन्ममें ही आपके गर्भमें आया हूँ, ऐसा नहीं, बल्कि इससे पहले जन्मोंमें भी आपके गर्भमें आया हूँ। अतएव आप मेरे निकट क्यों ऐसा दीन-हीन भाव प्रकाश कर रही हैं। आप कोई साधारण महिला नहीं हैं। यह चौदहवें श्लोकमें कहा है—‘त्वमेव’ आदि। अर्थात् हे पतिव्रता शिरोमणे ! स्वायम्भूव मन्वन्तरमें आप ही पृश्नि नामसे प्रसिद्ध थीं। वर्तमान समयके ये वसुदेव भी उस समय सुतपा नामके प्रजापति थे ॥ ३२ ॥

‘आतपः’—सूर्यकिरणसे उत्पन्न ताप। ‘घर्मः’—ग्रीष्मकालका ताप ॥ ३४ ॥

‘मदात्मनोः’ अर्थात् केवल मुझमें ही चित्त समर्पणकर ॥ ३६ ॥

मेरी व्रतरूप तपस्याके द्वारा आपलोगोंने मेरी आराधना की और मुझमें साधन-भक्तिके द्वारा निरन्तर आविष्ट हो गये। उस समय आपलोगोंका अभिलषित वर देनेके लिए मैं इसी स्वरूपमें ही आविर्भूत हुआ था। ‘भक्ति, श्रद्धा द्वारा नित्य ही भावित होकर’—इस प्रकारके तीन पदोंसे अधिक शब्दोंके व्यवहार किये जानेके कारण इस तपको योगाङ्गभूत भक्तिके रूपमें व्याख्या नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसी व्याख्या ‘मदात्मनोः’ आदि पद मात्रके प्रयोगसे ही सिद्ध होती। अतएव वह तप योगाङ्गभूत भक्तिसे पृथक् और प्रेमका कारण-स्वरूप

है। फिर कोई-कोई कहते हैं कि उन दोनोंमें तप और योगका अधिक रूपमें होना ही उनके अन्दर ऐश्वर्यज्ञान होनेका कारण रूपमें जानना होगा। कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि उनमें प्रेमकी हेतुभूता-भक्ति थी और तपस्या एवं योगके अधिक होनेके कारण ही उनमें भगवान्‌के प्रति ऐश्वर्य-भाव था। परन्तु दूसरे ऐसा कहते हैं—नित्यसिद्ध देवकी और वसुदेवका ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित प्रेम भी नित्य है। उनके अंशरूप पृथिवी और सुतपाका ज्ञान और योग—ये दोनों अंशरूप वसुदेव और देवकीमें अकिञ्चित्कर है। यहाँपर 'चिन्तित' न कहकर 'भावित' अर्थात् मेरे भावमें भावित-चित्त होकर—ऐसा कहा गया है। इससे उनमें रागमयी भक्ति देखी जाती है॥ ३७-३८॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान्‌ने देवकी और वसुदेवसे कहा—आपने शीत, ग्रीष्म, शिशिर आदिके कष्टोंको निरन्तर सहन करते हुए नदीतटपर खुली जगहमें रहकर जैसे-तैसे वृक्षोंके गिरे हुए पत्तोंका भोजनकर तथा कभी वायुमात्र सेवनकर जीवन धारण करते हुए कठोर तपस्या की है। आपने कठोर प्राणायाम आदि द्वारा कामना-वासनारूप मालिन्य दोषोंको दूर किया है। इस प्रकार तीव्र प्राणायाम आदिके द्वारा शुद्ध चित्त मुझमें समर्पणकर अत्यन्त कठोर तपस्या करते हुए देवताओंके परिमाणसे बारह हजार वर्ष अतीत हो गये। इस प्रकार मुझमें समर्पित-चित्त होनेसे युग परिवर्तन या युग-धर्मका आप लोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

साधारण रूपसे तपस्वीगण स्वर्गकी कामनासे तपस्याका अनुष्ठान करते हैं, परन्तु आपके मनमें ऐसी कोई कामना नहीं थी। आपलोगोंने केवलमात्र मेरी प्रीतिके लिए ही तीव्र तपस्या की। इसलिए आपका चित्त सम्पूर्ण रूपसे शुद्ध होनेपर क्रमशः भक्तिमार्गमें आपकी श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। उस समय साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते मेरे प्रति वात्सल्यप्रेम प्राप्तकर आपने इस मूर्तिका पुत्रभावसे चिन्तन किया था। तब मैं प्रसन्न होकर इसी मूर्तिमें आपके निकट आविर्भूत हुआ था। मैं वरदाताओंमें भी श्रेष्ठ वरदाता हूँ। मेरे जैसा कोई वरदान नहीं दे सकता है। इसलिए मैं आपकी तपस्याके फलस्वरूप आपके हृदयमें अवरुद्ध हो गया। उसके पश्चात् साक्षात् पुत्ररूपमें आपका आनन्द-वर्द्धन

करनेके लिए इसी रूपमें आपके सामने उपस्थित हुआ था। परन्तु आप मुझे साक्षात् प्राप्त करके भी मुझे ही पुत्ररूपमें पानेके लिए वर माँगनेका साहस न कर सके। मेरे ऐश्वर्यकी स्फूर्ति होनेके कारण मुझे पुत्ररूपमें न माँगकर आप दोनोंने मेरे जैसा पुत्र प्राप्तिके लिए प्रार्थना की थी॥ ३२-३८॥

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती।

न वव्राथेऽपवर्ग मे मोहितौ देवमायया^(१)॥ ३९॥

अन्वयः—अजुष्टग्राम्यविषयौ (आपने भौतिक विषय-सुखका सेवन नहीं किया) अनपत्यौ च (और पुत्र, कन्या आदि उत्पन्न नहीं किये) दम्पती (वर-वधु आप दोनोंने) मम मायया (मेरे प्रति पुत्रस्नेहमय कृपाके द्वारा) मोहितौ (मुग्ध होकर) मे (मुझसे) अपवर्ग (मोक्ष) न वव्राथे (नहीं माँगा)॥ ३९॥

अनुवाद—चिरकाल तक मैथुन-धर्म सेवनसे विरत एवं सन्तानहीन तुमने उस समय मेरे प्रति पुत्रस्नेहमयी माया द्वारा मोहित होकर वात्सल्यरसके आस्वादनमें मत्त होकर मुक्तिकी प्रार्थना नहीं की॥ ३९॥

सारार्थदर्शिनी—मायया पुत्रस्नेहमय्या, 'वैष्णवी व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः' (श्रीमद्भा० १०/८/४३) इत्युपरिष्ठादुक्तेः पुत्रस्नेहोऽपि मायाशब्देनोच्यते। मोहितौ तदास्वादानन्देन विचित्रीकृतौ॥ ३९॥

भावानुवाद—आपने 'मम मायया'—मेरी पुत्रस्नेहमयी वैष्णवी मायाके द्वारा मोहित होकर कभी भी मुझसे मुक्तिकी प्रार्थना नहीं की। जो कि आगे चलकर कहेंगे—'वैष्णवी व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः' (श्रीमद्भा० १०/८/४३) अर्थात् विभु ईश्वर श्रीकृष्णने यशोदाके प्रति पुत्रस्नेहमयी वैष्णवी मायाका विस्तार किया—इस प्रकार कहे जानेके कारण यहाँ पुत्रस्नेह भी माया शब्दके द्वारा कहा गया है। 'मोहितौ'—मोहित कहनेसे उस वात्सल्यरसके आस्वादनके आनन्दहेतु चित्तकी विद्वलताके कारण मुक्तिकी भी अभिलाषा नहीं की॥ ३९॥

(१) पाठान्तर—मम मायया

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम्।
ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥

अन्वयः—मयि गते (वर देकर मेरे अन्तर्हित हो जानेपर) युवां (आप दोनों) मत्सदृशं सुतं (मेरे जैसा पुत्र) [प्राप्त करनेका] वरं लब्ध्वा (वर लाभकर) ग्राम्यान् भोगान् (लौकिक विषयोंको) अभुञ्जाथां (भोग करने लगे) [क्योंकि] युवां प्राप्तमनोरथौ (आप दोनोंका मनोरथ पूर्ण हो गया था) ॥ ४० ॥

अनुवाद—तुम दोनोंको वैसा ही वर देकर मेरे अन्तर्धान होनेपर तुम लोगोंने भी मेरे समान पुत्र-प्राप्तिरूप वरको पाकर परिपूर्ण मनोरथ होकर मैथुनधर्मका आचरण किया ॥ ४० ॥

सारार्थदर्शिनी—ग्राम्यान् भोगानिति तादृशपुत्रोत्पत्तीच्छयेति भावः। ‘व्यवायो ग्राम्यधर्मश्च’ इत्यमरः ॥ ४० ॥

भावानुवाद—मेरे समान पुत्र प्राप्तिका वर प्राप्तकर पूर्ण मनोरथ होनेपर आपलोगोंने वैसा ही पुत्र प्राप्तिकी इच्छासे ग्राम्य विषय-समूहका भोग किया था। ‘ग्राम्यान् भोगान्’ कहनेसे वैसे पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे मैथुनधर्मका आचरण किया, यह भाव है। अमरकोषमें कहा गया है—‘व्यवाय’ अर्थात् मैथुनकार्य और ग्राम्यधर्म पर्यायवाची शब्द हैं ॥ ४० ॥

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम्।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—लोके (ऊर्ध्व, मध्य और अधः—इन तीन लोकोंमें) शीलौदार्यगुणैः (सच्चरित्र, औदार्य आदि गुणोंमें) समं (मेरे समान) अन्यतमम् (दूसरा कोई भी) अदृष्ट्वा (न देखकर) पृश्निगर्भ इति श्रुतः (पृश्निगर्भ नामसे विख्यात) अहं (मैंने ही) वां (आप दोनोंका) सुतः (पुत्र होकर) अभवं (जन्म लिया था) ॥ ४१ ॥

अनुवाद—मैंने देखा कि इस लोकमें शील-स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है, इसलिए मैं ही तुम दोनोंका पुत्र हुआ और पृश्निगर्भके नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘पृश्निगर्भ’ इति सोऽयं त्रेतायुगावतारो लक्ष्यते। ‘विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः’ (श्रीमद्भा० ११/५/२६) इत्येकादशे तत्प्रासङ्गिकोक्तेः ॥ ४१ ॥

भावानुवाद—‘पृश्निगर्भः’—इससे त्रेतायुगके अवतारकी कथा लक्षित हुई है, क्योंकि श्रीमद्भागवत (११/५/२६) में त्रेतायुगके अवतारके प्रसङ्गमें कहा गया है कि त्रेतायुगमें भगवान् विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ आदि नामोंसे सम्बोधित होते हैं ॥ ४१ ॥

तयोर्वा पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।

उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—तयोः वां (पृश्नि और सुतपारूपी आप दोनों) [फिर अदिति और कश्यप हुए, उन] कश्यपात् (कश्यप प्रजापतिसे) [तथा] अदित्यात् (अदिति गर्भसे) अहम् एव पुनः (मैंने ही पुनः) उपेन्द्र इति विख्यात (इन्द्रका अनुज होनेसे उपेन्द्र नामसे विख्यात) वामनत्वात् च (और बौना होनेसे) वामनः विख्यातः (वामन नामसे प्रसिद्ध होकर) आस (जन्म ग्रहण किया था) ॥ ४२ ॥

अनुवाद—पुनः दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम उपेन्द्र हुआ। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे ‘वामन’ भी कहते थे ॥ ४२ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘अदित्यां कश्यपाद्वामन आस’ इति यत्, तदपि तद्रूप-योर्युवयोरहमेव पुनरासमित्यर्थः ॥ ४२ ॥

भावानुवाद—अदितिके गर्भमें कश्यप ऋषिसे जिस वामनदेवका जन्म हुआ था, वह मैं ही हूँ ॥ ४२ ॥

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ।

जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥

अन्वयः—अथ अस्मिन् (अनन्तर इस) तृतीये भवे (तृतीय अवतारमें) अहं वै (मैं ही) तेनैव वपुषा (जिस स्वरूपमें पहले वरदान दिया था, उसी स्वरूपमें) भूयः (फिरसे) तयोरेव वां (वसुदेव-देवकी रूपी आप दोनोंके) जातः (पुत्ररूपमें आविर्भूत हुआ हूँ) [इसलिए] सति (हे भाग्यवती!) मे व्याहृतं (मेरे द्वारा कहे गये वाक्य) सत्यम् (सत्य ही समझें) ॥ ४३ ॥

अनुवाद—अयि पतिव्रता शिरोमणे! मैं पुनः इस तीसरे जन्ममें भी उसी रूपको धारणकर पृश्नि-सूतपा एवं अदिति-कश्यप रूपी तुम दोनोंके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरी इस वाणीको सत्य जानना ॥ ४३ ॥

सारार्थदर्शिनी—भवे जन्मनि, तेनैव चतुर्भुजेन, अहं जात इति—प्रथमे जन्मन्यहं पृश्निगर्भः, द्वितीयेऽहं वामनः, तृतीयेऽस्मिन्नहमेव—इत्यस्मच्छब्दमात्रवाच्यत्वेन ममैव पूर्णत्वं, तयोः मदंशत्वमिति बोधितम्। एवं 'त्वमेव पूर्वसर्गोऽभूः पृश्निः' (३२) इति न तु पृश्निरेव, त्वमित्युक्त्या। 'युवाम्' (४५) इति पुत्रभवेन नराकृति परब्रह्मभावेन वा, कृतस्नेहौ सकृदेव वा चिन्त्यन्तौ, परां प्रकटलीलाम्, उत्तरामप्रकटलीलां, पृश्न्यादीनामंशत्वं देवकीवसुदेवयोरंशित्वञ्च। सति हे कोविदे, 'सन् सुधीः कोविदो बुधः' इत्यमरः ॥ ४३ ॥

भावानुवाद—'भवे' अर्थात् जन्ममें, 'तेनैव वपुषा' अर्थात् पहले वरदान देनेके लिए मैं जिस चतुर्भुजरूपमें आविर्भूत हुआ था, उसी स्वरूपमें मैं आपका पुत्र होकर आया हूँ। पहले जन्ममें मैं पृश्निगर्भके रूपमें, दूसरे जन्ममें मैं वामनदेवके रूपमें, तीसरे जन्ममें मैं स्वयं ही उपस्थित हुआ हूँ। इस प्रकार यहाँ 'अस्मत् शब्दका तात्पर्य यह है कि मैं स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण कह रहा हूँ। मैं ही पूर्ण-स्वरूप हूँ तथा पहले दो स्वरूप मेरे अंश हैं। इस प्रकार पहले जन्ममें आप पृश्नि बनकर आयी थीं, परन्तु पृश्नि आप नहीं है क्योंकि पृश्नि-सूतपा—अंश स्वरूप हैं और देवकी-वसुदेव—अंशी स्वरूपमें हैं। सति अर्थात् हे कोविदे। अमर कोषमें कहा गया है सति शब्दका—सत्, सुधी, कोविद, बुध—ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं ॥ ४३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान्ने वसुदेव और देवकीसे कहा—मैंने सच्चरित्र और औदार्य आदि गुणोंसे भरपूर अपने जैसेको प्राकृत-अप्राकृत

समस्त जगत्में एक-एककर ढूँढ़ा, परन्तु मेरे जैसा कोई नहीं मिला। तब सच्चरित्र और औदार्य आदि गुणोंमें भरपूर स्वयं मैंने ही आपके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। हे मातः देवकी! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें आपका नाम पृश्नि था। मैंने आपके गर्भमें 'पृश्निगर्भ' रूपमें जन्म लिया था। लघु-भगवतामृतमें कहा गया है—“इसी पृश्निगर्भ भगवान्ने ध्रुवको दर्शन एवं वरदान दिया था।” श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें-स्कन्धके युगावतार-वर्णनमें त्रेतायुगके उपास्यरूपमें पृश्निगर्भका नाम देखा जाता है। उसके पश्चात् वैवस्वत मन्वन्तरीय सप्तम चतुर्युगके सत्ययुगमें आपलोगोंने कश्यप और अदिति होकर जन्म ग्रहण किया था। उस समय मैं आपका पुत्र उपेन्द्र होकर आया था। तब मेरा स्वरूप बौना होनेके कारण मेरा नाम वामनदेव हुआ।

इसबार तृतीय जन्म है। मैंने आपके पुत्र रूपमें जन्म ग्रहण किया है। जब आपने पृश्नि और सुतपाके रूपमें कठोर तपस्या की थी, तब मैं इसी चतुर्भुजरूपमें वर देनेके लिए प्रकट हुआ था। मैं पहले दो बार अंश-रूपमें आया था, अब स्वयं-रूपमें आया हूँ। हे सौभाग्यवति! मैं आपको अभिलषित वर प्रदानकर वचनबद्ध हो गया था। इसीलिए तीन बार आपलोगोंका पुत्र बनकर आया। आपके वात्सल्यप्रेमरूपी ऋणमें मैं सदैव बँधा हुआ हूँ। आपने एकबार प्रार्थना की थी, परन्तु मैंने तीन बार आपका पुत्र बनना स्वीकार किया ॥ ३९-४३ ॥

एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे।

नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४ ॥

अन्वयः—एतत् (चतुर्भुज आकारवाला यह) रूपं (जो रूप) वां (आप लोगोंके सामने) दर्शितं (प्रकाशित किया) [वह] मे (मेरा) प्राग्जन्मस्मरणाय (पूर्व जन्मोंका) स्मरण दिलानेके लिए है) अन्यथा (स्वरूप प्रकाशके बिना दूसरे प्रकारसे) मर्त्यलिङ्गेन (नराकृति परब्रह्म रूपमें) मद्भवं ज्ञानं (मेरे विषयक निर्णयात्मक ज्ञान) न जायते (नहीं हो सकता है) ॥ ४४ ॥

अनुवाद—मैंने पूर्व जन्मका स्मरण करानेके लिए ही आपलोगोंके सामने इस अलौकिक चतुर्भुजरूपको प्रकट किया। अन्यथा केवल मनुष्य शरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती॥ ४४॥

सारार्थदर्शिनी—मयि भवतीति मद्भवं मद्भिषयं। मर्त्यलिङ्गेन मया—इत्यहन्तु स्वयं परिपूर्णस्वरूपो मर्त्यलिङ्गो द्विभुज एव, नराकृति परब्रह्मत्वादिति भावः॥ ४४॥

भावानुवाद—‘मद्भवम्’—मुझमें जो कुछ है, वह मद्भव है अर्थात् मेरे विषयक है। ‘मनुष्य चिह्नके द्वारा मेरा’ विषयक ज्ञान नहीं हो सकता है, परन्तु मैं तो स्वयं परिपूर्ण स्वरूप मनुष्याकारवाला ही अर्थात् द्विभुज हूँ, क्योंकि नराकृति परब्रह्मत्व ही मेरा नित्य स्वरूप है यह भाव है। आपलोगोंको पूर्व जन्मका स्मरण दिलानेके लिए मैंने इस चतुर्भुज-स्वरूपका प्रदर्शन कराया। अन्यथा साधारण मनुष्य देहमें मुझे दर्शनकर मेरा स्वरूपका ज्ञान आपको नहीं हो सकता था अर्थात् मैं वही वरदान देनेवाला स्वयं भगवान् हूँ—यह ज्ञान नहीं होता॥ ४४॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्।

चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम्॥ ४५॥

अन्वयः—मां पुत्रभावेन (मुझको पुत्र बुद्धिसे) ब्रह्मभावेन च (और भगवत्-बुद्धिसे) असकृत् (बारम्बार) चिन्तयन्तौ (चिन्तन किये हैं) [एवं] कृतस्नेहौ (मेरे प्रति पुत्रभावमय स्नेह किया है) युवां (आपलोग) परां मद्गतिं (इससे आपलोग मेरे परम गति अर्थात् वैकुण्ठको) यास्येथे (प्राप्त करेंगे)॥ ४५॥

अनुवाद—आप दोनों निरन्तर मेरे प्रति पुत्रभाव एवं भगवद्भाव रखना। इस प्रकार वात्सल्यभाव और भगवद्भावसे मेरा चिन्तन करते-करते मुझमें अनुरागयुक्त होनेपर आप दोनों परमगतिको प्राप्त करेंगे॥ ४५॥

सारार्थदर्शिनी—एवं स्वपितृत्वात् स्वमन्त्रोपासनापटलोक्त-वसुदेवादिध्यानपूजादीनां सार्वकालिकत्वप्रदर्शनमप्यन्यथानुपपत्तिसिद्धं, तयोर्नित्यसिद्धत्वं सङ्गोप्य प्रेमवर्द्धनार्थं साधकत्वमेव ख्यापयन् सिद्धिं प्रतिश्रुत्य तावानन्दयति—युवामिति। वस्तुतश्चायमर्थः—मम

प्रथमा गतिरद्यतनी गोकुलं प्रति, या त्वेकादाशे वर्षे मथुरां प्रति पुनर्भाविनी, तां परां मद्रतिं युवां यास्यथे प्राप्स्यथः यास्यथः इत्यर्थः। साम्प्रतन्तु मया सह युवयोर्विच्छेद एव भवतीत्यर्थः ॥ ४५ ॥

भावानुवाद—इस प्रकार अपने नित्य जनक-जननी रूपमें स्वमन्त्रोपासना-पटलमें उक्त वसुदेव आदिका ध्यान और पूजादिका सार्वकालिकत्वका प्रदर्शन भी युक्तिसङ्गत ही है अर्थात् श्रीकृष्णके ध्यानप्रसङ्गमें उनके पिता-माताके रूपमें देवकी-वसुदेव आदिको नित्यरूपमें दिखाया गया है। यहाँ भगवान् ने उनके नित्य-सिद्ध होनेकी बातको छिपाकर उनका प्रेम बढ़ानेके लिए साधक रूपमें दिखलाकर सिद्धि प्राप्त होनेका वचन देकर उन्हें आनन्दित किया—‘युवां’ इस श्लोकके द्वारा। आपलोग मेरा पुत्रभावमें अथवा ब्रह्मभावमें निरन्तर चिन्तन करते-करते मुझमें आसक्त चित्त होकर मेरी परम गतिको लाभ करेंगे। वास्तव अर्थ इस प्रकार है—मैं पहले गोकुलमें जाऊँगा। फिर ग्यारह वर्षके पश्चात् जब मैं मथुरामें लौटकर आऊँगा तब आप मुझे प्राप्त करेंगे। अब आपके साथ मेरा वियोग ही होगा, यह भावार्थ है ॥ ४५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीभगवान् ने वसुदेवजी और देवकीसे कहा—मैंने इसी चतुर्भुजरूपमें आपके निकट आविर्भूत होकर आपकी मनोभिलाषाके अनुसार वर प्रदान किया था एवं उसके पश्चात् इससे पहले और भी दो बार आपलोगोंके पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया था। परन्तु आपलोगोंको पहले जन्मोंका स्मरण नहीं है। इसलिए मैंने जिस स्वरूपमें आपको वर दिया था, उसी स्वरूपमें ही इसबार उपस्थित हुआ हूँ। मेरे चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि देखकर सभी मुझे भगवान् कहकर पहचान सकेंगे। अन्यथा नराकृति स्वरूपको देखकर कोई भगवान् के रूपमें पहचान नहीं पायेंगे।

मेरे मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह आदि बहुत-से स्वरूप हैं, ये सभी स्वरूप महा ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं। असुर-मारण, भू-भार हरण आदि कार्योंके लिए ये मूर्तियाँ जगत्में आविर्भूत होती हैं तथा कामना-वासनाकी पूर्तिके लिए बद्धजीव मेरी उपासना करते हैं। परन्तु

मेरी अनन्त मूर्तियोंमें 'नराकृति' स्वरूप अति दुर्ज्ञेय है। उसमें अपने अनन्त ऐश्वर्यको गुप्त रखकर केवलमात्र प्रेमाधीन होकर मैं लीला-विलास करता हूँ। जिनका हृदय शुद्धप्रेमरससे परिपूर्ण है, वे ही मेरे इस नराकृति स्वरूपका माधुर्य ग्रहण और आस्वादन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कामना-वासना-परायण होनेसे जिनका हृदय भुक्ति, मुक्ति, सिद्धिकी लालसासे परिपूर्ण हैं, वे मेरे नराकृति स्वरूपके माधुर्यका आस्वादन करनेमें अक्षम हैं। वे मेरे इस ऐश्वर्यमय स्वरूपकी आराधनाकर सिद्धि पानेकी अभिलाषा करते हैं। बहिर्मुखताके कारण जिनका हृदय मलिन है, जो अभिमानके उच्च-मञ्चमें बैठे हुए केवल अहंकारका पोषण एवं स्वार्थ सिद्धिका अनुसन्धान करते हैं, वे मेरे नराकृति स्वरूपको अति-तुच्छ समझते हैं।

श्रीभगवान् ने देवकी-वसुदेवसे कहा—आपके तीन जन्मोंमें मैंने तीन बार पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। इससे वसुदेव-देवकीको ऐसा संशय हो सकता है कि श्रीभगवान् जिनके प्रति प्रसन्न हुए हैं, उन्हें पुनः-पुनः जन्म ग्रहण क्यों करना पड़ा? इसलिए भगवान् ने 'युवां मां पुत्रभावेन' आदि श्लोकमें वसुदेव-देवकीको आश्वासन प्रदान करते हुए कहा—आपको फिरसे जन्म ग्रहण करना नहीं होगा। इसबार आपलोग परमगति प्राप्त करेंगे।

श्रीश्रीधरस्वामिपादका यह कथन है—स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पृथिवी और सुतपा साधक जीव थे तथा तीव्र साधनाकर उन्होंने भगवान् को पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था। वे सब समय भगवान् का ब्रह्मभावसे चिन्ता नहीं कर पाये, कभी-कभी वे पुत्रभावसे भी उनकी चिन्ता किया करते थे। इसलिए उन्हें तीन बार जन्म ग्रहण करना पड़ा। तीन जन्मोंके पश्चात् उन्हें परमगति प्राप्त हुई।

इसमें वैष्णव दार्शनिकोंका कहना है कि श्रीश्रीधरस्वामीपादने 'ब्रह्मभाव' और देवकी और वसुदेवके स्वरूपके सम्बन्धमें कुछ भी आलोचना नहीं की है, इसलिए अपने बुद्धिबलसे परमानन्द-घन विग्रह श्रीगोविन्दके नित्यसिद्ध पार्षदों तथा उनके शुद्ध भक्तिभावको शुष्क ज्ञानवादमें पर्यवसित करना कदापि युक्तिसङ्गत नहीं है।

पद्म-पुराणमें देखा जाता है—श्रीभगवान्ने अपने श्रीमुखसे कहा है—

एते हि यादवाः सर्वे मद्रणा एव भाविनि।

सर्वथा मत्प्रिया देवि मत्तुल्य गुणशालिनः॥

अर्थात् ये सभी यदुवंशी मेरे गण ही हैं। ये मेरे परम प्रिय एवं मेरे समान गुणशाली हैं।

पद्मपुराणके उत्तर खण्डमें श्रीकृष्णने यादवादि पार्षदोंके विषयमें कहा है—

यथा सौमित्रि भरतौ यथा सङ्कर्षणादयः।

तथा तेनैव जायन्ते निजलोकाद् यदृच्छया॥

पुनस्तेनैव गच्छन्ति तत्पदं शाश्वतं परम्।

न कर्म बन्धनं जन्मं वैष्णवानाञ्च विद्यते॥

(पद्मपुराणम्)

अर्थात् लक्ष्मण, भरत और सङ्कर्षण आदि भगवान्के पार्षदवृन्द जैसे भगवान्के साथ अवतीर्ण होते हैं एवं भगवान्के साथ ही अपने धाममें गमन करते हैं, वैसे ही यादवगण भी भगवान्की प्रकटलीलाके समय उनके साथ ही अवतीर्ण होकर फिर भगवान्के साथ ही नित्यधाममें गमन करते हैं। साधारण जीवका जैसे कर्मफलके अनुसार जन्म होता है, वैसे भगवान्के नित्यसिद्ध पार्षदोंका कर्मफलके अनुसार जन्म नहीं होता है। वे भगवान्की इच्छासे आविर्भूत होते हैं और तिरोहित होते हैं।

अनादि सिद्ध तन्त्रशास्त्रमें कथित श्रीभगवान्की पूजा पद्धतिमें वसुदेव-देवकी आदि पार्षदगण आवरण देवताके रूपमें पूजित होते हैं। श्रीजन्माष्टमी-व्रत-पद्धतिमें देवकीकी गोदीमें श्रीभगवान्का ध्यान एवं वसुदेव आदिका पूजा-विधान भी देखा जाता है। भविष्यपुराणमें देखा जाता है—सूर्यवंशीय राजा दिलीपने श्रीकृष्णजन्मके बहुत पहले ही वशिष्ठ ऋषिसे श्रीकृष्णका जन्म वृत्तान्त श्रवण किया था। उसमें भी देवकी-वसुदेवका नाम है। इससे स्पष्ट समझा जाता है कि श्रीकृष्णका

देवकी-वसुदेवके पुत्ररूपमें जन्म कोई नया नहीं है एवं देवकी-वसुदेव भी केवल इसी बार ही नहीं, जितनी बार कृष्णलीला होती है, उतनी ही बार श्रीकृष्ण देवकी-वसुदेवके पुत्र होकर जन्म ग्रहण करते हैं। अतएव देवकी-वसुदेवको साधक जीव एवं श्रीकृष्णलीलाके अन्तमें उनकी मुक्ति प्राप्तिकी कल्पना करना व्यर्थ प्रयासमात्र है।

श्रीभगवान्‌के पार्षदगण नित्यसिद्ध प्रेमवान्‌ हैं, उन्हें प्रेमलाभ करनेके लिए कभी भी किसी प्रकारकी साधना करनेकी आवश्यकता नहीं होती है। श्रीभगवान्‌ इशारेसे ही अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंका संहार करनेमें समर्थ होकर भी जैसे अपने भक्तोंके आनन्द-वर्द्धनके लिए युद्ध आदि करके असुर-संहार करते हैं, वैसे ही उनके पार्षदगण भी नित्यसिद्ध प्रेमवान्‌ होकर भी जगत्‌में भक्ति-साधनाका प्रचार करनेके लिए साधक-रूपमें अवतीर्ण होकर साधना करते हैं। जैसे भगवान्‌के युद्ध करके असुरोंका संहार करनेसे उनकी सर्वशक्तिमत्ताकी कोई हानि नहीं होती है, वैसे ही नित्य पार्षदोंके भी भक्तिरसका आस्वादन करने और जगत्‌में भक्तिका प्रचार करनेके लिए साधन करनेपर भी उनकी नित्यसिद्धताकी हानि नहीं होती है। वसुदेव-देवकी श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध पार्षद हैं। वे चिरकाल ही श्रीकृष्णके पिता-माता हैं। इसलिए श्रीकृष्ण भी चिरकाल उनके पुत्र वासुदेव हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरके सुतपा और पृश्नि, वसुदेव और देवकीके अंश हैं। वात्सल्यभावसे श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी साधनाका प्रचार करनेके लिए वसुदेव-देवकीके अंशने सुतपा और पृश्नि रूपमें अवतीर्ण होकर तीव्र साधनाके द्वारा श्रीकृष्णको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। कश्यप एवं अदिति भी वसुदेव और देवकीके अंश हैं।

श्रीभगवान्‌ जब पूर्ण रूपमें अवतीर्ण होते हैं, तब उनके पार्षदगण भी पूर्ण रूपमें अवतीर्ण होते हैं। भगवान्‌ जब अंश-रूपमें आते हैं, तब पार्षदगण भी अंश-रूपमें आते हैं। इसबार स्वयं-भगवान्‌ श्रीकृष्ण अवतीर्ण होंगे, इसलिए वसुदेव-देवकी भी स्वयं आये हैं। श्रीभगवान्‌की जैसे नित्यसिद्ध बहुत-सी मूर्तियाँ हैं, वैसे ही उनके पार्षदोंकी नित्यसिद्ध अनेक मूर्तियाँ हैं। वसुदेव-देवकीका ऐश्वर्यभाव-

मिश्रित वात्सल्यप्रेम नित्यसिद्ध है। वे चिरकाल इसी ऐश्वर्यमय प्रेमसे श्रीकृष्णका रसास्वादन करते हैं।

वसुदेव-देवकीने ब्रह्मभावमें अर्थात् ईश्वरभावसे एवं पुत्रभावसे श्रीभगवान्का चिन्तन किया है, इसलिए भगवान् इस ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित वात्सल्यभावमय चिन्ताके अनुरूप मूर्तिमें ही अवतीर्ण हुए हैं। इस मूर्तिमें भगवान्का ईश्वरत्व और बालक दोनों ही विद्यमान हैं।

उन्होंने देवकी-वसुदेवको कहा—‘युवां परां मद्भक्तिं यास्येथे’—यहाँपर ‘मद्भक्ति’ का अर्थ ‘मुक्ति’ कष्ट-कल्पनामात्र है। भगवान्ने कहा—मेरी प्रकट-लीलाके पश्चात् मेरे साथ ही अप्रकटलीलामें प्रवेश करोगे। यद्यपि नित्यसिद्ध पार्षदगण प्रकटलीलाके अन्तमें अप्रकटलीलामें प्रवेश करते हैं, फिर भी श्रीभगवान्का कहनेका उद्देश्य यह है कि वसुदेव और देवकी, अपने कश्यप-अदिति आदि अंशगण सहित नित्य धाममें अप्रकटलीलामें प्रवेश करेंगे ॥ ४४-४५ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ।

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेवने कहा) हरिः (चतुर्भुजरूप प्रकाशके द्वारा और वाक्य-भङ्गिके द्वारा देवकी-वसुदेवके लिए परम मनोहर तथा स्वेच्छासे सबके मनको हरण करनेमें समर्थ श्रीहरि) इति उक्त्वा (पूर्वोक्त वचनोंको कहकर) तूष्णीम् आसीत् (मौन हो गये) [तत्पश्चात्] भगवान् (वे षड् ऐश्वर्यशाली श्रीदेवकीनन्दन) आत्ममायया (स्वेच्छासे) पित्रोः (श्रीदेवकी-वसुदेवके) संपश्यतोः (देखते-देखते ही) सद्यः (तत्क्षणात्) प्राकृत शिशुः (अपने स्वभावसिद्ध द्विभुजस्वरूप) बभूव (बन गये) ॥ ४६ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! भगवान् श्रीहरि यह कहकर चुप हो गये एवं माता-पिताके देखते-देखते ही अपनी योगमाया शक्तिके बलसे उसी समय साधारण शिशुके समान हो गये अर्थात् अपने स्वभावसिद्ध रूपको धारण कर लिया ॥ ४६ ॥

सारार्थदर्शिनी—आत्ममायया—‘आत्ममाया तदिच्छा स्याद्गुणमाया जडात्मिका’ इति महासंहितावचनादात्मेच्छया। प्राकृतः—प्रकृतिश्च स्वरूपञ्च स्वभावश्चेति पर्यायात्, ‘प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनां’ इति शिष्टप्रयोगाच्च, स्वभावसिद्धः इत्येवार्थः। अर्थान्तरस्य ‘न चान्तर्न बहिर्यस्य’ इत्यारभ्य ‘बबन्ध प्राकृतं यथा’ (श्रीमद्भा० १०/९/१३-१४) इति अग्रिमे वाक्ये दाष्टान्तिक-दृष्टान्ताभ्यां निरसनीयत्वात् ॥ ४६ ॥

भावानुवाद—‘आत्ममायया’—‘आत्ममाया’ कहनेका तात्पर्य भगवान्की अपनी इच्छासे है। उन्होंने अपनी इच्छासे ही माता-पिताके सामने अपने स्वभाव-सिद्ध नित्य स्वरूपको प्रकट किया, क्योंकि महासंहितामें कहा गया है—“श्रीभगवान्की इच्छाको ही आत्ममाया कहा जाता है और जो त्रिगुणमयी माया है, वह जडात्मिका है अर्थात् उसे जड़माया कहा जाता है।” ‘प्राकृत’ शब्दका अर्थ स्वभावसिद्ध ही है, क्योंकि प्रकृति, स्वरूप और स्वभाव—ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे—‘प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मानाम्’ अर्थात् यह महात्माओंका प्रकृतिसिद्ध अर्थात् स्वभावसिद्ध है—इस प्रकारके शिष्ट प्रयोगमें—‘प्राकृत’ शब्दका अर्थ प्रकृति अर्थात् स्वभावसिद्ध है। दूसरे प्रकारका अर्थ आगे दामबन्धनलीलाके ‘न चान्तर्न बहिर्यस्य’ से आरम्भकर एवं ‘बबन्ध प्राकृतं यथा’ तक (श्रीमद्भा० १०/९/१३-१४) के वाक्योंके द्वारा दाष्टान्तिक और दृष्टान्त द्वारा दूसरे प्रकारका अर्थ खण्डन किया जायेगा ॥ ४६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीशुकदेवजीने कहा—श्रीभगवान्ने वसुदेवजी और देवकीको उनके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें कठोर तपस्या, वरप्राप्ति एवं तीन बार भगवान्को पुत्र-रूपमें प्राप्ति आदिका विवरण बतलाया। इसे वे चुपचाप सुनते रहे। तत्पश्चात् वसुदेव और देवकी कंसके कारागारमें अपने सामने अवस्थित नवजात शिशु श्रीहरिके सर्वजन-मनोहर माधुर्य-सागरमें निमग्न होकर मन्त्रमुग्ध होकर निर्निमेष नेत्रोंसे उन्हें आपाद मस्तक देखने लगे। वात्सल्यप्रेमके आधार जनक-जननीके निकट श्रीहरिके द्विभुज शिशु बन जानेसे उनके श्रीहरित्वकी कुछ भी हानि नहीं हुई। उन्होंने अपने परम अद्भुत माधुर्यसे वसुदेव-देवकीके मनको हरण कर लिया। वे षडैश्वर्यके पूर्ण निकेतन हैं एवं स्वेच्छासे

सबका संहार करनेमें समर्थ है। उनकी भगवत्ता, शिशुत्व, ऐश्वर्य एवं माधुर्य एक ही साथ मिलकर वसुदेव और देवकीके पुत्र रूपमें प्रकशित हुआ है।

वसुदेवजी और देवकीके देखते-देखते ही भगवान् आत्मामायाके द्वारा प्राकृत शिशु जैसे बन गये। अब उनके चार हाथ नहीं थे, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म भी नहीं थे तथा न हि किरीट-केयूर आदि थे। इस प्रकार वे मानो सम्पूर्ण रूपमें प्राकृत बालक बन गये। उस समय उन्हें पहचानना किसीके लिए भी सम्भव नहीं था, ऐसा लग रहा था मानो सचमुच ही वे देवकीके गर्भसे भूमिष्ठ हुए हों।

श्रीपाद सनातन गोस्वामी, श्रीपाद जीव गोस्वामी आदि वैष्णव दार्शनिकोंने इस श्लोकके 'भगवान् आत्ममायया प्राकृतः शिशुर्बभूव' इस अंशकी व्याख्यामें कहा है—त्रिकाण्ड-शेष एवं निर्घण्ट नामके अभिधानमें देखा जाता है—'माया' शब्दका अर्थ ज्ञान है। यहाँ 'आत्ममाया' शब्दका अर्थ—श्रीभगवान्की स्वरूपभूता स्वरूपशक्ति है अर्थात् जिस समय जो मूर्ति प्रकाश करनेसे प्रेमवान् भक्तोंका आनन्द-वर्द्धन हो, ऐसी बुद्धिको प्रकाश करना स्वरूपशक्तिका कार्य है। श्रीभगवान्को देवकी और वसुदेवका आनन्द-वर्द्धनके लिए जिस मूर्तिको प्रकाश करना चाहिये, विचारकर वे वैसे ही प्राकृत शिशु जैसे बन गये। महासंहिता नामके ग्रन्थमें देखा जाता है—“श्रीभगवान्की इच्छाका नाम 'आत्ममाया' है एवं त्रिगुणमयी जड़ाशक्तिका नाम 'गुणमाया' है।” अतएव भगवान् आत्ममायाके द्वारा अर्थात् स्वेच्छासे प्राकृत शिशु बन गये। विश्वकोष नामके प्राचीन ग्रन्थमें देखा जाता है—'माया' शब्दका अर्थ दम्भ और कृपा है। श्रीभगवान् आत्ममायाके द्वारा अर्थात् अपने भक्तोंपर कृपाका विस्तार करते हुए प्राकृत शिशु बन गये।

'माया' शब्दके अनेकों अर्थ हैं। उनमेंसे ज्ञान, इच्छा एवं कृपा अर्थको ग्रहण करनेसे भगवान्की लीलाके साथ सामञ्जस्य होता है। अन्यथा त्रिगुणमयी जड़ाशक्ति या इन्द्रजाल आदि समझनेसे भगवान्की लीलाके साथ सामञ्जस्य नहीं हो सकता। श्रीभगवान् अपने स्वरूपभूत ज्ञानशक्तिसे, स्वेच्छासे या भक्तोंपर कृपा करनेके लिए प्राकृत शिशु हो

सकते हैं, परन्तु वे सत्त्व, रज एवं तमोगुणमयी मायाशक्तिसे अपना स्वरूप बनाकर मायिक देहवाले प्राकृत शिशु नहीं बन सकते। क्योंकि, वे त्रिगुणातीत हैं—उनके साथ सत्त्व, रज और तमोगुणका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। जगत्के जीवोंको इन्द्रजाल दिखाकर उनका कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता है। अतएव माया शब्दका त्रिगुणमयी माया अर्थ ग्रहणकर भगवान्की लीलाको समझना विडम्बनामात्र है।

श्रीभगवान् आत्ममायाके द्वारा प्राकृत बालक बन गये। उनका यह प्राकृतत्व कोई प्रकृतिका विकार नहीं है। क्योंकि भगवान्के देहका उपादान सत्त्व, रज, तम नहीं हो सकते हैं। क्योंकि वे अप्राकृत परमानन्दघन-विग्रह हैं।

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।

हेयोपादेय रहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥

(वराहपुराण)

अर्थात् श्रीभगवान्की समस्त मूर्तियाँ नित्य एवं चिरस्थायी हैं। उनमें जीव देहकी भाँति हेय एवं उपादेय भेद नहीं होता एवं वे सत्त्व, रज और तमोगुणमयी प्रकृतिके द्वारा निर्मित नहीं हैं। भगवान् प्राकृत शिशु हुए अर्थात् प्राकृत बालक जैसे बन गये। पहले उनका चतुर्भुजरूप, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट, कुण्डल, केयूर आदि आभूषण रहनेसे वसुदेव-देवकीका उन्हें भगवान् जानकर सम्भ्रम (गौरवका भाव) हुआ था। उन्होंने सम्भ्रमके कारण उनका स्तव, स्तुति, प्रणामादि किया था। अब बालक-मूर्ति देखकर उनकी स्तव करनेकी प्रवृत्ति नहीं रही, वे उनके ऐश्वर्यको भूलकर माधुर्य-सिन्धुमें निमज्जित हो गये। उनके हृदयगुफासे वात्सल्य नदीकी अमृतमयी धारा प्रवाहित होने लगी। तब उन्होंने परम आनन्दके साथ उन्हें पुत्र जानकर अपने वक्षःस्थलमें धारण कर लिया तथा कंसके भयसे भीत होकर पुत्रके जीवनकी रक्षा करनेका उपाय सोचने लगे।

श्रीभगवान् आत्ममायाके द्वारा प्राकृत शिशु बने—अप्राकृत परमानन्दघन-विग्रह श्रीभगवान्के इस अनिर्वचनीय लीलारसका वैष्णव-तोषणीकारने दूसरे प्रकारसे भी आस्वादन किया है—वसुदेव और

देवकीकी प्रार्थनासे देखते-देखते ही श्रीभगवान् आत्ममायाके द्वारा प्राकृत शिशु बन गये। उनकी यह प्राकृत शिशु-मूर्ति वसुदेव-देवकीको दिये गये वचनके पालनार्थ उस समय प्रकट करना या अग्नि संयोगके कारण लौह आदिकी उष्णताकी भाँति वात्सल्यप्रेमके संयोगसे चतुर्भुजसे द्विभुजत्वकी प्राप्ति या निराकारसे साकारत्वकी प्राप्ति नहीं है। यह मूर्ति उनकी स्वाभाविक है अर्थात् यह उनका नित्य स्वरूप है। युगपत् अनन्त रूपोंमें अनन्त लीला-विलासी श्रीगोविन्दकी किसी प्रकार कोई दूसरी नयी मूर्ति सम्भव नहीं हो सकती है। अग्निके संयोगसे लोहा गरम होता है, परन्तु अग्निको गरम या उष्ण होनेकी आवश्यकता नहीं है। योगसिद्ध ऋषिलोग भी कारणवशः दूसरी मूर्तियाँ धारण करते थे, ऐसा पुराण आदिमें देखा जाता है। असुर और राक्षस भी आवश्यकताके अनुसार दूसरी मूर्ति धारण करते हैं—यह भी देखा जाता है। जैसे दशकन्धर रावणने संन्यासी मूर्ति धारणकर सीताहरण किया था। मारीच नामक राक्षसने स्वर्ण-मृगका रूप धारण किया था। योगसिद्ध ऋषि या असुर-राक्षसादिका एक ही शरीर है, इसलिए आवश्यकता होनेपर वे दूसरे-दूसरे रूप धारण करते हैं। परन्तु, 'एकोऽपि सन् यो बहुधा विभाति' आदि श्रुति प्रतिपाद्य परब्रह्म भगवान् एक होकर भी अनन्त मूर्तियोंमें प्रकाशमान हैं। इसलिए श्रीगोविन्दको किसी प्रकार कोई नयी मूर्ति धारण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे सभी मूर्तियोंके रूपमें नित्य विराजमान हैं। श्रीकृष्णके नाम-करणके समय गर्गाचार्यने गोपराज नन्दसे कहा है—“हे नन्द महाराज! तुम्हारे पुत्रके बहुत-से नाम और बहुत-सी मूर्तियाँ हैं।” भगवान् एक मूर्तिमें प्रकाशित होकर यदि दूसरी मूर्ति प्रकाश करनेकी इच्छा करते हैं, तब एक मूर्तिको छिपाकर दूसरी नित्यसिद्ध मूर्तिको प्रकाश करते हैं। श्रीभगवान्ने वामन रूपमें बलि महाराजके यज्ञ स्थलीमें त्रिभुवन-व्यापी त्रिविक्रम मूर्तिको प्रकाश किया, वह उनकी कोई नयी या मायिक मूर्ति नहीं है। अतएव उनकी चतुर्भुज, द्विभुज आदि अनन्त नित्यसिद्ध मूर्तियाँ हैं। ऐश्वर्यमिश्रित-वात्सल्यप्रेमवान् वसुदेव और देवकीके निकट उनके प्रेमके अनुरूप चतुर्भुज मूर्तिमें अवतीर्ण होकर उन्हें पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण कराकर जब उन्होंने ब्रजमें जानेकी इच्छा की, तब

देवकीकी प्रार्थनाके अनुसार चतुर्भुजरूपको छिपाकर व्रजवासियोंके विशुद्ध प्रेमके अनुरूप द्विभुज मूर्तिको प्रकाश किया। वेद, तन्त्र एवं पुराण आदिमें द्विभुज, चतुर्भुज आदि भगवान्की बहुत-सी मूर्तियोंकी अनादि सिद्ध उपासना-पद्धति प्रचलित है। इसलिए उन्हें कोई नयी मूर्ति धारण करनेकी आवश्यकता नहीं होती है।

अमरकोष नामके अभिधानमें देखा जाता है—प्रकृति, स्वरूप, स्वभाव आदि शब्द समान-अर्थ-वाचक हैं। 'प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मना' आदि प्रयोगमें भी प्रकृति शब्दका स्वभाव अर्थ ग्रहण किया गया है। अतएव श्रीकृष्णके इस शिशु-मूर्तिको प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक कहनेमें कोई कष्ट कल्पना नहीं होती है ॥ ४६ ॥

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः,
सुतं समादाय स सूतिकागृहात्।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा,
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥ ४७ ॥

अन्वयः—ततः च (श्रीभगवान्का द्विभुजरूपमें आविर्भाव होनेके पश्चात्) भगवत्प्रचोदितः (यदि कंससे डरते हैं, तो मुझे गोकुलमें ले जायँ और यशोदाके गर्भसे उत्पन्न मेरी मायाको यहाँ लायें—इस प्रकार श्रीभगवान् द्वारा पहले आदिष्ट होकर) सः (वे परम भाग्यवान्) शौरिः (वसुदेवने) सुतं (श्रीदेवकीनन्दनको) समादाय (सावधानीसे धीरे-धीरे उठाकर अपनी गोदमें आरोपितकर) सूतिकागृहात् (कंस कारागारसे) यदा बहिर्गन्तुम् इयेष (जिस समय बाहर जानेके लिए इच्छा की) तर्हि (तब) या अजा योगमाया (अजा नामसे प्रसिद्ध जन्मादि-रहित जो श्रीभगवान्की शक्ति योगमाया है) [वह] नन्दजायया (यशोदासे) अजनि (प्रकट हुई) ॥ ४७ ॥

अनुवाद—अनन्तर भगवान्की प्रेरणासे वसुदेवजी जिस समय बालकको गोदमें धारण करके सूतिका-गृहसे बाहर निकलनेकी अभिलाषा कर रहे थे, उसी समय यशोदाने भगवान्की आत्मशक्तिरूपिणी जन्मरहिता योगमायाको प्रसव किया ॥ ४७ ॥

सारार्थदर्शिनी—भगवता प्रचोदितः—‘यदि बिभेषि, तर्हि मां गोकुलं नय, यशोदायाश्च तां कन्यां मन्मायामानय’ इत्यादिष्टः, स वसुदेवः, स्वपाद-निगडं स्वयमेव स्रस्तं वीक्ष्य यदा गन्तुमैच्छत्, तदा सा नन्दजायया निमित्तभूतया, अजनि जाता। किञ्च, ‘गर्भकाले त्वसम्पूर्णं अष्टमे मासि ते स्त्रियौ। देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥’ इति हरविंशवाक्ये ‘समं’ सह समकालमेव सुषुवात इति तत्रार्थावगमात्, अत्र तु देवकीप्रसवोत्तरकाल एव यशोदाप्रसवदर्शनात्, उभयोरेव शास्त्रवाक्ययोरतिप्रामाण्यात्, एवमवसीयते—यदैव देवकी कृष्णं सुषुवे, तदैव यशोदापि कृष्णं सुषुवे, तदनन्तरसमये योगमायाञ्च सुषुवे इति कालभेदेन तस्या द्विः प्रसव एवेत्यतएव ‘अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा’ (श्रीमद्भा० १०/४/९) इति वक्ष्यते। किञ्च, यशोदाप्रसूतस्य कृष्णस्य चतुर्भुजत्वाद्यनुक्तेर्नाकृतिपरब्रह्मत्वाच्च द्विभुजत्वमेव बुद्ध्येत इति ॥ ४७ ॥

भावानुवाद—‘भगवत्-प्रचोदितः’—श्रीभगवान्के द्वारा प्रेरित होकर अर्थात् यदि कंससे आपको भय है, तो मुझे नन्दगृहमें रख आइये और मेरी योगमायाको, जिसने यशोदाकी कन्या होकर जन्म लिया है, उसे यहाँ ले आइये—इस प्रकार भगवान्के द्वारा प्रेरित होकर परम भाग्यशाली वसुदेवजीने अपने हाथोंकी हथकड़ी और पैरोंकी जंजीर स्वयं खुल गयी देखकर जब पुत्रको लेकर गोकुलमें जानेकी इच्छा की, उसी समय गोकुलमें भगवान्की अजा नामसे प्रसिद्ध योगमायाने यशोदाको निमित्त बनाकर जन्म लिया।

“गर्भकाल पूर्ण न होते ही आठवें महीनेमें देवकी और यशोदाने एक ही समयमें सन्तानको जन्म दिया”—हरिवंशकी उक्तिके अनुसार ‘समं’—एक ही साथ अर्थात् समान कालमें ही दोनोंने जन्म दिया, यही पाया जाता है। परन्तु, यहाँ अर्थात् भागवतके इस श्लोकमें देवकीके प्रसवके पश्चात् ही यशोदाके प्रसवका वर्णन देखा जाता है। दोनों शास्त्रोंके ये दोनों ही वचन अति प्रामाणिक होनेके कारण इस प्रकार सङ्गति करनी होगी कि जब देवकीने श्रीकृष्णको जन्म दिया, उसी समय यशोदाजीने भी श्रीकृष्णको जन्म दिया। उसके पश्चात् कुछ ही देरमें यशोदाने पुनः योगमायाको भी जन्म दिया। इस प्रकार कालभेदसे यशोदाको दो सन्तानें हुई, ऐसा समझना होगा। अतएव आगे (श्रीमद्भा० १०/४/९) में कहेंगे—“श्रीकृष्णकी वह अनुजा (छोटी बहन) कंसके

द्वारा शिलापृष्ठपर पटके जानेपर भी कंसासुरके हाथोंसे निकलकर तत्क्षणात् अष्टभुजा देवीमूर्ति धारणकर आकाशमें चली गयी” इत्यादि। दूसरी ओर, यशोदाके द्वारा प्रसूत श्रीकृष्णके चतुर्भुजरूप आदिका वर्णन न होनेसे वहाँ नराकृति परब्रह्म द्विभुजरूपमें ही प्रकट हुए—यही समझना होगा ॥ ४७ ॥

तया हतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु,
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ।
द्वारश्च सर्वाः पिहिता दुरत्यया,
बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८ ॥

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते,
स्वयं व्यवयन्त यथा तमो रवेः।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः,
शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन् फणैः ॥ ४९ ॥

अन्वयः—अथ (योगमायाके प्रकट होनेपर) तया (उस योगमायाके द्वारा) हतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु (समस्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ अपहृत हो जानेसे) द्वाःस्थेषु पौरेषु अपि (द्वारपर स्थित प्रहरिवृन्द और पुरवासियोंके) शायितेषु (निद्रा-मुग्ध होनेपर) बृहत्कपाटाय-सकील-शृङ्खलैः (बड़े-बड़े किवाड़ लौह-कील आदि द्वारा) पिहिताः (आवृत) दुरत्यया च (और स्वभावसे ही जो दुर्लभ्य थे) ताः (वे) सर्वाः द्वारः (सभी दरवाजे) कृष्णवाहे (कृष्णको गोदमें लेकर) वसुदेव (कृष्णके पिताके) आगते (निकटमें आते ही) यथा तमः रवेः (सूर्योदयसे जैसे अन्धकार) स्वयं व्यवयन्त (स्वयं ही दूर हो जाता है) [वैसे ही सभी द्वार अपने-आप खुलते चले गये] उपांशुगर्जितः (मन्द-मन्द गर्जनशील) पर्जन्यः (बादल) ववर्ष (बरसने लगे) शेषः (अनन्तदेव) फणैः (हजारों फणोंके द्वारा) वारि निवारयन् (वसुदेवके मस्तकपर छतरीकी भाँति आच्छादनकर वर्षासे बचाव करते हुए) अन्वगात् (उनके पीछे-पीछे चलने लगे) ॥ ४८-४९ ॥

अनुवाद—उसी योगमायाके प्रभावसे द्वारपाल और पुरवासी समस्त इन्द्रियोंकी वृत्तिकी चेतनासे रहित होनेके कारण सो गये। सूर्यके उदित होनेपर जिस प्रकार अन्धकार स्वतः ही दूर हो जाता है, उसी प्रकार कृष्णको वहन करनेवाले वसुदेवजीके बन्दी-गृहके द्वारपर पहुँचते ही विशाल किवाड़ोंमें लोहेकी कीलोंसे युक्त जंजीर और ताले आदि अपने-आप ही खुल गये। उस समय मेघ मन्द-मन्द गर्जनके साथ वर्षा कर रहे थे, अतः अनन्तनाग द्वारदेशसे आरम्भ करके अपने फनोंसे वर्षाके जलको रोकते हुए वसुदेवजीके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ४८-४९ ॥

सारार्थदर्शिनी—तया योगमायाया, हताः यस्य ज्ञानस्य सर्वा वृत्तयो येषां, तेषु द्वाःस्थेषु द्वारपालेषु, शायितेषु सत्त्विति—ज्ञानहरणं योगमायांश-भूताया मायायाः कार्यम्। या द्वारः पिहिताः, ता व्यवयन्त व्यत्रियन्ते विवृता इत्यर्थः। बृहत्कपाट-गतैरायसकीलशृङ्खलैर्दुरत्ययाः दुरतिक्रमाः। रवेर्निमित्तात्। उपांशु मन्दमन्दं, गर्जितं यस्य सः। फणैश्छत्रीकृतैरित्यर्थः, 'शय्यासनपरीधानपादुकाच्छत्रचामरैः। किं नाभूस्तस्य कृष्णस्य मूर्तिभेदैश्च मुर्तिषु॥' इति ब्रह्माण्डपुराणात् ॥ ४८-४९ ॥

भावानुवाद—उसी योगमायाके द्वारा जिनका ज्ञान लुप्त हो गया था, ऐसे सभी द्वारपाल जमीनपर सो गये। यहाँ उनलोगोंका ज्ञान-लोप होना योगमायाके अंशभूता महामायाका कार्य है। अर्थात् योगमायाकी अंशभूता जगन्मोहिनी मायाके द्वारा द्वारपालोंकी इन्द्रिय-वृत्ति चेतना-शून्य हो जानेपर द्वारपाल एवं पुरवासी निद्रा-अभिभूत होकर शयन करने लगे। बड़े-बड़े किवाड़ लौह-निर्मित कीलों एवं लौहमय जंजीरोंसे दृढ़तर रूपमें बन्द होनेपर भी 'रवे तमो यथा' अर्थात् सूर्यके उदयसे अन्धकार जैसे स्वयं ही दूर हो जाता है, वैसे श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजीके बाहर जानेके लिए प्रयास करनेपर, सभी द्वार अपने-आप खुल गये, यह अर्थ है। बादल भी मन्द-मन्द गर्जनके साथ बारि वर्षण करने लगे। छत्रके आकारमें अनन्तदेव अपने फणोंके द्वारा वर्षाके जलसे उनकी सुरक्षा करते हुए वसुदेवजीके पीछे-पीछे चलने लगे, क्योंकि ब्रह्माण्डपुराणमें कहा है—शय्या, आसन, परिधान (वस्त्र), पादुका, छत्र, चामर आदि विभिन्न रूपोंमें मूर्ति-भेदसे अनन्तदेव श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं ॥ ४८-४९ ॥

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा,
 गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
 भयानकावर्त्तशताकुला नदी,
 मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥ ५० ॥

अन्वयः—मघोनि (इन्द्रके द्वारा) असकृत् (बारम्बार) वर्षति (वृष्टि किये जानेपर) गम्भीर-तोयौघ-जवोर्मि-फेनिला (अगाध और तरङ्ग, फेन आदिसे युक्त) [एवं] भयानकावर्त्त-शताकुला (सैकड़ों भयानक भँवरोंसे व्याप्त होकर) नदी (कल-कल नाद करती हुई बह रही) यमानुजा (यमुनाने) श्रियः पतेः (श्रीरामचन्द्रको) सिन्धुरिव (समुद्र-पार जानेके लिए जैसे) मार्गं ददौ (मार्ग प्रदान किया था) [वैसे ही वसुदेवको भी दूसरी ओर जानेके लिए मार्ग प्रदान किया] ॥ ५० ॥

अनुवाद—निरन्तर इन्द्रदेवके द्वारा वर्षा किये जानेके कारण यमुना नदी उफन रही थी। उसमें गहरे पानीके वेगसे उत्पन्न तरङ्गोंसे फेन-ही-फेन हो रहा था और उसमें सैकड़ों भयानक भँवरे पड़ रहे थे। किन्तु समुद्रने जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रको पथ प्रदान किया था, यमुनाने भी उसी प्रकार वसुदेवजीको मार्ग दे दिया ॥ ५० ॥

सारार्थदर्शिनी—तोयौघः तोयसमूहः, श्रियः पतेः सीतापतेः ॥ ५० ॥

भावानुवाद—‘तोयौघः’—जलराशि। ‘श्रियः पतेः’—सीतापति श्रीराम-चन्द्रको समुद्रने जैसे मार्ग प्रदान किया था, वैसे यमुनाजीने भी वसुदेवजीको मार्ग प्रदान किया ॥ ५० ॥

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्,
 गोपान् सुषुप्तानुपलभ्य निद्रया।
 सुतं यशोदाशयने निधाय तत्-
 सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—शौरिः (वसुदेव) नन्दव्रजं (नन्दालयमें) उपेत्य (उपस्थित होकर) तत्र (वहाँ) तान् गोपान् (नन्द आदि सभी ब्रजवासि गोपोंको) निद्रया सुषुप्तान् उपलभ्य (गाढ़ निन्द्रामें अचेत देखकर) यशोदा-शयने

(यशोदाकी शय्यामें) सुतं (पुत्रको) निधाय (यत्नपूर्वक स्थापनकर) तत् सुतां (यशोदाकी कन्याको) उपादाय (आदरके साथ ग्रहणकर) पुनः गृहान् (अपने वासस्थान कंस कारागारमें) अगात् (आ गये) ॥ ५१ ॥

अनुवाद—तदनन्तर वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर सब-के-सब गोपोंको योगनिद्राके द्वारा सोया हुआ देखकर बालकको यशोदाकी शय्यापर सुलाकर योगमायारूपिणी उनकी उस नवजात कन्याको लेकर पुनः वे कंस कारागारमें लौट आये ॥ ५१ ॥

सारार्थदर्शिनी—तत्सुतामुपादायेति—कंसात् स्वपुत्रस्य रक्षणं, मित्रपुत्र्या वधं जानतोऽपि परमधार्मिकस्यापि वसुदेवस्यायमन्याये न दूषणं, प्रत्युत भूषणमेव; पुत्रीभूते भगवति वर्द्धिष्णु स्नेहेनैव तादृश विवेकापहारात् ॥ ५१ ॥

भावानुवाद—‘तत्सुतामुपादाय’—वसुदेवजीने अपने पुत्रको श्रीयशोदाकी शय्यामें निधिकी भाँति गूढ़ रूपसे रखकर तथा उनकी कन्याको कंसकी वञ्चना करनेके लिए उपादेय रूपमें ग्रहणकर फिरसे कारागारमें लौट आये। यहाँ कंससे अपने पुत्रकी रक्षा करने एवं परम बान्धवकी कन्याका वध हो जानेके विषयमें जानकर भी परम धार्मिक होकर भी वसुदेवजीका यह अन्याय-कार्य दूषणीय नहीं है, बल्कि यह भूषण-स्वरूप ही है, क्योंकि पुत्ररूप भगवान्‌के प्रति बढ़े हुए स्नेहके कारण ही उनका वैसा विवेक आच्छादित हो गया था ॥ ५१ ॥

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम्।

प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥

अन्वयः—अथ (नन्दालयसे आगमनके पश्चात्) वसुदेवः (वसुदेव) दारिकां (यशोदाकी कन्याको) देवक्याः शयने (देवकीकी शय्यामें) न्यस्य (स्थापन करनेके बाद) पदोः (अपने चरणोंको) लोहं (बेड़ीके द्वारा) प्रतिमुच्य (आबद्ध कर लिया) [और] पूर्ववत् आवृतः (किवाड़ आदि पहलेकी भाँति यथावत्) आस्ते (बन्द हो गये) ॥ ५२ ॥

अनुवाद—कारागारमें पहुँचकर वसुदेवजी उस कन्याको देवकीकी शय्यापर रखकर अपने पैरोंमें लौह-जंजीरों (बड़ियों) को बाँधकर पहलेकी तरह बन्दी-गृहमें बन्द हो गये ॥ ५२ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रतिमुच्य बध्वा, पादयोलोहं निगडम्, आवृतः आस्ते स्म ॥ ५२ ॥

भावानुवाद—‘प्रतिमुच्य’—बँधनकर अर्थात् वसुदेव उस कन्याको देवकीकी शय्यामें रखकर अपने पैरोंको लोहेकी जंजीरोंसे बाँधकर पहलेकी भाँति बद्ध हो गये ॥ ५२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वसुदेवजी और देवकीकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीकृष्णने अपना चतुर्भुजरूप छिपाकर द्विभुज-मूर्तिमें प्राकृत शिशुकी भाँति आत्मप्रकाश किया। तब उनके विशुद्ध माधुर्यमय मूर्तिको देखकर उन दोनोंका ऐश्वर्यज्ञान दूर हो गया, वे वात्सल्यप्रेम-सिन्धुमें निमज्जित होकर शीघ्र ही नवजात बालकको वक्षःस्थलमें धारणकर उसका मुख चुम्बन और मस्तक सूँघने लगे। उनके मनमें ऐसा विचार आया कि यदि कंसको पता लग जाय, तो वह अभी आकर पुत्रको मार डालेगा। अतः वे पुत्रकी प्राण-रक्षाके लिए व्याकुल हो उठे।

वसुदेवको स्मरण हुआ कि भगवान्ने उन्हें नन्दालयमें रखकर याशोदाके गर्भसे उत्पन्न योगमायाको लेकर आनेको कहा था। इसलिए उन्होंने विलम्ब न कर तत्क्षण उस नवजात शिशुको एक कोमल वस्त्रके द्वारा ढककर किसी पेटिकामें सुलाकर धीरे-धीरे हृदयमें धारण किया एवं बारम्बार उसका मुख देखने लगे तथा चुम्बन करने लगे, वैसे ही देवकी भी पुत्रका मुख चुम्बन करने लगी। रात्रिका तीसरा प्रहर अतीतप्राय जानकर वे प्राणोंसे भी प्रिय पुत्रको नन्दालयमें रखकर आनेके लिए किसी प्रकार धैर्य धारणकर खड़े हुए। उसके साथ-ही-साथ अज्ञात रूपसे ही उनके हाथोंकी हथकड़ी और पैरोंकी जञ्जीर अपने-आप खुल गयीं। वसुदेवजी जब श्रीकृष्णको हृदयमें लगाकर नन्दालय जानेके लिए प्रस्तुत हुए, ऐसे समयमें नन्दालयमें नन्दकी पत्नी यशोदाके गर्भसे कृष्णशक्ति योगमायाका आविर्भाव हुआ। उनके प्रकट होनेके साथ ही कंस कारागारके द्वाररक्षक प्रहरी, मथुरा राजपथके प्रहरी आदि सभीकी चेतना विलुप्त हो गयी। वे सभी दरवाजेके किनारे या कोई रास्तेके किनारे सो गये, कहीं भी कोई शब्द तक नहीं सुनायी पड़ रहा था। वे सभी मायानिद्रामें अभिभूत

हो गये। कंसके कारागारके सभी दरवाजे लोहेकी कीलों और जंजीरोंके द्वारा सुदृढ़ रूपसे आबद्ध थे। वसुदेवजीके श्रीकृष्णको वक्षःस्थलमें धारणकर दरवाजेके सामने उपस्थित होनेके साथ-साथ सूर्योदयसे अन्धकार दूर होनेकी भाँति सारे दरवाजे अपने-आप खुल गये।

वसुदेवजी श्रीकृष्णको वक्षःस्थलमें धारणकर चुपचाप कारागारसे बाहर आये और धीरे-धीरे राजमार्गमें आकर गोकुलकी ओर बढ़ने लगे। श्रीकृष्ण अप्राकृत परमानन्दघन-विग्रह हैं, उन्हें वक्षःस्थलमें धारणकर व्रजकी ओर जानेमें कोई कष्ट नहीं हुआ। कदम-कदमपर वे परमानन्द-सिन्धुमें अवगाहन करने लगे। फिर भी वे चारों ओर डरे हुए नेत्रोंसे दृष्टिपात करते हुए चुपचाप गोकुलकी ओर अग्रसर होने लगे। ऐसे समयमें देवराज इन्द्रके आदेश-अनुसार गगनमें काले-काले मेघ छा गये और मन्द-मन्द गर्जन करने लगे, बीच-बीचमें विद्युत् चमकने लगी और लगातार वर्षा होने लगी। देवराज इन्द्रके मनमें यह धारणा हुई कि मूसलाधार बारिश होनेसे कोई भी मथुरावासी बाहर नहीं निकलेगा एवं कोई भी वसुदेवजीकी व्रज-यात्राकी बातको जान नहीं सकेगा। बीच-बीचमें बिजलीके चमकनेसे वसुदेवजीको पथ-भ्रष्ट होनेकी कोई सम्भावना भी नहीं होगी।

इधर आकाशमें काले-काले मेघोंको देखकर अनन्तदेव श्रीकृष्णकी सेवाका अवसर जानकर अपने हजारों फणोंको फैलाकर वसुदेवजीके सर्वाङ्गको छतरीकी भाँति आवरणकर पीछे-पीछे चलने लगे। सङ्कर्षणदेव श्रीकृष्णकी ही द्वितीय मूर्ति हैं, परन्तु अनादि-सिद्ध दास्यभावके कारण वे विभिन्न मूर्तियोंमें निरन्तर श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। श्रीकृष्णके स्वरूपानन्दसे सेवानन्दका माधुर्य अधिक है। इसलिए श्रीकृष्ण भी स्वयं इस आनन्दका आस्वादन करनेके लोभसे दासाभिमानी मूर्तिमें स्वयं ही अपनी सेवा करते हैं।

शय्यासन-परिधान-पादुकाच्छत्र-चामरैः ।

किं नाभूस्तस्य कृष्णस्य मूर्तिभेदैस्तु मूर्तिषु ॥

इस ब्रह्माण्डपुराणके वचनसे जाना जाता है—शय्या, आसन, वस्त्र, पादुका, छत्र, चामर आदि अनेकों मूर्तियाँ धारणकर सङ्कर्षण अखिलरसामृतमूर्ति श्रीगोविन्दकी सेवा करते हैं।

निरन्तर मूसलाधार वर्षासे मथुरा-प्रान्तमें प्रवाहित यमुनाका जलस्तर बढ़ गया। उसमें उत्ताल तरङ्गें नृत्य करने लगीं। अतिशीघ्र श्रीकृष्णके दर्शनकी व्याकुलतासे यमुनाके वक्षमें अनगिनत भँवरे उठने लगीं। तीव्र-वेग और तरङ्गोंके आघातसे तटभूमि यमुनाके गर्भमें प्रवेश करने लगे। मानो श्रीकृष्णके आगमन-पथको छोटा करनेके लिए तथा शीघ्र-से-शीघ्र कृष्ण-दर्शनकी व्यग्रतासे यमुना-तटभूमिको आत्मसात्कर श्रीकृष्णके निकट पहुँचनेका प्रयास करने लगी। भाग्यवती यमुनाके साथ मिलकर रहनेसे कभी-न-कभी कृष्णचरणोंकी प्राप्ति हो सकती है, इस आशासे प्रलुब्ध होकर मेघमुक्त जलधाराएँ भी मानो मथुरानगरीको धोकर मार्गोंमें स्थित नालियोंके द्वारा प्रवाहित होकर यमुनाके साथ मिलने लगीं। सहज ही भयङ्कर यमुना वृष्टिके जल-प्रवाहके साथ मिलकर और भी भीषण आकार धारण करने लगी। उस समय यमुनाके इस स्वरूपको देखनेपर ये यमकी अनुजा (यम महाराजकी बहन) हैं, इसमें किसीको कोई सन्देह नहीं रह सकता था।

क्रमशः वसुदेवजी श्रीकृष्णको वक्षःस्थलमें धारणकर यमुनाके तटपर उपस्थित हुए। उस समय यमुनाकी अनगिनत तरङ्ग-मालाएँ बारम्बार वसुदेवके चरणोंमें गिरने लगी एवं यमुना भी कल-कल कलनादसे समस्त दिशाओंको प्रतिनादितकर वसुदेवजीके सौभाग्यका कीर्तन करने लगी।

वसुदेवजी श्रीकृष्णको हाथोंमें लेकर यमुना-किनारे खड़े होकर व्याकुल भावसे चिन्ता करने लगे तथा यमुनाके इसपार और उसपार भयभीत दृष्टिसे देखने लगे। ऐसे समयमें यमुनाके कल-कल ध्वनिका गर्जन, स्रोतका प्रबल वेग, प्रबल भँवरे, उत्ताल तरङ्ग-मालाएँ आदि और भी बढ़ने लगीं। यमुना वसुदेवजीकी गोदीमें स्थित वसुदेवके चरण-प्राप्तिकी आशासे बढ़ने लगी। यमुनाकी तरङ्गें भी कमलनयनके कोमल चरणोंके स्पर्शकी लालसासे क्रमशः अपना मस्तक ऊपर करने

लगीं। वसुदेवजीके कृष्णको गोदीसे ऊपर वक्षःस्थलमें, वक्षःस्थलसे ऊँचा उठाकर कन्धेपर और कन्धेसे ऊपर उठाकर मस्तकपर धारण करनेपर भी उन्हें कृष्णचरण प्राप्तिकी लालसासे ऊँची उठती हुई यमुना-तरङ्गोंकी अपेक्षा उच्चस्थानमें रख नहीं सके। तब वे डरकर पीछेकी ओर लौटने ही वाले थे कि उन्होंने सामनेकी ओर पानी कम होते हुए देखा, क्योंकि यमुनाजी कृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श करनेके लिए बढ़ रही थी, परन्तु चरणस्पर्श करते ही वे घटने लगीं। तब वे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। वसुदेवजी जितना ही अग्रसर होते, उतना ही पानी घुटने भर होता जा रहा था। यह देखकर वे निर्भय होकर अग्रसर होने लगे। इस प्रकार वे कृष्णको हृदयसे लगाकर यमुनाके दूसरे छोरपर उपस्थित हुए।

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने त्रेतायुगमें श्रीरामके रूपमें लीला की थी। उस लीलामें सीताके उद्धारके लिए लङ्कापुरी जानेके लिए उनके समुद्र-किनारे उपस्थित होनेपर, नदी-पति समुद्रने अपने वक्षःस्थलपर सेतु निमार्णकर उन्हें दूसरे पार जानेके लिए मार्ग प्रदान किया था। इस बार यमुनाजीने पतिका अनुकरण किया। परन्तु इस बार श्रीकृष्णने स्वयं पार होनेका कोई प्रयास नहीं किया या उन्हें सेतुबन्धकी कोई आवश्यकता भी नहीं हुई। इसबार श्रीकृष्णको हृदयमें लेकर कृष्णभक्तचूड़ामणि वसुदेवजी श्रीकृष्णके आदेशसे व्रजमें जानेके लिए यमुना-तटपर आये हैं। यमुनाजीने सेतुबन्धनकी अपेक्षा न रखकर अगाध जलके तल-स्थित भूमितलको उन्नतकर वसुदेवजीको पार जानेके लिए मार्ग दे दिया। त्रेतायुगकी लीलामें श्रीरामचन्द्र सेतुबन्धन करके समुद्र पार हुए थे। परन्तु श्रीरामभक्तचूड़ामणि हनुमान बिना सेतुके ही समुद्र पार हो गये। इसबार कृष्णभक्त वसुदेवजी बिना सेतुके ही यमुना पार हो गये। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र पार करनेके लिए भगवान्को सेतुबन्धन आदिकी आवश्यकता होनेपर भी उनके चरणाश्रित भक्तोंके लिए वह आवश्यक नहीं है। वे उनके चरणाश्रयके प्रभावसे ही समुद्र आदिको पार कर जाते हैं। श्रीकृष्णके चरणाश्रित वसुदेवजीने भी जहाँ अपना पैर रखा, वहाँ घुटने तक पानी हो गया।

वसुदेवजी तब अति सहज रूपमें ही यमुना पार हो गये।
श्रीविष्णुपुराणमें देखा जाता है—

यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्त्तं शताकुलाम्।
वसुदेवो वहन् विष्णुं जानुमात्रं वहां ययौ॥

(श्रीविष्णुपुराण)

अर्थात् वसुदेवजी जब श्रीकृष्णको गोदमें लेकर यमुना पार होने लगे, तब अति-गम्भीर एवं सैकड़ों भँवरोंसे भरी हुई यमुना केवल घुटने भरकी जलवाली हो गयी तथा वसुदेवजी अनायास ही यमुनाको पार हो गये।

वसुदेवजी श्रीकृष्णको हाथोंमें लेकर आगे चलते हुए यमुनाका किनारा छोड़कर क्रमशः नन्दालयमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा—गोकुलके रक्षक गोपलोग गहरी नींदमें सो रहे हैं, गोपराजके द्वाररक्षक भी सो रहे हैं एवं द्वार भी खुला हुआ है। वसुदेवजी भी चुपचाप गोपराजके भवनमें प्रवेशकर सीधे अन्तःपुरमें यशोदाके सूतिका-गृहके द्वारपर उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा—व्रजरानी यशोदाजी गम्भीर नींदमें अचेतन होकर सो रही हैं, उनकी गोदीमें एक अत्यन्त गोरी बालिका अपनी अङ्गच्छटासे सूतिका-गारको आलोकितकर बारम्बार दरवाजेकी ओर देखती हुई मानो किसीकी प्रतीक्षा कर रही है। वसुदेवजीने धीरे-धीरे सूतिका-गारके मध्यमें प्रवेश करके देखा—दासियाँ भी सो रही हैं। तब उन्होंने सजल नयनोंसे अपने हृदयस्थित पुत्रकी ओर देखकर उसे फिरसे हृदयमें धारण किया और मुख-चुम्बनादि करने लगे। नयनजलसे उनका हृदय प्लावित होने लगा। उनका किसी भी प्रकारसे पुत्रको हृदयसे छोड़नेको मन नहीं हो रहा था। इधर यशोदाकी कन्या योगमाया बारम्बार वसुदेवजीकी ओर देखकर मानो अतिशीघ्र उसे मथुरा ले जानेके लिए इशारा कर रही थीं। वसुदेवजीके मनमें यह विचार आया—यहाँ पुत्रको रखकर एवं यशोदाकी कन्याको लेकर रातके रहते-रहते ही मुझे मथुरामें कंस कारागारमें लौटना होगा। तब उन्होंने शीघ्र ही किसी प्रकारसे धैर्य धारणकर प्राणोंकी अपेक्षा भी करोड़ों गुणा अधिक प्यारे पुत्रको अपने

वक्षःस्थलसे उतारकर यशोदाकी शय्यापर रख दिया एवं यशोदाकी कन्याको वक्षःस्थलमें धारणकर चुपचाप सूतिका-गृहसे निकलकर क्रमशः राजपथ, नगर प्रान्त और यमुनाको पारकर मथुरामें प्रवेश किया और देखा कि सभी पूर्ववत् गाढ़ी निद्रामें ही सो रहे हैं। तब वे कंसके कारागारमें प्रवेशकर देवकीकी शय्यापर यशोदाकी कन्याको रखकर विविध प्रकारकी चिन्ताएँ करते हुए अपने स्थानपर बैठ गये।

यशोदाकी कन्या साक्षात् श्रीकृष्णकी शक्ति योगमाया है, उसमें भी गोपराज नन्द वसुदेवजीके परम बान्धव हैं। यशोदाजी देवकीकी सखी हैं, इन सभी कारणोंसे वसुदेवजी यशोदाकी कन्याके प्रति स्नेह-परायण थे। वे किसी प्रकार उसे बचाना चाहते थे। परन्तु उसकी प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं था। इसलिए उन्होंने महादुःखसे अधीर होकर यशोदा-कन्याको देवकीकी गोदीमें न देकर शय्यापर रख दिया। उनकी भावना होने लगी—रात्रिके समाप्त होते ही कंसके हाथोंसे जिसका प्राणान्त होगा, उसे मैं क्या करूँ? तब वसुदेवजी अपने पुत्रको छिपानेके आनन्दमें एवं यशोदा-कन्याकी हत्या होनेकी चिन्तामें महादुःखसे अधीर होकर चुपचाप बैठ गये।

वसुदेवजीके कंसके कारागारमें प्रवेश होनेके साथ-ही-साथ कारागारके लोहेके किवाड़ पूर्ववत् बन्द हो गये एवं देवकीकी शय्यापर यशोदाकी कन्याको रखकर बैठनेके साथ ही उनके हाथोंमें हथकड़ियाँ और पैरोंमें बेड़ियाँ पहलेकी भाँति लग गयीं।

भविष्यपुराणमें देखा जाता है—त्रेतायुगमें सूर्यवंशीय राजा दिलीपने अपने कुलगुरु वशिष्ठके निकट श्रीकृष्णकी जन्म-कथा सुननेके लिए प्रार्थना की।

एकदा श्रीकुलाचार्य वशिष्ठं मुनिसत्तमम्।

राजा दिलीपः प्रपच्छ विनयावनतः सुधीः॥

भाद्रमास्यसिते पक्षे यस्यां जातो जनार्दनः।

तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने॥

महाराज दिलीपके प्रश्न-अनुसार महामुनि वशिष्ठने श्रीकृष्णकी जन्म-कथा सुनायी। महर्षि वशिष्ठके द्वारा कही गयी भविष्यपुराणीय

श्रीकृष्ण-जन्मकथा और श्रीमद्भागवतीय जन्मकथामें कुछ अन्तर देखा जाता है।

भविष्यपुराणमें कहा गया है—कंस शिवका भक्त था एवं शिवने उसे वर दिया था कि ‘भानजेके बिना कोई दूसरा तुम्हारा वध नहीं कर सकेगा।’ शिवके वरसे महा घमण्डी होकर कंसने पृथ्वीपर विविध प्रकारसे अत्याचार प्रारम्भ कर दिया। पृथ्वी तब रोती हुई शिवजीके शरणापन्न हुई। पार्वती और देवताओंके सहित शिव ब्रह्माजीके समीप पहुँचे। ब्रह्माने उन्हें और गोरूपी पृथ्वीको साथमें लेकर क्षीरसमुद्रके तटपर पहुँचकर अनन्त शय्यापर शायित श्रीभगवान्की स्तुति-प्रार्थना की तथा पृथ्वीके दुःखका विषय सुनाकर देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहणकर भानजेके रूपमें कंसका वध करनेके लिए श्रीभगवान्से प्रार्थना की। ब्रह्माकी प्रार्थना सुनकर क्षीरोदशायी भगवान्ने शिवको कहा—‘पार्वतीं देहि देवेश अब्दं स्थित्वागमिष्यति’ अर्थात् हे देवेश! आप पार्वतीको मेरे साथ पृथ्वीमें भेज दें। वह एक वर्षके पश्चात् आपके निकट आ जायेगी। उसके पश्चात् श्रीभगवान्ने देवकी गर्भसे और पार्वतीने यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। देवकीके गर्भसे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज भगवान्का पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण देखकर वसुदेवजी रोने लगे एवं ‘मेरा कंसभय दूर करें’—इस प्रकार कहकर प्रार्थना करने लगे। तब दैववाणीसे आदेश हुआ कि नन्दालयमें पुत्रको रखकर यशोदाकी कन्याको ले आओ। वसुदेवजी पुत्रको गोदमें लेकर यमुनाके किनारे आये एवं अगाध जलवाली यमुनाको देखकर डर गये। यमुना पार होकर नन्दालयमें जाना असम्भव जानकर वे रोने लगे। पिताका दुःख देखकर श्रीभगवान्ने यमुनाकी ओर दृष्टिपात किया, तब उनकी दृष्टिसे ही यमुनामें जल कम हो गया और प्रवाह भी कम गया। उस समय पार्वतीजी एक गीदड़का रूप धारणकर वसुदेवजीके आगे-आगे पथ दिखलाती हुई यमुना पार जाने लगी।

तेन दृष्ट्वा ततः सापि क्षीणा जानुवहाभवत्।

शिवा रूपेण गच्छन्ती देवी तु यमुनाजले॥

वसुदेवजी सियारके पीछे-पीछे यमुना पार हो रहे थे। ऐसे समयमें वसुदेवजीकी गोदसे (हाथसे) स्खलित होकर श्रीकृष्ण यमुनाके जलमें गिर गये। वसुदेवजी तब सिरपर हाथ मारकर रोने लगे। श्रीभगवान् यमुनामें कुछ देर तक जलक्रीड़ाकर पूर्ववत् पिताकी गोदीमें आ गये।

मायां कृत्वा जगन्नाथः पितुरङ्गाज्जलेऽपतत्।

तं सुतं पतितं दृष्ट्वा सूर्यजाजीवने द्विजः॥

तदा क्रन्दितुमारेभे भाले स व्यहनत् करम्।

जनकं क्रन्दितं दृष्ट्वा कंसारिः कृपयान्वितः।

जलक्रीडां समाचर्य पितुरङ्गेरवसत् पुनः॥

तब वसुदेव सुदृढ़ रूपसे पुत्रको हृदयमें धारणकर नन्दालयमें गये एवं वहाँ पुत्रको रखकर यशोदाकी कन्याको लेकर मथुरामें लौट आये।

श्रीमद्भागवतमें उक्त जन्मकथाके साथ भविष्यपुराणमें उक्त जन्मकथाका कुछ पार्थक्य होनेपर भी इसमें सन्देह करनेकी कोई बात नहीं है। क्योंकि श्रीभगवान् प्रत्येक कल्पमें एकबार आते हैं और अपनी लीला प्रकाश करते हैं। श्रीकृष्ण-जन्मके बहुत पहले अर्थात् चौदहवें चतुर्युगके त्रेतायुगमें श्रीवशिष्ठने दिलीपके समीप पूर्वोक्त श्रीकृष्ण-जन्मकथा वर्णन की थी और उसके बहुत युग बाद केवल पाँच हजार वर्ष पहले श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षितके निकट श्रीकृष्ण-जन्मकी कथाका वर्णन किया। इससे स्पष्ट रूपसे यह समझा जाता है कि भविष्यपुराणमें श्रीवशिष्ठने दिलीपके निकट जिस कल्पकी लीला वर्णन की है, श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवने श्रीपरीक्षितके निकट उसी कल्पकी लीलाका वर्णन नहीं किया है। इसलिए कल्पभेदसे श्रीभगवान्की लीलामें कुछ भेद देखे जानेपर भी अचिन्त्य, अनन्त, स्वतन्त्र लीलामय श्रीकृष्णकी लीलाके प्रति सन्देह करना उचित नहीं है।

किसी-किसी वैष्णव दार्शनिकोंका अभिमत है कि श्रीकृष्णके चतुर्भुजरूपमें जन्म ग्रहण करनेपर उस चतुर्भुजरूपको ही वसुदेवजी

नन्दालय ले जा रहे थे। वसुदेवनन्दन यमुनामें अन्तर्हित हो गये और यशोदानन्दन गोकुलसे आकर वसुदेवजीके साथमें पुनः नन्दालयमें गये। फिर ब्रजलीलाका अन्त होनेपर अक्रूर जब कृष्ण-बलरामको लेकर आ रहे थे, तब मथुरा और ब्रजकी सीमापर यमुनामें स्नान करते समय यशोदानन्दन वहाँसे अन्तर्हित हो गये और वसुदेवनन्दन यमुनाके जलसे उठकर अक्रूरके रथमें बैठकर मथुरा गये।

जैसा शास्त्रोंमें कहा गया है—ब्रजविलासी श्रीकृष्ण 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति' अर्थात् वृन्दावनको छोड़कर एक पग भी वृन्दावनसे बाहर नहीं जाते। दूसरी ओर, मथुरानाथ मथुरामें, ब्रजनाथ ब्रजमें नित्य ही विराजमान हैं ॥ ४७-५२ ॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत।

न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अन्वयः—परिश्रान्ता (अति सुकुमारी होनेके कारण प्रसव-जनित परिश्रमसे क्लान्तयुक्त) [और] निद्रया (योगनिद्रासे) अपगतस्मृतिः (लुप्तप्राय ज्ञान) [होनेके कारण] नन्दपत्नी (गोपराज महिषी) यशोदा च (यशोदा भी) परं (केवलमात्र) जातं (मेरे गर्भसे कुछ जन्म लिया) अबुध्यत (इतना ही समझ पायी) [किन्तु] तल्लिङ्गं (उनसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र है या कन्या) [यह] न (नहीं जान सकी) ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तृतीय अध्यायका

अन्वयः समाप्त।

अनुवाद—प्रसवके कारण परिश्रान्ता यशोदादेवी योगमायाके प्रभावसे अचेतन होकर पड़ी रहनेके कारण केवलमात्र सन्तान पैदा हुआ है—इतना ही जान पायीं, किन्तु पुत्र हुआ या कन्या—इसे भलीभाँति जान न सकी ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धमें तृतीय अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

सारार्थदर्शिनी—परं केवलं जातमबुध्यत, न तु पुत्रः कन्या वेति तस्य जातस्य चिह्नम्। तत्र हेतुः—परिश्रान्ता, अतिसौकुमार्यात् प्रसवोत्थ-श्रमयुता प्रसवान्ते चानन्देन श्रमोपशान्त्या च निद्रयेति। किञ्च, अत्र चकार उक्त समुच्चये। यथा वसुदेवपत्नी, तथा नन्दपत्नी च, जातं स्वगर्भादुत्पन्नमपत्यं, परं सर्वोत्कृष्टं, अबुध्यत तन्माधुर्यास्वाद-शक्त्यैव तद्वत्तया तदीयस्वरूपभूतानन्दमनुभवगोचरी चकारेत्यर्थः। किन्तु, तस्य लिङ्गं परमेश्वरोऽयमेवेति लिङ्गं विशेषं न अबुद्ध्यतेति भेदः। ननु, तस्याः गर्भजः कृष्ण इति न प्रसिद्धः? तत्राह—यशोदा तद्यशो ददाति देवक्यै सखीभावात्, द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च। अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया॥’ इत्यादि पुराणवचनावगातादित्यर्थः। व्याख्यानमिदं भागवतामृत-वैष्णवतोषिणी-आनन्दवृन्दवनादि सम्मत्यैवेति नोपेक्षणीयम्॥ ५३ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।

तृतीयो दशमे स्कन्धे सङ्गतः सङ्गतः सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता

तृतीयोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ ३ ॥

भावानुवाद—‘परं जातम् अबुध्यत’—नन्द-पत्नी यशोदा ‘सन्तान पैदा हुआ है’—केवल यही जान सकी, परन्तु ‘न तल्लिङ्ग’—कन्या हुई या पुत्र—यह समझ नहीं पायी। उसका कारण यह है कि ‘परिश्रान्ता’—अतिसुकुमारी होनेके कारण प्रसवके परिश्रमसे क्लान्त एवं प्रसवके पश्चात् आनन्द हेतु श्रमकी उपशान्ति होनेपर निद्रामें अभिभूत होनेके कारण उनकी स्मृतिशक्ति लुप्तप्राय हो गयी थी।

‘नन्दपत्नी च’—यहाँ ‘च’ कार समुच्चय अर्थमें प्रयोग हुआ है। जैसे वसुदेव-पत्नी देवकी, वैसे ही नन्द-पत्नी यशोदाने भी ‘जात’—अपने गर्भसे उत्पन्न हुए सन्तानको ‘पर’ अर्थात् सर्वोत्कृष्ट रूपमें अनुभव किया। अर्थात् उन्हींके द्वारा प्रदत्त उनके माधुर्य आस्वादनशक्तिसे ही उनका स्वरूपभूत आनन्द उनके लिए अनुभव गोचर हुआ था। परन्तु, ‘तस्य लिङ्ग’—ये परमेश्वर ही हैं, यह ‘लिङ्ग’ अर्थात् चिह्न अर्थात् ‘ये परमेश्वर हैं’—इसे समझ नहीं पायी, यही देवकीसे श्रीयशोदाका भेद है।

यदि कहो कि श्रीकृष्णके श्रीयशोदाके गर्भसे उत्पन्न होनेकी कोई प्रसिद्धि नहीं है। इसके उत्तरमें कहते हैं—‘यशोदा’—जिन्होंने अपना यश सखीभावसे देवकीको दान किया था, वे ही यशोदा हैं। क्योंकि,

पुराण वचनोंसे जाना जाता है—“नन्द-पत्नी यशोदाके दो नाम हैं—यशोदा एवं देवकी। इसलिए वसुदेव-पत्नी देवकीके साथ यशोदाका सख्यभाव है।” विशेषकर ऐसी व्याख्या भागवतामृतम्, वैष्णव-तोषणी, आनन्द-वृन्दावन चम्पू आदि ग्रन्थ-सम्मत ही है, अतएव यह विचार उपेक्षणीय नहीं है ॥ ५३ ॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धका तीसरा अध्यायकी सज्जन-सम्मत ‘सारार्थदर्शिनी’ टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तृतीय अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीवसुदेवजी नन्दालयमें अपने पुत्रको रखकर यशोदाकी कन्याको लेकर मथुरा लौट आये, परन्तु यह विवरण नन्द, यशोदा या ब्रजवासी कोई भी जान नहीं पाये। श्रीभगवान् जब जैसी लीला करते हैं, उनकी लीलाशक्ति वैसे ही सामञ्जस्य करती है।

ब्रजराज-पत्नी यशोदा जैसे कोमल स्वभाववाली हैं, वैसे ही कोमलाङ्गी भी हैं। वे प्रसव-कालके परिश्रमसे क्लान्त हो गयी थीं। विशेषकर श्रीकृष्णने अपनी शक्ति योगमायाको पहलेसे ही इन सभी लीलाओंका सम्पादन करनेका आदेश दिया था। इसलिए उन्होंने समय अनुसार भगवान्का आदेश पालन किया। उनके प्रभावसे श्रीनन्द-यशोदा, सूतिका-गारकी धात्री और सभी ब्रजवासी गभीर नींदमें सो गये थे। प्रसवके परिश्रमसे क्लान्त यशोदा अर्द्ध निद्रितावस्थामें स्वप्नकी भाँति इतना ही समझी कि उन्हें सन्तान पैदा हुआ है। परन्तु उसके पश्चात् उनमें समझनेका सामर्थ्य नहीं रहा। वह नवजात सन्तान पुत्र है या कन्या—वे कुछ भी नहीं जान सकीं। सूतिका-गारकी दासियाँ भी निद्रामें अचेतन थीं, वे भी जान नहीं पायीं। गोपराज नन्द और दूसरे-दूसरे ब्रजवासियोंकी भी यही स्थिति थी। वे सभी गाढ़ नींदमें अभिभूत होकर जो जहाँ थे, वहीं अचेतन होकर पड़े हुए थे।

यशोदाके प्रायः अधिक उमरमें गर्भके लक्षण प्रकाश होनेसे नन्द महाराज एवं सारे ब्रजवासियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ। उनके गर्भके लक्षण होनेसे ब्रजमें आनन्द-कोलाहल मच गया। प्रसवकाल समीप देखकर सभी आनन्दसे विभोर हो गये थे। भाद्र माहकी कृष्णाष्टमीके दिन सन्ध्याके समयसे ही सभी 'गोपराजका पुत्र होगा'—इस आनन्दमें डूबे हुए थे। इस प्रकार नन्दनन्दनके दर्शनकी लालसासे नन्द, यशोदा एवं ब्रजवासीजन अर्द्धरात्रितक उत्कण्ठित होकर प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु कृष्णमायाके द्वारा मोहित होकर सभी गाढ़ी नींदमें सो गये। ऐसे समयमें लीलामय श्रीहरि अपनी इच्छानुरूप लीला करने लगे।

यदि नन्दबाबा एवं यशोदा मैया श्रीकृष्णको वसुदेवका पुत्र समझते, तो उनका परिपूर्ण वात्सल्यप्रेम प्रकाश नहीं होता। अपने गर्भजात सन्तानके बिना वात्सल्यप्रेम परिपुष्ट नहीं हो सकता है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने नन्द-यशोदाका परिपूर्ण वात्सल्यप्रेमरस आस्वादन करनेके लिए ही माता यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया।

वसुदेव-पत्नी देवकीने जैसे अपने गर्भजात सन्तानको परम उत्कृष्ट रूपमें समझा था, वैसे ही यशोदाने भी श्रीकृष्णको परम उत्कृष्ट रूपमें ही समझा। देवकी और यशोदा दोनोंने ही उनके स्वरूपभूत आनन्दका आस्वादन किया। वसुदेव-पत्नीने अपने ऐश्वर्यमिश्रित-वात्सल्यप्रेमसे अपने सन्तानको परमेश्वरके रूपमें देखा था। परन्तु शुद्ध वात्सल्यप्रेममयी यशोदाजीने अपने गर्भजात सन्तानको पुत्ररूपमें ही देखा। नींद खुलनेके पश्चात् उन्होंने देखा कि—

ददृशे च प्रबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम्।

नीलोत्पल दलश्यामं ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ॥

(विष्णुपुराण)

अर्थात् यशोदाजीने जागनेके साथ-साथ देखा कि नील-कमल-दलके समान श्यामल वर्णके एक पुत्रने जन्म ग्रहण किया है। इससे उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही॥ ५३॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तृतीय अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

चतुर्थ अध्यायका कथासार

इस अध्यायमें चण्डिकाके वचनोंको श्रवणकर अत्यधिक भयभीत कंसका अपने दुष्ट मन्त्रियोंके, बालादि-हिंसन-रूप (नवजात शिशुओंकी हत्यादि) अहितकर परामर्शको अपना हितकर मानकर उसका बहुमानन करना वर्णित हुआ है।

वसुदेवके पूर्ववत् शृंखलाबद्ध होनेके पश्चात् कंसकी नगरीके बहिर्द्वार, अन्तःपुरद्वार और पुरद्वार सभी योगमायाके प्रभावसे पूर्ववत् बन्द हो गये।

कन्या भी उचित समय जानकर क्रन्दन करने लगी, जिससे पहरेदार जाग उठे तथा उन्होंने कंसको देवकीके प्रसवके विषयमें बतलाया। यह सुननेमात्रसे ही कंस अत्यन्त तीव्र वेगसे सूतिका-गृहमें उपस्थित हुआ एवं देवकीके अनेक प्रकारसे अनुनय-विनय करनेपर भी उसने अपनी बहनके हाथोंसे उस कन्याको बलपूर्वक छीनकर उसे बहुत जोरसे शिलापर दे मारा। परन्तु, कंसके हाथोंसे छूटते ही कन्या ऊपरकी ओर उठकर अष्टभुजायुक्त मूर्तिके रूपमें दिखायी देने लगी। तत्पश्चात् उसने कंसको सम्बोधित करते हुए कहा कि उसका अन्त करनेवाले उसके पूर्वशत्रुने निश्चय ही किसी-न-किसी स्थानपर जन्म ग्रहण किया है अतः कंसके लिए उनका अथवा अन्य दीन बालकोंका वध करना व्यर्थ है। देवीके इन वचनोंको सुनकर कंस यह विचारकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ कि 'आकाशवाणी भी किस प्रकार असत्य हो सकती है।' उसने देवकी और वसुदेवको बन्धनसे मुक्त कर दिया एवं उनके निकट अपने अपराध स्वीकारकर वह उनके चरण पकड़कर कहने लगा कि आपलोग अपने-अपने प्रारब्ध-कर्मोंका भोग करनेवाली अपने सन्तानोंके लिए और शोक न करें तथा मेरे अत्याचारके लिए मुझे क्षमा करें। श्रीवसुदेव और देवकीने कंसको समस्त अपराधोंके लिए क्षमा कर दिया। उन्हें प्रसन्न देखकर कंसने अपने गृहमें प्रवेश किया एवं रात्रिके अन्तिम भागमें

उसने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर उन्हें योगमायाके द्वारा कही गयी समस्त बातोंसे अवगत कराया। कंसके मुखसे इन सब बातोंको सुनकर मन्त्रियोंने उसे यह परामर्श दिया कि 'पुरग्राम व्रजादि स्थानोंपर दस दिनसे कम अथवा अधिक आयुके बालकोंको देखनेमात्रसे ही उसका वध कर देना चाहिये एवं यद्यपि सभी देवता आपके भयसे भयभीत रहते हैं, तथापि शत्रु होनेके कारण उनकी भी उपेक्षा करना उचित नहीं है, उन्हें भी जड़से उखाड़ फेंकना आवश्यक है। अतः उनके मूल जो विष्णु है, उसके प्रति विरुद्ध आचरण करना ही कर्त्तव्य है। ब्राह्मण, गाय, वेद, तप, सत्य, दम, क्षम, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ, ये सभी विष्णुके शरीर हैं। ब्रह्मा, शिवादि सभी देवताओंका मूल विष्णु है; अतः देव, ऋषि, गाय तथा विप्रादिके प्रति हिंसा ही विष्णुका वध करनेका उपाय है। दुर्मति कंसने अपने दुष्ट मन्त्रियोंके इस परामर्शका अनुमोदनकर ब्रह्म-हिंसाको ही अपना हितकारी मान लिया। दैत्योंने भी कंसके आदेशसे नाना प्रकारके उपद्रव करने आरम्भ कर दिये।

चतुर्थोऽध्यायः

कंसके हाथसे छूटकर दुर्गादेवीका आकाशमें जाकर
भविष्यवाणी और कंसका अपने अनुचरोंसे परामर्श करना

श्रीशुक उवाच—

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

अन्वयः—बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः (कंस कारागारके बाहरके और
अन्दरके सभी दरवाजे) पूर्ववत् (पहलेकी ही भाँति) आवृताः (बन्द
हो गये) ततः (उसके पश्चात्) बालध्वनिं (नवजात शिशुके रोनेकी
ध्वनि) श्रुत्वा (सुनकर) गृहपालाः (कंस कारागारके रक्षक) समुत्थिताः
(निद्रा भङ्ग होनेके साथ ही चकित होकर उठ गये) ॥ १ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्! इसके बाद कारागारके
सभी द्वार पहलेके ही समान भीतर एवं बाहर दोनों ओरसे बन्द हो
गये। तब नवजात शिशुकी क्रन्दन ध्वनिको सुनकर द्वारपालोंकी नींद
टूटी ॥ १ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

मायावाक्येन कंसस्यानुतापो देवकी क्षमा ।

दुर्मन्त्रिभिर्मन्त्रणा च चतुर्थे कथ्यते कथा ॥

बालध्वनिं—जातमात्र—बालक—रोदनशब्दम् । गृहपालाः—श्वान इव ॥ १ ॥

भावानुवाद—इस चतुर्थ अध्यायमें मायादेवीकी भविष्यवाणीसे
कंसका अनुताप, श्रीदेवकीसे क्षमा—प्रार्थना और दुष्टबुद्धिवाले मन्त्रियोंके
साथ परामर्शका वर्णन हुआ है।

‘बालध्वनिं’—नवजात शिशुके रोनेकी ध्वनि सुनकर। ‘गृहपालाः’—
गृहपालित कुत्तेकी भाँति सभी पहरेदार जाग उठे ॥ १ ॥

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ।
आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥

अन्वयः—ते तु (कंसके कारागार-रक्षक) तूर्ण (अतिशीघ्र) उपव्रज्य (कंसके समीप जाकर) देवक्याः तत् गर्भजन्म (देवकीके अष्टम शिशुकी उत्पत्ति) भोजराजाय (कंसके निकट) आचख्युः (वर्णन किया) यत् (जिस गर्भके प्रकाशमात्रसे ही) [कंस] उद्विग्नः (मृत्यु-भयसे भीत होकर) [उसके जन्मकी] प्रतीक्षते (प्रतीक्षा कर रहा था) ॥ २ ॥

अनुवाद—इसके बाद उन्होंने शीघ्र ही भोजराज कंसके समीप उपस्थित होकर उसे देवकीके सन्तानके जन्मका समाचार दिया, जिसकी कंस बड़ी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥

सारार्थदर्शिनी—तत्—अष्टमं, गर्भजन्म ॥ २ ॥

भावानुवाद—‘तत् गर्भजन्म’—उस समय प्रहरियोंने दौड़कर देवकीके ‘तत्’ अर्थात् आठवें ‘गर्भजन्म’ अर्थात् गर्भसे उत्पन्न सन्तानका समाचार कंसको सुनाया ॥ २ ॥

स तल्पात् तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विद्वलः ।

सूतीगृहमगात् तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्द्धजः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः (वह कंस) तूर्ण (अतिशीघ्र) तल्पात् (शय्यासे) उत्थाय (उठकर) कालोऽयमिति (‘मेरे लिए साक्षात् मृत्यु-स्वरूप यह बालक आ गया है’, ऐसा मानकर) विद्वलः (भयसे व्याकुल होकर) मुक्तमूर्द्धजः (शीघ्रतासे जानेके कारण बिखरे हुए बालोंसे) [तथा] प्रस्खलन् (इधर-उधर गिरते-पड़ते हुए) तूर्ण (शीघ्रतासे) सूतीगृहं (देवकीके सूतिका-गृहमें) अगात् (पहुँचा) ॥ ३ ॥

अनुवाद—यह सुनकर कंस शीघ्र ही शय्यासे उठकर खड़ा हुआ और ‘यह शिशु मेरा काल-स्वरूप है’—ऐसा विचारकर बड़ा ही व्याकुल हो गया और जल्दीसे सूतिका-गृहकी ओर झपटा। उसे यह

भी ध्यान नहीं रहा कि उसके बाल बिखरे हैं। रास्तेमें कई जगह वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा ॥ ३ ॥

सारार्थदर्शिनी—कालः—बालकं हन्तुमयमेव समय इति; यद्वा, मन्मृत्युरिति भयेन ॥ ३ ॥

भावानुवाद—‘कालः’ अर्थात् बालककी हत्या करनेके लिए यही उपयुक्त समय है। उसे ऐसा लगा कि साक्षात् मेरी मृत्यु ही उपस्थित हुई है, इस भयसे कंस व्याकुल हो गया ॥ ३ ॥

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती।

स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

अन्वयः—कृपणा (दीन-हीन) सती (बुद्धिमती) देवी (देवकी) तं (वहाँ आये हुए अपने) भ्रातरं (भ्राता कंसको) करुणं आह (बड़े करुणभावसे कहने लगी) इयं (यह मेरी कन्या) तव स्नुषा (तुम्हारी पुत्रवधू होगी), कल्याण (हे आयुष्मन्!) स्त्रियं (अपनी बहनकी पुत्रीको) हन्तुं मा अर्हसि (मत मारो!) ॥ ४ ॥

अनुवाद—दीनभाववाली देवकी उस समय अपने भाईको कातरभावसे कहने लगी—हे कल्याण! यह कन्या तुम्हारी भावी पुत्रवधू होगी, अतएव स्त्रीजातीय इस कन्याकी हत्या करना उचित नहीं है ॥ ४ ॥

सारार्थदर्शिनी—देवी—स्वपुत्रस्य गोपितत्वादन्तर्द्योतमाना। सख्याः कन्येयमपि जीवत्विति कृपणा। सती—तत्प्रतारणे कोविदा। स्नुषा—तव भाविनः पुत्रस्येयं वधूर्भविष्यतीति बुद्ध्या। तदपि बलादाच्छिद्य जिघृक्षन्तं तमाह—स्त्रियं पश्येयमबला। हे कल्याणेति—स्त्रीवधोत्थपापेन तवाकल्याणं माभवत्विति भावः ॥ ४ ॥

भावानुवाद—‘देवी’—देवकीदेवी अपने पुत्रको छिपानेके कारण हृदयमें आनन्दित रहनेपर भी ‘कृपणा’—प्रिय सखी यशोदाकी कन्याको यह दुष्ट मार डालेगा—यह सोचकर बड़ी दुःखी होकर कातर भावसे कंससे कहने लगी। ‘सती’ अर्थात् जो कंसको ठगनेमें निपुण है। ‘स्नुषा’—हे भैया! यह कन्या तुम्हारी पुत्रवधू होगी। फिर भी कंस बलपूर्वक उस कन्याको छीननेकी चेष्टा करने लगा। कंसको ऐसा

करता देखकर देवकी कहने लगी। हे आयुष्मन्! यह स्त्रीजातिकी अबला कन्या है। 'कल्याण' कहनेका यह भाव है कि स्त्रीवध-जनित पापसे तुम्हारा कोई अकल्याण न हो, इसे छोड़ दो, मारो मत ॥ ४ ॥

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।

त्वया दैवनिमृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—भ्रातः (हे भाई!) दैवनिमृष्टेन (दैवकी प्रेरणासे) पावकोपमाः (अग्नि-तुल्य तेजस्वी) [मेरे] बहवः (अनेक) शिशवः (मेरे पुत्रोंको) त्वया (तुमने) हिंसिताः (अपने हाथोंसे मार डाला) [यह] एका पुत्रिका (एक कन्याको तो कम-से-कम) प्रदीयताम् (मुझे प्रदान करो) ॥ ५ ॥

अनुवाद—हे भैया! तुमने दैवकी प्रेरणासे मेरे अग्नितुल्य तेजस्वी बहुत-से पुत्रोंकी हत्या कर दी है, अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो ॥ ५ ॥

सारार्थदर्शिनी—बहव इति। निर्दयत्वमुक्त्वा शङ्कमानाह—दैवेति। ममैवैतद्दुर-दृष्टं, तव को दोष इति भावः। प्रदीयताम् इत्यनेन त्वयापि मां शून्यक्रोडां मा कुर्विति दैन्यम् ॥ ५ ॥

भावानुवाद—'भैया! तुमने मेरे अग्नितुल्य बहुत-से तेजस्वी पुत्रोंको मार डाला है'—इस प्रकार उसकी निर्दयताकी बात कहकर डरती हुई कहने लगी—यह दैव-प्रेरित है—भैया! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, यह मेरा ही दुर्भाग्य है—जो मेरे सभी बच्चे मारे गये। परन्तु इस बार कन्या हुई है—अतः मुझे इसकी प्राणभिक्षा दे दो। मेरी गोदको सदाके लिए शून्य मत करो। 'प्रदीयताम्' कहनेसे 'तुम मुझे गोद-रहित मत करो'—ऐसा दैन्य ॥ ५ ॥

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।

दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—प्रभो (हे निग्रह-अनुग्रह करनेमें समर्थ!) ननु (निश्चित रूपसे) अहं हि ते (मैं तुम्हारी) अवरजा (छोटी बहन हूँ) [उसपर

भी] हतसुता (जिसके पुत्र मर गये हों) दीना (तथा पुत्र शोकसे विह्वल होनेवाली हूँ) [अतएव] अङ्ग (हे भैया!) मन्दायाः (मन्दभागिनी मेरे लिए) इमां चरमां (सबसे छोटी इस अन्तिम) प्रजां (कन्याको) [मुझे] दातुं अर्हसि (दे देना तुम्हारे लिए उचित है) ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे प्रभो! हे भैया! मेरे बहुत-से पुत्र मर गये हैं। मैं अत्यन्त दीन तुम्हारी छोटी बहिन हूँ, इसलिए मुझ मन्दभागिनीको बची हुई इस अन्तिम सन्तानको अवश्य ही दे दो ॥ ६ ॥

सारार्थदर्शिनी—अङ्ग—हे भ्रातः ॥ ६ ॥

भावानुवाद—‘अङ्ग’ अर्थात् हे भाई! ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—भाद्र माहकी कृष्णाष्टमी निशाका अभी भी अवसान नहीं हुआ है। रात्रिमें विचरण करनेवाले पक्षीगण जब वर्षाके अन्तमें वृक्षकी शाखाओंपर बैठकर भीगे हुए पंखोंको सञ्चालनकर उड़नेका प्रयास कर रहे हैं तथा अतिशीघ्र निशाका अवसान होगा, यह जानकर भोजनके अन्वेषणमें न जाकर अपने अपने घोंसलोंमें जाना ही श्रेयस्कर मान रहे हैं, अष्टमीके क्षीण चन्द्रमा जब गगनमें अपने प्रकाशको क्षीण होते हुए देखकर मानसिक पीड़ाके कारण मलिन हो रहे हैं। दिनमें विचरण करनेवाले पक्षीगण एक बार अपने घोंसलोंमें बैठकर निशा अवसानकी वार्ता जाननेके लिए आँखें खोल-खोलकर देख रहे हैं, तब भी अन्धकार है, यह जानकर फिरसे आँखें मूढ़ रहे हैं—ऐसे समयमें वसुदेवजी नन्दालयमें श्रीकृष्णको रखकर वहाँसे कृष्ण-मायाको हृदयसे लगाकर राजधानी मथुरामें प्रविष्ट हुए। वे मन-ही-मन सोचने लगे—किसीने देखा तो नहीं? मैं जो नन्दालयमें अपने पुत्रको छिपाकर यशोदाकी कन्याको लेकर मथुरामें आया हूँ, इसका किसीको पता तो नहीं चला? यदि कोई किसी प्रकार जान ले, तो सर्वनाश हो जायेगा। तब मेरे पुत्रके प्राणोंकी रक्षाकी कोई सम्भावना नहीं रहेगी। इस प्रकार बहुत-से विचारोंमें डूबे हुए वसुदेवजी चारों ओर देखने लगे। जब उन्होंने देखा कि सभी पूर्ववत् गम्भीर नींदमें सो रहे हैं, तब उनके प्राणोंमें

थोड़ा-सा आशाका सञ्चार होने लगा तथा हृदयमें सामान्य-सा साहस, धैर्य और बल आया। वे अति शीघ्रतासे कारागारमें प्रवेशकर देवकीकी शय्यापर कन्याको सुलाकर निकटमें बैठ गये। तब कंस कारागारके बाहर-भीतरके खुले हुए लौह-कपाट पहलेकी ही भाँति सुदृढ़ रूपसे बन्द हो गये। वसुदेवजीने जब नन्दालयमें जानेके लिए कारागारके बाहर आनेकी इच्छा की थी, तब उनकी गोदीमें श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्णको हृदयमें धारण करनेसे किसी प्रकारका कोई बन्धन नहीं रह सकता है। जिनकी श्रीमूर्तिका ध्यान करनेसे मायाका बन्धन खुल जाता है, साक्षात् रूपमें उन श्रीकृष्णको हृदयमें धारण करनेसे सामान्य लौह-शृंखल और लौह-कपाट खुल जायें, तो इसमें क्या आश्चर्यका विषय है? नन्दालयमें श्रीकृष्णको रखकर वसुदेवजीने जब मायाको हृदयसे लगाकर पुनः कंस कारागारमें प्रवेश किया, तब लौह-किवाड़, लौह-शृंखल सुदृढ़ रूपसे पुनः बन्द हो गये। इसी प्रकार जो जीव मायाको गलेसे लगाता है, उसका ऐसे ही बन्धन होता है। श्रीकृष्णको हृदयमें धारण करनेसे संसाररूपी कारागारसे जीव बाहर निकल जाता है और जब मायाको हृदयमें धारण करता है, तब संसार-कारागारमें प्रवेश करता है और बन्धनको प्राप्त होता है। यही शिक्षा है।

सुदृढ़ रूपसे लौह-किवाड़से बन्द घोर-अन्धकारमय कारागृहमें लौह-शृंखलसे आबद्ध होकर वसुदेव एवं देवकी पूर्वकी भाँति बैठ गये। वसुदेव नन्दालयमें अपने पुत्रको सुरक्षित रख आनेकी बात किसी प्रकारसे भूल नहीं पा रहे थे, सर्वदा उनके मनमें एक ही चिन्ता लगी थी—कैसे बालककी रक्षा होगी, कैसे उसका कुशल समाचार मिलेगा?

इधर उस कन्याने कारागारमें आकर रोना शुरू कर दिया। सम्भवतः रोनेका उद्देश्य कारागारके प्रहरियोंकी निद्रा भङ्ग करना था जिससे वे कंसको समाचार दें। कन्याको रोते हुए देखकर देवकीने घबड़ाकर उसे गोदमें लेकर हृदयमें धारण किया, कितनी बार उसके मुखका चुम्बन किया, परन्तु किसी भी प्रकारसे उसका रोना थम नहीं रहा था। इधर बालिकाके रोदनकी ध्वनिके शब्दसे कारागारके

प्रहरियोंकी निद्रा भङ्ग हो गयी। वे घबड़ाकर उठ बैठे तथा ध्यान लगाकर सुनने लगे—जब उन्हें विश्वास हो गया कि निश्चित ही देवकीके सन्तानने जन्म ले लिया है, तब वे क्षणभरका विलम्ब न कर द्रुतगतिसे दौड़कर कंसके राजभवनमें उपस्थित हुए। देवकीके आठवें गर्भके सन्तानके जन्म होनेका संवाद देनेके लिए प्रहरियोंका वहाँ अबाध आवागमन था। इसलिए बिना किसी रोक-टोकके सीधे अन्तःपुरमें कंसके शयन-गृहमें उपस्थित होकर उन्होंने कंसके निकट सारा समाचार कह सुनाया।

देवकीके आठवें गर्भका लक्षण प्रकाश होनेके दिनसे ही कंसके मनमें भयका सञ्चार हुआ था। उसके पश्चात् कंस एकदिन कारागारमें जाकर देवकीकी अलौकिक अङ्गज्योति देखकर और भी डर गया तथा हताश हो गया। क्योंकि उसकी धारणा हो गयी थी—अब मेरी रक्षा नहीं है। सचमुच देवकीके आठवें गर्भका सन्तान मेरा प्राणनाश करेगा। कंसके अनुचरोंने कंसको कितना समझाया-बुझाया, कितना उत्साह दिया, परन्तु फिर भी उसके मनमें शान्ति नहीं थी। कंस दिन-रात अपने प्राण लेनेवाले श्रीहरिकी चिन्तामें मग्न रहता था, कभी ध्यानमें, कभी स्वप्नमें, कभी कल्पनामें और कभी सम्भावनामें वह सर्वत्र केवल हरिको ही देखता था और भयसे मृतवत् (जड़वत्) हो जाता था। परन्तु इस अवस्थामें भी कंसकी बहिर्मुखताके कारण प्रबल द्वेषबुद्धि क्रमशः बढ़ती ही गयी। अन्तमें उसने यही निर्णय लिया कि देवकीके अष्टम गर्भके सन्तानके जन्म लेते ही उसे मार डालूँगा। इस प्रकार प्रसवकालका समय जितना निकट आता जा रहा था, कंसकी उतनी ही उत्कण्ठा और उद्वेग बढ़ता जा रहा था।

भाद्र माहकी कृष्णाष्टमीकी रात्रिमें कंस कारागारके प्रहरियोंने कंसके निकट आकर जैसे ही देवकीके सन्तानके जन्मका समाचार दिया, वैसे ही कंस शय्यासे उठकर 'क्या मेरी साक्षात् मृत्यु उपस्थित हो गयी?' यह कहता हुआ प्रबल वेगसे कारागारकी ओर दौड़ने लगा। द्रुतगतिके कारण उसके केश बिखर गये, वस्त्र भी अस्त-व्यस्त हो गये, उस समय वह मरणकी आशङ्कासे अत्यन्त व्याकुल हो रहा

था। उसके दोनों नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे तथा शरीर काँप रहा था। उसने कारागारमें पहुँचते ही कठोर शब्दोंमें कहा—‘कहाँ है? देवकीके आठवें गर्भका बालक कहाँ है? वह मेरी साक्षात् मृत्यु है, मैं अभी उसे मार डालूँगा।’ ऐसा कहता हुआ वह देवकीके समीप पहुँचा।

पुनः-पुनः कंसके हाथोंसे पुत्रोंका निधन होनेसे देवकी शोक और दुःखसे अत्यन्त पीड़ित थी, इसलिए वह कंसको भयङ्कर रूपमें आते हुए देखकर आँधीमें केलेके पत्तोंकी भाँति भयसे काँपने लगी। उसका अपना पुत्र नन्दालयमें गुप्त रूपमें एवं परम यत्नके साथ है, उसके लिए उसे कोई शंका नहीं है, यह मानकर हृदयमें उल्लास होनेपर भी उसकी प्रियसखी यशोदाकी कन्या कंसके हाथों मारी जायेगी—ऐसा विचारकर वह अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। इस महादुःखके स्रोतमें उसके अपने पुत्रकी रक्षाका आनन्द बह गया। इसलिए काँपती हुई वह कातर वचनोंसे कंससे कहने लगी—भैया! अब तुम्हें कोई डर नहीं है, देखो! इस बार मेरी कन्या हुई है। इस कन्याका विवाह तुम्हारे पुत्रके साथ कराऊँगी। दैववाणीमें सुना था—मेरे आठवें गर्भका सन्तान तुम्हारी हत्या करेगा। परन्तु यह कन्या तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करेगी। अतएव तुम व्यर्थ ही स्त्रीवधके पापमें लिप्त मत होओ। देखो, यह सचमुच ही कन्या है। मैं तुमसे झुठ नहीं बोल रही हूँ। तुमने हमारे सभी बच्चोंको मार डाला। अग्निके समान तेजस्वी उन सुकुमार बच्चोंको अभी भी मैं भूल नहीं पायी हूँ, जो भी हो, उसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, मेरे दुर्दैवके कारण ही मेरे इतने बच्चे मारे गये हैं। परन्तु अब कम-से-कम तुम मुझे इस कन्याकी भिक्षा तो दे दो। कन्यासे तुम्हें प्राण सङ्कटकी कोई शङ्का नहीं है। मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ, बचपनसे तुमने मुझे प्यार किया है, परन्तु मैं अति दुर्भागिनी हूँ, अदृष्ट दोषसे आज मैं पुत्र-शोकातुर एवं कारागारमें बन्दी हूँ। तुम राजाधिराज हो, जो इच्छा हो, सो कर सकते हो, तुम यदि मारना चाहो तो कौन रक्षा कर सकता है? भैया! मैं तुम्हारे चरणोंमें गिरती हूँ, इस दुर्भागिनीकी अन्तिम कन्याको भिक्षामें दान दे दो॥ १-६ ॥

श्रीशुक उवाच—

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ।

याचितस्तां विनिर्भत्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥

अन्वयः—आत्मजां (कन्याको) उपगुह्य (छातीमें छिपाकर) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) दीनदीनवत् (दीनसे भी दीनहीनकी भाँति) रुदत्याः (रोती हुई) [देवकीके] याचितः ('इस कन्याका दान दे दो'—इस प्रकार बारम्बार प्रार्थना करनेपर भी) खलः (हिंस्र स्वभाव-सम्पन्न कंसने) विनिर्भत्स्य (देवकीका तिरस्कारकर) तां (उस कन्याको) हस्तात् (देवकीके हाथसे) आचिच्छिदे (छीन लिया) ॥ ७ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवकीजी इस प्रकार कन्याको गोदमें छिपा करके अतिशय दीनतापूर्वक रोदन करते-करते प्रार्थना करने लगीं, परन्तु दुरात्मा कंसने देवकीजीको डाँट-डपटकर उनके हाथोंसे कन्याको बलपूर्वक छीन लिया ॥ ७ ॥

सारार्थदर्शिनी—एवं अनेन प्रकारेण, आत्मजां स्वकन्यामेवेत्यर्थः । दीनदीनवत्—दीनादपि दीनजन इव, न तु तथा; तस्याः स्वापत्यत्वाभावात् । तां—देवकीम् । आचिच्छिदे—आकृष्य जग्राह ॥ ७ ॥

भावानुवाद—'एवम्' अर्थात् इस प्रकारसे । देवकी 'आत्मजाम्' अर्थात् अपनी कन्याकी भाँति उसे अपने वक्षःस्थलमें दोनों हाथोंसे छिपाकर अतिशय दीनसे भी दीन होकर रोती बिलखती हुई कहने लगी । यथार्थतः वे दीन नहीं हैं, क्योंकि वह कन्या उनकी अपनी कन्या नहीं है । इसलिए श्रीशुकदेवजीने 'दीनवत्' कहा है । 'ताम्'—उस देवकीको दुरात्मा कंसने अत्यन्त डाँट-डपटकर उसके हाथोंसे बलपूर्वक उस कन्याको छीन लिया ॥ ७ ॥

तां गृहीत्वा चरणयोजातिमात्रां स्वसुः सुताम् ।

अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥

अन्वयः—तां (उस कन्याको बलपूर्वक छीनकर) जातमात्रां (उसी क्षण जन्म ली हुई) स्वसुः (बहन देवकीकी) तां (उस) सुतां

(कन्याको) चरणयोः (दोनों पैरोंसे) गृहीत्वा (बलपूर्वक पकड़कर) स्वार्थोन्मूलितसौहृदः (स्वार्थके कारण जिसने स्नेह, वात्सल्य आदि सुहृद भावोंको परित्याग कर दिया है, ऐसे कंसने) शिलापृष्ठे (पत्थरपर) अपोथयत् (बलपूर्वक फेंक दिया) ॥ ८ ॥

अनुवाद—उसने नवजात भानजीके दोनों पैरोंको पकड़कर बलपूर्वक पत्थरकी चट्टानपर पटक दिया। स्वार्थने उसके हृदयसे सौहार्द-भावको समूल नष्ट कर दिया था। उसका आत्मीय-स्वजन भाव दूर हो गया था ॥ ८ ॥

सारार्थदर्शिनी—अपोथयत्—बलेन चिक्षेप ॥ ८ ॥

भावानुवाद—कंसने पत्थरकी चट्टानपर 'अपोथयत्' अर्थात् बलपूर्वक पटक दिया ॥ ८ ॥

सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता।

अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥

अन्वयः—विष्णोः (श्रीकृष्णकी) अनुजा (छोटी बहन) सा कन्या (वह कन्या) तत् हस्तात् (कंसके हाथसे) समुत्पत्य (नीचेकी ओर फेंकनेपर भी बलपूर्वक ऊपरकी ओर जाती हुई) सद्यः (उसी समय) देवी (दिव्यरूपा देवी) अम्बरम् (आकाशमें) गता (चली गयी) (तथा) सायुधाष्टमहाभुजा (आठ विशाल हाथोंमें दिव्य अस्त्रोंको धारण की हुई) अदृश्यत (कंस आदिके दृष्टिगोचर हुई) ॥ ९ ॥

अनुवाद—परन्तु भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) की छोटी बहिन योगमाया देवी कंसके हाथोंसे छूटकर तत्क्षणात् आकाशमें चली गयीं एवं अपने बड़े-बड़े आठ विशाल भुजाओंमें शूल आदि अस्त्रोंको लिये हुए दीख पड़ी ॥ ९ ॥

सारार्थदर्शिनी—समुत्पत्य—अधः क्षिप्यमाणापि बलादुत्प्लुत्य। 'कंसासुरस्योत्तमाङ्गे पादं दत्त्वा गता दिवम्' इति भविष्योत्तरम्। 'अनुजा विष्णोः' इत्यनेन कृष्णस्य यशोदागर्भजत्वं सूचयति। 'सायुधाष्ट' इत्यादि कंसस्य भीषणार्थम्, स्ववाचि विश्वासोत्पत्त्यर्थञ्च ॥ ९ ॥

भावानुवाद—‘समुत्पत्य’—वह कन्या कंसके द्वारा पत्थरकी चट्टानपर पटके जानेपर भी कंसासुरके हाथोंसे निकलकर तत्क्षणात् अष्टभुजा देवी-मूर्ति धारणकर आकाशमें चली गयीं। भविष्यपुराणमें कहा गया है—“कंसासुरके मस्तकपर अपने पैरोंसे ठोकर मारकर वह कन्या आकाशमें चली गयीं।” ‘अनुजा विष्णोः’ अर्थात् विष्णुकी छोटी बहन—यह कहनेसे श्रीकृष्णका यशोदाके गर्भसे जन्म हुआ है—यह भी सूचित होता है। ‘सायुधाष्टमहाभुजा’ अर्थात् शूल आदि अस्त्रोंसे युक्त अष्टभुजा देवी, इस रूपके प्रकाशका कारण—कंसको भय दिखाना तथा अपने वचनोंमें विश्वास प्रकट कराना था॥ ९॥

दिव्यस्रगम्बिरालेप-रत्नाभरणभूषिता ।

धनुःशूलेषुचर्मासि-शङ्खचक्रगदाधरा ॥ १० ॥

सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।

उपाहतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

अन्वयः—[वह देवी] दिव्य-स्रगम्बिरालेप-रत्नाभरणभूषिता (दिव्य माला, गन्ध, वस्त्र, रत्न, अलङ्कार आदिके द्वारा परिशोभित थीं) धनुः-शूलेषु-चर्मासि-शङ्खचक्रगदाधरा (आठ हाथोंमें धनुष, शूल, बाण, चर्म, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा आदिके द्वारा सुशोभित थी) [तथा] उपाहतोरुबलिभिः (महा-महा उपहारोंके द्वारा अर्थात् महा-महा पूजाके उपकरण आदि प्रदान करते हुए) सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः (इन-इन नामोंके प्रसिद्ध देवतागण) [एवं] अप्सरः-किन्नरोरगैः (इन-इन नामोंके प्रसिद्ध स्वर्गवासी देवियाँ) [उन देवीकी] स्तूयमाना (स्तव-स्तुति करने लगी) [ऐसी देवी] इदं (इस प्रकार) अब्रवीत् (कहने लगी)॥ १०-११॥

अनुवाद—वे देवी दिव्यमाला, वस्त्र, अङ्ग-विलेपन (चन्दन आदि) और रत्न आभरणोंसे विभूषित थीं। वे हाथोंमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र और गदा धारण की हुई थीं। अप्सरा, किन्नर, नाग, सिद्ध, चारण, गन्धर्व आदि उनकी पूजा हेतु बहुमूल्य सामग्रीसमूह प्रदानकर उनकी वन्दना कर रहे थे। वे कंससे कहने लगीं॥ १०-११॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत्।

यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्^(१) वृथा ॥ १२ ॥

अन्वयः—मन्द (अरे निर्बोध महामूर्ख!) मया हतया (मुझे मारकर) किं (क्या प्रयोजन सिद्ध करना चाहता है?) तव अन्तकृत् (तुम्हारा प्राणघातक) पूर्वशत्रु (पिछले जन्ममें जिन्होंने तुझे मारा था, वे तेरे पिछले जन्मके शत्रु) यत्र क्व वा (कहीं अन्यत्र) जातः (आविर्भूत हो चुके हैं) कृपणां (तुम वसुदेव-देवकी आदि इन निरीह व्यक्तियोंको) वृथा (व्यर्थ ही) मा हिंसीः (उत्पीड़न मत कर) ॥ १२ ॥

अनुवाद—रे मूढ़! मेरा वध करके तुझे क्या लाभ होगा? क्योंकि तेरे पूर्वजन्मका शत्रु और विनाशक किसी अन्य स्थानपर पैदा हो चुका है। इसलिए व्यर्थ ही निरीह वसुदेव आदिका उत्पीड़न मत कर ॥ १२ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘मया हतया किम्’ इति, यद्यहं हताप्यभविष्यमित्यर्थः। यत्र क्वचित्, वक्तुमनर्हं देशे इत्यर्थः। कृपणां देवकीम्। कृपणानिति पाठे अन्यान् शिशून् ॥ १२ ॥

भावानुवाद—‘मया हतया किम्’—रे मन्दमते! मूढ़! यदि तू मुझे मार भी डालता, तो भी तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता? क्योंकि तेरे पूर्वशत्रुने तेरा विनाश करनेके लिए ‘यत्र क्व वा’—कहीं जन्म ग्रहण कर लिया है। यहाँ स्थानका निर्देश न करनेके लिए ही किसी भी स्थानमें जन्म हुआ है—ऐसा कहा गया है। ‘कृपणां’ अर्थात् देवकीको वृथा कष्ट मत दे। ‘कृपणान्’ पाठ होनेपर यह अर्थ होगा—तू वृथा निरपराधी अन्यान्य शिशुओंकी हत्या मत कर ॥ १२ ॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि।

बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥

अन्वयः—भगवती (परम ऐश्वर्ययुक्त) देवी (विविध विचित्र लीलामयी) माया (श्रीभगवान्की शक्ति योगमाया) तं (उस कंसको)

(१) पाठान्तर—कृपणाम्

इति (ऐसा) प्रभाष्य (कहकर) [अन्तर्हित हो गयी] [एवं] भुवि (पृथ्वीमें) बहुनामनिकेतेषु (काशी, कामरूप आदि बहुत-से स्थानोंमें) बहुनामा (दुर्गा, कामाख्या आदि बहुत नामोंसे) [पूजित] अभूव ह (होने लगीं) ॥ १३ ॥

अनुवाद—भगवती योगमाया कंससे इस प्रकार कहकर वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं और भूतलपर वाराणसी आदि विभिन्न प्रसिद्ध-स्थानोंमें अन्नपूर्णा आदि विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध और पूजित हुई ॥ १३ ॥

सारार्थदर्शिनी—बहुनामनिकेतेषु—वाराणस्यादिस्थलेषु ॥ १३ ॥

भावानुवाद—‘बहुनामनिकेतेषु’—वाराणसी आदि विविध स्थानोंमें विविध नामोंसे भगवती योगमाया पूजित होने लगीं ॥ १३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—बहिर्मुख जीव कभी भी श्रीगोविन्दके चरणोंमें शरणागत नहीं हो सकता या होनहारपर निर्भर नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्ति देहाभिमानमें मत्त होकर सुख-प्राप्ति और दुःखोंको दूर करनेके लिए कमर कसे हुए होते हैं। अति क्षुद्र सुखकी लालसासे वे बड़े आनन्दसे दूसरोंका प्राणनाश करते हैं एवं एक साधारण काँटेके गड़ जानेसे जो दुःख होता है, उसके बदले हँसते हुए वे दूसरोंका कलेजा तक निकाल सकते हैं।

जो गोविन्दके चरणोंमें शरणागत हैं, वे ठीक इसके विपरीत होते हैं। अपना दुःख स्वीकार करके भी वे दूसरोंका दुःख निवारण करनेके लिए सदा-सर्वदा कृत-सङ्कल्प रहते हैं। स्वार्थसिद्धिका गन्धमात्र भी उनके हृदयमें स्थान ग्रहण नहीं कर पाता है। उनकी समस्त प्राणियोंमें आत्मवत् दृष्टि रहती है।

‘देवकीके आठवें गर्भका सन्तान कंसका प्राणनाश करेगा’—यह जानकर कंस अपनी प्राणरक्षाके लिए व्याकुल हो गया। इसलिए वह देवकी एवं वसुदेवको कारागारमें बन्दकर उन्हें असहनीय दुःख प्रदान कर रहा था। उसने एक-एक करके उनके बहुत-से सन्तानोंको मार डाला। अब देवकीके आठवें गर्भके सन्तानको भी मार डालनेके लिए वह कारागारमें उपस्थित हुआ था। परन्तु देवकीके आठवें गर्भका

सन्तान यथार्थ रूपमें मथुरामें नहीं है, वह तो नन्दालयमें छिपा हुआ है। देवकीकी गोदमें स्थित बालिका यशोदाकी कन्या होनेपर भी देवकीने दूसरेके गर्भसे उत्पन्न जानकर उसकी उपेक्षा नहीं की या उसकी प्राणरक्षाके लिए उदासीनता भी नहीं दिखायी, देवकी उसे अपनी आत्मजा ही जानती थी। अपने गर्भजात सन्तानकी रक्षाके लिए देवकीकी जैसी व्याकुलता होती, उससे किसी भी अंशमें कम व्याकुलता उनकी इस कन्याके लिए नहीं थी।

कंसका भयङ्कर स्वरूप देखकर भयसे विह्वल देवकी बेटीको वक्षःस्थलमें छिपाती हुई तथा दोनों हाथोंसे ढककर दीनातिदीनकी भाँति करुणकण्ठसे रोती बिलखती हुई बारम्बार कन्याके प्राणोंकी भिक्षाके लिए कंससे प्रार्थना करने लगी। देवकीके कारावासका क्लेश, पुत्रका शोक, भयसे विह्वलता और कन्याकी प्राणरक्षाके लिए व्याकुलता आदि देखकर तो पाषाण हृदयमें भी करुणाका सञ्चार हो जाय। उसके कातर क्रन्दनसे पाषाण भी पिघल जायँ। परन्तु दुर्भाग्य! कंसका हृदय क्षणकालके लिए भी पिघला नहीं या करुणाका लेशमात्र भी उसके हृदयमें उदित नहीं हुआ। कंस देवकीकी कातर क्रन्दन-ध्वनि सुनकर डाँट-डपटकर उससे कहने लगा—अरी दुष्टे! मैं क्या अपने प्राणोंकी ममता छोड़कर तेरी कन्याके प्राण भिक्षामें दूँ? जल्दी छोड़, नहीं तो तुझे भी कन्याके साथ मार डालूँगा। फिर भी देवकी कंसकी डाँट-डपटकी परवाह न कर कहने लगी—भैया! तुम पहले मुझे मार डालो, फिर मेरी कन्याको ले लो। मैं प्राण रहते कन्याको नहीं दूँगी। देवकीकी बात सुनकर कंसकी क्रोधाग्निमें घीकी आहुति पड़ गयी। कंसने क्रोधसे काँपते हुए बाँये हाथसे देवकीका दाहिना हाथ छुड़ाकर दाहिने हाथसे बलपूर्वक नवजात कन्याके दोनों पैर पकड़कर छीन लिया। कंस स्वार्थसिद्धिकी प्रबल ताड़नासे अन्धा हो गया था; प्रेम, प्रीति, दया-माया उसके हृदयसे चिरकालके लिए विदा हो गयी थी।

कंस उस नवजात बालिकाके चरण पकड़कर तीव्र गतिसे देवकीकी कोठरीसे बाहर आया एवं उसका मस्तक चूर्ण-विचूर्ण करनेके लिए अति वेगसे पत्थरकी चट्टानपर पटक दिया। परन्तु देखते-ही-देखते एक अनिर्वचनीय, अलौकिक घटना घटी। चट्टानपर

पटकी गयी बालिका चट्टानपर गिरी नहीं, बल्कि कंसके मस्तकपर तीव्र वेगसे पदाघातकर आकाशमार्गमें चली गयी। बालिकाके उस पदाघातसे कंसका सिर चकरा गया और वह दृष्टि-शक्ति विहीन हो गया। कंस दोनों हाथोंसे सिर पकड़कर बैठ गया। फिर आकाशमार्गमें बादलोंकी गर्जन जैसी ध्वनि सुनते ही कंसकी दृष्टि ऊपरकी ओर गयी, तो देखा—करोड़ों बिजलियोंकी कान्तिको भी फीकी करनेवाली अपनी अङ्गकान्तिसे आकाशमार्गको उद्भासित करती हुई एक विद्युद्वरणी अष्टभुजा रमणी विराजमान है। उसके आठ हाथोंमें धनुष, शूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र, गदा सुशोभित हैं। उसके परिधानमें स्वर्ण-सूत्र-खचित नील-वस्त्र, गलेमें पुष्पमाला, चन्दन, कुंकुम, अगुरु, कस्तुरी आदि दिव्य-गन्धके अनुलेपनके द्वारा सर्वाङ्ग लिप्त, मणि-माणिक्य आदि खचित दिव्य-आभूषणोंके द्वारा सर्वाङ्ग सुशोभित, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागगण अनेकों उपहारोंके द्वारा उस कृष्णानुजा (श्रीकृष्णकी छोटी बहन) महामायाका चरण-पूजन कर रहे हैं और देवीसूक्त आदि पाठ कर रहे हैं, चारों ओर उसकी जय-जयकारकी ध्वनि उच्चरित हो रही है।

यह देखकर कंस डर गया और विस्मित होकर टकटकी लगाकर आकाशकी ओर देखता रह गया। अष्टभुजा देवीकी अङ्गछटासे उसकी आँखें चौंधिया रही थीं। उसके आठों हाथोंमें अस्त्रोंको देखकर उसका शरीर काँपने लगा, आँखें खुलीकी खुली रह गयीं, यहाँ तक कि उसके हृदयकी धड़कन भी बन्द हो गयी। ऐसे समयमें अष्टभुजा देवी दुर्गा मेघके समान गम्भीर स्वरसे कंसके हृदयको कम्पित और विदीर्णप्राय करती हुई कहने लगी—अरे मूर्ख ! मुझे मारकर तेरा क्या स्वार्थ पूरा होगा ? तेरे पूर्वजन्मके शत्रुने अन्यत्र कहीं जन्म ले लिया है। वसुदेव-देवकी एवं यादवोंकी वृथा हिंसा करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। बल्कि इससे तेरा अनिष्ट बढ़ता जायेगा।

यह कहकर अष्टभुजा देवी आकाशमें ही अन्तर्हित हो गयी एवं पृथ्वीमें काशी, कामरूप आदि बहुत-से पुण्य तीर्थोंमें दुर्गा, कामाख्या आदि विविध नामोंसे पूजित होने लगीं ॥ ७-१३ ॥

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवञ्च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—तया (उस देवी दुर्गाकी) अभिहितं (कही हुई बातोंको) आकर्ण्य (सुनकर) परमविस्मितः (परम आश्चर्ययुक्त होकर) कंसः (कंस) देवकीं वसुदेवञ्च (देवकी-वसुदेवको) विमुच्य (कारागारसे मुक्तकर) प्रश्रितः (हाथ जोड़कर विनीत भावसे) अब्रवीत् (बोला) ॥ १४ ॥

अनुवाद—देवीकी यह बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर कंसने देवकी और वसुदेवजीको बन्धनसे मुक्त कर दिया और विनय भावसे कहने लगा— ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शिनी—परमविस्मितः—कथं मानुष्या देवक्या गर्भे दुर्गा देवी जाता? कथं वा दैवी-वागनृताभूत्? इति ॥ १४ ॥

भावानुवाद—‘परमविस्मितः’ अर्थात् कंसको इस बातका बड़ा विस्मय हुआ कि कैसे एक मानवी देवकीके गर्भसे दुर्गादेवीका जन्म हुआ? और वह आकाशवाणी झुठी कैसे हो गयी? इस चिन्तासे कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा ॥ १४ ॥

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ।

पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥

अन्वयः—अहो भगिनी (अहो बहन देवकी!) अहो भाम (अहो बहनोई वसुदेव!) पुरुषादः (राक्षस) अपत्यं (अपने सन्तानोंको) इव (जिस प्रकार मार देते हैं) [उसी प्रकार] पाप्मना (पापात्मा) मया (मैंने) बत (अत्यन्त खेदके साथ) [परम आत्मीय-स्वरूप] वां (तुम्हारे) बहवः सुताः (बहुत-से पुत्रोंका) हिंसिताः (विनाश कर डाला) ॥ १५ ॥

अनुवाद—मेरी प्यारी बहन और बहनोईजी! हाय-हाय! जिस प्रकार राक्षस अपनी सन्तानकी हिंसा करते हैं, उसी प्रकार पापात्मा मैंने तुम्हारे अनेक सन्तानोंको मार डाला है ॥ १५ ॥

सारार्थदर्शिनी—हे भाम—हे भगिनीपते। पुरुषादः—राक्षसो यथा स्वापत्यं हिनस्ति, तद्वत् ॥ १५ ॥

भावानुवाद—‘भाम’ अर्थात् हे बहनोईजी! ‘पुरुषादः’ अर्थात् राक्षस जैसे अपने सन्तानको मार देता है, वैसे ही निर्दय होकर तुम्हारे बहुत—से बच्चोंको मैंने मार डाला। मैं अत्यन्त दुरात्मा—पापात्मा हूँ ॥ १५ ॥

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत् खलः।

काँल्लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥

अन्वयः—स तु (तुम्हारे पुत्रोंके हन्तारक) त्यक्तकारुण्यः (निर्दयः) त्यक्त-ज्ञाति-सुहृत् (स्वजन-बान्धव आदिके सुहृद भावको छोड़ देनेवाला) खलः (हिंस्र स्वभाव-सम्पन्न) श्वसन् (जीवित रहकर भी) मृतः (मृततुल्य) अहं (मैं) ब्रह्महा इव (ब्रह्महत्याकारीकी भाँति) वै (निश्चित रूपसे) कान् लोकान् (देहान्तरके बाद नरकादि कौन-से दुःखमय स्थानमें) गमिष्यामि (जाऊँगा) [पता नहीं] ॥ १६ ॥

अनुवाद—मैं अतिशय निर्दय एवं क्रूर हूँ। मैंने अपने भाई-बन्धुओं और हितैषियोंका भी त्याग कर दिया। इसलिए पता नहीं, मृत्युके पश्चात् ब्रह्मघातीके समान सर्वदा अनुतप्त होकर न जाने मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा? ॥ १६ ॥

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम्।

यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुनिहतवान् शिशून् ॥ १७ ॥

अन्वयः—केवलं (केवलमात्र) मर्त्याः एव (मनुष्य कहते हैं) न (ऐसा नहीं) दैवं अपि (देवता भी) अनृतं (झूठी बातें) वक्ति (कहते हैं) यत् विश्रम्भाद् (जिस दैववाणीपर विश्वास करके) पापः (पापमति) अहं (मैंने) स्वसुः (बहनके) शिशून् (नवजात बालकोंको) निहतवान् (मार डाला) ॥ १७ ॥

अनुवाद—हाय! केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, बल्कि देवता भी झूठ बोलते हैं। पापात्मा मैंने उनके वचनोंपर विश्वास करके बहिनके बालकोंको मार डाला। ओह! मैं कितना जघन्य पापी हूँ॥ १७॥

मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतं भुजः।

जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥ १८ ॥

अन्वयः—महाभागौ (आपलोग परम विवेकवान हैं, इसलिए) [आप दोनों] स्वकृतं भुजः (अपने प्रारब्ध कर्मफलको भोग करनेवाले) आत्मजान् (पुत्रोंके लिए) मा शोचतं (शोक न करें) [क्योंकि] दैवाधीनाः (कर्माधीन) जन्तवः (जीव समुदाय) सदा (नित्यकाल) एकत्र (परस्पर मिलकर) तदा न आसते (कभी नहीं रह सकते)॥ १८॥

अनुवाद—हे महाभाग दम्पति! तुम दोनों बड़े महात्मा हो। उन शिशुओंको तो अपने प्रारब्धके अनुरूप कर्मका फल मिला है। अतः उनके लिए शोक मत करो। प्राणी दैवके वशमें होनेके कारण सर्वदा एकत्र नहीं रह पाते॥ १८॥

सारार्थदर्शिनी—भुज इति, क्विवन्तम्। स्वकृतमिति, षष्ठ्यभाव आर्षः। महाभागाविति। दुर्गादेव्येव आवयोरात्मजाभूत्, किमन्यैः सुतैः स्वकृतभुग्विभरिति विमर्शेन माशोचतम्। किञ्च, विमर्शान्तरमप्याह—जन्तव इत्यादि॥ १८॥

भावानुवाद—‘महाभागौ’—आप दोनों बड़े भाग्यशाली हैं। जब स्वयं दुर्गादेवीने आपकी कन्या-रूपमें जन्म लिया है, तब दूसरे-दूसरे अपने प्रारब्ध कर्मोंका फल भोग करनेवाले सन्तानोंका क्या प्रयोजन है?—ऐसा विचारकर शोक-मोहको भूल जायँ। शोक न करनेका दूसरा विचार भी कह रहे हैं—‘जन्तवः’ आदि अर्थात् सभी प्राणी दैवाधीन होनेसे सर्वदा एक स्थानपर मिलकर रह नहीं सकते॥ १८॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च।

नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥

अन्वयः—भुवि (पृथ्वीमें) भौमानि (घड़ा आदि पार्थिव वस्तुएँ) यथा (जैसे) यान्ति अपयान्ति च (बनती हैं और विनष्ट होती हैं) [वैसे ही] भूतानि (देहोंकी) [उत्पत्ति और विनाश होता है] यथा एव (जैसे) एतेषु (घड़ा आदि पार्थिव वस्तुओंके) [विकृत होनेपर भी] भूः न विपर्येति (पृथ्वीका कोई विकार नहीं होता है) तथा (वैसे ही) [देहादिका विकार होनेपर भी] अयम् आत्मा (इस आत्माका) [कोई विकार नहीं होता है] ॥ १९ ॥

अनुवाद—जिस प्रकार इस लोकमें मिट्टीसे निर्मित घट आदि वस्तुएँ बनती हैं और बिगड़ती हैं, उसी प्रकार पाञ्चभौतिक देह पैदा होता है और विनष्ट होता है। घट आदिके नष्ट होनेपर मिट्टी जिस प्रकार नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार इस पाञ्चभौतिक शरीरके नष्ट होनेपर भी आत्मापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शिनी—आत्मानात्मविवेकेनापि मा शोचतमित्याह—भुवि भूमौ आश्रितानि, भौमानि घटादीनि, आयान्ति जायन्ते, अपयान्ति नश्यन्ति च यथा, तथैव भूतानि देहा एव जायन्ते नश्यन्ति च। तथा, एतेषु—भूतेषु देहेषु, विपरियत्सु—जन्माद्यनेकविकारं प्राप्नुवत्स्वपि, अयं—अपरोक्षतया ज्ञायमान, आत्मा, न विपर्येति—जन्मादिविकाररूपं विपर्ययं नाप्नोति, एकरूप एव वर्तत इत्यर्थः। यथैव भूर्न विपर्येति, भौमेषु घटादिष्वनेकविपर्ययं प्राप्नुवत्स्वपीत्यर्थः ॥ १९ ॥

भावानुवाद—आत्म-अनात्म विवेकके द्वारा भी आपको शोक नहीं करना चाहिये। जैसे मिट्टीसे घट आदि पार्थिव पदार्थ उत्पन्न होते हैं, फिर वे टूट-फूट जाते हैं, वैसे ही पाञ्चभौतिक शरीर पैदा होते हैं और विनष्ट होते हैं। घटादिके नष्ट होनेपर भी मिट्टी जिस प्रकार नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार इस पाञ्चभौतिक शरीरके नष्ट होनेपर भी जीवात्मा स्वयं नष्ट नहीं होती। जीवात्माका जन्म-मरण नहीं होता, वह नित्य है ॥ १९ ॥

यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः।

देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ २० ॥

अन्वयः—यथा (जैसे) अनेवविदः (इस प्रकार नहीं जाननेवालेको) आत्मविपर्ययः (देहात्मबुद्धि होती है) यतः (जिस देहात्मबुद्धिसे) भेदः (भेद अर्थात् 'मैं देह हूँ'—इस अहंकारके द्वारा अपरिच्छिन्न होनेपर भी आत्मामें परिच्छिन्न बुद्धिकर 'यह दूसरा है और यह मैं हूँ'—ऐसा भिन्न होनेका ज्ञान होता है) देहयोग-वियोगौ च (और पुत्रादिके देहसे योग और वियोग होता है) [जब तक ऐसा अज्ञान दूर नहीं होता है, तब तक] संसृतिः (संसार अर्थात् सुख-दुःख) न निवर्तते (दूर नहीं होते हैं) ॥ २० ॥

अनुवाद—जो लोग यथार्थ रूपसे इस तत्त्वको नहीं जानते, वे नश्वर शरीरको ही आत्मा मान बैठते हैं। यह अज्ञान है और इसीसे भेदज्ञान तथा पुत्र आदिके देहके साथ संयोग-वियोग होता है। इस प्रकारके अज्ञानके रहने तक संसार-जनित सुख-दुःखसे छुटकारा नहीं मिलता ॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—‘अनेवम्विदः’—एवं आत्मतत्त्वं, अजानतः; शरीरमेवात्मत्वेन जानत इत्यर्थः। यथा यथावदेव। प्रथमं भेदो भवति; पृथक् पृथक् शरीराण्येव पृथक् पृथगात्मान इति भेदज्ञानं भवतीत्यर्थः। यतो भेदादेव, आत्मनो विपर्ययः—जन्मादिविकाररूपविपर्ययप्राप्तिः; देहजन्म-मरणाभ्यामेवात्मा जातो मृत इति ज्ञानं भवतीत्यर्थः। ततश्च देहैरेव पुत्रादिभिर्योगः सुखकारणं, वियोगो दुःखकारणञ्च, इयमेव संसृतिः ॥ २० ॥

भावानुवाद—(देहका विकार होनेपर भी आत्माका विकार नहीं होता है। जो यथार्थ रूपमें इसे नहीं जानता—उसीकी देहादिमें आत्मबुद्धि होती है एवं उस देहात्मबुद्धिसे भेद ज्ञान होता है।) ‘अनेवम्विदः’—जो आत्मतत्त्वको नहीं जानता है अर्थात् शरीरको ही जो आत्माके रूपमें जानता है। ‘यथा’ अर्थात् यथायथ भावसे नहीं जानता है। पहले ‘भेदः’ अर्थात् अलग-अलग शरीरोंमें अलग-अलग आत्मा होता है, ऐसा भेद ज्ञान होता है। ‘यतः’ अर्थात् जिस भेदज्ञानके द्वारा आत्माका विपर्यय होता है अर्थात् जन्म-मरणादिरूप विपर्यय प्राप्त होता है अर्थात् इस शरीरके जन्म और मरणसे ही आत्माका भी जन्म और मरण होता है—ऐसा ज्ञान होता है। उसके

पश्चात् उस भेदज्ञानसे पुत्रादिके देहके साथ योग सुखका कारण और वियोग दुःखका कारण होता है। यही संसार है। अर्थात् इस प्रकारसे उसके सुख-दुःख-रूप संसारकी निवृत्ति नहीं होती है ॥ २० ॥

तस्माद्भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितानपि ।

मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥

अन्वयः—भद्रे (हे बुद्धिमती देवकी!) तस्मात् (इसलिए शरीर और आत्मामें भिन्नता हेतु) मया व्यापादितान् अपि (मेरे द्वारा विनष्ट किये गये) स्वतनयान् (अपने मृत पुत्रोंके लिए) मा अनुशोच (शोक न करो) यतः (क्योंकि) सर्वः (सभी जीव) अवशः (इच्छा नहीं रहनेपर भी) स्वकृतं (अपना-अपना कर्मफल) विन्दते (भोग करते हैं) ॥ २१ ॥

अनुवाद—हे भद्रे! क्योंकि सारे जीव ही दैववश अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग करते हैं, इसलिए मेरे द्वारा मारे गये अपने पुत्रोंके लिए शोक मत करो ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—तनयान्—देहानामनात्मत्वात् तनयबुद्ध्या तान् बहिर्दृष्ट्या मया हतानपि मानुशोचेत्यर्थः। मया पञ्चभूतात्मका देहा एव हता इति, अतो मय्यपि दोषदृष्टिर्न कार्येति भावः। ममैवमात्मतत्त्वज्ञानं नास्तीति चेत्, तदपि मानुशोचेत्याह—यत इत्यादि। अज्ञानाश्रये कर्मवादेऽप्येवं विचारेण न शोकावकाश इति भावः ॥ २१ ॥

भावानुवाद—‘तनयान्’ अर्थात् देह आत्मा नहीं होनेके कारण बाह्य-दृष्टिसे यद्यपि मैंने तुम्हारे सन्तानोंको मार डाला है, परन्तु अज्ञानकी दृष्टिसे मेरे द्वारा तुम्हारे सन्तानोंका विनाश होनेपर भी ‘मानुशोच’—उनके लिए वृथा शोक मत करो। विशेषकर मैंने पाञ्चभौतिक शरीरोंका विनाश किया है, आत्माका नहीं, इसलिए मुझपर भी दोषदृष्टि रखना उचित नहीं है, यह भाव है। यदि कहो कि मुझे तो वैसा आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं है, तो मैं क्या करूँ? उत्तरमें ‘यत’ आदि श्लोक द्वारा कह रहे हैं कि तब भी शोक मत करो। क्योंकि प्राणीसमूह इच्छा न रहनेपर भी अपने किये हुए

कर्मोंका फलका भोग करता है। यहाँपर अज्ञानके द्वारा कर्मवादको स्वीकार करनेपर भी इस प्रकारके विचारसे शोक करना अनुचित है ॥ २१ ॥

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक्।

तावत् तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥

अन्वयः—अस्वदृक् (आत्मज्ञानहीन व्यक्ति) यावत् (जबतक) हतः अस्मि (मैं दूसरोंके द्वारा मारा गया) हन्ता अस्मि (मैं दूसरोंका विनाश करनेवाला हूँ) इति (इस प्रकार) आत्मानं मन्यते (अपनेको अभिमान करता है) तावत् (तब तक) तदभिमानी (वह देहाभिमानी) अज्ञः (तत्त्व-ज्ञानविहीन जीव) बाध्य-बाध्यकतां (बाध्य-बाध्यकता आदि भावको) इयात् (प्राप्त होता है) [अर्थात् उसके फलस्वरूप शोक मोहादिको प्राप्त करता है] ॥ २२ ॥

अनुवाद—अपने शुद्ध स्वरूपको न जाननेके कारण जीव जब तक यह मानता है कि “मैं मारनेवाला हूँ या मारा जानेवाला हूँ”, तब तक शरीरके जन्म और मृत्युका अभिमान करनेवाला वह अज्ञानी जीव बाध्य और बाधक-भावको प्राप्त होता है। अर्थात् दूसरोंको दुःख देता है और स्वयं भी दुःख भोगता है ॥ २२ ॥

सारार्थदर्शिनी—मम तु त्वत्पुत्रहन्तृत्वमेव तावन्नास्ति, ज्ञानित्वादित्याह—यावदिति। अस्वदृक्—न स्वमात्मानं पश्यति, किन्तु देहमेव पश्यति, अतोऽज्ञः। तेन, मम देहाभिमानाभावात्; ‘हत्वापि स इमान् लोकान् हन्ति न निबध्यते’ (श्रीगी० १८/१७) इति वचनात्; न त्वत्पुत्रहन्तृत्वं, नापि बन्ध इति भावः ॥ २२ ॥

भावानुवाद—मुझमें तुम्हारे पुत्रोंका हन्ता होनेका भाव बिलकुल भी नहीं है, क्योंकि मैं ज्ञानी हूँ, इसे ‘यावत्’ आदि श्लोक द्वारा कह रहे हैं। ‘अस्वदृक्’ अर्थात् जो व्यक्ति आत्माको नहीं जानता, केवल शरीरको ही देखता है, वह मूर्ख है। अर्थात् देहाभिमानी व्यक्ति जब तक मैं मारनेवाला हूँ या मारा जानेवाला हूँ, ऐसा मानता है, तब तक वह अज्ञ है। अतएव वह बाध्य-बाधकताको प्राप्त होता है अर्थात् बाध्य (हत्या जनित पाप) और बाधकता (उस पापका फल)

भोगता है। परन्तु मेरा देह-अभिमान नहीं रहनेके कारण “जिसकी बुद्धि अहंकारमें लिप्त नहीं है, वह समस्त लोगोंको मारकर भी किसीको नहीं मारता है एवं मारनेके फलमें भी आबद्ध नहीं होता है।”—इस गीता (१८/१७) के वचनके अनुसार—मैं तुम्हारे पुत्रोंका हन्ता भी नहीं हूँ तथा उसके फलमें भी आबद्ध नहीं हूँ, यह भाव है ॥ २२ ॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः^(१)।

इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोस्थाग्रहीत् ॥ २३ ॥

अन्वयः—बन्धुवत्सलाः (आत्मीयजनोंके प्रति प्रीतियुक्त) साधवः (शुद्ध हृदयवाले) [तुम दोनों] मम (मैं मूर्ख, पापात्मा हूँ, मेरा) दौरात्म्यं (पुत्र-वध आदि अन्याय आचरणको) क्षमध्वं (क्षमा कर दो) इति उक्त्वा (ऐसा कहकर) अथ (अनन्तर) श्यालः (श्यालक कंसने) अश्रुमुखः (अश्रु व्याप्त नयनोंसे) स्वस्रोः (बहिन और बहनोई अर्थात् देवकी-वसुदेवके) पादौ (चरणोंको) अग्रहीत् (पकड़ लिया) ॥ २३ ॥

अनुवाद—आप दोनों दीन-जनोंके प्रति कृपाशील हैं, अतः मेरी दुष्टताको क्षमा कीजिये। ऐसा कहकर आँखोंसे आँसु बहाते हुए कंसने बहिन एवं बहनोईके चरण पकड़ लिये ॥ २३ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदपि मयि पुत्रहन्तृत्वमारोप्याधिकं चेद्रोदिषि, तर्हि सत्यमहं दुष्ट, एवं बुद्धिपूर्वकं पापमकरवमेव, तत्र निष्कृतिर्युष्मत् कृपैवेत्याह—क्षमध्वमिति। श्यालः—कंसः। स्वस्रोः—द्विवचनानुपपत्त्या स्वसृशब्देन स्वसृपतिर्लक्ष्यते इति, एकः स्वसृशब्दो लक्षकः, अन्यो वाचकः, तयोरेकशेषात् स्वस्रोः—वसुदेव-देवक्योः, पादौ—प्रत्येकं पादं, अग्रहीदित्यर्थः ॥ २३ ॥

भावानुवाद—यद्यपि अज्ञानताके कारण मेरे प्रति पुत्र हत्याका आरोप लगता है, फिर भी यदि मुझपर अपने पुत्रोंकी हत्याका आरोप लगाकर अधिक रोती हो, तब मैं सचमुच ही महादुष्ट और पापी हूँ, जान-बूझकर ही मैंने यह पाप कर्म किया है। अतः इससे छुटकारा पानेके लिए आपलोगोंकी कृपा ही एकमात्र सहारा है—इसे ‘क्षमध्व’

(१) पाठान्तर—बन्धुवत्सलाः

आदि श्लोक द्वारा कह रहे हैं। 'श्यालः' अर्थात् कंस। 'स्वस्रोः'—यहाँ द्विवचन असङ्गत होनेके कारण स्वसृ शब्दसे बहनोईको भी लक्षित किया गया है। एक स्वसृ शब्द लक्षक और दूसरा वाचक है, उनके 'एकशेष' समाससे 'स्वस्रोः' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ—वसुदेव और देवकी है। 'पादौ' अर्थात् उन दोनोंके चरणोंको पकड़ लिया, यह अर्थ है ॥ २३ ॥

मोचयामास निगडाद् विश्रब्धः कन्यकागिरा।

देवकीं वसुदेवञ्च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—[कंस] कन्यकागिरा (पूर्व दृष्ट आकाशगामिनी देवीके वाक्योंमें) विश्रब्धः (विश्वासकर) आत्मसौहृदं (प्रिय वचनोंके द्वारा अपना बन्धुभाव) दर्शयन् (प्रकट करता हुआ) देवकीं वसुदेवञ्च (देवकी और वसुदेवको) निगडात् (लौह शृंखलाओंसे) मोचयामास (मुक्त किया) ॥ २४ ॥

अनुवाद—तदनन्तर योगमायाके वचनोंपर विश्वासकर कंसने इस प्रकार आत्मीयता दिखलाकर देवकी एवं वसुदेवजीको बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥ २४ ॥

सारार्थदर्शिनी—निगडात्—लोह-शृङ्खलात् ॥ २४ ॥

भावानुवाद—'निगडात्' अर्थात् लोह-जंजीरोंसे वसुदेव-देवकीको कंसने मुक्त किया।

भावप्रकाशिका वृत्ति—उस आकाश-गामिनी अष्टभुजा महादेवीके मेघके समान गम्भीर नादसे कंसको डौंट-डपटकर अन्तर्हित होनेपर कंस अतिशय विस्मय-सागरमें निमग्न हो गया। वह मन-ही-मन सोचने लगा—बड़े आश्चर्यकी बात है कि देवकीके गर्भसे साक्षात् दुर्गादेवीने जन्म ग्रहण किया। तब तो मेरी किसी भी प्रकार रक्षा सम्भव नहीं है। मैंने देवकी और वसुदेवके प्रति कितना अत्याचार किया है। उन्हें कारागारमें डालकर उनके बहुत-से पुत्रोंको मार डाला। उनका कितना तिरस्कार किया, कितनी पीड़ा दी। वे

अष्टभुजा देवी क्या मुझको क्षमा करेंगी? मैं उनके माता-पिताका शत्रु हूँ। वे निश्चित ही मुझे समुचित दण्ड प्रदान करेंगी। न जाने, कौन-से पुण्य-प्रतापके कारण अभी भी मेरी मृत्यु नहीं हुई है। उन अष्टभुजाके हाथोंमें मैंने जिन दिव्यास्त्रोंको देखा, उनमेंसे यदि वे किसी एक अस्त्रका भी प्रहार करें तो अनुचरों सहित हम सबको मारकर यमके भवनमें भेज देंगी। उनके एक ही पदाघातसे मैं अधमरा हो गया। अतः जैसे भी हो, अब देवकी और वसुदेवको किसी प्रकारसे प्रसन्न करना मेरा परम कर्तव्य है। क्योंकि उनकी कृपासे यदि मेरे प्राणोंकी रक्षा हो जाय तो अच्छा है, नहीं तो दूसरा कोई उपाय नहीं दीखता है।

कंस तब विलम्ब न कर कारागारमें जा पहुँचा तथा देवकी-वसुदेवको मुक्त करते हुए विनीत भावसे कहने लगा—बहिन देवकी! बहनोई वसुदेवजी! आपलोग महात्मा हैं। मेरे जैसा महापापी विश्व ब्रह्माण्डमें कोई नहीं है। मैंने राक्षसकी भाँति आपके बहुतसे बच्चोंकी हत्या की है।

प्राचीन कालमें राक्षस अपने बच्चोंको खा जाते थे। एक दिन पार्वतीने किसी राक्षसको अपने शिशु-सन्तानको खाते हुए देखा। तब उन्होंने अनुग्रहकर उन बच्चोंकी जीवन-रक्षाके लिए कहा—आजसे राक्षस-बालक जन्म लेनेके साथ-साथ पूर्ण अवयवयुक्त तथा प्रचुर बलशाली होंगे। उस दिनसे राक्षस अपने बच्चोंको खा नहीं पाते हैं। क्योंकि कंसने अपने बहनके बच्चोंका विनाश किया है, इसलिए वह अनुत्पन्न होकर मन-ही-मन कहने लगा—मैंने राक्षसकी भाँति बालकोंकी हत्या की है। बहनके और अपने सन्तानमें भेद न करते हुए कंसने अपनेको राक्षसतुल्य कहा है। अपने तुच्छ प्राणोंकी ममतासे मेरे हृदयसे धर्मबुद्धि दूर हो गयी थी। वसुदेवजी मेरे बहनोई हैं, देवक मेरे चाचाजी हैं, यादवगण मेरे बन्धु-बान्धव हैं, परन्तु मैंने किसीके साथमें सद्भावना नहीं रखी। या किसीकी अपेक्षा भी नहीं की, इच्छानुरूप पापकर्म किये। न जाने मरनेके बाद मेरी कौनसे नरकमें गति होगी। ब्रह्मघाती महापापीका महारौरव आदि नरकोंमें भोगसे पापसे निष्कृति होती है, परन्तु मेरे स्पर्शसे तो नरक भी दूषित हो

जायेगा। मेरे इस जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं है। मैं जीवित होकर भी मृत हूँ। अपने परम आदर तथा स्नेहकी पात्री बहन देवकीके विवाह-उत्सवमें मैं जब स्वयं रथ चलाकर उसे पतिके गृहमें छोड़ने जा रहा था, ऐसे समयमें दैववाणी सुनकर यह जान पाया कि, देवकीके आठवें गर्भका सन्तान मुझे मारेगा। उसके पश्चात् नारदसे भी यह सुना कि देवताओंने मुझे जानसे मारनेके लिए षड्यन्त्रकर यदुकुलमें जन्म ग्रहण किया है एवं मेरे पूर्व शत्रु विष्णु देवकीके आठवें गर्भसे जन्म ग्रहणकर मुझे मार डालेगा। प्राणोंकी ममता सबके लिए स्वाभाविक है। इसलिए मैं प्राणोंके भयसे भीत होकर लोक और परलोककी अपेक्षा न कर इस महा पापाचरण और आत्मीय-जनोंके द्रोहमें प्रवृत्त हुआ।

मेरी धारणा थी कि मानव जरूरत पड़नेपर झूठ बोलता है, परन्तु देवता कभी झूठ नहीं बोलते हैं। 'सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः'—ऐसा श्रुति-वाक्य है। परन्तु अब देख रहा हूँ कि देवता भी झूठ बोलने लगे हैं। मैंने भी दैववाणीमें विश्वासकर कितना भयङ्कर कुर्म किया। बिना कारण ही अपनी बहनकी सन्तानोंको मार डाला।

बहिर्मुख जीवोंका स्वभाव यह है कि जब तक सामर्थ्य है, तब तक वे किसी प्रकार झुकते नहीं हैं। जब उनके सामर्थ्यसे बाहरकी बात हो जाती है, तब वे झुकते हैं। तब उनकी धर्म-बुद्धि दीखती है। अपने किये पापोंके लिए उनके मनमें विचार आता है और उनके लिए उन्हें पश्चाताप भी होता है। कंस आकाश-गामिनी अष्टभुजा देवीको देखकर समझ गया कि करोड़ों कंस मिलकर उनके कटाक्ष-बाणका वेग भी सहन नहीं कर सकते। इसलिए कंस अब वसुदेव-देवकीके समीप झुक गया, उसकी धर्म-बुद्धि प्रकाशित हुई एवं वह अपने किये हुए पापोंके लिए अनुताप करने लगा।

कंसने अपने किये हुए पापोंके लिए अनुताप करते हुए देवकी और वसुदेवके निकट तत्त्वकथा कहना प्रारम्भ कर दिया। 'आत्माका विनाश नहीं है' 'एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है और सब कुछ मिथ्या है'। ऐसी तत्त्वकथा बहिर्मुख जीवोंको अतीव रोचक और सुखकर प्रतीत होती है। वे अपने पापाचरणको ढकनेके लिए इन सब तत्त्वकथाओंका

प्रयोग करते हैं। आवश्यक पड़नेपर दूसरोंको उपदेश भी दिया करते हैं। परन्तु स्वयं कभी भी उसका पालन नहीं करते हैं। शत्रुतावशतः किसीको भी मार सकते हैं या अपनी जिह्वाकी तृप्तिके लिए जीवोंकी हत्या कर देते हैं। बहिर्मुख जीव ऐसा कहता है—‘आत्माका विनाश नहीं है, कोई किसीका वध नहीं कर सकता है। सबकुछ ब्रह्ममय है’। वह स्वयं अधर्ममें आसक्त रहकर भी बड़ा धार्मिक बन जाता है। छल-कौशलसे दूसरोंका धन आदि हरण करनेके बाद बहिर्मुख व्यक्तियोंका तत्त्वज्ञान उदय होता है—एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, अपना-पराया भेद-ज्ञान करना अज्ञान-कल्पित है।

इस समय कंसका भाव भी ऐसा ही है। जब उसने दैववाणीसे सुना था कि देवकीके अष्टम गर्भका सन्तान उसका प्राणनाश करेगा, तब उसे ‘आत्माका विनाश नहीं है’ यह तत्त्वकथा स्मरण नहीं थी। परन्तु देवकीके छह सन्तानोंकी हत्याकर उसने उपदेश देना आरम्भ कर दिया कि ‘आत्माका विनाश नहीं है’, ‘सभी अपना-अपना कर्मफल भोग करते हैं, कोई किसीका वध नहीं कर सकता, कोई किसीका अनिष्ट भी नहीं कर सकता।’

कंस देवकी और वसुदेवसे कहने लगा—हे वसुदेवजी! हे बहन देवकी! तुम लोगोंको क्या कहूँ, तुम लोग तो परम बुद्धिमान हो। जीवके जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख—सभी तत्त्वोंको जानते हो। तुम्हारे बहुत-से पुत्र मारे गये हैं, उनके लिए शोक या दुःख मत करो, क्योंकि जीवमात्र ही अपने-अपने कर्मके अनुरूप फलका भोग करते हैं। पुत्र, कन्या, पिता, माता आदिके साथ चिरकाल तक एक साथ निवास करना सम्भव नहीं है। अपने-अपने कर्मफलसे कौन कहाँ जाता है, यह कोई निर्णय नहीं कर सकता है।

मिट्टिसे घट आदिकी उत्पत्ति होती है एवं फिर उनका विनाश होता है, परन्तु घट आदिकी उत्पत्ति और विनाशसे मिट्टिकी उत्पत्ति या विनाश नहीं होता है। इसी प्रकार आत्माका भी बहुत-से देहोंके साथ संयोग और वियोग होता है, परन्तु उससे आत्माका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। जो आत्माको अविनाशी नहीं जानता, वह देहको ही आत्मा समझता है।

कंसने देवकीको और भी कहा—देवकी! तुम बाल्यकालसे ही परम बुद्धिमती हो, विशेषकर परम धार्मिक वसुदेवजीके संसर्गवशतः तुम्हारा हृदय धर्मभावमें डूबा हुआ है। मैं तुम्हें और क्या समझाऊँ? यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मार दिया है, फिर भी तुम उनके लिए शोक मत करो। क्योंकि सबको अपना-अपना कर्मफल भोगना पड़ता है। आत्मा कुछ भी नहीं करता है या आत्माका कुछ भी नहीं बिगड़ता है। जो आत्मतत्त्व नहीं जानते, वे ही 'वह व्यक्ति मेरा वध करेगा', 'मैं उस व्यक्तिका वध करूँगा' आदि-आदि रूपोंमें आत्माको ही वध्य एवं वधकर्त्ता मानते हैं। यथार्थ रूपमें आत्मा वध्य नहीं है और वधकर्त्ता भी नहीं है। अर्थात् आत्माका कोई वध नहीं कर सकता और आत्मा भी किसीका वध नहीं करता है। जब तक आत्माके स्वरूपका अनुभव नहीं होता है, तब तक देहमें आत्मबुद्धि रहती है।

बहिर्मुख-चूड़ामणि कंसने देवकी-वसुदेवको बहुत-सी तत्त्वकथाएँ सुनायीं, परन्तु अपनी ओर नहीं देखा कि मैं इन लोगोंको जो कुछ उपदेश दे रहा हूँ—उसके ठीक विपरीत ही मेरा व्यवहार है। वसुदेव-देवकी चुपचाप बहिर्मुखके मुखसे तत्त्वकथा सुन रहे थे, परन्तु उन्होंने कंसकी किसी भी बातका उत्तर नहीं दिया। जो तत्त्वज्ञ होते हैं, वे बहिर्मुख-व्यक्तियोंके विषयमें अच्छी प्रकारसे जानते हैं। बहिर्मुख व्यक्ति मुखसे बहुत तत्त्वकथा कह सकते हैं, परन्तु व्यवहारमें ही उनकी परीक्षा हो जाती है।

वसुदेव-देवकीको चुपचाप सुनते देखकर कंस मन-ही-मन विचार करने लगा। मेरी इतनी तत्त्वकथासे इनका हृदय द्रवित नहीं हुआ, क्योंकि मैंने इनपर बहुत आत्याचार किये हैं। इनके मुझपर प्रसन्न नहीं होनेसे मेरे जीवनकी रक्षाकी कोई सम्भावना नहीं है। क्योंकि आकाश-गामिनी अष्टभुजा देवी इन्हींकी कन्या हैं। वे निश्चय ही अपने पिता-माताके प्रति किये गये अमानविक अत्याचारोंका बदला लेंगी। तब कंस दूसरा कोई उपाय न देखकर दोनोंसे कहने लगा—हे वसुदेवजी! हे बहन देवकी! तुमलोग अति पवित्र हृदयवाले हो, तुम्हारे हृदयमें द्वेष, हिंसा, क्रोध आदि कभी भी स्थान नहीं पा

सकते हैं। तुमलोग बन्धुवत्सल हो अर्थात् आत्मीय-स्वजनोंके प्रति तुम्हारा प्रगाढ़ प्रेम है, इसलिए उनका कोई दोष ग्रहण नहीं करते हो। मैंने तुम्हारे प्रति घोर अत्याचार किया है, तुमलोग मेरे अपराधको क्षमा कर दो। यह कहकर कंसने रोते हुए दोनोंके पैर पकड़ लिये।

उस आकाश-गामिनी अष्टभुजा दुर्गाकी बातोंसे कंसको यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि उसके पूर्वशत्रु विष्णुने किसी-न-किसी स्थानमें जन्म ग्रहण कर लिया है। दुर्गादेवीने वसुदेव, देवकी और यादवोंपर अत्याचार करनेको निषेध किया था। अतः कंस उनका आदेश पालन करनेके लिए प्रस्तुत हो गया, क्योंकि उससे उसके जीवनकी रक्षा हो सकती थी। इसलिए कंसने तत्काल ही वसुदेव और देवकीकी हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ खोलकर उन्हें कारागारसे मुक्त कर दिया और अनेक प्रकारके मधुर वचनोंसे उनके प्रति आत्मीयता और प्रीतिपूर्ण व्यवहार दिखाने लगा ॥ १४-२४ ॥

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च^(१) देवकी।

व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥

अन्वयः—देवकी (श्रीदेवकीने) समनुतप्तस्य (बहनके पुत्रोंके वधका स्मरणकर सम्यक् रूपसे अनुतप्त) भ्रातुः (भाई कंसको) क्षान्त्वा (क्षमा करती हुई) रोषञ्च (उसके प्रति क्रोध और शोक) व्यसृजत् (त्याग दिया) वसुदेवश्च (और वसुदेवजीने) प्रहस्य (हँसते हुए) तं (उस कंसको) ह उवाच (स्पष्ट रूपसे कहा) ॥ २५ ॥

अनुवाद—देवकीने अत्यन्त अनुतप्त भाईको क्षमा कर दिया। वे उसके अपराधोंको भूल गयीं। तब वसुदेवजी हँसकर कंससे कहने लगे ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—भ्रातुरपराधं क्षान्त्वा, रोषं शोकञ्च ॥ २५ ॥

भावानुवाद—अनुतप्त भ्राता कंसका अपराध क्षमाकर, देवकीने क्रोधका परित्याग किया तथा पुत्रोंके लिए शोक भी त्याग कर दिया ॥ २५ ॥

(१) पाठान्तर—क्षान्त्वा रोषञ्च

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम्।

अज्ञानप्रभवाहंभीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥

अन्वयः—महाभाग (हे ज्ञानी!) [तुम] यथा (जैसा) वदसि (कह रहे हो) एतत् (तुम्हारा यह वचन) एवं (यथार्थ ही है) देहिनां (देहधारियोंकी) अहं भीः (देह आदिमें आत्मबुद्धि) अज्ञानप्रभवा (भ्रान्तिमूलक ही है) यतः (जिस आत्मबुद्धिके कारण) स्वपरेति (यह अपना, वह पराया—ऐसी) भिदा (भेदबुद्धि होती है) ॥ २६ ॥

अनुवाद—हे महाभाग! 'देहधारियोंकी 'अहम्' बुद्धि आत्मतत्त्व विषयक अज्ञानसे उत्पन्न है'—तुमने यह जो कहा है, वह वस्तुतः सत्य है। क्योंकि, उस 'अहं' बुद्धिसे ही अपना और पराया विषयक भेद ज्ञान हुआ करता है ॥ २६ ॥

सारार्थदर्शिनी—यतः अहंधिय एव हेतोः; अयं स्वः, अयं पर इति भिदा। 'सह सुपा' (पा० २/१/४) इति समासः ॥ २६ ॥

भावानुवाद—'यतः'—'अहं' बुद्धिके ही कारण, मनुष्योंकी यह अपना है, यह पराया है—ऐसी भेदबुद्धि हुआ करती है ॥ २६ ॥

शोकहर्षभयद्वेष-लोभमोहमदान्विताः ।

मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥

अन्वयः—पृथग्दृशः (आत्मासे भिन्न देहमें आत्मदृष्टि—सम्पन्न व्यक्ति) शोक-हर्ष-भय-द्वेष-लोभ-मोह-मदान्विताः (शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मदसे युक्त होकर) भावैः (राजा, व्याघ्र, और बीमारी आदिके रूपमें) भावं (मनुष्य, गाय, अश्व आदिको) मिथः (परस्परमें) घ्नन्तं (संहारकारी कालरूपी ईश्वरको) न पश्यन्ति (देख नहीं पाते हैं) ॥ २७ ॥

अनुवाद—भेदबुद्धि-परायण जीव शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह एवं मदसे युक्त होकर परस्परमें निमित्त-स्वरूप पदार्थोंके द्वारा पदार्थोंके विनाशकर्ता (अर्थात् निमित्त-स्वरूप राजा, शेर, रोगादिके

द्वारा मनुष्य, गाय, अश्व आदिके विनाशका कारण-स्वरूप) परमेश्वरको जान नहीं पाता है (अहंकार विमूढ़ व्यक्ति अपनेको कर्त्ता मानता है, इसलिए ईश्वरका कर्त्तृत्व देख नहीं पाता है) ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी—मिथः परस्परं, भावैः नृपव्याघ्ररोगादिभिः, भावं मनुष्यगवाशवादिकं, घनन्तं ईश्वरमिति शेषः। पृथग्दृशो बहिर्दृष्टयः ॥ २७ ॥

भावानुवाद—‘मिथः’ अर्थात् परस्परमें, ‘भावैः’ अर्थात् राजा, शेर, रोगादि द्वारा, ‘भाव’ अर्थात् मनुष्य, गाय, घोड़े आदिका, ‘घनन्तं’ अर्थात् विनाश करनेवाले ईश्वरको देख नहीं पाता है। ‘पृथग्दृशः’ अर्थात् बाह्य दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच—

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः।

देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेवजीने कहा) प्रसन्नाभ्यां (प्रसन्न चित्त) देवकी-वसुदेवाभ्यां (देवकी और वसुदेव) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) विशुद्धं (निष्कपट भावसे) प्रतिभाषितः (कंससे आदर सहित सम्भाषणकर) अनुज्ञातः (घर जानेके लिए आदेश देनेपर) कंसः (कंस) गृहं (अपने वासस्थानको) अविशत् (चला गया) ॥ २८ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—देवकी एवं वसुदेवजीके प्रसन्न होकर इस प्रकारके वचनोंसे निष्कपट रूपसे कंसको सान्त्वना देनेपर कंस उनकी अनुमति लेकर अपने भवनमें चला गया ॥ २८ ॥

सारार्थदर्शिनी—विशुद्धं—अकपटं यथा स्यात्। विस्रब्धमिति पाठे सविश्वासम् ॥ २८ ॥

भावानुवाद—‘विशुद्धं’ अर्थात् अकपट रूपसे। ‘विस्रब्धम्’ पाठ होनेसे अर्थ होगा—विश्वास-सहित ॥ २८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—कंस ‘परोपदेशमें पाण्डित्य’ का प्रकाशकर वसुदेव और देवकीको जब तक तत्त्वकथा सुना रहा था, तब तक

वे भी कुछ न कहकर चुपचाप सुन रहे थे। परन्तु कंस जब वसुदेव-देवकीके चरण पकड़कर रोने लगा, तब वे लोग उसे क्षमा किये बिना रह नहीं सके। श्रीभगवान् जैसे अपने चरणोंमें शरणागत व्यक्तिका अपराध क्षमा करते हैं, भक्तोंका भी वैसा ही स्वभाव होता है। वे भी अपने आश्रित जनोंका अपराध क्षमा करते हैं। देवकीने कंसके सभी अपराधोंको क्षमा कर दिया। अब उनके हृदयमें उसके प्रति क्रोधका लेश भी नहीं रहा। जीवमात्र अपना कर्मफल भोग करता है, अतएव मृत पुत्रोंके लिए शोक करना निरर्थक है—ऐसा सोचकर उन्होंने पुत्रशोकका भी विसर्जन कर दिया।

वसुदेवजीने कंससे कहा—श्रीभगवान्का स्वरूप न जानना ही अज्ञान है। उसी अज्ञानवशतः जीवकी देहमें आत्मबुद्धि होती है एवं स्त्री, पुत्र, परिजन आदि जिनके साथ देहका सम्बन्ध होता है, उन्हींको जीव अपना आत्मीय मानता है। उनके अतिरिक्त उसके लिए सभी पराये हो जाते हैं। भगवान्के चरणोंमें शरणागत होनेपर उनकी कृपासे ही अज्ञानकी निवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त अज्ञान-निवृत्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

आत्माका जन्म-मरण नहीं है—यह सत्य है, परन्तु आत्माके साथ जड़देहके योग-वियोगमें जन्म-मृत्युका व्यवहार होता है। श्रीभगवान्की कृपासे अज्ञानताकी निवृत्ति नहीं होनेपर कोई भी इस व्यवहारकी उपेक्षा नहीं कर सकता है तथा इसके सुख-दुःखसे कोई मुक्त नहीं हो सकता है।

‘नायं हन्ति न हन्यते’—श्रुति अर्थात् कोई भी जीव किसी भी जीवका वध नहीं कर सकता है एवं किसीके द्वारा वधको प्राप्त भी नहीं होता है—यह मिथ्या नहीं है। परन्तु किसीकी गर्दन काट लेनेसे उसका प्राण-वियोग नहीं होगा या उससे कोई पाप नहीं लगेगा—यह शास्त्रका तात्पर्य नहीं है। प्राणोंका वियोग होनेसे देहका विनाश होता है, परन्तु उससे अविनश्वर आत्माका विनाश नहीं होता है।

यथार्थ रूपमें जीवका कोई भी कर्तृत्व नहीं है, भगवान् ही सबके कर्ता हैं। वे जीवोंमें परस्पर वध्य और घातक-भाव उत्पन्न कराकर काल रूपमें संहार करते हैं। सर्पके दंशनसे एक व्यक्तिकी

मृत्यु देखकर हम सर्पको घातक एवं मनुष्यको मारा गया है, ऐसा मानते हैं; परन्तु यथार्थ रूपमें हमारे प्रारब्ध कर्मके फलदाता भगवान्की प्रेरणासे ही सर्प दंशन करता है और मनुष्य मरता है। अज्ञानसे अन्ध जीव शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह, मद आदि मानसिक विकारोंके वशीभूत होकर श्रीभगवान्का कर्तृत्व न समझकर अपने ऊपर कर्तृत्वका भार लेकर सुख-दुःखमें विजड़ित हो जाता है।

वसुदेव और देवकी, अपने कारावास एवं पुत्रनाश आदिको अपने-अपने कर्मफलके अनुसार भगवान्का ही दान मानकर कंसके प्रति अप्रसन्न नहीं हुए। इसलिए उन्होंने सादर और विश्वासपूर्ण सम्भाषणके द्वारा कंसको प्रसन्नकर प्रायः रात्रिका अन्तिम काल आया देखकर कंसको घरमें लौट जानेका आदेश दिया। कंसने भी कुछ आश्वस्त होकर अपने राजभवनके लिए प्रस्थान किया ॥ २५-२८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चतुर्थ अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः।

तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥

अन्वयः—तस्यां रात्र्यां (भाद्र कृष्णाष्टमी रजनीके) व्यतीतायां (बीतनेपर) कंसः (कंसने) मन्त्रिणः (केशी-प्रलम्ब-चाणूर आदिको) आहूय (बुलाकर) योगनिद्रया (योगमायाके द्वारा) यत् उक्तं ('तुम्हारा अन्त करनेवाला अन्यत्र जन्म ले चुका है'—ऐसा जो कहा गया) तत् सर्वं (उस सम्पूर्ण विवरणको) तेभ्यः (उन मन्त्रियोंके निकट) आचष्ट (कह सुनाया) ॥ २९ ॥

अनुवाद—तत्पश्चात् उस रात्रिके बीत जानेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर 'तुम्हारा विनाशक किसी अन्य स्थानपर पैदा हो गया है' आदि वचन योगमायाने जैसे कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥ २९ ॥

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।
देवान् प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥

अन्वयः—देवान् प्रति कृतामर्षाः (देवताओंके प्रति द्वेष-भाव सम्पन्न) देवशत्रवः (देवताओंके वैरी) नातिकोविदाः (परिणामको दर्शन करनेमें असमर्थ) दैतेयाः (देत्यगण) भर्तुः (स्वामी कंसके) गदितं (वाक्यको) आकर्ण्य (श्रवणकर) तं (कंसको) ऊचुः (कहने लगे) ॥ ३० ॥

अनुवाद—अपने स्वामी कंसकी बातोंको सुनकर देव-द्वेषी, केवलमात्र आँखोंसे देखे जानेवाले विषयोंके सम्बन्धमें विचक्षण होनेके कारण अनिपुण, देव-द्रोही असुर मन्त्रिगण देवताओंपर और भी चिढ़ गये और कंससे कहने लगे ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—नातिकोविदाः, न कोविदा इत्यर्थः । अति इत्यनधिकार्थम् ॥ ३० ॥

भावानुवाद—कंसके मन्त्रिगण 'नातिकोविदाः' अर्थात् निपुण नहीं थे। 'अति' शब्दका अर्थ यहाँ पूर्ण रूपसे है अर्थात् वे सब असुर थे, इसलिए असत् विषयोंमें बड़े निपुण थे, परन्तु यथार्थ विषयमें पूर्ण रूपसे अनिपुण थे ॥ ३० ॥

एवं चेत् तर्हि भोजेन्द्र^(१) पुरग्रामव्रजादिषु ।
अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—राजेन्द्र (हे महाराज कंस!) एवं चेत् (योगमाया कथित वाक्य यदि ऐसा ही है) तर्हि (तब) पुरग्रामव्रजादिषु (पुर-ग्राम-व्रज आदि सभी स्थानोंमें) [स्थित] अनिर्दशान् (दश दिनसे कम आयुके) च (तथा) निर्दशान् (दस दिनसे अधिक आयुके) शिशून् (बच्चोंको) अद्य वै (आज ही) हनिष्यामः (मार डालेंगे) ॥ ३१ ॥

अनुवाद—हे भोजराज! यदि वस्तुतः ऐसा ही है, तो हम आज ही नगर, ग्राम एवं जनपदोंमें जन्मे, चाहे दस दिनोंसे कमके हों या अधिकके, सारे शिशुओंको मार डालेंगे ॥ ३१ ॥

(१) पाठान्तर—राजेन्द्र

सारार्थदर्शिनी—अनिर्दशान्—दशदिनेभ्यो न निर्गतान्, निर्गतांश्च ॥ ३१ ॥

भावानुवाद—निकटके गाँव, नगर और ब्रजमें जितने भी बच्चे दस दिनसे अधिकके हों या दस दिनसे कमके, उन सबको मार दिया जायेगा ॥ ३१ ॥

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः।

नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥

अन्वयः—तव धनुषः ज्याघोषैः (आपके धनुषकी टंकारसे) नित्यं (सदैव) उद्विग्नमनसः (अस्थिरचित्त) समरभीरवः (युद्धसे डरनेवाले) देवाः (देवतागण) उद्यमैः (युद्धका उद्यम करके भी) किं करिष्यन्ति (क्या कर लेंगे) ॥ ३२ ॥

अनुवाद—देवतालोग तो युद्ध-भीरु अर्थात् युद्धके विषयमें डरपोक हैं। वे सर्वदा आपके धनुषकी टंकारसे ही उद्विग्न रहते हैं। अतः वे अपने प्रयासोंसे आपका क्या बिगाड़ लेंगे? ॥ ३२ ॥

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः।

जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—अस्यतः (बाण चलाते समय) ते (तुम्हारे) शरव्रातैः (निक्षिप्त बाणोंके द्वारा) हन्यमानाः (सर्वाङ्ग क्षत-विक्षत होकर) जिजीविषवः (प्राणरक्षाकी आशासे) पलायनपरा (भागनेवाले) ते (वे देवतागण) उत्सृज्य (रण छोड़कर) समन्ततः (इधर-उधर) ययुः (दौड़ते रहते हैं) ॥ ३३ ॥

अनुवाद—युद्धभूमिमें आपके बाणोंकी वर्षासे घायल होकर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए समरभूमिको छोड़कर देवतालोग इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३३ ॥

सारार्थदर्शिनी—अस्यतः—विध्यतः सतः। उत्सृज्य—रणं त्यक्त्वा ॥ ३३ ॥

भावानुवाद—‘अस्यतः’—आपके बाणोंसे देवतागण घायल होकर जीवनकी रक्षाके लिए इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३३ ॥

केचित् प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः।

मुक्तकच्छशिखाः केचिद्धीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—केचित् दिवौकसः (कोई-कोई देवता) दीनाः (दुर्बल होकर) न्यस्तशस्त्राः (अस्त्र-शस्त्र छोड़कर) प्राञ्जल्यः (हाथ जोड़कर) केचित् मुक्तकच्छशिखाः (कोई बिखरे हुए बालोंसे और कोई खिसकते हुए वस्त्रोंसे) भीताः स्म इति वादिनः ('हम डरे हुए हैं'—ऐसा कहकर) [आपकी शरण लेते हैं] ॥ ३४ ॥

अनुवाद—कुछ देवतालोग तो भयभीत होकर अस्त्र-शस्त्र त्यागकर आपके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं, तो कुछ अन्य देवता अपनी चोटीके बाल तथा कच्छ खोलकर आपकी शरणमें आकर कहते हैं—“हम आपसे भयभीत हैं, हमारी रक्षा करें ॥” ३४ ॥

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान् विरथान् भयसंवृतान्।

हंस्यन्यासक्तविमुखान् भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—त्वं (आप) विस्मृतशस्त्रास्त्रान् (भयसे अस्त्र-शस्त्र चलाना भूल चुकनेवाले) विरथान् (रथ-भ्रष्ट) भयसंवृतान् (भयसे विह्वल) अन्यासक्तविमुखान् (युद्धको छोड़कर अन्य प्रयोजनमें आसक्तिके कारण युद्धसे विमुख) भग्नचापान् (टूटे धनुषवाले) [और] अयुध्यतः (युद्धसे विरत) [देवताओंको] न हंसि (मारते नहीं हैं) ॥ ३५ ॥

अनुवाद—आप भी उस समय रथ-रहित, अस्त्र-शस्त्रोंको भूले हुए, भयभीत, विषयासक्त होनेके कारण युद्धसे विमुख, टूटे धनुषवालों एवं युद्धसे विरत देवताओंका वध नहीं करते ॥ ३५ ॥

सारार्थदर्शिनी—तव धार्मिकत्वमेव तेषां वृद्धौ हेतुरित्याहुः—न त्वमिति। तेनातःपरं धार्मिकत्वं त्यज्यताम्, धर्मस्य नायं काल इति भावः ॥ ३५ ॥

भावानुवाद—हे महाराज! उन देवताओंके बढ़नेका कारण आपकी धर्म-परायणता है। इसे 'न त्वम्' इत्यादि श्लोकके द्वारा कह

रहे हैं। इसलिए अब इस धार्मिक भावनाको छोड़ दें। अभी धर्म करनेका समय नहीं है, यह भाव है ॥ ३५ ॥

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः।
रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा।
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ ३६ ॥

अन्वयः—क्षेमशूरैः (अपने घरमें ही वीरता दिखलानेवाले) असंयुगविकत्थनैः (रणक्षेत्रको छोड़कर अन्यत्र युद्धकी चपलता दिखलानेवाले) विबुधैः (देवताओंके द्वारा) किं (क्या हो सकता है?) रहोजुषा (तुम्हारे भयसे निर्जन स्थानमें रहनेवाले) हरिणा (विष्णु) किं (क्या कर सकता है?) वनौकसा (वनवासी) शम्भुणा (शङ्कर) वा (क्या कर सकता है?) अल्पवीर्येण (हीनबल) इन्द्रेण (देवराज) किं (क्या कर सकता है?) तपस्यता (तपोनिष्ठ) ब्रह्मणा (चतुरानन ब्रह्मा) वा (क्या कर सकता है?) ॥ ३६ ॥

अनुवाद—देवतालोग तो बस युद्धक्षेत्रसे अलग जहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा न हो, वहीं बड़ी-बड़ी डींगें हाँकते हैं और निर्भय प्रदेशमें ही वीरताका प्रकाश कर सकते हैं, ऐसे देवताओंसे हमें क्या भय? विष्णु सर्वदा समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें ही एकान्तमें वास करता है, शिव सर्वदा वनमें ही रहता है, इन्द्र नितान्त ही दुर्बल है एवं ब्रह्मा सदैव तपस्यामें रत रहता है; अतः हमें उनसे कोई भय नहीं है ॥ ३६ ॥

सारार्थदर्शिनी—वयन्तु तेभ्यः कदापि न बिभीम इत्याहुः—क्षेमे निर्भये देशे, शूरैः। संयुगादन्यत्रैव, विकत्थनं प्रौढिवादो, येषां तैः। न च हरेः शम्भोर्वा भेतव्यं, तयोरपि त्वत्तुल्यबलत्वाभावात्, इत्याहुः—रहोजुषेति। 'यदि बलं स्यात्, तदा किमिति प्रकटीभूय न युद्धयते? किमिति लोकानामन्तःकरणेषु प्रविश्य निहृत्यत?' इति भावः। वनौकसा पुरुषप्रवेशरहितमिलावृतवनमोको यस्य, तेन ॥ ३६ ॥

भावानुवाद—महाराज! आप ही केवल डर रहे हैं, किन्तु हमलोग तो उनसे कभी डरते नहीं हैं, इसे कहनेके लिए 'क्षेमशूरैः' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'क्षेम' अर्थात् निर्भय प्रदेशमें 'शूरैः' अर्थात्

जिनकी शूरता है। जो देवता रणभूमि छोड़कर एकान्त निर्जन स्थानमें जाकर अपना वीरत्व प्रकाश करते हैं एवं स्त्रियोंके समीप अपने-अपने शौर्य-वीर्य आदिका बखान करते हैं, ऐसे देवताओंसे क्या डर? और हरि या शम्भुसे भी डरनेकी कोई बात ही नहीं है। उनका बल पौरुष भी आपके जैसा नहीं है। जो आपके भयसे सदा एकान्त स्थानोंमें छिप-छिपकर रहते हैं। “यदि उनमें बल होता, तो वे सामने आकर क्यों नहीं युद्ध करते? क्यों लोगोंके अन्तःकरणमें प्रवेशकर छिपा करते हैं?”, यह भाव है। ‘वनौकसा’ अर्थात् शम्भु तो आपके भयसे पुरुष-प्रवेशसे रहित ‘इलावृत’ नामके किसी जङ्गलमें जाकर छिपा हुआ है। जहाँ कोई पुरुष प्रवेश करनेपर वह स्त्री बन जाता है। ऐसे सब छिपनेवाले, वन-जङ्गलमें रहनेवालोंसे किस बातका भय है? ॥ ३६ ॥

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे।

ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—तथापि (यद्यपि देवता अति तुच्छ हैं, फिर भी) देवाः सापत्न्यात् (देवता स्वाभाविक शत्रु होनेके कारण) न उपेक्ष्याः (अल्प बलशाली होनेपर भी उपेक्षाके विषय नहीं) इति मन्महे (ऐसा हम समझते हैं) ततः (अतएव) तन्मूलखनने (देवताओंको जड़से उखाड़नेके लिए) अनुव्रतान् (आपके अनुगत) अस्मान् (हमलोगोंको) नियुङ्क्व (नियुक्त करें) ॥ ३७ ॥

अनुवाद—तथापि देवताओंकी उपेक्षा करना उचित नहीं है, यह हमारी राय है। क्योंकि आखिरकार वे हमारे शत्रु ही हैं। अतः उन्हें जड़से ही उखाड़नेके लिए हम—जैसे विश्वासपात्र सेवकोंको नियुक्त कीजिये ॥ ३७ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदपि, ‘क्षुद्रा अपि शत्रवो नोपेक्षणीया’ इति नीतिशास्त्रीति-रनुसरणीयैव, इत्याहुः—तथापीति ॥ ३७ ॥

भावानुवाद—ऐसा होनेपर भी, ‘तुच्छ शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये’—इस नीति-शास्त्रकी रीतिका अनुसरण करना ही चाहिये, इसीलिए ‘तथापि’ इत्यादि श्लोक कह रहे हैं ॥ ३७ ॥

यथामयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-
 र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम्।
 यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा,
 रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥

अन्वयः—यथा अङ्गे (जैसे शरीरमें) नृभिः (मनुष्योंके द्वारा) समुपेक्षितः (चिकित्सा नहीं करनेसे या कुपथ्य आदि भोजनसे उपेक्षित) आमयः (व्याधिके) रूढपदः (अपनी जड़ जमा लेनेपर) चिकित्सितुं (औषध आदि प्रयोग करके भी उसका प्रतीकार) न शक्यते (नहीं किया जा सकता) [तथा] यथा इन्द्रियग्रामः (जैसे चक्षु आदि इन्द्रियाँ) उपेक्षितः (पहले वशीभूत न करनेपर बादमें वशीभूत करने योग्य नहीं रहतीं) तथा रिपुः (वैसे ही शत्रु भी) बद्धबलः (बलसे युक्त होकर) महान् (बड़ जाता है) न चाल्यते (तब उसे पराजित नहीं किया जा सकता) ॥ ३८ ॥

अनुवाद—जब मनुष्यके शरीरमें कोई रोग हो जाता है और उसकी चिकित्सा नहीं की जाती—उसकी उपेक्षा कर दी जाती है, तो वह रोग अपनी जड़ जमा लेता है और फिर वह असाध्य हो जाता है। अथवा जैसे प्रारम्भमें इन्द्रियोंकी उपेक्षा करनेपर बादमें उनका दमन असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार यदि शत्रुको दुर्बल जानकर पहले उसकी उपेक्षा कर दी जाय, तो बादमें उसके अधिक शक्ति संचयकर प्रबल होनेपर उसे हराना कठिन हो जाता है ॥ ३८ ॥

सारार्थदर्शिनी—रूढपदः—बद्धमूलः ॥ ३८ ॥

भावानुवाद—‘रूढपदः’ अर्थात् जड़ जमा लेता है।

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः।

तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—विष्णुः हि (विष्णु ही) देवानां (इन्द्रादि देवताओंका) मूलं (मूल है अर्थात् विष्णुको आश्रय करके देवता जीवित हैं) यत्र सनातनः (जहाँ अनादि कालसे अविच्छिन्न रूपसे सम्प्रदाय एवं वेद

विहित) धर्मः (वर्णाश्रमधर्मका अनुष्ठान किया जाता है) [वहींपर विष्णु अवस्थान करते हैं] तस्य च (और उस धर्मके) ब्रह्म-गो-विप्राः (वेद, गाय और ब्राह्मण) तपः (स्वधर्म आचरण) सदक्षिणाः यज्ञाः (काम्य कर्म आदि) [मूल हैं] ॥ ३९ ॥

अनुवाद—विष्णु ही देवताओंका मूल है। जहाँ वेद-प्रसिद्ध सनातन-धर्म होता है, वह वहीं पर निवास करता है। वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या एवं दक्षिणासे युक्त यज्ञादि उस धर्मके मूल-स्वरूप हैं ॥ ३९ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘धर्मः सनातनः’ इति धर्म एव तं जीवयन्, तस्य मूलमित्यर्थः। तस्य धर्मस्य, मूलं वेदादयः ॥ ३९ ॥

भावानुवाद—‘धर्मः सनातनः’—धर्म ही विष्णुको जीवित रखता है अर्थात् विष्णुका मूल है। देवताओंका मूल विष्णु है। वह विष्णु जहाँ है, वहाँ अनादि-सिद्ध सनातन-धर्म भी है और उस धर्मका मूल वेद आदि हैं ॥ ३९ ॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः।

तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥

अन्वयः—राजन् (हे महाराज!) तस्मात् (इन्हीं कारणोंसे) ब्रह्मवादिनः (वेदोंके उपदेशक) तपस्विनः (स्वधर्म आचरण-परायण) यज्ञशीलान् ब्राह्मणान् (यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको) हविर्दुघाः गाश्च (और यज्ञके लिए दूध देनेवाली गायोंको) सर्वात्मना (सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ) हन्मः (वध करेंगे) ॥ ४० ॥

अनुवाद—हे राजन्! इसलिए हमलोग सब प्रकारसे वेदज्ञ ब्राह्मणों, याज्ञिक तपस्वियों एवं यज्ञके लिए घी आदि प्रदायिनी गायोंका सम्पूर्ण रूपसे विनाश कर डालेंगे ॥ ४० ॥

सारार्थदर्शिनी—तेषामपि मध्ये ब्राह्मणवधेनैव सर्वे नङ्क्ष्यन्तीत्याहुः—तस्मादिति। किञ्च, यज्ञानां कारणं हविः, तस्य गाव इति ताश्च वध्या इत्याहुः—गाश्चेति ॥ ४० ॥

भावानुवाद—उनमेंसे भी ब्राह्मणोंका वध करनेसे ही सभी विनष्ट हो जायेंगे, इसलिए 'तस्मात्' आदि श्लोक कह रहे हैं। यज्ञके लिए हविकी आवश्यकता है। वह हवि (घी) गायोंके बिना नहीं हो सकता है। अतएव वे गायें भी वध्य है, इसलिए 'गाश्च' आदि पद कह रहे हैं ॥ ४० ॥

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः।

श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—विप्राः (ब्राह्मण) गावः च (दूध देनेवाली गायें) वेदाः च (वेद) तपः (स्वधर्म आचरण) सत्यं (यथार्थ भाषण) दमः (मनका निग्रह) शमः (इन्द्रियोंका निग्रह) श्रद्धा (शास्त्र-वाक्योंमें विश्वास) दया (समस्त जीवोंमें दया) तितिक्षा च (क्षमा) क्रतवश्च (और यज्ञ) हरेः (विष्णुके) तनूः (शरीर हैं) ॥ ४१ ॥

अनुवाद—ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, सहिष्णुता एवं यज्ञ—ये सब विष्णुके शरीर हैं ॥ ४१ ॥

सारार्थदर्शिनी—ब्राह्मणवध एव तस्य शरीरपातो भावीत्याहुः—विप्रा इति ॥ ४१ ॥

भावानुवाद—ब्राह्मणोंका वध होनेसे ही विष्णुका भी विनाश होगा, इसे 'विप्राः' आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं ॥ ४१ ॥

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड्गुहाशयः।

तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः।

अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—स हि (विष्णु ही) सर्वसुराध्यक्षः (समस्त देवताओंका अधिपति) असुरद्विट् (दैत्योंकी हिंसा करनेवाला) गुहाशयः (निर्जनमें वास करनेवाला) [तथा] सेश्वराः (इन्द्रादि लोकपालोंके सहित) सचतुर्मुखाः (ब्रह्मा-रुद्र आदिके साथ) सर्वाः देवताः तन्मूलाः (समस्त देवताओंका मूल या प्रधान है) ऋषीणां यत् विहिंसनं (ऋषियोंका जो

विनाशका साधन है) अयं वै (यही निश्चित रूपमें) तद्वधोपायः (उस विष्णुके वधका उपाय है) ॥ ४२ ॥

अनुवाद—सबके हृदय-गुफामें अन्तर्यामीरूपमें छिपकर रहनेवाला वह विष्णु ही दैत्योंका प्रधान शत्रु है एवं वही समस्त देवताओंका प्रधान नायक है। शिव एवं ब्रह्माके साथ सभी देवता उसी विष्णुको आश्रय करके रहते हैं। इन ऋषि-मुनियोंको मार डालना ही उस विष्णुके वधका उपाय-स्वरूप है ॥ ४२ ॥

सारार्थदर्शिनी—ऋषीणां विहिंसनमिति, सर्वमूलस्य विष्णोरपि मूलत्वादिति भावः ॥ ४२ ॥

भावानुवाद—‘ऋषीणां विहिंसनम्’ कहनेका यह भाव है कि सबके मूल विष्णुके भी मूल ये ऋषीगण हैं। अतएव इन ऋषियोंका विनाश होनेसे विष्णुका भी विनाश होगा। क्योंकि उनके विनाश होनेसे यज्ञादिके अभावमें विष्णुकी कोई सत्ता नहीं रहेगी ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः।

ब्रह्मर्हिसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेवजीने कहा) कालपाशावृतः (जिसकी मृत्यु अति सन्निकट आ चुकी है, ऐसे) दुर्मतिः (मन्दबुद्धि) असुरः (आसुरिक स्वभाववाला) कंसः (कंसने) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) दुर्मन्त्रिभिः (दुष्टबुद्धिवाले प्रलम्ब आदि असुरोंके साथ) सम्मन्त्र्य (विचारकर) ब्रह्मर्हिसां (गो, ब्राह्मण आदिका विनाश करना ही) हितम् (अपना हितकारी है) मेने (ऐसा समझा) ॥ ४३ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—काल-पाशमें आबद्ध दुर्मति दैत्य कंसने दुष्ट मन्त्रियोंके साथ इस प्रकार परामर्श करके स्थिर किया कि याज्ञिक ब्राह्मणोंका वध ही उसके मङ्गलका उपाय है ॥ ४३ ॥

सन्दिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान्।

कामरूपधरान् दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—साधुलोकस्य (निरीह स्वभाववाले ब्राह्मणादिका) कदने (उत्पीड़न करनेमें) कदनप्रियान् (दूसरोंका द्रोहाचरण-परायण) कामरूपधरान् (स्वेच्छासे विविधरूप धारण करनेमें समर्थ) दानवान् (असुरोंको) दिक्षु (विविध दिशाओंमें) सन्दिश्य (उपर्युक्त कार्यके लिए भेजकर) गृहम् आविशत् (अपने घरमें प्रवेश किया) ॥ ४४ ॥

अनुवाद—इसके बाद कंसने दूसरोंको कष्ट देना ही जिन्हें प्रिय है एवं जो इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं, ऐसे दानवोंको सर्वत्र सज्जनोंके उत्पीड़नके लिए आदेश देकर अपने महलमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।

सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—रजःप्रकृतयः (रजोगुण-प्रधान स्वभाववाले) तमसा (तमोगुणके द्वारा) मूढचेतसः (कार्य-अकार्यके विवेकसे रहित) आरात् आगतमृत्यवः (आसन्न मृत्युवाले) ते वै (कंस-प्रेरित दैत्यगण) सतां (साधुओंके प्रति) विद्वेषं (हिंसाका) आचेरुः (आचरण करने लगे) ॥ ४५ ॥

अनुवाद—आसन्न मृत्यु, तमोगुणके कारण हिताहित विवेकरहित, रजोगुण स्वभाववाले कंसके अनुचरोंने तत्काल सज्जनोंका उत्पीड़न करना आरम्भ कर दिया ॥ ४५ ॥

सारार्थदर्शिनी—भीतं राजानमाश्वासयति—आरादित्यादिना ॥ ४५ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम् ।

चतुर्थो दशमे स्कन्धे सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता

चतुर्थोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ ४ ॥

भावानुवाद—भयभीत राजा परीक्षितको 'आरात्' आदि श्लोकके द्वारा आश्वासन प्रदान कर रहे हैं। जो दानवगण साधुओंके प्रति विद्वेष करने लगे उनकी मृत्यु अति सन्निकट है, क्योंकि सत्यका विद्वेष करनेपर मृत्यु अनिवार्य है ॥ ४५ ॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके चतुर्थ अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चतुर्थ अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अन्वयः—महदतिक्रमः (महान् पुरुषोंकी मर्यादाका उल्लंघन)
पुंसः (करनेवालेकी) आयुः (जीवन) श्रियं (सम्पद) यशः (ख्याति)
धर्मं (पुण्य) लोकान् (पारलौकिक फल) आशिषः एव च (और
भौतिक सुख) [अधिक क्या] सर्वाणि श्रेयांसि (ऐहिक-पारलौकिक
समस्त प्रकारके मङ्गल) हन्ति (नाश हो जाते हैं) ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चतुर्थ अध्यायका
अन्वयः समाप्त।

अनुवाद—हे राजन्! साधुओंका उत्पीड़न करनेसे उत्पीड़नकारीकी
आयु, सौभाग्य, यश, धर्म, लोक-परलोक, समस्त मङ्गल एवं समस्त
शुभ विषय विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चतुर्थ अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चम अध्यायका कथासार

प्रस्तुत अध्यायमें श्रीनन्द महाराजका अपने पुत्रका जन्म महोत्सव सम्पादन करनेके पश्चात् मथुरा जाकर वहाँ वसुदेवके साथ मिलन आदि घटनाओंका वर्णन हुआ है।

श्रीकृष्णका आविर्भाव होनेके कारण ब्रजमें सर्वत्र ही आनन्दका उत्सव प्रवाहित होने लगा एवं ब्रज सर्वसमृद्धियोंसे परिपूर्ण हो गया। ब्रजराजने महानन्दमें विभोर होकर अपने पुत्रका जातकर्मादि संस्कार समाप्तकर महामहोत्सवका अनुष्ठान किया। जिसने जो अभिलाषा की, नन्द महाराजने उसे वही प्रदानकर सबकी यथोचित पूजा सम्पन्न की। तदनन्तर गोपगणोंको गोकुलकी रक्षामें नियुक्तकर नन्द महाराज कंसको वार्षिक कर प्रदान करनेके लिए मथुरा गये। वहाँ नन्द महाराजके द्वारा कर आदि कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो गये हैं, यह जानकर वसुदेव नन्द महाराजसे मिलने आये एवं भ्राता नन्दके सौभाग्यकी प्रशंसाकर उनसे उनके पुत्र कृष्ण-सहित ब्रजकी सर्वविध कुशलवार्त्ताके विषयमें पूछा। नन्द महाराजने ब्रजकी कुशलवार्त्ताके विषयमें बतलाकर वसुदेवको सान्त्वना देते हुए एवं देवकीके गर्भजात पुत्रोंके अप्राकट्यपर दुःख प्रकट करते हुए कहा—अदृष्ट ही सुख-दुःखका कारण है, जो इस विषयको जानते हैं उन्हें अधिक दुःखी नहीं होना पड़ता। नन्द महाराजके वाक्योंको सुनकर वसुदेव प्रसन्न हो गये। तदनन्तर गोकुलमें नाना प्रकारके उपद्रवोंकी सम्भावनाको जानकर वसुदेवने नन्द महाराजसे और अधिक विलम्ब न कर शीघ्र ही ब्रजमें लौट जानेको कहा। नन्द महाराज भी वसुदेवसे विदा लेकर गोपगणोंके साथ बैलगाड़ीसे गोकुलकी ओर चल पड़े।

पञ्चमोऽध्यायः

नन्द बाबाका पुत्र-जन्मोत्सव सम्पन्नकर मथुरा गमन
और वहाँ वसुदेवजीसे मिलन

श्रीशुक उवाच—

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥ १ ॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) महामनाः (उदारचित्त) नन्दः (श्रीनन्द महाराजने) तु (किन्तु) आत्मज (पुत्रका) उत्पन्ने (जन्म होनेपर) जाताह्लादः (प्रफुल्लित-चित्तसे) स्नातः (स्नानकर) शुचिः (वैष्णव तिलक, आचमन आदि द्वारा विशेष रूपसे पवित्र) [तथा] अलङ्कृतः (अलंकृत होकर) वेदज्ञान् (वेदविद्) विप्रान् (ब्राह्मणोंको) आहूय (बुलाकर) स्वस्त्ययनं (माङ्गलिक सूक्तविशेषका) वाचयित्वा (पाठ कराकर) विधिवत् (यथाविधि) आत्मजस्य (पुत्रका) जातकर्म (जन्मान्तर कर्तव्य-कार्य) तथा (एवं) पितृदेवार्चनं (पितरों तथा देवताओंका नान्दीमुख श्राद्धरूपी अर्चन) कारयामास (कराया) ॥ १-२ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—श्रीकृष्णके पुत्ररूपमें जन्म लेनेपर उदारचित्त श्रीनन्द महाराज अतिशय आनन्दित हुए। उन्होंने स्नान, शुद्ध और अलंकृत होकर वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन कराकर यथाविधि पुत्रका जातकर्म एवं देवताओं और पितरोंका अर्चन कराया ॥ १-२ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

कृष्णजन्मोत्सवो दातुं करं श्रीमथुरागमः।

नन्दस्य वसुदेवेन संलापः पञ्चमेऽभवत्॥

‘नन्दः तु’ इति तुकारेण—वसुदेव आत्मजे उत्पन्ने जाताह्लादोऽपि कंसभयात् सङ्कुचितमना जातकर्मादिकं कर्तुं न प्राभूत्, नन्दस्तु आत्मजे उत्पन्ने जाताह्लादो महामना अतिविस्मितमनाः स्वस्तिवाचनपूर्वकं जातकर्म कारयामास—इति तुकारादेवैतन्मात्रे वसुदेवाद्भेदे प्राप्ते नन्दगृहेऽपि कृष्णस्योत्पत्तिः श्रीमन्मुनीन्द्राभिप्रेतावगम्यते। ‘गर्भकाले त्वसम्पुर्णं’ इति पूर्वोक्तेर्वैशम्पायनसम्मतापि। न च तुकारोऽत्र पादपूरणार्थं इति वाच्यम्; ‘नन्द आत्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः’ इति विनापि तुकारेण पादपूर्तः। न च तदपि तुकारोऽनर्थक एव, आत्मनो जात आत्मजस्तस्मिन्निति जनिधातुप्रयोगादेवाभीप्सितसिद्धेरिति वाच्यम्; ‘उपगृह्णात्मजामेवम्’ (श्रीमद्भा० १०/४/७) इत्यत्रानौरसापत्येऽप्यात्मजशब्दप्रयोगात्।

किञ्च, नाडीच्छेदात्पूर्वमेव जातकर्मोपक्रमश्रवणात् नाडीच्छेदश्च गर्भजत्वं विना कथं सम्भवेत्? किञ्च, कृष्णस्य नन्दपुत्रत्वे खलु नैकधा प्रयोगः, किन्तु बहव एव, न ते सर्व एवामुख्यार्थी भवितुमर्हन्ति। तथाहि—‘अदृश्यतानुजा विष्णोः’ (श्रीमद्भा० १०/४/९) इति, ‘प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः’ (श्रीमद्भा० १०/८/४४) इति, ‘नौमीड्य ते’ इत्यादौ ‘पशुपाङ्गजाय’ (श्रीमद्भा० १०/१४/१२) इति, ‘देहिनां गोपिकासुतः’ (श्रीमद्भा० १०/९/२१) इति, गौतमीये ‘बल्लवीनन्दनं वन्दे’ इति, क्रमदीपिकायामपि ‘देवतासकललोकमङ्गलो नन्दगोपतनयः समीरितः’ इति, मन्त्रेऽपि ‘नन्दपुत्रपदं डेऽन्तम्’ इत्यादयः।

केचित्तु, कृष्णस्य वसुदेवपुत्रत्व-विजयसखत्व-रुक्मिणीकान्तत्वादिभ्योऽपि प्रेम-मिश्रसम्बन्धमूलकेभ्यः सकाशात् नन्दपुत्रत्व-सुबलसखत्व-गोपीकान्तत्वानि प्रेमैकमूलकानि कृष्णस्य नन्दाद्यतिवश्यत्वव्यञ्जकान्यार्यवचनपरःशतेन महानुभाव-सहस्रानुभवेन च परमोत्कृष्टानि, इत्यतस्तादृशभावतारतम्येनैव तत्तद्व्यपदेशतारतम्यम्; अन्यथा, वराहदेवस्य ब्रह्मपुत्रत्वं, कृष्णस्य चोत्तरागर्भगतत्वेनोत्तरापुत्रत्वमपि प्रसिद्धयेतेति ब्रुवाणा यशोदागर्भ-जातत्वाभावमेव स्वाभीष्टसाधकं मन्यन्ते।

न च नन्दयशोदयोः कृष्णे स्वपुत्रत्वबुद्ध्यैव तत्रापि सम्बन्धस्य उपाधित्वं वाच्यम्; न हि वस्तुशक्तिर्बुद्ध्यै पराहन्यत इति न्यायात्। न हि निर्हेतुकः प्रेमा हेतुबुद्ध्यैव सहेतुको भवति, न हीश्वरे जीवबुद्ध्यैवेश्वरो जीवो भवति। किन्तु, कृष्णस्य मृद्वक्षणादावनृतभाषणस्यापि सत्यत्वमेव; कृष्णप्रियपरिकराणामपि ज्ञानभाषणादेरनृतस्यापि सत्यत्वं आत्मारामैरप्युपादेयत्वं, उपास्यत्वं, प्रेमप्रदत्वञ्चेति सिद्धान्तः।

जाताह्लाद इति—पुत्रेण सहाह्लादोपि जात इति सहोक्त्यलङ्कारः, पुत्रव्याजे-
नाह्लाद एव जात इत्युत्प्रेक्षा च। कारयामास इति, आह्लादोत्थ-जाड्येन स्वयं
करणासामर्थ्यात् ॥ १-२ ॥

भावानुवाद—इस पाँचवें अध्यायमें श्रीकृष्णका जन्मोत्सव, राजस्व
कर प्रदानके लिए श्रीनन्द महाराजका मथुरा गमन तथा श्रीवसुदेवके
साथ उनके वार्त्तालापका वर्णन हुआ है।

‘नन्दः तु’ अर्थात् किन्तु श्रीनन्द महाराजने भी—यहाँ ‘तु’ कारका
प्रयोग होनेसे—श्रीवसुदेवके पुत्रके उत्पन्न होनेपर आनन्दित होनेपर भी
कंसके भयसे संकुचित-चित्त होनेके कारण वे जातकर्म आदि कुछ भी
नहीं कर सके, किन्तु श्रीनन्द महाराज अपने पुत्रके जन्म ग्रहण
करनेपर परमानन्दित होते हुए ‘महामनाः’ अर्थात् अतिशय विस्मयचित्तसे
स्वस्तिवाचनपूर्वक जातकर्म आदि संस्कारोंका सम्पादन कराया—इस
प्रकार ‘तु’ कारके प्रयोग मात्रसे श्रीवसुदेवसे श्रीनन्द महाराजका
वैशिष्ट्य या पार्थक्य दिखाये जानेके कारण श्रीनन्द महाराजके गृहमें
भी श्रीकृष्णका जन्म होना श्रीशुकदेव गोस्वामीका अभिप्राय समझा
जाता है। “गर्भकालके पूर्ण होनेसे पहले ही आठवें महीनेमें यशोदा
और देवकी—दोनों ही एकसाथ श्रीकृष्णको जन्म दिया”—इस प्रकार
पिछले अध्यायमें कहे गये श्रीहरिवंशके इस वचनके अनुसार यह
विचार श्रीवैशम्पायनके द्वारा भी स्वीकृत होना जानना होगा। यहाँ ‘तु’
कार केवल पाद-पूरणके लिए ही नहीं है। क्योंकि, केवलमात्र ‘नन्द
आत्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः’ अर्थात् श्रीनन्द महाराज पुत्रके
उत्पन्न होनेपर आनन्दित और विस्मित-चित्त हुए—इस प्रकार बिना
‘तु’ कारके ही पादपूर्ति हो सकती है। ‘आत्मज’—आत्मासे ‘जात’
अर्थात् उत्पन्न होनेवाला आत्मज है, इस प्रकार ‘जनि’ धातुके प्रयोगसे
ही उद्देश्य-सिद्धि होनेके कारण यहाँ ‘तु’ कारका प्रयोग अनर्थक है,
ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि, श्रीमद्भागवत (१०/४/७)
में—“देवकीने यशोदाकी उस कन्याका आलिङ्गन किया”—आदि
स्थानोंमें अपने गर्भसे उत्पन्न सन्तान न होनेपर भी ‘आत्मज’ शब्दका
प्रयोग देखा जाता है।

फिर नाड़ी-छेदनसे पहले ही जातकर्म संस्कारका विधान होनेसे, बिना गर्भसे जन्म लिए नाड़ी-छेदन भी कैसे सम्भव हो सकता है?

फिर, 'श्रीकृष्ण नन्दबाबाके पुत्र हैं'—इस विषयमें केवल दो-एक बार ही उल्लेख नहीं है, अपितु बहुत बार उल्लेख हुआ है, अतः वे सब प्रमाण अप्रधान नहीं हो सकते। जैसे—“श्रीकृष्णकी कनिष्ठ (छोटी) बहन योगमायादेवी कंसके हाथोंसे निकलकर आकाशमें अष्टभुजादेवीके रूपमें दृष्टिगोचर हुई” (श्रीमद्भा० १०/४/९)। “तुम्हारा यह पुत्र पहले कभी वसुदेवका पुत्र हुआ था” (श्रीमद्भा० १०/८/४४) नामकरणके प्रसङ्गमें गर्गाचार्यकी उक्ति। ब्रह्मस्तुतिमें 'नौमीड्य' आदि श्लोक (श्रीमद्भा० १०/१४/१) में कहा गया है—‘पशुपाङ्गजाय’—‘पशुप’ अर्थात् गायोंका पालन करनेवाले श्रीनन्द बाबाके ‘अङ्ग’ अर्थात् आत्मासे उत्पन्न अर्थात् श्रीनन्दनन्दनके कोमल चरणोंमें मैं प्रणत होता हूँ। “यह गोपिका-सुत (यशोदानन्दन) भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके लिए जैसे सुलभ हैं, वैसे दूसरोंके लिए नहीं हैं” (श्रीमद्भा० १०/९/२१)। गौतमीय तन्त्रमें कहा गया है—“बल्लवीनन्दनकी वन्दना करता हूँ”, क्रमदीपिकामें भी कहा गया है—“समस्त लोकोंके मङ्गलस्वरूप श्रीनन्दगोपके पुत्र श्रीनन्दनन्दनका देवताओंने दर्शन किया।” इस प्रकार श्रीकृष्णके नन्दनन्दन होनेके विषयमें बहुत प्रमाण हैं।

‘प्रेममिश्र सम्बन्ध-मूलक वसुदेवपुत्रत्व, विजयसखत्व, रुक्मिणी-कान्तत्व आदिकी अपेक्षा एकमात्र प्रेममूलक नन्दपुत्रत्व, सुबलसखत्व, गोपीकान्तत्व आदिमें श्रीकृष्णकी श्रीनन्द महाराज आदिके प्रति अतिशय प्रेमवश्यता देखी जाती है। इस प्रकार सैकड़ों महाजन-वचनों तथा महानुभावोंके हजारों अनुभवोंसे श्रीकृष्णके नन्दनन्दन होनेमें परमोत्कर्षता देखी जाती है। इसलिए वैसे भाव-तारतम्यसे ही उन-उन व्यपदेश (नामों) का तारतम्य देखा जाता है। अन्यथा, वराहदेवको ब्रह्माका पुत्र और उत्तराके गर्भमें प्रविष्ट श्रीकृष्णकी उत्तरापुत्रके रूपमें प्रसिद्धि होती—ऐसा कहते हुए कोई-कोई श्रीकृष्णके यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होनेके अभावको ही अपने अभीष्ट-साधकके रूपमें विवेचना करते हैं।

श्रीनन्द-यशोदाका श्रीकृष्णके प्रति अपना पुत्र होनेकी बुद्धिवशतः ही उस सम्बन्धका उपाधित्व है—यह भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि न्यायके अनुसार वस्तुशक्ति कभी भी बुद्धिके द्वारा पराजित नहीं होती है। इसके अतिरिक्त भी, निर्हेतुक प्रेम हेतुबुद्धिसे ही कभी सहेतुक नहीं बन जाता या ईश्वरमें जीवबुद्धि करनेसे ही ईश्वर कभी जीव नहीं बन जाते। किन्तु, श्रीकृष्णकी मिट्टी खाना आदि लीलामें उनका मिथ्या भाषणका भी सत्यत्व ही है, कृष्णप्रिय परिकरोंके ज्ञान-भाषणसे भी मिथ्यावचनोंका सत्यत्व आत्मारामगणोंके लिए भी उपादेय-स्वरूप, उपास्य-स्वरूप और प्रेम देनेवाला है—यही सिद्धान्त है।

‘जाताह्लादः’ कहनेसे पुत्रके साथ आह्लाद भी उत्पन्न हुआ—इस प्रकार ‘सहोक्ति’ अलङ्कार और पुत्रके बहाने आह्लाद ही मानो उत्पन्न हुआ—ऐसा ‘उत्प्रेक्षा’ अलङ्कार भी प्रकाशित हुआ है। ‘कारयामास’—आनन्दजनित जड़तावशतः नन्द महाराजने स्वयं जातकर्म-संस्कार आदि करनेमें असमर्थ होनेके कारण वेदज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा पुत्रके जातकर्म आदि संस्कार पूर्ण करवाये ॥ १-२ ॥

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते।

तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघ-शातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥

अन्वयः—[उन्होंने] समलङ्कृते (शृङ्ग सोनेसे, खुर चाँदीसे, पीठ ताँमेसे, छाती काँसेसे विभूषित) नियुते (बीस लाख) धेनूनां (बछड़ोंके साथ दूध देनेवाली गायें) रत्नौघ-शातकौम्भाम्बरावृतान् (रत्नोंका समूह और स्वर्ण-सूत्रसे खचित वस्त्रोंसे ढककर) सप्त (सात) तिलाद्रीन् (तिलपर्वत) विप्रेभ्यः (ब्राह्मणोंके लिए) प्रादात् (दान दिये) ॥ ३ ॥

अनुवाद—उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्र-रत्नादि आभूषणोंसे विभूषित बीस लाख गायें तथा रत्नों और सुनहरे वस्त्रोंसे आवृत सात तिलपर्वत प्रदान किये ॥ ३ ॥

सारार्थदर्शिनी—नियुते—विंशतिलक्षाणि, ‘एकं दशशत सहस्राण्ययुतं प्रयुतानि लक्षमथ नियुतम्’ इति क्षीरस्वामी। तिलाद्विपरिमाणमुक्तं भविष्योत्तरे—‘उत्तमो दशभिर्द्रौणै-

मध्यमः पञ्चभिर्मतः। त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः॥ 'द्रोणसंख्या च—'खारीद्रोणाढकाः प्रस्थाः कुडवञ्च पलं पिचुः। शाणको मासकश्चेति यथापूर्व चतुर्गुणाः॥' इति॥ ३॥

भावानुवाद—श्रीनन्द महाराजजीने 'नियुते' अर्थात् बीस लाख गायें ब्राह्मणोंको दान दे दी। वे सारी गायें स्वर्ण अलङ्कारोंसे विभूषित थीं। इसके अतिरिक्त रत्न और स्वर्ण-जड़ित वस्त्रोंके द्वारा आच्छादित सात तिलके पर्वत भी दान दिये। क्षीरस्वामी पादने नियुतका लक्षण इस प्रकार वर्णन किया है—“दस सौ में एक हजार, दस हजारमें एक अयुत, दस अयुतमें एक लाख एवं दस लाखमें एक नियुत होता है।” भविष्योत्तरपुराणमें तिलाद्रिका परिमाण इस प्रकार कहा गया है—“तिलपर्वत दस द्रोण परिमाण होनेपर उत्तम, पाँच द्रोण मध्यम और तीन द्रोण होनेपर कनिष्ठ कहा जाता है।” और 'द्रोण' की संख्या भी इस प्रकार कही गयी है—“खारी, द्रोण, आढक, प्रस्थ, कुडव, पल, पिचु, शोणक और माषक यथापूर्व चारगुणा है।” (२५६ पलमें एक द्रोण एवं चार तोलामें एक पल होता है)॥ ३॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया।

शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया॥ ४॥

अन्वयः—द्रव्याणि (भूमि आदि पदार्थसमूह) कालेन (समयसे) स्नान-शौचाभ्यां (स्नान और शौचके द्वारा) संस्कारैः (गर्भाधान-जातकर्म आदि संस्कारके द्वारा) तपसा (तपस्याके द्वारा) इज्यया (यज्ञानुष्ठानके द्वारा) दानैः (सत्पात्रमें समर्पणके द्वारा) [और] सन्तुष्ट्या (सन्तोषसे) शुध्यन्ति (पवित्र होते हैं) आत्मा (जीव) आत्मविद्यया (परमात्माके स्वरूपज्ञानके द्वारा) [शुद्ध होता है]॥ ४॥

अनुवाद—हे राजन्! कालके द्वारा भूमि आदि द्रव्य, स्नानके द्वारा देह आदि, शौचके द्वारा अपवित्र वस्तुसे लिप्त द्रव्यादि, संस्कारोंके द्वारा गर्भ आदि, तपस्याके द्वारा इन्द्रियादि, पूजाके द्वारा ब्राह्मणादि, दानके द्वारा धन आदि, सन्तोष द्वारा मन एवं आत्मविद्या अर्थात् स्वरूपज्ञान अथवा भगवद्भक्तिके द्वारा ही आत्मा विशुद्ध होती है॥ ४॥

सारार्थदर्शिनी—आवश्यकस्य विविधदानादियुक्त-जातकर्मणा गर्भशोधकस्य प्राक् बालकस्य दृष्टान्तान् दीपकालङ्कारेणाह—कालेनेति। कालादिभिर्द्रव्याणि शुध्यन्ति। तत्र कालेन वत्मादीनि, स्नानेन देहादीनि, शौचेनामेध्यलिप्ताङ्गादीनि, संस्कारैर्गर्भादीनि, तपसा इन्द्रियादीनि, इज्यया ब्राह्मणादीनि, दानैर्धनादीनि, सन्तुष्ट्या मनः, आत्मात्मविद्यया परमात्मनः स्वरूपानुभवेन जीवः॥ ४॥

भावानुवाद—आवश्यक विधिके अनुसार दान आदिसे युक्त जातकर्म संस्कारके द्वारा बालककी गर्भशुद्धि दिखायी जा रही है। इसलिए यहाँ उदाहरण प्रस्तुतकर दीपकालंकारसे प्रति-नियत द्रव्योंका शोधन किया जाना बतलाया गया है। ‘कालेन’ इत्यादि अर्थात् कालके द्वारा भूमि आदि द्रव्य, स्नानके द्वारा देह, शौचसे अमेध्यसे लिप्त अंग आदि, संस्कारके द्वारा गर्भ आदि पवित्र होते हैं, तपस्याके द्वारा इन्द्रिय आदिकी शुद्धि होती है, यज्ञके द्वारा ब्राह्मणादि पवित्र होते हैं, दानके द्वारा धन आदिकी शुद्धि होती है, सन्तोषके द्वारा मनकी शुद्धि होती है, ‘आत्मात्मविद्यया’ अर्थात् परमात्माके स्वरूपज्ञान या भगवद्भक्तिके द्वारा आत्मा अर्थात् जीवात्मा पवित्र होता है॥ ४॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितके समक्ष जिस प्रकार श्रीकृष्ण-जन्मलीलाका वर्णन किया—उससे प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण—वसुदेव-देवकीके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होकर नन्दालयमें गये। उनका नन्दालयमें जानेका विवरण वसुदेव-देवकीके अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं जानता है और नन्द-यशोदाने भी वसुदेवके पुत्रको अपना पुत्र जानकर लालन-पालन करना प्रारम्भ कर दिया।

परन्तु, भगवान्की जन्मलीलाका जो कुछ रहस्य है—उसे श्रीशुकदेवजीने परीक्षितके निकट स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं किया, केवलमात्र स्थान-स्थानमें उस रहस्यका इङ्गितमात्र किया है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण केवल वसुदेवजीके ही पुत्र नहीं, बल्कि वे नन्द महाराजके भी पुत्र हैं।

श्रीभगवान् अचिन्त्य अनन्त शक्ति-सम्पन्न परमानन्दधन-विग्रह हैं। उनकी एक ही मूर्ति विविध भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिए विभिन्न रूपोंमें प्रकाशित होती है, जैसे श्रुतिमें कहा गया है—‘एकोऽपि

सन् यो बहुधा विभाति।' अतएव श्रीवसुदेव और श्रीनन्द महाराजका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए उनका दो मूर्तियोंमें जन्म ग्रहण करना तनिक भी असम्भव नहीं है। जो रासलीलामें एक-सौ करोड़ गोपियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए सौ करोड़ मूर्तियोंमें प्रकट होते हैं, जो द्वारकामें सोलह हजार महीषियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए सोलह हजार मूर्तियोंमें विराजमान हैं, वे क्या एक ही साथ दो मूर्तियोंमें श्रीवसुदेव और श्रीनन्दके पुत्र नहीं हो सकते?

वसुदेवजीकी कन्या, श्रीकृष्णकी छोटी बहन सुभद्रा, महाराज परीक्षितकी पितामही हैं। इस सम्बन्धके कारण वसुदेवनन्दनके साथ महाराज परीक्षितका घनिष्ठ सम्बन्ध है। महाराज परीक्षितने भी इसी सम्बन्धका अवलम्बनकर आशङ्का व्यक्त की है कि मेरी पितामहीके भ्राता श्रीकृष्ण क्या मुझे अन्तिम समयमें अपने चरणकमलोंमें स्थान नहीं देंगे? अपराधी होनेके कारण क्या हमें दूर फेंक देंगे?

श्रीभगवान्की अनन्त मूर्तियोंमें जिस भक्तका जिस मूर्तिके साथ सम्बन्ध रहता है, वह उस मूर्तिकी लीलाकथा सुनकर विशेष सन्तुष्ट होता है। अतएव महाराज परीक्षित अपनी पितामही सुभद्राके भ्राता और पितामह अर्जुनके सखा वसुदेवनन्दनके पक्षपाती होंगे—इसमें क्या आश्चर्य है?

इसीलिए श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितजीके भावके अनुकूल उनके सम्बन्धको बिना ठेस पहुँचाये ही केवलमात्र वसुदेवनन्दनके स्वरूपमें कृष्णलीलाका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया, फिर भी श्रीनन्दनन्दन-स्वरूपका अपार माधुर्यसिन्धु उद्वेलित होकर उनके हृदयको प्लावित कर रहा है, अतएव बीच-बीचमें श्रीनन्दनन्दन-स्वरूपका इङ्गित भी आ जाया करता है। जिनका श्रीनन्दनन्दनके साथ सम्बन्ध है, वे श्रीशुकदेवजीके इशारेसे उस लीलारसका आस्वादनकर कृतार्थ होंगे।

श्रीशुकदेवजीके वर्णनसे महाराज परीक्षितजी समझ गये कि उनकी पितामही सुभद्राके पति अर्जुनकी माता कुन्तीके भ्राता श्रीवसुदेवजीके ही पुत्र श्रीकृष्ण हैं और उन्हींको श्रीनन्द और यशोदाजीने अपना पुत्र जानकर लालन-पालन किया है। इसलिए

व्रजलीलाका अपार माधुर्य वसुदेवनन्दनकी ही लीला है—ऐसी धारणाकर वे परमानन्दमें विभोर हैं। अतएव श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितके सम्बन्धके प्रतिकूलमें कुछ न कहकर इशारेसे नन्दनन्दनकी लीलाका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। इसे केवल व्रज-उपासक ही समझ सकेंगे एवं यही उनके आनन्दकी भी वस्तु है। इस लीलामें सर्वसाधारणका प्रवेश करना अति दुष्कर है।

श्रीशुकदेवजीने कहा—‘नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः’ आदि अर्थात् महा-उदार श्रीनन्द महाराजको पुत्र उत्पन्न होनेपर अभूतपूर्व परमानन्दका अनुभव हुआ। वे उस आनन्दमें विवश हो गये। उन्होंने वसुदेवजीकी तरह श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर श्रीकृष्णको स्तव-प्रणामादि नहीं किया। वे अपने नवजात पुत्रके कल्याणके लिए जातकर्म आदि संस्कारोंका अनुष्ठान करने लगे।

“गोपराज नन्दबाबाने वसुदेवनन्दनको अपना पुत्र जानकर लालन-पालन किया, उनके पुत्ररूपमें कृष्णने जन्म नहीं लिया”—यदि श्रीशुकदेवजीका यही अभिप्राय होता, तो वे ‘नन्दस्तमात्मजं मत्वा जाताह्लादो महामनाः’ अर्थात् जब वसुदेवजी नन्दालयमें अपना पुत्र रखकर मथुरा लौट गये, तब नन्दमहाराजने वसुदेवके पुत्रको अपना पुत्र मानकर परमानन्द लाभ किया—ऐसा वक्तव्य प्रकाश कर सकते थे। तब सभीको निःसन्देह सहज ही यह ज्ञान हो जाता कि श्रीकृष्ण वसुदेवजीके ही पुत्र थे। परन्तु वे यह न कहकर उन्होंने ‘नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः’ अर्थात् महामना नन्दके आत्मज उत्पन्न होनेपर वे परमानन्दित हुए—ऐसा वक्तव्य उन्होंने प्रकाश किया। इसलिए श्रीकृष्ण श्रीनन्द महाराजके भी पुत्र हैं—यह तत्त्व निर्दिष्ट हुआ है।

इस विषयमें श्रीश्रीधरस्वामिपादने कोई व्याख्या नहीं की, वे केवल ‘महामनाः’ पदका अर्थ ‘उदारचित्त’ कहकर चुप हो गये। परन्तु श्रीजीवगोस्वामिपादने अपनी ‘लघु वैष्णव-तोषणी’ टीकामें इस श्लोककी इस प्रकार विस्तृत व्याख्या की है—

‘नन्दयति जगत्’ अर्थात् ‘जो जगत्का आनन्दविधान करते हैं’—इस व्युत्पत्तिसे ‘नन्द’ शब्द बनता है। गोपराजका ‘नन्द’ नाम

सार्थक है, क्योंकि उनके वात्सल्यप्रेममें विभोर होकर परमानन्दधन-विग्रह श्रीगोविन्द जगत्में आविर्भूत हुए हैं। वसुदेवजी वात्सल्यप्रेमी होनेपर भी उनके प्रेमके साथ ऐश्वर्यज्ञानका सम्बन्ध है। परन्तु गोपराज नन्दका ऐश्वर्यज्ञान-रहित विशुद्ध वात्सल्यप्रेम है। इसीलिए वसुदेवजी और नन्दमहाराज—इन दोनोंका श्रीकृष्णमें पुत्रबुद्धि रहनेपर भी दोनोंमें वात्सल्यप्रेमका तारतम्य है। इस तारतम्यके कारण श्रीकृष्णको पुत्ररूपमें पाकर वसुदेवने स्तुति प्रणामादि किया एवं नन्द महाराज आनन्द-समुद्रमें डूब गये। 'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने' श्लोकमें स्थित 'तु' शब्दके द्वारा वसुदेव और नन्द महाराजके प्रेमका तारतम्य दिखाया है। इस श्लोकसे प्रारम्भकर 'नन्दः कंसस्य वार्षिकं करं दातु कुरुद्वह' तक १९ श्लोकोंमें शुद्ध वात्सल्यप्रेमी नन्द महाराजके प्रेमव्यवहारका वर्णन हुआ है।

'नन्दस्त्वात्मज' श्लोकके द्वारा देखा जाता है कि 'आत्मज' एवं 'उत्पन्ने' ये दो शब्द विशेष्य-विशेषण रूपमें अवस्थित हैं। दो पदार्थोंका ज्ञान ग्रहण करनेके लिए प्रत्येकका अर्थ एवं सम्बन्ध—इन दो बातोंका ज्ञान होना चाहिये, नहीं तो यथार्थ अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता। यदि किसीको 'नीलोत्पल' का अर्थ ग्रहण करना है, उसको नील और उत्पल—दोनोंके विषयमें ज्ञान होना अति आवश्यक है। नहीं तो नील क्या है और उत्पल क्या है, यह नहीं जाननेसे वह नीलोत्पलका अर्थ समझ नहीं सकता। फिर, किसीको नील और उत्पलका ज्ञान तो है, परन्तु नीलोत्पलकी जानकारी नहीं है, तो वह नीलोत्पलको नहीं जान सकता, इसलिए इन तीनोंका ज्ञान होना आवश्यक है। वैसे ही यहाँ इस श्लोकमें 'आत्मज' किसे कहते हैं और 'उत्पन्न' क्या है, यह जानना भी आवश्यक है।

जैसे, 'आत्मनो जायते' अर्थात् देहसे जिसका जन्म होता है—इस व्युत्पत्तिसे सामान्य रूपमें 'आत्मज' शब्दका अर्थ औरस जात (अपनी विवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न) पुत्र है—ऐसा बोध होता है। पिताके खाये अन्न-पान आदिका रस शुक्र रूपमें परिणत होकर मातृगर्भके कोषमें जाकर मातृशोणितके साथ मिलकर क्रमसे जीवदेहमें परिणत होता है, इस प्रकार पिता ही माताके देहसे पुत्ररूपमें पैदा होता

है, जैसा कि श्रुतिमें कहा गया है—‘आत्मनो वै जायते पुत्र।’ परन्तु जब भगवान् श्रीकृष्ण ही किसीके आत्मज होते हैं, तब आत्मज शब्दका अर्थ दूसरा हो जाता है। क्योंकि भगवान्का देह शुक्र-शोणितके संयोगसे उत्पन्न होनेकी वस्तु नहीं है। वह सच्चिदानन्दमय नित्यसिद्ध वस्तु है। अपने-अपने कर्मफलके अनुसार अनन्त जीव-चैतन्यका अनन्त जड़-देहोंके साथ सम्बन्ध होता है एवं अपना-अपना कर्मफलभोग करनेके पश्चात् एक देहका परित्यागकर दूसरे देहको धारण करते हैं। परन्तु भगवान्को कर्मफल भोग करनेके लिए जड़-देहको धारण और त्याग करना नहीं होता है। वे अपने नित्यसिद्ध सच्चिदानन्द देहसे नित्यलीला-रसका आस्वादन करते हैं तथा समय-समयपर जगत्में अवतीर्ण होकर जगत्के जीवोंको कृतार्थ करते हैं। इसीलिए कोई जीव किसीका आत्मज होनेपर उसके पिताके देहसे उत्पन्न हुआ होता है। वैसे ही भगवान् भी किसीके पुत्र होनेपर अपने पिताके देहसे उत्पन्न हुए हैं—यह नहीं समझना चाहिये, परन्तु इसमें कुछ विशेषता है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(श्रीगी० ४/९)

अर्थात् हे अर्जुन! मेरा जन्मकर्म अलौकिक अर्थात् अप्राकृत है। अतएव मेरा जन्म प्राकृत नहीं है, इसमें कुछ विशेषता है।

उनका ‘आत्मजत्व’ वास्तवमें ‘आत्मनि प्रादुर्भूतत्व’ अर्थात् पितामाताके मनमें प्रकाशित होना होता है। वे सर्वकारण-कारण, जगत्-पिता एवं जगन्माता हैं, उनका कोई पिता-माता नहीं है, परन्तु वे वात्सल्यप्रेमी भक्तोंको अपना पिता-माताके रूपमें अङ्गीकार करते हैं तथा उनके प्रेमरस आस्वादन करते हैं।

इसी प्रकार भक्त भी जब शुद्ध वात्सल्यप्रेममें भगवान्का निरन्तर पुत्रभावसे चिन्तन करते हैं, तब पुत्रभाव-विभावित भक्तोंके हृदयमें भगवान् आविर्भूत होते हैं। उन्हींको ‘आत्मज’ कहा जाता है और वही हृदयस्थित मूर्ति जब बाहरमें प्रकट होती है, तब उसे उत्पन्न होना कहा जाता है।

भगवान् अन्तर्यामीरूपमें सबके हृदयमें विराजमान हैं। परन्तु सबका उनके प्रति पुत्रभाव नहीं होता और वे भी सबके आत्मज नहीं हैं। केवल हृदयसे बाहर प्रकाश होना ही भगवान्‌के आत्मज होनेका कारण नहीं है। क्योंकि, वे वराहरूपमें ब्रह्माकी नासिकासे प्रकट हुए थे और नरसिंहरूपमें स्तम्भसे प्रकट हुए थे, परन्तु कोई भी उन्हें ब्रह्माका पुत्र या स्तम्भका पुत्र नहीं कहता। वैसे ही भगवान्‌ने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे परीक्षित्को बचानेके लिए परीक्षित्की जननी उत्तराके गर्भमें प्रवेश किया था एवं परीक्षित्की रक्षाकर गर्भसे बाहर भी निकल आये थे, परन्तु उन्हें उत्तराका आत्मज नहीं कहा जा सकता है।

एकमात्र वात्सल्यप्रेम एवं पुत्रभावसे सराबोर ममता ही श्रीभगवान्‌के आत्मज होनेका कारण है। वसुदेव-देवकीका वात्सल्यप्रेम एवं भगवान्‌के प्रति उनकी ममता तो थी—इसीलिए भगवान्‌ उनके पुत्र हुए; परन्तु उनका वात्सल्यप्रेम और ममता प्रगाढ़ नहीं थी, बल्कि ऐश्वर्य भावसे मिश्रित थी। परन्तु, श्रीनन्द-यशोदाका वात्सल्यप्रेम एवं अनन्य ममता अत्यन्त प्रगाढ़ थी, इसीलिए श्रीनन्द-यशोदाजीका वात्सल्यप्रेम और ममता वसुदेव-देवकीसे भी सर्वाङ्ग परिपूर्ण और अधिक है।

इसीलिए परीक्षित्जीने श्रीनन्द-यशोदाके प्रगाढ़ वात्सल्यप्रेमकी कथा सुनकर आश्चर्यचकित नेत्रोंसे श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न किया—

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।

यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः॥

(श्रीमद्भा० १०/८/४६)

अर्थात् हे ब्रह्मन्! न जाने महाभाग्यशाली नन्दमहाराजजीने कौन-सा बड़ा मङ्गलमय साधन किया था एवं परम सौभाग्यवती यशोदाजीने भी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनका स्तन पान किया।

उन्हें इस बातके लिए आश्चर्य हुआ कि भगवान् देवकीके गर्भसे जन्म लेकर भी बाल्यकालमें उनका स्तन-पान नहीं कर पाये। परन्तु यशोदाजीने अपने पुत्रको गोदमें लेकर स्तन-पान कराया है।

उन्होंने पुत्रके दधिभाण्ड भंजन, मृत्तिका-भक्षण आदि मधुर लीला-रसका आस्वादन भी किया है। अतएव नन्द-यशोदा सौभाग्यवान् हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिए परीक्षित् महाराज देवकी-यशोदा दोनोंके प्रेमका तारतम्य न समझ पानेके कारण केवल यशोदाके प्रेमव्यवहारको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। अपने गर्भसे पैदा हुए पुत्रमें जितना प्रेम प्रकाश होता है, उतना दूसरेके गर्भसे पैदा हुए पुत्रमें प्रेम नहीं होता है। अपने गर्भजात पुत्रका लालन-पालन नहीं कर पानेसे कभी भी उसके वात्सल्यप्रेमकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है। इसलिए भगवान् अज होकर भी वात्सल्यप्रेमवान् भक्तोंके पुत्र होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

जब वे देवकीके पुत्र होकर आविर्भूत हुए, तब यशोदाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए वे क्यों नहीं उनका पुत्र होकर जन्म लेंगे? श्रीकृष्णने जन्मसे लेकर ग्यारह वर्ष तक जिनके प्रेममें मुग्ध होकर कितनी मधुर लीलाएँ की-दधिभाण्ड फोड़कर दामबन्धन स्वीकार किया, जिससे उनका दामोदर नाम पड़ा; क्षुधार्त होकर मक्खनके लिए जिनका आँचल पकड़कर पीछे-पीछे घूमते रहे, ऐसी परम वात्सल्यमयी माँ यशोदाकी क्या भगवान्का पुत्रभावसे लालन-पालन करनेकी तीव्र अभिलाषा नहीं थी? श्रीकृष्णका नन्दालयमें जन्म-वृत्तान्त विस्तारपूर्वक श्रीमद्भागवतमें वर्णन नहीं है। अतः यह परम मधुर लीला श्रीनन्दनन्दनके चरणोंके भजन-परायण भक्तजनोंके आस्वादनके लिए वैष्णवाचार्यवर्य श्रीजीवगोस्वामिपादने अपने 'गोपालचम्पू' ग्रन्थमें विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। सर्व-साधारणकी अवगतिके लिए गोपालचम्पूके तृतीय पूरणमें वर्णित नन्दालयमें श्रीकृष्णकी जन्मकथाका यहाँ वर्णन (ग्रन्थ विस्तारके भयसे संक्षेपमें कुछ ही प्रसङ्गोंका उल्लेख) किया जा रहा है—

पूर्वकालमें देवमीढ़ नामके सर्वगुणालंकृत वृष्णिवंश-विभूषण एक नरपति मथुरा-मण्डलमें राज्य-शासन करते थे। उनकी एक क्षत्रियाणी एवं दूसरी वैश्या पत्नी थीं। क्षत्रियाणी पत्नीके गर्भसे 'शूरसेन' एवं वैश्या पत्नीके गर्भसे 'पर्जन्य' नामके एक-एक पुत्र पैदा हुए। पूर्वकालमें असवर्ण विवाह प्रचलित था। इसलिए उच्चवर्णके पुरुष

निम्नवर्णकी कन्याको पत्नी-रूपमें ग्रहण करते थे, परन्तु उनसे पैदा हुआ सन्तान 'मातृवद्वर्णसंकरः' इस शास्त्र-वचनके अनुसार माताके वर्णके होते थे। देवमीढ़ नरपतिके वैश्या-पत्नीके गर्भसे पैदा हुए पर्जन्य-गोप पिताके आदेशसे मथुराके अन्तर्गत बृहद्वनमें वास करते थे एवं पिताके द्वारा दी गयी बहुत-सी गायें पाकर वैश्योचित गोरक्षा कार्यमें ही समय अतिवाहित करते थे। उस समय बृहद्वन और उसके चारों ओरके गाँवोंमें बहुत-से गोप निवास करते थे। अतः बृहद्वन गोप आवाससे परिपूर्ण था। महाराज पर्जन्य चौराशी कोस परिमित ब्रज-मण्डलके अधिपति थे। वे प्रजापालन और गो-ब्राह्मणादिकी सेवामें सदैव तत्पर रहते थे। मथुरापति महाराज उग्रसेनने पर्जन्यका प्रभाव और उनके सद्गुणोंसे परम सन्तुष्ट होकर उनका राजतिलक कर मथुरा राज्यके करदाता अपने अधीन राजाके रूपमें राजसिंहासनपर बैठाया था। गोपराज पर्जन्य यथार्थ ही पर्जन्य (बादल) थे। बादल जैसे अविरल बारि-वर्षणकर भूतलका ताप निवारण एवं अनाजकी वृद्धि करता है, वैसे ही गोपराज पर्जन्य भी उदारतापूर्वक धन-दान और सद्-व्यवहारके द्वारा समस्त प्रजाओंका आनन्दवर्द्धन करते थे।

गोपराज पर्जन्यने यथा समयपर ब्रज-मण्डलनिवासी वरीयसी नामकी किसी आभीरकन्याका पाणिग्रहण किया। उसके गर्भसे पर्जन्यको उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सन्नन्द और नन्दन नामके पाँच पुत्र पैदा हुए। सभी पुत्र पिताके अनुरूप थे। बचपनसे ही उन्हें विविध प्रकारके सद्गुणोंके संस्कार प्राप्त हुए, जो उम्रके बढ़नेके साथ-साथ पूर्णताको प्राप्त हुए। उनमेंसे तृतीय पुत्र नन्दकी बात वर्णनातीत है। उन्होंने बाल्यकालसे ही पिता, भ्राता एवं ब्रज-मण्डलवासियोंके हृदयको अपने मधुर व्यवहारसे जीत लिया था। गोपराज पर्जन्यने यथा समयपर पाँचों पुत्रोंका विवाह कर दिया। नन्दजीका विवाह ब्रज-मण्डलके निवासी सुमुख नामक किसी गोपकी कन्या यशोदा गोपीसे हुआ था। नन्दजीके सद्गुणों और मधुर व्यवहारसे परिवार और गोकुलके सभी निवासी बड़े प्रसन्न रहते थे।

वृद्धावस्थामें गोपराज पर्जन्यने राजकार्यसे अवसर ग्रहण करनेकी अभिलाषासे एकदिन ब्रज-मण्डलके गोपों एवं मथुरापति उग्रसेन

आदिको आमन्त्रितकर सबके सामने अपनी अभिलाषा व्यक्तकर उन सबके अनुमोदनसे अपने ज्येष्ठपुत्र उपनन्दका राजतिलककर उन्हें प्रजापालनादि स्वधर्म-पालन करनेके लिए अनुमति प्रदान की। उपनन्द ससम्मान एवं सगौरव पिताकी आज्ञाको मस्तकपर धारणकर हाथ जोड़कर सबके सामने कहने लगे—“ज्येष्ठपुत्र होनेके नाते पितृदेवने मुझे राजतिलक और राजसिंहासन प्रदान किया एवं मैंने भी उनकी कृपाका दान मस्तकपर धारण किया। परन्तु मेरे छोटे भैया नन्द हम सबसे गुणी और योग्य हैं। इसलिए मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि राजतिलक एवं राजसिंहासन नन्दजीको देनेसे हम सभी परमानन्दित होंगे तथा यही सर्वथा उचित भी होगा।” उपनन्दकी बात सुनकर सभी सभासद वाह! वाह!! कहने लगे। यह सुनकर सर्वसम्पत्तिक्रमसे गोपराज पर्जन्यने अपने तृतीय पुत्र नन्दको ही राजतिलक देकर राजसिंहासनपर बैठाया।

गोपराज पर्जन्यने राजकार्यसे अवसर ग्रहणकर पुत्र, पौत्र आत्मीय स्वजन सबकी मोह-ममता छोड़कर संसारके कोलाहलसे बाहर एकान्तमें जाकर भगवान्‌के भजनमें समय व्यतीत करनेका सङ्कल्प ग्रहण किया और उन्होंने अपनी सहधर्मिणीके साथ ब्रज-मण्डलस्थित वृन्दावनमें जाकर वनमालीके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया। गोपराज पर्जन्यने संसार त्यागकर जानेके समय अपने पुत्रोंको उपदेश दिया—“किं भयमूलमदृष्टं किं शरणं हरेर्भक्तः। किं प्रार्थ्यं तद्भक्तिः किं सौख्यं तत्परप्रेमः॥” अर्थात् “शुभाशुभ कर्म ही जीवके भयका कारण है, क्योंकि इसीसे ही पुनःपुनः जीवोंका गमनागमन होता है। अतः आत्मकल्याण चाहनेवालोंके लिए हरिभक्तोंके शरणागत होना ही एकमात्र कर्तव्य है। क्योंकि उसीसे हरिका चरणाश्रय ग्रहण करनेका सुयोग प्राप्त होता है। हरिभक्ति ही एकमात्र प्रार्थनीय वस्तु है, क्योंकि श्रीहरि एकमात्र भक्तिके ही वश होते हैं। हरिचरणोंमें प्रेम ही परमानन्दकी पराकाष्ठा है, क्योंकि इसीसे हरिचरणोंमें सेवाधिकार प्राप्त होता है।” इस प्रकार गोपराजके इन उपदेशोंको नन्दादि उनके पुत्रोंने अपनी पितृ-सम्पत्ति जानकर धारण किया।

पिताके संसार त्याग करनेपर गोपराज नन्दने गोप समाजके पालनका भार ग्रहण किया तथा सभीको अपने सद्गुणोंसे जीत लिया। उनके ज्येष्ठभ्राता उपनन्द एवं अभिनन्द नन्द महाराजके मन्त्री बनकर सर्वदा ब्रजराज्यकी हित-चिन्तामें लगे रहते। इस प्रकार नन्दजी और सभी ब्रजवासी परम आनन्दके साथ समय अतिवाहित करने लगे।

सभी ब्रजवासी गोपोंके पास हजारों गायें थीं। वे धन-धान्य आदि सभी प्रकारसे समृद्ध और सुखी थे। परन्तु गोपराज नन्दके कोई सन्तान नहीं होनेके कारण वे सभी बड़े दुःखी थे।

‘नन्दमहाराजको पुत्र प्राप्ति हो’ यह सभी ब्रजवासी हृदयसे चाहते थे। किन्तु इसका कोई भी लक्षण नहीं दीख रहा था। देखते-देखते गोपराजकी प्रौढ़ावस्था हो गयी। इससे ब्रजवासियोंकी आशालता मुरझाने लगी। कुलदेवता नारायणके चरणोंमें प्रार्थना, ब्राह्मणोंका आशीर्वाद, पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान—सभी कुछ होने लगा। एक दिन महाराज नन्दने यशोदासे कहा कि यशोदे! पुत्रेष्टि यज्ञसे हमें पुत्रकी प्राप्ति नहीं होगी। मैंने शयनकालमें एक स्वप्न देखा है कि मेरे हृदयमें एक परम सुन्दर बालक है, जो नारायणसे भी अधिक आकर्षक और सुन्दर है। मैंने यह भी देखा कि वह श्याम वर्णका बालक तुम्हारी गोदमें बैठकर तुम्हारा स्तन पान कर रहा है।

ब्रजराजकी बात सुनकर यशोदाजी आनन्दमें विभोर होकर गद्गद् स्वरसे कहने लगी—ब्रजराजजी! मैं भी प्रायः स्वप्नमें परम सुन्दर एक बालकको अपनी गोदमें बैठकर स्तनपान करते हुए देखती हूँ। किन्तु इसे असम्भव जानकर लज्जावश किसीसे कहती नहीं हूँ। यह स्वप्न मुझे बारम्बार स्मरणमें आता है।

ब्रजराजने भी कहा—मैं भी प्रयास करता हूँ कि स्वप्नकी बात भूल जाऊँ, परन्तु मैं भूल नहीं पाता हूँ। गोपराजकी बात सुनकर यशोदाने कहा—श्रीनारायणके श्रीचरणकमल ही हमलोगोंके एकमात्र आश्रय हैं। वे ही कृपापूर्वक हमारे असम्भव मनोरथको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। उनकी कृपासे सबकुछ सम्भव हो सकता है। अतएव कोई देवानुष्ठान व्रत करना उचित है। नन्दजीने कहा—“यशोदे! तुम्हारा

कहना सब प्रकारसे युक्तियुक्त है और ग्रहणयोग्य है। तुम उनसे किस कृपा प्राप्तिकी आशा करती हो?” यशोदाने कहा—उनके चरणोंमें शरणापन्न होकर द्वादशीव्रतका अनुष्ठान करनेसे हमारे प्रति उनकी कृपा दृष्टि होगी। नन्दजीने कहा—यह ठीक ही है। द्वादशीव्रत श्रीहरिको अतिशय प्रिय है। अतएव कालविलम्ब न करके अब हमलोग उस व्रतका अनुष्ठान करें। श्रीनन्द और यशोदा—दोनोंने तन, मन, वचनसे श्रीनारायणके चरणोंमें शरणागत होकर नियमानुसार एक वर्ष द्वादशीव्रत पालन करनेके लिए सङ्कल्प ग्रहण किया।

इस प्रकार नन्द-यशोदा नियमके अनुसार द्वादशीव्रतका अनुष्ठान करने लगे। भगवान्की पूजा, होम, उपवास, रात्रिजागरण, पारण, ब्राह्मण-भोजन आदि उनके व्रतके अङ्ग थे।

एक दिन उन्होंने निद्रावेशमें स्वप्नमें देखा—उनके आराध्यदेव चतुर्भुज शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी नारायण उनके निकट आकर सकरुण नयनोंसे उनकी ओर दृष्टिपातकर सुमधुर वचनोंसे कह रहे हैं—अहो नन्द! अहो यशोदे! तुमलोग मेरे श्रेष्ठ भक्त हो। तो फिर दुःखी क्यों हो रहे हो? तुमलोगोंने स्वप्नमें अपनी गोदमें जिस साँवले सलौने सुन्दर बालकको देखा है, वही तुमलोगोंके पुत्रके रूपमें जन्म लेगा। अतिशीघ्र ही तुमलोगोंकी मनोवासना पूर्ण होगी।

यह कहकर श्रीनारायणके अन्तर्हित होनेपर नन्द और यशोदा जगकर परम विस्मयके साथ परस्पर स्वप्नकी चर्चा करते हुए आनन्द-समुद्रमें निमज्जित हो गये।

इस प्रकार नन्द महाराज श्रीनारायणके वचनोंपर दृढ़ विश्वासकर स्वप्न-दृष्ट उस मनोहर बालकको पुत्रके रूपमें पानेकी लालसासे उसीका दिन-रात चिन्तन करते हुए बड़ी उत्कण्ठासे जीवन-यापन करने लगे।

ऐसे समयमें एक दिन उनकी सभामें एक अर्द्ध वृद्धा तपस्विनी एक बालकको साथ लेकर उपस्थित हुई। उन्हें दूरसे देखकर सभामें स्थित सभी समझ गये कि ये कोई महा प्रभावशालिनी तपस्विनी हैं। उन्हें सभामें आते हुए देखकर सभी हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा आसनादि प्रदानकर पूछने लगे—हे देवि! आप कौन हैं? आपको

देखकर ऐसा लगता है कि आप साक्षात् श्रीभगवान्की शक्ति योगमाया हैं और आपके साथका यह बालक देखनेमें ऐसा लगता है, मानो—देवर्षि नारद ही बालकमूर्ति धारणकर यहाँ हमारे कल्याणके लिए उपस्थित हुए हैं। गोपराजके सभासदोंकी बात सुनकर वह तपस्विनी मृदु-मन्द मुसकानके साथ कहने लगी—मेरा नाम पौर्णमासी है। मैं ब्रह्मचारिणी, तपस्विनी एवं दैवज्ञा (ज्योतिषी) भी हूँ। मेरे साथवाले इस बालकका नाम मधुमङ्गल है। यह बालक स्नातक (गुरु-गृहसे अध्ययन और ब्रह्मचर्य व्रत समाप्तकर गृहमें लौटा) है, इसे देखकर आपलोगोंको नारदकी बालकमूर्तिकी प्रतीति होना कोई असम्भव नहीं है। सचमुच यह बालक नारदजी जैसे स्वभावका ही है। आप हमें जिस रूपमें देख रहे हैं, हम चिरकाल इस स्वरूपमें ही रहते हैं। हमारे देहमें ह्रास, वृद्धि, जरा, वार्द्धक्य नहीं है। तपस्विनीकी बात सुनकर सभासदवृन्द परम विस्मयके साथ हाथ जोड़कर कहने लगे—देवि! हम दीनातिदीन—सब प्रकारसे आपकी सेवा करनेमें अयोग्य हैं, फिर भी हमारे प्रति आपकी परमकृपा है।^(१)

पौर्णमासीजीने कहा—हे गोपराज! हे सभासदो! आपके जीवनसे अधिक प्रियतम गोपराज नन्दजीका एक पुत्र पैदा होगा एवं वह पुत्र सम्पूर्ण जगत्को आनन्द-समुद्रमें निमज्जित करेगा। उसके दर्शनोंके लिए ही हमलोग यहाँ आये हैं। तपस्विनीकी बात सुनकर सभी सभासद परमानन्द-सागरमें डूब गये। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—देवि! आपके आगमनसे हमारा यह बृहद्वन महातीर्थ हो गया। हम कृष्णा (यमुना) के निकट आपकी पर्णकुटीका निर्माण कर देंगे। आप वहीं निवास करें। पौर्णमासीने कहा—आपका यह प्रतिश्रुति वचन

^(१) श्रील रूप गोस्वामीकृत 'विदग्धमाधव' नाटकमें पौर्णमासीका ऐसा परिचय मिलता है कि वे देवर्षि नारदकी शिष्या हैं एवं श्रीकृष्णके अध्यापक सान्दीपनि मुनिकी माता हैं। ये महातप-शक्ति-सम्पन्न हैं एवं श्रीकृष्णकी मधुरलीलाओंका समाधान भी करती हैं। ब्रजवासीजन इनके वचनोंको वेदवाक्यकी भाँति मानते हैं। इसलिए ये श्रीराधामाधवकी रहस्यपूर्ण लीला-विलासमें बहुत-से रहस्योंका समाधान भी करती हैं। मधुमङ्गल इन पौर्णमासीजीका पौत्र, सान्दीपनिका पुत्र है। गोष्ठलीलामें मधुमङ्गलका नाम सुना जाता है। गोपियोंकी सूर्यपूजादि लीलामें भी मधुमङ्गलका सरस सम्बन्ध है।

श्रुतिवचन-स्वरूप है। मेरा कृष्णान्तिकमें ही (कृष्णके निकटमें) ही वास होगा। तुम्हारे मुँहसे 'यमुनातीरे' शब्द उच्चरित न होकर 'कृष्णान्तिके' यह शब्द उच्चारण होनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दके पुत्रका नाम 'कृष्ण' होगा और वह पुत्र महाप्रभावशाली होगा। उसके प्रभावके विषयमें अधिक क्या कहूँ—उसके प्रभावसे उसमें परस्पर विरुद्ध बातोंका भी कोई विरोध नहीं रहेगा। 'नन्दनन्दन' के जन्म ग्रहण करनेपर पृथ्वीमें निर्दानवता, सदानवता, सगुणता, निर्गुणता, सकिञ्चनता, निष्किञ्चनता आदि परस्पर विरुद्ध धर्मोंका एकत्र समावेश होगा।

यहाँ पौर्णमासीका वक्तव्य यह है कि श्रीकृष्णके आगमनसे पृथ्वी दानवरहित होगी अर्थात् वे पृथ्वीके समस्त असुरोंका विनाश करेंगे, इससे निर्दानवता सिद्ध होगी। नन्दनन्दनकी मधुर गुणावलीका पृथ्वीमें स्थित भाग्यवान व्यक्ति नित्यनूतन रूपोंमें आस्वादन करेंगे। अतएव उससे सदानवता होगी। नन्दनन्दनके आगमनसे पृथ्वीके लोग विद्यादि गुणोंसे विभूषित होकर सत्त्व, रज और तम—इन तीनगुणोंसे अतीत हो जायेंगे। अतएव सगुणता और निर्गुणता—दोनों विरुद्धगुणोंका समावेश होगा। देहयात्रा निर्वाहके लिए किञ्चित् विषययुक्त (सकिञ्चनता) होनेपर भी पृथ्वीके लोग भक्ति-सम्बन्धके कारण निष्किञ्चन होंगे।

पौर्णमासीने कहा—हे गोपराजके सभासदो! नन्दनन्दनके वासस्थानमें वास करनेके लिए मेरी चिरकालसे अभिलाषा है। आपलोगोंने हमसे इस स्थानमें वास करनेके लिए आग्रह प्रकाशकर परम अनुग्रह किया है। पौर्णमासीजी नन्दनन्दनके दर्शनकी लालसासे उत्कण्ठित होकर मधुमङ्गलके साथ यमुनाके किनारे उनलोगोंके द्वारा निर्मित एक पर्णकुटीमें निवास करने लगी।

जिस दिन पौर्णमासी व्रजमें आयी, उस दिन शामको वसुदेवजीकी पत्नी रोहिणीजी अकेली नन्दालयमें आकर उपस्थित हुई। (जब वसुदेवजी और देवकी कंसके कारागारमें बन्द थे, तब वसुदेवजीकी पत्नी रोहिणी कंसके आदेशसे पतिसेवाके लिए कारागारमें गमनागमन करती थीं। देवकीके सातवें गर्भका लक्षण प्रकाश होनेके साथ-साथ रोहिणीका भी गर्भका लक्षण देखकर वसुदेवजीने इस आशङ्कासे कि

कहीं दुरात्मा कंस रोहिणीके पुत्रका भी वध न कर दें, उन्हें नन्दालयमें भेज दिया। रोहिणी जब नन्दालयमें आयी, तब वह और देवकी दोनों तीन महीनेकी गर्भवती थीं। नन्दालयमें आनेके चार महीनेके पश्चात् श्रीभगवान्के आदेशसे उनकी शक्ति योगमायाने रोहिणीके सात महीनेके गर्भको अन्तर्धानकर देवकीके सात महीनेके गर्भमें स्थित सङ्कर्षणको आकर्षणकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया। फिर चौदहवें महीनेमें श्रीकृष्णके जन्मसे आठ दिन पहले श्रावणी पूर्णिमाके दिन नन्दालयमें रोहिणीके गर्भसे बलरामजी भूमिष्ठ हुए।)

रोहिणीके आगमनसे गोपराज एवं सभी ब्रजवासी बड़े प्रसन्न हुए। सभी ऐसा मानने लगे कि पतिव्रता और तपस्विनी रमणीके आगमनसे हम सबका परम कल्याण होगा। नन्दजी और यशोदा यह समझने लगे कि पतिव्रता रमणीके आगमन-जनित सौभाग्यसे श्रीनारायणकी कृपासे हमलोगोंको भी उस स्वप्नदृष्ट पुत्रकी प्राप्ति होगी। रोहिणीको पाकर यशोदाजीके आनन्दकी सीमा नहीं रही, वे दोनों गङ्गा-यमुनाकी भाँति आनन्दके साथ परस्पर मिलजुलकर रहने लगीं।

श्रीनन्द-यशोदा सर्वदा ही मन-ही-मन उस स्वप्नमें देखे हुए परम मनोहर बालकका पुत्ररूपमें चिन्ता करने लगे। ऐसे समयमें एकदिन माघ महीनेकी कृष्णा-प्रतिपदा तिथिमें रात्रिकालमें श्रीनन्द महाराज शय्यापर शयन कर रहे थे। पतिव्रता यशोदा उनका पाद-सम्वाहन कर रही थीं और दोनों उस स्वप्नमें देखे हुए बालकके विषयमें वार्त्तालाप कर रहे थे। थोड़ी देरके बाद ही श्रीनन्द-यशोदा दोनों सो गये। ऐसे समयमें यशोदाने स्वप्नकी भाँति कुछ अनुभव किया कि उसका स्वप्नदृष्ट बालक एक विद्युतके समान गोरी बालिकाके साथ नन्दके हृदयसे निकलकर उनके हृदयमें प्रवेश कर गया। तत्क्षणात् दोनोंकी नींद खुल गयी, यशोदाजीने श्रीनन्द महाराजसे यह स्वप्न-वृत्तान्त कह सुनाया और नारायणकी कृपा जानकर दोनों उस स्वप्नदृष्ट बालककी प्राप्तिकी आशासे आशान्वित हुए।

इस स्वप्नदर्शनके कुछ दिनोंके पश्चात् यशोदाका गर्भलक्षण प्रकाश हुआ। उससे नन्दजी, यशोदा एवं सभी ब्रजवासी परमानन्द-समुद्रमें

डूब गये। एक-एक करके जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे, वैसे ही ब्रजमें आनन्दकी लहर भी बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार आठ महीने नन्द-यशोदा और ब्रजवासियोंने परमानन्द और परम उत्कण्ठासे बिताये। इसके बाद ही देखते-देखते भाद्र महीनेकी कृष्णाष्टमी तिथि उपस्थित हुई। भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें आनन्दमय श्रीगोविन्दके आगमनसे पृथिवी, स्वर्ग, आकाश, वायु आदि किस प्रकार परमानन्द-रसमें निमग्न हुए उसका श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्ध, तृतीय अध्यायमें विशद रूपसे वर्णन हुआ है।

श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तृतीय अध्याय (श्लोक ८) में 'देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः। आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिवपुष्कलः॥' इस श्लोकमें भाद्र-कृष्णाष्टमी तिथिकी अर्द्धरात्रिमें श्रीकृष्णका जन्म वर्णन हुआ है। परन्तु नन्दनन्दनके चरणोंमें शरणागत होकर जन्मलीलाका आस्वादन करनेका प्रयास करनेपर उनकी कृपासे इस श्लोकमें ब्रजलीलाका इङ्गित मिलता है। 'देवक्यां देवरूपिण्यां'—श्लोकमें भगवान् जैसे देवकीसे पुत्र-रूपमें आविर्भूत हुए वैसे ही यशोदाजीके गर्भसे भी उन्होंने जन्म ग्रहण किया है। देवकी केवल वसुदेवजीकी पत्नीका ही नाम नहीं है; नन्द-पत्नीका भी एक नाम देवकी है। 'द्वे नाम्नी नन्द भार्याया यशोदा देवकीति च। अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया॥' (श्रीहरिवंश) श्रीहरिवंशमें ऐसा उल्लेख है कि नन्द-पत्नी यशोदाके यशोदा एवं देवकी—ये दो नाम हैं। इसलिए उनके नामकी समानताके कारण वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके साथ उनका सख्यभाव था। विशेषकर श्रीभगवान् भाद्र कृष्णाष्टमीकी रात्रिमें वसुदेव-पत्नी एवं नन्द-पत्नी—दोनोंके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए—यह अर्थ ग्रहण करना भी कुछ असङ्गत नहीं है, क्योंकि यह अर्थ आधुनिक, कल्पित या पक्षपातसे दूषित नहीं है। क्योंकि श्रीहरिवंशमें देखा जाता है—'गर्भकाले त्वसम्पूर्णं अष्टमे मासि ते स्त्रियौ। देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥' (श्रीहरिवंश) अर्थात् यशोदा एवं देवकीने गर्भकालके असम्पूर्ण रहते ही आठवें महीनेमें ही श्रीकृष्णको जन्म दिया। इससे स्पष्ट होता है कि एक ही समयमें भगवान् दोनों स्थानोंमें आविर्भूत हुए।

“जब मथुरामें भगवान् आविर्भूत हुए, उस समय ब्रजमें योगमाया आविर्भूत हुई।” इस प्रकार देवकी-यशोदा दोनोंने एक ही समयमें सन्तानोंको जन्म दिया—ऐसा सामञ्जस्य करना भी सङ्गत नहीं है। क्योंकि श्रीमद्भागवत (१०/३/४७) में ‘ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः, सुतं समादाय स सूतिकागृहात्। यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा, या योगमायाजनि नन्दजायया ॥’ श्लोकमें स्पष्ट वर्णन है कि वसुदेवने जब श्रीकृष्णको नन्दालयमें ले जानेकी इच्छासे उन्हें हाथमें लेकर कंसके कारागारसे बाहर जानेकी इच्छा की, उस समय नन्द-पत्नीके गर्भसे योगमायाका आविर्भाव हुआ।

इसके अतिरिक्त भागवतमें वर्णन है—जब कन्या उस कंसके हाथसे आकाशमार्गमें चली गयी, तब ‘अदृश्यतानुजा विष्णोः’ (श्रीमद्भा० १०/४/९) कंसने श्रीभगवान्की अनुजाको (छोटी बहनको) देखा था। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण और योगमायाका एक ही साथमें जन्म नहीं हुआ है। यदि होता, तब तो ‘अनुजा’ पदका प्रयोग नहीं होता।

श्रीमद्भागवतमें यशोदाके गर्भसे पुत्रके जन्मका स्पष्ट वर्णन न रहनेपर भी यह अशास्त्रीय नहीं है। ‘कृष्णयामल’ नामके ग्रन्थमें देखा जाता है—‘नन्दपत्न्यां यशोदायां मिथुनं समपद्यत। गोविन्दाख्यः पुमान् कन्या साम्बिका मथुरां गताः ॥’ (यामलवचन) अर्थात् नन्द-पत्नी यशोदाके यमज सन्तान हुए थे। उनके एक पुत्र और एक कन्या हुई थीं। पुत्र साक्षात् गोविन्द और कन्या स्वयं अम्बिका (योगमाया) थीं। यशोदाकी कन्याको लेकर वसुदेवजी मथुरा लौट गये। इस यामलके वचन द्वारा समस्त विषयोंका सर्व प्रकारसे सामञ्जस्य होता है। विशेषकर कृष्णानुजा रूपमें योगमायाकी जो प्रसिद्धि है, वह कृष्ण और योगमायाके पृथक्-पृथक् गर्भसे जन्म ग्रहण करनेपर यह कैसे सम्भव हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्णके चतुर्भुज मूर्तिमें कंस कारागारमें आविर्भूत होनेपर वसुदेव और देवकीके उन्हें अपना रूप छिपानेके लिए आग्रह करनेपर उन्होंने अपना द्विभुज-स्वरूप प्रकट किया। वह मूर्ति, नन्द और यशोदाके प्रेमके अनुरूप एवं उनके वात्सल्य-सम्बन्धसे बँधी हुई

थी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। गौतमीय-तन्त्रमें द्विभुज मूर्तिकी उपासना-पटलमें दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्रके देवताके निर्णयमें वर्णन है—‘सकललोक मङ्गल श्रीनन्दतनयो देवता’ इससे स्पष्ट होता है कि द्विभुज गोपाल-मूर्ति श्रीनन्द महाराजके ही पुत्र हैं। अतएव वसुदेव-देवकीके अनुरोधसे भगवान् ने जब अपना चतुर्भुज रूप छिपा लिया, तब नन्दनन्दन-मूर्ति वहाँ प्रकट हो गयी। इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीलघु-वैष्णवतोषणीमें भी यही सिद्धान्त किया है—‘यदा स्वाविर्भूतचतुर्भुजरूपाच्छादनाय श्रीदेवकीच्छा जायते, तदा यशोदाहृदयस्थ द्विभुजरूपस्य तद्रूपाच्छादनपूर्वकाविर्भावस्तत्रासीदिति गम्यते।’ अर्थात् जिस समय भगवान् की चतुर्भुज-मूर्ति छिपानेके लिए देवकीकी इच्छा बलवती हो गयी, उस समय यशोदाके हृदयस्थित भगवान् की द्विभुज बालक-मूर्ति ही चतुर्भुज रूपका आच्छादनकर देवकीके सामने प्रकट हुई।

श्रीगर्गाचार्यके द्वारा श्रीकृष्णके नामकरण-प्रसङ्गमें देखा जाता है—गर्गाचार्यने गोपराज नन्दसे कहा—हे नन्द! तुम्हारा यह पुत्र पहले कभी किसी समय वसुदेवका पुत्र हुआ था।

इससे भी समझा जाता है कि देवकीकी प्रार्थनानुसार नन्दनन्दन ही चतुर्भुज रूपका आच्छादनकर कंस कारागारमें आविर्भूत हुए एवं वसुदेव-देवकीने श्रीकृष्णके द्विभुज रूपको देखकर यह समझा कि भगवान् हमारे अनुरोधको मानकर द्विभुज हुए हैं।

कृष्णयामल नामक ग्रन्थमें देखा जाता है—‘वसुदेव सुतः श्रीमान् वासुदेवोऽखिलात्मनि। लीनो नन्दसुते राजन् घने सौदामिनी यथा॥’ अर्थात् विद्युत जैसे बादलोंमें विलीन हो जाती है, वैसे ही शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी सर्वान्तर्यामि चतुर्भुज वासुदेव, नन्दनन्दनमें लीन हो गये।

अतएव भगवान् श्रीहरिके कंस कारागारमें चतुर्भुज एवं नन्दालयमें द्विभुज मूर्तिमें अवतीर्ण होनेपर भी कंसके कारागारमें चतुर्भुजरूपमें अवतीर्ण होकर ऐश्वर्य-मिश्रित वात्सल्यप्रेमवान् वसुदेव और देवकीकी मनोवासना पूर्णकर उनके अनुरोधसे उन्होंने उस चतुर्भुज रूपको छिपाया एवं यशोदानन्दन-मूर्तिमें द्विभुज रूपमें दर्शन दिया। भगवान् की

यह मूर्ति एकमात्र शुद्धप्रेमवान् भक्तोंकी ही सेव्य है, इसलिए उन्होंने इस मूर्तिमें मथुरामें न रहकर नन्दालयमें गमन किया और वहीं उन्होंने वात्सल्यरसका आस्वादन किया।

गोपराज नन्दजीने श्रीकृष्णके जन्मके पश्चात् उनके कल्याणके लिए उदारतापूर्वक यथाविधि तिल-पर्वत एवं स्वर्ण, रत्न आदि दान किये। श्रीजीवगोस्वामी पादने वर्णन किया है—

‘दशभिर्द्रोणैः कृत तिलसप्ताचलीमददात्। यद्धृतिमणिकनकानां तदधिकतरभारता द्विजैर्मने॥’ (गोपालचम्पू)

गोपराज नन्दजीने दशद्रोण-परिमित सात तिल-पर्वत ब्राह्मणोंको दान दिये। उन तिल-पर्वतोंके आवरण रूपमें जो स्वर्ण, मणि आदि थे, उनका भार तिलके पर्वतोंके भारसे भी अधिक रूपमें ब्राह्मणोंको प्रतीत हुआ था।

यद्यपि गोपराज नन्द, श्रीकृष्णके जन्मके कारण परमानन्दमें मुग्ध थे, फिर भी उन्होंने पुत्रके मङ्गलके लिए किसी प्रकारकी कोई त्रुटि नहीं की। कर्मादिके अनुष्ठानमें नवजात बालकका संस्कार और शुद्धि-सम्पादन होता है। अतएव परम प्रेमवान् नन्द महाराज आनन्दमें विभोर होकर अपना कर्त्तव्य नहीं भूले।

किसी भी कारणवश भूमि अपवित्र होनेपर वह कालसे शुद्ध होती है। स्नानसे देह शुद्ध होता है, शौचसे (विष्टामूत्रादिके स्पर्शसे अशुद्ध) देह आदिकी शुद्धि होती है, तपस्यासे इन्द्रियोंकी शुद्धि होती है, यज्ञादि द्वारा ब्राह्मण पवित्र होते हैं, धन-रत्न आदि-द्वारा दान पवित्र होता है एवं आत्म-स्वरूपके ज्ञानके द्वारा आत्माकी शुद्धि होती है—यही शास्त्रीय विधान है। इसी प्रकार गर्भशुद्धिका विधान भी शास्त्रमें केवल जातकर्म संस्कार आदिके द्वारा होता है। श्रीनन्दमहाराजने अपने नवजात पुत्रको संस्कार द्वारा शोधन करनेके लिए जातकर्मका अनुष्ठान किया। जातकर्मादि संस्कारसे नवजात बालककी जैसे गर्भवास-जनित अपवित्रता दूर होती है, वैसे ही उसकी मेधा, आयु आदि भी बढ़ती है। यद्यपि नन्द महाराजका पुत्र कोई सामान्य बालक नहीं है या उसे गर्भवास-जनित अपवित्रता भी नहीं है, फिर भी परिपूर्ण वात्सल्यप्रेमके कारण नन्द महाराजने अखिल ब्रह्माण्डके

पालकके साथ बालकोचित व्यवहार किया। श्रीनन्द महाराजने जिन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त किया है, उनके नाममात्रके श्रवणसे, कीर्तनसे या ध्यानसे ही अखिल जगत् पवित्र हो जाता है। यह तत्त्वज्ञान नन्द महाराजके वात्सल्यप्रेम-सिन्धुके अतल-तलमें गुप्तरूपमें ही रह गया। इसी परम प्रेमका आस्वादन करनेके लिए अखिल ब्रह्माण्ड-पालकका पुत्र रूपमें आविर्भाव हुआ है। इस परम प्रेमके प्रभावसे ही नन्द महाराज जगत्-पिताके भी पिता हुए हैं एवं जगत्-पिताने भी अपना पितृत्व भूलकर नन्द महाराजका पुत्रत्व स्वीकार किया है तथा बाल्यलीला-रससिन्धुमें जगत्को प्रवाहित कर दिया ॥ १-४ ॥

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।

गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेयो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥

अन्वयः—विप्राः (ब्राह्मणगण) सूत-मागध-वन्दिनः (सूत [पुराण वाचनेवाले], मागध [वंश-कीर्तनकारी], वन्दी [प्रस्ताव अनुरूप वर्णनकारी]) सौमङ्गल्यगिरः (शुभ आशीर्वाद प्रदान करने लगे) गायकाः (गायकगण) जगुः (गान करने लगे) च (और) भेयः दुन्दुभयः (वाद्य-यन्त्रविशेष) मुहुः (बारम्बार) नेदुः (स्वयं ही बजने लगे) ॥ ५ ॥

अनुवाद—उस समय ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करने लगे। सूत (पौराणिक वृत्तान्त कहनेवाले), मागध (राजाओंके वंशका वर्णन करनेवाले), वन्दी (उपस्थित विषयका वर्णन करनेवाले) और गायकवृन्द स्तवादि कीर्तन करने लगे। भेरी एवं दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ५ ॥

सारार्थदर्शनी—तदा विप्राः, सौमङ्गल्यगिरः—सौमङ्गल्यं गीर्षु येषां ते, शुभाशीर्वादका बभूवुः। सूतादयो जगुः। सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ॥ '॥ ५ ॥

भावानुवाद—‘सौमङ्गल्यगिरः’ अर्थात् जिनकी वाणीमें सुमङ्गल है, ऐसे ब्राह्मणगण शुभाशीर्वाद प्रदान करने लगे। सूत आदि गान करने लगे। उनमें पार्थक्य इस प्रकार है—“सूत पुराणोंके वक्ता हैं, मागध

वंश-महिमाका कीर्तन करनेवाले हैं एवं वन्दीगण प्रस्तावके अनुरूप प्रशंसा आदिका वर्णन करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

व्रजः संमृष्टसंसिक्त-द्वाराजिरगृहान्तरः ।

चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

अन्वयः—संमृष्ट-संसिक्त-द्वाराजिर-गृहान्तरः (पहले झाड़ूके द्वारा साफ सुथरा करनेके पश्चात् सुगन्धित जलसे छिड़काव किये गये गृहके द्वार, आङ्गन और मध्यभागवाले) व्रजः (गोप-वास) चित्र-ध्वज-पताका-स्रक्-चैल-पल्लव-तोरणैः (चित्र-विचित्र ध्वज, पताकाओंसे तथा विविध माला, वस्त्र-खण्ड और पल्लवोंके द्वारा बने हुए तोरणसे) [सजाये गये] ॥ ६ ॥

अनुवाद—व्रजपुरको चित्र-विचित्र ध्वजा, पताकाओं, पुष्प-मालाओं, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों, नवीन पल्लवों एवं बन्दनवारोंसे सजाया गया। इसी प्रकार सभी घरोंके मध्यभाग, द्वार, आँगन सुमार्जित किये गये एवं सुगन्धित जलके छिड़काव द्वारा सुसिक्त किया गया था ॥ ६ ॥

सारार्थदर्शिनी—आदौ सम्यक् मृष्टानि पश्चात् चन्दनपुष्पादिरसैः संसिक्तानि द्वाराण्यजिराण्यङ्गणानि गृहमध्यानि च यस्मिन् सः। चित्रध्वजपताकाभ्यां तथा चित्राणां स्रजां, चेलानां चेलखण्डानां, पल्लवानाञ्चेति त्रिविधैस्तोरणैर्विभूषितोऽभूदिति शेषः ॥ ६ ॥

भावानुवाद—व्रजके सभी घर, द्वार, आँगन और घरके मध्यभाग आदि पहले साफ-सुथरे किये गये। तत्पश्चात् वहाँ चन्दन, पुष्प-रस आदिका छिड़काव किया गया। इधर-उधर चित्र-विचित्र ध्वजा एवं पताकाएँ तथा पुष्पमाला, वस्त्रखण्ड और पल्लव आदिसे विभूषित तोरणद्वार आदि सजाये गये ॥ ६ ॥

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।

विचित्रधातुबर्हस्रगवस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७ ॥

अन्वयः—गावः वृषाः वत्सतरा (व्रजके गाय, बैल, बछड़े आदि गृहपालित पशुओंको) हरिद्रातैलरूषिताः (तेल-हल्दिका छाप लगाया

गया) [तथा वे] विचित्रधातु-बर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः (विचित्र गैरिकादि धातु, मोर-पंख, पुष्पमाला, वस्त्र, सोनेकी मालासे सुशोभित होने लगे ॥ ७ ॥

अनुवाद—गाय, बैल एवं बछड़ोंके अङ्गोंमें हल्दी और तेलका छाप लागाया गया तथा उन्हें विचित्र गेरू आदि रङ्गीन धातुओं, मयूर-पुच्छों, फूलोंके हारों, वस्त्रों एवं सोनेके आभूषणोंसे सजा दिया गया था ॥ ७ ॥

सारार्थदर्शिनी—रूषिता—लिप्ताः ॥ ७ ॥

भावानुवाद—‘रूषिताः’ अर्थात् लिप्त किया गया ॥ ७ ॥

महार्हवस्त्राभरण-कञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।

गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे राजन् (हे महाराज!) महार्हवस्त्राभरण-कञ्चुकोष्णीष-भूषिताः (महामूल्यवान् वस्त्र-आभूषण, अंगरक्षक, पगड़ी आदिसे विभूषित होकर) नानोपायनपाणयः (विविध प्रकारके उपहार हाथोंमें लेकर) गोपाः (ब्रजवासी गोपगण) समाययुः (नन्दालयमें आये) ॥ ८ ॥

अनुवाद—हे राजन्! सभी गोप बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, अंगरखे एवं पगड़ियोंसे सुशोभित होकर विविध प्रकारके उपहारकी सामग्रियाँ हाथोंमें लेकर नन्दबाबाके घर आये ॥ ८ ॥

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।

आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ ९ ॥

अन्वयः—गोप्यः च (और ब्रजवासी गोपरमणियाँ) यशोदायाः (नन्दपत्नी यशोदाका) सुतोद्भवम् (पुत्र होने का समाचार) आकर्ण्य (सुनकर) मुदिताः (परमानन्दित होकर) वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः (वस्त्र, अलङ्कार, काजल आदिसे) आत्मानं (अपने-अपने शरीरको) भूषयाञ्चक्रुः (अलंकृत किया) ॥ ९ ॥

अनुवाद—गोपियाँ भी यशोदाजीके पुत्र-जन्मका समाचार सुनकर अति आनन्दित हो गयीं। उन्होंने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, अलङ्कार एवं अञ्जन इत्यादिके द्वारा अपना शृङ्गार किया ॥ ९ ॥

सारार्थदर्शिनी—गोप्यः—श्रीयशोदाया यातृप्रभृतयः ॥ ९ ॥

भावानुवाद—‘गोप्यः’—यशोदाजीकी जिठानी आदि ॥ ९ ॥

नवकुङ्कुमकिञ्जल्क-मुखपङ्कजभूतयः ।

बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥

अन्वयः—नवकुङ्कुमकिञ्जल्क-मुखपङ्कजभूतयः (नवीन केसर कुंकुमकी शोभासे भी अधिक शोभाशाली मुखकमलवालीं) पृथुश्रोण्यः (निविड़ नितम्बिनी) चलत्कुचाः (कम्पित पयोधरयुगलवाली) [गोपियाँ] बलिभिः (दुर्वा-अक्षत पात्र आदि उपहारोंको लेकर) त्वरितं (अतिशीघ्र) जग्मुः (नन्दालयको गयीं) ॥ १० ॥

अनुवाद—नवीन कुंकुम केसरसे भी उनका मुखकमल बड़ा ही सुन्दर लग रहा था। वे विशाल नितम्बोंवाली गोपियाँ भेंटकी सामग्रियाँ लेकर अतिशीघ्र नन्दगृहकी ओर चल पड़ी। वेगपूर्वक चलनेसे उनके कुचयुगल हिल रहे थे ॥ १० ॥

सारार्थदर्शिनी—नवकुङ्कुमकिञ्जल्कादपि मुखपङ्कजे, भूतिः शोभा, यासां ताः। बलिभिः—स्वर्णमुद्रा-रत्नहारानर्घ्यवस्त्रनारिकेलादिफलाक्षत-दूर्वाचन्दनपुष्पमालाद्यैः स्वर्णपात्रस्थैः स्वर्णरसरञ्जितवस्त्राच्छादितैर्वाग्मपाणिगृहीतैः सहिता इत्यर्थः। पृथुश्रोण्योऽपि त्वरितं जग्मुः, हर्षोत्सुक्यावेगवशात् ॥ १० ॥

भावानुवाद—नवीन कुंकुमसे भी अधिक शोभा जिनके मुखकमल की है, वे गोपियाँ। ‘बलिभिः’—अपने-अपने बाँये हाथोंमें लिये हुए स्वर्ण-रसरञ्जित वस्त्र द्वारा आच्छादित स्वर्णपात्रमें स्थित स्वर्णमुद्रा, रत्नहार, बहुमूल्य-वस्त्र, नारियल आदि फल, अक्षत, दुर्वा, चन्दन और पुष्पमाला आदि उपहारोंके साथ, यह अर्थ है। विशाल नितम्बयुक्ता होकर भी आनन्द, उत्सुकता और आवेगके कारण जल्दीसे जल्दी नन्दभवनमें जाने लगी ॥ १० ॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
 श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
 नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
 व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥

अन्वयः—नन्दालयं व्रजतीः (नन्दालयको जाती हुई) गोप्यः (गोपियाँ) सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यः (कानोंमें समुज्ज्वल मणिमय कुण्डल और कण्ठमें पदक) चित्राम्बराः (विचित्र वस्त्र) शिखाच्युतमाल्यवर्षाः (चोटिसे गिरती जा रही पुष्पमालाएँ) सवलयाः (हाथोंमें कंगन) [तथा] व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः (शीघ्रगतिये जानेके कारण दोलायमान कानोंके कुण्डल, पयोधर और हारके सौन्दर्यसे) पथि (मार्गमें) विरेजुः (सुशोभित होने लगीं) ॥ ११ ॥

अनुवाद—जिस समय गोपियाँ नन्दालयकी ओर जा रही थीं, उस समय उनके कानोंमें चमकती हुई मणियोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे। गलेमें सोनेके हार जगमगा रहे थे। दोनों हाथोंमें जड़ाऊ कंगन शोभा पा रहे थे। उन्होंने रङ्ग-बिरङ्गे सुन्दर-सुन्दर विचित्र वस्त्र पहन रखे थे एवं मार्गमें उनकी चोटियोंसे पुष्पमालाएँ गिरती जा रही थीं। दोलायमान कुण्डल, पयोधर और मालाओंसे सुशोभित होकर वे रास्तेमें जा रही थीं ॥ ११ ॥

सारार्थदर्शिनी—वर्णिता अपि ताः पुनर्भक्तिभरेणातृप्त्या वर्णयति—गोप्य इति। शिखा—धम्मिल्लाग्राणि। व्रजतीः—व्रजन्त्यः ॥ ११ ॥

भावानुवाद—पहले कहे जानेपर भी भक्तिभावमें अतृप्तिके कारण फिरसे उन गोपियोंका वर्णन 'गोप्य' आदि श्लोक द्वारा कर रहे हैं। उन गोपियोंकी वेणियोंमें बँधी हुई फूलोंकी मालाएँ स्खलित होकर गिरनेसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो मार्गमें फूलोंकी वर्षा हुई है ॥ ११ ॥

ता आशिषः प्रयुज्जानाश्चिरं पाहीति बालके।

हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥

अन्वयः—बालके (नन्दनन्दन) चिरं पाहीति (चिरजीवि हों) [इस प्रकार] आशिषः (आशीर्वाद) प्रयुञ्जानाः (देती हुई) ताः (वे गोपियाँ) हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः (हलदिचूर्ण, तैल और पानी आदि) सिञ्चन्त्यः (एक-दूसरेके अङ्गोंमें फेंकती हुई) अजनं (श्रीभगवान्की महिमा) उज्जगुः (बालकके मङ्गलके लिए उच्चःस्वरसे गाने लगी) ॥ १२ ॥

अनुवाद—वे सब गोपनारियाँ—‘चिरकाल राजा होकर प्रजापालन करो’—इस प्रकार आशीर्वाद प्रदानपूर्वक हल्दीचूर्ण और तेलसे मिले हुए पानीके द्वारा भगवान्को अभिषिक्त कर उनकी स्तुतिगान कर रहे थे ॥ १२ ॥

सारार्थदर्शिनी—सूतिकान्तर्गृहं प्रविश्य चिरं पाहीति, राजपुत्रत्वेन राजा भूत्वेति भावः। जीवेति पाठे वात्सल्यकारुण्योदयः। ततो बहिर्निसृत्य हरिद्रादिभिः परस्परं जनं सिञ्चन्त्य उच्चैर्जगुः ॥ १२ ॥

भावानुवाद—पहले गोपियोंने सूतिकागृहमें प्रवेशकर ‘चिरं पाही’ अर्थात् चिरकाल राजा होकर प्रजापालन करो—इस प्रकार आशीर्वाद प्रदानकर सभीने अपना-अपना उपहार समर्पण किया। ‘चिरं जीव’ अर्थात् चिरंजीवी हो—ऐसे पाठान्तरसे वात्सल्य-सूचक कारुण्य-भावका उदय जानना होगा। उसके पश्चात् घरसे बाहर निकलकर हल्दी, तेल, दही, जल आदिसे एक दूसरेको सींचने लगीं तथा उच्चस्वरसे भगवत्सम्बन्धी गीत गान करने लगीं ॥ १२ ॥

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।

कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥

अन्वयः—विश्वेश्वरे (जगत्के प्रभु) अनन्ते (अपरिसीम ऐश्वर्य-माधुर्य-निकेतन) कृष्णे (सर्वाकर्षक परमानन्द-स्वरूप स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण) नन्दस्य व्रजम् (नन्दालयमें) आगते (आविर्भूत होनेपर) महोत्सवे (कृष्णजन्म महा-महोत्सवमें) विचित्राणि वादित्राणि (वीणा-वेणु-मुरज आदि विचित्र वाद्य) अवाद्यन्त (बजने लगे) ॥ १३ ॥

अनुवाद—इस प्रकार विश्वेश्वर अनन्त श्रीकृष्णके श्रीनन्द महाराजके घरमें प्रकट होनेपर उनके जन्म महोत्सवमें विचित्र वाद्यसमूह बजने लगे ॥ १३ ॥

सारार्थदर्शिनी—अवाद्यन्तेति त्रिलोक्यामेव, यतः कृष्णे विश्वस्यैवेश्वरे । तानि वाद्यान्यनन्तान्येव, यतोऽनन्ते इति ॥ १३ ॥

भावानुवाद—त्रिभुवनमें सर्वत्र विचित्र वाद्य यन्त्र बजने लगे, क्योंकि अपरिसीम ऐश्वर्य और माधुर्यके आश्रय निखिलेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दव्रजमें स्वयं अवतीर्ण हुए हैं। क्योंकि वे अनन्त ही हैं, अतएव वाद्ययन्त्र भी अनन्त हैं ॥ १३ ॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।

आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥

अन्वयः—गोपाः (नन्द-व्रजनिवासी गोपगण) हृष्टाः (आनन्दित होकर) परस्परम् (एक-दूसरोंमें) दधिक्षीरघृताम्बुभिः नवनीतैश्च (दही, दूध, घी, जल और नवनीत) आसिञ्चन्तः (विशेष रूपसे लेपते हुए) चिक्षिपुः (बलपूर्वक कीचड़में एक दूसरेको गिराने लगे) ॥ १४ ॥

अनुवाद—आनन्दसे मतवाले होकर गोपगण एक-दूसरेपर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे और परस्पर एक-दूसरेके मुखपर मक्खन मलने लगे। इस प्रकार एक-दूसरेपर मक्खन आदि द्रव्यसमूह फेंक-फेंककर आनन्दपूर्वक नन्दबाबाके पुत्रका जन्मोत्सव मनाने लगे ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शिनी—चिक्षिपुः—प्रयासार्थं बलेन प्रच्छन्नतया पिच्छिलपङ्के स्खलयामासुः ॥ १४ ॥

भावानुवाद—गोपगण दधि, दुग्ध, घी और जल द्वारा एक दूसरेको सींचने लगे, एक दूसरेके शरीरपर मक्खन फेंकने लगे एवं 'चिक्षिपुः'—बलपूर्वक या पीछेसे पकड़कर एक दूसरेको कीचड़में गिराने लगे ॥ १४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड जिनके इशारेसे परिचालित होते हैं, जिनका कृपाकटाक्ष पानेके लिए ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि लालायित रहते हैं, जिनके अंशके अंश महाविष्णुके लोमविवरमें धूलकणोंकी भाँति अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड विलीन हो जाते हैं, ऐसे स्वयं-भगवान् सर्वकारण-कारण श्रीकृष्णने जिस नन्दालयमें आगमन किया है, वहाँपर नन्द महाराज या ब्रजवासी किसीको भी श्रीकृष्णके प्रति कोई संकोच या गौरवबुद्धि नहीं, स्तव-स्तुति नहीं, वर प्रार्थना नहीं, भय नहीं, दैन्य भी नहीं, केवल है—दिल भरा प्यार, आनन्द कोलाहल, निष्कपट आशीर्वाद, आन्तरिक कल्याणकी कामना और सबके हृदयमें अपरिसीम परिपूर्णता। श्रीगोविन्दके आगमनसे गोपराज नन्दके आनन्द-भाण्डारके बन्दद्वार खुल गये। वे अपने कोषागारके धन-रत्न आदिका मुक्तहस्तसे दान देने लगे। अन्तःपुरके मुक्त प्रांगणमें मुक्त ब्रजवासियोंके साथ उन्मुक्त हृदयसे प्रीति-व्यवहार चल रहा है। समागत ब्राह्मणगण मुक्तकण्ठसे नन्दनन्दनके दीर्घ जीवनकी कामनाकर आशीर्वाद करने लगे। सूत, मागध, वन्दी आदि सभी मुक्त-हृदयसे अपने-अपने कार्य स्तव-स्तुति, वंशावलीकी महिमाका गान आदिमें लगे हुए हैं। गायकगण परमानन्दसे मुक्त-कण्ठसे गोपराज नन्दकी पुत्र-प्राप्ति और उनके सौभाग्यकी घोषणा करते हुए सुस्वरसे—‘नन्दको आनन्द भयो, जय कन्हैया लालकी, हाथी दियो घोड़ा दियो आर दियो पालकी’—गान करने लगे। उस गानके तालमें ताल मिलाकर मृदुमन्दनादसे दुन्दुभि-ध्वनि होने लगी। इस प्रकार नन्दभवन पूर्ण रूपसे आनन्द-निकेतनके रूपमें बदल गया।

आनन्दमयके आगमनसे नन्दभवन आज आनन्दसे परिपूर्ण हो गया। उनके स्वरूपानन्दके साथ नन्द-यशोदाका भी वात्सल्यप्रेम मिलकर एक अद्भुत आनन्दकी बाढ़ बहने लगी। उसमें ब्रजके समस्त ग्राम, पल्ली आदि बहने लगे। ब्रजके प्रत्येक गृहस्थके द्वारपर केलेके स्तम्भ स्थापित किये गये। पूर्णकुम्भ भी स्थापन किये गये एवं पल्लव-पुष्प आदिसे निर्मित तोरण-द्वार सुशोभित होने लगे। गृहाङ्गन परिष्कृत एवं उनमें पद्म, स्वस्तिकादि चिह्न अङ्कित किये गये। मार्गसमूह सुमार्जित, परिष्कृत और सुगन्धित-जल द्वारा सींचे गये एवं

व्रजकी गायें, बैल और भैंसों भी परमानन्दमें सुसज्जित की गयीं। उनके शृङ्ग सिन्दुरसे लिप्त, ललाटदेश हल्दीचूर्ण-मिश्रित तैल द्वारा सिक्त, पृष्ठदेश स्वर्णसूत्र द्वारा जड़ित बहुमूल्य वस्त्रोंके द्वारा आच्छादित और उनका गला क्षुद्र घण्टिकाओंकी मालासे परिशोभित होनेसे वे भी परमानन्दमें मत्त होकर इधर-उधर विचरण करने लगे। व्रजके प्रत्येक गृहके ऊपरमें ध्वज, पताकादि सजाये गये, मृदुमन्द पवनके हिल्लोलसे वे सुविचित्र वस्त्र-खण्डके द्वारा रचित पताकाएँ पत्-पत्-ध्वनिके साथ उड़ने लगीं—मानो वे नन्दनन्दनके आगमनके सौभाग्यसे गर्वित होकर स्वर्ग-वैकुण्ठ आदिके साथ स्पद्धा कर रही हैं एवं पत्-पत् शब्दसे उन्हें पृथिवीमें गिरकर इस परमानन्दका आस्वादन करनेके लिए इङ्कित कर रही हैं। ध्वज-पताका आदिको उड़ते हुए देखकर ऐसा लगने लगा जैसे आज व्रजके घर भी मानो आनन्दसे नृत्य कर रहे हैं।

गोपराजका पुत्र पैदा हुआ है—यह समाचार सुनकर व्रजवासी गोपगण परमानन्दमें विभोर हो गये। वे बहुमूल्य वस्त्र, अलङ्कार कञ्चुक (कुर्ता) और उष्णीष (पगड़ी) आदिसे सज-धजकर दधि, दुग्ध, घृतादि उपहार एवं राजपुत्रके लिए बहुमूल्य रत्नादि लेकर राजभवनमें उपस्थित हुए। यशोदाकी सखी-सहेलियाँ तथा भाई-बन्धुगण सभी परमानन्दमें निमग्न हो गये। उन्होंने अपने पुत्रके जन्ममें कभी भी ऐसा आनन्द उपभोग नहीं किया था। वे सभी नन्दालयमें आकर प्रियसखी यशोदाकी गोदमें नवजात शिशुको देखनेके लिए व्याकुल हो उठे। सभी अपने घरोंमें यथोचित माङ्गलिक कर्म सम्पन्नकर नन्दालयमें जानेके लिए वस्त्र, अलङ्कार, अंजन, महावर आदिसे सुसज्जित हुईं। यद्यपि इन गोपियोंने अभी तक यशोदानन्दनको देखा नहीं था, फिर भी उनका स्वभावसिद्ध वात्सल्यप्रेम उमड़ पड़ा। उससे उनका मुखकमल नवकुंकुमसे भी परम शोभनीय अरुणरागमें रंजित हो गया और उनका वात्सल्यप्रेमोचित कृष्ण-अनुराग मानो सर्वाङ्गमें विभूषित हो गया। वे स्वर्ण-थालोंमें धान, दुर्वा, हल्दी, आदि माङ्गलिक द्रव्योंको लेकर शीघ्रातिशीघ्र नन्दालयकी ओर चलने लगीं। उस समय वात्सल्यप्रेमसे उनके स्तनोंसे दुग्धधारा चुचुआकर वक्षःस्थलके वस्त्रोंको सिक्त कर रही थी।

रूप, गुण एवं लीलामाधुरीमें जो प्राकृत और अप्राकृत जगत्के चित्ताकर्षक हैं, जिनके स्वरूप, ऐश्वर्य एवं माधुर्यका अन्त नहीं है, जो अखिल ब्रह्माण्डके एकमात्र पति हैं, वे आज ब्रजराज श्रीनन्दजीके वात्सल्यप्रेमसे आकृष्ट होकर उनके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए हैं। नन्दमहाराज या ब्रजवासी नर-नारी किसीको भी अपने देहतककी सुध-बुध नहीं रही, वे सभी वात्सल्यप्रेममें मुग्ध एवं यशोदानन्दनकी बालमाधुरी-समुद्रमें डूबे हुए थे। श्रीनन्दमहाराज और सारे ब्रजवासी पुत्र-प्राप्तिके आनन्दमें विभोर हो रहे थे। बड़े सौभाग्यसे हमने भगवान्को पाया है—यह विचार उनके मनमें कभी नहीं आया। इसलिए वे पुत्रोत्सवमें ही प्रमत्त हो रहे थे। इस वात्सल्यप्रेमके आधार नन्दमहाराज एवं ब्रजवासियोंके अतिरिक्त ब्रह्माण्डके सभी लोग श्रीभगवत्-आविर्भाव-जनित सौभाग्यमें आनन्द-विभोर हैं। इसलिए नन्दालयके उत्सवके वाद्य-यन्त्रोंकी तालमें ताल मिलाकर पृथ्वी, स्वर्ग आदि चौदह भुवनोंके वाद्ययन्त्र भी अपने-आप बजने लग गये। वाद्ययन्त्रोंके अधिष्ठात्री देवता ब्रह्माण्डमें श्रीभगवान्का आविर्भाव देखकर अपनेको धन्य और कृतार्थ मानकर मधुर ध्वनि प्रकाश करने लगे।

श्रीभगवान्की लीलास्थली ब्रजभूमि पृथिवीपर प्रकट हुई है एवं श्रीकृष्ण उसमें आविर्भूत हुए हैं—इस सौभाग्यसे शरीरकी सुध-बुध खोकर वाद्ययन्त्रके अधिष्ठात्री देवतागण परमानन्दमें ब्रह्माण्डके समस्त वाद्ययन्त्रोंकी ध्वनि करने लगे।

इस प्रकार ब्रजभूमि श्रीकृष्णजन्मोत्सवके आनन्द-कोलाहलमें डूब गयी। इस महामहोत्सवमें गोपोंके आनन्दकी सीमा न रही। उपनन्द आदि वयोवृद्ध एवं परम गम्भीर प्रकृतिके गोप भी परमानन्दमें मत्त होकर दुदुन्धि आदिके तालपर नृत्य करने लगे। क्रमशः गोपोंका आनन्द चरमसीमापर पहुँच गया। वे वयोवृद्ध होकर भी बालकोंकी भाँति चञ्चल हो गये एवं एक-दूसरेपर मक्खन फेंकने लगे तथा दधि-दुग्ध आदि सिरपर डालने लगे। दधि, दुग्ध आदिके सिञ्चनसे सफेद होकर सभी गोपगण परमानन्दसे नृत्य करने लगे। इस नन्दोत्सवके महानन्दकी तरङ्गोंने पृथिवीको आनन्द-समुद्रमें डुबाकर

स्वर्ग और ब्रह्मलोक तकको प्लावित कर दिया। इससे देवतागण भी आनन्दमत्त होकर नृत्य करने लगे। इस प्रकार वात्सल्यप्रेमकी घनीभूतमूर्ति श्रीनन्द महाराज और व्रजवासीगण श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवके परमानन्दमें आत्मविभोर होकर ब्रह्मानन्दको भी तुच्छ मानकर नृत्य करने लगे ॥ ५-१४ ॥

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम्।

सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत्।

विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥

अन्वयः—महामनाः (उदारचित्त) नन्दः (गोपराज श्रीनन्दने) तेभ्यः (उन सभी गोप-गोपी) सूत-मागध-वन्दिभ्यः (सूत, मागध, वन्दी) [और] ये अन्ये विद्योपजीविनः (गायक, वादक, नर्तक आदि सभीको) वासः अलङ्कारगोधनं (वस्त्र, अलङ्कार, गाय, स्वर्ण आदि) [दान दिये] ॥ १५ ॥

अदीनात्मा (उदार स्वभाववाले श्रीनन्द महाराज) विष्णोः आराधनार्थाय (श्रीविष्णुकी प्रीतिके लिए) स्वपुत्रस्य उदयाय च (और अपने पुत्रकी मङ्गल कामनासे अर्थात् दानादिके द्वारा श्रीविष्णु प्रसन्न हों तथा उससे मेरे पुत्रका मङ्गल हो, ऐसा सङ्कल्प करते हुए) तैः तैः कामैः (जिनकी जो जो इच्छा है, उन्हें वही वस्तु दान देकर) यथोचितं (जाति-विद्या-उमरके अनुरूप) अपूजयत् (सबको सम्मानित किया) ॥ १६ ॥

अनुवाद—परम उदार नन्दजीने उन सब गोप-गोपियोंको वस्त्र, आभूषण एवं गौएँ प्रदान कीं। भगवान्की प्रसन्नता एवं उसके फलस्वरूप अपने पुत्रके मङ्गलके उद्देश्यसे उदारजनोंमें श्रेष्ठ नन्दजीने सूत, मागध, वन्दी एवं अन्यान्य विद्याओंसे जीवन निर्वाह करनेवालोंको मुँह-माँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया ॥ १५-१६ ॥

सारार्थदर्शिनी—महामनाः महोदारमनाः, प्रादात्। येऽन्ये तेभ्योऽपि, विद्याः नृत्यगीतवाद्यशस्त्रशास्त्राद्याः। तैस्तैरिति, यान् यान् अयाचन्तेत्यर्थः। यथोचितं,

विद्या-गौरवादिकमनतिक्रम्येत्यर्थः। दानादेः फलमाह-विष्णोराधनस्यार्थः विष्णुसन्तोषस्तस्मै, तस्यापि फलं-स्वपुत्रस्याभ्युदयः। अनेन दानादिकर्मणा विष्णुः प्रसीदतु, विष्णोः प्रसादेन मत्पुत्रः कुशली भवत्विति सङ्कल्पयन्नित्यर्थः। चकारेण नवग्रहदिक्पालादीनामपि स्वपुत्रं प्रति प्रसादार्थम्॥ १५-१६ ॥

भावानुवाद-‘महामनाः’-अत्यन्त उदार हृदयवाले श्रीनन्द महाराजजीने उन सभी गोप-गोपियोंको तथा दूसरे जो नृत्य, गीत, वाद्य, शस्त्र, शास्त्रादि विद्या-उपजीवि थे, उन सबको वस्त्र, अलङ्कार, गाय, धन आदि प्रदान किये। समागत व्यक्तियोंमें जिन्होंने जो कुछ प्रार्थना की, उन्हें वही दान करने लगे। ‘यथोचित’ अर्थात् विद्या, आयु और गौरवादिके अनुसार माला, चन्दन, ताम्बुल और प्रोत्साहन आदि वचनोंसे सबको सम्मानित किया गया। दान आदिका फल कह रहे हैं-‘विष्णोराधनार्थाय’-विष्णुकी आराधना कहनेसे विष्णुकी सन्तुष्टि और उसका भी फल-अपने पुत्रका कल्याण है। अर्थात् इस दान आदि कर्मके द्वारा श्रीविष्णु प्रसन्न हों और विष्णुकी प्रसन्नतासे मेरे पुत्रका मङ्गल हो-ऐसा सङ्कल्पकर उन्होंने दान आदि कर्म किये। ‘च’ कार के प्रयोगसे अपने पुत्रके मङ्गलकी कामनाके लिए नवग्रह, दिक्पाल आदिका भी पूजन किया॥ १५-१६ ॥

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता।

व्यचरद्विव्यासस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥

अन्वयः-नन्दगोपाभिनन्दिता (गोपराज श्रीनन्दजी तथा सभी गोपोंके द्वारा सम्मानिता) महाभागा (सौभाग्यवती) रोहिणी च (बलदेव-जननी रोहिणी भी) दिव्यवास-स्रक्-कण्ठाभरण-भूषिता (दिव्य वस्त्र, माला, कण्ठ-आभरण आदि अलङ्कारोंसे विभूषित होकर) व्यचरत् (उस महोत्सवके विविध कामोंमें प्रीतिपूर्वक इधर-उधर घूमने-फिरने लगीं)॥ १७ ॥

अनुवाद-महाभाग्यवती रोहिणीदेवी भी श्रीनन्द महाराजके द्वारा सम्मानित होकर तथा दिव्य वस्त्र-मालाओं एवं गलेमें सोनेके हार आदि आभूषणोंसे सुसज्जित होकर समागत स्त्रियोंका सत्कार करनेके उद्देश्यसे इधर-उधर विचर रही थीं॥ १७ ॥

सारार्थदर्शिनी—महाभाग, वसुदेवपत्नीभ्यः सर्वाभ्योऽपि श्रीकृष्णबाल्यलीलोत्सव-
लाभादिति भावः। नन्दगोपेन नन्दराजेन, 'गोपो भूपेऽपि' इत्यमरः। अभिनन्दिता,
त्वदागमनमङ्गलेनैव मत्पुत्रोऽयमभूदिति। व्यचरत्, समागतस्त्रीजनसम्माननार्थमित्यर्थः।
दिव्यवासादिभिः श्रीयशोदानन्दाभ्यां दत्तैर्भूषिता पत्युर्बन्धनादिदुःखं, स्वस्य च तद्विच्छेदादि-
दुःखं, श्रीकृष्णजन्मोत्सवानन्देन विस्मृतैवेति भावः ॥ १७ ॥

भावानुवाद—श्रीरोहिणीदेवी श्रीवसुदेवकी सभी पत्नियोंमेंसे महा-
सौभाग्यवती थीं—क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्णके जन्मोत्सवका एवं बाल्य-
लीलाका दर्शन किया, यह भाव है। 'नन्दगोपेन' अर्थात् नन्दराजके
द्वारा, क्योंकि अमरकोषमें गोप शब्दका एक अर्थ राजा भी है।
'अभिनन्दिता'—हे रोहिणी! तुम्हारे आगमनरूपी मङ्गलसे ही आज मुझे
इस पुत्रकी प्राप्ति हुई है, इस प्रकार व्रजराजके द्वारा अभिनन्दित
होकर 'व्यचरत्' अर्थात् समागत स्त्रीजनोंके सम्मानके लिए इधर-उधर
विचरण करने लगी। 'दिव्यवास-स्रक्-कण्ठाभरण-भूषिता'—श्रीयशोदानन्दके
द्वारा प्रदत्त दिव्य वसन-भूषण आदिसे विभूषित होकर श्रीनन्दनन्दनके
जन्मोत्सवके आनन्दमें पतिके (वसुदेवके) बन्धनादिका दुःख तथा
स्वयंका पतिके विच्छेदादि-जनित दुःखोंको भूल गयीं, यह भाव
है ॥ १७ ॥

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।

हरेर्निवासात्मगुणै

रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥

अन्वयः—नृप (हे राजन्!) हरेः निवासात्मगुणैः (भगवान्
श्रीकृष्णकी नित्य निवासभूमि अपने गुणोंके द्वारा) सर्वसमृद्धिमान्
(स्वतः ही सभी सम्पदोंसे परिपूर्ण) [होनेपर भी] नन्दस्य व्रजः
(श्रीगोपराजका राज्य) ततः आरभ्य (श्रीकृष्णके जन्मदिनसे आरम्भकर)
रमाक्रीडं (महालक्ष्मियोंकी क्रीड़ाभूमि) अभूत् (बन गया) ॥ १८ ॥

अनुवाद—हे राजन्! नन्दव्रज श्रीहरिका वासस्थान होनेके कारण
अपने गुणोंके द्वारा ही सब प्रकारसे नित्य ही समृद्ध होनेपर भी
श्रीकृष्णके आविर्भावके समयसे ही वह स्थान लक्ष्मीका विहारस्थल
बन गया ('लक्ष्मीका विहारस्थल हुआ')—इससे श्रीकृष्ण-आविर्भावके

पश्चात् सर्वलक्ष्मीमयी श्रीमती राधिकाका आविर्भाव सूचित हुआ है) ॥ १८ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, कुबरेणाप्यशक्यं नराणां कामितपूरणं श्रीनन्दराजेन कथं कृतं? इत्यत आह—तत इति। हरेर्निवासभूतस्य आत्मनो गुणैर्ब्रजं सर्वसमृद्धिमानेव सर्वदा, तत आरभ्य तु, रमायाः सर्वसम्पत्तेः, आक्रीडं क्रीडास्पदमभूत्। यदि सर्वसम्पत्तिरेव नन्दभवने क्रीडितुमारेभे, तदा कस्य देयवस्तुनस्तत्राभाव इति भावः ॥ १८ ॥

भावानुवाद—यदि प्रश्न हो कि जब धनराज कुबेर भी मनुष्योंकी इच्छाओंको पूर्ण करनेमें असमर्थ होते हैं, तब नन्द महाराजने कैसे उन सबकी इच्छाओंको पूर्ण किया? इसके उत्तरमें 'तत' इत्यादि श्लोक कह रहे हैं। श्रीहरिकी निवासभूमि—स्वरूप ब्रज अपने गुणोंके द्वारा सर्वदा ही सर्व-समृद्धिमान था। फिर भी श्रीकृष्णके जन्मदिनसे ब्रजभूमि 'रमायाः' अर्थात् समस्त सम्पत्तियोंकी क्रीडास्थली बन गयी। जब समस्त सम्पत्तियाँ नन्दभवनमें क्रीडा करने लग गयीं, तब नन्द महाराजको दान देनेके लिए कौन-सी वस्तुका अभाव हो सकता है? यह भाव है ॥ १८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—समयानुसार नन्दालयके नृत्य-गीत आदि आनन्द-उत्सव समाप्त होनेपर सभी परमानन्दमें स्नान और जलक्रीडा सम्पन्नकर पुनः नन्दालयमें उपस्थित हुए तथा अति स्वादिष्ट भोजनसे परितृप्त हुए। गोपराज नन्दने गायक, वादक, नर्तक आदि सभीको अजस्र धन-रत्न आदि दान दिये। नन्द महाराजके द्वारा प्रदत्त वस्त्र, अलङ्कार, गोधन आदिका परिमाण इतना अधिक था कि उन्हें लेकर घरमें जाना भी सबके लिए असम्भव हो रहा था। गोपराज नन्द अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीकृष्णके पिता हैं, अतएव उनके लिए इतना दान देना असम्भव नहीं है। सर्वत्र देखा जाता है कि ग्रहीता दातासे प्रार्थनाकर धन आदि ग्रहण करते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवमें इसके विपरीत हुआ। नन्द महाराज स्वयं दाता होकर दान लेनेवालोंको बुला-बुलाकर धन-रत्न आदि दान दे रहे थे। दान लेनेवाले दान पाकर परिपूर्ण होकर और नहीं, बस करें, और नहीं

चाहिये, कहने लगे। परन्तु नन्द महाराज दान करके तृप्त नहीं हो रहे थे, वे और भी दान करनेके इच्छुक हो रहे थे। इतना दान करके भी वे विचार कर रहे थे कि यह सब कुछ मेरे पुत्रके जन्मके अनुरूप नहीं है, इसलिए वे बारम्बार सबको दान ग्रहण करनेके लिए अनुरोध कर रहे थे।

गोपराज नन्द स्वभावतः ही अदीनात्मा हैं अर्थात् वे कभी भी कोई अभाव या अपूर्णताका अनुभव नहीं करते। उसपर वे निरन्तर श्रीकृष्णकी चिन्तामें तन्मय रहते हैं और फिर श्रीकृष्णके जन्मके पश्चात् चिन्तनीय वस्तुका साक्षात् दर्शनकर समधिक उल्लसित हैं, अतएव औदार्य-वात्सल्य आदि समस्त सद्गुण उनमें रहेंगे, इसमें क्या कोई सन्देह है? जिनके वात्सल्यप्रेमके आकर्षणसे स्वयं-भगवान् अवतीर्ण हुए हैं, उन्हें क्या कोई अभाव रह सकता है? जिनकी कृपासे जगत्के जीवोंने नन्दनन्दनकी उपासना करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, उनके जैसा परम उदार-दाता ब्रह्माण्डमें कौन होगा? गोपराज नन्दने अपने पुत्र-जन्मोत्सवमें समागत ब्राह्मण-मण्डली एवं सूत, मागध आदि सभीको दान दिया, परन्तु किसीसे भी उन्होंने भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि या स्वर्गकी कामना नहीं की, एकमात्र भगवान् प्रसन्न हों और मेरे नवजात बालकका कल्याण हो, सबसे यही माँगा। उनकी सभी कामनाएँ श्रीकृष्णके लिए ही थी। इस प्रकार विवेचना करनेपर देखा जाता है—उनकी यह कामना सभीके लिए परम पुरुषार्थ-स्वरूप है। श्रीनन्दनन्दनकी सेवासे अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड सन्तुष्ट और कृतार्थ हो जाते हैं। नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेमवान महाराज नन्दके लिए जो स्वाभाविक है, वह ब्रह्मादि देवताओंके लिए भी सुदुर्लभ है।

श्रीकृष्णके जन्मके कुछ समय पहलेसे ही वसुदेवजीकी पत्नी रोहिणीजी नन्दालयमें गुप्त रूपसे निवास कर रही थी एवं नन्दपत्नी यशोदाके साथ उनका आन्तरिक प्रीतिका बन्धन था। उनके नन्दालयमें आनेके कुछ दिन पश्चात् नन्दपत्नीका गर्भ-लक्षण प्रकाश पाने लगा, उससे नन्द-यशोदा एवं सभी व्रजवासी ऐसा मानते थे कि रोहिणी परम पतिव्रता एवं साध्वी हैं, उनके आगमनसे ही नन्द-यशोदाको

यह सौभाग्य लाभ हुआ है एवं उससे ही पुत्र-जन्मकी सूचना हुई है। श्रावणी पूर्णिमामें रोहिणीके पुत्र बलरामका जन्म हुआ। उसके आठ दिन पश्चात् भाद्र कृष्णाष्टमीमें महाराज नन्दका पुत्र हुआ। इससे महाराज नन्द और भी उल्लसित हुए एवं रोहिणीको आन्तरिक श्रद्धा और प्रीति करने लगे। रोहिणीनन्दन बलराम जन्म ग्रहणकर अब तक आँखोंको बन्दकर शय्यापर पड़े रहते थे, परन्तु नन्दपुत्रके जन्मके पश्चात् उन्होंने अपनी आँखे खोली, इसलिए रोहिणी और भी आनन्दित हुई।

श्रीकृष्णके जन्मके दूसरे दिन प्रातःकाल समस्त व्रजवासी नन्दालयमें उपस्थित हुए। श्रीनन्द महाराजजीने सबके निकट रोहिणीके सद्गुणोंकी प्रशंसा की एवं उन्हींके आगमनसे व्रजको सौभाग्य एवं पुत्रलाभ भी हुआ है—यह कहकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इस महोत्सवमें नन्द महाराजजीने रोहिणीको वस्त्र, अलङ्कार आदि दिये। रोहिणीने भी अत्यन्त प्रीति-आदरके साथ उन्हें ग्रहण किया। पतिव्रता रमणियोंके पतिकी अनुपस्थितिमें वसन-भूषण आदिसे सज्जित होना अनुचित होनेपर भी नन्दनन्दनके जन्म-महोत्सवमें महानन्दमें विभोर होकर श्रीनन्द महाराज द्वारा प्रदत्त वसन-भूषणादिसे सुसज्जित होकर उन्होंने महोत्सवमें योगदान किया।

श्रीकृष्णके जन्मोत्सवमें गोपराज नन्दके दानका परिमाण 'धेनुनां नियुते प्रादात्' आदि श्लोक (३) में वर्णन हुआ है। उसमें बाह्य विचारवाले व्यक्ति ऐसा मान सकते हैं कि नन्द महाराज कोई सम्राट या महामण्डलेश्वर भी नहीं थे, एक सामान्य राज्यके राजा हैं। अतः उनके भाण्डारमें इतना धन-रत्न कहाँसे आया? परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेवजीने 'तत आरभ्य नन्दस्य' आदि श्लोक (१८) में इस सन्देहको दूर किया है और उसमें श्रीकृष्णके जन्मस्थान व्रजभूमिके स्वरूपका भी वर्णन किया है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—गो-पालन-परायण गोपगण जहाँ निवास करते हैं, उस स्थानका नाम 'व्रज' है। नन्द महाराज व्रजके राजा हैं। श्रीनन्द महाराज नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेमवान हैं। उनके साथ भगवान्का नित्य-सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण उस नन्दव्रजमें नित्यकाल

लीला-विलास करते हैं। अतएव वह भगवान्‌की नित्य निवास-भूमि है। 'योऽसौ गोपेषु तिष्ठति अर्थात् जो सभी गोपोंके मध्यमें अवस्थान करते हैं'—इस गोपालतापनी श्रुति-वचनमें तथा 'वृन्दावनान्तरगतः सदा क्रीडति माधवः अर्थात् श्रीमाधव सर्वदा वृन्दावनमें लीला करते हैं'—इस स्कन्दपुराणके वचनसे एवं इस प्रकारके और भी बहुत-से श्रुति-पुराणादिके वचनोंसे यह स्पष्ट विदित होता है कि ब्रजभूमि श्रीभगवान्‌की नित्य निवासस्थली है। श्रीभगवान्‌का नित्य-निवासस्थल होनेसे ब्रजभूमि स्वभावतः ही सर्वसमृद्धिसे सम्पन्न है। जगत्‌में देखा जाता है, जहाँ कोई राजा या धनी व्यक्ति वास करते हैं, वह स्थान दूसरी जगहोंकी अपेक्षा अधिक समृद्धशाली होता है। तो फिर अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके पति भगवान् जहाँ पार्षदोंके साथ लीला करते हुए निवास करते हैं, वह स्थान सर्व-समृद्धियुक्त होगा, इसमें क्या विस्मय है?

चिन्तामणिप्रकरसद्वाषु कल्पवृक्षलक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।

लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं, गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्र० सं० २९)

अर्थात् "जहाँ लक्ष-लक्ष कल्पवृक्ष तथा मणिमय भवनसमूह विद्यमान हैं, जहाँ असंख्य कामधेनु गौएँ हैं, शत-सहस्र अर्थात् हजारों-हजारों लक्ष्मियाँ—गोपियाँ प्रीतिपूर्वक जिस परमपुरुषकी सेवा कर रही हैं, ऐसे आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ।"—इस ब्रह्मसंहिताके वचनमें ब्रजभूमिका वैभव कुछ-कुछ अनुभवगोचर होता है।

परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितसे कहा—“ब्रजभूमि पृथ्वीमें प्रकट होनेपर भी वह पृथ्वीकी भाँति पञ्चभूतका विकार नहीं है, वह चिन्मय वस्तु है। जगत्‌के जीवोंपर कृपा करनेके लिए भगवान् अनुग्रहकर अपने चिन्मय धामको इस मर्त्य-जगत्‌में प्रकाश करते हैं। अतएव मायाबद्ध जीव उसका स्वरूप नहीं जाननेपर भी वह सर्व समृद्धिमान है।” इसलिए गोपराज नन्दजीने श्रीकृष्णके जन्मोत्सवमें असंख्य धेनु और अजस्र धन-रत्न आदि दान किये हैं—यह सुनकर विस्मित होना या इसे असम्भव मानना कदापि उचित नहीं है।

श्रीभगवान्की अपार कृपासे उनकी द्वारका, मथुरा, व्रज आदि जो धाम पृथ्वीमें प्रकाशित हैं, श्रीभगवान् वहाँ-वहाँ नित्यकाल लीलाएँ करते हैं। किन्तु, वे सब धाम मायाबद्ध जीवोंके लिए दृष्टिगोचर नहीं हैं। श्रीभगवान् किसी-किसी समय जगत्के जीवोंको कृतार्थ करनेके उद्देश्यसे जब नित्यलीलाको जगत्में प्रकाश करते हैं, तब उनकी कृपासे उनकी लीला जगत्में प्रकाशित होती है, उसी लीलाको 'प्रकटलीला' कहा जाता है। "सर्वदेवमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित्। आविर्भावस्तिरोभावो भवेन्मेऽत्र युगे युगे॥ तेजोमयमिदं रम्यमदृश्यं चर्मचक्षुषा। (गौतमीय तन्त्र) अर्थात् श्रीभगवान्ने देवर्षि नारदसे कहा—मैं सर्वदा ही इस वृन्दावनमें वास करता हूँ, किन्तु कोई मुझे देख नहीं पाता है। युग-युगमें इस वनमें मेरा आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है अर्थात् किसी-किसी समय मेरी नित्यलीला सबके लिए दृश्य और किसी-किसी समय अदृश्य रहती है। यह स्थान अत्यन्त रम्य और तेजोमय है, इसे चर्मचक्षुओंसे दर्शन नहीं किया जा सकता।" स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण जब व्रजभूमिमें आविर्भूत हुए, तब उनकी नित्यलीला सबके दृष्टिगोचर होने लगी। यही उनकी प्रकटलीला है। इतने दिनोंतक यह लीला जगत्-जीवोंके लिए अदृश्य थी, परम करुणामय श्रीभगवान् जगत्-जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए द्वापरके अन्तभागमें इस लीलाको पृथ्वीपर एकबार प्रकट करते हैं।

'तत आरभ्य रमाक्रीडमभूत्'—उनकी यह लीला प्रकाशित होनेपर उनके धामका स्वरूप भी परिपूर्ण रूपमें प्रकाशित होता है एवं वह सर्वसम्पदकी अधिष्ठात्रीदेवी लक्ष्मीकी विहार-भूमि हो जाता है। श्रील जीव गोस्वामीपादने अपने लघु वैष्णव-तोषणीमें 'रमा' पदका विशेष अर्थ इस प्रकार किया है—"स्वयं नित्यप्रेयसीतया सेव्यत्वेन, 'नायं श्रिय' इत्यादौ वैकुण्ठश्रीविजयेन तासु, स्वयौषिदादिसर्वाण्येव योषिताणां परिहारेण च, व्रजदेवीनामेव परमरमारूपाणां, तासामपि परमरमायाः श्रीराधायाश्च तदानीमेवाविर्भावाद्विहार स्थानमपि बभूव इत्यर्थः।" अर्थात् श्रीब्रह्मसंहिता आदिमें श्रीकृष्णकी नित्य प्रेयसीके रूपमें गोपियाँ सेव्य होनेके कारण, श्रीमद्भागवतके (१०/४७/६०) श्लोकमें कहे गये श्रीउद्धवके वचनके अनुसार गोपियाँ वैकुण्ठकी

लक्ष्मियोंपर विजय प्राप्त करनेके कारण उन लक्ष्मियोंको और स्वर्गकी योषित आदि समस्त योषितोंको छोड़ देनेपर, समस्त लक्ष्मियोंमें श्रेष्ठ-लक्ष्मी-स्वरूप ब्रजदेवियाँ और उनमें भी सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मी-स्वरूपा श्रीराधिकाका ही वहाँ आविर्भाव होनेके कारण ब्रजभूमि उनका भी विहार स्थान बन गया, यह अर्थ है। विशेषकर श्रीकृष्णके जन्मके पन्द्रह दिन पश्चात् ही राधाजीका आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार प्रसङ्गक्रमसे भगवान्‌के प्रकटनमात्रसे परमलक्ष्मी-स्वरूपा गोपियोंका भी जन्म होना सूचित हुआ है, इससे वह ब्रजभूमि सर्वसमृद्धिमान हुई।

इसलिए नित्यसिद्ध पार्षद गोपराज नन्दजीका असंख्य धेनु और अजस्र धन-रत्न आदिका दान तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। नन्द महाराजका भाण्डार कभी खाली नहीं होता है, उसे लक्ष्मीजी सर्वदा परिपूर्ण करके रखती हैं। भगवान्‌के पार्षदगण भगवान्‌का सम्बन्ध लेकर जो कुछ भी करते हैं, वह सब भगवान्‌की लीलाके अन्तर्गत है। वहाँ सर्व-सम्पदकी अधिष्ठात्रीदेवी लक्ष्मी सदा-सर्वदा सेवा करती हैं, वही उनका नित्य कर्त्तव्य कर्म है॥ १५-१८॥

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।

नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरुद्वह॥ १९॥

अन्वयः—कुरुद्वह (हे कुरुश्रेष्ठ!) नन्दः (पुत्र जन्म-महोत्सवके पश्चात् गोपराज श्रीनन्द) गोकुलरक्षायां (अपनी राजधानी गोकुलकी रक्षाके लिए) गोपान् (बलिष्ठ गोपोंको) निरूप्य (नियुक्तकर) कंसस्य (कंसका) वार्षिक्यं करं (प्रतिवर्ष देय राजस्व-कर) दातुं (देनेके लिए) मथुरां (कंसकी राजधानी मथुरामें) गतः (गये)॥ १९॥

अनुवाद—हे कुरुकुलरक्षक! अनन्तर श्रीनन्द बाबा दूसरे बलिष्ठ गोपोंको गोकुलकी रक्षाके लिए नियुक्तकर स्वयं कंसको वार्षिक-कर प्रदान करनेके लिए मथुरा चले गये॥ १९॥

सारार्थदर्शिनी—चिरात् सर्वमनोहरपुत्रोत्पत्त्या प्राप्तमहानिधिरिव, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' इति विमृश्य, श्रीनन्दराजो यथा देवपितृदिक्पालग्रहादीन् पूजादिभिः

प्रसादयामास, तथा देशाध्यक्षं दुष्टनृपं कंसमपि स्वर्णमुद्रा-रत्नवस्त्राद्युपहारेण प्रसादयितुं वर्षिककर-दानमिषेण तत्समीपं गन्तुं न विललम्बे इत्याह—गोपानिति ॥ १९ ॥

भावानुवाद—चिरकाल तक प्रतीक्षाके बाद सर्वमनोहर पुत्रको पाकर महानिधिकी भाँति उसे सुरक्षित रखनेके उद्देश्यसे तथा 'शुभकार्यमें बहुत-से विघ्न उपस्थित होते रहते हैं'—ऐसा विचारकर श्रीनन्द महाराजने जैसे देवता, पितृपुरुष, दिक्पाल और ग्रहादिकी पूजादि करके उन्हें प्रसन्न किया, वैसे ही देशके सम्राट महादुष्ट कंसराजको भी वार्षिककर—स्वर्णमुद्रा, रत्न और वस्त्र आदि उपहार देकर प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे उनके निकट जानेमें कोई विलम्ब नहीं किया, इसलिए 'गोपान्' आदि श्लोक कह रहे हैं ॥ १९ ॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।

ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥

अन्वयः—वसुदेवः (श्रीवसुदेवने) भ्रातरं नन्दं (भ्राता नन्द महाराज) आगतं (व्रजसे मथुरा आये हैं) [ऐसा] उपश्रुत्य (लोगोंसे यह सुनकर) [तथा] राज्ञे (कंसको) दत्तकरं ज्ञात्वा (राजस्व-कर प्रदान करना हो गया है, अपने अनुचरके द्वारा यह जानकर) तदवमोचनं (नन्द महाराजजीका शकट गाड़ी जहाँ खोलकर रखी थी, वहाँ) ययौ (गये) ॥ २० ॥

अनुवाद—परम मित्र एवं भाई नन्दबाबा मथुरामें आये हैं—ऐसा सुनकर और उन्होंने कंसको कर प्रदान कर दिया है—यह जानकर वसुदेवजी नन्दजीके ठहरनेके स्थानपर गये ॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—भ्रातरं, वैश्यकन्यायां शूरवैमात्रेयभ्रातुर्जातत्वादिति भारततात्पर्ये श्रीमध्वाचार्यचरणैरुक्तं ब्रह्मवाक्यं—'तस्मै मया स वरः सन्निभसृष्टः, स चास नन्दाख्य उतास्य भार्या नाम्ना यशोदा, स च शूरतातसूतस्य वैश्याप्रभवोऽथ गोपः' इति, वैश्याप्रभव इति पितामह्यास्तज्जातित्वात्। अतएव स्कान्दे—'यादवानां हितार्थाय धृतो गिरिवरो मया' इति भगवद्वाक्यम्; 'यादवेषु च सर्वेषु भवन्तो मम वल्लभाः' इति तद्भ्रातृन् प्रति रामवाक्यञ्च। तदवमोचनं—तस्य वसतिस्थानम् ॥ २० ॥

भावानुवाद—‘भ्रातर’—भ्राता नन्दको, क्योंकि श्रीनन्द वैश्यकन्यासे उत्पन्न शूरसेनके सौतेले भ्रातासे उत्पन्न हुए थे।^(१) श्रीमहाभारत-तात्पर्य-निर्णयमें श्रीमन्मध्वाचार्यके द्वारा कथित ब्रह्माजीका वचन—“मैंने पर्जन्यको वर दिया था कि उनका नन्द नामका पुत्र होगा एवं उसकी पत्नी यशोदा होगी। वह नन्द शूरसेनके पिताकी वैश्यपत्नीके गर्भसे उत्पन्न पुत्रका पुत्र होनेके कारण गोप होगा।” इस उद्धृत श्लोकमें ‘वैश्यप्रभव’ कहनेसे श्रीनन्द महाराजकी पितामही वैश्य जातिकी होनेके कारण श्रीनन्द भी गोप जातिके हैं। इसलिए वसुदेव और नन्दका अतिनिकटस्थ भातृत्व सम्बन्ध है। दोनोंके पितामह यदुवंशीय राजा देवमीढ़ हैं। अतएव स्कन्दपुराणमें भगवान्ने कहा है—“यादवोंके कल्याणके लिए मैंने गिरिराज गोवर्धनको धारण किया था।” तथा अपने भाईयोंके प्रति श्रीबलरामजीका वचन है—“समस्त यादवोंमें आपलोग मेरे अतिप्रिय हैं।” ‘तदवमोचनम्’—श्रीनन्द महाराजका वासस्थान जहाँ है, उस स्थानपर वसुदेव गये॥ २० ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम्।

प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः॥ २१ ॥

अन्वयः—[श्रीनन्द महाराज] प्रियतमं (प्रियतम) तं (वसुदेवको) आगतं (निकटमें आया हुआ) दृष्ट्वा (देखकर) प्रीतः (परमानन्दित) [और] प्रेमविह्वलः (प्रेममें विह्वल होकर) देहः प्राणमिव (जैसे शरीरमें प्राण लौटनेपर मूर्च्छित देह उठकर खड़ा हो जाता है, वैसे ही) सहसा (अतिशीघ्र) उत्थाय (उठकर) दोर्भ्यां (दोनों भुजाओंसे) सस्वजे (वसुदेवको आलिङ्गन किया)॥ २१ ॥

अनुवाद—अचानक आये हुए प्रियतम भाई वसुदेवजीको देखकर नन्दबाबा अत्यन्त आनन्दित और प्रेमविभोर हो गये। मूर्च्छित देहमें

(१) पूर्वकालमें राजा देवमीढ़ने दो विवाह किये थे। एक क्षत्रिय कन्यासे और दूसरी वैश्य कन्यासे। क्षत्रिय कन्यासे शूरसेन एवं वैश्यकन्यासे पर्जन्य पैदा हुए। शूरसेनसे वसुदेवजी एवं पर्जन्यसे नन्दजी पैदा हुए। इसलिए वे दोनों भाई-भाई हैं।

प्राणोंके संचारके समान वे सहसा उठ खड़े हुए एवं दोनों भुजाओंसे वसुदेवजीको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—तं वसुदेवं, सस्वजे नन्दः, न तु नमश्चकार; वयसा ततो ज्येष्ठत्वात् ॥ २१ ॥

भावानुवाद—‘तम्’ अर्थात् श्रीवसुदेवको श्रीनन्द महाराजने आलिङ्गन किया, किन्तु नमस्कार नहीं, क्योंकि श्रीनन्द महाराज वसुदेवजीसे आयुमें बड़े थे ॥ २१ ॥

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः।

प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥ २२ ॥

अन्वयः—विशाम्पते (हे श्रीपरीक्षित्!) [नन्द महाराजके द्वारा] पूजितः (सत्कृत) [और उनके द्वारा प्रदत्त आसनमें] सुखमासीनः (सुखपूर्वक उपविष्ट होकर) [श्रीवसुदेवने श्रीनन्दका] अनामयं पृष्ट्वा (कुशल-प्रश्न पूछकर) [तथा] आदृतः (विनय-वचन आदिके द्वारा उन्हें सम्मानितकर) स्वात्मजयोः (अपने पुत्र राम और कृष्णमें) प्रसक्तधीः (आसक्तचित्त श्रीवसुदेव) इदं (इस प्रकार) आह (नन्द महाराजको कहने लगे) ॥ २२ ॥

अनुवाद—हे महाराज परीक्षित्! वसुदेवजी नन्दबाबाके द्वारा पूजित एवं समादृत होकर आसनपर बैठ गये एवं अपने दोनों पुत्रोंके प्रति स्नेहासक्त होकर नन्दबाबासे कुशल-मङ्गल पूछते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ २२ ॥

सारार्थदर्शिनी—आह—वसुदेवः ॥ २२ ॥

भावानुवाद—‘आह’—श्रीवसुदेव श्रीनन्दको कहने लगे ॥ २२ ॥

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते।

प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥ २३ ॥

अन्वयः—भ्रातः (हे भाई!) प्रवयसः (वृद्धकाल तक) अप्रजस्य (सन्तानहीन) [होनेसे] प्रजाशायाः (सन्तान प्राप्तिकी कामनासे) निवृत्तस्य

(विरत) ते (तुम्हारा) इदानीम् (इस समय) प्रजा (सन्तान) यत् (जो) समपद्यत (उत्पन्न हुआ है) [यह] दिष्ट्या (अति सौभाग्यका विषय है) ॥ २३ ॥

अनुवाद—वसुदेवजीने कहा—हे भाई! इतने वर्षों तक सन्तानहीन होनेके कारण तुमने इस ढली उम्रमें सन्तानकी आशा ही छोड़ दी थी। परन्तु यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हें सन्तानकी प्राप्ति हुई है ॥ २३ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रवयसः—वृद्धस्य। पुत्रो जात इत्युक्ते मिथ्योक्तिः, कन्यैत्युक्ते नन्दस्याप्रतीतिः, अतः प्रजेत्यपत्यवाचकशब्द प्रयोगः। मत्पुत्रन्यासं स्वकन्या-चौर्यञ्च कथञ्चिन्नन्दो जानाति न वेति शङ्कयापि तच्छब्दप्रयोगः ॥ २३ ॥

भावानुवाद—‘प्रवयसः’ अर्थात् वृद्ध श्रीनन्द महाराजका। तुम्हें पुत्र प्राप्त हुआ है—ऐसा कहनेसे झूठ बोलना होगा और कन्या हुई है—कहनेसे श्रीनन्द महाराजजीको विश्वास नहीं होगा, इसलिए श्रीवसुदेवने पुत्र या कन्या न कहकर ‘प्रजा’ अर्थात् सन्तान वाचक शब्दका प्रयोग किया है। नन्दालयमें मेरे द्वारा अपने पुत्रको रख आना और वहाँसे उनकी कन्याको उठा लाना—यह नन्दराज जानते हैं या नहीं—इस विषयमें शङ्कायुक्त होकर भी श्रीवसुदेव महाराजने ‘प्रजा’ शब्दका प्रयोग किया ॥ २३ ॥

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः।

उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—अस्मिन् (इस) संसारचक्रे (परिवर्तनशील संसारचक्रमें) वर्तमानः (रहते हुए) भवान् (आपको) अद्य (आज) दिष्ट्या (बड़े भाग्यसे ही) पुनर्भवः (पुत्ररूपमें पुनः जन्म हुए की भाँति) उपलब्धः (देखा) [क्योंकि] प्रियदर्शनम् दुर्लभम् (प्रियजनोका दर्शन अतीव दुर्लभ है) ॥ २४ ॥

अनुवाद—बड़े भाग्यसे आज तुम्हें पाकर मैंने मानो पुनर्जन्म प्राप्त किया है, क्योंकि इस संसारचक्रमें अपने प्रियजनोका दर्शन अति

दुर्लभ है। (अथवा इस संसारचक्रमें रहते हुए भी जैसे आज पुत्ररूपमें तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है, अतः तुम्हारे दर्शनको मैं परम सौभाग्य मानता हूँ, क्योंकि प्रियजनोंका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।) ॥ २४ ॥

सारार्थदर्शिनी—दिष्ट्येति। बन्धनादिक्लिष्टस्य मम, पुनर्भवो वर्तमानः अयं पुनर्जन्मैवाद्याभूदित्यर्थः। यतो भवानुपलब्ध इति एतावत्कालपर्यन्तमहं भवदनुपलम्भान्मृत इवासमिति भावः ॥ २४ ॥

भावानुवाद—मैं इतने दिनों तक कंसके कारागारमें बन्द रहनेके कारण कष्ट भोग कर रहा था, परन्तु आज मेरा परम सौभाग्य है कि तुम्हारा दर्शन मिल गया। इससे आज मुझे पुनर्जन्म प्राप्त हुआ है। अब तक मैं आपको प्राप्त न कर मृतकके समान था—यह भाव है ॥ २४ ॥

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम्।

ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥

अन्वयः—स्रोतसः ओघेन (स्रोतके वेगसे) व्यूह्यमानानां (इधर-उधर परिचालित) प्लवानां (तिनके, काठ आदि) यथा (जैसे एक साथ नहीं रह सकते) [वैसे] चित्रकर्मणां (विविध प्रकारके कर्मफल भोग करनेवाले) सुहृदां (बन्धु-बान्धवोंका) एकत्र (एक स्थानमें) प्रियसंवासः (सुखपूर्वक वास) न (सम्भव नहीं है) ॥ २५ ॥

अनुवाद—जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए तिनके, काठ आदि सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही इस संसार-प्रवाहमें विचित्र प्रारब्धकर्म-सम्पन्न सगे-सम्बन्धियोंका प्रियजनोंके साथ सब समय एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं है ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, एवञ्चेदावामेकत्रैव वसावः, तत्राह—नैकत्रेति। हे प्रिय! ओघेन स्रोतसो वेगेन, व्यूह्यमानानां विविधं नीयमानानां, प्लवन्तीति प्लवास्तृण-काष्ठादयस्तेषाम् ॥ २५ ॥

भावानुवाद—क्या हम एकसाथ मिलकर वास नहीं कर सकते हैं? नहीं, क्योंकि हे प्रिय! जिस प्रकार नदीके प्रवाहमें बहते हुए

लकड़ी, घासके तिनके आदि एकत्र स्थिर नहीं रहते हैं, वैसे ही विचित्र कर्मोंके कारण संसार-प्रवाहमें सुहृदवर्गका कभी एकसाथ निवास सम्भव नहीं होता है ॥ २५ ॥

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।

बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वतः ॥ २६ ॥

अन्वयः—त्वं (तुम) सुहृद्वतः (आत्मीयगणोंके साथ परिवेष्टित होकर) अधुना (इस समय) यत्र (जहाँ) आस्से (जिस महावनमें निवास कर रहे हो) तत् (वह) बृहद्वनं (बृहद्वन या महावन) कच्चित् (क्या) पशव्यं (पशुओंके लिए हितकर) निरुजं (रोग-बीमारी-रहित) भूर्यम्बुतृणवीरुधम् (विपुल जल, गुल्म आदिसे समन्वित) [है?] ॥ २६ ॥

अनुवाद—आजकल तुम बन्धु-बान्धवोंके साथ मिलकर जिस महावनमें रह रहे हो, वह पशुओंके लिए हितकर तो है न? वहाँ कोई रोग तो नहीं है? वह स्थान प्रचुर जल एवं तृण आदिसे परिपूर्ण है न? ॥ २६ ॥

सारार्थदर्शिनी—पशुभ्यो हितं—पशव्यम् । निरुजं, ह्रस्वत्वं छन्दोऽनुरोधात् । रुजा, टावन्तः ॥ २६ ॥

भावानुवाद—‘पशव्यम्’ अर्थात् पशुओंके लिए हितकर ॥ २६ ॥

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।

तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥

अन्वयः—भ्रातः (हे भाई!) मम सुतः (मेरा पुत्र अर्थात् रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न मेरा पुत्र) भवन्तं (आपको) तातं (पिता) मन्वानः (मानते हुए) भवद्भ्याम् (आपके द्वारा) उपलालितः (अपने पुत्रकी भाँति पालित होकर) भवद् व्रजे (आपके घरमें) मात्रा सह (अपनी माता रोहिणीके साथ) कच्चित् (क्या) [कुशलपूर्वक हैं?] ॥ २७ ॥

अनुवाद—भाई! मेरा पुत्र बलदेव अपनी माँ रोहिणीके साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है। वह यशोदादेवी एवं तुम्हारे द्वारा अपने पुत्रके

समान लालित-पालित होकर तुम दोनोंको ही अपना माता-पिता मानता होगा। वह कुशलपूर्वक तो है न? ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी—मम सुतः सुखं वर्तत इति शेषः। मन्वान इति, वर्तमान-सामीप्यान्मंस्यमान इत्यर्थः ॥ २७ ॥

भावानुवाद—मेरा पुत्र आपके द्वारा लालित-पालित होकर आनन्दसे तो है? ॥ २७ ॥

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥

अन्वयः—सुहृदः (बन्धुओंके उद्देश्यसे) अनुभावितः (सम्पादित) [जो] त्रिवर्गः (धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग) [है, वह] पुंसः (पुरुषोंके पक्षमें) विहितः (शास्त्र अनुमोदित है) तेषु (वे सुहृदगण) क्लिश्यमानेषु (कष्ट पानेपर) त्रिवर्गः (धर्म, अर्थ, काम—ये त्रिवर्ग) अर्थाय (सुखकर) न कल्पते (नहीं होते) ॥ २८ ॥

अनुवाद—मनुष्यके लिए वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं, जिनसे उसके बन्धु-बान्धवों—स्वजनोंको सुख मिले। जिनसे केवल अपनेको ही सुख मिले, किन्तु अपने स्वजनोंको दुःख मिले, वे धर्म, अर्थ, काम हितकारी नहीं हैं ॥ २८ ॥

सारार्थदर्शिनी—मम तु गृहाश्रमो विफल एवेत्याह—पुंसः, सुहृदः स्त्रीपुत्रादीन्, अनु लक्ष्यीकृत्य, त्रिवर्गः, शास्त्रेण विहितः। भावितः—स्वकर्मभिर्निष्पादितः। तेषु सुहृत्स्विति स्त्रीपुत्रयोर्मद्विच्छेदात्, मम च पुत्रलालनादि सुखानवाप्त्या; न अर्थाय न प्रयोजनाय ॥ २८ ॥

भावानुवाद—वसुदेवजी कहने लगे कि मेरा गृहस्थाश्रम व्यर्थ हो गया। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम—यह त्रिवर्ग पुत्र, परिवारके सुखके लिए ही होता है। परन्तु बन्धु-बान्धव यदि कष्ट भोग करें, तो वह त्रिवर्ग सुखके लिए न होकर दुःखके लिए ही होता है। मेरे विच्छेदसे स्त्री-पुत्रका तथा पुत्र-पालनादि सुख न मिलनेसे मेरा गृहस्थाश्रम किसी कामका नहीं रहा ॥ २८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितसे कहा—हे कुरुश्रेष्ठ! आप कुरुकुलके एकमात्र सन्तान हैं। आपकी रक्षाके लिए आपके पितामहोंने कितना प्रयास किया—यह आप जानते ही हैं। श्रीकृष्ण भी ब्रजराजके एकमात्र सन्तान हैं। वे भी पुत्र प्राप्तिकी आशासे निराश हो गये थे। उन्हें अधिक आयुमें पुत्र-प्राप्ति हुई है, वह भी कोई साधारण बालक नहीं, जो ज्ञात और अज्ञात रूपसे सबके प्रेमास्पद हैं। जो सबकी आत्माकी आत्मा हैं। जो सबके जीवन-स्वरूप हैं, उन्होंने पुत्ररूपमें अवतीर्ण होकर अपनी बाल-माधुरीसे सबको आकर्षित कर लिया है। अतएव उनके प्रति श्रीनन्दमहाराजका कितना प्रेम एवं उनकी रक्षाके लिए नन्द महाराज और ब्रजवासियोंका कितना आग्रह होगा—यह विचारका विषय है।

ब्रजमें अतिशय आनन्दके साथ श्रीनन्दनन्दनका जन्मोत्सव सम्पन्न हुआ। गोपराज नन्द एवं सभी ब्रजवासी श्रीकृष्णके जन्मदिनसे लेकर सदा आनन्दमें डूबे हुए हैं, सभी ब्रजवासी आनन्दमें मग्न होकर किसी प्रकार गृहकार्य सम्पन्नकर नन्दालयमें दौड़कर चले आते हैं एवं नन्दनन्दनको देखकर, उनकी रूपमाधुरीका वर्णनकर आनन्द-समुद्रमें डूबे रहते हैं। नन्दनन्दनके आविर्भूत होनेके पश्चात् उन्हें ही देखना, उनके विषयमें ही कहना एवं उनके विषयमें ही सुननेके अतिरिक्त उन्हें दूसरा कोई काम नहीं है। गोपराज नन्दजीने इस परमानन्दमय महोत्सवमें निमग्न रहते हुए भी एकदिन उपनन्द आदि वृद्ध गोपोंके साथ परामर्शकर स्थिर किया कि अतिशीघ्र स्वयं मथुरा जाकर सम्राट कंसको राजकर प्रदान करना चाहिये।

गोपराज नन्द कंसके अधीन राजा हैं, उन्हें कंसको कर देना पड़ता है। उन्होंने अभीतक कभी भी मथुरामें स्वयं आकर कंसको कर प्रदान नहीं किया था। प्रति-वर्ष उनका कोई कर्मचारी मथुरा जाकर राजकर प्रदान करता था।

गोपराज नन्द बाल्यकालसे ही परम वैष्णव और संसारमें आसक्ति-रहित थे। उनमें ब्रज-मण्डलका राजा बननेकी बिन्दुमात्र भी लालसा नहीं थी। केवलमात्र ज्येष्ठ-भ्राता, पिता एवं ब्रजवासियोंके अत्यन्त अनुरोधको स्वीकारकर उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया था।

परन्तु राजा होकर भी राज्यमें उनकी आसक्ति नहीं थी या राजत्वका अभिमान नहीं था। वे नाममात्रके राजा थे। उनके ज्येष्ठ-भ्राता उपनन्द ही राजकार्यकी परिचालना करते थे।

परन्तु श्रीकृष्णके जन्मके पश्चात् गोपराज नन्दकी राज्य, धन आदिमें परिपूर्ण आसक्ति होने लगी। इसलिए वे वर्षाकालमें देय वार्षिककर देनेके लिए स्वयं कंसके समीपमें जानेके लिए प्रस्तुत हुए। विषयासक्तिका गन्ध भी जिनमें नहीं था, राज-सिंहासनको जो सैकड़ों बार धिक्कार प्रदान करते थे, उनके हृदयमें अब विषयोंके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है—यह सुनकर सभी चमत्कृत होंगे। परन्तु विवेचना करनेपर देखा जायेगा—यह नन्द महाराजका कोई विषयानुराग नहीं, बल्कि यह उनका परिपूर्ण कृष्णानुराग ही है। उन्होंने अपने भोगके लिए कभी भी विषयोंकी रक्षा करनेका प्रयास नहीं किया और अभी भी नहीं करते हैं। परन्तु अब वे अपने पुत्र श्रीकृष्णके लिए विषयोंकी रक्षा करनेका प्रयास कर रहे हैं। श्रीकृष्ण जब तक नन्दके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण नहीं हुए थे, तब तक नन्द महाराजका कोई विषयानुराग नहीं था। परन्तु श्रीकृष्णके आविर्भावके साथ-साथ उनके विषयानुरागका भी आविर्भाव हुआ है। अतएव श्रीनन्द महाराजका विषय-अनुराग दोष या गुण जो कुछ भी है, उसके लिए नन्द महाराज दायी नहीं हैं, नन्दनन्दन ही उसके दायी हैं। नन्द महाराजके अपने पुत्रको स्वयं-भगवान्‌के रूपमें न जाननेपर भी उनका विषयानुराग, पुत्रानुराग—कृष्णानुरागके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

नन्द महाराजजीके मनमें यह भावना है कि दुष्ट राजा कंस किसी भी कारणसे असन्तुष्ट होकर यदि उन्हें राज्यभ्रष्ट करता है, तब उनके पुत्रको महाकष्ट होगा। उनका पुत्र राजपुत्र होकर राज-ऐश्वर्यका भोग करे—यही उनकी आन्तरिक अभिलाषा है। उनका पुत्र भिक्षुककी भाँति भिक्षात्रके द्वारा लालित-पालित हो, इसे वे कैसे स्वीकार कर सकते थे? अवश्य ही सभी पिताओंको ऐसा ही पुत्र-स्नेह रहता है—इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु भेद इतना है कि सभी अपने पुत्रके पिता हैं और नन्द महाराज जगत्-पिताके पिता हैं। दूसरोंका पुत्र-वात्सल्य मायाका बन्धन है और आत्मप्रीतिका

कपटता-पूर्ण अभिनय है। दूसरी ओर नन्द महाराजका पुत्र-वात्सल्य मायामुक्तिकी सिद्ध-औषधि एवं कृष्णप्रीतिका पूर्ण निदर्शन है।

श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थमें श्रीजीवगोस्वामी पादने वर्णन किया है—
वसुदेवजी नन्दालयमें निर्जनमें अपने पुत्रको रखकर आये, परन्तु कभी निश्चिन्त नहीं हुए। विशेष रूपसे दुष्ट कंसने अपने मन्त्रियोंके परामर्शसे स्थिर किया था कि दस दिनके अन्दर जितने भी बालक जन्मे हैं, उन सबका संहार किया जायेगा। यह समाचार गुप्त रूपसे जानकर वे और भी चिन्तित हो गये। इसीलिए उन्होंने श्रीकृष्णके जन्मके दूसरे दिन एक विश्वस्त दूतको भाई नन्दके समीप गुप्त रूपसे भेज दिया एवं राजस्व-कर प्रदान करनेके लिए उन्हें मथुरा आनेके लिए अनुरोध किया। वसुदेवजीने इस प्रसङ्गमें अपने पुत्रका कुशल समाचार लेनेमें कोई त्रुटि नहीं की। जैसे भी हो, गोपराज नन्दजीने वसुदेवजीके प्रेरित दूतसे कहा था—मैं अगले पाँचवें दिन मथुरा आऊँगा। अतः वे पाँचवें दिन ही गये। श्रीगोपालचम्पूसे यह भी जाना जाता है कि भाद्र कृष्णाष्टमी तिथिमें श्रीकृष्णका जन्म हुआ, उसके दूसरे दिन नवमी तिथिमें नन्दोत्सव एवं उसी दिन सायंकालमें वसुदेव-प्रेरित दूतका नन्दालयमें आगमन एवं उसके पाँचवें दिन चतुर्दशी तिथिको नन्द महाराजका मथुरा गमन हुआ था।

गोपराज नन्द यथासमय मथुरा जानेके लिए प्रस्तुत हुए। राजाको भेंट देनेके लिए दधि, दूध, घी, मक्खन आदि व्रजमें उत्पन्न उत्कृष्ट द्रव्य संग्रह किये। रक्षक, प्रहरी आदि सुसज्जित हो गये, बहुत-सी बैलगाड़ियोंमें उन सामग्रियोंको सजाया गया। नन्द महाराज राजोचित बैलगाड़ीमें बैठे और मथुराकी ओर चल पड़े। मथुरा पहुँचकर एक स्थानपर वृक्षके नीचे गाड़ियोंको रखकर ठीक समयपर नन्द महाराज राजसभामें उपस्थित हुए तथा दधि, दूध, राजस्व आदि भेंट प्रदान की। नन्द महाराजके व्यवहारसे कंस बहुत प्रसन्न हुआ। नन्द महाराज भी यथोचित राजसम्मान प्रदर्शनकर वहाँसे विदा होकर जहाँ गाड़ियाँ थी, वहाँ आकर उपस्थित हुए।

वसुदेवजी गुप्तचर द्वारा नन्द महाराजका आगमन, राजस्व-कर प्रदान एवं कंससे विदा लेकर गाड़ियोंके पास निवास—यह सब

जानकर उनसे भेंट करनेके लिए सायंकालमें अकेले वहाँ उपस्थित हुए।

नन्दजी और वसुदेवजी परस्पर भाई तथा प्रगाढ़ मित्र होनेके कारण वसुदेवजी भाई नन्दके साथ मिलनेके लिए व्याकुल थे। विशेषकर वसुदेवजी कई दिन पहले ही अपने पुत्रको नन्दालयमें रख आये थे एवं रोहिणीके गर्भसे भी उनके एक पुत्रका जन्म हुआ है—इसलिए उनका कुशल समाचार जाननेके लिए वे और भी व्याकुल हो उठे।

जीवनीशक्तिका संचार होनेसे जड़देहमें जैसे कार्य-क्षमता आ जाती है, वैसे ही गोपराज नन्दजीको भी वसुदेवके दर्शनसे परमानन्द लाभ हुआ तथा एक-दूसरेको आलिङ्गनकर वे कुशलवार्त्ता पूछनेके लिए आसनपर बैठ गये।

(नन्द महाराज आयुमें बड़े हैं और वसुदेवजी नन्द महाराजसे वर्णमें श्रेष्ठ हैं।) इसलिए भातृ सम्बन्ध रहते हुए भी उन्होंने प्रणाम आदि न करके एक-दूसरेको आलिङ्गन किया। फिर बैठकर कुशलादि प्रश्न पूछने लगे। यद्यपि वसुदेव अपने पुत्रकी कुशलवार्त्ता जाननेके लिए व्याकुल थे, फिर भी अपने मनके भावोंको छिपाकर भाई नन्दसे कहने लगे—भाई! बड़े सौभाग्य और आनन्दका विषय है कि तुमने अधिक उम्रमें एक सन्तानको प्राप्त किया है। कितने देवताओं, ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे कितने पुत्रेष्टियाग आदिसे—किसी भी प्रकारसे तुम्हें पुत्र प्राप्त न होनेपर तुम और सभी आत्मीय-स्वजनोंने हताश होकर निश्चय कर लिया था कि 'नन्दको पुत्र नहीं होगा'। इसलिए कहता हूँ कि भाई नन्द! यह अत्यन्त आनन्दका समाचार है कि तुम्हें एक पुत्र पैदा हुआ है।

सर्वदा परिवर्तनशील इस संसारचक्रमें जीवनका प्रतिक्षण ही बदलता रहता है। ऐसी स्थितिमें प्रियजनका दर्शन अतीव दुर्लभ है। तुम मेरे परम-प्रिय हो, तुम्हारे साथ भेंट होना अत्यन्त सौभाग्यका विषय है। विशेषकर पुत्र-पैदा होनेसे तुम परमानन्दित हुए हो, ऐसे समयमें तुम्हारे साथ मिलना—इससे बड़कर आनन्दका विषय और क्या हो सकता है? जीव सदा-सर्वदा विविध प्रकारके दुःख, दैन्य,

अभाव, रोग आदिसे पीड़ित होता रहता है। इसलिए प्रियजनोंको आनन्दित होते हुए देखना अत्यन्त दुर्लभ है।

स्रोतस्विनी नदीमें तृण-काष्ठ आदि जैसे स्रोतके प्रबल वेगसे बहते हुए अलग हो जाते हैं, वैसे ही कर्मके प्रवाहमें जीव अपने-अपने कर्मोंकी विचित्र गतिके कारण कौन जीव कहाँ चला जाता है, इसका कोई ठीक नहीं है। इसलिए प्रियजनोंके साथ मिलकर एक साथ वास करना अत्यन्त असम्भव है। तुम मेरे परमप्रिय हो; इसलिए तुम्हारे साथ मिलना अत्यन्त सौभाग्यका विषय है। कर्मफलसे तुम राजा होकर राजकार्य कर रहे हो और मैंने राजबन्दी होकर कंस कारागारमें किसी प्रकार दिन बिताये। अतएव हम दोनोंका मिलना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं था। परन्तु विचित्र कर्म-गतिके आज वह सम्भव हुआ है।

जैसे भी हो, भाई! तुम बन्धु-बान्धवोंके साथ जिस बृहद्वनमें निवास कर रहे हो, वहाँ सब कुशल तो है? वहाँ किसी प्रकारका रोग या बीमारी तो नहीं है? रोग व्याधि-निर्मुक्त स्थानमें आत्मीय-जनोंके साथ वास करना बड़ा कठिन है। क्योंकि अपने किसी प्रियजनके दुःखी होनेपर व्यक्तिके मनमें सुख नहीं रहता है। वह दिन-रात दुश्चिन्तामें दुःखी रहता है। तुम्हारे वासस्थान बृहद्वनमें पर्याप्त परिमाणमें तृण, वृक्ष और पानी है? तुम्हारे पालित गाय आदि पशु वहाँ सुखसे वास करते हैं न?

भाई! और भी एक बात पूछता हूँ—मेरा एक पुत्र अपनी जननीके साथ तुम्हारे आश्रयमें वास कर रहा है। मेरा वह पुत्र तुम्हें ही पिता मानता होगा। वह कुशलसे है तो? यहाँ उन्होंने रोहिणीके पुत्रके लिए पूछा है। श्रीकृष्णके जन्मके आठ दिन पहले ही रोहिणीका एक पुत्र पैदा हुआ है। यह समाचार वसुदेवको मालूम था। 'प्रागेव वसुदेवस्तु ब्रजे शुश्राव रोहिणीम्। प्रजातं पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात् कान्ततराननं॥' अर्थात् नन्दके मथुरा आनेसे पहले ही वसुदेवने (गुप्तचरके मुखसे) यह जान लिया था कि कृष्णके जन्मसे पहले ही रोहिणीका एक पुत्र हुआ है एवं उस पुत्रकी मुख-शोभा चन्द्रसे भी अधिक रमणीय है—इस हरिवंशके वचनसे यह जाना जाता है कि वसुदेवजी रोहिणीका

पुत्र पैदा होनेका समाचार जानते थे। नन्दके लिए इस शिशुको अपना सन्तान समझना सम्भव नहीं होनेपर भी 'तातं भवन्त मन्वानः' अर्थात् हे नन्द! मेरा पुत्र आपको ही पिता समझता होगा—ऐसा पूछना वसुदेवजीका रोहिणीके पुत्रके प्रति उनका वात्सल्य-भाव सूचित करता है।

भाई! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। क्योंकि तुम अपने आत्मीय-स्वजनोंका पालन करते हो। मित्र, पुत्र, पत्नी आदिका पालन करनेमें पीछे नहीं हटते हो। परन्तु मेरा दुभाग्य यह है कि मेरे पास धन सम्पदादिका अभाव नहीं रहनेपर भी स्त्री पुत्रादिका पालन करनेमें समर्थ नहीं हूँ।

धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका साधन सकाम पुरुषोंका एकमात्र लक्ष्य है। परन्तु इस त्रिवर्गका साधन अपने लिए करना पुरुषार्थ नहीं है। आत्मीय-स्वजन, बन्धु-बान्धवोंके साथ मिलकर त्रिवर्गको भोग करना—यही यथार्थ पुरुषार्थ एवं यही मानवता है। सियार, कुत्ते आदि भी अपने भोजन और वासस्थानकी व्यवस्थाकर जीवन-निर्वाह करते हैं। मनुष्य-जीवन पाकर यदि कोई केवल अपना उदर-भरण और सुख-सुविधाको ही देखता है, तो पशुसे उसका कोई भेद नहीं रहता है। धन कमाकर केवल अपना सुख देखना, यही कमानेका फल नहीं है। जो व्यक्ति उपार्जित धनके द्वारा आत्मीय-स्वजनोंका सुख-विधान करता है, वही यथार्थ धनी है। हे नन्द! तुम आत्मीय स्वजनोंके साथ सुखसे काल व्यतीत कर रहे हो, इसलिए तुम ही धन्य हो॥ १९-२८॥

श्रीनन्द उवाच—

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः।

एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता॥ २९॥

अन्वयः—श्रीनन्द उवाच (श्रीनन्दने कहा) अहो (अत्यन्त कष्टका विषय है कि) ते (तुम्हारे) बहवः (बहुत-से) देवकीपुत्राः (देवकी गर्भ-जात पुत्र) कंसेन (कंस द्वारा) हताः (मार डाले गये)

अवरजा (सबसे अन्तमें जन्म लेने वाली) एका कन्या अवशिष्टा (अवशेष जो एक कन्या थी) सापि (वह भी) दिवं गता (आकाशमें चली गयी) ॥ २९ ॥

अनुवाद—श्रीनन्दबाबाने कहा—भाई वसुदेव ! हाय ! देवकीके गर्भसे पैदा हुए तुम्हारे बहुत-से पुत्रोंको कंसने मार डाला, मात्र एक छोटी-सी कन्या ही बची थी, वह भी आकाशमें अदृश्य हो गयी ॥ २९ ॥

सारार्थदर्शिनी—त्वत्पृष्टं मद्ब्रजक्षेममस्तीति किं ब्रवीमि? यदहं त्वद्दुःखेनैव महादुःखीत्याह—अहो इति। ततश्च मत्पुत्रन्यासादिकमस्य न विदितमिति ज्ञात्वा वसुदेवो गताशङ्कोऽन्तरानन्दितो बभूवेति ज्ञेयम् ॥ २९ ॥

भावानुवाद—श्रीनन्दमहाराजने कहा—हे भाई वसुदेव ! तुमने जिस ब्रजकी कुशलवार्त्ताके विषयमें पूछा है, उस विषयमें क्या कहूँ? क्योंकि तुम्हारे दुःखसे मैं भी महादुःखी हूँ, इसलिए 'अहो' आदि श्लोक कह रहे हैं। इससे—मैं नन्दालयमें यशोदाकी शय्यापर अपने पुत्रको रख आया हूँ, यह बात श्रीनन्दको मालूम नहीं है, यह जानकर वसुदेवजीकी सभी शंकाएँ दूर होनेके कारण वे मन-ही-मन आनन्दित हुए, ऐसा जानना होगा ॥ २९ ॥

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ।

अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

अन्वयः—अयं (ये परिदृश्यमान) जनः (जीव) नूनं हि (निश्चित रूपसे) अदृष्टनिष्ठः (अदृष्टसे ही मरते हैं) [और] अदृष्टपरमः (अदृष्टसे ही जन्म लेते हैं) अदृष्टं (पूर्व जन्मकृत कर्म ही) आत्मानः (जीवका) तत्त्वं (सुख-दुःखका कारण है) [ऐसा] यः वेद (जो जानता है) सः (वह) न मुह्यति (कभी मोहको प्राप्त नहीं होता है) ॥ ३० ॥

अनुवाद—निश्चय ही अदृष्टनिष्ठ अर्थात् अदृष्टवशतः (प्रारब्ध-वशतः) ही पुरुषके फलभोग आदिकी समाप्ति हुआ करती है। तात्पर्य यही है कि पुत्रादिकी प्राप्तिरूप सुखप्रद अदृष्ट जब क्षीण होता है,

तब पुत्रादि नहीं रहते हैं। अदृष्ट ही श्रेष्ठ है, क्योंकि यद्यपि पुत्रादिका वियोग हुआ करता है, तथापि अदृष्टवशतः उनके साथ पुनः मिलन हुआ करता है। अतएव अदृष्ट ही अव्यभिचारी सुखका कारण है—इसे जो जानता है, वह मोहको प्राप्त नहीं होता है॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—भो भ्रातः ! अयंदुष्पारोऽपि विपत्तिन्धुः, विवेक-पोतेनैव तीर्यतामित्याह—नूनमिति। अदृष्ट एव, निष्ठा समाप्तिः, यस्य सः; यदैव पुत्रादिसुखप्रदमदृष्टं हीयते, तदैव पुत्रादयो न भवन्तीत्यर्थः। अदृष्टमेव, परमं मृत वियुक्तपुत्रादीनामपि सङ्गमकारणं, यस्य सः। एवं अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेदेति, त्वत्तुल्यः कोऽन्यो विवेकीति, तव मास्तु मोह इति भावः॥ ३० ॥

भावानुवाद—हे भाई ! इस विपदरूपी दुष्पार भवसिन्धुको विवेकरूपी सुदृढ़ नौकासे ही पार किया जा सकता है, इसलिए ‘नून’ आदि श्लोक कह रहे हैं। संसारके जितने भी जीव हैं—सभी भाग्यसे ही आते हैं और जाते हैं। जब भाग्य मन्द होता है, तब लोग पुत्र सुखसे वञ्चित होते हैं। पुनः वही भाग्य जब अच्छा होता है, तब मृतपुत्र भी लौटकर आ जाता है। इसलिए जो भाग्यको ही अपने सुख-दुःखका कारण मानता है, उसे कहीं भी मोह नहीं होता है। परन्तु भाई वसुदेव ! तुम महाविवेकी पुरुष हो, अतएव तुम्हारा इस विषयमें कोई मोह नहीं होना चाहिये॥ ३० ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयञ्च वः।

नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले॥ ३१ ॥

अन्वयः—श्रीवसुदेव उवाच (श्रीवसुदेवजीने कहा) राज्ञे (कंसके लिए) वार्षिकः करः (वार्षिक कर) दत्तः वै (दे दिया) वयं च दृष्टाः (और भाग्यसे हमलोगोंका मिलना भी हो गया है) इह (यहाँ मथुरामें) बहुतिथं (बहुत दिन तक) वः (आपको) न स्थेयं (नहीं रहना चाहिये) च (कारण) गोकुले (गोकुलमें) उत्पाताः सन्ति (बहुत प्रकारके उत्पात हो सकते हैं)॥ ३१ ॥

अनुवाद—श्रीवसुदेवजीने कहा—भाई! तुमने राजा कंसको वार्षिककर प्रदान कर दिया है एवं मुझसे भी तुम्हारा मिलना हो गया है। अब अधिक समय तक तुम्हारा इस स्थानपर रहना उचित नहीं है, क्योंकि गोकुलमें आजकल बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

सारार्थदर्शिनी—ज्ञाततत्त्वो वसुदेवो यद्वक्तुमागतः, तदाह—कर इति। वै निश्चितं, वो युष्माभिः। बहुतिथं चिरकालम् ॥ ३१ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।

दशमे पञ्चमोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
पञ्चमोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ ५ ॥

भावानुवाद—पूर्वोक्त समस्त तत्त्वोंसे अवगत वसुदेवजी वास्तवमें जिसे कहनेके लिए यहाँ उपस्थित हुए थे, उसे 'कर' आदि श्लोक द्वारा कह रहे हैं। 'वै' अर्थात् निश्चित रूपसे। 'वः' अर्थात् आपको। 'बहुतिथम्' अर्थात् चिरकाल तक ॥ ३१ ॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके पञ्चम अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पञ्चम अध्यायकी श्रील
विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका
भावानुवाद समाप्त।

श्रीशुक उवाच—

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः।

अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे नन्द-वसुदेवसङ्गमो
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) शौरिणा (वसुदेवजीके द्वारा) इति (इस प्रकार) प्रोक्ताः (कहनेपर) ते नन्दादयः

गोपाः (वे नन्द महाराज आदि गोपगण) तं (वसुदेवसे) अनुज्ञाप्य (विदा लेकर) अनङ्घ्र्युक्तैः अनोभिः (गाड़ियोंमें बैल जोड़कर) गोकुलं (गोकुलके लिए) ययुः (चल पड़े) ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पञ्चम अध्यायका
अन्वयः समाप्त ।

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—वसुदेवजीके इस प्रकार कहनेपर नन्दबाबा आदि गोपोंने उनसे अनुमति लेकर बैलोंसे जुते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलके लिए यात्रा की ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पञ्चम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीनन्द महाराजके साथ बातचीत करते-करते मानसिक पीड़ाके कारण वसुदेवके नेत्रोंमें आँसू भर आये तथा गला भी भर आया। इससे महाराज नन्द दुःखित होकर उनके प्रति सम्वेदना प्रकटकर उनका दुःख दूर करनेके लिए उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—भाई वसुदेव ! मैं तुम्हारी सभी विपत्तियोंको जानता हूँ। बड़े दुःखकी बात है कि देवकीके गर्भसे तुम्हारे बहुत-से पुत्र पैदा हुए, परन्तु दुरात्मा कंसके अत्याचारसे एक भी जीवित नहीं रहा। कंसने अपने हाथोंसे सबको मार डाला। अन्तमें तुम्हारी एक कन्या हुई थी, उसका भी वध करनेके लिए उसने उसे पत्थरपर पटक दिया। किन्तु कैसी आश्चर्यकी बात हुई, वह कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी और लौटी नहीं।

भाई वसुदेव ! संसारके सुख-दुःखरूपी मोहके जालमें फँसकर जीव अपने-अपने कर्मोंके फलसे विविध प्रकारका सुख-दुःख भोग करता है, परन्तु सैंकड़ों प्रयास करनेपर भी कर्मफलको मिटाना सम्भव नहीं है। दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्तिके लिए जीव सभी प्रकारके प्रयास करते हैं, परन्तु आजतक कोई सफल नहीं हुआ है। धन, पुत्र आदिके साथ संयोग और वियोग दोनों ही होते रहते

हैं, परन्तु यह सबकुछ अदृष्ट अर्थात् पूर्व जन्मकृत कर्मफलसे ही होता है।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।

समदुःख-सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

(श्रीगी० २/१५)

श्रीभगवान्ने गीतामें अर्जुनसे कहा है—विषय और इन्द्रियोंके सम्बन्ध हेतु अनेकों प्रकारके सुख और दुःख आते हैं, परन्तु जो धीर व्यक्ति इस सुख-दुःखको अपना किया हुआ कर्मफल मानकर सहन करता है, वही क्रमशः मुक्तिके पथपर अग्रसर होता है।

इसलिए भाई वसुदेवजी! तुम अपने मरे हुए पुत्रोंके लिए दुःखी मत होओ। भाग्यके पलटनेसे फिर सुखके दिन लौट आयेंगे। जिनकी इच्छासे यह भाग्य निरन्तर पलटता रहता है, उनका चरणाश्रय करना ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। सुखः-दुःखके साथ लड़कर आजतक कोई उनपर विजय प्राप्त नहीं कर सका।

गोपराज नन्दकी बातोंको सुनकर वसुदेवजी स्थिर हुए, क्योंकि भाई नन्दकी बातोंसे वे समझ गये कि 'नन्दालयमें अपने पुत्रको रखकर यशोदाकी कन्याको लेकर मथुरा आये हैं'—यह बात भाई नन्दको मालूम नहीं है। इसीलिए वे देवकीकी कन्या आकाशमें चली गयी बतलाकर, दुःख प्रकाश कर रहे हैं। परन्तु वसुदेवजी यह भी समझ गये कि उनके पुत्र कुशलसे हैं। दूसरी ओर भाई नन्दकी अनुपस्थितिमें कोई विपत्ति आ सकती है, इसलिए उन्हें गोकुलमें भेजना अत्यन्त आवश्यक है।

वसुदेवजी मन-ही-मन यह सब विचारकर नन्दजीसे कहने लगे—भाई नन्द! तुमने जो कुछ कहा है, वह अक्षरशः सत्य है, अदृष्ट ही सुख-दुःखका कारण है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसे भी हो, एक बात कहता हूँ, सुनो! तुमने राजाको कर दे दिया है और मुझसे मिलना भी हो गया है, अब यहाँपर व्यर्थ ही समय बिताना उचित नहीं है। क्योंकि दुष्ट राजा कंस महालोभी है, कहीं ऐसा न हो कि वह तुमसे और कुछ माँग बैठे और उसे देनेके लिए

तुम्हें बाध्य करे। दूसरी ओर शत्रुता करनेसे वह कभी पीछे नहीं हटता है, न जाने किस समय क्या कर डालेगा? यदि गोकुलमें कोई उत्पात होता है, तो गोकुलकी रक्षा कौन करेगा? इसलिए अधिक विलम्ब न करके तुम्हें तुरन्त गोकुलमें लौट जाना चाहिये। तुम्हारा यहाँ अधिक समय ठहरना मुझे उचित नहीं लग रहा है।

वसुदेवजीकी बात सुनकर गोपराज नन्द एवं उनके साथी सभी आश्चर्यचकित हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि यदि गोकुलमें कोई उत्पात हुआ, तो क्या होगा? इसी आशङ्कासे वे सभी गोकुल जानेके लिए व्यस्त हो गये तथा अपने-अपने छकड़ोंको जोड़कर गोकुल जानेके लिए प्रस्तुत हो गये। गोपराज नन्द वसुदेवजीसे अनुमति लेकर गाड़ीमें जाकर बैठ गये तथा वे सभी गोकुलकी ओर चल पड़े ॥ २९-३२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पञ्चम अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

षष्ठ अध्यायका कथासार

प्रस्तुत अध्यायमें सखा वसुदेवके वाक्यानुसार नन्द महाराजका गोकुलकी ओर लौटते समय मार्गमें ही मृत राक्षसीका दर्शन एवं उसकी मृत्युके विषयमें श्रवणकर विस्मय प्रकाश करना आदि घटनाओंका वर्णन हुआ है।

ब्रजराज मार्गमें आते-आते सखा वसुदेवके वाक्योंपर विचार करते हुए ब्रजपर भावि उपद्रवोंकी आशङ्कासे भयभीत होकर श्रीहरिके शरणागत हुए।

यहाँ कंस प्रेरित राक्षसी पूतना पुरग्राम ब्रजादिमें शिशुओंकी हत्या करती हुई भ्रमण कर रही थी। अवश्य ही जहाँ श्रीकृष्णकी कथा आदिका श्रवण-कीर्तन नहीं होता, वहीं पूतनाका प्रभाव होता है, किन्तु जहाँ साक्षात् भगवान् विद्यमान हैं, वहाँ पूतना स्वयं अपने विनाशके अतिरिक्त और क्या करेगी? एकदिन रात्रिकालमें पूतना आकाश मार्गसे नन्दगोकुलमें आयी एवं अपनी मायाके द्वारा एक परम सुन्दरी नारीमूर्ति धारणकर उसने नन्द महाराजके गृहमें स्थित शिशु शयन-प्रकोष्ठमें प्रवेश किया। श्रीभगवान्की लीला-विलासकी इच्छाके प्रभावसे किसीने भी पूतनाको रोकनेकी चेष्टा नहीं की। जब पूतना भस्मसे आच्छादित अग्निकी भाँति अपने महातेजको छिपाकर बालक रूपधारी, अपनी मृत्युरूपी भगवान्के निकट आयी, तो भगवान्ने निकट आते ही उसकी विनाश-वासनाको जानकर अपने नेत्र बन्द कर लिये। तदनन्तर उस राक्षसीने बालकरूपी भगवान्को अपनी गोदमें उठा लिया। श्रीभगवान्की योगमायाके प्रभावसे मुग्ध होकर यशोदा एवं रोहिणी भी उस राक्षसीकी चेष्टामें बाधा प्रदान करनेमें सक्षम न हो सकीं। तब उस राक्षसीने शिशुको अति भयङ्कर विषसे विलेपित अपना स्तन पान करनेको दिया। भगवान् क्रुद्ध होकर अपने दोनों हाथोंसे उसके स्तनको तीव्रतापूर्वक दबाते हुए प्राणोंके सहित उसका स्तनपान करने लगे। भगवान्के द्वारा स्तनाकर्षणके भीषण

वेगको सहन न कर पानेके कारण स्तनकी पीड़ासे प्राण छूटते समय पूतना मृत्युके समय कपटताका परित्यागकर अपना वास्तविक रूप धारणकर भूमिपर गिर पड़ी। तदनन्तर उस मृतराक्षसीके वक्षःस्थलपर क्रीड़ामें रत अपने दुलालको देखकर गोपीगण आश्वस्त हुई एवं शीघ्रतापूर्वक जाकर उन्होंने बालकको अपनी गोदमें उठा लिया। इसके पश्चात् उन सबने मिलकर बालकका रक्षा-विधान आरम्भ किया। गोपियोंके द्वारा रक्षाबन्धन सम्पन्न होनेपर मैया यशोदाने अपने आत्मज पुत्रको अपना स्तन पान कराकर शय्यापर शयन कराया। उसी समय नन्दादि गोपगण मथुरासे लौटकर व्रजमें उपस्थित हुए। पूतनाकी मृत देहको देखकर उनके विस्मयकी कोई सीमा न रही। वे सभी वसुदेवके भविष्य-दर्शनकी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् सभी व्रजवासी मिलकर पूतनाकी देहको खण्ड-खण्डकर उसका दाह करने लगे। श्रीकृष्णके द्वारा उसका स्तनपान करनेसे उसके समस्त पाप ध्वंस हो गये थे एवं उसकी जलती हुई देहके धुँएसे अत्यन्त पवित्र सुगन्ध आ रही थी। भगवान्से हिंसा करनेपर भी पूतनाने धात्री गति प्राप्त की, फिर जो भगवान्के प्रति श्रद्धा और भक्ति-सहित अनुरक्त हैं, उनकी सद्गतिके विषयमें और क्या कहा जाय। व्रजवासीगण पूतनाके निधन और शिशुके कुशल-संवाद पाकर प्रसन्न हो गये।

श्रीनन्दने भी बालकको गोदमें लेकर उसका मस्तक सूँघते हुए परम आनन्द प्राप्त किया।

षष्ठोऽध्यायः

पूतना-उद्धार

श्रीशुक उवाच—

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन्।

हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

अन्वयः—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने राजा परीक्षितको कहा) नन्दः (गोपराज श्रीनन्द) पथि (मथुरासे गोकुल जाते समय रास्तेमें) शौरेः (वसुदेवका) वचः (वचन) न मृषा (झूठ नहीं हो सकता) इति (इस प्रकार) विचिन्तयन् (चिन्ता करते हुए) उत्पातागमशङ्कितः (दैत्योंके द्वारा गोकुलमें न जाने कौन-सा उत्पात हो सकता है, ऐसी आशङ्कासे भयभीत होकर) हरिं (अपने इष्टदेव सर्वभयहारी श्रीनारायणके) शरणं जगाम (मनसे ही उनके चरणोंमें शरणागत हुए) ॥ १ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—(हे राजन्!) महाराज नन्द रास्तेमें इस प्रकार सोचने लगे कि वसुदेवजीके वचन कभी भी मिथ्या नहीं हो सकते। सम्भवतः गोकुलमें कोई उत्पात हो रहा हो, इस प्रकार उस उत्पातके आगमनकी आशङ्कासे भयभीत होकर मन-ही-मन वे सर्वभयनाशक अपने इष्टदेव श्रीहरिके शरणागत हो गये ॥ १ ॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी।

शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥

अन्वयः—कंसेन प्रहिता (पहले ही कंसके द्वारा नियुक्त) घोरा (अति भयङ्कर) बालघातिनी (बच्चोंको मारनेवाली) पूतना (पूतना नामकी राक्षसी) शिशून् निघ्नन्ती (विषलिप्त स्तनपान कराकर

बच्चोंको तत्क्षणात् मारती हुई) पुरग्रामव्रजादिषु (नगर, गाँव और व्रज आदिमें) चचार (घूमने फिरने लगी) ॥ २ ॥

अनुवाद—इधर अत्यन्त क्रूर स्वभाववाली बालघातिनी पूतना नामकी राक्षसी कंस द्वारा नियुक्त होकर नगरों, जनपदों एवं अहीरोंकी बस्तियों आदि स्थानोंपर शिशुओंकी हत्या करती हुई भ्रमण कर रही थी ॥ २ ॥

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु।

कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥

अन्वयः—यत्र (जिस नगरादिमें) स्वकर्मसु (दृष्ट-अदृष्ट फलोंको भोगनेवाले अपने-अपने कर्मोंमें अवस्थित) [मानव] सात्वतां भर्तुः (श्रीकृष्णके) रक्षोघ्नानि (आसुरिक प्रभावको दूर करनेवाले) श्रवणादीनि (नाम, रूप, गुण, लीलादिका श्रवण, कीर्तनादि) न कुर्वन्ति (नहीं करते हैं) तत्र हि (वहीं) यातुधान्यः च (असुरोंका) [प्रभाव होता है] ॥ ३ ॥

अनुवाद—(यह सुनकर राजा परीक्षितके श्रीकृष्णके लिए चिन्तित हो जानेपर श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्!) जिस स्थानपर अपने-अपने ऐहिक और पारलौकिक कर्मोंमें स्थित मानव सात्वतपति श्रीकृष्णके राक्षसभय-विनाशक नामादिका श्रवण-कीर्तन इत्यादि नहीं करते, उसी स्थानपर ऐसी राक्षसियाँ अत्याचार करनेमें समर्थ होती हैं। किन्तु, जहाँ स्वयं श्रीकृष्ण विद्यमान हैं, वहाँ भयकी आशङ्का किस प्रकार हो सकती है? ॥ ३ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

षष्ठे सौरूप्य-कौरूप्ये जीवन्मृत-तनोरिह।

निर्वर्ण्योक्तः पूतनाया दाहो नन्दस्य चागमः ॥

श्रीकृष्णविषये शङ्कमानं राजानं प्रति 'अविषये प्रवृत्ता सैव मरिष्यति' इति सूचयन्नाह—नेति। यत्र पुरादिषु, सात्वतां भर्तुः श्रवणादीनि, दृष्टादृष्टफलेषु स्वकर्मस्वपि वर्तमाना जना न कुर्वन्ति, तत्रैव यातुधान्यः प्रभवन्तीति शेषः। किमुत यत्र

प्राधान्येन कुर्वन्ति? तत्र न प्रभवन्तीति किमुततरां यत्र कैवल्येन कुर्वन्ति? किमुततमां साक्षादेव यत्र स प्रादुर्भूयास्ते? इति भावः ॥ ३ ॥

भावानुवाद—इस छठवें अध्यायमें जीवित अवस्थामें अत्यन्त सुन्दर और मृत्यु-कालमें अत्यन्त भयानक रूपको प्रकाश करनेवाली पूतनाका दाह-संस्कार एवं मथुरासे नन्द महाराजके वापस लौटनेका विषय वर्णन हुआ है।

बच्चोंको मारनेकी बात सुनकर श्रीकृष्णके विषयमें चिन्तित राजा परीक्षितके प्रति श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! आसुरिक कार्योंमें प्रवृत्त वह राक्षसी ही प्राण त्याग करेगी—इसे सूचित करनेके लिए श्रीशुकदेव गोस्वामी 'न यत्र' इत्यादि श्लोक कह रहे हैं। जिस नगरादिमें शुभ-अशुभ फलदायी काम्य-कर्मोंको करते हुए अवस्थान करनेपर भी लोग भक्तवत्सल श्रीभगवान्के असुर-भय-विनाशक नाम, रूप, लीला आदिका श्रवण-कीर्तनादि नहीं करते, वहीं असुरोंका प्रभाव बढ़ता है। किन्तु जहाँ प्रधान रूपसे श्रीभगवान्के नाम, रूप, लीलादिका श्रवण, कीर्तन होता है, वहाँ उनका कोई प्रभाव नहीं होता, फिर जहाँ प्रीति-सहित श्रीभगवान्का नाम-कीर्तन होता है और विशेषकर साक्षात् रूपसे स्वयं श्रीभगवान् जहाँ आविर्भूत हुए हैं, वहाँ असुरोंका प्रभाव किस प्रकार सम्भव हो सकता है?—यह भाव है ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—कृष्ण-पक्षकी घोर अन्धकारसे व्याप्त रात्रि प्रायः द्विप्रहर हो गयी।^(१) मथुरासे गोकुल जानेका मार्ग निस्तब्ध तथा जनशून्य है। केवलमात्र बीच-बीचमें निशाचर पक्षियोंका कर्कश स्वर और मार्गके किनारे स्थित वृक्षोंसे गिरते हुए सूखे पत्तोंका मर्मर् शब्द सुनायी दे रहा है। ऐसे समयमें नन्द महाराज बैलगाड़ीमें बैठकर

(१) पिछले अध्यायमें कहा गया है कि श्रीवसुदेव महाराज प्रदोष कालमें श्रीनन्द महाराजसे मिलनेके लिए गये। उनसे व्रजमें अनिष्टकी बात श्रवणकर श्रीनन्द महाराज आदि सभी गोप तुरन्त ही गोकुलको जानेके लिए तत्पर हुए। इसलिए रात्रिकालमें गोकुल गमन समझना होगा तथा पूतनाका गोकुलमें प्रवेश भी रात्रिकालमें हुआ था।

मथुरासे गोकुलकी ओर वापस लौट रहे हैं। उनके साथ अन्य गोपगण भी पृथक्-पृथक् गाड़ियोंमें बैठकर चल रहे हैं। उनके आगे-पीछे अस्त्रधारी अङ्गरक्षक और सबसे आगे मशालधारी परिचारकगण मशालकी सहायतासे मार्ग दिखा रहे हैं। सभी शान्त हैं, किसीके मुखमें कोई शब्द नहीं है तथा सभी शीघ्रगतिसे गोकुलकी ओर बढ़ रहे हैं।

वसुदेवजीने कहा है—‘गोकुलमें कोई उत्पात हो सकता है’, इसलिए सभी श्रीनन्दनन्दनके लिए चिन्तित हैं। श्रीनन्दबाबा अपनी बैलगाड़ीमें अर्द्धशायित अवस्थामें नेत्र मूँदकर लेटे हैं। कभी-कभी उठकर रास्तेकी ओर दृष्टि डालकर देखते हैं कि अब गोकुल कितनी दूर है। वसुदेवजीकी बात बारम्बार स्मरण होनेके कारण उनकी आँखोंमें नींद और मनमें शान्ति नहीं है। इसलिए वे “हे नारायण! रक्षा करो!” कहकर लम्बी-लम्बी साँस लेकर धीरेसे अपने कुलदेवतासे प्रार्थना करते हुए मन-ही-मन चिन्ता करने लगे कि वसुदेवजीकी बात झूठ नहीं हो सकती है। दुरात्मा कंस, व्रजके अति निकटमें ही स्थित है। असुर, राक्षस आदि उसके अनुचर विभिन्न स्थानोंमें प्रजाका उत्पीड़न कर रहे हैं, यह समाचार प्रायः ही सुननेको मिलता रहता है। परन्तु उन्होंने अब तक व्रजमें कोई अत्याचार नहीं किया, यह केवल श्रीनारायणकी ही कृपा है। अतः उनके अतिरिक्त इस विपत्तिमें कोई दूसरा रक्षा नहीं कर सकता।

उन्हींकी कृपासे मैंने पुत्ररत्न प्राप्त किया है। अब यदि वे ही रक्षा करें, तो फिर गोकुलमें लौटकर अपने पुत्रका मुख देख पाऊँगा। श्रीनन्द महाराज, गोकुलसे मथुरा जाते समय यशोदाकी गोदरूपी सरोवरमें प्रस्फुटित नीलकमल-सदृश अपने जीवनके जीवन-स्वरूप पुत्रको देखकर आये थे, इस समय बारम्बार उनके मनमें वही दृश्य उदित होने लगा। वे मन-ही-मन सोचने लगे, दुष्ट कंसके मनकी सन्तुष्टिके लिए घर छोड़कर हमने बुरा किया। क्योंकि, यदि वह रुष्ट होकर मेरा व्रजका राज्य छीन लेता, तो अपने पुत्ररत्नको छातीसे लगाकर मैं गह्वरवनमें जाकर निवास करता और भिक्षा-अन्नसे जीवन धारण करता। किन्तु हाय! यदि मेरे जीवन-धन-स्वरूप पुत्रका कोई

अनिष्ट हो गया, तब मैं क्या करूँगा? हे नारायण! तुम ही हमारे एकमात्र रक्षक हो, अपने सेवककी तुम ही रक्षा करो। इस प्रकार नाना प्रकारकी चिन्ताएँ करते-करते नन्दबाबा बैलगाड़ीमें बैठकर तीव्रगतिसे गोकुलकी ओर अग्रसर हो रहे थे।

इधर कंसके द्वारा भेजी हुई पूतना राक्षसी ब्रजमण्डलके गाँव-गाँव, घर-घरमें भ्रमण कर रही थी एवं दस दिनके भीतर जन्मे शिशुओंका पता मिलते ही विष-मिश्रित स्तन पिलाकर उन्हें मार रही थी। किन्तु, जो पूतना नन्दनन्दनका प्राण-नाश करनेके लिए गयी थी, उनका अनिष्ट करनेके स्थानपर स्वयं अपने ही प्राण खो बैठी। पूतना बकासुर एवं अघासुरकी बहन बकी थी।

पूतना एक जातीय राक्षसीका नाम है, यह किसी व्यक्ति विशेषका नाम नहीं है। श्रीमद्भागवतमें देखा जाता है—पूतना-वधके पश्चात् ब्रजकी गोपियाँ जब नन्दनन्दनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें रक्षामन्त्रोंका पाठकर रहीं थीं, तब उन्होंने कहा था—

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः।

सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः॥

(श्रीमद्भा० १०/६/२८)

अर्थात् कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि जितनी भी बाल-घातिनी राक्षसियाँ हैं एवं अन्य जितने भी बालकोंके अनिष्टकारी राक्षस हैं, वे सभी श्रीभगवान्के नाम-ग्रहणके प्रभावसे विनष्ट हों।

इससे स्पष्ट जाना जाता है कि पूतना-वधके पश्चात् रक्षा-विधानके प्रसङ्गमें गोपियोंने पूतनाके साथ अनेक राक्षसियोंके नामोंका उल्लेख किया था, अतः पूतना एक जातीय-विशेष राक्षसीका नाम है। ये पूतना जातीय राक्षसियाँ अति भयङ्कर होती हैं, इनके स्तनोंसे अतितीव्र विषकी धारा निकलती है तथा उस विषके स्पर्शमात्रसे ही बालकोंके प्राणोंका नाश हो जाता है। बालहत्या करना इनका स्वाभाविक कार्य है एवं ये बालकोंका रक्तपानकर जीवन धारण करती हैं।

विष्णुपुराणमें वर्णन आया है—

यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना संप्रयच्छति।
तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ॥

अर्थात् पूतना राक्षसी रात्रिकालमें जिस-जिस बालकको स्तन पान कराती है, उस बालककी तत्क्षणात् ही मृत्यु हो जाती है।

श्रीकृष्णके जन्मके दूसरे दिन प्रातःकाल कंसने अघ, बक, प्रलम्ब, केशी आदि अपने असुर मित्रोंके साथ विचार विमर्शकर कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि बालघातिनी राक्षसियोंको मथुरा-मण्डलमें दस दिनके भीतर जन्मे शिशुओंकी हत्या करनेका आदेश दिया। उसी दिनसे वे सभी बालघातिनी राक्षसियाँ इस पापमय कार्यमें प्रवृत्त हो गयी।

महाराज परीक्षित् श्रीशुकदेव गोस्वामीके मुखसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंको श्रवण करते समय गोकुलमें पूतनाका प्रवेश सुनकर भयसे काँप उठे। यह देखकर श्रीशुकदेवजी महाराज परीक्षित्को आश्वासन देकर कहने लगे—राजन्! भय मत करो। पूतना राक्षसी गोकुलके शिशुओंका विनाश करनेके लिए कृत-सङ्कल्प है, किन्तु उन्हें कोई भय नहीं है, क्योंकि श्रीकृष्णकी लीलाभूमि गोकुलमें असुरोंको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। श्रीभगवान् 'सात्वतां भर्ता' अर्थात् भक्तजनोंके परिपालक है। जहाँ श्रीभगवान्के नाम-रूप-गुण-लीला आदिका श्रवण-कीर्तन होता है, जहाँ श्रीगोविन्दके चरणोंमें सचन्दन तुलसीपत्र अर्पण किया जाता है, जहाँ श्रीगोविन्दके चरणाश्रित भक्तगण निवास करते हैं, वहाँ असुरोंको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। नित्य-नैमित्तिक आदि कर्मानुष्ठानके अङ्गरूपमें यदि किसी भी स्थानमें श्रीभगवान्के नाम, रूप, लीला आदिका श्रवण-कीर्तन होता है, उनके चरणोंमें सचन्दन तुलसीपत्र अर्पित होता है अथवा किसी भी प्रकारसे श्रीभगवान्का स्मरण किया जाता है, तो वहाँ भी असुरोंको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। फिर गोकुलमें तो साक्षात् श्रीभगवान् अवतीर्ण हुए हैं। सभी व्रजवासी उनके नित्यसिद्ध प्रेमवान भक्त और लीला-पार्षद हैं। श्रीनारायण व्रजवासियोंके कुलदेवताके रूपमें चिरकालसे पूजित होते आ रहे हैं। अतएव पूतना राक्षसी उनका क्या अनिष्ट

करेगी? जिनका नाम उच्चारण करने मात्रसे ही असुरोंका गर्व खण्डित हो जाता है, ऐसे भक्तजन-परिपालक श्रीभगवान् जहाँ स्वयं बालकरूपमें आविर्भूत हुए हैं, उस राक्षसीकी क्या क्षमता है कि वहाँ प्रवेश करे?

श्रीभगवान्की लीलाशक्तिका अपार वैभव है। उनकी लीलाशक्तिके अचिन्त्य प्रभावसे सबकुछ सम्भव है। कंस-प्रेरित पूतना मथुरा-मण्डलके गाँव-गाँवमें जाकर बच्चोंका विनाश कर रही है। किन्तु श्रीभगवान्की लीलाशक्तिके प्रभावसे उनके भक्तोंका कोई अनिष्ट नहीं होता है। मथुरा-मण्डलमें स्थित विभिन्न गाँवोंमें जितने भी कंस-पक्षीय असुर-भावसम्पन्न व्यक्ति निवास कर रहे हैं, पूतना प्रत्येक रात्रिकालमें केवल उन्हींके बच्चोंका विनाश कर रही है, किन्तु मथुरा-मण्डलमें श्रीभगवान्के जितने भक्त निवास करते हैं, पूतना उनके घरोंमें कभी भी प्रवेश नहीं कर सकती। श्रीभगवान्की लीलाशक्तिके प्रभावसे उनके गृह पूतनाके दृष्टिगोचर ही नहीं होते। मथुरा-मण्डलवासी असुर-भाव-सम्पन्न कंस-पक्षीय व्यक्तियोंकी सन्तानें भी असुर-भाव ग्रहणकर भविष्यमें भक्तोंपर अत्याचार करेंगी, इसलिए श्रीभगवान्की लीलाशक्तिके प्रभावसे बाल्यकालमें ही पूतनाके हाथोंसे उनकी मृत्यु हो गयी। यह भी श्रीभगवान्की असुर-मारण लीला है। असुर-मारण लीला भी श्रीभगवान्की अनन्त लीलाओंमें से एक अन्यतम लीला है।

श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितजीसे कहा—हे राजन्! कंसके द्वारा प्रेरित बालघातिनी पूतना राक्षसी गाँव-गाँवमें जाकर शिशुओंका विनाश कर रही है, इसके लिए चिन्ता मत करो। सर्वमङ्गल-निधान श्रीगोविन्द स्वयं नन्दालयमें विराजमान हैं, अतएव वहाँ किसी प्रकारका अमङ्गल होनेकी सम्भावना नहीं है। आप स्थिरचित्त होकर श्रीभगवान्की मधुर लीलाओंका आस्वादन करें ॥ १-३ ॥

सा खेचर्येकदोत्पत्य^(१) पूतना नन्दगोकुलम्।

योषित्वा माययात्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥ ४ ॥

(१) पाठान्तर—एकदोपेत्य

अन्वयः—एकदा (श्रीकृष्ण-जन्मके छठवें दिनकी रात्रिमें) कामचारिणी (इच्छानुसार रूप धारणकर विचरण करनेमें समर्थ) खेचरी (आकाश मार्ग गामिनी उल्लूरूपी) सा (पूर्व कथित उस) पूतना (पूतनाने) उत्पत्य (आकाश मार्गसे आकर) मायया (राक्षसी माया द्वारा) आत्मानं (अपने देहको) योषित्वा (अपूर्व सुन्दरी स्त्रीका वेश बनाकर) नन्दगोकुलं (नन्दालयमें) प्राविशत् (प्रवेश किया) ॥ ४ ॥

अनुवाद—एकदिन रातमें अपनी इच्छापूर्वक विचरण करनेवाली उस राक्षसीने मायाबलसे सुन्दरी नारीका वेश धारणकर आकाशमार्गमें विचरण करते हुए नन्द-गोकुलमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदपि पूतनावधलीलाया आवश्यकत्वाल्लीलाशक्तिप्रेरणवशादेव मृत्युना निमन्त्र्यमाणैव मर्तुं गोकुलं जगामेत्याह—सेति। एकदा रात्रौ आकाशमुत्पत्य गोकुलं प्रविश्य मायया आत्मानं, योषित्वा योषितं कृत्वा; णिज्जलोप आर्षः; सौन्दर्येण सर्वजनान् मोहयित्वा गृहान्तःपुरादिषु सहसा प्रवेष्टुमिति भावः। यद्यपि जगन्मोहिनी भगवन्मायापि तान् सिद्धभक्तान्मोहयितुं नोत्सहते, तदपि कृष्णलीला-शोभासिद्ध्यर्थम् ऐन्द्रजालिकमायेव तानपि पूतनादिमाया मोहयति—भगवदिच्छावशादिति ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

भावानुवाद—फिर भी, पूतनावध लीलाकी आवश्यकता-हेतु लीलाशक्तिकी प्रेरणासे मृत्युके द्वारा निमन्त्रित होकर पूतना मरनेके लिए गोकुलमें आयी, यही 'सा' इत्यादि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। 'सा खेचरी एकदा' अर्थात् कामचारिणी उस खेचरी पूतनाने एकदिन रात्रिकालमें अपनी मायासे सुन्दरी नारीका रूप-धारण करके आकाश मार्गसे नन्दगोकुलमें प्रवेश किया। सुन्दर रूप धारण करनेका उद्देश्य—अपने सौन्दर्यसे सभीको मोहितकर घरके भीतर तक बिना किसी बाधाके प्रवेश किया जा सकता है, यह भाव है। यद्यपि जगत्को मोहित करनेवाली श्रीभगवान्की जगन्मोहिनी माया भी ब्रजवासियोंके समान सिद्ध भक्तोंको मोहित करनेमें समर्थ नहीं है, तथापि श्रीकृष्णलीलाकी शोभाकी सिद्धिके लिए ऐन्द्रजालिक मायाकी भाँति पूतनादिकी मायाने उन्हें भी मोहित कर दिया—यह श्रीभगवान्की इच्छासे ही हुआ, ऐसा समझना चाहिये ॥ ४ ॥

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां,
 बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
 सुवाससं कम्पितकर्णभूषण-
 त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-
 र्मनोहरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।
 अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं,
 गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां (पूतनाके मस्तकपर स्थित केशबन्धनमें बेली-फूल लगे थे) बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमां (स्थूल नितम्ब एवं पयोधरके भारसे उसका मध्यदेश अतिक्षीण था) सुवाससं (वह रमणीय वस्त्र पहने थी) कम्पितकर्णभूषणत्विषा (गति-विलास-भङ्गीके कारण कानोंके दोदुल्यमान कुण्डलोंकी छटासे) उल्लसत्कुन्तलमण्डिताननां (उद्भासित अलकावलीसे उसका मुख परम शोभा-सम्पन्न हो रहा था) [तथा] वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैः (अपने मनोरम हास्ययुक्त कटाक्षसे) व्रजौकसां (व्रजवासियोंका) मनः (मन) हरन्तीं (हरण करनेवाली) तां (उस) वनितां (रमणी वेशधारीणि पूतनाको) गोप्यः (गोपियाँ) पतिं द्रष्टुमिव (किसी भाग्यशाली व्यक्तिको पति-रूपमें वरण करनेके लिए) आगताम् (आयी हुई) अम्भोजकरेण (लीला-कमल हाथमें लिये) रूपिणीं श्रियं (साक्षात् लक्ष्मीके रूपमें) अमंसत (मानने लगीं) ॥ ५-६ ॥

अनुवाद—उसकी चोटीमें मल्लिकाके पुष्प गुँथे हुए थे। विशाल नितम्ब एवं स्तनयुगलके भारसे उसकी कमर पतली हो रही थी। उसके वस्त्र बड़े सुन्दर थे। जब उसके कानोंमें दोनों कुण्डल हिलते थे, तब उनकी चमकसे मुखकी ओर लटकी अलकोंसे उसका मुख अतीव शोभायमान हो रहा था। वह अपनी मधुर मुसकान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे व्रजवासियोंके मनको आकर्षित कर रही थी। गोपियाँ उस रूपवती रमणीको देखकर यह स्थिर कर रही थीं कि अपने हाथमें कमल लिये ये साक्षात् लक्ष्मीदेवी अपने पति श्रीकृष्णके दर्शनके लिए ही आयी हैं ॥ ५-६ ॥

सारार्थदर्शिनी—तां, श्रियं, रूपिणीं मूर्तिमतीं, रत्नादिधनसम्पत्तिमिव अम्भोजकरेण उपलक्षिताम्, पतिं श्रीव्रजराजस्येष्टदेवं श्रीनारायणं, द्रष्टुमिव आगताम् अमंसतेत्युत्तरे-
णान्वयः। बृहता नितम्बेन स्तनाभ्याञ्च उभयत आक्रान्तमिव, कृच्छ्रं कृशं, मध्यममुदरं, यस्यास्ताम्। वनितां अत्यनुरागवतीम्। ‘वनिताजनितात्यर्थानुरागायाञ्च योषिति’ इत्यमरः। ‘अहो रूपं, अहोऽनुराग!’ इति व्रजौकसां मनोहरन्तीं, अतएवैते सहसाऽन्तःपुरं प्रविशन्तीमपि न निवारयामासुरिति भावः ॥ ६ ॥

भावानुवाद—‘तां श्रियं रूपिणीं’—रूपवती मूर्तिमती रत्नादि धन सम्पत्ति ही मानो लीलाकमल हाथमें धारणकर साक्षात् श्रीलक्ष्मी ‘पतिं’—श्रीव्रजराजके इष्टदेव श्रीनारायणको देखनेके लिए यहाँ आयी हैं—गोपियाँ ऐसा निश्चय करने लगीं, इस प्रकार बादवाले पदके साथ अन्वय होगा। ‘बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमा’—बृहत् नितम्ब और स्थूलतर स्तन-युगल द्वारा आक्रान्त होकर मानो उसका कटिप्रदेश (कमर) क्षीण (पतला) हो गया है। ‘वनितां’—अति अनुरागवती, क्योंकि अमरकोषमें कहा गया है—‘वनिता शब्दसे अति अनुरागवती स्त्रीको समझा जाता है।’ ‘अहो कैसा रूप, कैसा अनुराग है!’—ऐसा कहनेवाले व्रजवासियोंका उसने मन-हरण कर लिया था। इसीलिए वे सभी उसे सहसा अन्तःपुरमें प्रवेश करती हुई देखकर भी उसे नहीं रोक सके, यह भाव है ॥ ५-६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीकृष्णके जन्मके छठवें दिन गोपराज नन्दजी राजाका कर प्रदान करनेके लिए मथुरामें कंसके निकट उपस्थित हुए। कंसने उनसे पुत्र-जन्मका संवाद सुनकर उसी दिन व्रज-मण्डलके शिशुओंका विनाश करनेके लिए बालघातिनी राक्षसियोंको नियुक्त कर दिया। अघासुर एवं बकासुरकी बहन बकी नामकी पूतना जातीय बालघातिनी राक्षसी उसी दिन रात्रिकालमें नन्दगोकुलमें आकर उपस्थित हुई। बकी पूतनाका स्वाभाविक स्वरूप उल्लूकी भाँति है। (इसलिए श्रीमद्भागवतमें उसे ‘खेचरी’ कहा गया है।) किन्तु वह कामचारिणी है अर्थात् अपनी स्वजाति-सुलभ स्वाभाविक मायाशक्तिसे वह कोई भी रूप धारणकर किसी भी स्थानमें जा सकती है। उल्लूरूपी पूतना आकाश मार्गसे सूतिका-घरमें प्रवेशकर अपना कार्य

सम्पन्न कर सकती थी अथवा इच्छा करनेपर मक्खीका रूप धारणकर सूतिका-घरमें प्रवेशकर अपना कार्य सम्पन्न कर सकती थी, किन्तु नन्दगोकुलमें आकर उसकी यशोदाके समान आयु एवं श्रीकृष्णकी मातृस्थानीया गोपियों जैसा वेश एवं रूप धारण करनेकी इच्छा हुई। अतः इच्छा करनेमात्रसे ही उस कामचारिणी राक्षसीने परम सुन्दरी रमणीका रूप धारण कर लिया।

उसके घने काले कुञ्चित (घुँघराले) केशोंकी नितम्ब तक लम्बी वेणी (चोटी) तथा मस्तकके पीछे कवरी (जूड़ा) ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो नागिन कुण्डली मारकर बैठी है एवं अनगिनत सुगन्धित मालती फूलोंकी मालाओंके द्वारा वह सुसज्जित है। उसकी कमर बहुत पतली है, देखनेसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो अधोभागमें विशाल नितम्ब एवं ऊपरमें करिकुम्भ विनिन्दित (हाथीके माथेको भी पराभूत करनेवाले) स्तनयुगलके भारसे कटिदेश क्षीणताको प्राप्त हो रहा है। तारोंकी पंक्तियोंसे विमण्डित सुनील गगनकी भाँति स्वर्ण-सूत्रोंसे ग्रथित एवं पुष्पराजिसे सुशोभित नील पट्टसाड़ी, पूतनाके तपे हुए सोनेके समान अङ्गोंको ढककर एक-दूसरेकी शोभा सम्बर्द्धन कर रहे हैं। चलते समय उसकी अङ्ग-वल्लरी (लता) मानो रूपके गर्वसे बाँयें और दाँयें कुछ झुक और ऊँचा हो रही है। उसके कानोंमें स्थित मणिकुण्डल दोलायमान होकर अपनी चमक ललाटके ऊपर दो भागमें विभक्त केशोंमें फैला रहे हैं, जिससे उसके पूर्ण शशधर-विनिन्दित मुखमण्डलकी शोभा मानो और भी बढ़ गयी है। उसके लम्बे बाँयें हाथमें वस्त्राञ्चल और कुछ ऊपर उठे हुए दाहिने हाथमें खिला हुआ स्वर्णकमल है। गोकुलके मार्गको प्रकाशितकर नन्दालयकी ओर जाते समय उसके मृदु मधुर-हास्य एवं तिरछी चितवनसे गोकुल-रक्षक एवं गोकुलवासियोंका मन मुग्ध हो गया।

रात्रिकालमें अपरिचित रमणी गोकुलमें प्रवेशकर नन्दालयकी ओर जा रही है—किन्तु किसीने भी न तो उसका परिचय पूछा और न ही नन्दालयमें जानेसे उसे निषेध किया। अपितु उनलोगोंने तो ऐसा समझा कि यह रमणी कोई साधारण नहीं है, निश्चित ही वैकुण्ठसे साक्षात् लक्ष्मीजी आ रही हैं। लक्ष्मीजी जगत्में किसी भाग्यवान

पुरुषका ही आश्रय ग्रहण करती हैं एवं वे जिसके आश्रित होती हैं, उस भाग्यवान् पुरुषकी सर्वसम्पद अविचल रहती है। हमारे नन्द महाराजके यहाँ सर्वसुलक्षणोंसे युक्त पुत्रका जन्म हुआ है, यह समाचार जानकर सम्भवतः लक्ष्मीजी उन्हें ही अपने आश्रयके रूपमें वरण करनेके लिए नन्दालयमें आ रही हैं। गोकुलवासी गोपगणोंने ऐसा अनुमानकर पूतनाके आगमनमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी।

पूतनाका गोकुलमें आगमन, स्त्रीवेश धारण, ब्रजवासियोंका मोहन एवं नन्दालयमें प्रवेश, ये सभी कार्य असम्भव जैसे प्रतीत होते हैं, किन्तु इसमें श्रीभगवान्की लीलाशक्तिका हाथ है, नहीं तो वह राक्षसी अपनी शक्तिसे कभी भी श्रीभगवान् एवं उनके भक्तोंके निकट तथा उनके धाम ब्रज-मण्डलमें प्रवेश नहीं कर पाती। श्रीभगवान्की लीलाशक्तिके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है, वे श्रीभगवान्की लीला सम्पन्न करनेके लिए असम्भवको भी सम्भव कर सकती हैं। श्रीभगवान्की पूतना-वध लीला सम्पन्न करनेके लिए उनकी लीला-शक्तिने ही पूतनाको ब्रज-मण्डलमें प्रवेश कराया। ब्रज-मण्डलमें प्रवेश करनेके लिए पूतनाकी अपनी कोई करतूत नहीं है, उसने श्रीभगवान्की लीलाशक्तिकी प्रेरणासे ही ब्रज-मण्डलमें प्रवेश किया, लीलाशक्ति ही मानो उसे मृत्यु-पथका यात्री बनाकर एवं निमन्त्रण देकर उचित समयमें साथमें लेकर आयी।

पूतनाका सद्-वेश धारण करना ब्रजधामकी कृपा है। श्रीकृष्ण-भक्तका वेश ही यथार्थ सद्-वेश है। ब्रजकी गोपियाँ वात्सल्यरसका आश्रय हैं, अतः उनका वेश धारण करना अत्यन्त सौभाग्यके बिना सम्भव नहीं है। पूतनाके राक्षसी होनेपर भी परम करुणामय ब्रजधामने उसे वञ्चित नहीं किया, भक्तके वेशमें सजाकर उसे कृतार्थ कर दिया।

पूतनाका नन्दालयमें गमन भी स्वजनोंके प्रेमका वर्द्धन करनेके लिए श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे ही संघटित हुआ है। श्रीनन्द, यशोदा एवं अन्य गोप-गोपियोंका प्रेम वर्द्धन करना ही पूतना-वध लीलाका प्रधान उद्देश्य है। दरिद्र व्यक्ति धनी होकर यदि उस धनको खो बैठता है, तो उसकी धनके प्रति लालसा और अधिक बढ़ जाती

है। श्रीनन्द-यशोदाने अत्यन्त अभिलाषाके पश्चात् श्रीकृष्णको पुत्र रूपमें प्राप्त किया है एवं उन्हें लेकर वे आनन्दमें विभोर हैं। जब पूतना श्रीकृष्णका वध करनेकी चेष्टा करते समय उन्हें श्रीयशोदाके निकटसे दूर ले गयी एवं स्वयं ही श्रीकृष्णके द्वारा निहत हो गयी, तब उसके वधके पश्चात् श्रीकृष्णको पुनः सकुशल पाकर श्रीयशोदाका उनके प्रति वात्सल्य प्रेम अत्यधिक बढ़ गया ॥ ४-६ ॥

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्,
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम्।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं,
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥

अन्वयः—तत्र (गोकुलमें) बालग्रहः (बालघातिनी पूतना) शिशून् (बच्चोंको) विचिन्वती (ढूँढ़ती हुई) यदृच्छया (बिना अनुसन्धानके अचानक) नन्दगृहे (नन्दालयमें ही) [आकर उपस्थित हुई एवं वहाँ] भसि (भस्ममें) आहितम् (आच्छादित) अग्निं इव (अग्निकी भाँति) प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं (बाल माधुर्यमें अपने महाप्रभावका आच्छादनकर) असदन्तकं (दुष्टदमनकारी) बालं (बाल माधुरीको प्रकाश कर रहे श्रीभगवान्को) तल्पे (शय्यापर) [सोते हुए] ददर्श (देखा) ॥ ७ ॥

अनुवाद—नन्दगोकुलमें वह बालघातिनी पूतना (हत्या करनेके लिए) शिशुओंको इधर-उधर ढूँढ़ती हुई स्वेच्छासे अर्थात् भगवत्-लीलाशक्तिकी प्रेरणासे अन्यत्र कहीं दूसरी जगह न जाकर श्रीनन्द महाराजके महलमें प्रवेश कर गयी और शय्यापर भस्मसे आच्छादित अग्निके समान अपने भगवत्-तेजको छिपाये हुए दुष्ट-विनाशक बालकरूपी श्रीकृष्णको देख सकी ॥ ७ ॥

सारार्थदर्शिनी—बालग्रहः पूतना, असदन्तकं स्वहन्तारमपि स्ववध्यत्वेन प्रतीयमानं, बालं ददर्श; यतः 'प्रतिच्छन्न' इति। भसि भस्मनि, आहितं अन्तरर्पितं; भस्माच्छादितमग्निमिवेत्यर्थः ॥ ७ ॥

भावानुवाद—'बालग्रहः'—पूतनाने 'असदन्तकम्' अर्थात् अपने विनाशकारी बालकको भी अपने द्वारा मारे जानेवालेके रूपमें देखा,

क्योंकि उस बालकने 'प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं' अर्थात् अपने भगवत्-तेजको छिपाया हुआ था। जैसे भस्मसे आच्छादित अग्नि ऊपरसे देखनेमें भस्म (राखकी ढेर) ही प्रतीत होती है, वैसे ही पूतनाने अपने ऐश्वर्यको छिपानेवाले श्रीकृष्णको सामान्य बालकके रूपमें दर्शन किया, यह अर्थ है॥७॥

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं,
चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः।
अनन्तमारोपयदङ्गमन्तकं,
यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः॥८॥

अन्वयः—चराचरात्मा (समस्त जीवोंके अन्तर्यामी) सः (भगवान् श्रीकृष्णने) बालकमारिकाग्रहं (बालघातिनी) तां (उस पूतनाको) विबुध्य (अपने निकट आती हुई जानकर) निमीलितेक्षणः (नयन बन्द कर लिये) अबुद्धिरज्जुधीः (निर्बोध व्यक्ति रस्सी समझकर) यथा (जैसे) सुप्तं (सोये हुए) उरगं (साँपको पकड़ लेता है) [वैसे ही पूतनाने भी] अन्तकं (अपने विनाशकारी) अनन्तं (श्रीभगवान्को) अङ्गं (अपनी गोदमें) आरोपयत् (उठा लिया)॥८॥

अनुवाद—स्थावर-जङ्गम सबकी आत्मा श्रीकृष्णने जान लिया कि यह पूतना 'शिशु विनाशक ग्रहरूपिणी' है और उन्होंने उसका विनाश करनेकी इच्छासे डरपोकके समान दोनों नेत्रोंको मूँद लिया। जैसे सर्पको रज्जु समझकर कोई मूर्ख उसे उठा लेता है, उसी प्रकार पूतनाने अपने कालस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको अपनी गोदमें उठा लिया॥८॥

सारार्थदर्शिनी—चराचरात्मेति—दुष्टागमनकाले सर्वज्ञताशक्तेः सेवावसरो दर्शितः। तां विबुध्य बाल्यस्वभावेनैव निमीलितेक्षण, आस दिदीपे। निजात्यन्त-बालत्वभीरुत्वज्ञापनाय च, तादृशामङ्गलदर्शनाभावाय च, स्वदृष्टिस्वाभाविकतद्विध-धर्षणाभावाय च, मातृभावदर्शिकायास्तस्याः स्वकर्तृकवधे लज्जानुत्पत्त्यैव च, तन्मरणवैकल्यदर्शनाभावाय च मुद्रितनेत्रत्वम्। ततश्चानन्तं तमङ्गमारोपयत्। अन्तकं स्वस्येति संहारिकाशक्तेः सेवावसरः। यस्य देशतः कालतश्च अन्तो नास्ति,

तमनन्तमपि अङ्गमारोपयदित्यर्थः। विरोधेनाद्भुतरसो व्यञ्जितः। अन्तकमनन्तमिति शब्दविरोधः। यथा सुप्तमुरगं, अबुद्ध्या अल्पबुद्ध्या हेतुना, रज्जुधीर्जनो गृह्णाति, तद्वदित्यर्थः ॥ ८ ॥

भावानुवाद—‘चराचरात्मा’ अर्थात् चराचर विश्वके अन्तर्यामी भगवान्की सर्वज्ञता शक्तिको उस दुष्ट राक्षसीके आगमनपर सेवाका अवसर प्राप्त हुआ, यह दिखाया गया है। श्रीकृष्ण पूतनाको अपने निकट आती हुई जानकर बालसुलभ स्वभाववशतः ‘निमीलितेक्षणः’ अर्थात् नेत्र बन्दकर ‘आस’ अर्थात् शोभा पाने लगे।

नेत्र बन्द करनेके ये कारण हैं—

(१) ‘निजात्यन्तबालत्व-भीरुत्वज्ञापनाय’ अर्थात् अपने अत्यन्त बालोचित डरपोक स्वभावको प्रकाशित करनेके लिए उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। साधारण रूपसे शिशु अधिक समय तक सोता रहता है। थोड़ी देर पहले वे जाग रहे थे, अब नींदके आवेशमें उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये हैं—यही शिशु-स्वभावका परिचय है। बच्चे माँके सामने हँसते-खेलते हैं तथा अपरिचित व्यक्तिका मुख देखनेसे भयभीत हो जाते हैं। भयभीत होनेपर नेत्र बन्द कर लेते हैं। बालक कृष्ण अब तक यशोदा-माताके निकट खेल रहे थे। किन्तु अपरिचित पूतनाको देखकर उन्होंने भयभीत होकर नेत्र बन्द कर लिये हैं। यह भी उनकी एक बाल माधुरी है।

(२) ‘तादृशामङ्गल-दर्शनाभावाय’ अर्थात् ऐसे अमङ्गल अर्थात् ऐसी दुष्टाका दर्शन करनेकी अनिच्छासे उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। पूतनाने मन-ही-मन ब्रजधामके बालकोंका वध करनेका निश्चय किया था, किन्तु लीलाशक्तिकी इच्छासे वह अब तक किसी भी ब्रजधामके श्रीकृष्णके पार्षदरूपी बालकको देख नहीं पायी और अन्तमें नन्दनन्दनके ही निकट आ गयी। जो भक्तका अनिष्ट करता है अथवा अनिष्ट करनेका विचार भी करता है, वह अमङ्गल-स्वरूप दुष्ट है। दुष्टा पूतनाने दुष्ट सङ्कल्प किया था। इसलिए श्रीभगवान्ने उसका मुख दर्शन करनेकी अभिलाषा ही नहीं की।

(३) ‘स्वदृष्टिस्वाभाविक-तद्विधधर्षणाभावाय’ अर्थात् श्रीभगवान्की दृष्टिके सामने किसी प्रकारकी कपटता नहीं रह सकनेके कारण

उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। पूतना छद्मवेशमें आयी थी। यदि भगवान् उसकी ओर देखते तो उसका स्वाभाविक स्वरूप प्रकाशित हो जाता और ऐसा होनेपर यशोदा मैया भयभीत हो जाती। इसलिए श्रीकृष्णने उसकी ओर न देखकर नेत्र बन्द कर लिये।

(४) 'मातृभावदर्शिकायास्तस्याः स्वकर्तृकवधे लज्जानुत्पत्त्यैव' अर्थात् मातृभावका दर्शन करानेवाली अर्थात् मातृवेश धारिणी पूतनाका वध करनेमें मानो भगवान् स्वयं लज्जित हो गये। इस लज्जाके कारण उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये।

(५) 'तन्मरणवैकल्य-दर्शनाभावाय च' अर्थात् पूतनाको मृत्युके समय जो यन्त्रणा होगी उसे वे अपनी आँखोंसे देखना नहीं चाहते। यद्यपि वे दण्डदाता हैं, किन्तु फिर भी अतिशय करुणामय हैं। अन्यायके लिए उसे दण्ड देंगे, किन्तु उसके मरणकालकी यन्त्रणा न देख सकनेके कारण उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये।

इसके पश्चात् पूतनाने 'अनन्तं आरोपयेत् अङ्गं' अर्थात् अनन्त (श्रीकृष्ण) को गोदमें उठा लिया। 'अन्तक'—जो अपने विनाशका कारण है, उन्हें—यहाँ श्रीभगवान्ने अपनी संहारिकाशक्तिको सेवाका अवसर प्रदान किया। जिनका देश और कालमें कोई अन्त नहीं है, उन्हीं 'अनन्त' को गोदमें उठा लिया, यह अर्थ है। यहाँ विरोध द्वारा अद्भुतरस प्रकाशित हुआ है। पुनः 'अन्तक' और 'अनन्त'—ये दोनों शब्द विरोधी हैं। जिस प्रकार सोये हुए सर्पको कोई व्यक्ति 'अबुद्ध्या' अर्थात् अल्पबुद्धिके कारण रस्सी समझकर पकड़ लेता है, वैसे ही पूतनाने भी अन्तक (दुष्टोंका अन्त करनेवाले) उस अनन्तको सामान्य बालक जानकर गोदमें उठा लिया॥ ८ ॥

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां,
वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत्।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते,
निरीक्ष्यमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—कोशपरिच्छदासिवत् (विचित्र चर्ममय कोशके द्वारा आच्छादित तलवारकी भाँति) तीक्ष्णचित्तां (हिंसा-वृत्तिसे पूर्ण हृदयवाली)

[किन्तु बाहरसे] अतिवामचेष्टितां (अतिशय वात्सल्य-उचित व्यवहार-कारिणी) तां वरस्त्रियं (उस सुन्दरी स्त्रीरूपी पूतनाको) [अचानक] अन्तरा (घरके भीतर) [आती हुई] वीक्ष्य च (देखकर भी) जननी (यशोदा और रोहिणी दोनों माताएँ) तत्प्रभया (उसकी अङ्गकान्ति या व्यवहारसे) धर्षिते (मुग्ध होकर) निरीक्ष्यमाणे (केवल उसके वात्सल्य व्यवहारको ही देखती हुई) अतिष्ठताम् हि (चुपचाप रह गयीं, किन्तु उसे निषेध नहीं किया) ॥ ९ ॥

अनुवाद—उस राक्षसीका चित्त सुकोमल मखमली म्यानमें रखी तीक्ष्ण तलवारके समान कुटिल होनेपर भी वह बाह्य चेष्टाओंसे अपनेको माताके समान अतिशय वात्सल्यभावसे युक्त दिखा रही थी। यही कारण था कि घरमें आयी उस सुन्दरीको देखकर भी यशोदा एवं रोहिणीदेवी उसकी सौन्दर्यप्रभासे मोहित होकर उसे एकटक निहारती रहीं, किसीने उसे रोका-टोका नहीं ॥ ९ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, यशोदा-रोहिण्यौ कथं तां न न्यवारयेतां? तत्राह—तामिति । वामं वल्गु जनन्या इव चेष्टितं यस्यास्ताम् । अन्तरा गृहमध्य एव, वीक्ष्य । अन्तस्त्वैक्ष्ये बहिर्मादवे च दृष्टान्त-मृदुचर्ममयः कोषः, परिच्छद आवरणं, यस्य, तथाभूतमसिमिव । इति तस्याः प्रभया, अवधर्षिते अभिभूते—‘मत्पुत्रस्याभ्युदयाय किमियमम्बिका, किमियमिन्द्राणी, मूर्तिमती त्रैलोक्यसम्पत्तिर्वा वात्सल्येन स्तन्यं पाययति’ इति मोहिते सत्यौ, जननी जनन्यौ, निरीक्ष्यमाणे एव केवलमतिष्ठतां, न तु निवारितवत्यौ ॥ ९ ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि यशोदा या रोहिणीने पूतनाको भीतर आनेसे निषेध क्यों नहीं किया? तो उत्तरमें ‘तां’ इत्यादि श्लोक कह रहे हैं। ‘वामचेष्टितां’ अर्थात् जिसकी जननीकी भाँति मनोहर चेष्टाएँ थीं, उस पूतनाको ‘अन्तरा’ अर्थात् घरके भीतर ही देखकर। हृदयमें अतिशय तीक्ष्णता और बाहरसे देखनेमें अतिशय कोमलताका दृष्टान्त—‘कोषपरिच्छदासिवत्’ अर्थात् जिस प्रकार कोमल चर्ममय म्यानमें तीक्ष्ण तलवार छिपी होती है, वैसे ही पूतना हृदयसे कुटिल होनेपर भी बाहरसे वात्सल्यभावयुक्त थी। ‘तत्प्रभया अवधर्षिते’ अर्थात् उसके मातृवत् स्नेहसे प्रकट हुई प्रभासे दोनों माताएँ यह सोचकर

अभिभूत हो गयीं कि 'हमारे पुत्रके मङ्गलके लिए क्या अम्बिकादेवी अथवा इन्द्राणी या मूर्तिमती त्रैलोक्य-सम्पत्ति ही वात्सल्यभावसे हमारे शिशुको स्तन पान करा रही है'—इस प्रकार मोहित होनेके कारण ही दोनों माताएँ केवल उसकी ओर देखती रह गयीं, किन्तु उसे रोक नहीं सकीं ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—बालघातिनी पूतना गोकुल प्रान्तमें उपस्थित होकर तथा रमणी-वेशमें सुसज्जित होकर विविध स्थानोंमें बच्चोंको ढूँढ़ने लगी, किन्तु वह कहीं भी किसी बच्चेकी खोज नहीं कर पायी। सूतिका-गारमें शिशुके होनेसे ही पूतना आदि बालघातिनी राक्षसियाँ अपनी स्वजाति-सुलभ घ्राणशक्तिके द्वारा उनका अनुसन्धान कर लेती हैं। श्रीकृष्णके कुछ पहले और पीछे ब्रज-मण्डलमें अनेक शिशुओंने जन्म लिया है। किन्तु पूतना उनके घरोंमें जाकर भी उनका सन्धान नहीं कर सकी। इस समय ब्रजमें जितने भी बच्चोंने जन्म लिया है, वे सभी श्रीकृष्णकी बाललीला और गोष्ठलीलाके पार्षद हैं। अतएव वे सभी सख्य प्रेमवान भक्त हैं। पूतना अथवा अन्य किसी असुरकी क्षमता नहीं है कि वह उनका सन्धान कर सके अथवा उनके निकट जा सके।

पूतना राक्षसीने गोकुलमें भ्रमण करते हुए अन्तमें श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे विवश होकर नन्दालयमें प्रवेश किया तथा लीलाशक्तिकी प्रेरणासे नन्दालयमें प्रवेशकर वह सीधे महलके भीतर चली गयी। नन्दालयके सिंहद्वार और अन्तःपुरके द्वारके पहरेदारोंमेंसे किसीने भी पूतनाके भीतर जानेमें बाधा नहीं दी। अन्तःपुरमें प्रवेशकर पूतना जब यशोदाके कक्षकी ओर जाने लगी, तब अन्तःपुरकी परिचारिकाओंने भी उससे कुछ नहीं कहा, क्योंकि उन सबने श्रीकृष्णकी मायासे मुग्ध होकर पूतनाको एक दिव्य रमणी समझा एवं उसके आगमनसे नन्दनन्दनका कल्याण ही होगा ऐसा निश्चय किया।

माँ यशोदाके घरमें विचित्र कोमल शय्यापर ब्रजराजनन्दन शयन किये हुए हैं, यशोदा मैया एवं रोहिणी शय्याके किनारे बैठकर उनकी बाल माधुरीका आस्वादन कर रही हैं। उनके नयन, वदन और

अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभासे उनका चित्त आनन्दित हो रहा है। वे अपलक नेत्रोंसे उन्हें चरणोंसे मस्तक तक निरीक्षणकर आत्मविभोर होकर परमानन्द-सिन्धुमें निमग्न हो रही हैं। पूतनाके घरके द्वारपर उपस्थित होते ही उसके अङ्गोंकी छटासे सम्पूर्ण गृह प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया। यशोदा और रोहिणी द्वारकी ओर देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं। वे मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगीं—यह कौन है? क्या मेरे पुत्रको आशीर्वाद देनेके लिए कैलाशसे स्वयं अम्बिकादेवी आयीं हैं? अथवा ये इन्द्राणी हैं या अरुन्धती? इस प्रकार चिन्ता करती हुई यशोदा एवं रोहिणी शय्याके किनारेसे उठकर कुछ दूरीपर जाकर खड़ी हो गयीं कि हो सकता है हमारे निकटमें रहनेसे ये हमारे पुत्रको आशीर्वाद नहीं देंगी। ऐसा सोचकर वहाँपर खड़ी होकर वे उस देवीके आशीर्वादकी अपेक्षा करने लगीं।

इधर पूतना घरके द्वारपर उपस्थित होकर नन्दनन्दनकी रूप-माधुरी देखकर मुग्ध हो गयी एवं मन-ही-मन चिन्ता करने लगी—अहा! ऐसा रूप तो मैंने इसके पूर्व कभी नहीं देखा। अब तक मैंने कितने ही बालकोंके प्राण हरण किये हैं, किन्तु मैं कभी किसी बालकका रूप देखकर मुग्ध नहीं हुई। आज यह क्या हुआ? इस बालकके रूपने मुझ जैसी राक्षसीका मन भी मोह लिया है। जो भी हो, इस बालकको गोदमें लिये बिना इसके प्राण हरण नहीं किये जा सकते। यह विचारकर पूतना धीरे-धीरे शय्याके निकट आयी। किन्तु हाय! राक्षसी पूतना नहीं जानती थी कि यह बालक 'असदन्तक' है अर्थात् पूतनाकी भ्राँति कितने ही दुष्टोंके जीवनका अन्त करनेके लिए इस बालकका आविर्भाव हुआ है।

श्रीनन्द-यशोदा एवं ब्रजवासीगण जिन्हें बालक समझकर वात्सल्यप्रेमसे लालन-पालन कर रहे हैं, पूतनाने भी उन्हें बालक ही समझा, इसमें भेद यही है कि—श्रीनन्द-यशोदा आदिका श्रीभगवान्‌में शुद्ध वात्सल्यप्रेम और पूतनाका बहिर्मुखता दोष है। प्रेमवान् भक्तके निकट उसके प्रेमके अनुरूप भाव, सम्बन्ध एवं मूर्ति प्रकाशकर उस प्रेमवान् भक्तका आनन्द-वर्द्धन करना ही प्रेमका कार्य है और बहिर्मुख जीवके निकट श्रीभगवान्‌का अपना स्वरूप आच्छादनकर उसे

मायिक प्रतीतिके अनुरूप विविध दुःख भोग कराना ही बहिर्मुखताका कार्य है। इसलिए पूतना बहिर्मुख प्रतीतिमें श्रीभगवान्‌का यथार्थ स्वरूप न समझकर केवल हिंसावृत्ति लेकर उनके निकट अग्रसर हुई।

उसने श्रीकृष्णको साधारण बालकमात्र समझा और विषयुक्त स्तन देकर उनकी हत्या करनेका सङ्कल्प किया है। यह सब विषय जानकर समस्त जीवोंके अन्तर्यामी श्रीनन्दनन्दनने अपने नेत्र मूँद लिये।

तब पूतना धीरे-धीरे शय्याके समीप पहुँचकर व्रजराजनन्दनका सिरसे पैर तक निरीक्षण करने लगी और उनकी बाल माधुरीसे मुग्ध-सी हो गयी। किन्तु उसी क्षण उसके मनमें विचार आया कि विलम्ब करनेसे कार्य सिद्ध होनेमें बाधा हो सकती है एवं आज रात्रिमें ही मुझे गोकुलके सभी बच्चोंका विनाश करना है। अतएव इस परम मनोहर शिशुको गोदीमें लेकर शीघ्र ही अपना कार्य सिद्ध करके चली जाऊँ। ऐसा विचारकर उसने धीरे-धीरे अपने दोनों हाथ बढ़ाकर परम आदर और यत्नके साथ नन्दनन्दनको अपनी गोदीमें उठा लिया और धीरे-धीरे उनके शरीरपर हाथ फेरने लगी।

विषयुक्त स्तनपान कराकर मार डालनेकी नियतसे ही पूतनाने अनन्तको—श्रीकृष्णको अपनी गोदीमें ले लिया था, किन्तु यह उसकी निर्बुद्धिताके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। पूतना नहीं जानती थी कि, मार डालनेकी नियतसे उसने जिसे गोदीमें लिया है, वह 'अन्तक' है—उसे मार डालनेवाला है। उसके जैसे सैकड़ों राक्षसों और असुरोंके जीवनका अन्त करनेके लिए ही वह नन्दनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुआ है। रस्सी समझकर यदि कोई सोये हुए सर्पकी पूँछ पकड़कर खींचता है या फूलकी माला समझकर उसे गलेमें धारण करता है, तो उसे इस मूर्खताके कारण मृत्युके मुँहमें जाना पड़ता है। पूतनाने भी वध्य समझकर अपने हन्ताको गोदीमें उठाया है, अतएव अपनी निर्बुद्धिताके कारण उसे इसका फल भोग तो करना ही पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पूतनाके हृदयमें सद्भावकी गन्ध भी नहीं थी, हिंसावृत्तिसे उसका हृदय परिपूर्ण था। तिल-तिलकर छाननेपर भी उसके हृदयमें बिन्दुमात्र

भी दया या ममताका लेश नहीं मिल सकता था। किन्तु उसका व्यवहार देखकर कोई भी उसके हृदयकी बात समझ नहीं सका। उसने इस प्रकारसे नन्दनन्दनको उठाकर गोदमें धारण किया, मानो वही उसकी जननी है। किसीके हृदयमें क्या है और बाहरमें क्या, इसका अनुमान करना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार अत्यन्त सुन्दर चर्ममय म्यानको देखकर यह मनमें नहीं आता कि इसके भीतर प्राण हरणकारी तीक्ष्ण तलवार है। उसी प्रकार पूतनाके मातृभावका सौन्दर्य देखकर उसके हृदयकी हिंसावृत्तिको कोई समझ नहीं सका।

एक अपरिचित रमणी घरमें प्रवेशकर पुत्रको गोदीमें लेकर कितना स्नेह कर रही है, यह देखकर यशोदा और रोहिणीको कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। उन्होंने तो यही समझा कि मनमें किसी प्रकारका कुविचार रहनेपर कोई निःसंकोच किसीके घरमें प्रवेश नहीं कर सकता। विशेषकर जिसकी अङ्गज्योतिसे घरका अन्धकार दूर हो गया, उसके हृदयमें कोई कुविचार-रूप अन्धकार कैसे रह सकता है? 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' अर्थात् जिसकी आकृति अर्थात् रूप सुन्दर होता है, वह सद्गुणोंसे भी युक्त होता है।

पूतना श्रीकृष्णको गोदीमें लेकर ऐसा वात्सल्यभाव दिखाने लगी कि उसका व्यवहार देखकर यशोदा और रोहिणीको किसी प्रकारका सन्देह होना तो दूर, वे सोचने लगीं कि—यह रमणी ही क्या इस बालककी जननी है? पूतनाका व्यवहार देखकर यशोदाजी सोचने लगीं कि पुत्रका लालन-पालन किस प्रकार किया जाता है, मैं तो इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानती, यह रमणी ही यथार्थ वात्सल्यमती है। श्रीनारायणकी कृपासे मैंने पुत्ररत्न तो लाभ किया है, किन्तु मुझमें पुत्र-पालनकी कोई योग्यता नहीं है ॥ ७-९ ॥

तस्मिन् स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं,
घोराङ्गमादाय शिशोर्ददावथ ।
गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत्-
प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥

अन्वयः—घोरा (अतिशय क्रूर पूतनाने) तस्मिन् (वहींपर) [नन्दनन्दनको] अङ्गं (गोदमें) आदाय (लेकर) शिशोः (उस बालकको) उल्बणं (स्पर्शसे ही मार देनेवाले) दुर्जवीर्यम् (अति उग्र विषयुक्त) स्तनं (स्तन) ददौ (दान किया) अथ (इस प्रकार स्तन देनेके पश्चात्) रोषसमन्वितः (क्रोधयुक्त होकर) भगवान् (श्रीनन्दनन्दनने) तत् (उस पूतनाके स्तनोंको) कराभ्यां (हाथोंसे) गाढम् (बलपूर्वक) प्रपीड्य (निष्पीडनकर) प्राणैः समं (पूतनाके प्राणोंके साथ) [उसके विषयुक्त दूधको] अपिबत् (पान कर लिया) ॥ १० ॥

अनुवाद—उस भयङ्कर राक्षसी पूतनाने वहींपर झट बालक श्रीकृष्णको गोदमें लेकर उनके मुखमें भयङ्कर और किसी भी प्रकारसे जो पच न सके, ऐसे दुर्जर विषसे लगे हुए स्तनको दे दिया। तब भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोधपूर्वक अपने दोनों हाथोंसे स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसका विषयुक्त दूध पीने लगे ॥ १० ॥

सारार्थदर्शिनी—तस्मिन्नेव स्थाने। दुर्जरं, विषरूपं वीर्यं, यस्य तत्। घोरा पूतना। शिशोः शिशवे। गाढं प्रपीडयेति, तया त्याजयितुमशक्यः सन्निति भावः। रोषसमन्वित इति—मदीयं व्रजबालकानपीयं जिघांसतीति रोषमयी दुष्टसंहारिका—शक्तिरेवापवित्रान् प्राणान् स्तनञ्च, अपिबत् अशोषयत्, न तु स इति; कुठारसमन्वितो वृक्षमच्छिनत् इतिवत् ॥ १० ॥

भावानुवाद—अत्यन्त क्रूर स्वभाव-सम्पन्न पूतनाने 'तस्मिन्' अर्थात् उसी स्थानपर बालक कृष्णको गोदीमें लेकर 'दुर्जरवीर्यं'—स्पर्शमात्रसे ही प्राणनाशकारी कालकूट विषसे संलिप्त अपना स्तनपान करनेको दिया। 'गाढं प्रपीड्य' अर्थात् अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों स्तनोंको बलपूर्वक दबाकर—जिससे पूतना छुड़ा नहीं सके, यह भाव है। 'रोष-समन्वितः' अर्थात् यह राक्षसी मेरे सखा एवं व्रजके अन्य बालकोंकी भी हत्या करनेकी इच्छासे आयी है—ऐसा विचारकर भगवान् रोषमें भरकर पूतनाके प्राणोंके साथ उसका स्तन पान करने लगे। इसलिए श्रीभगवान्की रोषमयी दुष्ट-संहारिकाशक्तिने ही पूतनाके अपवित्र प्राण और स्तनोंका 'अपिबत्'—शोषण किया, श्रीकृष्णने नहीं।

‘कुल्हाड़ीसे किसी व्यक्तिने वृक्षका छेदन किया (अर्थात् वृक्षका छेदन कुठारने किया)”—यहाँ भी ऐसा ही अर्थ समझना चाहिये॥ १० ॥

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी,
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः,
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह॥ ११ ॥

अन्वयः—अखिलजीवमर्मणि (हृदय आदि सभी मर्म-स्थान) [श्रीकृष्णके द्वारा] निष्पीड्यमाना (निष्पीडित होनेपर) मुञ्च मुञ्च (छोड़ो-छोड़ो) अलं (अब पान करना बन्द करो) इति प्रभाषिणी (इस प्रकार उच्चस्वरसे चिल्लानेवाली) सा (उस पूतनाके) नेत्रे (नेत्रयुगल) विवृत्य (बाहर निकल आये) [तथा वह] चरणौ भुजौ (हाथ-पैर आदि) मुहुः (बारम्बार) क्षिपती (पटकती हुई) प्रस्विन्नगात्रा (पसीनेसे लथपथ होकर) रुरोद ह (रोदन करने लगी)॥ ११ ॥

अनुवाद—उस समय उस राक्षसीके समस्त मार्मिक स्थानोंमें अत्यन्त पीड़ा होने लगी। वह असह्य पीड़ाके कारण ‘अरे छोड़ दे, छोड़ दे, बहुत पान कर लिया, अब बस कर!’—इस प्रकार कहते हुए बारम्बार अपने हाथ-पैर पटक-पटककर रोने लगी। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया तथा उसके दोनों नेत्रों उलट गये॥ ११ ॥

सारार्थदर्शिनी—निष्पीड्यमाना अर्थाद्बालकेन, चरणौ भुजौ च, मुहुर्मुहुर्नि-क्षिपती॥ ११ ॥

भावानुवाद—‘निष्पीड्यमाना’ अर्थात् बालकके द्वारा पीडित होनेपर वह पूतना पुनः-पुनः हाथ-पैर पटकने लगी॥ ११ ॥

तस्याः स्वनेनातिगभीर-रंहसा,
साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः,
पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया॥ १२ ॥

अन्वयः—तस्याः (उस पूतनाके) अतिगभीररंहसा (प्रचण्ड वेगशाली) स्वनेन (रोनेके शब्दसे) साद्रिः (पर्वत सहित) मही (पृथ्वी) च (और) सग्रहा (सूर्य आदि नवग्रह सहित) द्यौः (अन्तरिक्ष) चचाल (विचलित हो उठे) [एवं] रसाः (रसातलादि) दिशश्च (और दसों दिशाएँ) प्रतिनेदिरे (गूँजने लगीं) जनाः (व्रजवासीजन) वज्रनिपातशङ्कया (वज्रपातके भयसे) क्षितौ (भूमिपर) [मूर्च्छित होकर] पेतुः (गिरने लगे) ॥ १२ ॥

अनुवाद—उस पूतना राक्षसीके चिल्लानेका शब्द बड़ा ही भयङ्कर था। उसकी भयङ्कर ध्वनिके प्रभावसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी और ग्रहोंके साथ आकाश डगमगा गया। सम्पूर्ण पृथ्वी और दिशाएँ गूँज उठीं और बहुत-से लोग वज्रपातकी आशङ्कासे पृथ्वीपर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ १२ ॥

सारार्थदर्शिनी—रसाः—रसातलानि च ॥ १२ ॥

भावानुवाद—‘रसाः’—रसातल आदि ॥ १२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पूतना नन्दालयमें नन्दनन्दनको गोदीमें लेकर उसकी शय्याके किनारे एक ओर बैठी थी एवं यशोदा और रोहिणी एक ओर खड़ी होकर विस्मित भावसे पूतनाका वात्सल्य-व्यवहार देख रही थीं। नन्दालयके प्रहरी और बलिष्ठ गोपगण घरके बाहर आँगनमें खड़े होकर सोच रहे थे—यह निश्चित ही लक्ष्मीदेवी होंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसके गृहमें प्रवेश करनेसे निश्चित ही व्रजराजनन्दनको सर्व-सम्पद लाभ होगी।

पूतना मन-ही-मन चिन्ता करने लगी, अब विलम्ब करनेसे मेरे कार्यमें बाधा उत्पन्न होगी। रात्रिके दो प्रहर व्यतीत हो चुके हैं। आज ही गोकुलके सभी बच्चोंका विनाश करना है। अतएव विलम्ब न करके अपने कार्यमें प्रवृत्त होना उचित है। यह सोचकर पूतनाने धीरे-धीरे नन्दनन्दनको गोदीमें उठाकर उसके मुखमें अपना स्तन अर्पण किया। पूतनाके स्तनसे तीव्र विषधारा निकलने लगी। वह विष अत्यन्त तीव्र था, उसके स्पर्शमात्रसे ही बालकोंके प्राण निकल जाते थे। नन्दनन्दनके जिस श्रीअङ्ग एवं श्रीमुख-माधुर्यसे श्रीनन्द-यशोदा

एवं समस्त व्रजवासी आनन्दमें विभोर रहते हैं, जिस सौन्दर्यको देखकर पाषाण भी पिघल जाता है, वह सौन्दर्य देखकर भी उस राक्षसीके हृदयमें बिन्दुमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। वह बिना किसी दुविधाके उन्हें विष-भरा स्तन-दान करनेमें बिन्दुमात्र भी पीछे नहीं हटी।

जननीके समक्ष ही उसके प्राणोंसे भी प्रिय पुत्रका वध करनेकी चेष्टामें उसे कुछ भी दुविधा नहीं हुई एवं वात्सल्य-व्यवहारके साथ-साथ हिंसावृत्ति प्रकाश करनेमें उसे किसी प्रकारकी लज्जाका अनुभव नहीं हुआ। आश्चर्य है बहिर्मुख लोगोंके वज्रके समान कठोर हृदयकी हिंसा प्रवृत्तिपर!

पूतनामें जब तक मातृभावका अनुकरण रहा, तब तक नन्दनन्दन पूतनाका स्तन पान करते रहे। शिशु भगवान्‌के द्वारा स्तनपान करनेपर पूतनाके स्तनसे विषके स्थानपर अमृत निकलकर उनके मुखमें प्रवेश करने लगा। किन्तु जब उसके मातृभावका अनुकरण लुप्त हो गया, तब पूतनाके प्राण आकृष्ट होकर श्रीभगवान्‌के मुखमें प्रवेश करने लगे।

रोषसे श्रीभगवान्‌ने अपने दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको पकड़कर चूसना प्रारम्भ कर दिया, जिससे पूतनाके प्राण खिंचकर बाहर आने लगे एवं उसके मर्मस्थलोंमें असह्य पीड़ा होने लगी। तब पूतनाने मृत्यु-यन्त्रणासे छटपटाते हुए छोड़-छोड़, अब स्तन पान नहीं कराऊँगी, अब स्तन पान नहीं कराऊँगी, ऐसा कहकर उच्चस्वरसे विलाप करना आरम्भ कर दिया। देखते-ही-देखते उसने विशाल आकार धारण कर लिया। उसकी दोनों आँखें बाहर निकल आयीं एवं वह भूमिपर गिर पड़ी, उसके सम्पूर्ण शरीरसे तीव्र धारामें पसीना बहने लगा एवं वह बारम्बार हाथ-पैर पटककर जोर-जोरसे रोने लगी।

उस समय उसके भीषण विलापसे पृथ्वी काँपने लगी। पर्वतोंके शिखर खिसकने लगे, ग्रहगण अपने स्थानोंसे भ्रष्ट होने लगे और दसों दिशाएँ गूँजने लगीं। यहाँ तक कि वह निनाद भूतल भेदकर पाताल-तकको भी गुञ्जायमान करने लगा। उस समय व्रजवासीगण

सो रहे थे, वे अचानक उठ खड़े हुए। इस भयङ्कर शब्दका कारण न समझनेके कारण उन्हें लगा मानो सैकड़ों वज्र एकसाथ गिर रहे हों, इसलिए वे मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़े ॥ १०-१२ ॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु-
 व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि।
 प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता,
 वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥

अन्वयः—नृप (हे राजन्!) इत्थं (इस प्रकार) [श्रीकृष्णके चूसनेसे] व्यथितस्तना (अत्यन्त पीड़ित स्तनवाली) [पूतनाने] निजरूपम् (अपने उल्लूका रूप) आस्थिता (धारण किया) निशाचरी (पूर्वोक्त पूतना राक्षसी) व्यादाय (मुख खोलकर) केशान् (केशपाश) चरणौ (पैरों) [तथा] भुजौ (हाथोंको) अपि (भी) प्रसार्य (पसारकर) व्यसु (प्राण-रहित होकर) वज्राहतः (इन्द्रके वज्रसे आहत) वृत्रः इव (वृत्रासुरकी भाँति) गोष्ठे (व्रजके निकटवर्ती स्थानमें) अपतत् (जाकर गिर पड़ी) ॥ १३ ॥

अनुवाद—हे राजन्! इस प्रकार वह निशाचरी पूतनाके स्तनोंमें इतनी पीड़ा हुई कि वह अपने मायाकृत सुन्दर रूपको रख न सकी, तथा उसका भयङ्कर राक्षसी-रूप प्रकट हो गया। उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुख खुला रह गया, बाल बिखर गये और हाथ-पैर फैल गये। वह इन्द्रके वज्रसे घायल वृत्रासुरकी भाँति बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

सारार्थदर्शनी—निजरूपमास्थिता, मृत्युपीड़ितया तया निजमायया रक्षितुं अशक्यत्वात् ॥ १३ ॥

भावानुवाद—‘निजरूपम् आस्थिता’—वह पूतना मृत्युकी पीड़ासे पीड़ित होकर अपनी मायासे स्वयं अपनी ही रक्षा करनेमें असमर्थ होकर अपना भयङ्कर उल्लूका रूप धारणकर प्राण-परित्यागकर गोष्ठमें जाकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्।

चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—राजेन्द्र (हे महाराज!) तत् (उस पूतनाका) देहः (शरीर) पतमानः अपि (भूमिपर गिरते समय भी) त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् (छः कोसके मध्यवर्ती वृक्षोंको) चूर्णयामास (चूर्ण-विचूर्ण कर डाला) तत् (उन वृक्षोंका वैसा चूर्ण होना) महत् अद्भुतम् (अति आश्चर्यजनक) आसीत् (था) ॥ १४ ॥

अनुवाद—हे महाराज! उस पूतनाके शरीरने भूमिपर गिरते-गिरते भी छह कोसकी सीमा तकके भूभागमें स्थित वृक्षोंको चूर्ण-विचूर्ण कर डाला। उसका वह शरीर अत्यन्त विशाल एवं आश्चर्यजनक था ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शिनी—पतमानः, पीड़ावैयग्र्यवशादन्तःपुरातस्मादुत्प्लुत्य ग्राममप्युल्लङ्घ्य तद्बहिःप्रदेशे पतन्नित्यर्थः। 'अपि' कारणेन न केवलं जीवन्त्येव सा जीवान् जघान, अपितु मृता अपीति भावः। षट्क्रोशमध्यवर्त्तिनो, द्रुमान् तावतां द्रुमाणां, चूर्णनं द्रुममात्रचूर्णनं। ग्रामोल्लङ्घनं चेत्? इत्यद्भुतं। द्रुमाश्च ते कंसारामस्थास्तद्भोग्य-फला इति वैष्णवतोषिणी ॥ १४ ॥

भावानुवाद—'पतमानः' अर्थात् पीड़ा-जनित व्याकुलताके कारण पूतना अन्तःपुरसे उड़कर गाँवके बाहर जाकर गिरी। 'अपि' अर्थात् पूतना केवल जीवित अवस्थामें ही प्राणियोंकी हिंसा करती थी, ऐसा नहीं है, अपितु मृत्युके गालमें जाते हुए भी उसने अनेक प्राणियोंका नाश कर दिया। 'त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्'—पूतनाके शरीरने गिरते समय छह कोसके मध्यवर्ती भूभागमें जितने भी वृक्ष थे, उन वृक्षोंको चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। पूतनाने गाँवको पारकर केवल वृक्षोंको चूर्ण-विचूर्ण किया, किन्तु गोकुलमें स्थित गायोंके उपभोग्य वृक्ष, तृण, घास आदि यथावत् बने रहे—यह अतीव आश्चर्य-जनक था। ये वृक्ष समुदाय कंसके बगीचेमें कंसके भोग्य फलदायी वृक्ष थे—वैष्णव-तोषणीमें इसी प्रकार वर्णन है ॥ १४ ॥

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥

अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोह-भीषणम् ।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयहदोदरम् ॥ १६ ॥

सन्तत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ।
पूर्वन्तु तन्निःस्वनित-भिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥

अन्वयः—ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं (पूतनाके दाँत हलके फाल जैसे महाउग्र) गिरिकन्दरनासिकं (पर्वतकी गुफाके समान विशाल नासिका) गण्डशैलस्तनं (छोटे पर्वतोंके समान स्तन-युगल) प्रकीर्णारुणमूर्धजम् (इधर-उधर बिखरे हुए लाल केश) अन्धकूपगभीराक्षं (अन्धे कुँएके समान गहरे नेत्र) पुलिनारोहभीषणं (नदी-तटकी भाँति अति भयङ्कर जंघा) शून्यतोयहदोदरं (जलविहीन तालाबकी भाँति उदर) बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि (बद्धसेतुकी भाँति दो उरू, दो पैर और दो भुजाएँ) तत् (ऐसे) रौद्रं (भीषण) कलेवरं (पूतनाका शरीर) वीक्ष्य (देखकर) [तथा] पूर्वं तु (पूतनाका शरीर दर्शनसे पहले) तन्निःस्वनित-भिन्नहृत्कर्णमस्तकाः (उसका गभीर रोदन-स्वर सुनकर जिनके हृदय, कान और मस्तक फट रहे थे, वे) गोपा (व्रजवासी गोपगण) [और] गोप्यः (व्रजवासी गोपियाँ) सन्तत्रसुः स्म (परम आशङ्कित हो गये) ॥ १५-१७ ॥

अनुवाद—उसका शरीर बड़ा ही भयानक था। उसका मुख हलके फालके समान तीक्ष्ण दाढ़ोंसे युक्त था, नासिकाके छिद्र पर्वतकी गुफाओंके समान गहरे, दोनों स्तन पर्वतकी चोटियोंसे गिरे हुए शिलाखण्डोंके समान विशाल थे, ताम्र (लाल) वर्णके बिखरे हुए बाल थे। उसकी दोनों आँखें अन्धे कुँएके समान गहरी, नितम्ब नदीके तटके समान भीषण तथा भुजाएँ, जाँघें और दोनों पैर नदीके बाँधोंके समान एवं पेट जलरहित सरोवरके समान था। पहले उसके भीषण शब्दसे गोप एवं गोपाङ्गनाओंके हृदय, कर्ण और मस्तक विदीर्णसे हो गये थे, फिर उसके इस प्रकारके भयङ्कर शरीरको देखकर वे लोग अत्यधिक भयभीत हो गये ॥ १५-१७ ॥

सारार्थदर्शिनी—तस्याः कलेवरं वीक्ष्य गोपा गोप्यश्च तत्रसुः। ईषा लाङ्गलदण्डस्तत्प्रमाणा उग्रदंष्ट्रा यस्मिंस्तदास्यं यस्य। पुलिनवदारोहो जघनं तेन भीषणम्। बद्धाः सेतव इव भुजावुरू अङ्घ्री च यस्मिन् तत्। शून्यतोयहृद इव उदरं यस्मिन् तत्। पूर्वन्तु तस्याः शब्देन, भिन्नानि विदीर्णानि, हृदादीनि येषां, ते ताश्च ॥ १५-१७ ॥

भावानुवाद—हलके फालके समान उग्र दौंतोंसे युक्त मुख, पुलिनके समान भीषण जाँघें, बँधे हुए सेतुके समान दोनों भुजाएँ, ऊरू और पैर तथा जलविहीन तालाबकी भाँति उदर-विशिष्ट पूतनाका भयानक स्वरूप देखकर गोप-गोपियाँ भयभीत हो गये। इसके पूर्व ही उसके भयानक रोदन-शब्दको सुनकर गोप-गोपियोंका हृदय और कान आदि फटने लगे थे एवं मस्तक घूमने लगा था, अब उसके भयानक स्वरूपको देखकर वे अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ १५-१७ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पूतनाके जीवनका अन्तिम काल उपस्थित होनेपर उसका कपट वेश दूर हो गया एवं उसका वास्तविक स्वरूप प्रकाशित हो गया। पूतनाकी स्वाभाविक मूर्ति उल्लूकी भाँति अत्यन्त विशाल और भयानक थी। उसने गोकुलमें प्रवेशकर अपनी उस भीषण मूर्तिको छिपाकर राक्षसी मायासे दिव्य रमणीका वेश धारण किया था। अन्तिम समय आनेपर कोई अपनी कपटता दिखानेमें समर्थ नहीं हो सकता, तब सबका स्वाभाविक स्वरूप प्रकाशित हो जाता है। पूतना 'कामचारिणी' थी अर्थात् अपनी स्वजाति-सुलभ शक्तिसे वह अपनी इच्छानुसार कपटवेश धारण करती थी। उसी शक्तिसे उसने अपनी भयानक मूर्तिको छिपाकर दिव्य रमणीके वेशमें गोकुलमें प्रवेशकर गोकुलवासियोंको मुग्ध किया। किन्तु अन्तिमकालमें उसकी वह कपटता अधिक समय तक नहीं रही। जीवनी शक्तिके साथ-साथ सब प्रकारकी कपटता दूर हो जाती है एवं प्राकृत शक्तिका अस्तित्व भी लुप्त हो जाता है।

गोकुलमें पास ही छह कोसका एक बगीचा था, उसके पत्र-पुष्प एवं फलादि केवलमात्र कंसके भोगमें ही लगते थे। उस बागमें सर्वदा

कंसका एक पहरेदार नियुक्त रहता था एवं गोकुलवासी उस बागके फलादि कुछ भी स्पर्श तक नहीं कर सकते थे। पूतना जब मृत्यु यातनासे छटपटाती हुई मथुराकी ओर उड़कर जा रही थी, तो उसके उस बगीचेमें गिरनेसे सभी वृक्ष चकनाचूर हो गये। श्रीभगवान्‌की लीलाशक्तिकी प्रेरणासे कंस द्वारा भेजी गयी पूतनाने ही कंसका बाग नष्ट कर दिया। पूतनाने यद्यपि अति स्निग्ध और सौम्यमूर्ति धारणकर नन्दालयमें प्रवेश किया था, किन्तु नन्दालयसे बाहर छह कोस तकके स्थानमें उसकी जो मृत देह गिरी थी, उसमें स्निग्धता या सौम्यताका लेश भी नहीं था, वह इतनी भीषण थी कि उस मूर्तिके दर्शनमात्रसे ही हृदयमें भयका सञ्चार हो रहा था।

गोकुलसे बाहर पूतनाकी जो मृतदेह गिरी थी, उसकी भीषणता धारणातीत थी। उसके मुख-गह्वरमें हलके फालकी भाँति बड़े-बड़े दाँत थे। इन दाँतोंमें पिसनेसे किसी जीवकी देहकी बात तो दूर, शिलाखण्ड भी चूर हो सकते थे। नाकके छिद्र देखनेमें पर्वतकी कन्दराओंके समान प्रतीत होते थे एवं उस नासिकाके द्वारा श्वास खींचनेसे अत्यन्त विशाल प्राणी भी उसके नासारन्ध्रकी ओर खिंचे चले आते थे। दोनों आँखें मानो अग्नि कुण्डकी भाँति प्रज्ज्वलित एवं कुँएकी भाँति गहरी थीं। दोनों स्तन छोटे-छोटे पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे। नन्दनन्दन बालक होनेपर भी अचिन्त्य एवं अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। इसलिए वे पूतनाके दोनों स्तनोंको पकड़कर पान करनेमें समर्थ हुए। उसके सुविशाल मस्तकके ऊपर लाल-लाल और इधर उधर बिखरे हुए बालोंने उसके मुख और नाककी भीषणताको और भी बढ़ा दिया था।

उसका नितम्ब नदीके गर्भसे उठे हुए विशाल भूखण्डके समान प्रतीत होता था। पूतनाकी मृत देहके चित होकर गिरनेसे उसका उदर दिखायी दे रहा था। उसे देखकर प्रतीत होता था कि मानो कोई सूखा हुआ तालाब हो। पूतनाकी मृत देहके एवं फैले हुए सुदीर्घ और सुविशाल हाथ, पैर एवं जङ्गाएँ, देखनेसे ऐसा लगता था मानो कोई सेतुबन्धन किया गया हो। गोकुलवासी गोप-गोपीगण पूतनाकी उस भयङ्कर मूर्तिको देखनेसे पहले उसकी भीषण रोदन-ध्वनि सुनकर ही

मुर्च्छित हो गये थे। बादमें चेतना आनेपर वे मन-ही-मन चिन्ता कर रहे थे कि अचानक इतना भयानक शब्द कहाँसे सुनायी दिया? क्या वज्रपात हो रहा है? उस भीषण शब्दसे उनका हृदय, कर्ण, और मस्तक विदीर्ण होने लगे ॥ १३-१७ ॥

बालञ्च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम्।

गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८ ॥

अन्वयः—गोप्यः (श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्य-परायण यशोदाजीकी सखियोंने) तस्याः (मृत पूतनाके) उरसि (वक्षःस्थलपर) अकुतोभयं (निर्भीकरूपसे) क्रीडन्तं (हास्य अवलोकनपूर्वक क्रीड़ा करते हुए) बालं (नन्दनन्दनको) [देखकर] जातसम्भ्रमाः (अत्यन्त विस्मित होकर एवं परमानन्दमें भरकर) समभ्येत्य (पूतनाके विशाल और ऊँचे शरीरपर चढ़कर) तूर्णं (जल्दीसे) जगृहुः (नन्दनन्दनको उठाकर हृदयसे लगा लिया) ॥ १८ ॥

अनुवाद—उस मरी हुई राक्षसीके वक्षःस्थलपर निर्भयतापूर्वक क्रीडारत बालगोपाल श्रीकृष्णको देखकर अत्यन्त विस्मित और आनन्दित गोपियोंने शीघ्र ही समीप आकर झट उसे उठा लिया ॥ १८ ॥

सारार्थदर्शिनी—उरसि पर्वतवदुत्तुङ्गे, क्रीडन्तम्। प्रवेष्टुं सूतिकागारमनीशानां वनौकसाम् दिदृक्षापूर्तय इव निष्क्रान्तं स्वपुराद्बहिः ॥ १८ ॥

भावानुवाद—‘उरसि’—पर्वतकी भाँति विशाल उस राक्षसीके वक्षःस्थलपर निर्भीक रूपसे क्रीड़ा करते हुए बालकको गोपियोंने विस्मय और हर्षके साथ गोदमें उठा लिया। माँ यशोदाके सूतिका-गृहमें प्रवेश करनेमें असमर्थ वनवासियोंको दर्शन देकर उनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिए ही मानो बालगोपाल अपने घरसे बाहर आये थे ॥ १८ ॥

यशोदा-रोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः।

रक्षां विदधिरे सम्यगगोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥

अन्वयः—ताः (यशोदाजीके समान आयुवाली गोपियोंने) यशोदा-रोहिणीभ्यां समं (यशोदा और रोहिणीके साथ) बालस्य (नन्दनन्दनके) सर्वतः (सभी अङ्गोंमें) गोपुच्छभ्रमणादिभिः (गायकी पूँछ घुमाना, राईसे उनकी नजर उतारना और सूपका कोना स्पर्श कराना आदि-आदिके द्वारा) सम्यक् (उत्तम प्रकारसे) रक्षां (उनका रक्षा-विधान) विदधिरे (करने लगीं) ॥ १९ ॥

अनुवाद—इसके बाद यशोदा एवं रोहिणीके साथ अन्यान्य गोपियोंने गायकी पूँछ घुमाने आदि क्रियाओंसे समस्त विघ्नोंसे बालक श्रीकृष्णके अङ्गोंका अच्छी प्रकारसे रक्षाका विधान किया ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शिनी—रक्षाविधाने यशोदा-रोहिण्योरप्राधान्यं, तयोः शोकोत्थवैयग्रतिशयेन । सर्वतः सर्वेष्वङ्गेषु । ‘आदि’ शब्देन सर्षपनिर्मञ्छन-सूर्पकोणस्पर्शनादीनि ॥ १९ ॥

भावानुवाद—शोकसे अतिशय व्याकुल होनेके कारण माता यशोदा और रोहिणी दोनोंका चित्त रक्षा-विधान कार्योंमें भलीभाँति नहीं लग रहा था, अतः माता यशोदा और रोहिणीके साथ मिलकर अन्य गोपियोंने बालकके सर्वाङ्गोंमें गायकी पूँछ घुमाकर एवं राईसे उसकी नजर उतारी और सूपका कोना स्पर्श कराकर भलीभाँति उसकी रक्षाका विधान करने लगीं ॥ १९ ॥

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।

रक्षाञ्चकुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥ २० ॥

अन्वयः—अर्भकं (नन्द-नन्दनको) [पहले] गोमूत्रेण (गोमूत्रसे) पुनः (फिर) गोरजसा (गोधूलिसे) स्नापयित्वा (स्नान कराकर) शकृता (गोबरसे) नामभिः (केशव, नारायण आदि नामोंके द्वारा) द्वादशाङ्गेषु (उनके ललाट, उदर आदि बारह अङ्गोंमें) रक्षां (रक्षाका) चक्रुः च (विधान किया) ॥ २० ॥

अनुवाद—उन्होंने पहले गोमूत्र एवं गोरज द्वारा शिशुको स्नान कराया, फिर गोबर द्वारा उसके ललाट आदि बारह अङ्गोंमें केशव,

नारायण, माधव इत्यादि भगवान्के भिन्न-भिन्न नामोंका अङ्कनपूर्वक रक्षाका विधान किया ॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—शकृता गोमयेन, द्वादशाङ्गेषु ललाटादिषु, नामभिः केश-
वाद्यैः ॥ २० ॥

भावानुवाद—‘शकृता’ अर्थात् गोबरसे ‘द्वादशाङ्गेषु’ अर्थात् ललाट
आदि बारह अङ्गोंमें ‘नामभिः’ अर्थात् केशव आदि बारह नामोंके द्वारा
रक्षा-विधान किया ॥ २० ॥

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक्।

न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥

अन्वयः—गोप्यः (उन सभी वात्सल्यवती गोपियोंने) संस्पृष्टसलिलाः
(आचमन करके) [पहले] आत्मनि (अपने) अङ्गेषु (हृदयादि अङ्गोंमें)
[और] करयोः (दोनों हाथोंमें) पृथक् न्यस्य (अङ्गन्यास और करन्यास
कर) अथ (तदनन्तर) बालस्य (नन्दनन्दनके) [चरण आदि अङ्गोंमें]
बीजन्यासम् (बीजन्यास) अकुर्वत (किया) ॥ २१ ॥

अनुवाद—तदनन्तर गोपियोंने पहले आचमनकर अपने अङ्गोंमें
अङ्गन्यास और हाथोंमें करन्यास किया। फिर बालकके अङ्गोंमें
बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रथममनाचान्ता एवातिसम्भ्रमेणैव रक्षां कृत्वा, पश्चाल्लब्धश्वासा
यथाविधानमेव रक्षां चक्रुरित्याह—गोप्य इति। संस्पृष्टसलिला आचान्ताः। आत्मनि
आत्मनः; अङ्गेषु करयोश्च न्यस्य, अङ्गन्यास-करन्यासौ कृत्वेत्यर्थः। अथ
अनन्तरं, बालस्याङ्गेषु अङ्गुल्यादिषु, बीजस्य—‘अज’ आदिनामाद्यैकैकाक्षरस्य सानुस्वारस्य
‘नमः’ शब्दान्तस्य, न्यासम्। तेन—‘अं नमो’ अजस्तवाङ्घ्री अव्यात्, ‘मं नमो’
मणिमांस्तव जानुनी अव्यादित्येवं प्रयोगः ॥ २१ ॥

भावानुवाद—गोपियोंने अति सम्भ्रमके कारण पहले आचमन न
करके ही रक्षा-विधान किया। फिर कुछ देर पश्चात् धैर्य-धारणकर
विधि-विधानके अनुसार पुनः बालकका रक्षा-विधान किया, इसे
‘गोप्य’ आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। ‘संस्पृष्टसलिलाः’—गोपियोंने

आचमनकर पहले अपने अङ्गोंमें तथा दोनों हाथोंमें अङ्गन्यास और करन्यास करनेके बाद पृथक् रूपसे बालकके चरण आदि अङ्गोंमें भी 'बीजन्यास' अर्थात् अनुस्वारयुक्त 'अज' आदि नामके आदि अक्षर और अन्तमें 'नमः' युक्त बीजका न्यास किया। जैसे—'अं नमः' अज नामक भगवान् तुम्हारे चरण युगलकी रक्षा करें, 'मं नमः' मणिमान् नामक भगवान् तुम्हारे घुटनोंकी रक्षा करें—इस प्रकार उन्होंने बालकके अङ्गोंमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तवजान्वथोरू,
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।
हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं,
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥

चक्रयग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
तत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र-
स्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३ ॥

अन्वयः—अजः ('अज' नामक श्रीभगवान्) तव (तुम्हारे) अङ्घ्रि (चरण युगलकी) अव्यात् (रक्षा करें) अथ (अनन्तर) मणिमान् (कौस्तुभधारी) जानु (घुटनोंकी) यज्ञः (यज्ञ) ऊरू (दोनों ऊरूओंकी) अच्युतः (अच्युत) कटितटं (कमरकी) हयास्यः (हयग्रीव) जठरम् (उदरकी) केशवः (केशव) हृत् (हृदयकी) ईशः (ईशः) त्वत् (तुम्हारे) उरः (वक्षःस्थलकी) इनः तु (सूर्य) कण्ठम् (कण्ठकी) विष्णुः (विष्णु) भुजं (भुज-युगलकी) उरुक्रमः (उरुक्रम) मुखम् (मुखकी) [और] ईश्वरः (ईश्वर) कम् (मस्तककी) [रक्षा करें] ॥ २२ ॥

चक्री (चक्रधारी भगवान्) अग्रतः (तुम्हारे सामने) अस्तु (अवस्थान करें) सहगदः हरिः (गदाधारी हरि) पश्चात् (तुम्हारे पीछे) धनुः मधुहा (धनुर्धारी मधुसूदन) असि अजनश्च (और तलवारधारी अजन) त्वत् पार्श्वयोः (तुम्हारे दोनों ओर) शङ्खः उरुगाय (शङ्ख हाथमें लिए हुए उरुगाय) कोणेषु (तुम्हारे ईशान आदि कोणोंमें)

ताक्षर्यः (गरुडवाहन) उपेन्द्रः (उपेन्द्र) उपरि (ऊपरमें) हलधरः (हलधर) क्षितौ (नीचेकी ओर) [एवं] पुरुषः (पुरुषोत्तम) समन्तात् (समस्त दिशाओंमें) [तुम्हारी रक्षाके लिए अवस्थान करें]॥ २३ ॥

अनुवाद—हे महाराज ! गोपियोंने इन मन्त्रोंसे बीजन्यास किया— भगवान् अज तुम्हारे दोनों पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञ दोनों जाँघोंकी, अच्युत कटिप्रदेशकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, सूर्य कण्ठकी, विष्णु भुजाओंकी, उरुक्रम मुखमण्डलकी, ईश्वर मस्तककी, चक्री सम्मुख भागकी, गदाधारी श्रीहरि पश्चाद् भागकी, धनुर्धारी मधुसूदन एवं खड्गधारी अजन तुम्हारी दोनों बगलोंकी तथा शङ्खधारी उरुगाय चारों कोनोंमें, उपेन्द्र ऊपरके भागकी, गरुडवाहन श्रीहरि भूतलमें एवं हलधर पुरुष चारों दिशाओंमें तुम्हारी रक्षा करें ॥ २२-२३ ॥

सारार्थदर्शिनी—ततश्च पद्यैरेतैः रक्षां चक्रुरित्याह—अव्यादिति। अङ्घ्रि अङ्घ्री। मणिमान्—तन्नामा भगवत्प्रादुर्भावविशेषः। जानु जानुनी। जङ्घेऽच्युत इति सन्धिरार्षः। यज्ञोऽच्युत इति च पाठः। हत् जीवाधारपद्मम्। उरो वक्षः॥ २२ ॥

तथा दिक्षु रक्षामकुर्वन्नित्याह—चक्रन्ग्रतः इति। चक्रसहितो हरिस्तवाग्रतोऽस्तु। सहगदो—गदासहितो हरिस्तव पश्चादस्तु। त्वत्पार्श्वयोर्धनुर्धरो मधुहा असिधरोऽजनश्चास्तु। कोणेषु शङ्खधर उरुगायोऽस्तु। उपर्युपेन्द्रोऽस्तु। ताक्षर्यः, क्षितौ अधस्तात्, अस्तु। हलधरः पुरुषः समन्तादस्तु॥ २३ ॥

भावानुवाद—ब्रजगोपियोंने जिस पद्यसे रक्षा विधान किया, उसका 'अव्यात्' आदि श्लोकमें वर्णन कर रहे हैं। 'अङ्घ्रि' अर्थात् चरणयुगल। 'मणिमान्' के द्वारा इस नामकके भगवान्के एक आविर्भाव विशेषका वर्णन किया है। 'जानु' अर्थात् जाँघ। 'यज्ञोऽच्युतः'—ऐसा पाठान्तर भी है। 'हत्' कहनेसे जीवाधार पद्मको समझा जाता है। 'उरोः' अर्थात् वक्षःस्थल॥ २२ ॥

इस प्रकार गोपियोंने बालकका सभी दिशाओंमें रक्षा-विधान किया, इसे 'चक्रन्ग्रतः' आदि श्लोकके द्वारा कह रहे हैं। चक्रधारी हरि तुम्हारे सामने, गदाधारी हरि तुम्हारे पीछेकी ओर, धनुर्धारी मधुसूदन और तलवारधारी अजन भगवान् तुम्हारे दोनों बगलोंकी

रक्षा करें, चारों कोनोंमें शङ्खधारी उरुगाय तुम्हारी रक्षा करें, उपेन्द्र तुम्हारे ऊपरकी ओर, गरुड़वाहन श्रीहरि तुम्हारे नीचे एवं हलधारी पुरुष तुम्हारी सभी दिशाओंमें रक्षा करें ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।

श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥

अन्वयः—हृषीकेशः (समस्त इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) इन्द्रियाणि (चक्षुः आदि इन्द्रियोंकी) नारायणः (नारायण) प्राणान् (तुम्हारे प्राणोंकी) अवतु (रक्षा करें) श्वेतद्वीपपतिः (श्वेतद्वीपके अधिपति) चित्तं (चित्तकी) [एवं] योगेश्वरः (योगेश्वर) मनः (तुम्हारे मनकी) अवतु (रक्षा करें) ॥ २४ ॥

अनुवाद—भगवान् हृषीकेश समस्त इन्द्रियोंकी, नारायण प्राणोंकी, श्वेतद्वीपके अधिपति चित्तकी एवं योगेश्वर तुम्हारे मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ।

क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥

व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।

भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ २६ ॥

अन्वयः—पृश्निगर्भः तु (भगवान् पृश्निगर्भ) ते (तुम्हारी) बुद्धि (बुद्धिकी) परः भगवान् (स्वयं-भगवान्) आत्मानं (तुम्हारी आत्माकी) गोविन्दः (गोविन्द) क्रीडन्तं (क्रीड़ाके समय) [तुम्हारी] पातु (रक्षा करें) [एवं] माधवः (माधव) शयानं (शयनके समय) [तुम्हारी] पातु (रक्षा करें) ॥ २५ ॥

वैकुण्ठः (वैकुण्ठ नामक भगवान्) व्रजन्तं (भ्रमणके समय) [तुम्हारी] अव्यात् (रक्षा करें) श्रियः पति (लक्ष्मीकान्त) आसीनं (बैठे हुए) त्वां (तुम्हारी) [रक्षा करें] सर्वग्रहभयङ्करः (समस्त अशुभ नाशकारी) यज्ञभुक् (यज्ञभुक् नामक भगवान्) भुञ्जानं (भोजनके समय) [तुम्हारी] पातु (रक्षा करें) ॥ २६ ॥

अनुवाद—पृश्निगर्भ तुम्हारी बुद्धिकी एवं परमेश्वर तुम्हारी आत्माकी रक्षा करें। गोविन्दक्रीड़ा करते समय, माधव शयन कालमें, भगवान् वैकुण्ठ गमन कालमें, श्रीपति बैठते समय एवं सर्वग्रह-विनाशन भगवान् यज्ञभुक् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें॥ २५-२६ ॥

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कुष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः।

भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः।

उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धा बालग्रहाश्च ये।

सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥

अन्वयः—डाकिन्यः यातुधान्यः (डाकिनी, राक्षसी) ये च (और जो समस्त) कुष्माण्डा अर्भकग्रहाः (कुष्माण्डादि बालघाती ग्रहगण) भूतप्रेतपिशाचाश्च (भूत, प्रेत और पिशाच) यक्षरक्षो विनायकाः (यक्ष, रक्ष, विनायकगण) कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः (कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना और मातृकागण) ये हि उन्मादाः अपस्माराः देहप्राणेन्द्रियद्रुहः (उन्माद, अपस्मार आदि रोग जो देह, प्राण और इन्द्रिय-घातक हैं) स्वप्नदृष्टाः महोत्पाताः (स्वप्नदृष्ट समस्त महा-उत्पात) ये च वृद्धा बालग्रहाः (और भी जितने वृद्ध और बालघाती ग्रह हैं) विष्णोः (श्रीभगवान्‌के) नामग्रहण भीरवः (नाम-कीर्तनसे डरनेवाले) ते सर्वे (वे सभी) नश्यन्तु (विनष्ट हों) ॥ २७-२९ ॥

अनुवाद—डाकिनी, राक्षसी, कुष्माण्ड नामक शिशु-विघ्नकारी समस्त ग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, रक्ष, विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि, देह, प्राण एवं इन्द्रियोंकी हिंसा करनेवाले, मृगी और उन्माद आदि रोग, स्वप्नमें देखे गये समस्त भयङ्कर उत्पात, सभी वृद्धग्रह और बालग्रह—ये सब विष्णुका नाम लेते ही भयभीत होकर विनष्ट हो जायँ ॥ २७-२९ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ।

पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) प्रणयबद्धाभिः (वात्सल्यप्रेमरूप रस्सीसे बँधी हुई) गोपीभिः (यशोदाजीके समान आयुवाली गोपियोंने) इति (पूर्वोक्त विधानसे) कृतरक्षणं (बालकका रक्षा-विधान किया) [तदनन्तर] माता (श्रीयशोदा मैयाने) आत्मजं (अपने पुत्रको) स्तनं पाययित्वा (स्तन पिलाकर) संन्यवेशयत् (शयन कराया) ॥ ३० ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—इस प्रकार प्रेमपाशमें बँधी हुई गोपियोंने बालक श्रीकृष्णकी रक्षा-क्रिया पूरी की। तदनन्तर यशोदादेवीने अपने पुत्रको स्तनपान कराकर उसे पालनेमें सुला दिया ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रणयरसनया यशोदागृहे एव बद्धाभिः । पाययित्वेति, स्तनपानमेव बालानां स्वास्थ्यलक्षणमिति भावः । संन्यवेशयत्—शाययामास ॥ ३० ॥

भावानुवाद—‘प्रणयबद्धाभिः’—प्रणयरूप रस्सीके द्वारा यशोदाजीके घरमें ही धात्रीके रूपमें सब समय रहनेवाली गोपियोंके द्वारा बालकका इस प्रकार रक्षा-विधान करनेके पश्चात् माता यशोदाने अपने पुत्रको स्तनपान कराया, क्योंकि स्तनपान करना ही बालकके स्वस्थ होनेका लक्षण है, यह भाव है। ‘संन्यवेशयत्’ अर्थात् बालकको शयन कराया ॥ ३० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—जब पूतनाने नन्दालयमें प्रवेश किया था, तब उसे देखकर निकटमें रहनेवाली श्रीयशोदाजीके समान आयुवाली गोपियाँ उसके साथ ही भीतर आ गयीं थीं और यशोदाके साथ खड़ी होकर उसे देख रहीं थीं। जब पूतना श्रीकृष्णको लेकर बाहर जाने लगी, तो यह देखकर यशोदा तथा रोहिणी मूर्च्छित होकर वहींपर गिर पड़ीं। परन्तु वे गोपियाँ किसी प्रकारका विचार-विवेचन न करके ग्रह-ग्रस्तकी भाँति पूतनाके पीछे-पीछे दौड़ने लगीं। उन्होंने यह भी

नहीं सोचा कि उड़ती हुई पूतनाके पीछे-पीछे दौड़कर उसके हाथोंसे श्रीकृष्णको खींचकर लाना सम्भव है या नहीं। वे तो केवल आकाश-गामिनी पूतनाको लक्ष्यकर मार्ग-कुमार्ग न देखकर ऊपरकी ओर दृष्टि करके दौड़ी जा रही थीं। पूतना द्रुत-गतिसे उड़कर गोकुलसे बाहर जाकर गिरी। कुछ ही क्षणोंमें भयभीत एवं व्याकुल गोपियाँ भी दौड़ती हुई वहाँ उपस्थित हुईं।

उल्लूरूपी महाबलशालिनी एवं मृत्यु-यन्त्रणासे व्याकुल पूतना आकाश मार्गसे अत्यन्त तीव्र गतिसे उड़कर गयी थी। भूमिपथसे दौड़कर उसके निकट इतनी शीघ्रतापूर्वक पहुँचना साधारण व्यक्तियोंके लिए असम्भव था, किन्तु अचिन्त्य महाशक्तिके आश्रय नन्दनन्दनमें वात्सल्यप्रेम-सम्पन्न गोपियोंके लिए कुछ भी असम्भव नहीं था। जिस वात्सल्यप्रेमकी महाशक्तिसे गोपियाँ स्वयं-भगवान् नन्दनन्दनको गोदमें लेनेमें समर्थ हुई थीं, उसी वात्सल्यप्रेमके प्रभावसे अपने जीवनके जीवन नन्दनन्दनको लक्ष्यकर राक्षसीके साथ दौड़नेमें क्या वे असमर्थ होंगी? आत्मदृष्टिमें, आत्मशक्तिमें और आत्मसम्बन्धमें जो सम्पूर्ण रूपसे असम्भव और असाध्य प्रतीत होता है, वह कृष्णदृष्टिमें, कृष्णशक्तिमें और कृष्ण-सम्बन्धमें सम्पूर्ण रूपसे सम्भव और सुख-साध्य होता है। पूतनाके भयसे भयभीत होकर आत्मरक्षा करनेके लिए गोपियाँ आत्मशक्तिपर निर्भर होकर इतनी तीव्रगतिसे नहीं दौड़ सकती थीं, किन्तु वे पूतनाके वक्षःस्थलसे अपने जीवनके जीवन नन्दनन्दनको छीनकर लानेके लिए बेसुध होकर दौड़ रही थीं, इसलिए उनके भूमिगमनने पूतनाके आकाश-गमनका भी अतिक्रम कर दिया।

वे आकाशगामिनी पूतनाके साथ-साथ नन्दालयसे बाहर जाकर देखने लगीं—पूतनाके उस भयानक शरीरके ऊपर नन्दनन्दन हाथ-पैर चलाते हुए बालक्रीड़ा कर रहे थे। पूतनाकी उस भयानक आकृतिसे वे लेशमात्र भी भयभीत नहीं थे, क्योंकि श्रीभगवान् स्वभावसे ही निर्भय हैं। उनका नाम सुननेमात्रसे भय भी भयभीत हो जाता है। यहाँ तक कि उनके चरणाश्रित होनेसे क्षुद्र जीव भी भय-मुक्त हो जाते हैं। नन्दनन्दनको सुरक्षित रूपमें पूतनाके वक्षःस्थलपर खेलते हुए देखकर वात्सल्यवती गोपियाँ आनन्दमें भर गयीं। उस आनन्दके प्रबल

वेगमें उनके हृदयसे पूतनाकी पर्वत-आकृति और भयानकता भी बह गयी। वे जल्दीसे पूतनाके शरीरपर चढ़ गयीं एवं पूतनाके वक्षःस्थलसे नन्दनन्दनको लेकर अपने वक्षःस्थलमें धारणकर शीघ्र-गतिसे नन्दालयमें आकर उपस्थित हुईं।

गोपियोंने यशोदा और रोहिणीको उच्चस्वरसे पुकारते हुए नन्दालयमें प्रवेश करके देखा—यशोदा और रोहिणी निर्वाक्, निष्पन्दन और अचेतन होकर पड़ी हुई हैं। उनके प्राणोंके प्राण नन्दनन्दनके साथ-साथ उनकी चेतनाशक्ति भी मानो शरीर छोड़कर चली गयी थीं। गोपियाँ जब नन्दनन्दनको लेकर उनके निकट आयीं तो उनमें चेतनाका सञ्चार हुआ। अपने पुत्रको सकुशल देखकर वे भय, विस्मय एवं आनन्दसे विह्वल हो उठीं। वे कुछ भी स्थिर नहीं कर सकीं कि क्या करें। समागता वात्सल्यप्रेमवती गोपियाँ, आनन्द-विवश एवं भय-विह्वल यशोदा और रोहिणीको साथमें लेकर नन्दनन्दनके राक्षसी-स्पर्श-जनित दोषको दूर करनेके लिए उनके श्रीअङ्गोंपर गायकी पूँछ घुमाने लगीं, राईसे उनकी नजर उतारने लगीं एवं सूपके कोने आदिसे बालकका रक्षा-विधान करने लगीं।

उन्होंने पहले यशोदानन्दनको गोमूत्रमें स्नान कराकर उसके सर्वाङ्गोंमें गोधूलिका लेप किया। इसके पश्चात् श्रीभगवान्‌के केशव आदि बारह नामोंका उच्चारणकर ललाट आदि द्वादश अङ्गोंमें गोबरसे तिलककी रचना की। इससे गोपियोंको दृढ़ विश्वास हो गया कि अब यशोदानन्दनके समस्त प्रकारके अमङ्गल दूर हो जायेंगे।

श्रीभगवान्‌के केशवादि द्वादश नामोंका उच्चारणकर ललाटादि द्वादश अङ्गोंमें तिलक धारण करनेकी विधि पद्मपुराणके उत्तर खण्डमें देखी जाती है—

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे ।
 वक्षःस्थले माधवन्तु गोविन्दं कण्ठकूपके ॥
 विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौच मधुसूदनः ।
 त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके ॥
 श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशन्तु कन्धरे ।
 पृष्ठे तु पद्मनाभन्तु कट्यां दामोदरं न्यसेत् ॥

अर्थात् ललाटमें केशव, उदरमें नारायण, वक्षःस्थलमें माधव, कण्ठ-कूपमें गोविन्द, दक्षिण कुक्षिमें विष्णु, दक्षिण बाहुमें मधुसूदन, दक्षिण कन्धेमें त्रिविक्रम, वाम कुक्षिमें वामन, वाम बाहुमें श्रीधर, वाम कन्धेमें हृषिकेश, पीठमें पद्मनाभ एवं कमरमें दामोदरका ध्यान और नामका उच्चारणकर तिलककी रचना करनी चाहिये।

वात्सल्यप्रेमवती गोपियोंने श्रीभगवान्के केशव आदि नामोंका उच्चारणकर नन्दनन्दनके सर्वाङ्गोंमें गोबरसे तिलक रचनाकर उनका रक्षा-विधान किया एवं अन्तमें कहने लगीं—डाकिनी, शाकिनी, कुष्माण्ड आदि जितने भी प्रेत, निशाचर बालकोंका अनिष्ट करते हैं, वे सभी श्रीभगवान्के नाम उच्चारणमात्रसे भयभीत होकर भाग जाते हैं। हमने श्रीभगवान्के नामोंका उच्चारण किया है, अतः हमारे जीवनके जीवन नन्दनन्दनके समस्त अनिष्ट दूर हों।

इस प्रकार वात्सल्यप्रेमरसकी मूर्ति उन गोपियोंने यशोदानन्दनका रक्षा विधानकर उन्हें यशोदा मैयाकी गोदमें बैठा दिया। माँ यशोदाने अपने जीवनके जीवनको अपनी गोदमें लेकर वक्षःस्थलमें धारण किया एवं उसके मुखमें अपना स्तन अर्पण कर दिया। यशोदानन्दन भी परमानन्दमें मैयाका स्तनपान करने लगे।

हिंसा-कलुषित हृदयवाली पूतना राक्षसीका विषमिश्रित स्तनपान करनेके पश्चात् वात्सल्य-पयोनिधि यशोदामाताके अमृत-स्नावी स्तनका पान करनेसे नन्दनन्दनका आनन्द-सिन्धु उच्छलित होने लगा और वे विविध भङ्गिमाओंसे अपने हाथ-पैर नचाने लगे। उन्हें इस प्रकार परमानन्दपूर्ण देखकर सभी आश्चस्त हुए और मन-ही-मन सोचने लगे कि—बालकके अनिष्टकी अब कोई आशङ्का नहीं है ॥ १८-३० ॥

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः।

विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—तावत् (उस समय) मथुरायाः (मथुरासे) व्रजं (व्रजमें) गताः (लौटकर) नन्दादय गोपाः (श्रीनन्दादि गोपगण) पूतनादेहं (पूतनाकी मृत देहको) विलोक्य (दूरसे देखकर) अतिविस्मिताः (वसुदेवके वचनोंका स्मरणकर अतिशय विस्मित) बभूवुः (हुए) ॥ ३१ ॥

अनुवाद—उसी समय नन्दबाबा और उनके साथी सभी गोप मथुरासे व्रजमें लौटे। उन्होंने जब पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तो वे अतिशय आश्चर्यचकित हो गये॥ ३१॥

सारार्थदर्शिनी—अतिविस्मिताः—‘किं शक्रेण भ्रमात् छिन्नपक्षः कोऽपि पर्वतो नभोव्यापिनोऽप्यत्रत्यान् महीरुहांश्चूर्णयित्वा पपात? किम्वा, वयमेव साहजिक्या भ्रान्त्या, कयापि योगिन्या वा, देशान्तरं प्रापिताः स्मः? किम्वा कस्याप्यैन्द्रजालिकस्येदं कर्म?’ इति सन्दिहाना इत्यर्थः॥ ३१॥

भावानुवाद—उस समय श्रीनन्द महाराज आदि गोपगण मथुरासे व्रजमें लौटकर आये और पूतनाकी देहको देखकर ‘अतिविस्मिताः’ अर्थात् “क्या यह देवराज इन्द्रके द्वारा भूलसे पंख कट जानेसे आकाश मण्डल-व्यापी कोई पर्वत यहाँके वृक्षोंको चूर्ण-विचूर्ण करता हुआ गिरा है? अथवा, हमलोग ही स्वाभाविक रूपसे भ्रमित होनेके कारण या किसी योगिनीके द्वारा किसी दूसरे देशमें पहुँचाये गये हैं? अथवा, यह क्या किसीका ऐन्द्रजालिक कर्म है?”—इस प्रकार सन्देहके कारण वे अतिशय विस्मित हो गये॥ ३१॥

नूनं बतर्षिः सज्जातो योगेशो वा समास सः।

स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः॥ ३२॥

अन्वयः—बत (अहो) नूनं (निश्चित रूपसे) आनकदुन्दुभिः (श्रीवसुदेव) ऋषिः (तपः प्रभावशाली) समास (पूर्ण रूपसे हुए हैं) वा (अथवा) योगेशः (योगसिद्ध महात्मा) सज्जातः (पहले नहीं थे, अभी हुए हैं) [क्योंकि] सः (श्रीवसुदेवने) यत् आह (‘गोकुलमें कोई उत्पात हो सकता है’—इस प्रकार जो कुछ कहा था) स एव हि (उनके कथनके अनुरूप ही) [हमने व्रजमें आकर] उत्पातः (इस उत्पातको) दृष्टः (देखा)॥ ३२॥

अनुवाद—उस समय वे सोचने लगे कि वसुदेवजी निश्चय ही तपस्वी या योगी हैं, क्योंकि उन्होंने मथुरामें जिस उत्पातकी बात कही थी, वह उत्पात हमने व्रजमें आकर देखा॥ ३२॥

सारार्थदर्शिनी—तत्र श्रीव्रजराजस्तु निश्चिनोति—नूनं निश्चितमेव; ऋषिरस्मत्कुले वसुदेवः, सर्वज्ञत्वादनुमीयते; योगेशः अष्टाङ्गयोगाभ्यासी, योगजनेत्रेण भावि वृत्त-दर्शित्वात्; समास सम्यग्दीप्यते स्म। ‘अस दीप्तौ’ ॥ ३२ ॥

भावानुवाद—उनमेंसे व्रजराज श्रीनन्द महाराजने इस प्रकार निश्चय किया कि ‘नून’ अर्थात् निश्चित रूपमें हमारे वंशमें वसुदेवजी ऋषि हैं, क्योंकि ऋषिके वचन ही प्रमाणिक होते हैं। हो सकता है कि वे ‘योगेशः’ अर्थात् अष्टाङ्ग योगाभ्यासी हैं, क्योंकि उन्होंने अपने योग-नेत्रोंसे ही भविष्यमें होनेवाले वृत्तान्तको देख लिया था ॥ ३२ ॥

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः।

दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन् काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—तत् कलेवरं (पूतनाके उस मृत शरीरको) ते (उसके निकटवर्ती स्थानवासी) व्रजौकसः (निम्न-जातीय व्रजवासियोंने) परशुभिः (कुल्हाड़ियोंसे) छित्त्वा (टुकड़े-टुकड़ेकर) दूरे (दूर) क्षिप्त्वा (फेंककर) [तथा] अवयवशः (उसके समस्त अङ्गोंको) काष्ठवेष्टितम् (सूखी लकड़ीसे ढककर) न्यदहन् (जलाकर भस्म किया) ॥ ३३ ॥

अनुवाद—तब तक व्रजवासियोंने उस राक्षसीकी देहको कुल्हाड़ियोंसे टुकड़े-टुकड़े करके गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियोंसे ढककर जला दिया ॥ ३३ ॥

सारार्थदर्शिनी—व्रजौकसः—अन्त्यजा उपनन्दाद्यादिष्टाः। निःशेषेण देहुः, पुनर्जीवनशङ्कया; विषधरजीवानां दाहेनैवोपशान्तेः ॥ ३३ ॥

भावानुवाद—‘व्रजौकसः’—उपानन्द आदि प्रमुख गोपोंसे आदेश प्राप्त करके नीच जातीय व्रजवासियोंने पूतनाके मृत शरीरको ‘न्यदहन्’ अर्थात् ‘वह पुनः कहीं जीवित न हो जाय’ इस आशङ्कासे पूर्ण रूपसे जला दिया, क्योंकि विषधर प्राणियोंका पूर्ण रूपसे दाह करनेपर ही उनकी शान्ति होती है ॥ ३३ ॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः।

उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः (स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाका उसके प्राणोंके साथ स्तनपान किया था, इसलिए तत्क्षणात् ही पूतनाके समस्त पाप नाश हो गये, ऐसी पूतनाके) दह्यमानस्य (व्रजवासियोंके द्वारा लकड़ी डालकर अग्नि संयोग करनेपर जलनेवाली) देहस्य (मृत शरीरसे) अगुरुसौरभः (अगुरुसे भी अधिक सुगन्धयुक्त) धूमः (धुँआ) उत्थितः (निकलने लगा)॥ ३४ ॥

अनुवाद—भगवान् श्रीकृष्णने उस राक्षसीका स्तनपान किया था, इससे तत्क्षणात् उसके सारे पाप नष्ट हो गये थे, इसलिए उसे जलाते समय उसके शरीरसे अगुरुके समान सुगन्धित धुआँ उठने लगा॥ ३४ ॥

सारार्थदर्शिनी—तद्देहस्य कृष्णमुखस्पर्शोत्थं महिमानमाह—दह्यमानस्येति। कृष्णनिर्भुक्तेन कृष्णकृत-स्तन्यपानेन, सपद्याहतः पाप्मा यस्य, तस्य॥ ३४ ॥

भावानुवाद—उस देहकी श्रीकृष्णके मुख-स्पर्श-जनित महिमाका 'दह्यमानस्य' इत्यादि श्लोकके द्वारा वर्णन कर रहे हैं। 'कृष्णनिर्भुक्तेन' अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा उसका स्तनपान करनेसे पूतनाकी देह पूर्णतया निष्पाप हो गयी। अतएव उस शरीरके दग्ध होनेपर उससे अगुरुसे भी अधिक सुगन्धित धुँआ उठने लगा॥ ३४ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—भाद्र महीनेकी कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रि प्रायः समाप्तिकी ओर थी। गगन प्रान्तके शशधर (चन्द्रमा) की क्षयावशेष अन्तिम कला अर्द्ध-वलय आकारमें प्रकाशित होकर घोर रजनीके घने अन्धकारको दूर करनेके लिए सचेष्ट है, किन्तु वह अपने मनोरथमें सफल नहीं हो सकी। अतः मनके क्षुब्ध हो जानेपर उसने मलिन होना आरम्भ कर दिया। यह देखकर सूर्यदेव धीरे-धीरे पूर्व दिशामें अरुण रेखाका विस्तार करने लगे। ऐसे समयमें नन्द महाराज आदि गोपोंने मथुरासे गोकुलके जन-शून्य प्रान्तमें पर्वताकार कुछ पड़ा हुआ देखा। पहले तो उन्होंने इसे अपना दृष्टि-भ्रम समझा, किन्तु पुनः ध्यानपूर्वक देखनेपर वे सन्देहमें निमग्न होकर विस्मय सागरमें डूब गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—देवराज इन्द्रने जब वज्रके द्वारा पर्वतोंके पंख काट दिये थे, लगता है तब कोई पर्वत

भागकर कहीं छिप गया था, वही पर्वत आज देश-देशमें घूमता हुआ गोकुलके किनारे आ गिरा है। यदि इस पर्वतने हमारे घरोंको चूर्ण कर दिया होता, तब तो बड़ा अनर्थ हो जाता। हाय! हाय! यह क्या हुआ। कोई योगिनी पथ भुलाकर हमलोगोंको किसी दूसरे देशमें तो नहीं ले आयी? अथवा उस योगिनीने गोकुलमें कोई अनिष्ट तो नहीं किया? इस प्रकार सन्देहसे नन्दादि गोपोंका हृदय भयभीत होने लगा एवं वे सभी यशोदानन्दनके अनिष्टकी आशङ्कासे व्याकुल होकर—‘हे नारायण रक्षा करो, रक्षा करो!’ इस प्रकार कहते हुए नारायणके चरणोंमें शरणागत होकर तीव्र गतिसे बैलोंको हाँकते हुए आगे बढ़ने लगे।

नन्दादि गोपगण भय, विस्मय, सन्देह एवं कौतुहलसे अभिभूत होकर एक-दूसरेसे कहने लगे—वसुदेवजीने सच ही कहा था कि गोकुलमें कोई उत्पात हो सकता है। वसुदेवको ऐसा दिव्य-ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? हमारे वसुदेवको क्या ऋषित्व प्राप्त हुआ है? अन्यथा उनकी बातें ऋषि-वाक्यकी भाँति किस प्रकार सत्य हो गयीं? ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अज्ञात रूपसे कोई योग-साधना करके सिद्धि लाभ की है। अन्यथा साधारण मनुष्योंकी भविष्यवाणी इस प्रकार अक्षरशः सत्य नहीं हो सकती। इस प्रकार विविध कल्पनाएँ करते-करते वे सभी पूतनाकी मृत देहके निकट पहुँच गये।

इधर उपानन्द आदि वृद्ध गोपगण भी गोकुलसे चलकर पूतनाकी मृत देहके निकट पहुँचे एवं दूरसे परीक्षा करके देखने लगे कि पूतनाका शरीर प्राणहीन हो गया है अथवा नहीं एवं उसके शरीरको प्राणहीन देखकर वे श्रीनारायणके कृपावैभवकी प्रशंसा करने लगे। उनलोगोंने स्थिर किया कि श्रीनारायणकी कृपासे ही नन्दनन्दनकी रक्षा हुई और यह भयङ्कर राक्षसी मृत्युके मुँहमें चली गयी। उन सभीने परामर्शकर स्थिर किया कि विषमय प्राणीकी मृत्युपर भी विश्वास नहीं करना चाहिये। उनके मृत शरीरमें वायुका संयोग होते ही वे पुनः जीवित हो जाते हैं। अतएव इसके शरीरको जलाना अति आवश्यक है।

उपानन्द आदि वृद्ध गोपोंने इस प्रकार निश्चय करके नीच जातीय व्यक्तियोंको बुलाकर आदेश दिया कि वे कुल्हाड़ी आदिसे

पूतनाकी मृत देहके टुकड़े-टुकड़े करके दूर ले जाएँ और लकड़ियोंसे ढककर उसमें आग लगा दें। इस प्रकार आग लगानेपर पूतनाकी देहसे धुँआ निकलकर चारों ओर व्याप्त हो गया एवं उससे अगुरुसे भी अधिक सुगन्ध निकलने लगी, जिससे चारों ओरका वातावरण आमोदित हो उठा। उपानन्द आदि गोपोंने इस सुगन्धका अनुभवकर अनुमान किया कि यह राक्षसी स्वभावसे ही गन्धमृग आदि पशुकी भाँति सुगन्धयुक्त थी। इसीलिए इसके शरीरके जलनेसे सुगन्ध निकल रही है। किन्तु, इसका यथार्थ कारण क्या है, वे समझ नहीं सके।

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाका स्तन पान किया था। इसलिए पूतना श्रीभगवान्का भुक्तावशेष है। उसमें अप्राकृत सुगन्धका समावेश होना आश्चर्यजनक नहीं है। जिनके निमित्त समर्पित वस्तु निर्मात्य-प्रसादके रूपमें जगत्को कृतार्थ करती है, उन व्रजराजनन्दनके साक्षात् श्रीमुखका स्पर्श पाकर पूतनाकी देह परम पवित्र और जगत्-पावन हो गयी, इसमें क्या सन्देह है? ॥ ३१-३४ ॥

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।

जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने।

यच्छन् प्रियतमं किन्नुरक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥

अन्वयः—लोकबालघ्नी (लोगोंके बालकोंको मारनेवाली) राक्षसी (जातिसे राक्षसी) रुधिराशना (रक्तपान करके जीवन धारण करनेवाली) पूतना (पूतनाने) जिघांसयापि (मारनेकी अभिलाषायुक्त होकर भी) हरये (नन्दनन्दनको) स्तनं (विषस्तन) दत्त्वा (पान कराकर) सद्गतिं (साधुओंकी गति, साधनसे प्राप्य श्रीकृष्णको ही) आप (प्राप्त किया) ॥ ३५ ॥

किं पुनः (तो फिर) रक्ताः (श्रीकृष्णके अनुरागी भक्तों) [और] तन्मातरो यथा (उनके मातृवर्गकी भाँति) श्रद्धया (विश्वास) [और] भक्त्या (आदर सहित) परमात्मने (समस्त आत्माओंकी आत्मा) कृष्णाय (नन्दपुत्रके लिए) प्रियतमं (अपनी प्रिय वस्तु) यच्छन्

(समर्पण करनेवाले) किं नु (सद्गति प्राप्त करेंगे—इस विषयमें कहना ही क्या?) ॥ ३६ ॥

अनुवाद—लोगोंके बच्चोंकी हत्या करनेवाली, उनका खून पी जानेवाली राक्षसी पूतनाने मार डालनेकी इच्छासे ही श्रीकृष्णको स्तनपान कराया था, फिर भी उसे सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली परम गति मिली। तो जो लोग विश्वास और भक्तिके साथ परमात्मा श्रीकृष्णको कृष्णैकजीवना माताओंकी भाँति कोई प्रियवस्तु प्रदान करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या? ॥ ३५-३६ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रसङ्गात् कैमुत्य-न्यायेन भक्तेर्महिमानमाह—पूतनेति। जिघांस-यापि; किमुतौदासीन्येन, किमुततरां श्रद्धया, किमुततमां श्रद्धया भक्त्येत्यर्थः। 'हरये'—भगवत्प्रादुर्भावमात्राय; किमुत 'कृष्णाय परमात्मने'—सर्वपरमस्वरूपायऽवतारिणे। विषस्तनमपि; किमुत विषेतरद्वस्तु, किमुततरां प्रियं, किमुततमां प्रियतरं, किमुतातितमां प्रियतमम्। पूतना नाम्ना प्रसिद्धा राक्षस्यपि; किमुत मानुष्यः, किमुततरां भक्ताः, किमुततमां 'रक्ता'—अनुरागयुक्ताः। तत्रापि किमुततमां 'तन्मातरः'—अतिवत्सलाः वत्सहरणलीलागताः। तास्वप्यतितमां अनिर्वाच्यत्वात् श्रीयशोदा तु दूरत एव प्रणतिपात्री कृत्यैव स्थापिता, न तूलिल्लिखिता—इति करण-सम्प्रदान-कर्म-कर्तृपदेषु कैमुत्यमण्डली ॥ ३५-३६ ॥

भावानुवाद—प्रसङ्ग क्रमसे कैमुतिक न्यायके द्वारा भक्तिकी महिमा 'पूतना' आदि श्लोक द्वारा वर्णन कर रहे हैं।

'जिघांसयापि'—पूतनाने मारनेकी इच्छासे श्रीहरिको स्तनपान कराके भी सद्गति प्राप्त की, तो फिर जो उदासीन रूपसे, उससे भी अधिक जो श्रद्धासे और उससे अधिक श्रद्धाभक्ति अर्थात् प्रीतिके साथ श्रीहरिको अपनी प्रिय वस्तु प्रदान करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या?

'हरये'—श्रीभगवान्के अवतारमात्रके प्रति, फिर जो 'कृष्णाय परमात्मने'—सर्व अवतारी स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको प्रदान करते हैं, तो उनके विषयमें कहना ही क्या है?

विष मिला हुआ स्तन देकर भी पूतनाने सद्गति पायी, फिर जो विषके अतिरिक्त अन्य वस्तु, उससे अधिक जो अपनी प्रिय वस्तु दान

करता है, उससे भी अधिक जो अपनी प्रियतर वस्तु और उससे भी अत्यधिक जो अतिशय प्रियतम वस्तु अत्यन्त प्रीति-आदरके साथ प्रदान करते हैं, वे इस सद्गतिको प्राप्त करेंगे इसमें संदेह ही क्या है?

यदि पूतना जातिसे राक्षसी होकर भी यदि सद्गति प्राप्त कर सकती है, तो फिर जो मानव जाति हैं, उससे भी अधिक जो भक्त हैं और उससे भी अधिक जो अनुरागयुक्त हैं, उनके विषयमें क्या कहना?

उनमें भी फिर अतिशय वात्सल्यवती 'तन्मातरः' अर्थात् वत्स-हरण लीलामें जो उनकी माताएँ बनी थीं, वे यदि उन्हें कुछ प्रदान करती हैं, तो उससे उन्हें सद्गति प्राप्त होगी, इसके विषयमें क्या कहा जा सकता है? यहाँ उन माताओंसे भी अत्यधिक श्रेष्ठ माता श्रीयशोदाको अनिर्वचनीय होनेके कारण दूरसे ही प्रणामकी पात्रीके रूपमें स्थापित किया गया है, इसलिए यहाँ उनका नाम वर्णन नहीं किया गया।

इस प्रकार करण (जिससे), सम्प्रदान (जिनके लिए), कर्म (जो वस्तु), कर्त्ता (कर्म करनेवाले)—पदोंमें कैमुतिक न्याय समझना होगा ॥ ३५-३६ ॥

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः।

अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ॥ ३७ ॥

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम्।

कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावोऽनुमातरः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—भक्तहृदिस्थाभ्यां (ध्यानयोगसे भक्तोंके हृदयमें स्थित) लोकवन्दितैः (जगत् वन्दित ब्रह्मा-शिव आदिके द्वारा भी) वन्द्याभ्यां (सेवित) पद्भ्यां (चरणकमलोंसे) यस्याः (जिसके) अङ्गं (शरीरको) समाक्रम्य (दृढ़ रूपसे दबाकर) भगवान् (श्रीनन्दनन्दनने) स्तनम् अपिबत् (स्तन पान किया) सा (उस पूतनाने) यातुधान्यपि (राक्षसी होकर भी) स्वर्गं (श्रीकृष्णके परमधाम गोलोकमें) जननीगतिं (श्रीयशोदाकी भाँति जननीकी गति) अवाप (प्राप्त की) [फिर] कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः

(जिनका श्रीकृष्णने स्तन-दुग्ध पान किया है, ऐसी) अनुमातरः (माता सदृशी गोपियाँ) [और] गावः (गायोंके सम्बन्धमें) किमु (कहना ही क्या?) ॥ ३७-३८ ॥

अनुवाद—भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके हृदयमें स्थित हैं। जगत्पूज्य ब्रह्मा, शिव आदिके द्वारा भी वन्दित श्रीचरणयुगलसे भगवान्ने जिसके अङ्गको दबाकर स्तनपान किया था, वह पूतना यद्यपि राक्षसी थी, तथापि माताओं द्वारा प्राप्य स्थानके समान स्वर्ग अर्थात् परम सुखानुभवका स्थान प्राप्त किया था। फिर श्रीकृष्णने जिनके स्तनोंका दूध बड़े प्रेमसे पान किया, वे सभी माताके समान गौएँ और माताएँ उससे बढ़कर उत्तमागति प्राप्त करेंगी, इस विषयमें और क्या कहा जाय? ॥ ३७-३८ ॥

सारार्थदर्शनी—भगवतो निष्कारणकृपाप्रापितं पूतनायाः सौभाग्यं तावत् पश्येत्याह—पद्भ्यामिति द्वाभ्याम्। भक्तहृदिस्थाभ्यामिति; पूतना न भक्ता नाप्यभक्ता, किन्तु तस्य वैरिणीति भावः। लोकवन्दितैः ब्रह्मरुद्रादिभिरपि, वन्द्याभ्यामिति; पूतनाया तु पादौ न वन्दितौ नाप्यवन्दितौ, किन्तु मरणसमये स्वहृदयात् सकाशात् निष्कासयितुं यतमानयाप्यशक्नुवत्या स्वपाणिभ्यां यावद्बलं ताडितावेवेति भावः। सम्यगाक्रम्य, न तु यथाकथञ्चित्स्पृष्ट्वा। स्वर्ग—‘ब्रह्मादयो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकाङ्क्षिणः’ (श्रीमद्भा० ११/७/१) इतिवत्; ‘पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता’ (श्रीमद्भा० १०/१४/३५) इति ब्रह्मोक्तेर्वैकुण्ठमेव, न तु नश्वरं स्वर्गम्। तमपि कीदृशं? जनन्याः श्रीयशोदायाः, प्रकाशभेदेन गतिर्यत्र, तमिति; श्रीगोलोकमेव; तस्येह ‘स्वर्ग’-पदेनोक्त्या सुखैश्वर्योत्तरं सालोक्यमवाप, न तु प्रेमसेवोत्तरमिति बुद्ध्यते। जनन्याः सम्बन्धिनीं गतिमिति तु न व्याख्येयं; ‘रक्तास्तन्मातरो यथा’ (३६) इति पूर्वत्र, ‘कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावोऽनुमातरः’ इत्युत्तरत्र च ततः सकाशात्तन्मातृणामप्यन्यासामप्याधिक्यप्रतिपादनात्। वैरित्वेन कंसदिसाम्येऽपि यस्या वेष-भावानुरणकारणादेवैतावत्कृपापात्री बभूव। पूतना तस्याः श्रीयशोदाया गतिं प्राप्तुं योग्यतां सा कथं धत्ताम्? इत्यत एव ‘लेभे गतिं धात्र्युचिताम्’ (श्रीमद्भा० ३/२/३२) इत्युद्धवेनोक्तम्, अतएवात्रापि जननीशब्देन धात्र्येव व्याख्येयेति केचित्। तत्रापि ‘धात्र्युचित’ इति शब्देन धात्रीसम्बन्धिनीगतिर्न लभ्यते। ‘महाराजोचिता सम्पदस्य’ इत्युक्ते महाराजतुल्यैव सम्पत् प्रतीयते, न तु महाराजसम्बन्धिनीति। तस्मात्सुखैश्वर्योत्तरे गोलोके धात्री-सारूप्यं पूतना प्रापेति सिद्धान्तः ॥ ३७-३८ ॥

भावानुवाद—श्रीभगवान्की अहैतुकी कृपा प्राप्त करनेवाली पूतनाके सौभाग्यकी विवेचना करते हुए 'पद्भ्याम्' आदि श्लोक कह रहे हैं। 'भक्तहृदिस्थाभ्यां'—श्रीभगवान्के चरणकमल भक्तोंके हृदयमें सदा अवस्थित रहते हैं, परन्तु वे साक्षात् रूपसे दृष्टिगोचर नहीं होते। परन्तु यहाँ पूतना भक्त भी नहीं है और अभक्त भी नहीं है, अपितु श्रीकृष्णकी शत्रु है, यह भाव है। 'लोकवन्दितैः' अर्थात् जगत्पूज्य श्रीब्रह्मा, रुद्रादि द्वारा भी 'वन्द्याभ्यां' अर्थात् वन्दित श्रीचरणकमल कहनेसे—श्रीब्रह्मा और शिव आदिके समान श्रेष्ठ भक्त भी जिन चरणकमलोंकी केवल वन्दना ही करते हैं, साक्षात् सेवा नहीं कर पाते। परन्तु पूतनाने तो उन चरणकमलोंकी न तो वन्दना की और न ही अवन्दना की, अपितु मृत्युके समय अपने वक्षःस्थलसे उन्हें हटानेकी भरकस चेष्टा करनेपर भी उन्हें हटानेमें असमर्थ होकर उसके हाथोंमें जितना बल है, उससे उनपर प्रहार ही किया, यह भाव है। 'समाक्रम्य' अर्थात् श्रीभगवान्ने अपने उन्हीं चरणकमलोंसे जिसके अङ्गोंको भलीभाँति पकड़कर, जैसे-तैसे किसी प्रकारसे स्पर्श करके नहीं, पूर्ण रूपसे स्पर्शकर उसका स्तन पान किया।

उस पूतनाने राक्षसी होकर भी 'स्वर्गम्-अवाप'—जननी गति अर्थात् स्वर्ग लाभ किया। जैसे कहा गया है—“ब्रह्मादि लोकपालगण भी 'स्वर्वासं' अर्थात् मेरे नित्यधाममें जानेकी अभिलाषा करते हैं।” (श्रीमद्भा० ११/७/१) और “केवलमात्र भक्तके वेषका अनुकरण करनेसे ही पूतनाने वंश-सहित आपको ही प्राप्त किया था।” (श्रीमद्भा० १०/१४/३५) इत्यादि ब्रह्माकी उक्तिके कारण यहाँ 'स्वर्ग' का यथार्थ अर्थ वैकुण्ठ ही है, नश्वर स्वर्ग (देवलोक) नहीं। वह स्वर्ग गति भी किस प्रकारकी है? इसके उत्तरमें कह रहे हैं 'जननीगतिं'—'जननी' अर्थात् श्रीयशोदाके प्रकाशभेदसे जहाँ गति प्राप्त होती है। अर्थात् यहाँ स्वर्ग पदके द्वारा श्रीगोलोकका ही वर्णन होनेसे पूतनाको सुखैश्वर्योत्तरा सालोक्य गति प्राप्त हुई, प्रेमसेवोत्तरा गति नहीं—यह समझना चाहिये।

'जननी गति' कहनेसे 'जननी-सम्बन्धीय गति' ऐसी व्याख्या करना सम्भव नहीं है, क्योंकि पहले (श्लोक संख्या ३६ में)

“श्रीकृष्णमें अनुरक्त जन और माताएँ जैसी गतिको प्राप्त करेंगी, इस विषयमें कहना ही क्या?” आदि तथा इसी श्लोकमें (श्लोक संख्या ३८ में) “श्रीकृष्ण जिनका निरन्तर स्तन पान करते हैं, ऐसे मातृतुल्य गौवें और माताएँ जिस सद्गतिको लाभ करेंगी, उसके विषयमें तो कहना ही क्या?”—इन सभी वचनों द्वारा पूतनासे भी उन सभी माताओं और अन्य समस्त गौवों आदिकी श्रेष्ठता प्रतिपादित हुई है। श्रीकृष्णसे शत्रुता—हेतु कंसादिके समान होनेपर भी केवल मातृवेष और भावका अनुकरण मात्रके द्वारा पूतना श्रीकृष्णकी कृपापात्री बनी।

ऐसी पूतना माँ यशोदाकी गति लाभ करनेकी योग्यता कैसे प्राप्त कर सकती है? इसीलिए उद्धवजीने कहा है—“पूतनाने धात्री जैसी गति लाभ की” (श्रीमद्भा० ३/२/३२)। अतएव कोई-कोई यहाँ भी ‘जननी’ शब्दसे धात्रीकी भाँति, ऐसी व्याख्या करते हैं। तब भी ‘धात्र्युचित’ शब्दके द्वारा ‘धात्री सम्बन्धीय गति’, इस प्रकार नहीं कहा जा सकता। जैसे ‘महाराजोचित सम्पद’—ऐसा कहनेसे महाराजके समान सम्पद् होना ही प्रतीत होता है, किन्तु महाराज-सम्बन्धीय सम्पद नहीं।

अतएव पूतनाने सुखैश्वर्योत्तरा (ऐश्वर्यभाव सम्पन्न सुखानुभवका स्थान) गोलोकमें धात्री-सारूप्य गतिको प्राप्त किया—यही सिद्धान्त है ॥ ३७-३८ ॥

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम्।

भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्यद्यद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥

तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम्।

न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥ ४० ॥

अन्वयः—राजन् (हे महाराज!) कैवल्यद्यद्यखिलप्रदः (भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि आदि सर्वफल प्रदाता) भगवान् (सर्व ऐश्वर्यशाली) देवकीपुत्रः (देवकीनन्दनने) यासां (जिन वात्सल्यवती गोपियोंका) पुत्रस्नेहस्नुतानि (पुत्र वात्सल्य स्नेहसे क्षरित) पयांसि (स्तन क्षीर) अविरतं (निरन्तर) अलम् (पर्याप्त रूपमें) अपिबत् (पान किया) कृष्णे (स्वयं-भगवान्में)

सुतेक्षणं (पुत्र-दृष्टि) कुर्वतीनां (रखनेवाली) तासां (उन गोपियोंका) अज्ञानसम्भवः (मोहनिमित्त अज्ञानजनित) संसारः (संसार-बन्धन) पुनः (पुनः) न कल्पते (सम्भव नहीं हो सकता) ॥ ३९-४० ॥

अनुवाद—हे राजन्! मुमुक्षुओंको मुक्ति प्रदान करनेवाले देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण, पुत्र-स्नेहके कारण जिनके स्तनसे स्वयं झरते हुए दूधको निरन्तर भरपेट पान करते हैं एवं श्रीकृष्णको जो नित्य पुत्ररूपमें ही देखती हैं, उन सभी गायों एवं गोपियोंका अज्ञानजनित जन्म और मृत्युरूप संसार कदापि सम्भव नहीं हो सकता ॥ ३९-४० ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, 'किमु गावोऽनुमातर' (३८) इति कैमुत्येन—मातृणामपि वैकुण्ठप्राप्तिरेव यद्यभिप्रेयते, तर्हि वैरभाव-वात्सल्यभावयोस्तुल्यत्वापत्तिः, सा च भगवत्यविवेककत्वलक्षणं दोषमेव समर्पयेत्। यदि च यातुधान्यपि सा वैकुण्ठमवाप, किमुतानुरक्ताः परमवत्सलाः मातरः? किन्तु तास्ततोऽप्युत्तमं फलं लभन्ते स्मेत्यभिप्रेयते, तर्हि तदेवाभिव्यज्यताम्। किन्तदित्यपेक्षायामाह—पयांसीति। अन्येभ्यः कैवल्याद्यखिलफल-प्रदोऽपि यासां पयांसि, अलं अतिशयेन दुर्लभबुद्ध्या, अपिबत्; 'स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा' (श्रीमद्भा० १०/१४/३१) इति ब्रह्मोक्तेश्च। तेन, 'ताभ्यः किमयं वाञ्छितं दास्यति? प्रत्युत, ता एवास्मै वाञ्छितं ददति' इति स्ववाञ्छितपूरणयोग्यतालक्षणं फलं गो-गोपीभ्यः कृष्णो ददावित्यर्थ आयातः। ततश्च वैकुण्ठस्थितेः गालोकस्थितेश्च सकाशात्तत्तद्रूपैव स्थितिस्तासां सर्वोत्कृष्टेति सिद्धान्तोऽवगतः। देवक्याः पुत्रोऽपि तासां पयांस्यलमपिबत्, न तु तस्या इति ततोऽपि तासामुत्कर्षो ध्वनितः।

न च तासां संसारध्वंसलक्षणं फलमेव दातव्यमस्तीति वाच्यम्; संसारो हि देहगेहपतिपुत्राद्यासक्तिरूपः; तत्र तासां देहसम्बन्धिस्तन्यामृतं कृष्णः पिबति, गेहे कृष्णः खेलति, पतिः कृष्णस्य पिता, पुत्रः स्वयं कृष्ण एवेति तदाद्यासक्तेः संसारत्वं न घटते इत्याह—तासामिति। सुतेक्षणं सुतभावनं। न तु कल्पते न घटते। अज्ञानसम्भव इति—ज्ञानिनां ब्रह्मानुभव एव तावत् संसारित्वाभावप्रतिपादकः, ब्रह्मानुभवादपि शान्तभक्तानां ब्रह्मतया भगवदनुभवः श्रेष्ठः, ततोऽपि दास्यभाववता भगवतः प्रभुत्वेनानुभवो भगवद्वशीकारकत्वात् श्रेष्ठः, ततोऽपि सख्यभाववतां सखित्वेन भगवद्वशीकारातिशयात्, ततोऽपि वात्सल्यवतां सुतत्वेनानुभवः श्रेष्ठः—इति संसाराभावेपि कैमुत्यं भक्तिरसामृतसिन्धोरवगन्तव्यम् ॥ ३९-४० ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि "गौर्वें और माताएँ जिस सद्गतिको लाभ करेंगी, उसके विषयमें अधिक क्या कहना"—इस प्रकार

कैमुतिक न्यायसे यदि माताओंको भी वही वैकुण्ठ प्राप्त हुआ, ऐसा मान लिया जाय, तो वैरभाव और वात्सल्यभाव दोनों ही समान हो जाते हैं, इससे भगवान्में अविवेचकताका दोष ही आ जायेगा। और यदि उस राक्षसीको वैकुण्ठकी प्राप्ति हुई तथा जो अनुरक्ता, परम वत्सला माताएँ हैं, उन्हें पूतनाकी अपेक्षा अत्यधिक उत्तम फलकी प्राप्ति हुई, यह अभिप्राय प्रकट होता है, तब यह प्रश्न होता है कि वह उत्तम फल क्या है? इसके उत्तरमें 'पयांसि' इत्यादि श्लोक कह रहे हैं।

दूसरोंको कैवल्य आदि समस्त प्रकारके फल प्रदान करनेवाले श्रीभगवान्ने ब्रजकी गायों और गोपियोंके पुत्र-स्नेहसे विगलित स्तन-दुग्धको 'अलं' सादरे, बड़े आदरके साथ अतिशय दुर्लभ बुद्धिसे पान किया था, क्योंकि ब्रह्माकी उक्ति (श्रीमद्भा० १०/१४/३१) में भी देखा जाता है—“ब्रजकी गौवें और गोपियाँ अतिशय धन्य हैं, क्योंकि आप (श्रीकृष्ण) ने गोप बालकके रूपमें उनके स्तनोंका अमृत अतिशय आनन्दसे पान किया है।” इससे भगवान् श्रीहरि उन्हें और कौनसी वाञ्छित वस्तु प्रदान करेंगे? क्योंकि वे ही उनको (बाल गोपालको) उनकी अभिलषित वस्तु (स्तन्यामृत) प्रदान कर रही हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णने अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेकी योग्यतारूपी फल उन गायों और गोपियोंको प्रदान किया, ऐसा अर्थ प्रतिपादित होता है। इससे वैकुण्ठ स्थिति एवं गोलोक स्थितकी अपेक्षा वृन्दावनमें अपने-अपने स्व-स्वरूपमें अर्थात् गाय और गोपी रूपमें स्थिति ही उनके लिए सर्वश्रेष्ठ है—यह सिद्धान्त जाना जाता है।

देवकीका पुत्र होकर भी श्रीकृष्णने ब्रजकी गायों और गोपियोंके स्तन्यामृतका आदरके साथ पान किया, किन्तु उस देवकीका नहीं—इससे ब्रज गोपियोंका देवकीसे भी अधिक उत्कर्ष प्रकाशित होता है।

यदि कहें कि उन्हें संसार-ध्वंसरूपी फल देना ही उचित है, तो इसके उत्तरमें कह रहे हैं—यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, देह, गेह, पति, पुत्र आदिकी आसक्तिको ही संसार कहा जाता है,

किन्तु यहाँपर—उनका देह—सम्बन्धीय स्तन्यामृत स्वयं श्रीकृष्ण पान करते हैं, उनके घरोंमें श्रीकृष्ण खेलते हैं, उनके पति श्रीकृष्णके पिता और पुत्र स्वयं श्रीकृष्ण हैं—ऐसी स्थितिमें उन सभी वस्तुओंमें उनकी आसक्तिको सांसारिक आसक्ति नहीं कहा जा सकता। अर्थात् श्रीकृष्णके प्रति नित्य ही पुत्र-भाव रखनेवाली उन गोपियों एवं गोपोंका अज्ञान—जनित संसार कभी भी सम्भव नहीं हो सकता। ‘सुतेक्षणं’—पुत्रकी भावना। ‘अज्ञान—सम्भवः’ अर्थात् अज्ञान—जनित संसार ‘न तु कल्पते’ अर्थात् कभी नहीं हो सकता। यहाँपर ज्ञानियोंका ब्रह्मानुभव ही उनके संसारीत्वका अभाव प्रतिपादन करता है। ऐसे ब्रह्मानुभवसे भी शान्त भक्तोंका ब्रह्म—रूपमें भगवत्—अनुभव श्रेष्ठ है। उनकी अपेक्षा दास्य भावसे युक्त होकर श्रीभगवान्को अपने प्रभु—रूपमें अनुभव करना कहीं अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यह भाव भगवान्को वशीभूत करता है। उससे भी अधिक श्रेष्ठ सख्य भावसे युक्त होकर सखाके रूपमें भगवान्का अनुभव करना है, क्योंकि उससे भगवान् अत्यधिक वशीभूत हो जाते हैं और उससे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ वात्सल्यभावसे युक्त होकर भगवान्का पुत्रके रूप अनुभव है—इस प्रकार संसारके अभावमें भी कैमुतिक न्यायसे ब्रजकी वात्सल्यवती गौओं और माताओंकी श्रेष्ठता श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुके अनुसार समझनी चाहिये ॥ ३९-४० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—पूतनाके मृत शरीरमें अग्नि संयोग करनेपर उससे एक अप्राकृत सुगन्ध निकलने लगी, जिससे श्रीभगवान्की उच्छिष्ट वस्तुकी महिमा विशेष रूपसे प्रकाशित होती है। पूतना राक्षसीने दुर्भावनासे श्रीकृष्णके मुखमें विषमय स्तन दान किया था, किन्तु श्रीकृष्णका मुख—स्पर्श होते ही पूतनाके शरीरमें एक विशेषत्व उत्पन्न हो गया, जिससे दाहके समय उसके शरीरसे निकलनेवाली अप्राकृत सुगन्धसे चारों ओरका वातावरण सुवासित हो गया। अतएव यदि कोई भाग्यवान् भक्त भक्तिपूर्वक कोई उपादेय वस्तु श्रीकृष्णको समर्पण करे, तो न जाने, उस समर्पित वस्तुमें किस अभिनव विशेषत्वका आविर्भाव होगा। जिनके स्पर्शमात्रसे राक्षसीके मरे शरीरमें

इतना वैभव प्रकाशित हुआ, तो उनके स्पर्शसे भक्तोंका क्या वैभव प्रकाशित होगा, यह कहना असम्भव है। इन सभी तत्त्वोंको प्रकाशित करनेके लिए ही 'पूतना लोकबालघ्नी' आदि श्लोकोंकी अवतारणा हुई है।

पूतनाका उसके वंश, भोजन, आचरण आदिके अनुसार कृतार्थ होना सम्भव नहीं है। यदि कोई किसी अच्छे वंशमें जन्म ग्रहण करनेका सौभाग्य लाभ करता है, तो वह अपने जन्मगत अधिकारसे कृतार्थ हो जाता है। धनीका पुत्र जन्मगत अधिकारसे धनवान होता है, गरीबका पुत्र जन्मगत अधिकारसे गरीब होता है। पक्षी जन्मगत अधिकारसे आकाशमें उड़ान भरते हैं। इन सब उदाहरणोंपर विचार करके देखनेसे जन्मगत अधिकारको अस्वीकार करना कठिन है। सत् या असत् आचरणसे जन्मगत अधिकारका कुछ तारतम्य दिखायी देनेपर भी जन्मगत स्वभाव या अधिकारको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्णके साथ युद्ध करके जब असुरराज बाणासुर मरणासन्नको प्राप्त हो गया, तब उसके आराध्य देव श्रीशङ्करने श्रीकृष्णके शरणागत होकर उसके प्राणोंकी भिक्षा माँगी। श्रीकृष्णने उनसे कहा (श्रीमद्भा० १०/६३/४७)—“प्रह्लादके वंशमें जो कोई जन्म ग्रहण करेगा, मैं कभी उसका वध नहीं करूँगा—मैंने प्रह्लादको यही वर प्रदान किया था।” इससे स्पष्ट जाना जाता है कि बाणासुर अपने जन्मगत अधिकारसे मृत्युमुक्त हुआ था। पूतना राक्षसी यदि इस प्रकार किसी भक्त-चूड़ामणिके वंशमें जन्म ग्रहण करनेका सौभाग्य लाभ करती, तब अपने जन्मगत अधिकारसे उसके कृतार्थ होनेकी सम्भावना रहती। किन्तु पूतनाका ऐसे किसी सद्-वंशमें जन्म नहीं हुआ, जिस वंशमें उत्पन्न कोई व्यक्ति श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासनाकर कृतार्थ हुआ हो। अतएव जन्मगत अधिकारसे पूतनाके कृतार्थ होनेकी सम्भावना नहीं है।

पूतना 'लोकबालघ्नी' थी अर्थात् बालकोंकी हत्या करना ही उसका कार्य था। उसे शत्रु-मित्रका भेद-ज्ञान नहीं था, केवल बालक होनेपर ही पूतना उसे मार डालती थी। जिसके ज्ञानका तनिक भी विकास नहीं हुआ है, जिससे किसी प्रकारके अनिष्टकी आशङ्का भी

नहीं है, जिसे भले-बुरेका ज्ञान भी नहीं है, सभी जिसके इच्छा-अनुरूप व्यवहार करते हैं, ऐसे नवजात निरीह स्वभाववाले बालककी हत्या करनेमें जिसको किंचित्मात्र भी संकोच नहीं होता, उसके आचरणको कौन अच्छा कह सकता है? पूतना चिरकालसे इसी आचरणमें अभ्यस्त है। अतएव उसका अपने आचरणगत अधिकारसे भी कृतार्थ होना सम्भव नहीं है।

जन्मगत श्रेष्ठ अधिकार न होनेपर भी आचरणगत अधिकारसे पूज्य होना एवं जन्मगत उच्च अधिकार रहनेपर भी आचरण-दोषसे घृणित होना लोक और शास्त्र-प्रसिद्ध है।

चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्ति परायणः।

हरिभक्ति विहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः॥

(पद्मपुराण)

अर्थात् चण्डालका जन्मगत श्रेष्ठ अधिकार नहीं होनेपर भी वह हरिभजनरूपी आचरणके फलसे ब्राह्मणादिकी भाँति सर्वपूज्य होता है। श्रीमन् महाप्रभुके प्रधान पार्षद हरिदास ठाकुर इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। ब्राह्मणादिका जन्मगत उच्च-अधिकार है, किन्तु यदि वे हरिभजनके अभावमें विविध प्रकारके अनाचारोंसे ग्रस्त हो जाते हैं, तो वे चण्डालसे भी निकृष्ट हैं। जन्मगत श्रेष्ठ अधिकार उनके आचरण-दोषके कारण उनकी श्रेष्ठता प्रकाशित नहीं कर सकता, यही उदाहरण सर्वत्र प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। अतएव पूतनाका जन्म एवं आचरण दोनों ही अत्यन्त निकृष्ट होनेके कारण वह कितनी घृणित है, यह कहना कठिन है।

साधारण बुद्धिसे ऐसा प्रतीत होता है कि भोजनके साथ धर्म-अधर्मका कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा भी भोजन हो यदि उसे ग्रहण करके मन शुद्ध होता है, तो वह परम धार्मिक है। किन्तु शास्त्र विचार करनेपर यह ज्ञात होता है कि भोजनके साथ धर्म-अधर्मका सम्बन्ध अति घनिष्ठ है। इसलिए आर्य-शास्त्रोंमें भोजन आदिके विषयमें कुछ विशेष नियम देखे जाते हैं। छान्दोग्य उपनिषदमें वर्णन है—

“अन्नमशितं त्रेधा विधीयते। तण्डुलस्य यः स्थविष्ठो धातुः, तत् पुरीषं भवति। यो मध्यमः, तन्मांसम्। योऽशिष्ठः, तन्मनः॥”

(छान्दोग्य उपनिषद् ६/५/१)

अर्थात् भोजन किया हुआ द्रव्य तीन भागोंमें विभाजित होता है। उसका स्थूल अंश विष्टा रूपमें परिणत होता है, मध्यम अंशसे मांस बनता है एवं सूक्ष्म अंशसे मनके विचारोंका निर्माण होता है।

इससे स्पष्ट होता है कि भोजनसे धर्म और अधर्मका सम्बन्ध शून्य नहीं है। भोजन की हुई वस्तुके सत्त्व, रजः और तमः ये तीन सूक्ष्मांश ही मनके सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भाव-विकासके प्रधान कारण हैं। इसलिए आर्य-शास्त्रोंमें सात्त्विक भोजनकी व्यवस्था और उत्कर्षता देखी जाती है। मनका भाव अत्यन्त संक्रामक है। इसलिए अन्नदाता, अन्न पाक करनेवाला, यहाँतक कि अन्नके स्पर्शकारी तककी विचार-व्यवस्था शास्त्रोंमें देखी जाती है। ‘यो ही यस्यान्नमश्नाति, स अस्याश्नाति किल्बिषम्’—इस पुराण वाक्यमें स्पष्ट घोषणा की है कि अन्न भोजनके साथ-साथ अन्न दाताके पाप आदि भी उदरस्थ हो जाते हैं। ‘यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः’ इस गीतावाक्य (३/१३) से ज्ञात होता है कि श्रीभगवान्को समर्पित एवं मन्त्र द्वारा संस्कार किया हुआ अन्न आदि उदरमें जानेपर उस अन्नके गुणसे जीव पापमुक्त हो जाते हैं। बहिर्मुखता और जड़वादकी प्रेरणा और प्रतारणासे बहिर्मुख लोग इन शास्त्र-वाक्योंमें विश्वास न करके उदर पूरणको ही उदारता समझते हैं। इसलिए वे दुःख, दैन्य, दरिद्रता, व्याधि, असन्तोष आदिसे घिरे रहते हैं।

अग्निष्टोमः सहस्रैस्तु वाजपेय शतैरपि।

तत्फलं प्राप्यते नूनं विष्णोर्नैवेद्य भक्षणात्॥

(स्कन्दपुराण)

अर्थात् श्रीभगवान्का महाप्रसाद अन्न भोजन करनेसे हजारों अग्निष्टोम एवं सैकड़ों वाजपेय यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। स्कन्दपुराणका यह वचन तथा विविध पुराण संहिताओंके वचन अर्थवादसे युक्त, सङ्कीर्ण एवं आधारहीन नहीं हैं। भोजन किया हुआ

द्रव्य मनके ऊपर विशेष रूपसे प्रभुत्व करनेमें समर्थ होता है। पूतना राक्षसी भोजन-दोषसे भी दूषित थी, क्योंकि बच्चोंका रक्तपान करना ही उसका भोजन था। सम्भव है उसने जीवनमें कभी रक्तके अतिरिक्त कोई अन्य हृदय-शुद्धिकर वस्तु ग्रहण ही न की हो। इसलिए भोजन-दोषके कारण पूतनाका हृदय हिंसा-द्वेषसे परिपूर्ण था।

फिर भी, पूतनाने केवलमात्र नन्दनन्दनको स्तन-दान करके ही सद्गति लाभ की एवं वह सद्गति स्वर्ग प्राप्ति नहीं थी। वह 'सतां भक्तानां गतिं प्राप्यं श्रीगोविन्दं' अर्थात् साधक भक्तगण सम्पूर्ण जीवन सेवाकर अन्तमें जिनके चरणोंको प्राप्त होते हैं, पूतनाने वही वस्तु अर्थात् श्रीगोविन्दको लाभ किया। यद्यपि पूतनाका स्तन-दान निर्दोष नहीं था, क्योंकि उसका स्तन विषमय था एवं स्तन-दान करनेका उद्देश्य भी हिंसापूर्ण था, फिर भी श्रीनन्दनन्दनने उसका दोष ग्रहण न करके अपने सद्गुणोंसे उसका संशोधनकर उसकी स्तन-दानरूपी सेवाको ग्रहणकर उसे अत्यन्त उत्तम गति प्रदान की। सामान्य सम्बन्ध या सम्बन्धके अनुकरणमात्रसे ही वे सबके दोष हरण करते हैं, इसलिए नन्दनन्दनका एक नाम 'हरि' अर्थात् हरण करनेवाले हैं। पूतना राक्षसी श्रीकृष्णको साधारण बालक समझकर हिंसा-प्रवृत्ति एवं स्पर्शमात्रसे ही प्राण हरणकारी विष लेकर उनके निकट गयी थी एवं उसने स्तन-दानके बहाने उनके प्राण हरण करनेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीहरिका स्वभाव भिन्न है। जब पूतनाने उन्हें गोदीमें लेकर उनके मुखमें अपना स्तन दिया, तो उन्होंने स्तनके साथ उसके स्तनका विष एवं हृदयकी हिंसावृत्तिका भी हरण कर लिया। किन्तु शरीरमें प्राण रहनेसे पुनः उसके स्तनोंमें विष एवं हृदयमें हिंसावृत्तिका सञ्चार होगा, इसलिए श्रीहरिने उसके प्राणोंका भी हरण कर लिया।

श्रीनन्दनन्दनकी पूतना-उद्धार लीलाका सार सिद्धान्त स्थापन करनेके लिए श्रीशुकदेवजीने 'पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां' आदि श्लोककी अवतारणा की है। नन्दनन्दनके चरणयुगलपर एकमात्र उनके भक्तोंका ही अधिकार है, किन्तु वे साक्षात् दर्शनके अधिकारी नहीं हैं। वे केवलमात्र ध्यानयोगमें ही उन्हें हृदयमें स्थापित कर सकते हैं। साक्षात् दर्शन, साक्षात् सेवा आदिमें एकमात्र नित्य पार्षदोंका ही अधिकार है,

उनके आनुगत्यमें और आज्ञासे साधन-सिद्ध पार्षद भी यथा समयमें उस अधिकारको प्राप्त कर सकते हैं। ब्रह्मा एवं शिव ब्रह्माण्डके सृष्टि और प्रलयकर्त्ता हैं, उनकी कृपा प्राप्तिके लिए जगत्के कितने साधक कितने ही प्रकारसे उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं। फिर ये शिव-ब्रह्मा आदि भक्त-चूड़ामणि होकर भी सर्वदा नन्दनन्दनकी चरण-वन्दना करते हैं, किन्तु वे भी उनके साक्षात् सेवाके अधिकारको प्राप्त नहीं कर पाते। किन्तु पूतनाके प्रति नन्दनन्दनकी कितनी कृपा है। अपने भक्तोंके हृदयकी निधि एवं शिव-ब्रह्मा आदिके द्वारा आराधित अपने चरणयुगलके द्वारा श्रीकृष्णने पूतनाकी देहको बलपूर्वक पकड़कर उसका स्तनपान किया।

जो श्रीगोविन्दके चरणयुगलका भजन करते हैं, वे भक्त हैं। जो भजन नहीं करते, वे अभक्त हैं। किन्तु जो भजन विमुख, श्रीगोविन्द और उनके भक्तोंसे द्वेष करते हैं, वे भक्त या अभक्त नहीं, द्वेषी हैं। अभक्तगण यदि कभी भक्तका सङ्ग लाभ करें, तो वे भी भक्त बन सकते हैं। किन्तु विद्वेषीकी कभी कोई गति नहीं है। श्रीगोविन्द विविध अवतारोंमें जगत्में अवतीर्ण होकर विद्वेषियोंके प्राणोंका संहार ही करते हैं, कभी भी उन्हें अपने चरणोंका आश्रय प्रदान नहीं करते। किन्तु पूतनाके प्रति उनकी आश्चर्यजनक करुणा है। विद्वेषी होकर भी अपने अङ्गोंमें शिव-ब्रह्मादिके द्वारा वन्दित श्रीगोविन्दके चरणोंको पाकर वह कृतार्थ हो गयी।

पूतनाने भगवान् या प्रेमका पात्र समझकर नन्दनन्दनको गोदीमें धारण नहीं किया था, उसने तो उनका वध करनेके उद्देश्यसे साधारण बालक समझकर उन्हें गोदीमें धारण किया था। नन्दनन्दनके द्वारा उसका स्तनपान किये जानेसे उसके प्राण तक खिंचकर बाहर आने लगे। किन्तु तब भी पूतनाने उन्हें भगवान् नहीं समझा। उसने मन-ही-मन विचार किया कि यह बालक साधारण नहीं है। मेरे स्तनके विषसे इसके प्राण नहीं जायेंगे। अतः यदि इसे भूमिपर पटक दूँ, तो इसके कोमल अङ्ग चूर्ण-विचूर्ण हो जायेंगे।

तब उसने बलपूर्वक नन्दनन्दनको अपने अङ्गोंसे छुड़ानेकी चेष्टा की, किन्तु वह उसमें भी समर्थ नहीं हो सकी। नन्दनन्दन

बलपूर्वक उसका स्तन पान करते रहे। पूतनाका बल नन्दनन्दनके बलके सामने पराभूत हो गया। किन्तु फिर भी वह शरणागत नहीं हुई। वह मन-ही-मन विचार करने लगी कि मैं इस बालकका वध नहीं कर सकती; किन्तु यदि किसी प्रकार इसे शीघ्रतासे मथुरा ले जाऊँ, तो कंस किसी उपायसे इसे मार डालेगा, यह सोचकर वह नन्दनन्दनको आकाश मार्गसे लेकर जाने लगी। किन्तु नन्दनन्दनकी अपार करुणासे पूतना गोकुलसे बाहर नहीं जा सकी एवं प्राण-शून्य होकर गोकुल प्रान्तमें ही जाकर गिरी।

नन्दनन्दनकी इस अयाचित कृपासे ही—‘यातु धान्यपि सा स्वर्गमवाप जननी गतिं’—उस बाल-हत्याकारिणी, रक्त पीनेवाली, हिंसा प्रवृत्तिसे विषमय स्तनपान करानेवाली राक्षसी पूतनाने भी स्वर्गमें जननी गति लाभ की। नन्दनन्दनकी अपार करुणासे पूतना जिस स्वर्गमें गयी, वह स्वर्ग कर्मियोंका कर्मफलसे प्राप्य नश्वर स्वर्ग नहीं है। वह स्वर्ग—‘यद्रत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम’—वह पुनरावृत्ति-विहीन साक्षात् श्रीभगवान्का अपना निजधाम है। “ब्रह्मा, शिव एवं लोकपालगण सभी उस स्वर्गमें वास करनेकी अभिलाषा करते हैं।” (श्रीमद्भा० ११/७/१)। अतएव केवलमात्र ब्रह्माण्डमें स्थित देवलोक ही स्वर्ग नहीं है—इस ब्रह्माण्डसे अतीत श्रीभगवान्के निजधामको भी शास्त्रोंमें ‘स्वर्ग’ कहा गया है।

पूतना राक्षसीका चित्त पूर्णतया अशुद्ध था, किन्तु उसने वात्सल्यरसकी शुद्धभक्त ब्रजकी मातृ-स्थानीय गोपियोंके वेशमें सुसज्जित होकर एवं उन्हींके भावका अनुकरणकर नन्दनन्दनको गोदीमें धारण करके अपना स्तन पान कराया था। उसके हृदयकी इस अशुद्धिने उसके बाह्य-भाव और वेशमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं की। परन्तु नन्दनन्दनकी कृपासे उस राक्षसीके हृदयकी अशुद्धि दूर हो गयी एवं उसे गोलोकमें यशोदा मैया जैसी गति प्राप्त हुई।

ब्रह्मवैवर्तपुराणसे जाना जाता है कि पूतनाको उसके पूर्व जन्ममें श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त हुई थी। इसीलिए उसकी कृष्णभक्तके वेश और भावमें सजनेकी प्रवृत्ति हुई।

बलि-यज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम्।
 बलिकन्या रत्नमाला पुत्र स्नेहं चकार तम्॥
 मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम।
 भवेद्यदि स्तनं दत्त्वा करोमि तज्ज्व वक्षसि॥
 हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौ जन्मान्तरे स्तनम्।
 ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरः कृपानिधिः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ४/१०/४१-४३)

अर्थात् श्रीभगवान् जब श्रीवामनदेवके रूपमें असुरराज बलिके यज्ञस्थलमें उपस्थित हुए, तब उनका मनोहर रूप देखकर बलिकी कन्या रत्नमालाने पुत्र-स्नेहमें अभिभूत होकर मन-ही-मन अभिलाषा की थी कि यदि यह बालक मेरा पुत्र होता, तो मैं इसे अपने वक्षःस्थलमें धारण करके स्तन पान कराती। भक्तोंकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उसका मनोभाव जानकर उसे अपनी कृष्णलीलामें पूर्ण किया और उसे माता जैसी गति प्रदान की।

इसके पश्चात् जब वामन देवने बलिप्रदत्त तीनपग भूमि ग्रहण करनेके लिए त्रिविक्रम-मूर्ति धारण करके बलिका सर्वस्व हरण कर लिया, तब बलिकी कन्या रत्नमालाने क्रोधित होकर मन-ही-मन विचार किया कि यदि मैं इस बालकको प्राप्त कर लेती, तो विष मिला हुआ स्तन पिलाकर इसके प्राणोंका नाश कर देती। बलिकी कन्या रत्नमालाने मातृ-भाव और असुर-भाव दोनों प्रकारसे ही श्रीहरिके साथ सम्बन्धकी अभिलाषा की थी, इसलिए पूतना उद्धार-लीलामें श्रीभगवान्ने उसकी दोनों अभिलाषाओंको पूर्ण किया।

इस प्रकार परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने ब्रजकी गायों और गोपियोंके वात्सल्यप्रेमकी महिमाका वर्णन किया। किन्तु उन्होंने ब्रजेश्वरी माता यशोदाका नाम कहीं उच्चारण नहीं किया। इसका कारण यही है कि वात्सल्यप्रेम पयोनिधि मैया यशोदाकी सखी होनेके कारण ब्रजकी गोपियोंकी जब इतनी महिमा है कि नन्दनन्दन उनका स्तनका दुग्ध पान करते हैं, पूतनाने केवल उनके वेष और भावका

अनुकरण किया था, इसलिए राक्षसी होनेपर भी उसे धात्री जैसी गति प्राप्त हुई, तो जिन्होंने साक्षात् श्रीकृष्णको गर्भमें धारण किया, उनकी महिमा भला कौन वर्णन कर सकता है। जो सर्वकारण-कारण श्रीकृष्णकी जननी हैं, जो सबके मूल-स्वरूप हैं, जिनकी चरण-धूलिका स्मरणकर मस्तक झुकाये बिना अन्य किसी प्रकारका विचार प्रकट करना कर्त्तव्य नहीं है। जिनके प्रेममें बद्ध होकर श्रीभगवान् दोमादर-नामसे त्रिजगत्में पूजित हुए, गोचारणको जानेके समय नन्दनन्दन जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उनके विषयमें वर्णन करना किसीके लिए भी सम्भव नहीं है॥ ३५-४० ॥

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय ब्रजौकसः।

किमिदं कुत एवेति वदन्तो ब्रजमाययुः॥ ४१ ॥

अन्वयः—ब्रजौकसः (मथुरासे लौटकर आ रहे श्रीनन्द महाराज आदि ब्रजवासीगण) कटधूमस्य (श्मशानके धुँएकी) सौरभ्यं (सुगन्धको) अवघ्राय (नासिका द्वारा ग्रहण करके) इदम् (यह सुगन्ध) किं (क्या है) [और] कुतः एव (कहाँसे आ रही है) इति (इस प्रकार) वदन्तः (परस्पर चर्चा करते हुए) ब्रजं (गोकुलमें) आययुः (आ पहुँचे)॥ ४१ ॥

अनुवाद—नन्दबाबाके साथ मथुरासे आनेवाले ब्रजवासी चिताके धुँएसे उठनेवाली सुगन्धको सूँघकर 'यह क्या है और कहाँसे आ रही है'—परस्पर इस प्रकार बातचीत करते हुए ब्रजमें पहुँचे॥ ४१ ॥

सारार्थदर्शनी—प्रासङ्गिकं सिद्धान्तं समाप्य प्रस्तुतमाह—कटधूमस्येति। 'कटः श्मशानम्' इति क्षीरस्वामी। कुतः किमिदमिति—'किमेतावानगरुधूपधूम इन्द्रपुरात्रिःसृत्य भूतलमपि भित्वा सुतलं प्रवेष्टुमुत्सहते? किंवा बलिसद्यतो निःसृत्यामरावतीमधिरोहति? किमुदीच्यात् कुबेरपुरात्? किंवा प्रतीच्याद्वरुणालयात्?'—इत्येवं बहुधा सन्दिहाना इत्यर्थः॥ ४१ ॥

भावानुवाद—प्रासङ्गिक सिद्धान्तका समापनकर प्रस्तुत (प्रकरण अनुरूप) कथा 'कट धूमस्य' आदि श्लोक द्वारा कह रहे हैं। क्षीरस्वामी (अमरकोषके व्याख्याकार) ने कहा है—'कट शब्दका अर्थ श्मशान' है।

‘कुतः किम् इदम्’ अर्थात् यह अगुरु धूपका धुँआ क्या इन्द्रपुरीसे निकलकर भूतलको भेदता हुआ सुतलमें प्रवेश कर रहा है? अथवा असुरराज बलिके भवनसे निकलकर देवलोकमें जा रहा है? या उत्तर दिशामें स्थित कुबेरपुरीसे आ रहा है? अथवा पश्चिम दिशामें स्थित वरुणालयसे आ रहा है?’—इस प्रकार बहुत सन्देहोंसे युक्त होकर परस्पर चर्चा करते हुए वे ब्रजमें उपस्थित हुए॥ ४१ ॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।

श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन् सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—ते (मथुरासे लौटकर आये नन्द महाराज आदि ब्रजवासीगण) तत्र (गोकुलमें) गोपैः (गोकुलकी रक्षाके लिए नियुक्त गोपोंके द्वारा) वर्णितम् (क्रमपूर्वक कथित) पूतनागमनादिकं (पूतनाका आगमन, नन्दालयमें प्रवेश, स्तन दान, महा-आर्त्तनाद आदि) तन्निधनं (पूतनाकी मृत्यु) च (और) शिशोः स्वस्ति (पूतनाके स्पर्शसे कृष्णकी जीवन-रक्षा-रूपी मङ्गलके विषयमें) श्रुत्वा (सुनकर) सुविस्मिताः (परम आश्चर्यचकित) आसन् (हो गये) ॥ ४२ ॥

अनुवाद—ब्रजमें आकर गोपोंसे पूतना राक्षसीके आनेसे लेकर मरने तकका सारा वृत्तान्त एवं श्रीकृष्णकी कुशलता सुनकर वे बड़े ही आश्चर्य चकित हुए ॥ ४२ ॥

सारार्थदर्शिनी—सुविस्मिता इति—‘धन्यो वसुदेवः सत्यमाह; ईदृश्यामपि विपत्तौ शिशोः स्वस्ति नारायणं विना कः कुर्यात्’ इत्याद्युक्तवन्तः ॥ ४२ ॥

भावानुवाद—‘सुविस्मिताः’—पूतनाके आगमन और उसके निधनके संवादके साथ बाल गोपाल श्रीकृष्णके जीवनरक्षारूपी मङ्गल संवादसे अवगत होकर नन्द महाराज आदि गोपगण अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर—“धन्य हैं वसुदेव! उन्होंने सत्य ही कहा था कि ब्रजमें कोई विपत्ति हो सकती है। इस प्रकार विपत्तिमें भी बालकका कुशल श्रीनारायणके अतिरिक्त और कौन कर सकता है?” इस प्रकार कहने लगे ॥ ४२ ॥

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः^(१)।

मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरुद्वह ॥ ४३ ॥

अन्वयः—कुरुद्वह (हे कुरुकुलके प्रदीप!) प्रोष्यागतः (मथुरा प्रवासकर लौटे) उदारधीः (परम उदारचित्त) नन्दः (श्रीनन्द महाराजने) स्वपुत्रं (अपने पुत्रको) आदाय (गोदमें लेकर) मूर्ध्नि (मस्तक) उपाघ्राय (सुँघते हुए) परमां मुदं (परमानन्द) लेभे (लाभ किया) ॥ ४३ ॥

अनुवाद—हे कुरुश्रेष्ठ! उदार-शिरोमणि श्रीनन्दमहाराजने मृत्युके मुखसे बचे हुए अपने पुत्रको गोदमें लेकर उसका मस्तक सुँघकर मन-ही-मन परम आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रोष्यागत इति—‘हन्त! मत्प्रवासादेवैतावाननर्थो जात इति किमहं मथुरामगच्छम्?’ इति पश्चात्तापः। उदारधीरिति—‘हन्त! निर्बुद्धयो द्वारपाला अपि केऽपि तां पुरं प्रवेष्टुं न न्यषिध्यन्’ इति सर्वेषां धियो निनिन्द ॥ ४३ ॥

भावानुवाद—‘प्रोष्यागतः’ अर्थात् श्रीनन्द महाराज प्रवाससे लौटकर—हाय! मैं प्रवासमें गया था, इसीलिए ऐसा अनर्थ हो गया, मैं मथुरा क्यों गया?—यह कहकर अनुताप करने लगे। ‘उदारधीः’—हाय! इन निर्बुद्धि-परायण द्वारपालोंमेंसे किसीने भी उस राक्षसीको गृहमें प्रवेश करनेसे रोकनेका प्रयास नहीं किया—ऐसा कहकर उन सभीकी बुद्धिकी निन्दा करने लगे ॥ ४३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीनन्द महाराज आदि गोपगण मथुरासे लौटते समय दूरसे पूतनाकी मृतदेहको देखकर अनेक प्रकारकी शङ्काओंसे शङ्कित होकर शीघ्र गतिसे बैलोंको हाँककर गोकुलकी ओर बढ़ रहे थे। इधर गोकुलवासियोंके द्वारा पूतनाकी मृतदेहको खण्ड-खण्डकर उसमें अग्नि संयोग करनेपर उसमेंसे अगुरु सुवासित धुँआ निकलने लगा, जिसकी सुगन्धसे दसों दिशाएँ सुगंधित हो उठीं। नन्द महाराज आदि गोपगण इस दिव्य सुगन्धकी घ्राण लेकर मन-ही-मन चिन्ता करने लगे—यह कैसी सुगन्ध है? मर्त्यलोकमें ऐसी सुगन्धका होना सम्भव नहीं है। क्या यह सुगन्ध स्वर्गके इन्द्रभवनसे निकलकर पृथ्वीको आमोदित करते हुए पातालमें प्रवेश कर रही है? अथवा

(१) पाठान्तर—प्रोष्यागत उदारधीः

सुतल-स्थित असुरराज बलिके भवनसे निकलकर पृथ्वीको भेदती हुई स्वर्गकी ओर जा रही है? या वरुणालयसे निकलकर यह दिव्य-गन्ध देवसदनको सुरभित करने जा रही है? इस प्रकार विविध तर्क-वितर्क द्वारा वे किसी भी स्थिर सिद्धान्तपर नहीं पहुँच सकनेके कारण और भी शीघ्रतापूर्वक गाड़ी चलाकर जहाँ व्रजवासीगण मिलकर पूतनाका दाह-संस्कार कर रहे थे, वहाँ उपस्थित हुए।

उपानन्द आदि गोपोंने भय, विस्मय और आनन्द-जड़ित स्वरसे नन्दमहाराजके निकट पूतनाका गोकुलमें आगमन, गोपराजके भवनमें प्रवेश, वात्सल्यके अभिनयसे नन्दनन्दनको गोदीमें धारण, मुँहमें स्तन दान और विकट शब्द करते हुए बालकको लेकर आकाश मार्गमें जाना एवं उसकी मृतदेहका गोकुल प्रान्तमें गिरना—इन समस्त घटनाओंका वर्णन किया। गोपराज नन्द इन बातोंको सुनकर अपने पुत्रके अमङ्गलकी आशंकासे अत्यन्त अधीर हो उठे। उनका मुख सूख गया, लम्बी-लम्बी श्वाँस चलने लगी, सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया। यह देखकर उपानन्द आदि गोपोंने कहा—हे गोपराज! पुत्रके लिए चिन्ता न करें। भगवान् नारायणने ही तुम्हारे पुत्रकी रक्षा की है। तुम्हारे पुत्रका अमङ्गल होनेसे अब तक कोई जीवित नहीं रहता, क्योंकि तुम्हारा पुत्र व्रजजनोंका जीवन है। उस विशालकाय राक्षसीने भूमिपर गिरते ही प्राण त्याग कर दिये। वह देखो! उसकी मृतदेहको खण्ड-खण्डकर लकड़ियोंमें डालकर जलाया जा रहा है। उस राक्षसीकी मृतदेह चित होकर गिरी थी, इसलिए उस छोटेसे बालकका कुछ नहीं बिगड़ा। राक्षसीकी मृतदेह इस स्थानपर गिरते ही गोपियोंने उसके वक्षःस्थलसे बालकको उठाकर विविध प्रकारसे उसका रक्षा-विधान किया। अब यशोदानन्द-वर्द्धन परमानन्दमें यशोदाका स्तन पान कर रहा है। अब तुम स्थिर होओ, भयभीत होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। चलो, घर चलकर यशोदाकी गोदीमें खेलते हुए नीलमणि कृष्णके दर्शन करो। हमने गोकुलकी रक्षाका भार ग्रहण किया था, भगवान् नारायणने हमारे मान और प्राण दोनोंकी रक्षा की है, गोकुलानन्द-सहित गोकुलको तुम्हें समर्पणकर हम अपने दायित्वसे मुक्त हो गये हैं।

ब्रजवासियोंके मुखसे अपने पुत्रका मङ्गल-संवाद सुनकर गोपराज श्रीनन्दके नयनोंसे आनन्दकी अश्रुधारा बहने लगी। तत्पश्चात् नन्द महाराज विलम्ब न करके ब्रजवासियोंके साथ अपने भवनमें उपस्थित हुए। उनका आगमन जानकर ब्रजरानी यशोदा नन्दनन्दनको हृदयमें धारणकर शीघ्रतापूर्वक नन्द महाराजके निकट ले आयीं और बोली— गोपराज ! यह लो तुम्हारे प्राणोंका प्राण ! तुम्हारे नयनोंकी मणि ! यह लो तुम्हारे हृदयकी सम्पद ! मैं इस बालककी माँ होनेयोग्य नहीं हूँ। इन वात्सल्यवती गोपियोंके आन्तरिक प्रयास और श्रीनारायणकी अपार करुणासे ही आज इस बालकके जीवनकी रक्षा हुई है। ये गोपियाँ ही इस बालककी माँ हैं। मैंने किस पुण्यसे इस बालकको गर्भमें धारण किया था, मैं नहीं जानती। किन्तु इस अमूल्य निधिके रक्षण-वेक्षण, पालन-पोषणादिकी योग्यता मुझमें नहीं है।

वात्सल्यप्रेमपूर्ण हृदयवाले नन्द महाराजने अपने नन्दनको हृदयमें धारण किया। किन्तु उसे प्रगाढ़ रूपसे हृदयमें धारण करके भी वे मानो तृप्ति लाभ नहीं कर सके। वे बारम्बार उसका मुख-चुम्बन एवं मस्तक सुँघते हुए मन-ही-मन प्रतिज्ञा करने लगे कि मैं अपने हृदयकी इस सम्पदको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। यदि मैं गोकुलमें होता, तो हो सकता था कि उस राक्षसीका यहाँ प्रवेश ही नहीं होता। इस प्रकार गोपराज नन्द अतिशय आनन्दमें भरकर जड़वत् हो गये एवं ब्रज जीवनको अपने वक्षःस्थलमें धारणकर नयनजलमें भीगते हुए अपार आनन्द समुद्रमें डूबने लगे ॥ ४१-४३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके षष्ठ अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त ।

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्धकमद्भुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूतनामोक्षणं
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अन्वयः—यः मर्त्यः (जो भी मरणशील व्यक्ति) एतत् (पूर्वकथित) पूतनामोक्षं (पूतनाकी संसार-मुक्तिरूपी) कृष्णस्य (नन्दनन्दनका) अद्भुतं (विस्मयकारी) आभर्कं (बाल चरित) श्रद्धया (विश्वासके साथ) शृणुयात् (श्रवण करता है) [वह] गोविन्दे (भगवान् श्रीगोविन्दमें) रतिं (रति) लभते (लाभ करता है) ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके षष्ठ अध्यायका
अन्वयः समाप्त ।

अनुवाद—जो मनुष्य श्रद्धाके साथ पूतना-मोक्षरूप श्रीकृष्णके इस अद्भुत बाललीलाका श्रवण करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें परम आसक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके षष्ठ अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

सारार्थदर्शिनी—य एतत्, आर्भकम् अर्भकचरितं, पूतनाया अपि मोक्षो यत्र तत्, अतएवाद्भुतं शृणुयात्, स रतिं लभते। निशम्येति पाठे—तुष्येत् तिष्ठेदिति वाध्याहार्यम्। यद्वा, यः श्रद्धया निशम्य रतिं लभते, स गोविन्दे गोविन्दविषयकरतिमान् भवेदित्यर्थः ॥ ४४ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।

षष्ठोऽध्यायोऽत्र दशमे सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
षष्ठोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ ६ ॥

भावानुवाद—जहाँ श्रीकृष्णकी 'आर्भक' अर्थात् बालकोचित लीला तथा जिसमें पूतनाका भी मोक्ष हुआ, भगवान्की ऐसी अद्भुत लीलाकथाको जो भी व्यक्ति श्रवण करेगा, वह भगवान्के चरणोंमें रति लाभ करेगा ॥ ४४ ॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके षष्ठ अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके षष्ठ अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ति ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

सप्तम अध्यायका कथासार

प्रस्तुत अध्यायमें शिशुरूपी श्रीकृष्णके द्वारा शकट-भञ्जन, तृणावर्त-वध एवं अपने मुखमें विश्वरूप प्रदर्शन आदि लीलाओंका वर्णन हुआ है।

श्रीकृष्णकी बाललीलाओंको श्रवण करते-करते महाराज परीक्षितके उत्साहको उत्तरोत्तर बढ़ते देखकर श्रीशुकदेव गोस्वामी प्रसन्न होकर कहने लगे—एक समय श्रीकृष्णके प्रकट होनेके तीन मास पूर्ण होनेपर बालकरूपी कृष्णके ओत्थानिक पर्वके उपलक्ष्यमें मैया यशोदाने सभी पति-पुत्रवती स्त्रियोंके साथ मिलकर नाना प्रकारके माङ्गलिक अनुष्ठानों-सहित शिशुका अभिषेक कार्य सम्पन्न किया। अभिषेकके अन्तमें शिशुको निद्रा आते देखकर मैयाने उसे गृहके भीतर एक बैलगाड़ीके नीचे पालनेमें लिटा दिया एवं स्वयं उत्सवके कार्योंमें व्यस्त हो गयीं। उसी समय कृष्णके रोदनके छलसे अपने पैरोंको ऊपरकी ओर उछालनेसे वह बैलगाड़ी (उनके पैरोंके स्पर्शमात्रसे) ध्वस्त होकर गिर पड़ी। यह देखकर यशोदा आदि समस्त गोपियाँ अत्यन्त विस्मित हो गयीं। यशोदाने आनन-फाननमें शीघ्रतापूर्वक आकर बालकको गोदमें उठा लिया एवं उसे स्तनपान कराने लगी। गोपियोंने नाना प्रकारके शान्ति-स्वस्त्ययन पाठ किये। भगवान्के प्रभावसे अनभिज्ञ वेदज्ञ ब्राह्मणोंने भी अनेक आशीर्वचन प्रयोग किये। अन्य एकदिन मैया यशोदाने अपने पुत्रको गोदमें ले रखा था कि सहसा उसने ऐसी विश्वम्भर-मूर्ति धारण की कि मैयाको उसे भूमिर रखना पड़ा। उसी समय कंसका अनुचर तृणावर्त अवसर पाकर चक्रवातके रूपमें आया और शिशुको हरणकर ले गया। उस समय सम्पूर्ण गोकुल धूलसे आच्छादित हो गया था अतः कोई किसीको देख नहीं पा रहा था। समस्त गोप-गोपियाँ शिशुको न देखकर व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। यहाँ तृणावर्तने अत्यन्त भारी कृष्णको अधिक दूर तक उठा पानेमें असमर्थ होकर उनका त्याग करना चाहा किन्तु वह ऐसा

करनेमें समर्थ न हो सका, क्योंकि कृष्णने दृढ़तापूर्वक अपने हाथोंसे उसके कण्ठको पकड़ रखा था। इसके फलस्वरूप तृणावर्त्त अविलम्ब अन्तरिक्षसे भूमिपर एक शिलाके ऊपर गिरकर पञ्चतत्त्वमें विलीन हो गया। तदनन्तर गोपियाँ उस दैत्यके वक्षःस्थलपर लेटे कृष्णको मैया यशोदाकी गोदमें सौंपकर विस्मय प्रकाश करने लगीं, किन्तु योगमायाके प्रभावसे कोई भी कृष्णके प्रभावको न जानकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करने लगीं। नन्द महाराज भी विस्मित चित्तसे वसुदेव-कथित वाक्योंको स्मरण करने लगे। अनन्तर यशोदाकी गोदमें स्थित कृष्णने जब स्तनपान प्रायः शेष कर लिया तब उन्होंने जम्भाई ली, उस समय मैया यशोदा अपने पुत्रके मुखमें विश्वरूपका दर्शनकर क्षणकालके लिए परम विस्मित हो गयीं।

सप्तमोऽध्यायः

शकट-भञ्जन और तृणावर्त-उद्धार

श्रीराजोवाच—

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा,
सत्त्वञ्च शुध्यत्यचिरेण पुंसः।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं,
तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥

अन्वयः—श्रीराजा उवाच (महाराज परीक्षित्ने कहा) प्रभो (हे प्रभो श्रीशुकदेव गोस्वामी!) ईश्वरः (सर्वनियन्ता) हरिः (अशेष दुःखहारी) भगवान् (स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने) येन येन अवतारेण (मत्स्य, कूर्म, नृसिंह आदि जिन-जिन अवतारोंमें) [जो-जो लीलाएँ] करोति (जगत्में प्रकट की हैं, वे सभी) नः (हमारे लिए) कर्णरम्याणि (कर्ण रसायन अर्थात् कानोंको सुख देनेवाली) च (और) मनोज्ञानि (मनोहारिणी) [हैं] ॥ १ ॥

यत् (जिस अर्थात् भगवान् श्रीहरिका चरित्र) शृण्वतः (श्रवण करनेमात्रसे) पुंसः (जीवमात्रकी) अचिरेण (श्रवण करनेके समयसे आरम्भकर) अरतिः (श्रवण आदि भक्तिके अङ्गोंका पालन करनेमें मनकी अप्रवृत्ति) [और] वितृष्णा (सब प्रकारकी विषय वासनाएँ) अपैति (दूर हो जाती हैं) च (और) सत्त्वं (चित्त) शुध्यति (दुर्वासना निवृत्ति होनेसे भक्तिरस आस्वादन करनेमें समर्थ हो जाता है) हरौ (सर्वमनोहर, अशेष दुःखहारी श्रीभगवान्के चरणोंमें) भक्तिः (प्रेम) [उदय होता है] च (तथा) तत्पुरुषे (उनके भक्तोंके साथ) सख्यं (प्रीति) [होती है] मन्यसे चेत् (यदि आप मुझे उन लीलाकथाओंको

श्रवण करनेका अधिकारी समझते हैं, तो) [कृपा करके] तदेव (पूर्वोक्त अशेष दोषहारी और कल्याणप्रद) हारं (श्रीहरिका चरित्र) वद (कृपापूर्वक वर्णन करें) ॥ २ ॥

अनुवाद—महाराज परीक्षितने कहा—प्रभो! परमेश्वर भगवान् श्रीहरि मत्स्यादि अवतारोंमें जो सब लीलाएँ करते हैं, वे सभी मेरे कानोंको बड़ा तृप्त करती हैं और मनको भी अति प्रीतिकर लगती हैं, तथापि जिन्हें सुननेमात्रसे ही जीवोंके मनकी ग्लानि अर्थात् भगवत्-कथा-श्रवणमें अरुचि उत्पन्न करनेवाली नाना प्रकारकी भोग-वासनाएँ दूर हो जाती हैं एवं चित्त शीघ्र ही शुद्ध होकर श्रीकृष्णमें प्रेमकी प्राप्ति कर लेता है, श्रीकृष्णके भक्तोंके प्रति मैत्री अर्थात् सख्यभाव स्थापित हो जाता है, भगवान्की ऐसी मधुर एवं मनोहारिणी कथाओंको सुननेका मुझे यदि अधिकारी समझते हैं, तो मुझपर अनुग्रह करते हुए उनका वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

स्नातः सुप्तोत्थितः कृष्णः सप्तमेऽन उदक्षिपत्।

तृणावर्तमहन्नास्ये विश्वं मातरमैक्षयत् ॥

रदच्छदबलं व्यक्तं पूतनास्तनचूषणे।

शकटेऽङ्घ्रिबलं पाण्योस्तृणावर्तवधे बलम् ॥

विश्वरूपद्वये तावदैश्वर्यं निजमातरि।

एवमादिममैश्वर्ययुग्मे बाल्ये प्रदर्शितम् ॥

अहो! भगवदवतारान्तरलीलामात्रस्याप्यस्मन्मनोहरत्वेऽपि श्रीकृष्णबाल्यलीला मामतिलोभयति, अतस्तामेव ब्रूहीत्याशयेनाह—येन येन मत्स्याद्यवतारेणापि यानि यानि कर्माणि करोति, तान्यपि नः कर्णाभ्यां, रम्याणि आस्वाद्यानि, मनोज्ञानि मनोप्यानन्दयितुं जानन्त्येव। किन्तु, तेष्वपि मध्ये यत् शृण्वतः, पुंसः पुम्मात्रस्यापि, अरतिः श्रवणादावप्रवृत्तिः, अपैति नश्यति; अनर्थनिवृत्त्या निष्ठोत्पद्यत इत्यर्थः। ततश्च वितृष्णा तत्र तृष्णाभावः, अपैति; रुच्युत्पत्त्या आकाङ्क्षा जायत इत्यर्थः। ततश्च सत्त्वं चित्तं, शुद्ध्यति दुर्वासनानिवृत्त्या भक्तिरसास्वादसामर्थ्यं भवति; यथा पैत्तिकरोगनिवृत्त्या रसना सितामाधुर्यं ग्रहणसमर्था स्यात्; आसक्त्युत्पत्त्या रतिर्जायत इत्यर्थः। अचिरेणेति सर्वत्र योज्यम्। ततश्च भक्तिः प्रेमा स्यात्। तत्पुरुषे वैष्णवे, सख्यमिति—यद्यपि भक्त्यारम्भत एव वैष्णवे सख्यं विहितं, तदपि प्रेम्णि सत्येव

वैष्णवमात्रे निरुपाधिकं सख्यं भवेदित्यत्रैवोक्तम्। हारं हरेश्चरितं, श्लेषेण हारमिव हृदये धार्यम्। यद्यपि भगवच्चरितमात्रस्याप्यरतिनिवृत्त्यादिप्रेमान्तर्वस्तुप्रापणे सामर्थ्यमस्त्येव, तदपि श्रीकृष्णबाल्यादिचरितमचिरेणैव तत्तत् प्रापयतीत्यत्रैवोक्तं—मन्यसे चेदिति, यदि तवैतत् सम्मतं स्यादिति भावः ॥ १-२ ॥

भावानुवाद—इस सप्तम अध्यायमें स्नानके पश्चात् शयनसे जागकर श्रीहरिके बैलगाड़ीको चरणोंके आघातसे ऊपर उठाकर फेंकना, तृणावर्तका वध करना और अपने मुखके भीतर मैया यशोदाको विश्वरूपका दर्शन कराना आदि लीलाओंका वर्णन हुआ है। पूतनाका स्तनपान करते हुए ओष्ठ और अधरका बल, शकट-भञ्जनमें पैरोंका बल, तृणावर्त-वधमें हाथोंका बल तथा दो बार विश्वरूपके प्रकाशमें माताको ऐश्वर्य प्रदर्शन आदिका वर्णन हुआ है। इस प्रकार बाल्यलीलामें श्रीहरिने दो बार विश्वरूप दिखलाकर जो ऐश्वर्य प्रकाश किया, उनमेंसे पहले विश्वरूपका माता यशोदाके द्वारा दर्शन इस अध्यायमें प्रदर्शित हुआ है।

अहो! श्रीभगवान्‌के अन्य अवतारोंकी लीलाएँ मनोहारिणी होनेपर भी श्रीकृष्णकी बाललीलाएँ मुझे अतिशय प्रलोभित कर रही हैं, अतएव उनका ही वर्णन कीजिये, इसी अभिप्रायसे कह रहे हैं—‘येन येन’ अर्थात् भगवान्‌ मत्स्य आदि अवतारोंमें जो समस्त लीलाएँ करते हैं, वे भी हमारे ‘कर्णरम्यानि’ अर्थात् कानोंके लिए आस्वादनीय हैं तथा ‘मनोज्ञानी’ मनको प्रीतिकर, मनको आनन्दित करनेमें समर्थ हैं, किन्तु उनमेंसे जिन लीलाओंका श्रवण करनेपर जीवमात्रकी भगवत्-कथा श्रवण आदिमें अप्रवृत्ति नष्ट हो जाती है अर्थात् अनर्थ-निवृत्ति होनेपर निष्ठा उत्पन्न होती है। उसके पश्चात् ‘वितृष्णा’—विविध विषयोंकी वासना होनेके कारण श्रीकृष्णकथा श्रवण करनेमें जो तृष्णाका अभाव है, वह भी अतिशीघ्र दूर हो जाता है। अर्थात् रुचि उत्पन्न होनेके पश्चात् भगवत्-कथा श्रवण आदिकी अभिलाषा होती है। उसके पश्चात् ‘सत्त्वं शुद्ध्यति’ चित्त शुद्ध होता है अर्थात् अतिशीघ्र दुर्वासनाओंकी निवृत्ति होनेपर चित्त भक्तिरस आस्वादन करनेमें समर्थ होता है, जिस प्रकार पित्त-जनित रोग दूर होनेपर जिह्वा मिश्रीकी मिठासका अनुभव करनेमें समर्थ होती है

अर्थात् आसक्तिके पश्चात् रतिका आविर्भाव होता है। सर्वत्र 'अचिरेण'—अतिशीघ्र, इस पदका योग करना होगा। उसके पश्चात् श्रीभगवान्‌में भक्ति अर्थात् प्रेम और उनके भक्तोंके प्रति सख्यभाव उत्पन्न होता है। यद्यपि भक्तिके प्रारम्भमें वैष्णवोंके प्रति सख्यभाव होता है, तथापि प्रेम उत्पन्न होनेपर वैष्णवमात्रके प्रति निरुपाधिक सख्य भाव उदित हो जाता है। 'हार'—अर्थात् श्रीहरिका चरित्र, श्लेषार्थ—जो गलेके हारके समान हृदयमें धारण करनेयोग्य है। यद्यपि भगवान्‌की प्रत्येक लीला अनर्थ निवृत्तिसे लेकर प्रेम तक प्रदान करनेमें समर्थ है, तथापि श्रीकृष्णका बालचरित्र आदि अतिशीघ्र उन सबकी प्राप्ति कराता है। इसलिए यहाँ कहा गया है—'मन्यसे चेत्'—यदि मेरे प्रति आपका अनुग्रह हो या आप मुझसे सम्मत हों, तो समस्त जीवोंके लिए मङ्गलकारी परम मनोहर श्रीकृष्णके बाल्यलीला-चरित्र आदिका वर्णन करें, यही भावार्थ है॥ १-२॥

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम्।

मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः॥ ३॥

अन्वयः—अथ (अनन्तर) मानुषं लोकं (मनुष्य लोकमें) आसाद्य (अवतीर्ण होकर) तज्जातिं (मनुष्य जातिके अनुरूप) अनुरुन्धतः (लीलाओंके द्वारा आत्मसात् करनेवाले) कृष्णस्य (नन्दनन्दनकी) अन्यत् अपि (अन्य सभी) अद्भुतं (माधुर्यमयी एवं विस्मयकारी) तोकाचरितं (बाल्यलीलाओंका) [वर्णन करें]॥ ३॥

अनुवाद—भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्यलोकमें अवतार लेकर मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुसरण करते हुए पूतना-वधके अतिरिक्त और भी जो दूसरी-दूसरी परम अद्भुत और मनोहर बाल्यलीलाएँ की हैं, उनका भी वर्णन करें॥ ३॥

सारार्थदर्शिनी—अत्यौत्सुक्येन तदेव पुनः स्पष्टयति—अथेति। तज्जातिं मानुषजातिं। अनुरुन्धत इति—मानुषजात्यनुरोधेनैव भूलोकं प्राकट्यं, न तु देवादिजात्यनुरोधेन देवादिलोक, इति देवादिभ्योऽपि मानुषाणां सौभाग्यं द्योतितम्॥ ३॥

भावानुवाद—अतिशय उत्सुकताके कारण पुनः उसे ही स्पष्ट कर रहे हैं—मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होकर श्रीहरिने मनुष्योचित जो समस्त बाल्यलीलाएँ की हैं, उनका भी वर्णन किजिये। ‘तज्जातिं’—मनुष्य जातिकी अनुकरणकारी अर्थात् मनुष्य जातिके अनुरोधसे ही वे भूलोकमें प्रकट हुए हैं, देवताओंके अनुरोधसे देव आदि लोकोंमें नहीं। इससे देवताओंकी अपेक्षा मनुष्योंका अधिक सौभाग्य प्रकाशित हुआ है॥ ३॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने ‘इस परम मधुर लीलाकथाका श्रवण करनेसे श्रीगोविन्दके चरणोंमें रति उत्पन्न होती है’—श्रीभगवान्की पूतना-उद्धार लीलाकी ऐसी महिमाका कीर्तन किया। महाराज परीक्षित् पूतना-उद्धार लीलाकी फलश्रुति सुनकर परमानन्दमें विभोर होकर मन-ही-मन चिन्ता करने लगे कि साधक भक्तगण बहुत समय तक श्रवण-कीर्तनादि साधनभक्तिका भलीभाँति अनुष्ठान करनेपर जिस रतिको लाभकर कृतार्थ होते हैं, श्रीनन्दनन्दनने अपनी पूतना-उद्धार लीलामें ऐसी कृपा वैभवका विस्तार किया कि इस लीलाकथाके श्रवणमात्रसे ही कोई भी व्यक्ति श्रवण-कीर्तनादि अङ्गोंसे प्राप्त होनेवाली उस दुर्लभ रति (प्रेम) को अनायास ही प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। वे परमानन्दमें डूबकर एवं परम आग्रहके साथ पुनः श्रीहरिकी बाल्यलीलाओंको श्रवण करनेकी अभिलाषासे श्रीशुकदेव गोस्वामीके निकट अपना मनोभाव व्यक्तकर उनसे बाल्यलीला-विषयक और प्रश्न करनेके लिए उत्सुक हो गये।

महाराज परीक्षित्जीने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, आप मेरे भीतर और बाहरके सभी भावोंको भलीभाँति जानते हैं। मैं आपसे और अधिक क्या कहूँ। स्वयं-भगवान् श्रीहरि मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि अनन्त रूपोंमें जगत्में अवतीर्ण होकर अनन्त लीलाएँ करते हैं। किन्तु सभी जीवोंको उनकी इन लीलाओंका साक्षात् दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। परन्तु श्रीभगवान्की जीवोंपर ऐसी कृपा है कि वे अपनी लीलाओंको

संगोपन करनेपर भी जीवोंपर कृपा करके अपने भक्तोंके माध्यमसे उन लीला-कथाओंका जगत्में प्रचार-प्रसार करवाते हैं, जिससे उन कथाओंका श्रवण-कीर्तन करके जीव कृतार्थ हो जाते हैं। मैंने आपकी कृपासे आपके श्रीमुखसे श्रीभगवान्के मत्स्य, कूर्म, नृसिंह आदि अवतारोंकी लीलाकथाएँ श्रवण की, जिससे मेरा हृदय परमानन्द रससे परिपूर्ण हो गया है। श्रीभगवान्की सभी लीलाकथाएँ हृत्कर्ण-रसायन हैं। उनका अर्थ कोई समझे या न समझे, जैसे ही लीलाकथा कानोंमें प्रवेश करती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो कर्णरन्ध्रोंमें अमृतकी धारा डाल दी हो।

तो फिर यदि किसी भाग्यवान् व्यक्तिको इन लीलाकथाओंके अर्थज्ञानको लाभ करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है, तो उसका हृदय परमानन्द-समुद्रमें डूब जाता है, इसके विषयमें क्या कहा जाय? महाराज परीक्षितने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—हे सर्वज्ञ शिरोमणे! मुझे अपनी अल्प बुद्धिसे ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीभगवान्के नाम, रूप, गुण, लीला आदिके विषयमें श्रवण करनेसे जीवोंका समस्त प्रकारका चित्त-विक्षेप दूर हो जाता है एवं श्रीभगवान्के साथ प्रेम सम्बन्ध प्राप्त होता है। अतएव यही साधन समस्त साधनोंका सार है। अन्य कोई साधन जीवको परम पुरुषार्थ प्रदानकर कृतार्थ नहीं कर सकता। अतएव आप कृपा करके परम मधुर एवं परम पुरुषार्थ प्रदानकारी श्रीहरिकी लीलाकथाओंका मेरे निकट वर्णन करें।

परम करुणामय श्रीभगवान्ने इस नश्वर मनुष्यलोकमें अपने परब्रह्म स्वरूपमें अवतीर्ण होकर एवं अपनी परम मधुर लीलाएँ प्रकाशित करके इस नरलोकको कृतार्थ किया है। देवलोक, ब्रह्मलोक आदि इस नरलोकसे विविध कारणोंसे श्रेष्ठ हैं, किन्तु श्रीभगवान्की कृपाके विषयमें चिन्तन करनेपर देखा जाता है कि त्रिलोकीमें नरलोक ही श्रेष्ठ है। नराकृति परब्रह्म इस नरलोकमें अवतीर्ण होकर नरलोकके जीवोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करके अनेक लीलाएँ करते हैं। अतः आप कृपा करके श्रीभगवान्की परम अद्भुत बाल्यलीलाओंका वर्णन करें ॥ १-३ ॥

श्रीशुक उवाच—

कदाचिदौत्थानिक कौतुकाप्लवे,
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥

अन्वयः—सती (सभी कार्योंमें निपुण यशोदाने) कदाचित् (पुत्रकी आयु तीन मास होनेपर) औत्थानिककौतुकाप्लवे (चित होकर शयन करनेवाले शिशु जब तिर्यक अर्थात् करवट लेकर सोनेमें समर्थ हो जाते हैं, तब जो कौतुक उत्सव मनाया जाता है) जन्मर्क्षयोगे (ऐसे जन्म नक्षत्रके दिन अर्थात् रोहिणी नक्षत्र योगमें) समवेतयोषितां (समागत व्रजकी वात्सल्य-परायणा गोपियोंके साथ) वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैः (मङ्गल गीत और वाद्य एवं ब्राह्मणोंके मन्त्रपाठ सहित) सूनोः (अपने पुत्रका) अभिषेचनं (अभिषेक अर्थात् कलश स्थापनपूर्वक ब्राह्मणों द्वारा किया जानेवाला प्रोक्षण आदि कार्य) चकार (सम्पन्न किया) ॥ ४ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित! शिशुके करवट बदलनेको 'उत्थान' (श्रीकृष्णके सन्दर्भमें 'औत्थानिक महोत्सव') कहा जाता है। कोई शिशुके 'गृह निष्क्रमणरूप संस्कार' को उत्थान कहते हैं। इस दिन यथा-विधि स्नानादिके द्वारा पुत्रका अभिषेक करना चाहिये। अतः श्रीकृष्णके आविर्भावके तीन माह पश्चात् करवट बदलनेके अभिषेक-उत्सवका आयोजन हुआ। उस दिन भी वही जन्म वाला रोहिणी नक्षत्र था। समागत पुर-स्त्रियाँ वाद्यादि यन्त्रोंके साथ मङ्गल गीत गा रही थीं। ब्राह्मणादि मन्त्र-पढ़कर बालकको आशीर्वाद प्रदान कर रहे थे। इस प्रकार यशोदाजीने अपने पुत्रका अभिषेक सम्पन्न किया ॥ ४ ॥

सारार्थदर्शनी—कदाचित्—मासत्रयवयसि सति; 'त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः' (श्रीमद्भा० २/७/२७) इति द्वितीयोक्तेः; 'मास्यस्य चरणवुदक्' (श्रीमद्भा० १०/२६/५) इत्यत्र तु मासास्त्रयः परिच्छेदका यस्येति व्याख्येयम्। उत्थानं—उत्तानशायिनः शिशोस्तिर्यग्-शयनसामर्थ्याद्भ्रमः। तत्र भवे कौतुकाप्लवे, तद्दृष्ट्वा व्रजवासिनीनां कुतूहलसमुद्रनिमज्जने सतीत्यर्थः। तस्मिन्नेव दिने जन्मर्क्षस्यापि

योगे सति, समवेतयोषितां मिलितपुरन्ध्रीणां, मध्ये वादित्रादिभिः शोभितं अभिषेचनं यशोदा चकार ॥ ४ ॥

भावानुवाद—‘कदाचित्’—तीन मासकी आयु होनेपर, क्योंकि द्वितीय-स्कन्ध (२/७/२७) में वर्णन हुआ है—“तीन मासके शिशुके पदाघातसे शकट—गाड़ी चूर्ण—विचूर्ण हो गयी।” ‘मास्यस्य चरणावुदक्’ (श्रीमद्भा० १०/२६/५), यहाँ ‘मास्यस्य’ कहनेसे तीन मास जिसके परिच्छेदक हैं, ऐसी व्याख्या होगी। अर्थात् तीन मासकी आयुमें ऊपरकी ओर दोनों चरण निक्षेप करनेसे बैलगाड़ी उलट गयी। ‘औत्थानिक’—उत्तान—शायी शिशु तिर्यग रूपसे अर्थात् करवट लेकर शयन करनेमें समर्थ हो गया है, यह देखकर गोपियाँ कुतूहल—समुद्रमें निमग्न हो गयीं। ‘जन्मर्क्षयोगे’—फिर उस दिन रोहिणी जन्म—नक्षत्रका योग भी होनेपर नन्दभवनमें वात्सल्य—परायणा सभी गोपियाँ एकत्रित हुईं। माता यशोदाने उन सभी गोपियोंके साथ मिलकर वाद्य, गीत तथा ब्राह्मणोंसे यथाविधि मन्त्र पाठ कराकर अपने पुत्रका अभिषेक किया ॥ ४ ॥

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं,
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः।
अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः,
सज्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥

अन्वयः—नन्दस्य पत्नी (व्रजराज महिषी यशोदा—देवीने) कृतमज्जनादिकं (अपने पुत्रको स्नान एवं गोरोचनाका तिलक धारण कराया) [एवं] अन्नाद्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः (अन्न—वस्त्र, रत्न—माला एवं अभीष्ट गायों द्वारा) सुपूजितैः (सुपूजित) विप्रैः (ब्राह्मणोंके द्वारा) कृतस्वस्त्ययनं (स्वस्तिवाचन आदि मङ्गलकार्य कराकर) सज्जातनिद्राक्षं (निद्राके आवेशमें नेत्र मूँदते हुए अपने पुत्रको) शनैः (निद्रा भङ्ग होनेके भयसे धीरेसे) अशीशयत् (शयन कराया) ॥ ५ ॥

अनुवाद—इसके बाद यशोदाने बालककी स्नानादि क्रियाएँ सम्पन्न कीं और स्वादिष्ट अन्न, उत्तम वस्त्र, माल्य और उत्तम गोदान

आदिके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजाकर उनके द्वारा 'स्वस्त्ययन' स्वस्ति वाचन आदि माङ्गलिक कार्य सम्पन्न कराये। उस समय बालककी नींदके कारण आँखे मुँदने लगीं, तब यशोदाने चुपचाप उसे गोदमें ले जाकर शय्यापर धीरे-धीरे सुला दिया ॥ ५ ॥

सारार्थदर्शिनी—अत्रादिभिः अत्रादिदानेन, सुष्ठुपूजितैः, विप्रैः, कृतमङ्गलम्। सञ्जातनिद्रे अक्षिणी यस्य, तं बालं कृष्णं। शनैरिति—निद्राभङ्गशङ्कया क्रोडे निष्पन्दं धृत्वैव स्वयमपि शयित्वा, अशीशयत्—बृहत्प्राङ्गणैकदेशस्थस्य शकटस्याधः स्थिते पत्यङ्के निश्चलं निःशब्दञ्च शाययामास। ततश्च निद्रापूर्तिं ज्ञात्वैव स्वयमुत्तस्थाविति शनैः पदेनैव द्योतितं ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

भावानुवाद—नन्दपत्नी यशोदाने अपने पुत्रके स्नान और वेश आदि कार्य समाप्त होनेके पश्चात् अत्र आदि दानसे सुपूजित ब्राह्मणोंके द्वारा बालकके स्वस्तिवाचन आदि माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करवाये। 'सञ्जात निद्राक्ष'—बालक जब नींदके आवेशमें नेत्र मूँद रहा था, तब मैया यशोदाने निद्राभङ्ग होनेकी आशङ्कासे बालक कृष्णको धीरेसे गोदीमें लेकर अपने साथ शयन कराया अर्थात् विशाल आङ्गनके एक कोनेमें बैलगाड़ीके नीचे पलनेपर बिना किसी शब्दके बालकको शयन कराया। उसके पश्चात् बालक गहरी नींदमें है यह जानकर मैया यशोदा धीरे-धीरे उठ गयी—'शनैः' पदके द्वारा यह प्रकाशित हो रहा है ॥ ५ ॥

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी,
समागतान् पूजयती ब्रजौकसः।
नैवाश्रुणोद्वै रुदितं सुतस्य सा,
रुदंस्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—औत्थानिकौत्सुक्यमनाः (अपने पुत्रके औत्थानिक पर्वपर कार्यमें अत्यन्त व्यस्त) मनस्विनी (परम उदारचित्त) समागतान् (उत्सवमें सम्मिलित) ब्रजौकसः (ब्रजवासियोंका) पूजयती (यथायोग्य वस्त्र, आभूषण, और भोजनादिके द्वारा सत्कार कर रही) सा (वह यशोदा देवी) सुतस्य (ऐसे समयमें अपने पुत्रका) रुदितं (रोदन) नैव

वै अशृणोत् (सुन नहीं पायी) स्तनार्थी (स्तन पान करनेकी लालसासे युक्त यशोदानन्दन) रुदन् (रोता हुआ) चरणौ (अपने कोमल चरणोंको) उदक्षिपत् (बारम्बार उछालने लगा) ॥ ६ ॥

अनुवाद—यशोदादेवी ‘अभिषेक उत्सव’ में बड़ी उत्सुकताके साथ व्यस्त थीं। उनका हृदय भी बड़ा उदार था। वे महोत्सवमें आयी हुई सभी स्त्रियोंका वस्त्र, अलङ्कार, माला, गन्ध, चन्दन, तेल, सिन्दूरदिसे स्वागत करनेमें तन्मय थीं। इधर श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं तो वे स्तनपानके लिए रोने लगे। किन्तु यशोदाजी व्रजवासियोंके स्वागतादि कार्यमें इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें श्रीकृष्णका रोना सुनायी नहीं पड़ा। तब बालक श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने चरणोंको ऊपरकी ओर उछालने लगे ॥ ६ ॥

सारार्थदर्शनी—औत्थानिके उत्सवे औत्सुक्ययुक्तं मनो यस्याः सा, मनस्विनी, वस्त्रालङ्कारमाल्यगन्धचन्दनतैलसिन्दूरादिकं ददाना, व्रजौकसो महोत्सवागतनारीः। नैवेति, व्रजस्त्रीजनसम्माननवचनप्रतिवचनाद्यावेशवशादित्यर्थः। स्तनार्थीति, निद्रान्त एव क्षुधोद्गमादिति भावः। मदीयरोदनशब्देन नावदधासि, तिष्ठ ! त्वद्गृहशकटस्फोटन-शब्देनैव त्वामवधापयानि, इति मात्रे कुप्यन्निव शकटभङ्गार्थमेव चरणौ उच्चिक्षेपेत्युत्प्रेक्षा गम्या ॥ ६ ॥

भावानुवाद—‘औत्थानिकौत्सुक्यमनाः’—औत्थानिक उत्सवमें जिनका मन अत्यन्त उत्सुक है। परम उल्लासमें भरकर पुत्रोत्सव विषयक कार्योंकी समाप्तिके लिए व्याकुल चित्तवाली मनस्विनी श्रीयशोदा, ‘व्रजौकसः’—महोत्सवमें सम्मिलित व्रजगोपियोंका वस्त्र, अलङ्कार, माला, गन्ध, चन्दन, तेल, सिन्दूर आदिके द्वारा सम्मान कर रही थीं। ‘नैवाशृणोत्’—व्रजगोपियोंके सम्मान, उनसे वार्तालाप आदिमें आविष्ट होनेके कारण वे अपने पुत्रके रोनेकी आवाज सुन नहीं पायीं। ‘स्तनार्थी’—निद्रा भङ्ग होने एवं भूख लगनेसे, बालकने स्तनपान करनेके लिए रोना आरम्भ कर दिया एवं रुदन करते हुए वह अपने पैरोंको ऊपरकी ओर उछालने लगा। “मेरे रोनेकी आवाज मैया सुन नहीं रही है। ठीक है, तुम्हारी बैलगाड़ी टूटनेके शब्दसे ही तुम्हारा ध्यान भङ्ग करूँगा।” मानो इस प्रकार माताके प्रति क्रुद्ध होकर ही

श्रीकृष्ण शकट-भञ्जनके निमित्त अपने दोनों चरणोंको ऊपरकी ओर उछालने लगे, इस प्रकार उत्प्रेक्षा (अर्थात् एक प्रकारका अलङ्कार) समझना होगा ॥ ६ ॥

अधःशयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकूप्यभाजनं,
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—अधःशयानस्य (घरके बाहर बैलगाड़ीके नीचे सोये हुए) शिशोः (यशोदानन्दनके) अल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतम् (नये-नये पल्लवोंसे भी कोमल चरणोंके प्रहारसे) अनः (बैलगाड़ीमें रखे) विध्वस्तनानारसकूप्यभाजनं (दूध, दही, मक्खन, मलाई आदिसे परिपूर्ण काँसे आदिके बर्तन बिखरकर टूट-फूट गये) [एवं] व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्न-कूबरं (गाड़ीके चक्र, युगन्धर आदि) व्यवर्तत (विपरीत दिशामें जा गिरे) ॥ ७ ॥

अनुवाद—शिशु श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सोये हुए थे। उनके पैर अभी लाल-लाल कोपलोंके समान बड़े ही कोमल और नन्हे-नन्हे थे। परन्तु, श्रीकृष्णका वह सुकुमार नन्हासा पैर लगते ही विशाल छकड़ा उलट गया। उसके पहिये, धुरे और जुआ आदि सभी बिखर गये। उस छकड़ेपर रही हुई दूध-दही आदि अनेक रसोंसे भरी हुई मटकियाँ और दूसरे बर्तन फूट-फाट गये ॥ ७ ॥

सारार्थदर्शिनी—अल्पकश्चासौ प्रवालवन्मृदुश्च योऽङ्घ्रिस्तेन हतमिति; तेन वामनावतारस्य कटाहभेदार्थमिव शकटभङ्गार्थं तच्चरणयुगं न वर्द्धितं, नापि नृसिंहावतारस्य कठोरहिरण्यकशिपुविदारणार्थमिव जात्यैवातिकठिनमिति भावः । बाल्यादिलीला-माधुर्याविरोध्यति सुदुर्घटनं ऐश्वर्यमेतत् कृष्णस्य पूर्णत्वप्रतिपादकम् । व्यवर्तत—विपर्यस्तीभूय अपतत् । विध्वस्तानि नानारसवन्ति, कूप्यभाजनानि स्वर्ण-रजतातिरिक्तकांस्यादिमयानि पात्राणि, यत्र, तद्यथा स्यात्तथा । व्यत्यस्तानि विपर्ययस्तानि, चक्रे च अक्षाश्च चक्राक्षाः, व्यत्यस्ताश्चक्राक्षा यस्मिन्, विदीर्णः, कुबरो युगन्धरश्च, यत्र, तद्यथास्यात्तथा । 'शकटासुरभञ्जन' इति ब्रह्माण्डपुराणात् असुरावेशेनैव भूमौ

प्रविशच्चक्रत्वादुच्चस्यापि शकटस्य निकटे प्राप्तत्वेन अल्पकेन चरणेन स्पर्शो ज्ञेय इति वैष्णवतोषणी ॥ ७ ॥

भावानुवाद—छोटे-छोटे और नये-नये पल्लवोंकी भाँति कोमल चरणोंके द्वारा आहत। यहाँ बैलगाड़ीको चूर्ण-विचूर्ण करनेके लिए, वामन अवतारमें ब्रह्माण्ड भेदनेके समान पैरोंको बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं पड़ी अथवा नृसिंह अवतारके समान कठोर हिरण्यकशिपुको विदीर्ण करनेकी भाँति स्वभाव भी कठोर नहीं करना पड़ा। बाल्य आदि लीला माधुरीका अविरोधि अति दुर्घट यह ऐश्वर्य श्रीकृष्णके पूर्णत्वका प्रतिपादन करता है। 'व्यवर्त्तत'—वह शकट विपरीत दिशामें अर्थात् उलटकर गिर पड़ा। 'विध्वस्त' इससे शकटमें स्थित विविध रसपूर्ण स्वर्ण, रजत और इसके अतिरिक्त कांस्य आदि पात्र चूर्ण-विचूर्ण हो गये एवं शकटका चक्र, चक्रका मध्य स्थल और जौयाल आदि छिन्न-भिन्न हो गये। श्रीवैष्णव-तोषणीमें वर्णन है कि—यह ब्रह्माण्डपुराणमें वर्णित शकटासुर-भञ्जन लीला है। असुरके आवेशसे ही शकट गाड़ीके पहिये जमीनमें धँस गये थे, जिससे ऊँचा शकट नीचे आ गया था और इसीलिए उसे श्रीकृष्णके कोमल चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ, ऐसा जानना होगा ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा ब्रजस्त्रिय,
औत्थानिके कर्मणि याः समागताः।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः,
कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥

अन्वयः—यशोदाप्रमुखाः (यशोदा-रोहिणी आदि) याः (जो) ब्रजस्त्रियः (ब्रजरमणियाँ) औत्थानिके कर्मणि (यशोदानन्दनके औत्थानिक महोत्सवमें) समागताः (नन्द भवनमें उपस्थित थीं) [एवं] नन्दादयः (नन्द, उपानन्द आदि जितने भी गोप थे, वे सभी) अद्भुतदर्शनाकुलाः (शकट-भञ्जनरूपी अद्भुत घटनाका दर्शनकर एवं किसी उत्पातकी आशङ्कासे व्याकुलचित्त होकर) कथं (किस प्रकार) शकटं (यह महाशकट) स्वयं वै (स्वयं ही) विपर्यगात् (चूर्ण-विचूर्ण हो गया) [इस प्रकार विस्मयके साथ परस्पर चर्चा करने लगे] ॥ ८ ॥

अनुवाद—यशोदा, रोहिणी, औत्थानिक उत्सवमें समागत अन्यान्य स्त्रियाँ, नन्दबाबा आदि गोप और वहाँ समुपस्थित सभी ब्रजवासी इस अद्भुत घटनाको देखकर बड़े विस्मित हो गये और कहने लगे—अरे यह क्या हुआ? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया? ॥ ८ ॥

सारार्थदर्शिनी—यशोदाप्रमुखाः याश्च ब्रजस्त्रियः। पर्वणि। कर्मणीति च पाठः। विपर्यगात्—विपर्यस्तं सदपतत्, इति 'ऊचुः' इति शेषः ॥ ८ ॥

भावानुवाद—‘यशोदाप्रमुखाः’—श्रीयशोदा मैया आदि घरमें उपस्थित स्त्रियाँ और ‘पर्वणि’—उस औत्थानिक उत्सवमें सम्मिलित ब्रजकी अन्य समस्त स्त्रियाँ जो वहाँ उपस्थित थीं। ‘विपर्यगात्’—यह इतना विशाल शकट किस प्रकार अपने आप पलटकर गिर पड़ा? इस प्रकार परस्पर चर्चाएँ करने लगीं ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीकृष्णकी बाल्यलीला श्रवण करनेके लिए महाराज परीक्षितके द्वारा अत्यन्त आग्रह करनेपर परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्णकी एक और परम मधुर और चमत्कारी बाल्यलीलाका वर्णन करने लगे।

श्रीनन्द, यशोदा एवं ब्रजवासी गोप, गोपियोंके वात्सल्यप्रेम एवं लालन-पालनसे नन्दनन्दन शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-प्रतिदिन वर्द्धित होने लगे एवं नित्य नवीन लीलाओंके द्वारा सबके हृदयमें आनन्दकी धारा प्रवाहित करने लगे। इस प्रकार नन्दनन्दनकी आयु तीन मास पूर्ण हो गयी। माँ यशोदा एवं ब्रजकी गोपियोंका स्तनपानकर नन्दनन्दनके शरीरमें नित्य-नित्य नूतन बल सञ्चारित होने लगा तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदिके सञ्चालन तथा इधर-उधर हाथ-पैर चलानेकी शक्ति भी नूतन-नूतन रूपोंमें प्रकाशित होने लगी। जिससे ब्रजवासी सभी नर-नारी एक अभिनव परमानन्द लाभ करने लगे।

श्रीभगवान् सर्वकारण-कारण होनेपर भी नन्द-यशोदा एवं ब्रजवासी गोप-गोपियोंके वात्सल्यप्रेमके अनुरूप शिशुभावसे अपना विविध माधुर्य प्रकाशित करने लगे। उनका यह शिशुभाव प्राकृत शिशुके अनुरूप है; किन्तु इस शिशुभावके भीतर असमोर्द्ध ऐश्वर्य एवं माधुर्य विराजमान हैं, जो श्रीभगवान्के अनन्त अवतारोंकी लीलाओंके

सिन्धुका मन्थन करनेपर भी नहीं मिल सकता। एकमात्र व्रजराजनन्दनमें ही वह परिपूर्ण रूपसे प्रकटित है।

माँ यशोदाके वात्सल्यप्रेमके अनुरूप उनकी शक्तिका प्रकाश होता है। इसलिए तीन मासके पश्चात् सर्वशक्ति-निधान नन्दनन्दनका करवट बदलनेका और अङ्ग सञ्चालनका बल प्रकाशित होने लगा। इसलिए आज तीन मासके पश्चात् उत्तानशायी (चित होकर सोये हुए) यशोदानन्दन कभी दौंये और कभी बाँये घूमकर शयन करनेमें समर्थ हुए। इसीका नाम औत्थानिक पर्व है। नन्दनन्दनकी तीन मासकी आयुमें जन्म-नक्षत्रका योग होनेसे, यह स्पष्ट समझा जाता है कि—यह तीस दिनकी गणनावाला 'सौरमास' (सूर्यके संक्रान्तिके अनुसार गणित मास) नहीं है। यह सत्ताईस दिनमें गणित 'नक्षत्रमास' है। वर्तमान समयमें नक्षत्रमासका प्रचलन नहीं है। कुछ कार्योंमें तीस दिनमें गणित 'सौरमास' एवं साधारण रूपसे सूर्यकी एक-एक राशिमें अवस्थानके अनुसार सौरमास ही प्रचलित है। स्थान और धर्मके भेदसे चान्द्र मासका व्यवहार भी देखा जाता है।

नन्दनन्दनने भाद्र मासमें जन्म ग्रहण किया था, इस प्रकार तीन मासकी गणनासे कार्तिक मासमें उनकी आयु तीन मास होती है। इस गणनामें दिनका हिसाब नहीं होता। तीन सौर मासका सम्बन्ध होनेसे ही बालककी आयु तीन मास होती है। भाद्र मासका एकदिन अवशेष रहते हुए यदि किसी बालकका जन्म होता है, तो भी गणनासे कार्तिक मासके प्रथम दिनमें ही तीन मास होते हैं।

'त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः'—श्रीमद्भागवतके द्वितीय-स्कन्धमें ब्रह्माके इस वचनसे स्पष्ट जाना जाता है कि श्रीभगवान्ने तीन मासकी आयुमें शकट-भञ्जन लीला की थी। श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धमें देखा जाता है—औत्थानिक पर्व और शकट-भञ्जन लीला एक ही दिनमें हुई थी एवं उसी दिन रोहिणी नक्षत्रका योग संघटित हुआ था। इसलिए वैष्णव-तोषणीकार आदि आचार्योंने एक ही सिद्धान्त स्थापित किया है कि नक्षत्र-मास-गणनासे नन्दनन्दनने तीन मासकी आयुमें ही यह परम मधुरलीला प्रकाशित की थी।

समयके अनुसार नन्दालयमें नन्दनन्दनका औत्थानिक पर्व एवं जन्म-नक्षत्रके दिन उनके मङ्गलके लिए माङ्गलिक क्रियाका अनुष्ठान प्रारम्भ होनेपर वह उत्सव मानो मूर्तिमान होकर व्रजमें प्रकाश पाने लगा। द्वार-द्वारपर केलेके वृक्ष लगाये गये थे, उनमें आमके पत्ते और माला आदि बाँधकर उनके तलदेशमें सिन्दूर और चन्दन-बिन्दुसे परिसेवित पूर्णकुम्भसे सजावट की गयी थी। घरके शिखरपर उड़ती हुई विविध वर्णोंकी पताकाएँ ऊर्ध्वलोक तक उस उत्सवकी घोषणा करने लगीं। वेणु, वीणा, मृदङ्ग, पणव, कांस्य, करताल, शङ्ख, भेरी आदि माङ्गलिक वाद्य-ध्वनिसे सम्पूर्ण व्रज गूँजने लगा। व्रजवासियोंके आनन्दकी सीमा नहीं थी। वे नन्दनन्दनकी दीर्घ आयुकी कामनाकर जयध्वनि करने लगे। व्रजवासीगण धान, दुर्वा, हल्दी, चन्दन आदि माङ्गलिक द्रव्य लेकर नन्दनन्दनको आशीर्वाद देनेके लिए नन्द-भवनमें उपस्थित होने लगे। वेदज्ञ ब्राह्मणगण भी 'जय हो' आदि शब्दोंका उच्चारण करते हुए नन्दालयमें प्रवेश करने लगे। नन्द महाराजके द्वारा प्रदत्त वस्त्र, अलङ्कार, रत्नमाला, गोधन आदिसे सुपूजित और सुसंस्कृत हो वे नन्दनन्दनके मङ्गलकी कामनासे मङ्गल-घट स्थापन और वेदमन्त्र उच्चारणकर होम-पूजा-पाठ आदि करने लगे।

परमानन्दमें डूबकर नन्दपत्नी वात्सल्यवती यशोदाने व्रजरमणियोंसे परिवेष्टित होकर अपने पुत्रके अङ्गोंमें तेल, हलदी आदिका लेपन किया और मन्त्रपूत मङ्गल घटके द्वारा स्नान कराकर गोरोचना-तिलक आदिके द्वारा उसे सुशोभित किया। व्रजराजनन्दनके नीलकान्त मणि-विनिन्दित अङ्गोंकी शोभा मानो मैया यशोदाकी गोदीको आलोकित कर एवं सबके हृदयमें प्रवेश करके वात्सल्यप्रेम-सिन्धुको उच्छ्वसित करने लगी। यथा-समय ब्राह्मणगण मन्त्र-पाठ आदि करते हुए बालक कृष्णके अङ्गोंपर कुशके द्वारा शान्ति कलसका जल छिड़कने लगे। उस समय चारों ओर शङ्ख और मृदङ्ग आदि वाद्योंकी ध्वनिसे मङ्गलनाद होने लगा। इस प्रकार व्रजभूमि आनन्दसमुद्रमें डूब गयी।

इधर बालगोपाल भी माँ यशोदाकी स्निग्ध शान्त वात्सल्यप्रेमपूर्ण गोदीमें शयन करते हुए नेत्र मूँदने लगे। माँ यशोदाने अपने पुत्रको नींदके आवेशमें देखकर बैलगाड़ीके नीचे पालनेमें उसे शयन करा

दिया। उसके पश्चात् वे औत्थानिक पर्वमें सम्मिलित समस्त ब्रजवासियोंके यथायोग्य भोजन और सम्मान आदिकी व्यवस्थामें अत्यन्त व्यस्त हो गयीं।

श्रीजीव गोस्वामिपादने अपनी लघु-वैष्णव-तोषणी टीका एवं गोपालचम्पूमें वर्णन किया है—प्रलम्ब, केशी, धेनुक, तृणावर्त्त आदि अपने असुर मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करके कंसने, देवकीके आठवें गर्भके जन्मके पश्चात् ब्रज-मण्डलमें जन्मे बालकोंका विनाश करना आरम्भ कर दिया। पूतना राक्षसीके द्वारा बहुत-से बालकोंका विनाश हुआ, किन्तु नन्दनन्दन या उनसे सम्बन्ध-युक्त किसी बालकका कभी कोई अनिष्ट नहीं हुआ। पूतना केवल कंस पक्षीय व्यक्तियोंके बालकोंका विनाश करती हुई नन्दालयमें आयी और नन्दनन्दनका अनिष्ट करते समय उसने स्वयं अपने ही प्राण खो दिये। उस दिनसे कंस एवं उसके अनुचरोंको यह विश्वास हो गया कि यह नन्दका पुत्र ही कंसके प्राणोंका हरण करनेवाला हरि है; अतएव कंस सर्वदा उनका अनिष्ट करनेकी चिन्तामें व्यस्त रहता था एवं समय-समयपर उन्हें मारनेके लिए अपने अनुचर असुरों एवं राक्षसोंको भेजता रहता था। नन्दनन्दनके प्राण हरण करना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था।

जिस दिन ब्रजमें वह महामहोत्सव मनाया जा रहा था, उस दिन कंस-प्रेरित शकटासुर आकाश मार्गसे आकर गोकुलमें प्रविष्ट हुआ एवं नन्दालयमें आकर शकटके नीचे शयन किये हुए नन्दनन्दनको देखकर मन-ही-मन चिन्ता करने लगा—यह तो वही पूतनाका नाशकारी बालक है। इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई इसका अनिष्ट नहीं कर सकता। पूतना छद्म-वेशमें इसके निकट आयी थी, किन्तु फिर भी वह इस बालकसे अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं कर सकी। अतएव इस स्वरूपमें या छद्म-वेशमें इस बालकके निकट न जाकर पूर्णतया अदृश्य रूपमें ही इसके निकट जाना उचित होगा तभी कार्य-सिद्धिकी सम्भावना भी है। यह सोचकर वह असुर अदृश्य रूपमें उस शकटमें आविष्ट हो गया, जिसके नीचे पलनेपर श्रीकृष्ण सो रहे थे।

उस असुरने अदृश्य रूपमें यह कार्य किया, इसलिए कोई भी कुछ जान नहीं सका, किन्तु श्रीकृष्ण माँ यशोदाके वात्सल्यप्रेममें निद्रित होनेपर भी असुरोंके लिए चिर-जाग्रत रहते हैं। वे असुरोंके हृदयमें भी अन्तर्यामी रूपमें अवस्थित हैं। किन्तु वह असुर यह समझ नहीं सका। इस प्रकार वह असुर जब शकटमें आविष्ट हुआ, तब उसने मन-ही-मन सोचा कि शकटको नीचे दबानेसे उसके नीचे पिसकर कृष्णके साथ और भी बहुत-से गोप बालक मर जायेंगे और उसके कार्यकी सिद्धि भी हो जायेगी। इसलिए उसने अपने शरीरका अत्यधिक भार शकटके ऊपर डाल दिया, जिससे उस शकटके पहिये धीरे-धीरे जमीनमें धँसते चले गये। उस असुरकी यह धारणा थी कि बिना शब्द किये धीरे-धीरे शकटके पहियोंके जमीनमें धँसनेसे उसके अत्यन्त भारी शरीर और शकटके भारसे बिना शब्दके ही पूतनाका प्राणहारी यह बालक मर जायेगा। किन्तु! उसकी बहिर्मुख कल्पना सत्य नहीं हो सकी। जब उस असुरने अपने अदृश्य शरीरका अत्यन्त भार शकटके ऊपर डाल दिया, तब व्रजराजनन्दन अपने निद्रासे वशीभूत नयनोंको खोलकर रोने लगे। किन्तु गोपबालकोंने श्रीकृष्णकी माधुरीसे मुग्ध होकर माता यशोदासे कुछ नहीं कहा एवं नन्दनन्दनका रोना बन्द करानेके लिए वे पालना हिलाने लगे।

नन्दपत्नी यशोदा उस समय अपने भवनमें उपस्थित गोप-गोपियोंको भोजन, वस्त्र, अलङ्कार आदि प्रदान करनेमें व्यस्त थीं। उस समय दीयतां, दीयतां, भुज्यतां, भुज्यतां शब्दसे एवं नन्दनन्दनके नामकी जय-ध्वनिके अतिरिक्त कोई अन्य ध्वनि सुनायी नहीं पड़ रही थी। इसलिए नन्दनन्दनके मधुर रोदनकी ध्वनि भी वहाँ सम्मिलित नर-नारियोंके कण्ठस्वरमें विलीन होकर यशोदाके कर्णगोचर नहीं हो सकी। रोदन करते हुए नन्दनन्दनके निरुपम सुकोमल बालकोचित क्षुद्र और उछलते चरणोंका अग्रभाग ही अति कोमल भावसे शकटमें स्पर्श हुआ। यद्यपि शकट उनके चरणोंकी अपेक्षा बहुत ऊँचाईपर अवस्थित था, फिर भी अदृश्य असुरके अत्यन्त भार एवं बल प्रयोगसे वह धीरे-धीरे नीचे आ गया था। श्रीकृष्णकी अचिन्त्य महाशक्तिके प्रभावसे कुछ भी असम्भव नहीं है, इसलिए शकटसे

नन्दनन्दनके चरणोंका स्पर्श होना भी कोई असम्भव नहीं है। नन्दनन्दनके सुकोमल चरणोंका स्पर्श होते ही तत्क्षणात् वह शकट उलटकर दूर जा गिरा एवं उसमें जितने भी दूध, दही आदिसे परिपूर्ण बर्तन थे, वे सब शकट उलटनेसे तीव्र शब्द करते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो गये।

ऊँचाईसे गिरनेके कारण उस शकटके चक्र, युगन्धर आदि छिन्न-भिन्न हो गये। यहाँ तक कि शकटके उलटकर गिरनेसे उसके ऊपर जो असुर था, वह भी नीचे गिरकर अदृश्य रूपमें ही मृत्युको प्राप्त हो गया। उस असुरका अदृश्य रूपसे आगमन एवं अदृश्य रूपसे मरण, किसीके भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इस प्रकार नन्दनन्दनने अपनी असुर मारण लीला सम्पादनकर अपने भक्तोंकी रक्षा की।

शकटके ऊपर अदृश्य रूपसे असुरकी अवस्थिति एवं नन्दनन्दनके चरणोंके अग्रभाग द्वारा निक्षिप्त होना आदिका श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि ग्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं है। किन्तु ब्रह्माण्डपुराणमें श्रीभगवान्के शतनाम-स्तोत्र वर्णन प्रसङ्गमें उनका 'शकटासुर-भञ्जन' नामका उल्लेख मिलता है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस शकटमें आविष्ट असुर ही ब्रह्माण्डपुराणमें शकटासुर नामसे जाना जाता है। नन्द महाराज आदि गोपगण और यशोदा माता आदि गोपियाँ समस्त कार्योंको छोड़कर शकटके नीचे जहाँ नन्दनन्दन शयन कर रहे थे, उस स्थानपर उपस्थित हुए। उन लोगोंने आकर देखा कि—नन्दनन्दन पलङ्गपर लेटा हुआ है एवं हाथ-पैरोंको उछालते हुए रो रहा है। किन्तु पलङ्गके ऊपर वह शकट नहीं है, वह कुछ दूरीपर छिन्न-भिन्न होकर पड़ा हुआ है एवं दूध-दही आदि भी बर्तन समेत बिखरा पड़ा है। यह अद्भुत घटना देखकर गोप-गोपियोंके हृदयमें भयका सञ्चार होने लगा, जिससे उनका सारा शरीर कम्पित होने लगा और पसीना छुटने लगा। वे मन-ही-मन शङ्का करने लगे कि हो सकता है कि पूतनाके समान यहाँ कोई असुर आया हो। वे सभी भय और विस्मयसे रूँधे हुए कण्ठसे कहने लगे—यह भारी शकट अपने-आप अचानक कैसे छिन्न-भिन्न हो गया? ॥ ४-८ ॥

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः।

रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतत् न संशयः ॥ ९ ॥

अन्वयः—बालकाः (यशोदाने पहलेसे ही अपने पुत्रके निकट चार-पाँच वर्षके बालकोंको उसकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था, वे सभी) अव्यवसितमतीन् (शकट गिरनेसे दैत्य आदिकी शङ्कासे व्याकुलचित्त) गोपान् (नन्द-उपानन्द आदि) [एवं] गोपीः (यशोदा आदिसे) ऊचुः (कहने लगे) एतत् (इस शकटको) रुदता (रोते हुए) अनेन (नन्दनन्दनने) पादेन (अपने चरणोंके द्वारा) क्षिप्तम् (उलट दिया) [इसमें] संशयः (कोई सन्देह) न (नहीं है) [क्योंकि हमने प्रत्यक्ष देखा है] ॥ ९ ॥

अनुवाद—सभी लोग संशयग्रस्त हो रहे थे—यह किसी दैत्यादिका कर्म है? या किसी ग्रह इत्यादिका उत्पात है? तब वहाँपर खेलते हुए बालकोंने गोप-गोपियोंसे कहा कि इस कृष्णने ही रोते-रोते अपने पैरकी ठोकरसे इस छकड़ेको पलट दिया है—इसमें सन्देहकी बात नहीं है ॥ ९ ॥

सारार्थदर्शिनी—अव्यवसिता—‘किं दैत्यादेः, किम्वा ग्रहादेः कर्मेदम्’ इत्यनिश्चिता मतिर्येषां तान् ॥ ९ ॥

भावानुवाद—‘अव्यवसितमतीन्’—यह क्या किसी दैत्य आदिका कार्य है? या किसी दुष्ट ग्रह आदिका कार्य है?—इस प्रकार अनिश्चयताके कारण संशय मतिवाले गोप-गोपियोंसे वहाँपर उपस्थित बालकोंने कहा—इस बालकने रोते-रोते अपने पैरोंको उछालते हुए इस शकटको पलट दिया, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ९ ॥

न ते श्रद्धधिरे गोपाः बालभाषितमित्युत।

अग्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥

अन्वयः—ते गोपाः (नन्द महाराज आदि गोपोंने) बालभाषितम् इति (अल्प बुद्धिवाले उन बालकोंकी बातोंपर) न श्रद्धधिरे (विश्वास नहीं किया) उत (क्योंकि) ते (वात्सल्यप्रेमवान गोपगण) तस्य

बालकस्य (उस बालकके) अप्रमेयः (समस्त तर्कोंसे अगोचर) बलं (मणि-मन्त्र महौषधिकी भाँति अचिन्त्य प्रभावको) न विदुः (वात्सल्यप्रेममें मुग्ध होनेके कारण नहीं जानते थे) ॥ १० ॥

अनुवाद—नन्दादि गोपगण वात्सल्यप्रेममें मुग्ध होनेके कारण बालकके अप्रमेय बल (अनन्तशक्ति) को नहीं जानते थे। इसलिए उन्होंने 'यह बालकोंका कहना है' ऐसा मानकर उन बालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं किया ॥ १० ॥

सारार्थदर्शिनी—न श्रद्धधिरे—न विश्वसन्ति स्म ॥ १० ॥

भावानुवाद—'न श्रद्धधिरे'—गोपोंको उन बालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं हुआ ॥ १० ॥

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता।

कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

अन्वयः—ग्रहशङ्किताः (बाल-ग्रहोंके कारण बालकके अनिष्टकी आशङ्कासे व्याकुल) यशोदा (व्रजराज महिषीने) रुदन्तं (रोते हुए) सुतं (अपने पुत्रको) आदाय (वक्षःस्थलमें धारण किया) [एवं] विप्रैः (वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे) सूक्तैः (माङ्गलिक वचनोंके द्वारा) कृतस्वस्त्ययनं (उसका रक्षा विधान करके) स्तनं (स्तन) अपाययत् (पिलाया) ॥ ११ ॥

अनुवाद—यशोदाजीको आशङ्का हुई कि बालकपर किसी ग्रह आदिने आक्रमण किया है। इसलिए उन्होंने अपने रोते हुए लालको गोदमें ले लिया। ब्राह्मणोंसे बालककी रक्षाके लिए माङ्गलिक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करवाकर स्वस्त्ययन कर्म (शान्ति पाठ) करवाया। इसके बाद वे अपने लाड़लेको स्तनपान कराने लगीं ॥ ११ ॥

सारार्थदर्शिनी—सूक्तै रक्षोघ्नमन्त्रैः, कृतं स्वस्त्ययनं यस्य तम् ॥ ११ ॥

भावानुवाद—'सूक्तैः कृत-स्वस्त्ययनं'—ब्राह्मणोंके द्वारा रक्षोघ्न मन्त्र पाठ कराकर श्रीयशोदा उस बाल गोपालको स्तन पान कराने लगी ॥ ११ ॥

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम्।

विप्रा हुत्वारच्याञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥

अन्वयः—बलिभिः (बलशाली) गोपैः (नन्द महाराजजीके सेवकोंने) सपरिच्छदं (चक्र, अक्ष, युगन्धर आदि सहित) पूर्ववत् (पहलेके समान) स्थापितं (उस शकटको यथास्थानपर स्थापित किया) विप्राः (पहलेसे ही नन्दालयमें औत्थानिक पर्वमें समागत वात्सल्यवान् ब्रह्माणोंने) हुत्वा (पहले हवनकर) [तदनन्तर] दध्यक्षतकुशाम्बुभिः (दधि-मिश्रित चावल और कुशके द्वारा जल छिड़ककर) [उस शकटका] अर्च्याञ्चक्रुः (अर्चन किया) ॥ १२ ॥

अनुवाद—अनन्तर बलवान् गोपोंने एक साथ मिलकर उस विशाल छकड़ेको उठाकर सीधा कर दिया और उसके ऊपर पहलेकी तरह सारी सामग्री भी रख दी। ब्राह्मणोंने ग्रह-शान्तिके लिए पहले हवन किया और बादमें दहीसे युक्त अक्षत एवं कुशसे युक्त जलके द्वारा छकड़ेकी पूजा की ॥ १२ ॥

सारार्थदर्शिनी—बलिभिः बलवद्भिः, गोपैः पूर्ववदेव शकटं स्थापितं—इति तस्य बृहत्वं व्यञ्जितम्। अर्च्याञ्चक्रुरिति; गोपजातीनां तदाश्रयप्रधानत्वात्, सञ्चितधनास्पदत्वेन लक्ष्म्या अधिष्ठानत्वाच्च ॥ १२ ॥

भावानुवाद—बलवान् गोपोंने शकटको पूर्ववत् स्थापित किया, इससे उस शकटकी विशालता ज्ञात होती है। ‘अर्च्याञ्चक्रुः’—ब्राह्मणोंने उस शकटकी पूजा की, क्योंकि वह गोपजातिका प्रधान आश्रय और सञ्चित धनके आस्पदके रूपमें लक्ष्मीजीका अधिष्ठान था ॥ १२ ॥

येऽसूयानृतदम्भेर्ष्या-हिंसामानविवर्जिताः ।

न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ।

जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।

हुत्वा चार्गिन द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—ये (जो परम वैष्णव ब्राह्मणगण) असूयानृतदम्भेषा-
हिंसामानविवर्जिताः (ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्या, दम्भ, हिंसा और मानशून्य हैं)
तेषां (ऐसे) सत्यशीलानां (सत्यनिष्ठ स्वभाववालोंके) कृता (दिये गये)
आशिषं (आशीर्वाद) विफला (निष्फल) न (नहीं हो सकते) इति
(ऐसा मानकर) समाहितः (परम श्रद्धावान) नन्दगोपः (गोपराज नन्दने)
बालकं (अपने पुत्रको) आदाय (लाकर) द्विजोत्तमैः (ऐसे वेदज्ञ
ब्राह्मणोंके द्वारा) सामग्र्यजुरुपाकृतैः (साम आदि वेदत्रयीमें उक्त मन्त्रोंके
द्वारा) [और] पवित्रौषधिभिः (कुश, सर्वौषधि, महौषधि आदिसे युक्त)
जलैः (जलसे) अभिषिच्य (अभिषेक कराकर) स्वस्त्ययनं वाचयित्वा
(माङ्गलिक कार्योंको सम्पन्न किया) [एवं] अग्निं हुत्वा च (अग्निमण्डल
स्थापितकर सुसंस्कृत अग्निमें माङ्गलिक होम कराकर) द्विजातिभ्यः
(उन ब्राह्मणोंको) महागुणं (सुस्वादिष्ट रस आदिसे युक्त) अन्नं (भोज्य
द्रव्य) प्रादात् (दान किये) ॥ १३-१५ ॥

अनुवाद—नन्दबाबा जानते थे कि ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे मेरे
बालककी कुशलता है। जो ब्राह्मण असत्य, असूया, दम्भ, ईर्ष्या,
हिंसा, अभिमान इत्यादि दोषोंसे रहित हैं, उन सत्यशील ब्राह्मणोंका
आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता। इस अभिप्रायसे नन्दरायजीने
अपने चित्तको स्थिरकर बालक कृष्णको गोदमें ले लिया और उत्तम
ब्राह्मणों द्वारा ऋक, साम एवं यजुः वेदादिके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित
एवं पवित्र औषधियोंसे युक्त जलसे अपने पुत्रका अभिषेक
करवाया। तदुपरान्त ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन पाठ करके हवन किया।
तत्पश्चात् नन्दगोपने ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट एवं सुस्वादु अन्नका भोजन
कराया ॥ १३-१५ ॥

सारार्थदर्शिनी—श्रीनन्दस्तु ब्राह्मणाशीर्भिरेव मे बालकः कुशलीति जानाति
स्मेत्याह—य इति। मानो गर्वः। तेषां तैः, कृताः आशिषो न विफलाः इति
विश्वस्येति शेषः। उपाकृतैः संस्कृतैः। पवित्रा, औषधयः सर्वौषधिमहौषध्यादयो यत्र,
तैर्जलैः करणैः, द्विजोत्तमैः कर्तृभिः, अभिषिच्य अभिषेकं कारयित्वा। हुत्वा
हावयित्वा। महागुणं अतिस्वादामोदयुक्तम् ॥ १३-१५ ॥

भावानुवाद—किन्तु श्रीनन्द महाराज जानते थे कि ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे ही मेरा बालक कुशलसे है, 'यः' आदिके द्वारा यही कह रहे हैं। 'मान' अर्थात् गर्व। जो असूया, झूठ बोलना, दम्भ, ईर्ष्या, हिंसा और अभिमान—इन सभी दोषोंसे रहित हैं, उनके दिये हुए आशीर्वाद कभी भी विफल नहीं हो सकते, ऐसा विश्वासकर नन्द महाराजने ब्राह्मणोंके द्वारा ऋक्, साम, यजुर्वेदमें उक्त मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित और पवित्र 'औषधयः' अर्थात् सर्वौषधि और महौषधि आदि मिश्रित जलसे अपने बालकका अभिषेक और हवन कराकर ब्राह्मणोंको अत्यन्त उत्तम भोजन कराया ॥ १३-१५ ॥

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रगुकममालिनीः।

आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥

अन्वयः—आत्मजाभ्युदयार्थाय (अपने पुत्रके कल्याण एवं आयु, आरोग्य, वैभव आदिके लिए) [नन्द महाराजने] सर्वगुणोपेताः (प्रचुर परिमाणमें दूध देनेवाली तथा अनेक महागुणोंसे युक्त) वासःस्रग-रुक्म-मालिनीः (स्वर्णसूत्र-रञ्जित वस्त्र और सोनेकी माला आदिसे सुशोभित) गावः (गायें) प्रादात् (ब्राह्मणोंको दानमें दीं) ते च (ब्राह्मणगण भी) अनु (नन्द महाराजके द्वारा दिये जा रहे दानको ग्रहण करनेके पश्चात्) अयुञ्जत (शुभ आशीर्वाद प्रदान करने लगे) ॥ १६ ॥

अनुवाद—तदनन्तर श्रीनन्दजीने अपने पुत्रके कल्याणकी अभिवृद्धिके लिए पयस्विनी एवं सर्वगुणसम्पन्ना बहुत-सी गौएँ प्रदान कीं। वे सभी गौएँ वस्त्र, पुष्प, माल्य एवं सुवर्ण मालाओंसे विभूषित थीं। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे और दानको ग्रहण करने लगे ॥ १६ ॥

सारार्थदर्शिनी—गावः गाः। गुणाः बहुपयस्वीत्यादयः। ते विप्रा, अनु अनन्तरम्, अयुञ्जत स्वीचक्रुः ॥ १६ ॥

भावानुवाद—'गावः'—अपने बालकके कल्याणके लिए नन्द महाराजने अनेक प्रकारके गुणोंसे युक्त एवं प्रचुर परिमाणमें दुध

देनेवाली गायें ब्राह्मणोंको दानमें दीं। ब्राह्मणगण उन्हें ग्रहण करते हुए आशीर्वाद देने लगे ॥ १६ ॥

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः।

ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—मन्त्रविदः (वेदार्थ तत्त्वज्ञ) युक्ता (भगवद्भक्त) विप्राः (ब्राह्मणगण) तैः (वे) याः आशिषः (जो आशीर्वाद) प्रोक्ताः (प्रदान करते हैं) ताः कदाचिदपि (वे अनेक कालमें भी) स्फुटं (निश्चित रूपसे) निष्फलाः (निरर्थक) न भविष्यन्ति (नहीं होते) ॥ १७ ॥

अनुवाद—मन्त्रज्ञ ब्राह्मण, योगी जो आशीर्वचन देते हैं, वे कभी भी निष्फल नहीं होते, यह सुनिश्चित है ॥ १७ ॥

सारार्थदर्शिनी—ये विप्रा, युक्ताः योगिनः, तैर्या आशिषः प्रोक्ताः, तास्तथा बभूवुरिति शेषः ॥ १७ ॥

भावानुवाद—‘विप्राः’—ब्राह्मणगण तथा ‘युक्ता’ अर्थात् योगी द्वारा दिए गये आशीर्वाद अवश्य ही फलदायी होते हैं, व्यर्थ नहीं होते ॥ १७ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—अति उच्च, विशालकाय एवं भारसे युक्त उस महाशकटके नीचे पलना लगाकर उसमें नन्दनन्दनको शयन करानेपर किसी भी प्रकारकी विपत्तिकी सम्भावना हो सकती है, नन्द, यशोदा एवं अन्य ब्रजवासी गोप-गोपियोंने ऐसी धारणा भी नहीं की थी। बहुत-से बलवान गोप मिलकर भी उस गाड़ीको हिला नहीं सकते थे। अतएव आँधी-तूफान आनेपर भी इस शकटके नीचे बालक सुरक्षित रह सकता है, सबकी यही धारणा थी। इसी धारणाके कारण यशोदा मैया अपने आँगनमें सबके समक्ष उस महाशकटके नीचे प्रतिदिन अपने पुत्रको शयन कराती थी। आज नन्दनन्दनके औत्थानिक पर्वके उपलक्ष्यमें नन्दालयमें समस्त ब्रजवासियोंका समागम हुआ है। उनके यथायोग्य सम्मानके लिए नन्द-यशोदा आदि सभी व्यस्त हैं। नन्द-नन्दन उन सबके दृष्टिगोचर स्थानपर निश्चिन्त रूपसे

विराजमान थे, इसलिए वे सभी अपने अपने कार्योंमें व्यस्त थे। किन्तु शकटका असम्भावित परिणाम देखकर वे सभी व्याकुल और चिन्तित हो गये। वे उस छिन्न-भिन्न शकटको देखकर विविध प्रकारसे जल्पना-कल्पना करने लगे।

कुछ गोप कहने लगे—हो सकता है कि हमारे नन्दनन्दनके प्राण हरण करनेकी इच्छासे पूतनाकी भ्रांति किसी राक्षसीने आकर शकटके नीचे शकटके साथ रस्सीसे बँधे पलनेपर नन्दनन्दनको सोते हुए देखकर शकटके साथ ही उसे लेकर आकाशमें उड़कर जानेकी चेष्टा की होगी, परन्तु शकटको खींचते ही उससे बँधी पलनेकी रस्सी टूट गयी, जिससे पलना भूमिपर गिर गया होगा। इससे क्रुद्ध होकर उसने आकाशसे ही शकटको भी फेंक दिया होगा। अवश्य ही उसका अभिप्राय शकटके आघातसे बालकके प्राणनाश करनेका था, किन्तु भगवान् नारायणकी अद्भुत कृपासे आज बालकके जीवनकी रक्षा हुई है।

फिर कुछ गोप कहने लगे—अवश्य ही किसी विशालकाय दैत्यने आकर शकटके नीचेसे नन्दनन्दनको हरण करनेकी चेष्टा की है। किन्तु उसका विशाल शरीर शकटके नीचे प्रवेश नहीं कर पाया और उसने शकटको दूर फेंक दिया तथा शकट गिरनेका महाशब्द सुनकर हमारे यहाँ आनेपर वह भाग गया।

समागत गोपगण इस प्रकार विविध प्रकारकी जल्पना-कल्पना करके भी किसी स्थिर सिद्धान्तपर नहीं पहुँच सके। नन्दनन्दनके अमङ्गलकी आशङ्कासे उनका हृदय व्याकुल हो उठा। वे कहने लगे—अवश्य ही कोई राक्षस अथवा असुर आया था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो भी हो, वह बालकका वध नहीं कर सका, परन्तु पुनः बालकका कोई भी अमङ्गल हो सकता है। हाय! हाय! हम कैसे इस बालकके जीवनकी रक्षा करें। हे नारायण! तुम्हारी कृपाके बिना इस बालकके जीवनकी किसी प्रकारसे भी रक्षा नहीं हो सकती। हम इसे तुम्हारे चरणोंमें समर्पित करते हैं, तुम हमें इस बालकके जीवनकी भिक्षा दो।

नन्दनन्दनको शकटके नीचे पलनेपर शयन कराकर अन्य कार्योंको करनेके लिए जाते समय यशोदा मैयाने जिन बालकोंको नन्दनन्दनकी पहरेदारीके लिए वहाँ रखा था, उन्होंने नन्दनन्दनका रोना, हाथ-पैर उछालना और उनके चरणोंके स्पर्शसे शकटका छिन्न-भिन्न होना आदि सभी घटनाओंको अपनी आँखोंसे देखा था, किन्तु वे अपने बालसुलभ स्वभावके कारण इस घटनाकी अद्भुतता या भयजनक बातोंको समझ नहीं सके। वे नन्द महाराज आदि गोपोंकी जल्पना-कल्पना सुनकर कहने लगे—अहो! यहाँ राक्षस आदि कोई नहीं आया था। इस बालकके उछालते हुए चरणोंके स्पर्शसे यह शकट उलटकर दूर जा गिरा। यह बात मिथ्या नहीं है। हमने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है। इस बालकने ही शकटको उलटा है। वह देखो, बालक अभी भी जोरसे रो रहा है, सम्भव है उसके पैरोंमें चोट लगी हो।

उन बालकोंकी बातें सुनकर नन्द महाराज आदि गोपगण जोरसे हँसने लगे। क्योंकि उनमेंसे कोई भी श्रीकृष्णकी अप्रमेय शक्तिके विषयमें नहीं जानता था।

नन्दनन्दन अब भी हाथ-पैर उछालते हुए रो रहा है, यह देखकर वात्सल्य-पयोनिधि माँ यशोदा स्थिर नहीं रह सकीं। वह सोचने लगीं कि निश्चित ही मेरे बालकके ऊपर किसी बाल-ग्रह राक्षसकी दृष्टि पड़ी है। नहीं तो यह बालक इस प्रकार क्यों रो रहा है। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक बालकको उठाकर अपने वक्षःस्थलमें धारण कर लिया एवं ब्राह्मणोंके निकट जाकर रोती हुई कहने लगी—हे ब्राह्मणगण! आपलोग इस बालकको जीवन दान करें। इस बालकपर निश्चित ही किसी बालग्रहकी दृष्टि पड़ी है, नहीं तो यह बालक कभी इस प्रकार रुदन नहीं करता है, मैं इसका रोना देखकर धैर्य धारण नहीं कर पा रही हूँ।

नन्दनन्दन यशोदा मैयाकी गोदीमें स्तनपान करते हुए आनन्द सागरमें डूब गये एवं हाथ-पैर चलाकर क्रीड़ा एवं अव्यक्त मधुर ध्वनि करने लगे। यह देखकर गोप-गोपियाँ आनन्दमें डूब गये। उनका

समस्त दुःख शोक दूर हो गया एवं स्थिर होकर वे अपने अपने कार्योंमें मनोनिवेश करने लगे।

गोपराज नन्दने तब शान्त होकर उपानन्द आदि गोपोंके साथ परामर्शकर स्थिर किया कि शकटको यथास्थान स्थापनकर ग्रहदोष निवारणके लिए शान्ति-स्वस्त्ययन आदि करवाना अति आवश्यक है। समस्त ब्राह्मणगण यहाँ उपस्थित हैं, अतएव अविलम्ब ही यह कार्य सम्पन्न होना चाहिये। इससे बालक एवं सम्पूर्ण व्रजका मङ्गल होगा।

गोपराजने विलम्ब न करके बलिष्ठ गोपोंको आदेश दिया। गोपराजका आदेश पाकर उन बलिष्ठ गोपोंने अत्यन्त भारी उस गाड़ी एवं उसके चक्रादिको यथास्थान स्थापित किया। फिर जल लाकर उस शकटको धोया गया। शकटके आसपास गोबर लेपकर होमकुण्डका निर्माण एवं मङ्गलघटादि स्थापित करके ब्राह्मणोंने ग्रहहोम करना प्रारम्भ कर दिया। होमके पश्चात् दही-मिश्रित अक्षत और कुशजल छिड़ककर उस शकटकी पूजा की गयी।

जो स्वप्नमें भी कभी किसीके गुणोंमें दोषारोपण नहीं करते, जो मिथ्या भाषण और मिथ्या व्यवहारसे सर्वदा दूर रहते हैं, जिनमें अहंकारका लेशमात्र भी नहीं है, क्षमा जिनके अङ्गोंका भूषण है, हिंसाका नाम जिनके स्मृति पथपर नहीं है, अभिमानकी गन्धसे भी जो विरक्तिका अनुभव करते हैं, सर्वदा सत्यनिष्ठ और सत्य व्यवहार जिनका स्वाभाविक धर्म है—ऐसे धर्मनिष्ठ, मोक्ष-परायण और परम वैष्णव-ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं हो सकता।

वे कृपापूर्वक जिन्हें आशीर्वाद प्रदान करते हैं, सर्वशक्तिमान भगवान् उनके प्रतिनिधि होकर उन आशीर्वादोंको परिपूर्ण करते हैं। इस प्रकार शास्त्र सिद्धान्तोंमें सुदृढ़ विश्वास-परायण नन्दादि गोपगण श्रीकृष्णको यशोदाजीकी गोदीसे लेकर ब्राह्मणोंके निकट आये और उनके कल्याणके लिए उनसे आशीर्वादकी भिक्षा करने लगे।

नन्दनन्दनमें परम स्नेह-परायण ब्राह्मणोंने मङ्गल-घट स्थापन किया और उसमें सर्वौषधि और महौषधि डालकर जलपूर्ण किया। उसके पश्चात् ऋक्, साम और यजुर्वेदोक्त शान्ति मन्त्र आदि पाठकर

कुशके द्वारा उस जलसे नन्दनन्दनका अभिषेक किया। उसके पश्चात् उन्होंने सुसंस्कृत हवनकुण्डमें यथाविधि अग्नि स्थापनकर नन्दनन्दनके कल्याणके लिए आहुति प्रदान की एवं घृताक्त हवनकी भस्म द्वारा नन्दनन्दनके ललाट, वक्षः आदि स्थानोंमें तिलककी रचना की। उसके पश्चात् ब्राह्मणगण नन्दनन्दनके मस्तकपर धान, दुर्वादि अर्पणकर, यज्ञोपवीत-युक्त दाहिने हाथसे 'चिरं जीव' 'जगताम् आनन्दं वर्द्धय' 'चिरारोग्यवान् भव' आदि कहकर आशीर्वाद करने लगे।

नन्द महाराजने इस प्रकार ब्राह्मणोंके द्वारा अपने पुत्रके कल्याणके लिए स्वस्त्ययन और होम आदि कराकर एवं उनके शुभाशीर्वादसे अपने पुत्रको अभिनन्दित कर परमानन्द लाभ किया। अपने पुत्रके समस्त प्रकारके उपद्रव आदिकी शान्तिके लिए तथा अतुलनीय वैभव, आयुः और आरोग्य लाभकी कामनासे नन्द महाराजने समागत ब्राह्मणोंको राजाकी भाँति विविध उपकरण सहित भोज्य पदार्थ एवं असंख्य गायोंको स्वर्णविभूषितकर दान किया।

ब्राह्मणगण गोपराजका परम श्रद्धाका दान ग्रहणकर मुक्त कण्ठसे आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर लौटे ॥ ९-१७ ॥

एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती।

गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

अन्वयः—एकदा (नन्दनन्दनकी एक वर्षकी उमर होनेपर) सती (पुत्र लालन-पालन-परायणा यशोदा) आरोहं (गोदमें) आरूढं सुतं (अपने पुत्रको गोदमें लेकर) लालयन्ती (मुख-चुम्बन, स्तनदान, कदाचित् लीलापूर्वक श्रीकृष्णके हाथोंको उठाना आदि-द्वारा लालन कर रही थी) [ऐसे समयमें] शिशोः (अपनी गोदमें स्थित पुत्रको) गिरिकूटवत् (पर्वत शिखरकी भाँति) गरिमाणं (अतिशय भारयुक्त अनुभवकर) वोढुं न सेहे (धारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकी) ॥ १८ ॥

अनुवाद—जब श्रीकृष्णकी उम्र एक वर्षकी थी अर्थात् जन्मके एक वर्ष बाद किसी एक दिन यशोदा अपने लाड़ले लालको गोदमें लेकर दुलार कर रही थीं। कभी मुख-चुम्बन कर रही थीं, कभी

हिला-डुला रही थीं और कभी ऊपरकी ओर उछाल रही थीं। इतनेमें ही बालक पत्थरकी चड़ानके समान भारी हो गया। माँ यशोदा उसके भारको सहन करनेमें असमर्थ हो गयीं ॥ १८ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘राजत्यखिलसम्पत्तिपतौ मय्यपि, सञ्चितैः किमेभिर्वस्तुभिः?’ इति स्वमनोऽभिनदीश्वरः।

एकदा—एकाब्दवयसि वृत्ते सति; ‘एक हायन आसीनो हियमाणो विहायसा’ (श्रीमद्भा० १०/२६/६) इत्यग्रेतनोक्तेः। आरोहं उत्सङ्गं, आरूढं तं, लालयन्ती भुजाभ्यामुत्तोलनान्दोलनादिभिरुल्लासयन्ती। गिरिकूटवत् गिरिशृङ्गस्येव, शिशोर्गिरिमाणं वोढुं न सेहे। आगमिष्यन्तं तृणावर्तं समातृकमेवामुं हरिष्यन्तमालक्ष्य मातुर्यशोदायाः क्लेशो माभूदित्यैश्वर्यैव शक्त्या तदुत्ताराय भारः कल्पयामासेति ज्ञेयम्। ‘किञ्चिदप्युपरि तोलयाम्ब, मां व्योम्नि खेलितुमनायतोऽस्म्यहम्’—इत्थममुष्य किल सत्यकामतैवानयतृण-विवर्तनासुरम् ॥ १८ ॥

भावानुवाद—“समस्त सम्पत्तियोंके अधिपति मेरे विराजमान रहते इन सभी सञ्चित वस्तुओंका क्या प्रयोजन है”—ऐसा मानकर ईश्वर (सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्णने) शकट-भञ्जन किया।

‘एकदा’—बालक जब एक वर्षका हो गया, उस समय किसी एक दिन। जैसे आगे (श्रीमद्भा० १०/२६/६) में कहा गया है—“एक वर्षकी उमरमें आकाशचारी तृणावर्तने बालकका अपहरण किया था।” ‘आरोहमारूढं लालयन्ती’—सती यशोदा उसको गोदीमें लेकर मुखचुम्बन, स्तनदान, उत्तोलन, आन्दोलन आदिके द्वारा लालन-पालन कर रही थी। ‘गिरिकूटवत्’—अचानक बालक गिरिशिखरकी भाँति अति भारी अनुभव होने से वे उसके बोझको उठानेमें समर्थ नहीं हो सकी। उस समय आगतप्राय तृणावर्त माताके साथ बालकका हरण करेगा, ऐसा जानकर माता यशोदाको जिससे कष्ट न हो, इसलिए श्रीभगवान्की ऐश्वर्यशक्तिने ही उन्हें माताकी गोदीसे उतारनेके लिए भारकी सृष्टि कर दी, ऐसा जानना होगा। “मातः! मुझे कुछ और ऊपरमें उठा लो, मुझे आकाशमें खेलनेकी इच्छा हो रही है”—श्रीहरिका यह अभिप्राय समझकर सत्यकामता शक्ति ही आँधी-तूफानके रूपमें तृणावर्त असुरको वहाँ लायी थी ॥ १८ ॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।

महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥

अन्वयः—भारपीडिता (पुत्रका इस प्रकार बहुत भार देखकर) [तथा उससे] विस्मिता (परम विस्मयसे युक्त होकर) गोपी (यशोदा) तं (अपनी गोदमें स्थित बालकको) भूमौ (निकटकी जमीनमें) निधाय (रखकर) जगतां महापुरुषं (श्रीमन्नारायणके) आदध्यौ (शरणमें गयी) कर्मसु (पुत्रके कल्याणके लिए स्वस्त्ययन आदि कर्मोंकी व्यवस्था करनेमें) आस (व्यस्त हो गयी) ॥ १९ ॥

अनुवाद—यशोदादेवी बालकके भारसे पीड़ित होनेपर अत्यन्त विस्मित हो गयीं। वे बालक कृष्णको भूमिपर रखकर महापुरुष नारायणका स्मरण करने लगीं। इसके बाद पुत्र-स्वस्त्ययनके लिए ब्राह्मणोंको बुलवाने अथवा पुत्रके लिए घरके कार्योंमें व्यस्त हो गयीं। अथवा श्रीयशोदादेवी बालकृष्णको भूमिपर रखकर (भारका वास्तविक कारण न समझकर किसी उत्पातकी आशङ्कासे अर्थात् किसी बालग्रहके आवेशसे ही मेरा पुत्र भारी हो गया है, ऐसी आशङ्कासे) भगवान् नारायणसे प्रार्थना करने लगीं—तुमने यह बालक दिया है, तुम ही इसकी रक्षा करो। इस प्रकार वे श्रीकृष्णकी उदरगता पृथ्वीके भारसे पीड़ित और इससे आश्चर्यान्वित होकर घरके कार्योंमें नियुक्त हो गयीं। परन्तु प्रेमोन्मादके कारण यह नहीं जान सकीं कि कृष्णमें ही सारा जगत् निवास करता है ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शनी—भूमाविति। सभ्रमेण विस्मितेति—‘मच्छिशोरयमाकस्मिको भारः कुतस्त्यो न जाने, कस्यचिद्बालग्रहस्यावेशजनितो वा’ इति शङ्कया। जगतां महापुरुषं श्रीनारायणं आदध्यौ, वैकुण्ठदिशमूर्ध्वमालोक्य ‘भगवंस्त्वयैव दत्तोऽयं सुतस्त्वयैव पालनीय’ इति ध्यानेनोवाचेत्यर्थः। ततश्च व्यग्रा तत्स्वस्त्ययनाद्यर्थं, कर्मसु विप्राह्वानादिषु, आस बभूव ॥ १९ ॥

भावानुवाद—माता यशोदाने उस अत्यन्त भारसे पीड़ित होकर “मेरा बालक अचानक इतना भारी कैसे हो गया? कहीं बालग्रहके आवेशसे तो यह भारी नहीं हो गया”—ऐसी आशङ्कासे विस्मित होकर उसे जमीनपर रख दिया तथा जगत्के महापुरुष श्रीनारायणका ध्यान

करने लगी अर्थात् वैकुण्ठकी ओर लक्ष्यकर ऊपरकी ओर देखकर “हे भगवन्! तुमने ही इस बालकको दिया है, तुम ही इसका पालन करो”—इत्यादि कहते हुए ध्यान करने लगी। उसके पश्चात् उनका स्वस्त्ययन आदि कराने के लिए व्यग्र होकर ब्राह्मणोंको बुलाने आदि कार्योंमें प्रवृत्त हो गयीं ॥ १९ ॥

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः।

चक्रवातस्वरूपेण

जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥

अन्वयः—प्रणोदितः (नन्दनन्दनके प्राण हरण करनेके लिए कंसके द्वारा प्रेरित) कंसभृत्यः (कंसका अनुचर) तृणावर्तः नाम्ना (तृणावर्त नामधारी) दैत्यः (असुर) [आया और] चक्रवातस्वरूपेण (घूमनेवाले आँधी तूफानके रूपमें) आसीनं (यशोदाके निकट-स्थित जमीनमें सुखपूर्वक उपविष्ट) अर्भकम् (नन्दनन्दनका) जहार (हरण कर लिया) ॥ २० ॥

अनुवाद—उसी समय कंसका अनुचर तृणावर्त नामका दैत्य अपने स्वामी कंससे प्रेरित होकर नन्द-गोष्ठमें घूर्णीवात (बवण्डर) के रूपमें आया और वहाँ बैठे हुए बालक श्रीकृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया ॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—तावदेव दैत्यो जहारेति तद्धरणकाले ऐश्वर्यैव शक्त्या भारलाघवं कृतमिति ज्ञेयं ॥ २० ॥

भावानुवाद—उस समय कंसके भृत्य तृणावर्त नामक दैत्यने कंसके द्वारा प्रेरित होकर तेज आँधीके रूपमें आकर धूलके द्वारा समस्त गोकुलको आच्छादितकर बालकका हरण कर लिया—इससे उसके हरणके समय श्रीभगवान्की ऐश्वर्यशक्तिने ही कृष्णका भार हल्का कर दिया था—यही समझना होगा ॥ २० ॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णश्चक्षुषि रेणुभिः।

ईरयन् सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥

अन्वयः—[उस दैत्यने] सर्वं गोकुलं (सम्पूर्ण गोकुलको) रेणुभिः (धूलसे) आवृण्वन् (ढककर) चक्षूंषि (सबके नेत्रोंको) मुष्णन् (अवरोध करते हुए) सुमहाघोर शब्देन (सैकड़ों वज्रपातोंसे भी अधिक कठोर शब्दसे) प्रदिशः (विदिशाओंको) दिशः (पूर्वादि दिशाओंको) ईरयन् (गूँजा दिया) ॥ २०-२१ ॥

अनुवाद—उस दैत्यने व्रजकी धूलिसे सारे गोकुलको ढक दिया जिससे लोगोंकी आँखोंमें धूल भर जानेसे वे कुछ भी देखनेमें समर्थ नहीं हुए। उसके भयङ्कर शब्दसे दशों दिशाएँ गूँज उठीं ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—दिशो विदिशश्च, ईरयन् प्रतिध्वनयन् ॥ २१ ॥

भावानुवाद—उस दैत्यने अति भीषण शब्दसे दिशा-विदिशाओंको प्रतिध्वनित कर दिया ॥ २१ ॥

मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम्।
सुतं यशोदा नापश्यत् तस्मिन् न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥

अन्वयः—गोष्ठं (गोकुल) मुहूर्त्तं (मुहूर्त्तमें ही) रजसा (धूलके द्वारा) [तथा] तमसा (अन्धकारके द्वारा) आवृतं (समाच्छन्न) अभवत् (हो गया) यशोदा यतः (यशोदा माताने जिस स्थानमें) सुतं (अपने पुत्रको) न्यस्तवती (स्थापन किया था) तस्मिन् (उस स्थानमें) [उसे] न अपश्यत् (देख नहीं पायी) ॥ २२ ॥

अनुवाद—सम्पूर्ण व्रजमण्डल दो घड़ीतक धूलि और अन्धकारसे ढका रह गया। यशोदाजीने अपने पुत्रको जहाँ बिठाया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे ॥ २२ ॥

सारार्थदर्शिनी—यतो यत्र, न्यस्तवती, तस्मिन् स्थले ॥ २२ ॥

भावानुवाद—माता यशोदा पुत्रको जहाँ रखी थी, उस स्थानमें फिर उसको देख नहीं पायी ॥ २२ ॥

नापश्यत् कश्चनात्मानं परञ्चापि विमोहितः ।

तृणावर्त्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥

अन्वयः—कश्चन् (गोकुलवासियोंमें कोई भी) तृणावर्त्त-निसृष्टाभिः (तृणावर्त्तके द्वारा निक्षिप्त) शर्कराभिः (छोटे-छोटे प्रस्तरखण्डोंके द्वारा) उपद्रुतः (उत्पीड़ित होकर) विमोहितः (कुछ भी अनुसन्धान करनेमें असमर्थ होकर) आत्मानं (अपने देहको) परञ्चापि (और दूसरोंको भी) न अपश्यत् (नहीं देख सके) ॥ २३ ॥

अनुवाद—उस समय तृणावर्त्तने बवण्डरूपसे सर्वत्र इतनी बालू उड़ाई कि सभी लोग उद्विग्न और बेसुध हो गये। उन्हें अपना-पराया कुछ भी सूझ नहीं पा रहा था ॥ २३ ॥

इति खरपवनचक्रपांशुवर्षे,
सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोच-
द्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥

अन्वयः—इति (इस प्रकार) खरपवनचक्रपांशुवर्षे (प्रचण्ड पवनके वेगसे धूल वर्षणादि प्रारम्भ होनेपर) अबला (कुछ भी प्रतीकार करनेमें असमर्थ) माता (यशोदा) सुतपदवीं (पुत्रकी गतिविधि) अविलक्ष्य (न जानकर) मृतवत्सका यथा गौः (मृत बछड़ेवाली गाय जैसी) भुवि (धरतीपर) पतिता (गिरती हुई) अनुस्मरन्ती (निरन्तर पुत्रका स्मरण करती हुई) अतिकरुणः (वज्र विदारक करुण स्वरसे) अशोचत् (विलाप करने लगी) ॥ २४ ॥

अनुवाद—उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें यशोदाजीको अपने पुत्रका चिह्नमात्र भी दिखायी नहीं दे रहा था। जब बालकको ढूँढ़नेसे कहीं भी नहीं मिला तो वे पृथिवीपर इस प्रकार गिर पड़ीं जिस प्रकार बछड़ेके मरनेपर गायकी दशा हो जाती है। वह अपने पुत्रको इस प्रकार पुकारते हुए विलाप करने लगीं, जिसे सुनकर काष्ठ-पाषाण और वज्रादि भी विदीर्ण हो जायँ ॥ २४ ॥

सारार्थदर्शिनी—खरपवनचक्रात् पांशुवर्षे सति, अविलक्ष्य अदृष्ट्वा ॥ २४ ॥

भावानुवाद—प्रचण्ड वेगसे घूमनेवाली आँधीसे धूलकी वर्षा होने लगी। उस समय माता यशोदा पुत्रको न देखकर मृतवत्सा गाय की भाँति जमीनमें गिरकर अति करुण भावसे विलाप करने लगी ॥ २४ ॥

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो,
भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं,
पवन उपारत-पांशुवर्षवेगे ॥ २५ ॥

अन्वयः—पवने (प्रचण्ड पवनका वेग) [तथा] उपारत-पांशुवर्षवेगे (धूलवर्षणका वेग समाप्त होनेपर) गोप्यः (पड़ोसी गोपियाँ) तत्र (यशोदागृहमें) रुदितं (रोनेकी आवाज) अनुनिशम्य (सुनकर) [दौड़ती हुई आयी] नन्दसूनुं (नन्दनन्दनको) अनुपलभ्य (न देखकर) भृशम् (अत्यन्त) अनुतप्तधियः (दुःखित चित्त होकर) अश्रुपूर्णमुख्यः (अश्रुपूर्ण मुखसे) रुरुदुः (रोने लगी) ॥ २५ ॥

अनुवाद—बवण्डरके शान्त होनेपर जब धूलिकी वर्षाका वेग कम हो गया, तब गोपियाँ यशोदाके रोनेकी आवाज सुनकर वहाँ दौड़ी आयीं। जब उन्होंने भी श्रीकृष्णको वहाँ नहीं देखा, तब उनका भी चित्त अतिशय सन्तप्त हो गया। उनके नेत्रोंसे भी आँसुओंकी धारा बह चली तथा वे भी फूट-फूट कर रोने लगीं ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—उपारतः पांशुवर्षस्य वेगो यस्मिन्, तथाभुते पवने सति। तत्र ब्रजैश्वर्या रुदितं निशम्य, अनु पुरान्तरादपि, गोप्य आगत्य तत्र रुरुदुः ॥ २५ ॥

भावानुवाद—प्रखर वायुवेगके द्वारा उड़ती हुई धूलकी वर्षा शान्त होनेपर यशोदाको रोती हुई सुनकर पड़ोसी गोपियाँ भी वहाँपर दौड़कर आयीं एवं श्रीकृष्णको वहाँ न देखकर वे भी रोने लगीं ॥ २५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने केवल तीन मासकी आयुमें शकट-भञ्जन लीला प्रकट की। परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवजी

नन्दनन्दनकी इस बाललीलाके आवेशमें रहकर ही परम आश्चर्यजनक असुर विनाशकारी लीलाका वर्णन करते-करते इस लीलामें इतने आविष्ट हो गये कि श्रीनन्दनन्दनकी तीन मासकी आयुके बाद नामकरण, रिङ्गन (घुटनोंके बल चलना) आदि लीलाओंका वर्णन करना भूल गये तथा पुनः अन्य एक असुर-मारण लीलाका वर्णन करने लगे। श्रीनन्दनन्दनने यह लीला एक वर्षकी अवस्थामें प्रकाशित की थी। यह श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धके २६वें अध्यायमें 'एक हायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा' श्लोकमें स्पष्ट देखा जाता है। परन्तु श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीनन्दनन्दनकी परम मधुरलीलाओंका वर्णन करते हुए भावावेशके कारण बहुत-से स्थानोंपर लीलाओंके क्रमकी रक्षा नहीं कर सके।

माता यशोदाजी एक दिन निर्जनमें अपने पुत्रको गोदमें लेकर निनिमेष नेत्रोंसे उसके समस्त अङ्गोंकी माधुरीका दर्शन कर रही थीं। वे पुत्रके मुखमें स्तन देकर उसके मस्तकके बालोंको सँभालती हुई उसके गालोंपर चुम्बन कर रही थीं। यशोदानन्दन एक वर्षके हो गये हैं, इसलिए अब वे चल सकते हैं, कुछ दौड़ सकते हैं एवं बालकोचित बहुत-सी लीलाएँ भी कर सकते हैं। इसलिए स्तनपान करते-करते अपनी जननी यशोदाजीके साथ बाल्यभावसे तोतली भाषामें कितनी बातें कर रहे हैं। यशोदाजी भी करोड़ों प्राणोंके प्राण नन्दनन्दनके अर्द्धस्फुट वचनोंको सुनकर आनन्दसमुद्रमें डूब रही हैं। अपने मन्दिर-प्राङ्गणमें एक रत्नवेदीपर बैठकर वे अपने पुत्रको लेकर एक उच्छ्वसित आनन्द-समुद्रमें डूब रही हैं। ऐसे समयमें नन्दनन्दनको देखकर पशु पक्षीतक आनन्दमें स्तब्ध हो गये थे।

प्राङ्गणमें कुछ गौएँ कठपुतलियोंकी भाँति खड़ी होकर इस परमानन्द लहरीको देख रही थीं, उस समय उनके स्तनोंसे क्षरित दुग्ध-धारा आँगनको सिक्त कर रही थी। बछड़े भी मातृस्तनका परित्यागकर नन्दनन्दनकी ओर देख रहे थे। नन्दनन्दनने भी उन्हें देखकर अपनी जननीसे कहा—मैया! मैं गायोंके पास जाऊँगा। यशोदाजी उनके मुखका बारम्बार चुम्बनकर कहने लगीं—कन्हैया! मेरे लाड़ले! तुम गोपराजके पुत्र हो, तुम्हारे पिताजीकी नौ लाख गायें हैं,

तुम्हें तो जाना ही होगा। नारायणकी कृपासे तुम स्वस्थ, बलवान और बड़े हो जाओ, तब तुम गोचारणमें जाना। अभी गायोंके पास जानेसे वे सींग मार देंगी। माता यशोदाकी गोदीमें यशोदानन्दनको देखनेके लिए आकाशमें उड़ते हुए पक्षीगण भी एकत्रित होकर नन्दालयके ऊपर आकाशमार्गमें इधर-उधर सञ्चरण कर रहे थे। यह देखकर यशोदानन्दन बायें हाथसे मैयाकी ठोढ़ी पकड़कर और दाहिने हाथकी अङ्गुलि उठाकर कहने लगे—मैया! वह क्या है?

मैयाने कहा—वे सब पक्षी हैं। मनकी खुशीमें आकाशमें उड़ रहे हैं।

यशोदानन्दनने कहा—मैया! मैं भी उनके समान आकाशमें उड़ना चाहता हूँ।

यशोदा मैया उनके मुखका चुम्बन करते हुए कहने लगीं—अबोध बालक! मनुष्य क्या कभी आकाशमें उड़ सकता है?

परन्तु यशोदानन्दन किसी भी प्रकारसे हठ छोड़नेवाले कहाँ थे? वे कहने लगे—मैया! मैं भी आकाशमें उड़ूँगा। तुम मुझे अपने दोनों हाथोंसे आकाशमें उड़ा दो।

यशोदाजी अब क्या कर सकती थीं? वह उस अबोध बालकको समझानेके लिए उसे दोनों हाथसे कुछ ऊपरमें उछालने लगीं। ऐसे समयमें यशोदानन्दनका शरीर अत्यन्त भारी होने लगा। अब माँ यशोदा कृष्णको दोनों हाथोंसे ऊपर रख नहीं सकीं, अतः पूर्ववत् उन्हें गोदमें ले लिया। परन्तु कृष्ण धीरे-धीरे इतने भारी होने लगे कि वे उन्हें गोदमें भी रख नहीं सकीं, उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे कोई नील-पर्वत स्थानभ्रष्ट होकर उनकी गोदमें गिर पड़ा है।

श्रीजीव गोस्वामीने अपने गोपालचम्पू ग्रन्थमें इस लीलाकी सुन्दर भूमिका बनायी है—

गोकुलमें आकर पूतना और शकटासुरका प्राणान्त होनेसे प्राण-भयसे कंसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। तब उसने फिरसे नन्दनन्दनके प्राण हरण करनेके लिए तृणावर्त नामके असुरको गोकुलमें भेजा। तृणावर्त गोकुलमें आकर सुदूर आकाश मार्गसे

यशोदाकी गोदमें नन्दनन्दनकी परम मधुर बाललीलाको देखकर मन-ही-मन विचार करने लगा कि मेघ वर्णका यह बालक जो माँके आँचलमें खेल रहा है, सम्भवतः पूतना और शकटासुरका प्राण-संहारक यही है। अब मैं समस्त गोकुलको कँपाता हुआ माँके साथ बालकको आकाश मार्गमें ले जाऊँगा। पूतना अपना रूप छिपाकर सुन्दर रूपमें आयी थी और शकटासुर भी रूप छिपाकर अदृश्य होकर आया था। इसलिए वे दोनों यम-भवनमें चले गये। अतः यह स्पष्ट है कि गोपनरूपमें या अन्यरूप धारणकर या बिलकुल रूपहीन होकर इसके पास जानेपर मेरे बचनेकी कोई सम्भावना नहीं है। इस रूपमें जानेसे भी गोकुलवासियोंसे रक्षा पानेका कोई उपाय नहीं है। इसलिए मैं वायुरूपमें जाकर बालकको आकाशमें उड़ाकर मथुरा ले जाऊँगा।

ब्रजराज-महिषी यशोदा जिस समय अपने पुत्रको गोदमें लेकर स्तनदान, मुख-चुम्बन, हृदयमें धारण एवं दोनों हाथोंसे उठाकर ऊपरमें उछाल रही थी, उस समय तृणावर्त्त असुर सुदूर आकाश मार्गमें बादलोंकी आड़में छिपकर यह सब सोच रहा था। उसके पश्चात् नन्दनन्दनका बालक विग्रह पर्वतकी भाँति भारी होने लग गया। उससे माँ यशोदाने अत्यधिक-भारसे पीड़ित होकर कृष्णको जमीनपर बैठा दिया। परन्तु वात्सल्यप्रेमके कारण उनके अचिन्त्य प्रभावको समझ नहीं पायीं। मन-ही-मन विचारने लगीं—हाय! हाय! मेरे पुत्रको क्या हो गया? मुझे ऐसा लगता है कि इस समय किसी असुर या राक्षसने अलक्षित रूपसे मेरे पुत्रके शरीरमें आश्रय लिया है। इसीलिए यह इतना भारी हो गया है। अब मैं क्या करूँ? पुत्रके प्राणोंकी रक्षा कैसे करूँ? तब दूसरा कोई उपाय न देखकर वे सर्वशरण्य नारायणके शरणागत हुईं और कहने लगीं—“हे नारायण! रक्षा करो! रक्षा करो!” इस प्रकार वात्सल्य-पयोनिधि माँ यशोदा सर्वमङ्गल-निकेतन नन्दनन्दनके मङ्गलविधानके लिए बहुत प्रकारकी चिन्ता कर रही थीं।

ऐसे समयमें कंस द्वारा प्रेरित महासुर तृणावर्त्त प्रबल चक्रवातके रूपमें बादलोंसे नीचे उतर आया। जब वह गोकुलको लक्ष्य करके आ रहा था, तब प्रचण्ड आँधी और तेज हवासे चारों ओर धूल-ही-धूल हो गयी, ब्रजवासी भयसे व्याकुल होकर नन्दालयकी

ओर भागने लगे। परन्तु भीषण आँधीके द्वारा सभी ओर धूल छा जानेके कारण कोई कुछ भी देख नहीं पा रहा था। तेज आँधीकी सन्-सन् आवाजसे सबके कान फटने लगे। वायुरूपी तृणावर्तका सिंहनाद, वृक्षोंकी शाखाओंके टूटनेकी मड्-मड् शब्दसे, नन्दनन्दनके अमङ्गलकी आशङ्कासे ब्रजवासियोंके आर्त्तनादका शब्द चारों ओर प्रतिनादित होने लगा। सबके मनमें ऐसा होने लगा कि मानो एक ही साथ सैकड़ों वज्रपात हो रहे हों। साथ-ही-साथ अविरल धूल-वर्षणसे गोकुल घने अन्धकारसे ढक गया। मुहूर्तमें ही गोकुलकी ऐसी दशा देखकर सभी भयसे व्याकुल हो गये। इधर तृणावर्त आकर सबके अलक्षित रूपमें नन्दनन्दनको सुदूर आकाश मार्गमें ले गया। माँ यशोदा व्याकुल होकर कृष्णको लेकर घरके अन्दर जानेके लिए प्रयास कर रही थीं। परन्तु उन्होंने कृष्णको जहाँ उतारकर रखा था, वहाँ वे थे ही नहीं। तृणावर्त केवल कृष्णको हरणकर और धूल वर्षणकर ही चुप नहीं रहा, बल्कि पत्थरके टुकड़े भी बरसाने लगा। अब सभी सिरपर हाथ धरकर बैठ गये, कोई किसीका समाचार ले नहीं पा रहा था।

क्रमशः वायुका वेग कुछ शान्त होनेपर, धूल-वर्षण कम होनेपर चारों ओर घोर आर्त्तनाद सुनायी देने लगा। तब गोकुलवासी एक-दूसरेसे नन्दनन्दनकी कुशल-वार्त्ता पूछने लगे। परन्तु किसीसे भी किसीको कोई उत्तर नहीं मिला। तब वे सब दौड़ते हुए नन्दालयमें आये, परन्तु उन्होंने आकर देखा—नन्दालय शून्य पड़ा हुआ है। वहाँ बाल्यक्रीड़ा-परायण नन्दनन्दन दिखायी नहीं दे रहे थे। नन्दपत्नी यशोदा भी भूमिपर गिरकर होकर “हा पुत्र! हा पुत्र!” कहकर आर्त्तनाद कर रही थीं। उस समय गोपियाँ व्याकुल होकर उन्हें घरके चारों ओर ढूँढ़ने लगीं। परन्तु कहीं भी नन्दनन्दनको न पाकर अत्यन्त शोकसे मूर्च्छितप्राय होकर रोने लगीं ॥ १८-२५ ॥

तृणावर्तः शान्तरयोवात्यारूपधरो हरन्।

कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥

अन्वयः—वात्यारूपधरः (चक्रवातका रूप धारणकर) तृणावर्तः (इस नामका असुर) कृष्णं (यशोदानन्दनको) हरन् (हरण करता हुआ) नभोगतं (अति ऊर्ध्व प्रदेशमें जाकर) भूरिभारभृत् (अपने सामर्थ्यसे अधिक भार लेनेमें असमर्थ होकर) शान्तरयः (उसकी गति धीमी पड़ गयी) [वह] गन्तुं न अशक्नोत् (एक पैर भी चलनेमें समर्थ नहीं हुआ) ॥ २६ ॥

अनुवाद—इधर बवण्डररूपधारी तृणावर्त पहले तो श्रीकृष्णको आकाशमें उड़ा ले गया किन्तु उनके अत्यधिक भारको सह न सका। जिससे उसकी गति धीमी पड़ गयी और अब तो वह चलनेमें भी असमर्थ हो गया था ॥ २६ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्रथमं कृष्णं बालकान्तरमिव हरन्, नभः अत्यूर्ध्वं, गतः। ततश्च भूरिभारभृदिति, तत्र ऊर्ध्वप्रदेशे महाभारं तं प्रति यन् शान्तरयः। ततश्च वोढुमसमर्थ एव ततो गन्तुं नाशक्नोत् ॥ २६ ॥

भावानुवाद—‘कृष्णं हरन्’—वायुरूपधारी तृणावर्त श्रीकृष्णको साधारण बालक समझकर हरण करके अत्यन्त ऊपर आकाशमार्गमें जाने लगा। परन्तु वहाँ श्रीकृष्णके असहनीय भारी हो जानेसे वह आगे बढ़ नहीं सका, उसका वेग शान्त हो गया। फिर श्रीकृष्णको और धारण करनेमें असमर्थ होकर वह आगे जानेमें भी असमर्थ हो गया ॥ २६ ॥

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया।

गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—गलेगृहीतः (यशोदानन्दनके भुजाओंके द्वारा गलदेशको धारण करनेपर) [वह तृणावर्त] आत्मनः (अपना भार ढोनेमें समर्थ होकर भी) गुरुमत्तया (अतिशय भार हेतु) तं (अपने गलदेशको धारणकर लटके हुए उस अपहृत बालकको) अश्मानं (नीलमणिपर्वत जैसा) मन्यमानं (विचारकर) अद्भुतार्भकम् (उस अद्भुत बालकको) उत्स्रष्टुं (अपने गलेसे छुड़ानेकी चेष्टा करके भी) न अशक्नोत् (छुड़ा नहीं सका) ॥ २७ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका भार इतना अधिक था कि तृणावर्तको लगा मानो वे नीलगिरीकी चट्टान हैं। वह उनको अपनेसे अलग करना चाहता था, पर अलग न कर सका। जैसे कोई व्यक्ति बालकको उछाले तो बालक भयसे उछालनेवालेके गलेको दानों हाथोंसे पकड़ लेता है, उसी प्रकार लोकातीत श्रीकृष्णने लौकिक-बाललीलाका अनुकरण करते हुए अपने गिरनेके भयसे तृणावर्तके गलेको दोनों हाथोंसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी—ततश्च निष्पन्नस्वीयनभोविहाराभिलाषो निष्पादितस्वर्गपुरपुरन्ध्री-कर्तृकस्वदर्शनाभिलाषश्च बालकृष्णस्तं हन्तुं प्रववृते इत्याह—तमिति। आत्मनः सकाशादप्यतिगौरवत्वेन तम्, अश्मन्तं अश्मवन्तं पर्वतं, मन्यमानः, उत्तन्नष्टुं निःसारयितुं, नाशकत्। तत्र हेतुः—गले गृहीतः, तेनैव बाल्यलीलया स्वपतनभयादिति भावः। अश्मन्तमिति—‘युवोरनाकौ’ (पा० ७।१।१) इतिवद्वलोपश्छान्दसः। अश्मानमिति पाठे मत्तुब्लोपश्च। अश्मार्णमिति पाठे—अश्मार्णवं शिलासमुद्रमिवेत्यर्थः ॥ २७ ॥

भावानुवाद—इसके पश्चात् अपने गगन-विहारकी अभिलाषा पूर्णकर तथा स्वर्गीय रमणियोंकी अपने दर्शनकी अभिलाषा पूर्णकर श्रीकृष्ण उस दैत्यकी हत्या करनेके लिए प्रवृत्त हुए। तृणावर्त उस बालकको अपनेसे भी अधिक महाभारयुक्त पर्वतकी भाँति मानने लगा। अतः उसे छुड़ानेके लिए बारम्बार प्रयास करके भी छुड़ा नहीं सका। उसका कारण—जैसे किसी व्यक्तिके किसी बालकको ऊपर उठानेपर वह भयसे उठानेवालेका गला पकड़ लेता है, वैसे ही लोकातीत श्रीकृष्णने भी बाललीलाके आवेशमें अपने गिरनेके भयसे उस तृणावर्तका गला पकड़ लिया, यह भाव है ॥ २७ ॥

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः।

अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्ब्रजे ॥ २८ ॥

अन्वयः—गलग्रहणनिश्चेष्टः (यशोदानन्दनके द्वारा गला पकड़ लिए जानेसे हाथ-पैर आदि फेंकनेमें असमर्थ होकर) निर्गतलोचनः (शँस अवरुद्ध होनेसे नेत्र भी बाहर निकल आये) [तब] अव्यक्तरावः (अस्पष्ट रूपसे आर्त्तनाद करता हुआ) दैत्यः (वह तृणावर्त) व्यसुः (श्वासरोधसे प्राणहीन होकर) सहबालः (यशोदाजीके

बालकके साथ) ब्रजे (जन-शून्य गोष्ठमें) न्यपतत् (कृष्णको छातीमें लगाकर, पीठके बल गिरा) ॥ २८ ॥

अनुवाद—श्यामसुन्दरने उस दैत्यके गलेको इतनी जोरसे पकड़ रखा था कि वह असुर निष्क्रिय हो गया। उसके हाथ-पैर चलने बन्द हो गये, दोनों आँखें बाहर निकल आयीं। उसकी बोलती भी बन्द हो गयी। अन्ततः उसके प्राण पखेरु उड़ गये और वह बालक श्रीकृष्णके साथ ही ब्रजभूमिमें गिर पड़ा ॥ २८ ॥

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां,
विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं,
स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥

अन्वयः—समेताः (यशोदाके निकट समागता) रुदत्यः (यशोदा-नन्दनको न देखकर रोनेवाली) स्त्रियः (वात्सल्यवती ब्रजरमणियाँ) अन्तरिक्षात् (सुदूर आकाशसे) शिलायां (विस्तृत शिलाखण्डके ऊपर) रुद्रशरेण पुरं यथा (शिवबाणसे छिन्न-विच्छिन्न त्रिपुरासुरकी भाँति) पतितं विशीर्णसर्वावयवं (शिलामें गिरनेसे सर्वाङ्ग चूर्ण-विचूर्ण होकर) करालम् (अति भयङ्कर) तं (तृणावर्तको) ददृशुः (देखा) ॥ २९ ॥

अनुवाद—उस समय सारी गोपियाँ एकत्र मिलकर जोर-जोरसे क्रन्दन कर रही थीं, तभी उन्होंने देखा कि तृणावर्तका विकराल शरीर आकाशसे प्रस्तर-शिलापर गिर पड़ा और उसके सारे अङ्ग इस प्रकार चकनाचूर हो गये, जिस प्रकार शिवजीके बाणोंसे आहत होनेपर त्रिपुरासुरके हो गये थे ॥ २९ ॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहत्य विस्मिताः,
कृष्णञ्च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं,
विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या,
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—तस्य (उस मृत दैत्यके) उपरि (वक्षःस्थलमें) लम्बमानं (भुजाओंसे गला पकड़कर लटके हुए) स्वस्तिमन्तं (सर्वदा कुशल रहनेवाला) विहायसा (आकाशमार्गमें) पुरुषादनीतं (दैत्य कर्तृक अपहृत) [अतएव] मृत्युमुखात् (साक्षात् कालके ग्राससे) प्रमुक्तं (मुक्त) तं कृष्णं च (उस यशोदानन्दनको) प्रादाय (लाकर) मात्रे (माता यशोदाको) प्रतिहत्य (समर्पणकर) [गोपियाँ] विस्मिताः (परम आश्चर्ययुक्त हो गयीं) नन्दमुख्याः (नन्द महाराज आदि) गोपाः (गोपगण) [तथा] गोप्यश्च (यशोदा आदि गोपियाँ) पुनः लब्ध्वा (श्रीकृष्णको फिरसे प्राप्तकर) अतीव (निरतिशय) मोदम् (आनन्द) प्रापुः (प्राप्त किया) ॥ ३० ॥

अनुवाद—बालक श्रीकृष्ण उस असुरके वक्षःस्थलपर लटके हुए थे। गोपियोंने झटपट वहाँ जाकर बालकको उठा लिया और माताकी गोदमें दे दिया। बालकके शरीरपर किसी भी प्रकारकी चोटका चिह्न न देखकर गोपियाँ विस्मित रह गयीं। आकाश-मार्गसे राक्षस आया था और बालकका हरण कर ले गया था। अहा! बालक मृत्यु-मुखसे सकुशल लौट आया। नन्द आदि प्रमुख गोप एवं गोपियाँ बालकृष्णको प्राप्त करके बड़े आनन्दित हो गये ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—तस्योरसि लम्बमानं कृष्णं आदाय मात्रे प्रतिहत्य विस्मिता बभूवुः। उरसीति—कृष्णस्य व्यथाभावः सूचितः; असुरस्य पृष्ठप्रदेश एव शिला-पतितत्वात्। विहायसा गगनमार्गेण, पुरुषादेन मनुष्यभक्षकेण, नीतम्, अतएव मृत्योर्मुखादिव मुक्तम् ॥ ३० ॥

भावानुवाद—गोपियाँ तृणावर्त्तके वक्षःस्थलमें झूलते हुए श्रीकृष्णको उठाकर ले आयीं और माता यशोदाकी गोदमें रख दिया। साथ-साथ अत्यन्त विस्मित भी हो गयीं, क्योंकि इस दुर्घटनासे श्रीकृष्णके शरीरमें पीड़ा या कष्टका कोई चिह्न भी नहीं देखा गया। इसका कारण है कि असुरके पीठका भाग ही पत्थरपर गिरा था। 'विहायसा पुरुषाद-नीतं'—उस नरभक्षी राक्षसके द्वारा आकाशमार्गमें ले जाया गया था—इसलिए मानो मृत्युके मुखसे निकलकर वह लौट आया है ॥ ३० ॥

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
 बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः।
 हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
 साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयः—[वे सभी कहने लगे] अहो बत अत्यद्भुतं (अहो, यह कैसा आश्चर्य है!) एष (यशोदा गोदीमें स्थित) बालः (बालक) रक्षसा (राक्षसके द्वारा) निवृत्तिं गमितः (विनाशके लिए ले जाये जानेपर भी) पुनः अभ्यगात् (फिरसे हमारे निकट लौट आया) हिंस्रः (दुसरोके प्रति हिंसापरायण) खलः (क्रूर व्यक्ति) स्वपापेन (अपने पापके द्वारा ही) विहिंसितः (स्वयं ही विनष्ट हो जाता है) साधुः (हिंसा आदि दोषरहित व्यक्ति) समत्वेन (शत्रु-मित्रमें समान दृष्टि-परायण होकर) भयात् (समस्त भयसे) प्रमुच्यते (मुक्त हो जाता है) ॥ ३१ ॥

अनुवाद—वे कहने लगे—अहो! यह सचमुच, बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, किन्तु यह सकुशल लौट आया है। हिंसक, दुष्ट व्यक्ति अपने पापके द्वारा स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं जब कि साधु व्यक्ति सर्वत्र समदर्शिताके कारण समस्त प्रकारके भयोंसे मुक्त रहते हैं ॥ ३१ ॥

सारार्थदर्शिनी—एवं बालत्वेऽपि महासुरहन्तृत्वलक्षणेनैश्वर्येण प्रकटोद्भूतेनापि तेषां नन्दादीनां वात्सल्यं न जहास, प्रत्युतावर्द्धतैवेत्याह—अहो बतेति त्रिभिः। अद्भुतादपि यदद्भुतं, तस्मादप्यद्भुतमेतत्; यदेष बालः, निवृत्तिं अमङ्गलव्यञ्जकत्वान्मरण-नाशादिशब्देन वक्तुमनर्हां दशां, प्रापितोऽपि, अभ्यगात् पुनर्बन्धुनामभिमुखं प्राप्तः। 'कोऽत्र विस्मयः? युज्यत एव' इति तेष्वेव मध्ये केचिदाहुः—हिंस्र इति। स्वपापेन निरपराध-नवबालकहरणलक्षणेन। साधुः बालकः, समत्वेन—बालत्वादेव शत्रुमित्रादिषु तुल्यबुद्धित्वेन ॥ ३१ ॥

भावानुवाद—इस प्रकार श्रीकृष्णके बाल्य-अवस्थामें ही महा असुरका वधकर ऐश्वर्यको प्रकट करनेपर भी नन्द महाराज आदि ब्रजवासियोंका वात्सल्यभाव किसी प्रकार शिथिल नहीं हुआ, बल्कि और भी बढ़ता गया। यही 'अहो बत' आदि तीन श्लोकोंमें कह रहे

हैं। जो अद्भुतसे भी अद्भुत है, उससे भी अतिशय अद्भुत यह है कि जो यह बालक 'निवृत्तिं गमितः' अर्थात् अमङ्गलसूचक मरण, नाश आदि शब्दोंके द्वारा भी वर्णित होनेके अयोग्य दशाको प्राप्त होकर भी पुनः लौटकर बन्धुजनोंके सामने लौट आया है, यह हमारा अहो भाग्य है। उनमेंसे कोई-कोई कहने लगे—'इस विषयमें विस्मयकी क्या बात है? यह युक्तिसङ्गत ही हुआ है।' क्योंकि, जो खल व्यक्ति दूसरोंकी हिंसा करता है, वह अपने पापसे स्वयं ही नष्ट हो जाता है। इसलिए यहाँपर निरपराध बालकका हरण करनेके कारण यह दैत्य अपने पापसे विनष्ट हुआ है और 'साधु' व्यक्ति सर्वत्र समदर्शी होनेसे विपद्से मुक्त होता है। यहाँ 'साधु' कहनेसे यह बालक है, क्योंकि बाल स्वभावके कारण ही शत्रु-मित्र आदिमें तुल्य-बुद्धि होती है, अतएव वह समदर्शी होता है॥ ३१॥

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं,
पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम्।
यत् सम्परेतः पुनरेव बालको,
दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्प्रस्थितः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—नः (हमारे द्वारा) किं तपः (चान्द्रायण आदि किस व्रतका) चीर्णं (अनुष्ठान किया गया था) अधोक्षजार्चनं (श्रीविष्णुसेवा) पूर्तं (कुआँ, तालाब आदि निर्माण) इष्ट (पञ्चाग्नि यज्ञ, अग्निहोत्र आदि) दत्तः (दान) उत (अथवा) भूतसौहृदं (समस्त प्राणियोंका हित आचरण जो कुछ किया गया) यत् (जिससे) सम्परेत (मृत्युके ग्रासमें जाकर भी) एष बालकः (व्रजजनोंका जीवन-स्वरूप यह श्रीनन्दनन्दन) दिष्ट्या (हमारे भाग्यसे) स्वबन्धून् (आत्मीय आदिको) प्रणयन् (आनन्दितकर) पुनः उपस्थितः (पुनः निकटमें उपस्थित हुआ है)॥ ३२॥

अनुवाद—अहो! हमारा बड़ा सौभाग्य है! हमने ऐसी कौन-सी कठोर तपस्या या भगवान् अधोक्षजकी आराधना की थी, अथवा प्राणियोंके हितके लिए बाबड़ी, कुएँ आदिका निर्माण कराया था, यज्ञ, हवन, दान आदि किये थे कि जिसके फलसे यह बालक मृत्युके

मुखसे निकलकर हमें अपने स्वजनोंको सुखी करनेके लिए लौट आया ? ॥ ३२ ॥

सारार्थदर्शिनी—श्रीनन्दादयस्तु 'यद्यस्य बालस्यामङ्गलमभविष्यत्, तदा सर्वे वयं मरिष्यामैव, इत्यतोऽस्माकमेवैतद्बहुतरसुकृतफलं' इत्याहुः—किमिति। चीर्णं कृतम्। पूर्तं वाप्यादिनिर्माणम्। इष्टं पञ्चयज्ञादि। यत्—यस्मात् तप आदेः। प्रणयन् कुर्वन् जीवयन्निति यावत्, प्रणयवन्तं कुर्वन्निति वा ॥ ३२ ॥

भावानुवाद—किन्तु श्रीनन्द महाराज आदि गोपोंने कहा—“यदि इस बालकका कोई अमङ्गल हो जाता, तब तो हम सभी मारे जाते। इसलिए हम सबके बहुत जन्मोंकी सुकृतियोंका ही यह फल है।” हमने पहले जन्ममें कौन-सी तपस्या या भगवान्की पूजा-अर्चना की थी, कौन-सा दान, पुण्य या सौहार्द प्रदर्शन किया था, जिस पुण्यके प्रभावसे यह बालक मृत्युके मुखसे निकलकर पुनः हमें जीवित करनेके लिए अथवा आनन्दित करनेके लिए हमारे पास लौट आया ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने।

वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—नन्दगोपः (व्रजराज) बृहद्वने (नन्दगोकुलमें) बहुशः (पूतनाके आगमनसे लेकर विविध प्रकार) अद्भुतानि (परम विस्मयकारी उत्पातोंका आना और उनका विनाश होते हुए) दृष्ट्वा (देखकर) विस्मितः (परम आश्चर्ययुक्त हुए) (तथा) वसुदेववचं (वसुदेवके वाक्योंको) भूयः (पुनः-पुनः) मानयामास (सत्यके रूपमें मानने लगे) ॥ ३३ ॥

अनुवाद—जब नन्दबाबाने देखा कि बृहद्वन (महावन) में बड़ी अद्भुत-अद्भुत घटनाएँ घट रही हैं, तब वे आश्चर्यके साथ वसुदेवजीके वचनोंको बारम्बार स्मरण करने लगे ॥ ३३ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—जब सभी गोकुलवासी रो रहे थे, उस समय तृणावर्त नीलमणिको लेकर आकाश मार्गमें उड़ रहा था। उस

समय नीलमणि नीलपर्वत बन गये अर्थात् उनका भार इतना बढ़ गया कि वह असुर उन्हें उठाकर आगे बढ़ नहीं सका। तृणावर्त्तने सोचा था कि पूतना और शकटासुर ऐसा काम नहीं कर सके, जो मैंने अनायास ही इसे उठा लिया। 'अब मैं इसे मथुरा ले चलूँ।' परन्तु उसका आगे जाना सम्भव नहीं हुआ। उसने उन्हें गलेसे छुड़ानेका बहुत प्रयास किया, परन्तु छुड़ा नहीं सका, जिससे उसका दम घुटने लगा। अन्तमें वह धड़ामसे एक शिलापृष्ठपर चित होकर गिरा—उसके गिरते ही वज्रकी कड़-कड़ाहट जैसी ध्वनि हुई। सुनकर सभी चौंक उठे, तब गोपरमणियाँ दौड़कर गयीं और श्रीकृष्णको उठा लिया और माता यशोदाकी गोदमें सौंप दिया। तब ब्रजवासियोंके मानो प्राण लौट आये। वे एक दूसरेसे इस भयानक दुर्घटनाके विषयमें चर्चा करने लगे।

श्रीनन्द महाराज गोकुलमें इस प्रकारके बहुत-से उत्पातोंको देखकर अपने पुत्रके अमङ्गलकी आशङ्कासे शङ्कित-चित्त होकर अवस्थान करने लगे।

श्रीशुकदेवजीने श्रीपरीक्षितके निकट पूतना-वध, शकट-भञ्जन और तृणावर्त्त-वध—इन तीन असुर-मारण लीलाओंका वर्णन किया है। परन्तु श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धमें तृणावर्त्त-वध लीलाके पश्चात् श्रीशुकदेवजीने 'दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने'—आदि श्लोकोंमें महाराज परीक्षितको सङ्केतमें कहा कि श्रीनन्दनन्दनकी पूतना-वध आदिकी भाँति और भी अद्भुत असुर-मारण आदि लीलाएँ हैं, परन्तु उन्हें मैं वर्णन नहीं कर रहा हूँ। अचिन्त्य अनन्तशक्तियुक्त श्रीगोविन्दकी इन तीन लीलाकथाओंका आस्वादन करनेसे ही धारणा हो जायेगी कि अनन्त लीलामयकी और भी कितनी सैंकड़ों लीलाएँ हैं। अनन्तदेव हजारों मुखोंसे उनका वर्णन करके भी समाप्त नहीं कर सकते। तो फिर मैं केवल एक मुखसे केवल सात दिनोंमें कितना श्रवण कराऊँ?

गोकुलमें बहुत-से असुर-राक्षसादिका आगमन एवं उनका अद्भुत रूपसे विनाश देखकर नन्दबाबा मन-ही-मन चिन्ता करने लगे कि भैया वसुदेवजीने जो कुछ कहा है—“गोकुलमें बहुत प्रकारके

उत्पात हो सकते हैं”—वह अक्षरशः सत्य है। यह मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ। नन्दबाबा इन सभी अद्भुत घटनाओंको देखकर अत्यन्त विस्मित होकर समय व्यतीत करने लगे और सदा नारायणके चरणोंमें शरणागत होकर पुत्रके कल्याणकी कामना करने लगे।

ब्रह्मवैवर्तपुराण (४/११/१६-३४) में इस तृणावर्त्त असुरके पूर्व-जन्मका वृत्तान्त इस प्रकार वर्णन है—

पाण्ड्य देशमें सहस्राक्ष नामका एक महायोग प्रभावशाली राजा था। वह कामबाणसे पीड़ित होकर एक दिन सहस्र रमणियोंके सहित निर्जन मनोरम गन्धमादन पर्वतपर स्थित नदीके किनारे पुष्पोद्यानमें विहार कर रहा था। ऐसे समयमें महातेजस्वी दुर्वासा ऋषि एक लाख शिष्योंके साथ श्रीशङ्करजीके दर्शनके लिए उसी मार्गसे कैलासकी ओर यात्रा कर रहे थे। काम-वासनामें उन्मत्त राजा दुर्वासा ऋषिको देखकर भी सम्मानपूर्वक खड़ा नहीं हुआ या भूमिष्ठ होकर प्रणाम भी नहीं किया। यहाँ तक कि हाथ जोड़कर प्रणाम या किसी प्रकारका कोई सम्भाषण भी नहीं किया। इससे महातेजस्वी दुर्वासा ऋषिने क्रोधित होकर राजाको अभिशाप दिया—“रे पापिष्ठ! तुम योगभ्रष्ट होकर असुर-योनिको प्राप्तकर पृथ्वीपर जाओ।” ऋषिके अभिशापसे राजाका मोह दूर हुआ। तब उसने ऋषिके चरणोंमें गिरकर अनुनय-विनय किया। इसपर ऋषिने कहा—“तुम्हें भारतवर्षमें लक्ष वर्ष तक वास करना होगा। उसके पश्चात् श्रीहरिका चरणस्पर्शकर तुम शापमुक्त होओगे एवं गोलोकमें तुम्हारी गति होगी।” उसी राजा सहस्राक्षने तृणावर्त्त नामका असुर होकर जन्म-ग्रहण किया एवं श्रीनन्दनन्दनका चरणस्पर्श पाकर वह गोलोकमें गया।

श्रीगौड़ीय वैष्णव आचार्य-प्रवर श्रीसनातन गोस्वामीजीने बृहद्-वैष्णव-तोषणी टीकामें श्रीकृष्णकी तृणावर्त्त-वध लीलाका एक सुमधुर तत्त्व प्रकाशित किया है।

जगद्भ्रामकविभ्रंशान्भक्त्या भान्ति साधवः।

अतो रजस्तमोनेतृ तृणावर्त्तमहन् प्रभुः॥

(बृहद्-वैष्णव-तोषणी)

रजोगुण एवं तमोगुणकी चञ्चलतासे मुक्त होकर सदाचार-परायण भक्तगण श्रीगोविन्दकी सेवा करते हुए कृतार्थ होते हैं। यदि कभी बहिर्मुखतारूपी आसुरिक वृत्ति—रजोगुण और तमोगुणका सञ्चार होता है, तब गोविन्दकी सेवा करनेका सामर्थ्य नहीं रहता है। उस समय रजोगुणकी चञ्चलतामें और तमोगुणके महा-अन्धकारमें घूमते रहना पड़ता है। तृणावर्त्त असुरने गोकुलमें रजः अर्थात् धूल, तमः अर्थात् अन्धकारका सञ्चारकर यही प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट कर दिया था, इसलिए प्रभुने उसे मार डाला।

गोकुलवासीगण परमानन्दमें नन्दनन्दनके वात्सल्यरसोचित सेवामें नियुक्त थे, परन्तु जब तृणावर्त्तने आकर चक्रवातके रूपमें धूल उड़ाकर गोकुलको अन्धकारमय कर दिया, तब गोकुलवासी नन्दनन्दनकी सेवामें नियुक्त नहीं रह सके। श्रीकृष्ण उस तृणावर्त्तका वधकर गोकुलवासियोंके समीप लौट आये। तब गोकुलवासी श्रीकृष्णको पाकर फिरसे परमानन्द-रसमें निमग्न हो गये ॥ २७-३३ ॥

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी।

प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥

अन्वयः—भामिनी (समस्त प्रकारकी सद्-भावनाओंसे युक्त) स्नेहपरिप्लुता (पुत्रस्नेहसे परिपूर्ण हृदयवाली यशोदा) एकदा (एकदिन) अर्भकं (बालकृष्णको) आदाय (ग्रहणकर) स्वाङ्कं (गोदीमें) आरोप्य (बिठाकर) प्रस्नुतं (पुत्र स्नेहसे अपने आप क्षरण होनेवाले) स्तनं (दूध) पाययामास (पिलाया) ॥ ३४ ॥

अनुवाद—एक दिन यशोदादेवी, अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बिठाकर पुत्र-स्नेहाभिभूत होकर स्तनपान करा रही थीं। पुत्रके प्रति वात्सल्यसे उनका हृदय इतना विगलित हो रहा था कि दूध स्वतः ही झर रहा था ॥ ३४ ॥

पीतप्रायस्य जननी सुतस्य रुचिरस्मितम्।

मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः,
 सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुर्धोश्च ।
 द्वीपान् नगांस्तद्बुहितृवनानि,
 भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥

अन्वयः—राजन् (हे परीक्षित्!) सा (वात्सल्यप्रेमसे परिपूर्ण हृदयवाली) जननी (यशोदा) पीतप्रायस्य (स्तनपान प्रायः समाप्त कर लेनेपर) जृम्भतः (जम्भाई लेते हुए मुँह खोलनेपर) तस्य (अपनी गोदमें स्थित पुत्रको) रुचिरस्मितं (हास्यसे सुन्दर) मुखं (मुखको) लालयति (चुम्बन आदिके द्वारा लालन करती हुई) इदं (यह) खं (आकाश) रोदसी (स्वर्ग और पृथिवी) ज्योतिरनीकं (ज्योतिश्चक्र) आशाः (दिशाएँ) सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुर्धोश्च (सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, सप्तसिन्धु) द्वीपान् (जम्बु, प्लक्ष आदि सप्तद्वीप) नगान् (सुमेरु, हिमालय आदि पर्वत) तद्बुहितृः (पर्वतजात नदियाँ) वनानि (अरण्य) यानि च स्थिरजङ्गमानि (और स्थावर-जङ्गम आदि) भूतानि (जीवोंको) [मुँहके अन्दर] ददृशे (देखा) ॥ ३५-३६ ॥

अनुवाद—हे राजन्! बाल-कृष्णका स्तनपान प्रायः पूर्ण हो चला था। यशोदाजी उनके मनोहर, मन्द-मुसकानसे युक्त मुखकमलका चुम्बनादि करती हुई उन्हें लाड़ लड़ा रही थीं, तभी श्रीकृष्णने आलस्यवश जँभाई ली। भगवान्‌के मुखमें यशोदादेवीने आकाश, स्वर्ग, मर्त्य, ज्योतिर्मण्डल, सम्पूर्ण दिशाएँ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन एवं स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त प्राणियोंको विद्यमान देखा ॥ ३५-३६ ॥

सारार्थदर्शिनी—पीतप्रायस्येति—‘पीता गावो, विभक्ता भ्रातर’ इतिवत् कर्त्तरि क्तः; स्तनं पीतवत्प्रायस्येत्यर्थः। मुखे मुखविवरान्तः। द्वितीयान्त पाठे—मुखं लालयन्ती, तद्द्वारा जठरे ददर्शेवेति ज्ञेयम्; ‘कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या’ (श्रीमद्भ० १०/१४/१६) इति ब्रह्मस्तुतेः। इदं अस्मद्दृश्यं विश्वमेव; तदीयविग्रहस्य मातृक्रोड़गतस्याप्यचिन्त्यशक्त्या विभुत्वेन सर्वजगदधिष्ठानत्वात्। जृम्भत इति—जृम्भणोचितक्षणेऽपि सविशेष सर्वविश्वदर्शनमचिन्त्यशक्त्यैव निष्पादितम्। नगान्, द्वीपाख्याकरान्, जम्ब्वादिवृक्षान्, पर्वतांश्च, तद्बुहितृः नदीः ॥ ३६ ॥

भावानुवाद—‘पीतप्रायस्य’—‘गौएँ पानी पी चुकी हैं, भ्रातृगण सभी पृथक्-पृथक् हो गये हैं’ आदि प्रयोगकी भाँति यहाँपर कर्तृवाच्यमें क्त-प्रत्यय युक्त हुआ है अर्थात् श्रीकृष्णका स्तनपान करना प्रायः शेष हो गया है। ‘मुखे’—मुखके अन्दर या ‘मुख’ पाठ होनेपर—जब यशोदा मैया कृष्णके मुखका चुम्बन आदि करते हुए आदर कर रही थीं, तभी उन्होंने उनके मुखमें अर्थात् जठरमें ब्रह्माण्डका दर्शन किया। जैसे ब्रह्मस्तुति (१०/१४/१६) में कहा गया है—“बाहरमें प्रकाशमान सम्पूर्ण विश्वको आपने जो अपने जठरमें प्रकटितकर जननी यशोदाको दिखलाया है, यह आपकी मायाशक्तिका खेल है।” ‘इदं’—यह परिदृश्यमान विश्व ही, क्योंकि माताकी गोदमें होकर भी आपके श्रीविग्रहकी अचिन्त्यशक्तिसे छोटी-सी मूर्तिमें विभुरूप समस्त जगत्का अधिष्ठान है। ‘जृम्भितः’—आलस्यके कारण श्रीकृष्णने जब जम्भाई लेनेके लिए मुख खोला, तब माँ यशोदाने पुत्रके मुखमें आकाश आदिका दर्शन किया। उस समय भी सविशेष सम्पूर्ण विश्वका दर्शन अचिन्त्यशक्तिसे सम्पन्न हुआ। पर्वत, द्वीप, जम्बु आदि वृक्ष, पर्वत, नदी आदि सब कुछ देखा ॥ ३५-३६ ॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जातवेपथुः।

सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे तृणावर्त्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अन्वयः—राजन् (हे परीक्षित्!) मृगशावाक्षी (हिरणके बच्चेकी भाँति शङ्कित नयना) सा (वह यशोदा) सहसा (अचानक) विश्वं वीक्ष्य (अपनी गोदमें स्थित पुत्रके मुखमें ब्रह्माण्डको देखकर) सञ्जातवेपथुः (काँपने लगी) [एवं] नेत्रे (विस्मित नेत्रोंको) सम्मील्य (मूँदकर) सुविस्मिता (परम आश्चर्य दर्शनकर विवश होती हुई) आसीत् (अवस्थान करने लगी) ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सप्तम अध्यायका

अन्वयः समाप्त ।

अनुवाद—हे राजन्! मृग-नयनी यशोदा-देवीने सहसा ही शिशुके मुखमें इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वका दर्शन किया तो उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने आँखें मूँद ली और अत्यन्त आश्चर्यमें डूब गयीं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सप्तम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

सारार्थदर्शिनी—सहसा—अकस्मात् युगपच्च। सज्जातवेपथुः, उत्पातशङ्कया। सम्मील्येति—श्रीविष्णुध्यानार्थ, ‘भगवन्नाराण! रक्ष! रक्ष! मत्सुतमस्मादुत्पातात्’ इति। वित्रस्तदृष्टित्वात् मृगशावाक्षी।

पूतनादिवधैश्वर्यं न प्रेम समचूकुचत्।
प्रत्युतावर्द्धयत्तस्मिन्नरिष्टप्रतिशङ्कया ॥
नन्दभाग्यादिहेतूनां तत्राभूद्यदि कल्पनम्।
ततो निर्हेतुरेवेयमैश्वरी शक्तिरागता ॥
विभुत्वदर्शिका कृष्णदेहस्य स्फुटमेव हि।
तथापि विस्मितैवासीन्मत्पुत्रस्येदमद्य किम्॥
न त्वैश्यज्ञानसम्भ्रान्त्या वात्सल्ये शिथिलाभवत् ॥
न चात्र सम्भवेत् किञ्चित् पूर्ववद्धेतुकल्पनम्॥
तच्चापि वस्तुतो गाढप्रेमोर्मिमयमेव हि ॥
इति निष्कम्पता प्रेम्णः ख्यापिता स्यान्मुहुर्मुहुः ॥

एवञ्च—

प्रेमदेव्याः परीक्षार्थमागच्छन्त्यन्तरान्तरा।
शक्तिरेषाः हरेः किन्तु तया दासीकृता भवेत् ॥ इति ॥ ३७ ॥
इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
दशमे सप्तमोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
सप्तमोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ ७ ॥

भावानुवाद—‘सहसा’—यशोदा मैया अचानक और एक साथ पुत्रके मुखमें विश्वका दर्शनकर उत्पातकी आशङ्कासे काँप उठीं।

उन्होंने श्रीविष्णुके ध्यान करके लिए—“हे भगवन् नारायण! इस उत्पातसे मेरे पुत्रकी रक्षा करो, रक्षा करो!”—ऐसा कहकर नेत्र बन्द कर लिये। भयसे व्याकुल दृष्टि-सम्पन्न होनेके कारण उन्हें मृगनयनी माता यशोदाजी कहा गया है।

पूतना आदिके वध होनेका ऐश्वर्य दर्शन करके भी जननीका प्रेम शिथिल नहीं हुआ, बल्कि पुत्रके अनिष्टकी आशङ्कासे उनका प्रेम बढ़ता चला गया। नन्दबाबा आदिके सौभाग्यके कारण ही श्रीकृष्ण बच गये—यदि ऐसी कल्पना की जाय, तो भी ऐसा समझना होगा कि अहैतुकी ईश्वरीशक्तिका प्रकाश हुआ था, क्योंकि श्रीकृष्णके देहमें विभुत्व आदि शक्तियाँ स्वाभाविक रूपसे ही परिस्फुट रहती हैं। फिर भी मेरे पुत्रको आज क्या हो गया, यह सोचकर यशोदा मैया विस्मित हो गयीं। ऐश्वर्यज्ञानके द्वारा तो गौरवबुद्धि होती है। गौरवबुद्धिसे श्रीकृष्णको भगवान् माननेसे यशोदा माँका प्रेम शिथिल होना चाहिये था, परन्तु उनके वात्सल्यप्रेममें कोई शिथिलता नहीं आयी। या यहाँ पूर्ववत् किसी कारणकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वास्तवमें ये ऐश्वर्यमयी लीलाएँ गाढ़ प्रेम-समुद्रकी तरङ्गें हैं। इस प्रकार प्रेमकी निष्कम्पता ही पुनः-पुनः ख्यापित हुई है। इस प्रकार प्रेमदेवीके परीक्षाके लिए समय-समयपर आनेपर भी, वे प्रेमाधीन श्रीहरिकी शक्ति ही हैं, ऐसा जानना होगा॥ ३७॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सप्तम अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

भावप्रकाशिका वृत्ति—व्रजभूमिमें अपनी लीला प्रकट करनेके पश्चात् व्रजराजनन्दनने एक वर्षके भीतर पूतना-वध, शकट-भञ्जन, तृणावर्त्त-वध आदि लीलाएँ कीं एवं उन सभी लीलाओंमें बालभावके अन्तरालमें जिस परम ऐश्वर्यका समावेश और प्रकाश हुआ है, वह देखकर देवता भी विस्मयमें डूब जाते हैं, परन्तु नन्दबाबा, यशोदा मैया आदि गोप-गोपियोंके शुद्ध वात्सल्यप्रेममें इन परम ऐश्वर्यमयी लीलाओंका गन्धमात्र भी स्पर्श नहीं हुआ। उनकी सदा-सर्वदा

नन्दनन्दनमें पुत्र-बुद्धि ही थी। वे श्रीकृष्णकी बाललीलाकी माधुरीका आस्वादन करते हुए उससे उत्पन्न सुख-दुःखमें डुबे रहते थे। चक्रवातके रूपमें तृणावर्तने आकर नन्दनन्दनका हरण किया, परन्तु नारायणकी अपार करुणासे उनकी प्राणरक्षा हुई एवं असुर भी मारा गया। इस स्थितिमें ब्रजवासियोंके आनन्दित होनेपर भी उनके मनसे शङ्का दूर नहीं हुई। सर्वदा उनके मनमें यही भावना रहती—कहीं फिरसे कोई असुर तो नहीं आ गया। माँ यशोदा पुत्रकी यह स्थिति देखकर अमङ्गलकी आशङ्कासे दुबली पतली होने लगीं।

एक दिन नन्दनन्दनके शय्यासे उठनेपर माँ यशोदा उन्हें गोदीमें लेकर दूध पिलाने लगीं, ऐसे समयमें उन्हें जँभाई आनेपर उनके मुखमें माँने विशाल विश्वरूपका दर्शन किया। यशोदा मैयाने बड़े विस्मय और विस्फारित नेत्रोंसे अपनी गोदमें स्थित बालकके छोटे-से मुँहमें असीम आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, और तारकासमूह, दस दिशाएँ, दिक्पाल, सप्तद्वीप, सप्त समुद्र, सुमेरु, हिमालय, गङ्गा, यमुना आदि नदियाँ, असंख्य ग्राम, नगर, अरण्य एवं स्थावर-जङ्गम आदि समस्त प्राणी देखे। परन्तु इस विश्वरूपका दर्शन करके भी माँ यशोदाका वात्सल्यप्रेम या उनके साथ प्रेम-सम्बन्धका कोई हास नहीं हुआ। बल्कि पुत्रके अमङ्गलकी आशङ्कासे वे और भी अधीर हो उठीं एवं मन-ही-मन सोचने लगीं—फिरसे कोई असुर तो नहीं आ गया, जिसके कारण मेरे पुत्रके मुँहमें ये सभी अद्भुत दृश्य दिखायी दे रहे हैं। हे नारायण! मेरे पुत्रके जीवनकी रक्षा करो, तुम्हारे बिना दूसरा कोई रक्षाकर्ता नहीं है।

इस प्रकार पुत्रकी अमङ्गलकी आशङ्कासे यशोदा मैया किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयीं। उनका सारा शरीर काँपने लगा, महाभयके कारण उनके दोनों नेत्र मृग-शावककी भाँति चञ्चल हो उठे और विस्फारित हो गये। वे इस दृश्यको देखकर स्थिर नहीं रह सकीं और उन्होंने विस्मयसे आँखें मूँद लीं।

इस प्रकार श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिने परम अद्भुत ऐश्वर्यमयी लीलाको प्रकाश किया, परन्तु माँ यशोदाके वात्सल्यप्रेमके उसका

अनुमोदन न करनेसे वह प्रकाशित होकर भी तत्क्षण ही अन्तर्हित हो गयी। माँ यशोदाको विश्वरूप दिखाकर लीलाशक्ति उन्हें सान्त्वना नहीं दे सकी। इससे उनका प्रेम और भी बढ़ गया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्तिपादने इस लीला-माधुर्यका विकाश किया है।

पूतना-वध, शकट-भञ्जन और तृणावर्त्त-वध आदि लीलाओंमें श्रीकृष्णका जो ऐश्वर्य प्रकट हुआ, वह दूसरे किसी अवतारमें नहीं हुआ है। उनके मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि अवतारोंमें उन असुरोंसे भी बढ़कर भयानक मूर्त्ति प्रकाशकर भगवान्ने असुरोंका संहार किया है। परन्तु कृष्णने बालकदेहमें ही ऐश्वर्यको छिपाकर अनायास ही असुरोंका संहार किया है। अतएव पूतना-वध आदि लीलाओंमें ऐश्वर्य अचिन्त्य और अप्रतिम है। परन्तु कैसे आश्चर्यकी बात है—श्रीकृष्णकी इस अचिन्त्य-महाशक्तिको देखकर भी नन्द-यशोदा आदि गोप-गोपियोंका वात्सल्यप्रेम-महासिन्धुका एक बिन्दु भी शुष्क नहीं हुआ है। अपितु इस महैश्वर्यको देखकर नन्दनन्दनके अनिष्टकी आशङ्कासे प्रेम-सिन्धु और भी उच्छ्वसित होने लगा। उन असुरोंका आकस्मिक मरण देखकर ब्रजवासियोंने सिद्धान्त किया कि नन्द-यशोदाके सौभाग्यवशः उनके पुत्रका कोई अनिष्ट नहीं हुआ है एवं अनिष्टकारी असुरोंका निधन हो गया है।

पूतना-वध आदि लीलामें श्रीकृष्णका अचिन्त्य महा-ऐश्वर्य प्रकाशित होनेपर भी नन्द, यशोदा एवं ब्रजवासी गोप-गोपीगण श्रीकृष्णके अनिष्ट-आशङ्कासे मुक्त नहीं हो सके। परन्तु श्रीकृष्ण विग्रहका विभुत्व दिखलानेवाली शक्ति अर्थात् जिस शक्तिके द्वारा श्रीकृष्णका विग्रह यशोदाकी गोदमें होकर भी उन्हें सर्वव्यापीके रूपमें समझा जाता है, श्रीकृष्ण विग्रहके उस अचिन्त्यशक्तिका नाम विभुत्व दर्शिका शक्ति है। उसी लीलाशक्तिने माँ यशोदाकी अनिष्ट-आशङ्काको दूर करनेके लिए श्रीकृष्णके मुखके अन्दर विराट् रूप दिखलाया, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। बल्कि परम विशुद्ध वात्सल्य-प्रेमवती यशोदा मैयाका भय और विस्मय और भी अधिक बढ़ गया।

इससे यशोदा माताका वात्सल्यप्रेम शिथिल नहीं हुआ, बल्कि प्रेमके स्वभावके कारण कृष्णके अनिष्टकी आशङ्का बड़ गयी। इससे प्रेम शिथिल होना बहुत दूर, वह और भी घना हो गया।

इस प्रकार वात्सल्यवती माता यशोदाकी वात्सल्यप्रेमरूपी महादेवीकी परीक्षा लेनेके लिए कभी-कभी श्रीकृष्णकी अचिन्त्य-महाशक्तिका आविर्भाव होता है, परन्तु कभी भी उस प्रेमको पराभूत नहीं कर पाती। इसलिए वह परम ऐश्वर्यमयी महाशक्ति माँ यशोदाके वात्सल्यप्रेमसे पराजित होकर उनकी जय घोषणा करती है।

ऐश्वर्यज्ञान-शून्य विशुद्ध प्रेमका स्वभाव यह है कि श्रीकृष्णके किसी प्रकारके ऐश्वर्यको स्वीकार करने ही नहीं देता है, वह सर्वदा श्रीकृष्णको प्रेमके अनुरूप सम्बन्धके अनुगत रखकर लीलारसका परिपूर्ण आस्वादन कराता है। जितने भी भक्त ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित प्रेमी हैं, श्रीकृष्णके ऐश्वर्यकी स्फूर्ति होनेपर उनका प्रेम-सम्बन्ध शिथिल हो जाता है अर्थात् ढीला पड़ जाता है। ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित वात्सल्य-प्रेमवान वसुदेव और देवकी, श्रीकृष्णकी चतुर्भुजमूर्ति देखकर ही पुत्रभावको जलाञ्जलि देकर उनका स्तव करने लग गये थे। परन्तु ऐश्वर्यज्ञान-शून्य विशुद्ध वात्सल्यप्रेमवती माँ यशोदाकी दृष्टिमें श्रीकृष्णका कोई भी ऐश्वर्य कभी भी गौरव प्राप्त नहीं कर सका या अपना अस्तित्व बनाये रखनेमें समर्थ नहीं हुआ॥ ३४-३७॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सप्तम अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

अष्टम अध्यायका कथासार

प्रस्तुत अध्यायमें श्रीकृष्णका नामकरण, रिङ्गण (घुटनोंपर चलना) गव्यमोषण, मिट्टी-भक्षण और विश्वरूप प्रदर्शन आदि लीलाओंका वर्णन हुआ है।

एक समय वसुदेवके द्वारा प्रेरित होकर यदुवंशीय पुरोहित श्रीगर्गमुनि नन्दालयमें उपस्थित हुए। महाराज नन्दके द्वारा मुनिकी सादर-अभ्यर्थना करनेके पश्चात् उनसे राम-कृष्णका नामकरण करनेकी प्रार्थना करनेपर गर्गमुनिने उन्हें कंसके भयके विषयमें बतलाकर कहा कि मेरे द्वारा यह कार्य सम्पन्न होनेपर निश्चित ही कंसके मनमें यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि कृष्ण ही देवकीनन्दन है। तब नन्द महाराजके यह कहनेपर कि वह अन्य लोगोंसे अज्ञात रूपसे यह कार्य सम्पन्न करेंगे, गर्गमुनिने अज्ञात रूपमें ही यह कार्य सम्पन्न किया। रोहिणीनन्दन अपने गुणोंसे सुहृत्तजनोंका आनन्द विधान करनेके कारण 'राम', अत्यन्त बलशाली होनेके कारण 'बलदेव' और परस्पर विवाद करते समय यादवोंको शिक्षा देकर भलीभाँति उनका मेल-मिलाप करानेमें निपुण होनेके कारण 'सङ्कषण' आदि नामोंसे परिचित हुए। यशोदानन्दन पूर्व जन्मोंमें शुक्ल, रक्त और पीतवर्ण थे, किन्तु अब कृष्णवर्ण होनेके कारण 'कृष्ण' एवं किसी समय वसुदेवके पुत्र होनेके कारण 'वासुदेव' नामसे परिचित हुए। इसके अतिरिक्त गुण और कर्मानुसार उनके अनन्त नाम हैं। इस प्रकार नामकरण संस्कार सम्पन्न होनेपर गर्गमुनिने नन्द महाराजको पुत्रका सावधानीसे पालन करनेकी आज्ञा देकर वहाँसे विदायी ली। अतःपर श्रीशुकदेव गोस्वामीने राम-कृष्णके रिङ्गण, पैरोंके द्वारा विचरण, गव्यमोषण (गव्यपहरण), गव्यभाण्ड-भञ्जन, आदि अनेक बाललीलाओंका वर्णनकर कृष्णकी मिट्टी-भक्षणलीला, ग्वालबालोंका इस विषयमें मैया यशोदाके निकट अभियोग, यशोदाके द्वारा शासन करनेपर कृष्णका अपने पक्षमें प्रमाण देनेके लिए मुख खोलना एवं

मैयाका कृष्णके मुखमें विश्वरूपका दर्शनकर उनके प्रति ऐश्वर्यभावका उदय होनेके कारण सम्भ्रम बुद्धि तथा अगले मूहूर्त्तमें ही कृष्णकी योगमायाके बलसे उनके प्रति वात्सल्यभावकी स्फूर्ति आदि लीलाओंका वर्णन किया। तदनन्तर महाराज परीक्षितकी प्रार्थनापर वसुदेव-देवकीकी अपेक्षा नन्द-यशोदाके सौभाग्यका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेव गोस्वामीने वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी धरा देवीका ब्रह्माजीके आदेशसे पृथ्वीपर आकर नन्द-यशोदाके रूपमें जन्म ग्रहण और ब्रह्मवरसे स्वयं भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त करना आदि घटनाओंका वर्णन किया।

अष्टमोऽध्यायः

नामकरण-संस्कार और बाललीलाएँ

श्रीशुक उवाच—

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः।

व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

अन्वयः—राजन् (हे परीक्षित्!) यदूनां (यदुवंशियोंका) पुरोहितः (कुलाचार्य) सुमहातपाः (अतिशय तपस्या-सम्पन्न) गर्गः (गर्गाचार्य) वसुदेवप्रचोदितः (वसुदेव द्वारा प्रेरित होकर) नन्दस्य (गोपराजके) व्रजं (गोष्ठमें) जगाम (गये) ॥ १ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्! परम तपस्वी श्रीगर्गाचार्यजी यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दगोकुलमें पधारे ॥ १ ॥

सारार्थदर्शिनी टीका

अष्टमे नामकरणं रिङ्गणं गव्यमोषणम्।

मृद्धक्षणं विश्वरूपदर्शनञ्च निगद्यते ॥

असुरवधप्रसङ्गसङ्गत्यैव तृणावर्तवधमुक्त्वा तत्प्राचीनानि नामकरणादीनि चरितान्यनुस्मृत्य वक्तुमुपक्रमते—गर्गः पुरोहित इत्यादिना ॥ १ ॥

भावानुवाद—इस आठवें अध्यायमें श्रीकृष्णका नामकरण, रिङ्गण (घुटनोंके बल चलना), दही-मक्खनकी चोरी, मिट्टी खाना और विश्वरूप दर्शन—इन सभी लीलाओंका वर्णन हुआ है।

असुर-वध प्रसङ्ग-क्रममें तृणावर्त-वधका वर्णनकर उसके पहले घटित श्रीकृष्णके नामकरण आदि चरित्रका स्मरणकर श्रीशुकदेवजीने उसे कहना आरम्भ किया—‘यदुकुल-पुरोहित गर्गाचार्य’ इत्यादि ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।

आनर्चाधोक्षजधिया

प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥

अन्वयः—तं (गर्गाचार्यको) दृष्ट्वा (अपने भवनमें आते हुए देखकर नन्द महाराजने) परमप्रीतः (परमानन्दमें मग्न होकर) प्रत्युत्थाय (अपने आसनसे उठकर) कृताञ्जलिः (हाथ जोड़ते हुए) [तथा] प्रणिपात पुरःसरं (जमीनमें लेटकर प्रणाम करते हुए) अधोक्षजधिया (भगवत्-बुद्धिसे) आनर्च (पूजा की) ॥ २ ॥

अनुवाद—महाराज नन्द उन्हें देखकर बड़े ही आनन्दित हुए। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। इसके बाद भगवत्-बुद्धिसे उनका अर्चन किया ॥ २ ॥

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम्।

नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सूपविष्टं (पादप्रक्षालन करनेके पश्चात् आसनमें बैठनेपर) कृतातिथ्यं (मधुपर्क आदि द्वारा सत्कार करनेके बाद) मुनिं (श्रीगोविन्द चरणकमल-मननशील गर्गाचार्यको) सूनृतया गिरा (प्रिय सम्भाषण आदि द्वारा) नन्दयित्वा (अभिनन्दितकर) अब्रवीत् (नन्द महाराजने कहा) ब्रह्मन् (हे सर्ववेदार्थ ज्ञानके द्वारा सर्वोत्तम!) पूर्णस्य (हे आप्तकाम!) किं करवाम (हम आपकी क्या कर सकते हैं? अर्थात् हम कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हैं) ॥ ३ ॥

अनुवाद—मुनिवर विधिपूर्वक आतिथ्य सत्कार प्राप्त करके जब सुखपूर्वक बैठ गये तब नन्द महाराजने बड़े ही विनीत वचनोंसे उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—हे मुनिवर! भगवद्भक्तिके प्रभावसे आप पूर्णकाम हैं, इसलिए आपकी प्रीतिके लिए मैं क्या करूँ—यह समझ नहीं पा रहा हूँ ॥ ३ ॥

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्।

निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥

अन्वयः—भगवन् (हे सर्वैश्वर्य परिपूर्ण!) गृहिणां (गृहमें आसक्त) दीन चेतसां (गृह, पुत्र, वित्त आदिके संरक्षणमें निरन्तर व्याकुल-चित्त) नृणां (मनुष्योंके) निःश्रेयसाय (समस्त प्रकारके मङ्गलके लिए) महद्विचलनां (आप जैसे महान् पुरुषोंका अपने आश्रमसे अन्यत्र जाना) कल्पते (सम्भव होता है) अन्यथा (विषयासक्त जनोकी भाँति स्वार्थसिद्धिकी कामनासे) न (महान् पुरुषोंका विचरण सम्भव नहीं है) ॥ ४ ॥

अनुवाद—हे भगवन्! आपके जैसे महापुरुष अपने स्वार्थके लिए अपने आश्रमका परित्याग करके कहीं नहीं जाते। हमारे जैसे दीन चित्तवाले गृहस्थ मनुष्योंके परम मङ्गलके लिए ही आप लोगोंका आगमन होता है। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई कारण नहीं है ॥ ४ ॥

सारार्थदर्शिनी—पूर्णस्य तव किं करवाम? अपि तु, न किमपि कर्तुमर्हाम् इत्यर्थो वा। किं शब्दस्य प्रश्नार्थत्वात्—पूर्णस्य तव किमपेक्षितं वर्तते, तत् ब्रूहि, वयं करवाम—इत्यर्थो वा। आद्ये—मम त्वद्गृहागमनस्य वैयर्थ्यम्, द्वितीये—पूर्णात्त्वस्येति चेत् मैवमुभयत्राप्युभयं न व्यर्थ, प्रत्युताभिनन्दनीयत्वात् परमसार्थकम्। कृपापारवश्यात् सनत्कुमार—वामनादीनां परमपूर्णानामपि पृथु-बलिप्रभृतीनां गृहागमनस्य दृष्टत्वात्, इत्याह—महतां स्वाश्रमादन्यत्र विचलनं गृहिणां निःश्रेयसाय परममङ्गलाय कल्पते समर्थं भवति तदेव तेषामपेक्षितमपीत्यर्थः। नृणामिति—गृहिष्वपि मध्ये नृणामेव, न तु देवादीनाम्। एवं नृष्वपि मध्ये गृहिणामेव, न तु ब्रह्मचर्यादीनाम्। तत्रापि दीनं तृणादपि दुर्भगम्मन्यं चेतो येषामिति; तेष्वेव महत्कृपाधिक्यसम्भवात्, न तूत्तमम्मन्यकठोरवक्रचेतसाम् इत्यर्थः ॥ ४ ॥

भावानुवाद—‘पूर्णस्य करवाम किम्’—नन्द महाराजजीने महामुनि गर्गाचार्यसे कहा—“आप परिपूर्णकाम हैं, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? अर्थात् कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हूँ। या आप पूर्णकाम हैं, आपको किसीकी भी अपेक्षा नहीं होती। फिर भी कोई सेवा हो तो हमें आज्ञा करें, हम उसका पालन करेंगे।” इससे श्रीगर्गाचार्य मानो ऐसा कहते हैं—(१) मेरे पूर्णकाम होनेपर तुम्हारे घरमें मेरा आना निष्प्रयोजन है। (२) तुम्हें कुछ करणीय है, तो मेरा पूर्णत्व भी व्यर्थ है। परन्तु दोनों

व्यर्थ नहीं हो सकते हैं। यथार्थ रूपमें तुम्हारे द्वारा अभिनन्दित होनेसे मेरा आना परम सार्थक हुआ है। अब नन्द महाराज कहते हैं—कृपावश परमपूर्ण सनत्कुमार ऋषि जिस प्रकार पृथु महाराजके भवनमें आये थे, जिस प्रकार वामनदेव बलि महाराजके भवनमें आये थे, उसी प्रकार मैं कहता हूँ—‘महद्विचलन’ अर्थात् महत्-व्यक्तियोंका अपना आश्रम छोड़कर अन्यत्र जाना—गृही व्यक्तियोंके परम मङ्गलके लिए ही होता है।

यहाँ गृही व्यक्तियोंके घर कहनेसे स्पष्ट है कि महान पुरुष मनुष्योंके घरोंमें ही जाते हैं, देवताओंके घरोंमें नहीं। पुनः मनुष्योंमें जो गृहस्थ हैं, उनके घरोंमें ही जाते हैं, परन्तु ब्रह्मचारियोंके घरोंमें नहीं, उनमें भी ‘दीन चेतसां’ जो अपनेको तृणसे भी दीन-हीन मानते हैं, ऐसे गृही व्यक्तियोंके घरोंमें जाते हैं, क्योंकि ऐसे दीन-हीन जनोंके प्रति महत्तोंकी अधिक कृपा होती है; परन्तु जो अपनेको श्रेष्ठ मानते हैं, कठोर और कुटिल चित्तवाले हैं, उनके घरोंमें साधु नहीं जाते हैं॥ ४॥

ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्।

प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम्॥ ५॥

अन्वयः—यत् (जिसका) ज्ञानं (वास्तव सत्यको निरूपण करनेमें) अतीन्द्रियम् (इन्द्रियोंसे परे जो ज्ञान साध्य है) तत् ज्योतिषामयनं (उन ग्रह-नक्षत्र आदिका अवस्थान तथा उनके प्रतिपादक ज्योतिषशास्त्र) भवता (महान् तपस्याके कारण प्रभावशाली आपके द्वारा) प्रणीतं (संकलित हुए हैं) येन (जिनके द्वारा) पुमान् (अध्ययन-परायण व्यक्ति) साक्षात् (प्रत्यक्ष रूपसे) परावरं (पुर्वजन्मकृत और वर्तमान जन्ममें भोग्य कर्मफलको) वेद (जाननेमें समर्थ होता है)॥ ५॥

अनुवाद—हे मुनिवर! जिस ज्योतिषशास्त्रके द्वारा इन्द्रियातीत वस्तुका ज्ञान हो जाता है, वह शास्त्र आपके द्वारा ही प्रणीत है। मनुष्य इस ज्योतिषशास्त्रके आधारपर पूर्वजन्मकृत कर्म एवं वर्तमान जन्ममें उन कर्मोंके भावी फलको जान सकते हैं॥ ५॥

सारार्थदर्शिनी—बालकद्वयनामकरणार्थं प्रार्थनाबीजं सृजन्नाह—ज्योतिषां ग्रहादीनाम् अयनं ज्ञापकं ज्योतिःशास्त्रं यद्यतः अतीन्द्रियं ज्ञानं भवेत्, तद्भवता ज्ञायत इति किं वक्तव्यं? त्वया प्रणीतं कृतं, येनान्योऽपि पुमान् परमुत्तरकालभावि वस्तु अपरं पूर्वकालभूतं वस्तु वेद जानाति। तेन वार्द्धक्ये मम जातस्य पुत्रस्य जन्मलग्नादिकं विचार्य हस्तपादादिलक्षणञ्च दृष्ट्वा भद्राभद्रादिकं कथनीयमिति भावः ॥ ५ ॥

भावानुवाद—नन्द महाराज दोनों बालकोंका नामकरण करनेके लिए प्रार्थनाका कारण दिखा रहे हैं—ग्रह आदिके विषयमें जाननेके लिए एकमात्र ज्योतिषशास्त्र ही प्रमाण है, जिससे अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है। उसे केवल आप जानते हैं, ऐसा ही नहीं, आपने उस शास्त्रका प्रणयन भी किया है, जिससे दूसरे व्यक्ति भी अपने पूर्व-जन्म और वर्तमान जन्मके भोग्य कर्मफलको जान सकते हैं। इसलिए आप मेरे वृद्धकालमें उत्पन्न पुत्रका जन्म, लग्न आदि विचारकर एवं हाथ-पैरके चिह्नोंको देखकर शुभाशुभका निर्णय करें ॥ ५ ॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुमर्हसि।

बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥

अन्वयः—त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः (आप ही ब्रह्मविदोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं) जन्मना (जन्मसे ही) ब्राह्मणः नृणां गुरुः (ब्राह्मण मनुष्योंके गुरु हैं) (इसलिए आप ही) अनयोः (इन दोनों) बालयोः (यशोदा और रोहिणी कुमारका) संस्कारान् (नामकरण आदि संस्कारोंको) कर्तुमर्हसि (करनेके लिए योग्य हैं) ॥ ६ ॥

अनुवाद—आप जैसे महानुभावका आगमन मेरे परम कल्याणके लिए है। आप ब्रह्मविदोंमें श्रेष्ठ हैं एवं मन्त्रविद् हैं। आप ही मेरे इन दोनों पुत्रोंका नामकरणादि संस्कार कर दीजिये। क्योंकि ब्राह्मण जन्ममात्रसे ही मनुष्योंके गुरु होते हैं ॥ ६ ॥

सारार्थदर्शिनी—किञ्च, एतादृशमहानुभावस्यापि तव मदगृहागमनं मन्त्रिःश्रेयसायैव, तच्च मम निःश्रेयसमैहिकं पारलौकिकञ्च। तत्रैहिकं निःश्रेयसमद्य निष्पाद्यमेकं त्वच्चरणेषु निवेदयामि, कृपया शृण्वित्याह—त्वमिति। न केवलं ज्योतिर्विदामेव त्वं

श्रेष्ठ इति भावः। तेनोभयगुणयुक्तत्वात्त्वमेव दैवज्ञो मन्त्रविच्च कर्तुमर्हसीत्यर्थः। ननु, तद्गुरुणा करणीयमिति चेत्तत्राह—नृणामिति ॥ ६ ॥

भावानुवाद—आप जैसे महानुभावका मेरे गृहमें आगमन मेरे कल्याणके लिए ही हुआ है। मेरे लौकिक और पारलौकिक मङ्गलमेंसे आज एक लौकिक मङ्गलके लिए मैं आपके श्रीचरणोंमें निवेदन कर रहा हूँ। कृपापूर्वक श्रवण करें। आप ज्योतिर्विदोंमें केवल श्रेष्ठ हैं, इतना ही नहीं, ब्रह्मविदोंमें भी श्रेष्ठ हैं। दोनों गुण रहनेके कारण आप दैवज्ञ और मन्त्रविद् भी हैं, इसलिए मेरे सन्तानोंका (राम और कृष्णका) नामकरणादि संस्कार कार्य सम्पादन करें। यदि ऐसा कहें कि यह गुरुदेवका काम है, तो उसके उत्तरमें कहते हैं—‘नृणाम्’, जन्मसे ही ब्राह्मण मनुष्योंके गुरु होते हैं ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामीके महाराज परीक्षितके निकट श्रीकृष्णकी पूतना-मोक्ष लीलाकथाके वर्णन प्रसङ्गमें उनकी अपार कृपा वैभवकी कथा वर्णन करनेपर, महाराज परीक्षितजी इस प्रकार कृपा-वैभवयुक्त और भी बाललीलाओंको सुननेके लिए उत्सुक हुए। यह जानकर श्रीशुकदेवजीने उनके सामने शकट-भञ्जन लीलाका वर्णन किया। यह लीला व्रजराजनन्दनके ८१ दिनोंकी अवस्थामें हुई थी। इस लीलाका वर्णन करनेके पश्चात् महाराज परीक्षितजीके कोई प्रश्न न करनेपर भी श्रीशुकदेवजीने भावावेशमें फिरसे असुर-मारण लीला (तृणावर्त्त-वध) का वर्णन किया और उसके पश्चात् विश्वरूप-दर्शन लीलाका वर्णन किया। यह तृणावर्त्त-वध और विश्वरूप-दर्शन लीला श्रीकृष्णने एक वर्षकी अवस्थामें की थी। इसलिए श्रीकृष्णका शकट-भञ्जनके पश्चात् तृणावर्त्त-वध लीलाकी अवतारणा होनेसे श्रीकृष्णके वयसके अनुसार लीलाक्रमका उल्लङ्घन हुआ है, क्योंकि श्रीशुकदेवजी असुर-मारण आदि ऐश्वर्यलीलाओंके वर्णनमें आविष्ट हो गये थे। श्रीकृष्णकी पूतना-वध, शकट-भञ्जन, तृणावर्त्त-वध एवं विश्वरूप दर्शन आदि लीलाओंमें बालभावके अन्तर्गत अचिन्त्य महाशक्तिका समावेश और प्रकाश हुआ है। अतएव श्रीकृष्णकी ये सभी लीलाएँ एक ही भावकी

हैं। श्रीशुकदेवजी श्रीकृष्णकी एक ही प्रकारकी लीलाओंका वर्णनकर फिरसे शुद्ध बाल्यभावकी लीलाओंका वर्णन करने लगे।

श्रीकृष्णका नामकरण, रिङ्गण, मक्खन-चोरी आदि सभी बाल्यलीलाएँ शुद्ध माधुर्यमय हैं। इन सभी लीलाओंमें पूतना-वध आदिकी भाँति ऐश्वर्यकी कोई भी गन्ध नहीं है। इन लीलाओंमें केवलमात्र श्रीकृष्णकी प्रेमाधीनता और भक्तवात्सल्य गुणोंका प्रकाश हुआ है। ब्रजराजनन्दनके तीन महीने दस (१००) दिनोंके बाद अर्थात् सौवें दिन नामकरण लीलाका प्रकाश हुआ था। अतएव शकट-भञ्जन लीलाके (१९ दिनोंके) पश्चात् इस लीलाका प्रकाश हुआ है। अतः श्रीशुकदेवजीने फिरसे शकट-भञ्जनके परवर्त्ती तथा तृणावर्त्त-वधके पूर्ववर्त्ती नामकरण आदि लीलाका वर्णन करना प्रारम्भ किया।

नित्य नव-नव बाल्य लीला-विलासमें नन्द, यशोदा और ब्रजवासी गोप-गोपियोंके आनन्द-सिन्धुको तरङ्गायित करते हुए ब्रजराज-नन्दन तीन महीने दस (१००) दिनोंके हुए। ब्रजवासीगण नन्दनन्दनकी बाल्य लीला-माधुरीमें प्रतिक्षण आकृष्ट होकर सदा उसीमें डूबे रहते थे।

इधर जबसे मथुरासे वसुदेवजी कृष्णको अज्ञात रूपसे गोकुलमें यशोदाकी गोदमें रखकर आये थे, तबसे निरन्तर विविध चिन्ताओंमें डूबे हुए वसुदेवजीने दिनोंकी गणना करके देखा कि मेरा पुत्र ९९ दिनका हो गया है। अगले दिन उनका १००वाँ दिन होगा। 'दिगविशिवशताहे' आदि शास्त्र-वचनोंसे जाना जाता है कि जन्मसे दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ या सौवाँ दिवस पुत्रका नामकरण संस्कारके लिए शुभ दिन होता है। इसलिए वसुदेवजी बहुत सोच-विचारकर गर्गाचार्यके निकट गये और उनसे सारी बातोंका निवेदन किया।

जैसा कि श्रीजीव गोस्वामिपाद कृत गोपालचम्पूमें वर्णन है—
(जिस दिन नन्दनन्दनका सौवाँ दिन हुआ था) उस समय बालकके नामकरणका उपयुक्त समय जानकर उससे पहले दिन वसुदेवजीने महान् तपस्वी, महा प्रभाव-सम्पन्न परम-हितैषी एवं अपने कुल पुरोहित गर्गाचार्यके साथ एकान्तमें साक्षात्कार किया एवं जिस प्रकार

नन्दकन्याके साथ अपने पुत्रका विनिमय किया था, वह सभी वृत्तान्त उनके निकट विस्तृत रूपसे बताया। वसुदेवजीके इन सभी गुप्त बातोंको सुनकर गर्गाचार्य हैंसते हुए कहने लगे—‘मैं इन बातोंके अतिरिक्त और भी कुछ जानता हूँ।’ जैसा भी हो, अब इस समय मुझे क्या करना होगा, वह कहिये। गर्गाचार्यकी इस बातको सुनकर वसुदेवजीने कहा—आप कृपापूर्वक नन्दब्रजमें जाकर अपने यजमान पुत्रोंका नामकरण संस्कार करा दें। गोकुलमें उनका उपनयन और विवाह न हो, उसकी भी व्यवस्था करेंगे। गर्गाचार्यने कहा—यह सच है, अपने पक्षकी ही रक्षा करनी चाहिये।

वसुदेवजीके साथ इस प्रकार परामर्शकर दूसरे दिन प्रातःकाल गर्गाचार्य नन्दालयमें उपस्थित हुए। जिनसे अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंकी प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक जीवके नाम और रूपका प्रकाश होता है, गर्गाचार्य उस ब्रह्माण्डपति भगवान्का नामकरण करनेके लिए नन्दालयमें उपस्थित हुए। उन्होंने नन्दनन्दनके भुवनमङ्गल ‘कृष्ण’ नामको प्रकाशित किया। अतएव गर्गाचार्य महान् तपस्वी और प्रभावशाली हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

गोपालचम्पूमें देखा जाता है—नन्द महाराज जिस समय प्रातःकालीन सन्ध्या-वन्दना आदि कार्यमें लिप्त थे, उसी समय गर्गाचार्यका नन्दभवनमें शुभागमन हुआ था।

तत्रैव सर्वतोऽप्यतिरिक्ते----तूर्णमभ्यर्णत एव निश्वणि॥

(गोपालचम्पू)

गोकुलमें एकान्त निर्जन एवं पवित्र स्थानमें बैठकर बाल्यकालसे ही नन्द महाराजजी सर्वसुलक्षणयुक्त लक्ष्मी-नारायण शिलामें अष्टाक्षर मन्त्रके द्वारा अपने अभीष्टदेवकी उपासना किया करते हैं। जिस दिन गर्गाचार्य नन्दालयमें आये थे, उस दिन प्रातःकाल नन्द महाराजने पूजा-उपसनाके पश्चात् बाहरकी ओर देखा, तो सब बछड़े किसी एक अपरिचित व्यक्तिको देखकर कान उठाकर देख रहे थे। इससे नन्द महाराजजीने ऐसा सोचा कि कोई अपरिचित व्यक्ति यहाँ आ रहा है। उसके पश्चात् उन्होंने देखा कि सर्वज्ञ-शिरोमणि, मुनियोंमें सर्वप्रधान, सामगान-परायण ज्योतिषाचार्य गर्गाचार्यजी यहाँ आ रहे हैं।

गर्गाचार्यके आगमनसे नन्द महाराजने मानो हाथमें स्वर्ग प्राप्त कर लिया। वे परमानन्दमें विभोर हो गये। उनके मनमें धारणा हुई कि अब हमारा सब प्रकारसे कल्याण होगा। इतने दिनोंमें नारायणकी सेवा सफल हुई है, नहीं तो महाप्रभावशाली सर्वज्ञ-शिरोमणि गर्गाचार्यजीकी चरण-धूलि हमारे घरमें कैसे पड़ती? आज मेरा परम सौभाग्य है। हम अपने वंश-सहित कृतार्थ हो गये। यदि गर्गाचार्यजी मेरे बालकके सिरपर चरण-धूलि प्रदानकर आशीर्वाद कर दें, तब तो मेरे बालकका कोई कभी अमङ्गल नहीं कर सकेगा।

नन्द महाराजजी अति आदरपूर्वक आसन छोड़कर खड़े हुए तथा हाथ जोड़कर आगे बढ़ते हुए गर्गाचार्यजीके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्हें आसन दिया तथा सुवासित जलके द्वारा उनके पाँव-पखारकर उस पवित्र चरणामृतको मस्तकपर धारणकर यथाविधि अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क आदि देकर उनकी पूजा अर्चना की। नन्दमहाराज मन-ही-मन विचारने लगे कि अब तक मैं शालग्राम शिलामें जिनकी पूजा करता आया हूँ, वही प्रत्यक्ष होकर वेदज्ञ ब्राह्मण-मूर्तिके रूपमें मेरे गृहमें अतिथि हुए हैं, इसलिए मेरे सौभाग्यकी कोई सीमा नहीं है।

गर्गाचार्यके आसनपर सुखपूर्वक बैठ जानेपर नन्द महाराज उनके पाद-सम्वाहन तथा चामर-व्यजन आदि करते हुए विनीत भावसे कहने लगे कि 'पूर्णस्य करवाम किम्'? आप वेदज्ञ हैं तथा सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं एवं सर्वदा परिपूर्ण-काम हैं—फिर भी मैं आपका कौन-सा आदेश पालन करूँ—आप आज्ञा करें।

आप जैसे महत् व्यक्तियोंका अपने वासस्थानसे अन्यत्र आने-जानेका कुछ भी प्रयोजन नहीं होता है। फिर भी आपलोगोंका गृहस्थोंके घरपर आगमन देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आप उनके इहलोक और परलोक दोनोंका कल्याण साधन करनेके लिए ही उनके गृहमें आते हैं। गृहव्रती व्यक्ति सर्वदा स्त्री, पुत्र, परिजन, गृह और देह आदिमें व्यस्त रहते हैं। उनका दैन्य या अभाव कभी भी दूर नहीं होता है। नित्य-नये अभावकी मारसे वे सदा-सर्वदा

उत्पीड़ित रहते हैं। आपकी भाँति महत् व्यक्तियोंके चरणोंका स्पर्श होनेसे उनका गृह पवित्र होता है एवं सर्वविध अमङ्गल दूर होता है।

आज मेरा परम सौभाग्य है कि आप जैसे महात्मा मेरे घर पधारे हैं, आज वंशके सहित मैं कृतार्थ हो गया। आपके निकट मैं क्या प्रार्थना करूँ, आप सब कुछ जानते हैं। आप कृपापूर्वक मेरे इन दोनों बालकोंका नामकरण संस्कारकर तथा आशीर्वाद प्रदानकर मुझे कृतार्थ करें। ब्राह्मण समस्त वर्णोंके गुरु हैं, आप दैवज्ञ हैं, अतएव आपके लिए कुछ भी असङ्गत नहीं है। आपकी कृपासे मेरी प्रार्थनाका अनुमोदन होनेपर मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। गर्गाचार्यके निकट इस प्रकार अपना मनोभाव प्रकाशकर नन्द महाराजजी उनके आदेशकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ १-६ ॥

श्रीगर्ग उवाच—

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा।

सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—श्रीगर्ग उवाच (श्रीगर्गाचार्यने नन्द महाराजको कहा) अहं यदूनाम् आचार्यः (मैं यादवोंका पुरोहित हूँ) सर्वदा भुवि (इस संसारमें निरन्तर) ख्यातः च (प्रसिद्ध हूँ, अतएव) मया संस्कृतं ते (मेरे द्वारा संस्कार किये गये तुम्हारे) सुतं (पुत्रको संसारके लोग या कंस) देवकी सुतं (देवकी पुत्र) मन्यते (समझेंगे) ॥ ७ ॥

अनुवाद—श्रीगर्गाचार्यने कहा—हे नन्दजी! मैं यदुकुलका पुरोहित हूँ—यह जगत्में सर्वत्र प्रसिद्ध है। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार करूँगा तो कंस समझेगा कि यह देवकीका पुत्र है ॥ ७ ॥

सारार्थदर्शिनी—स्वयं बिभ्यदत्युत्साहिनं नन्दञ्च कंसाद्भीषयमाणः सुगुप्तमेवैतत् कारयेत्यभिप्रायेण प्रत्याचक्ष्ण इवाह—यदूनामिति। तव यदुत्वेऽपि क्षत्रियत्वाभावान्न यदुत्वं ख्यातिः। अहन्तु यदुपुरोहितत्वेन ख्यातः, मत्कृत्यमिदं न गुप्तं स्थास्यतीति भावः ॥ ७ ॥

भावानुवाद—गर्गाचार्यने स्वयं भयभीत होकर अति-उत्साही नन्द महाराजको गुप्त रूपसे इस कार्यको करनेके विषयमें कहा—आप

यदुवंशी होनेपर भी क्षत्रिय नहीं हैं और मैं यदुवंशियोंके पुरोहितके रूपमें विख्यात हूँ, इसलिए मेरे द्वारा यह कार्य सम्पन्न होनेपर यह बात गुप्त नहीं रहेगी ॥ ७ ॥

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥

इति सञ्चिन्तयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।
अपि हन्तागताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥

अन्वयः—पापमतिः (दुरात्मा) कंस च तव (कंस तुम्हारे) (नन्द और वसुदेवका) सख्यं (बन्धुत्व) (और) देवक्याः दारिकावचः (कन्यारूपिणी योगमायाका वचन) श्रुत्वा (सुनकर) देवक्या (देवकीका आठवाँ गर्भ कन्या) न अर्हति (नहीं हो सकती है) इति सञ्चिन्तयन् (ऐसा निश्चय करेगा) (विशेषकर) मत्कृत (मेरे द्वारा किये गये संस्कारसे) गताशङ्कः (आशङ्कायुक्त होकर) अपि (यदि) हन्ता (इस बालकका विनाश कर डालता है) तर्हि (तब) तत् नः (तो हमारा) अनयः (महा अनर्थ हो जायेगा) ॥ ८-९ ॥

अनुवाद—कंस बड़ा पापी है। देवकीकी कन्यारूपिणी योगमायाने जबसे उससे कहा है कि 'तुम्हें मारनेवाला कहीं और पैदा हो चुका है' तबसे वह दिन-रात यही सोचता है कि देवकीके आठवें गर्भमें कन्याका जन्म नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है—वह पापमति यह भी जानता है। फिर मेरे द्वारा किये गये तुम्हारे पुत्रके नामकरण-संस्कारको जानकर उसकी शङ्का और भी अधिक दृढ़ हो जायेगी, तब यदि वह इस बालकको वसुदेवजीका पुत्र समझकर मार डालेगा, तो हमसे बड़ा अन्याय हो जायेगा ॥ ८-९ ॥

सारार्थदर्शिनी—सर्वतः सर्वस्यां, मन्यते मंस्यते। नन्वेतावत् कोऽनुसन्धास्यते? तत्राह—कंसः। तदपि त्वयि तु ब्रह्मवादिनि, सोऽपि न द्रोहमाचरिष्यतीति चेदत आह—पापमतिः; मादृशान् जिघांसत्येवेति भावः। किञ्च, तवाप्यवश्यमप-
करिष्यत्येवेत्याह—सख्यमिति; वसुदेवद्रोहिणः कंसस्य वसुदेवसखे त्वय्यपि द्रोहसम्भवादिति

भावः। तत्रैवं कुयुक्तिं स्रक्ष्यतीत्याह—देवक्या इति। देवकीदारिकावचः श्रुत्वा अष्टमो गर्भो न स्त्रीभवितुमर्हतीति चिन्तयन् इत्यन्वयः। मच्छत्रुविष्णुरेव देवक्या गर्भं जात एव, किन्तु वसुदेवशिक्षया तस्य सख्युर्नन्दस्य गृहे प्रविष्ट इति। देवकीदारिकावच इति मदिष्टदेवी दुर्गेव देवकीदारिकारूपा भूत्वा 'यत्र क्वचिज्जात' (श्रीमद्भा० १०/४/१२) इति पदेन देवक्यामपि जन्म सम्भाव्य विष्णुनिषेधशङ्कयैव मां स्पष्टमनुक्त्वा तमन्विष्य शीघ्रं जहीति मामभिव्यञ्जयामासेति चिन्तयन्, तदन्वेषणे प्रवृत्तौ मन्नामकरणलिङ्गेन आगता नन्दगृहे वसुदेवसुतोऽस्तीत्याशङ्का यस्य तथाभूतः सन्नागत्य यदि हन्ता हनिष्यति, तर्हि नोऽस्माकं महान् अनयः। यदीति अपीति च पाठः ॥ ८-९ ॥

भावानुवाद—‘सर्वतः मन्यते’—गर्गाचार्यने कहा—मेरे द्वारा नामकरण किये जानेसे पापमति कंस इसे देवकीका पुत्र मानकर कोई भी अनिष्ट कर सकता है। इसलिए मैं डरता हूँ। वह ब्राह्मण या पुरोहित किसीको भी नहीं मानता है। ‘पापमतिः’ पापात्मा कंस मेरी भी हत्या करनेसे पीछे नहीं हटेगा तथा आपका भी अपकार करेगा। विशेषकर आपके साथ वसुदेवकी जो मित्रता है, वह कंस अच्छी तरहसे जानता है। इसलिए मुझे वसुदेवजीके द्वारा प्रेरित जानकर कंस आपके साथ भी द्रोह आचरण कर सकता है। ‘देवक्या’—और फिर उसकी धारणा भी यह है कि देवकीके अष्टम गर्भमें कदापि कन्याका जन्म नहीं हो सकता है। देवकी-कन्या महामायाका वचन भी दिन-रात उसके मस्तिष्कमें गूँजता रहता है। मेरे शत्रु विष्णुका जन्म देवकीके गर्भसे ही हुआ है, परन्तु वसुदेवके निर्देशसे उसके सखा नन्द गोपके भवनमें छिपकर रह रहा है। मेरी इष्टदेवी श्रीदुर्गाने ही देवकीकी कन्याका रूप धारणकर, ‘यत्र क्वचिज्जातः’ (१०/४/१२)—तुम्हारे पूर्वशत्रु विष्णुने कहीं जन्म ले लिया है—ऐसा जो कहा है, इस वचनसे देवकीसे भी उसके जन्मकी सम्भावनाकर विष्णुके द्वारा निषेध किये जानेसे, डरकर उसने स्पष्ट करके नहीं कहा, केवल ‘उसे दूँढ़कर विनाश करो’ इस प्रकार सङ्केत किया है। ऐसा विचारकर वह उसे दूँढ़नेका प्रयास कर रहा है। ऐसी स्थितिमें यदि मैं आपके पुत्रका नामकरण-संस्कार करूँगा, तो इसका पता चलनेपर कंसको पूर्ण विश्वास हो जायेगा कि आपका पुत्र वास्तवमें वसुदेवका पुत्र है, तब आपके पुत्रके प्रति

अत्याचार करनेमें पापी कंस पीछे नहीं हटेगा। तब तो हमें बड़ा ही दुःख होगा ॥ ८-९ ॥

श्रीनन्द उवाच—

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे।

कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥

अन्वयः—श्रीनन्द उवाच—(गर्गमुनिके प्रति) (श्रीनन्द महाराज कहने लगे—)(यदि कंससे बच्चोंके अनिष्टकी आशङ्का है, तो) अस्मिन् गो व्रजे (इस गोष्ठमें) मामकैः अपि (मेरे आत्मीय जनोंके) अलक्षितः (अज्ञात रूपसे) रहसि (एकान्त स्थानमें) स्वस्तिवाचनपूर्वकं (स्वस्तिवाचनके साथ) द्विजाति-संस्कारं (द्विजाति जनोचित अवश्य कर्तव्य संस्कारमात्र) कुरु (करें) ॥ १० ॥

अनुवाद—(श्रीनन्दजीने मन-ही-मन विचार किया आज भाग्यसे ऐसे आचार्य आये हैं, फिर कब इनका आना होगा, यह निश्चित नहीं है। अतः बाजे आदि तो फिर बज जायेंगे, अभी केवल शास्त्रीय आवश्यक कृत्य करा लेता हूँ) श्रीनन्दमहाराजने गर्गमुनिसे कहा—आचार्यवर! यदि आपको कंससे इस बालकके इस प्रकारकी अनिष्टकी आशङ्का है तो गोशालामें एकान्त स्थान है—गोपालक दिनमें अपनी गायोंको वनमें ले जाते हैं। मेरे भाई आदि आत्मीय, स्वजन कोई भी इस बातको जान नहीं पायेंगे। आप स्वस्तिवाचन करके इन दोनों बालकोंका द्विजाति-जनोचित नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये ॥ १० ॥

सारार्थदर्शिनी—‘भाग्यवशादेव मद्गृहमायातमीदृशमाचार्यं कदा पुनरहं लप्स्ये? तस्माद्वादित्राद्युत्सवाङ्ग दिनान्तरे सविस्तारं करिष्ये, साम्प्रतमद्य केवलं शास्त्रीयमावश्यकं कृत्यमेवैतत्तद्वारा कारयामि’ इति मनसि विभाव्याह—अलक्षित इति। मामकैर्भ्रात्रादिभिरपि, गोव्रजे इति—स्थानसंस्कारोपि नापेक्ष्यः। रहसीति—दिने सपालानां गवां वने गमनात्। द्विजातिसंस्कारं बालयोरनयोः क्षत्रवैश्यानुरूप नामकरणलक्षणं पुण्याहस्वस्ति-ऋद्धयस्त्रिस्त्रिरुक्त्या स्वस्तिवाचनं भवेत् तस्य सर्वकर्मस्यावश्यकत्वात् तत्पूर्वकम् ॥ १० ॥

भावानुवाद—बड़े सौभाग्यसे आज मेरे घरमें महान् आचार्यका आगमन हुआ है, पुनः कब उनका आगमन होगा ठीक नहीं, दूसरे किसी दिन नृत्य, गीत और वाद्य आदिके द्वारा उत्सवका अनुष्ठान कर लूँगा—आज केवल शास्त्रीय आवश्यक कार्य इनसे करा लूँ—ऐसा मन-ही-मन विचारकर नन्द महाराजजीने कहा—‘अलक्षितः’—मेरे भाई आदि आत्मीय स्वजनोंके अलक्षित रूपमें एकान्त निर्जन गोष्ठमें, जहाँ संस्कारकी कोई अपेक्षा नहीं है, सभी गोपगण इस समय गोचारणके लिए बाहर गये हुए हैं। अतएव आप उस एकान्तमें बैठकर बालकोंका क्षत्रिय एवं वैश्य अनुरूप नामकरण आदि संस्कार सम्पादन करें। केवलमात्र आप स्वस्तिवाचनपूर्वक (पुण्याह, स्वस्ति और ऋद्धि) तीन-तीन बार पाठ कराकर स्वस्तिवाचन कर दें। यह सभी कर्मोंमें आवश्यक होनेके कारण आप केवल स्वस्तिवाचन करते हुए नामकरण कर दें॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत्।

चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥

अन्वयः—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितको कहा—) एवं संप्रार्थितः (इस प्रकार श्रीनन्द महाराजके द्वारा सम्यक् रूपसे प्रार्थित होकर) विप्रः (गर्गाचार्यने) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) स्वचिकीर्षितं एव (अपने अभिलषित) तं बालयोः (दोनों बालकोंका) नामकरणं (नामकरण-संस्कार) गूढ (गुप्त रूपसे) रहसि (निर्जनमें) चकार (सम्पन्न किया) ॥ ११ ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—गर्गाचार्यजीको यही अभिलषित था कि इस प्रकार निर्जनमें ही नामकरण-संस्कार होना चाहिये। जब नन्दमहाराजने प्रार्थना की, तब उन्होंने उन दोनों बालकोंका एकान्त निर्जन स्थानमें अति गोपन भावसे नामकरण-संस्कार कर दिया ॥ ११ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वात्सल्यप्रेमिक कोई भी व्रजवासीगण नन्दनन्दनको सर्वकारण-कारण भगवान्के रूपमें नहीं जानते। वे प्रेमके

अनुरूप श्रीकृष्णको सामान्य बालकके रूपमें ही जानते हैं एवं उसी प्रकार लालन-पालन आदि करते हैं। गर्गाचार्यके आगमनसे नन्द महाराजके मनमें यही अभिलाषा है कि नामकरण-प्रसङ्गमें गर्गाचार्यसे बालकका शुभाशुभ जान लेंगे एवं उनके आशीर्वादसे बालकका समस्त प्रकारसे कल्याण होगा तथा समस्त अशुभ दूर होंगे। इसलिए नन्द महाराजजी गर्गाचार्यजीसे बारम्बार पुत्रके नामकरण-संस्कारके लिए प्रार्थना करने लगे।

गर्गाचार्यजी प्रेमवान् होनेपर भी नन्द, यशोदा या ब्रजवासी गोप-गोपियोंकी भाँति प्रेमान्ध नहीं हैं। वे नन्दनन्दनके सभी तत्त्व जानते हैं। नन्द महाराजका व्यवहार देखकर तथा पुत्रकी मङ्गल कामनासे विविध प्रकारकी प्रार्थना सुनकर वे निर्वाक् हो गये तथा मन-ही-मन नन्द-यशोदाके विशुद्ध वात्सल्यप्रेमको देखकर नन्द-नन्दनकी प्रेमाधीनताका विचार करने लगे।

वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि नन्द महाराजजीके वात्सल्यप्रेममें कोई बाधा न डालकर कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करें। नन्दनन्दनका नामकरण करते समय उनका नित्यसिद्ध नाम प्रकाश करना होगा एवं अतीत-भविष्यका फलाफल कहना होगा। उनकी अतीत-भविष्यकी लीलाकथा भी कहनी होगी। अतएव नामकरण करते समय यदि कोई उपस्थित न रहे, तब तो अस्पष्ट भाषामें या दो अर्थयुक्त शब्दोंके द्वारा सभी तत्त्वोंका प्रकाश किया जायेगा। इन सभी बातोंको सुनकर नन्द-यशोदा प्रेमके अनुरूप अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु नामकरणके समयमें यदि नन्द-यशोदाके अतिरिक्त दूसरे कोई उपस्थित रहते हैं, तो वे मेरी बातोंकी समालोचना कर सकते हैं। परन्तु नन्द-यशोदाके लिए कोई चिन्तावाली बात नहीं है। क्योंकि वे विशुद्ध वात्सल्य प्रेममें डुबे हुए हैं। उनके निकट कोई ऐश्वर्यकी बात करनेपर भी वे अपना सम्बन्ध भूले बिना ही प्रेमके अनुरूप भावको ग्रहण करेंगे। विशुद्ध प्रेमका यही स्वभाव है कि कभी उसमें भावान्तर नहीं होता है। भगवान् भी किसीका भावान्तर कराकर कोई लीला नहीं करते हैं। इसलिए प्रेमाधीन भगवान् प्रेमवान् भक्तके साथ ही प्रेमलीलामें मत्त रहते हैं। अतः मैं निर्जनमें अपना काम पूरा

करके अपने स्थानपर गमन करूँगा। यह सोचकर गर्गाचार्यजीने पहले नन्द महाराजके हृदयमें कंस-भय उत्पन्न कराकर नामकरणके लिए निर्जन स्थानकी व्यवस्था करनेके लिए कहा।

गर्गाचार्यजीने मृदु-गम्भीर एवं मधुर वचनोंसे नन्द-गृहको मुखरित और पूर्ण रूपसे आश्वस्तकर दाहिना हाथ उठाते हुए नन्द महाराजसे कहा—गोपराज! आपका कल्याण हो एवं आपकी सब प्रकारकी मनोवासनाएँ पूर्ण हों। अपने पुत्रके नामकरण-संस्कारका भार मेरे ऊपर अर्पण करना आपके लिए युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि मैं यदुवंशियोंके पुरोहितके रूपमें विख्यात हूँ। मैं यदि आपके पुत्रका नामकरण-संस्कार करूँगा, तब कंस आदि जितने भी दुष्ट व्यक्ति हैं, वे सोचेंगे कि सम्भवतः देवकीका पुत्र किसी भी उपायसे नन्दालयमें पहुँच गया है और वहीं छिपकर रह रहा है। कंसके जैसे असाधु स्वभाववाले व्यक्तिके लिए सत्कार्यमें भी असत् धारणा कोई आश्चर्य नहीं है।

आपके साथ वसुदेवका सख्यभाव है एवं दोनोंमें बहुत प्रीति है—यह बात कंस विशेष रूपसे जानता है। मेरे द्वारा नाम-संस्कार किये जानेपर पापमति कंस क्या विचार करेगा—यह कौन कह सकता है? विशेषकर कंसने जब देवकी-कन्याको शिलापृष्ठपर पछाड़ा था, उस समय वह कन्या दिव्य दुर्गारूप धारणकर आकाशमें चली गयी और कंसको कहकर गयी—‘जातः खलु तवान्तकृत्’—रे मूढ़ कंस! तुम्हें मारनेवालेका जन्म हो गया है। देवकी-कन्याकी बातोंसे वह कंस दिनरात मृत्युभयसे भीत होकर जी रहा है। अपने प्राणरक्षाके लिए दिनरात वह बहुत उपाय सोचता रहता है।

देवकीकी कन्याकी बातोंमें कंसको दृढ़ विश्वास है कि देवकीके आठवें गर्भसे कभी भी कन्या-सन्तानका जन्म नहीं हो सकता है। अतएव देवकीके अष्टम गर्भमें निश्चित ही पुत्र-सन्तानका जन्म हुआ है एवं कहीं भी गुप्त रूपसे अवस्थान कर रहा है। यद्यपि कारारुद्ध वसुदेव या देवकीके लिए बालकको छिपाकर रखना किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं है, फिर भी पापमति व्यक्तियोंके परामर्शसे कंस क्या सिद्धान्त करेगा, कोई ठिकाना नहीं।

उन लोगोंके परामर्शसे यह भी उसकी धारणा है कि देवकी-पुत्र ही कन्यारूप धारणकर उसकी छलनाकर कहीं छिपकर रह रहा है, समयके अनुसार प्रकट होकर शत्रुता करनेमें पीछे नहीं हटेगा। इसलिए वसुदेवजीके आत्मीय-स्वजन सबपर उसकी दृष्टि पड़ी हुई है। यहाँ तक कि मथुरा-मण्डलके सभी बच्चोंपर उसका सन्देह बना हुआ है। आत्मरक्षाके लिए वह कितने उपाय सोच रहा है। ऐसे समयमें वह यदि जान जाय कि मैंने मथुरासे आकर आपके पुत्रका नामकरण-संस्कार किया है, तब तो उसका सन्देह दृढ़ हो जायेगा। इस सन्देहके कारण कंस यदि आपके पुत्रको वसुदेव-पुत्र मान ले और कोई अनिष्ट कर बैठे, तब तो महा सङ्कट आ जायेगा। इसलिए मेरे द्वारा आपके बालकका नामकरण-संस्कार नहीं होना ही अच्छा है।

गर्गाचार्यजीकी बात सुनकर गोपराज नन्द मन-ही-मन बहुत डर गये। परन्तु गर्गाचार्यजीसे अपने पुत्रका शुभाशुभ जानने और नामकरण संस्कारका लोभ भी छोड़ नहीं सके। अतः वे विनय वचनोंसे गर्गाचार्यजीको कहने लगे—आप कृपापूर्वक अति गुप्त रूपसे इस कार्यको सम्पन्न करें। मैं कोई भी आडम्बर, अनुष्ठान नहीं करूँगा। व्रजका कोई भी गोप या घरका कोई भी व्यक्ति जान नहीं सकेगा। आप केवलमात्र स्वस्तिवाचनकर मेरे पुत्रका नामकरण-संस्कार कर दें। नन्द महाराजके इस प्रस्तावसे गर्गाचार्यजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि मेरे मनके अनुरूप व्यवस्था हुई है। तब वे बिना बाधाके एकान्तमें रोहिणीनन्दन और यशोदानन्दनके नामकरणमें प्रवृत्त हुए॥ ७-११ ॥

श्रीगर्ग उवाच—

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः।

आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः।

यदूनामपृथग् भावात् सङ्कर्षणमुशान्त्यपि ॥ १२ ॥

अन्वयः—श्रीगर्गः उवाच (श्रीगर्गाचार्यने कहा—) अयं रोहिणी पुत्रः हि गुणैः (यह रोहिणी नन्दन अपने सत्त्वशील, स्वभाव, औदार्य

आदि गुणोंके द्वारा) सुहृदः (बान्धवोंका) रमयन् (आनन्द बढ़ाते हुए) रामः इति आख्यास्यते (राम नामसे प्रसिद्ध होंगे) बलाधिक्यात् (शरीरसे अधिक बलशाली होनेसे) बलं (बल नामसे) विदुः (कहेंगे) ऊत (और भी) यदूनां अपृथग् भावात् (वसुदेव और आपके मध्यमें पितृत्व आदि भावके कारण उभय वंशको आकर्षण करेंगे, इसलिए लोग इसे सङ्कर्षण कहेंगे) सङ्कर्षण (जो विशेष रूपसे आकर्षणकर सबको एकत्रित करेंगे) अपि उशन्ति (इस प्रकार लोग सङ्कर्षण कहा करेंगे) ॥ १२ ॥

अनुवाद—श्रीगर्गाचार्यजीने कहा—यह रोहिणीका पुत्र है, इसलिए इसका नाम रोहिणेय होगा। यह अपने गुणोंसे अपने स्वजनों और आत्मियोंको अत्यधिक आनन्दित करेगा, अतः उन्हें रमण करानेके कारण यह ‘राम’ नामसे प्रसिद्ध होगा। अनन्त शारीरिक बलके कारण इसका एक नाम ‘बल’ भी है। यदुवंशीय वसुदेवादि और आपमें कोई पृथक् भाव नहीं रखेगा, कभी यादवोंके साथ विरोध भी हुआ तो यह दोनोंका मिलन करायेगा इसीलिए इसका एक नाम ‘सङ्कर्षण’ भी होगा। यह सभीकी प्रीतिका पात्र होगा। (ज्ञातव्य—यहाँ यह प्रकट नहीं किया गया कि गर्भके आकर्षणके कारण इसका नाम सङ्कर्षण है) ॥ १२ ॥

सारार्थदर्शिनी—यदूनां वसेदेवादीनां भवदादीनाञ्च, अपृथग्भावात् निर्विशेष-पितृत्वादिभावात् स्वस्मिन्नुभयकुलस्याकर्षणात्। तच्च हरिवंशे—‘प्रत्युवाच ततो रामः सर्वास्तानभितः स्थितान्। यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम वल्लभः॥’ इति। तद्वचनेनैव व्यक्तं गर्भसङ्कर्षणन्तु न प्रकाशयति ॥ १२ ॥

भावानुवाद—‘यदूनाम् अपृथक् भावात्’—गर्गमुनिने कहा—यदुवंशीय वसुदेव आदि एवं आपलोगोंके बीचमें निर्विशेष पितृत्व आदि भाव रहनेके कारण दोनों कुलका आकर्षण करेगा अर्थात् उनमें परस्पर विरोध होनेपर उनका मिलन करायेगा—इसलिए यह रोहिणीका पुत्र सङ्कर्षण नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ गर्भको आकर्षण करनेसे ‘सङ्कर्षण’ हुआ है—इसे प्रकाशित नहीं किया ॥ १२ ॥

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥

अन्वयः—अस्य (यशोदाके कुमारका) अनुयुगं तनूः गृह्णतः (प्रति युगमें स्वरूपको प्रकट करते हुए) हि (निश्चय रूपसे) शुक्ल, रक्तः, तथा पीतः (शुक्ल, रक्त और पीत) (ये) त्रयः वर्णाः आसन् (तीन वर्ण हुए) इदानीं (इस द्वापरयुगमें) कृष्णतां गतः (कृष्णरूपको प्राप्त हुआ है) ॥ १३ ॥

अनुवाद—हे नन्द महाराज ! तुम्हारा यह पुत्र प्रत्येक युगमें अपनी स्वरूपको प्रकट करता है। पूर्व युगोंमें इसके शुक्ल, रक्त एवं पीत—तीन वर्ण प्रकटित हुए थे। (ये तीन वर्ण सत्य, त्रेता एवं कलिके हैं) इन वर्णोंके उपलक्षणमें द्वापरयुगमें इसने यद्यपि शुक्ल पक्षीके समान वर्ण धारण किया था, तथापि ये सभी युगावतार अब कृष्णताको प्राप्त हो गये हैं, अर्थात् ये श्रीकृष्ण-विग्रहके अन्तर्भुक्त हो गये हैं, इसलिए इसका नाम कृष्ण होगा ॥ १३ ॥

सारार्थदर्शिनी—‘तव पुत्रस्त्वयं कोऽपि महापुरुष एव’ इति श्रीनन्दं बोधयन्नाह—आसन्निति। प्रतियुगं तनूगृह्णतोऽस्य शुक्लादयस्त्रयो वर्णा आसन्; गृह्णत इति स्वतन्त्र्योक्त्या योगप्रभावो दर्शितः। इदानीं द्वापरान्ते कृष्णतां गत इति सत्याद्यवताराणां चतुर्णां शुक्लादीनामुपासनासिद्धत्वेन तत्तत् सारूप्यप्राप्त्येति भावो नन्दं बोधयितुमीप्सितः। वस्तुतस्तु अस्यावतारिणस्तत्तद्वर्णवन्तोऽवतारा अंशा एव, इदानीमयमवतारी पूर्णः कृष्णत्वं प्राप्तः। यद्वा, यः शुक्लः यो रक्तः यः पीतश्च उपलक्षणमेतत्; यो योऽन्यो मन्वन्तरावतार-लीलावतार-पुरुषवतारादिश्च, स सर्वोऽपि इदानीमंशिनोऽस्यावतारसमये कृष्णतामेतद्रूपतामस्मिन्नन्तर्भूततां गतः; सर्वांश-मादायैवावतीर्णत्वात्। ननु, ‘कृते शुक्लश्चातुर्बाहुः’ इति, ‘त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ’ इति, ‘द्वापरे भगवान् श्यामः’ इति, कलौ ‘कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्’ (श्रीमद्भा० ११/५/२१-३४) इत्येकादशोक्तेः, ‘कथ्यन्ते वर्णनामभ्यां शुक्लः सत्ययुगे हरिः। रक्तः श्यामः क्रमात्कृष्णस्त्रेतायां द्वापरे कलौ ॥’ इति (१०१ कारिका) भागवतामृतोक्तेश्च पीतोऽयं किं युगीयोऽवतारः? न च आसन्निति भूतकालनिर्देशेन क्रमप्राप्त्या पीतोऽपि द्वापरयुगावतार इति वाच्यम्; युगावतारप्रकरणपठितत्वात्। न च तत्रस्थ श्यामपदस्य पीतार्थत्वमत्रस्थ पीतपदस्य वा श्यामार्थत्वं कल्प्यमिति तथा पीत इत्यकार-प्रश्लेषेणापीतः श्याम इति वा वाच्यं; सर्वथापि व्याख्याने अनुयुगमिति वीप्सा प्रयोगात्,

तनूरितिबहूवचनाच्च। वीप्सया चैकैकस्मिन्नपि युगे वर्णत्रयस्य प्राप्तेर्नाभिमतार्थलाभः। न चेदानीमिति पदेन कलियुगस्यादिमोऽंश एव वाचनीय इति वाच्यम्; कृष्णावतारस्य द्वापरान्तर्भवत्वेन प्रसिद्धेः। 'यस्मिन्नहनि यद्द्वैव भगवानुत्ससर्ज गाम्। तदैवेहानु-वृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः॥' (श्रीमद्भा० १/१८/६) इति प्रथमोक्तेश्च।

कृष्णावतारानन्तरमेव कलियुगप्रवृत्तेः तस्मादेवमत्र व्याख्येयं—यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् यथा इदानीं द्वापरान्ते कृष्णतां गतः स्वयमवतारी, तथा तेनैव प्रकारेण इदानीं कलियुगादिभागे पीत इति किञ्चित् स्थूलकालमवलम्ब्य इदानीमिति पदार्थ उभयत्राप्यन्वेतीति। ननु, तर्हि साक्षात् क्रियमाणोऽस्य कृष्णो वर्णः किमिदानीन्तन एव? किम्वा, पूर्वमप्यासीदेव, तस्यैव प्राकट्यमधुना? इति तत्र न केवलं कृष्णवर्ण एव पूर्वमासीत्, अपितु अन्येऽपि वर्णा आसन्नेवेत्याह आसन्निति। त्रयोऽपि वर्णा यथासम्भवं पूर्वपूर्वयुगे तदानीं दृश्यमानास्तत्तत्पूर्वमपि आसन्नेव नित्यस्थितानामेव तेषां तदानीं प्राकट्यं, न तु ते तदानीमेवापूर्वा अभवन्नित्यर्थः। अस्य कथम्भूतस्य अनुयुगं तनूरवतारान् गृह्यते? 'अवतारा ह्यसङ्ख्येयाः' (श्रीमद्भा० १/३/२६) इति सूतोक्तेः, 'क्वाहो कथं वा कति वा' (श्रीमद्भा० १०/१४/२१) इति ब्रह्मोक्तेश्च। एवं च वैवस्वत मन्वन्तरगताष्टाविंशचतुर्युगीयद्वापरकलियुगयोः स्वयमवतारी कृष्णः पीतश्च प्रादुर्भवति तद्युगद्वयावतारौ श्यामकृष्णौ तदा तत्रैवान्तर्भूतौ तिष्ठतः। तत्र पीतस्य 'सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी। संन्यासकृत्समः शान्तो निष्ठा-शान्तिपरायणः॥' इति भारताद्युक्तत्वेपि विशिष्य स्पष्टतया अन्यत्र क्वाप्यनुक्तिरिति रहस्यत्वात्, 'छत्रः कलौ यद्भवस्त्रियुगोऽथ सत्त्वम्' (श्रीमद्भा० ७/९/६८) इति सप्तमस्कन्धे श्रीप्रह्लादेनापि छत्रत्वेनैवोक्तत्वात्, छत्रत्वं च स्वीयवर्ण-भावयोरन्यदीयवर्णभावाभ्यामावृतत्वेन तदानीन्तनजनैः प्रायो दुर्लक्ष्यत्वमेवेति स्वस्य दुर्लक्ष्यत्वं चिकीर्षा च तस्य रहस्यवस्तुजातव्यञ्जकताहेतुकमेवेति गौडीयभक्तिसुधी-भिरवश्यावगम्यम्।

तत एव तत्प्रमाणकवचनस्य—'नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु। कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥' (श्रीमद्भा० ११/५/३२) इत्यस्य युगावतारप्रकरणमध्यपठितस्य तथैव छत्र एवार्थोऽवसीयतेऽर्थान्तरेण। स यथा नाना कलौ सर्वकलियुगे अपि—कारात् वैवस्व-ताष्टाविंशचतुर्युगीयकलावपि तन्त्रविधानेन तन्त्राख्यन्यायविधिना; श्वेतो धावतीत्यादिवत् एकप्रयत्नोच्चार्येण एकदैवार्थद्वयबोधकेन शब्देनेत्यर्थः। शृण्विति—शृण्वन्तमपि राजानं प्रति पुनः प्रेरणं रहस्यत्वेन तन्त्रेणोच्यमानमर्थं विशिष्यावधापयितुं, नानातन्त्रविधानेनेति—कलौ तन्त्रस्य प्राधान्यं दर्शितमितित्वर्थान्तरं तन्त्रस्याप्याच्छादनार्थं ज्ञेयम्। कृष्णोति—सर्वकलियुगपक्षे कृष्णवर्णदेहं रूक्षत्वं व्यवर्त्तयति; त्विषा कान्त्या अकृष्णम् इन्द्रनीलमणिवदुज्ज्वलमित्यर्थः। एककलियुगपक्षे कृष्णवर्णं, किन्तु त्विषा कान्त्या अकृष्णं शुक्लरक्तश्यामानामुक्तत्वात् पारिशेष्येण पीतं 'अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं'

इत्यर्थः। यद्वा, कृष्णावतारलीलादिवर्णनात् कृष्णवर्णः। साङ्गोपाङ्गेत्यादिकमित्युभयपक्षेऽपि स्पष्टप्रच्छन्नत्वाभ्यां तुल्य एवार्थः ॥ १३ ॥

भावानुवाद—श्रीगर्गाचार्य नन्द महाराजको कहने लगे—आपका यह पुत्र कोई महापुरुष है। क्योंकि युग-युगमें लीला-विग्रह धारण करनेके कारण इस बालकका पहले शुक्ल, रक्त एवं पीत वर्ण था। यह स्वेच्छापूर्वक इन रूपोंको धारण करता है। 'इदानीं'—इस समय द्वापरके शेषभागमें 'कृष्णता' प्राप्त हुआ है अर्थात् श्रीकृष्णरूपमें आविर्भूत हुआ है। [शुक्ल, रक्त और पीत—ये तीन वर्ण सत्य, त्रेता और कलिमें हुए थे। अब द्वापरयुगमें इसने कृष्णवर्ण धारण किया है। इसलिए इसका नाम 'कृष्ण' होगा। आगे आनेवाले कलियुगमें अतीत कालका प्रयोग होनेका तात्पर्य यह है कि चार युग वृत्ताकारमें घूम-घूमकर आते हैं। पिछले कलियुगमें पीतवर्ण हुआ था। इससे समझा जाता है कि अगले कलियुगमें भी पीतवर्ण अवतार होगा।] सत्य आदि चार युगोंमें शुक्ल आदि अवतारोंकी उपासनाकी सिद्धिके लिए उन-उन स्वरूपोंका सारूप्य प्राप्त होता है। यह भाव नन्द महाराजको समझानेके लिए कहा है। वास्तविक रूपसे उन-उन वर्णोंसे युक्त अवतारगण इन अवतारीके ही अंश हैं। अब वे पूर्ण अवतारी श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अथवा जो रक्त, शुक्ल और पीत, इनके उपलक्षणमें जितने मन्वन्तरावतार, लीलावतार और पुरुषावतार आदि हैं, वे सभी अब अंशी श्रीकृष्णमें अन्तर्भुक्त होकर आये हैं, क्योंकि वे समस्त अंशोंको लेकर अवतीर्ण हुए हैं।

ग्यारहवें-स्कन्ध (११/५/२१-३४) में ऐसा देखा जाता है कि सत्ययुगमें शुक्लवर्ण चतुर्भुजमूर्ति, त्रेतायुगमें रक्तवर्ण, द्वापरयुगमें भगवान् श्यामवर्ण एवं कलियुगमें 'कृष्णवर्ण कान्तिमें कृष्ण'—ऐसा वर्णन हुआ है। लघु-भागवतामृतमें भी (१०१ कारिका) कहा है—'कथ्यन्ते वर्णनामभ्याम' इत्यादि अर्थात् श्रीहरिका सत्ययुगमें वर्ण और नामसे शुक्ल, त्रेतामें रक्त, द्वापरमें श्याम एवं कलियुगमें कृष्ण कहकर वर्णन हुआ है। इसमें यही जिज्ञास्य होता है कि—ये पीतवर्ण कौन-से युगके अवतार हैं? 'आसन्'—यहाँ भूतकालका निर्देश होनेसे क्रमानुसार पीत भी द्वापरयुगका अवतार है—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि

वह युगावतार प्रकरणमें पाठ हुआ है। फिरसे वहाँ श्यामपदका पीत अर्थ या यहाँ पीतका श्याम अर्थ भी युक्तिसङ्गत नहीं होता है। वैसे पीतवर्णका 'अ'कार प्रश्लेष द्वारा अपीत या श्याम कहनेसे भी नहीं चल सकता है। क्योंकि 'अनुयुगं'—इससे एवं 'तनूः' इस बहुवचनके प्रयोगसे—एक एक युगमें तीन वर्णकी प्राप्ति—ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। 'इदानीं'—'अभी-अभी' इस पदके द्वारा कलियुगका प्रथमांश है—यह भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि द्वापरके अन्तभागमें श्रीकृष्ण-अवतारकी प्रसिद्धि है। 'सस्मिन्नहनि यर्ह्येव' (१/१८/६) इत्यादि अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण जिस दिन जिस क्षण पृथ्वीको परित्याग करते हैं, उस दिन उस क्षण अधर्मका उत्पादक कलि यहाँ (पृथ्वीमें) प्रविष्ट होता है।

कृष्ण-अवतारके पश्चात् कलियुगकी प्रवृत्ति होनेसे यहाँ ऐसी व्याख्या होगी—यत् और तत् शब्दका नित्य सम्बन्ध होनेसे—यहाँ द्वापरके शेषभागमें कृष्णवर्ण (श्यामवर्ण) हुआ है। वैसे ये स्वयं अवतारी हैं, उसी प्रकार इस कलियुगके आदि भागमें पीतवर्ण हुए हैं, परन्तु स्थूल कालका आश्रयकर 'इदानीं' दोनों स्थानोंपर प्रयोग होता है।

केवल कृष्णवर्ण पहले था, ऐसा नहीं, दूसरे जितने भी वर्ण हैं, वे भी थे, उस समय भी ये उत्पन्न नहीं हुए, केवल प्रकट हुए, जितने भी अवतार हैं, वे सभी नित्य हैं तथा उनके रूप भी नित्य हैं। भगवान्का अवतार एक नहीं, असंख्य अनन्त हैं। जिस प्रकार मानस-सरोवरसे नदियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णसे समस्त अवतार प्रकट होते हैं। ब्रह्म-स्तुतिमें भी (१०/१४/२१) वर्णन हुआ है—तुम्हारे कितने अवतार, कितनी लीलाएँ हैं, यह कौन जान सकता है?

इसलिए वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें चतुर्युगके द्वापरमें श्रीकृष्ण और कलियुगमें स्वयं अवतारी श्रीकृष्ण ही गौर (पीत) रूपमें अवतीर्ण होते हैं। उस समय दोनों युगावतार श्याम और कृष्ण उन दोनोंमें प्रवेश करते हैं। उनमें पीत अर्थात् गौर रूपका—महाभारतमें वर्णन है—'सुवर्णवर्णो हेमाङ्ग'—सुवर्ण वर्ण, अङ्गमें चन्दन लिप्त, शम आदि

गुणोंके परम आश्रय, निष्ठा और शान्तिपरायण हैं। सप्तम-स्कन्धमें प्रह्लादजीने कहा है—‘छत्रः कलौ’ (७/९/६८) हे महापुरुष! आप युगके अनुरूप धर्मका पालन करते हैं। कलिकालमें आप प्रछत्र होकर अवतार लेते हैं। इसलिए आप त्रियुगी नारायण हैं। छत्र कहनेसे अपने वर्ण और भावको राधाजीके भाव और वर्णके द्वारा आच्छादितकर प्रकट होते हैं। इसलिए उस समयके लोगोंके लिए भी आप दुर्लक्ष्य रहते हैं, परन्तु आपके भक्तजन आपको जान लेते हैं। इस विषयमें श्रीभागवतका प्रमाण वचन जैसे—‘नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु’ (११/५/३२) अर्थात् श्रीकरभाजन ऋषिने कहा—अब कलियुगके अवतारकी बात भी सुनिये।

कलियुगमें जिनका कृष्णवर्ण है, परन्तु अङ्गकान्ति गौर वर्ण की है, जो अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र और परिकरोंके साथ आविर्भूत हुए हैं, सुबुद्धिपरायण मानव सङ्कीर्तनरूप यज्ञके द्वारा उन पुरुषोत्तमकी अर्चना करते हैं। यहाँ युगावतार प्रकरणमें पाठ होनेसे उसे प्रछत्र रूप ही समझा जाता है। यहाँ ‘नाना कलौ’ समस्त कलियुगोंमें और अपि शब्दके द्वारा—वैवस्वत मन्वन्तरके अट्टादशवें चतुर्युगीय कलियुगमें भी ‘तन्त्रविधान’ के द्वारा—तन्त्र नामक विधिसे भगवान्की अर्चना करते हैं। नाना-तन्त्र विधान कहनेसे कलियुगमें तन्त्रका प्राधान्य दिखाया है। दूसरे अर्थमें तन्त्रके भी आच्छादनके लिए समझना होगा।

कृष्णवर्ण—सभी कलियुगोंमें कृष्णवर्णमें ही आविर्भूत होते हैं। रक्षत्वके निवारणके लिए कह रहे हैं—‘त्विषा अकृष्णम्’—अङ्गकान्ति अकृष्ण अर्थात् इन्द्रनीलमणिकी भाँति उज्ज्वल है। अकृष्ण अर्थात् एक कलियुगमें उनका कृष्णवर्ण होता है, किन्तु कान्ति अकृष्ण होती है। तात्पर्य है कि शुक्ल, रक्त तथा श्यामवर्णका वर्णन पहले हो चुका है, अतः अन्तमें अकृष्णका तात्पर्य पीत वर्णसे हैं। अर्थात् वे अन्दरमें कृष्ण तथा बाहरमें गौर हैं। अथवा—कृष्णवर्ण कहनेका तात्पर्य है कि जो श्रीकृष्णके नाम और उनकी लीला आदिका कीर्तन करते हैं अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु। साङ्ग, उपाङ्ग आदि कहनेसे अङ्ग—श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्य, उपाङ्ग—श्रीवास पण्डित आदि, अस्त्र—श्रीहरिनाम, पार्षद—श्रीगदाधर आदि उनके साथ जो विराजमान हैं ॥ १३ ॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः।

वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

अन्वयः—श्रीमान् (हे श्रीमान्) तव आत्मज अयं क्वचित् (तुम्हारा यह पुत्र कभी कार्य-निमित्त) प्राक् (पहले) वसुदेवस्य जातः (वसुदेवका पुत्र होकर जन्म लिया था) (इसलिए) अभिज्ञाः (अभिज्ञजन) वासुदेव इति संप्रचक्षते (वासुदेव इस नामसे कहते हैं) ॥ १४ ॥

अनुवाद—तुम्हारा यह परम सुन्दर पुत्र किसी कारणसे पहले कभी वसुदेवजीके पुत्रके रूपमें भी प्रकटित हुआ था। इस तत्त्वको जाननेवाले इसे 'श्रीमान् वासुदेव' भी कहेंगे। (तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण नन्दके ही नित्य-पुत्र हैं। किसी कारणसे नन्दनन्दन ही वसुदेवनन्दनके रूपमें प्रकटित हुए थे।) ॥ १४ ॥

सारार्थदर्शिनी—प्राक् पूर्वं, वसुदेवस्य वसुदेवात्तवात्मजोऽयं, क्वचिदेकान्त-स्थले, जात इति—प्राक् पूर्वजन्मनि वसुदेवस्यापि पूर्वजन्मनि वासुदेव इत्येव नामासीदिति नन्दो बुद्ध्यते स्म। अभिज्ञा इति—न केवलमहमेक एवेति प्रामाण्यं दर्शितम् ॥ १४ ॥

भावानुवाद—पहले किसी समय आपके इस पुत्रने वसुदेवका पुत्र होकर जन्म ग्रहण किया था। इससे नन्द महाराजजीने यह समझा कि पूर्व जन्ममें वसुदेवका पुत्र होकर जन्म ग्रहण किया होगा, उस समयका इसका वासुदेव नाम है। इसलिए अभिज्ञ व्यक्तिगण इसको 'वासुदेव' कहा करते हैं। केवल मैं (गर्गाचार्य) कह रहा हूँ, ऐसा नहीं ॥ १४ ॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते।

गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥

अन्वयः—ते (तुम्हारे) सुतस्यगुण कर्मानुरूपाणि (पुत्रके गुण और कर्मके अनुरूप) बहूनि नामानि रूपाणि च सन्ति (बहुत-से नाम और रूप हैं) तानि (उन नाम और रूपोंको) अहं (मैं—गर्गाचार्य) वेद (जानता हूँ) जनाः (साधारण व्यक्ति) नो (नहीं जानते हैं) ॥ १५ ॥

अनुवाद—तुम्हारे इस पुत्रके बहुत-से गुण और कर्म हैं, जिनके अनुसार इसके बहुत-से नाम और रूप हैं—उन्हें मैं भलीभाँति जानता हूँ, पर साधारण लोग यह सब नहीं जानते ॥ १५ ॥

सारार्थदर्शनी—बहूनीति—न केवलं कृष्ण इति नाम वासुदेव इति नाम मयैव कृतमिति भावः। रूपाणीति—न केवलं मयोक्तानि शुक्लादीन्येवेत्यर्थः। गुणकर्मानुरूपाणीति—भक्तवत्सल-सर्वज्ञ-गोवर्द्धनधरादीनि, कृष्णशब्दः सत्तार्थो णश्चानन्दात्मकः, ततः कृष्णः; भक्ताद्याकर्षणादपि तद्वर्णत्वाच्च मन्त्रमयवपुष इति। गोविन्दो गोविचारणादपीति, केशवाचार्यादि व्याख्यानादित्यर्थः। तान्यहं दैवज्ञोपि न वेद, जना नो विदुरिति किं पुनरित्यर्थः। नन्दस्तु मत्पुत्रस्य महापुरुषत्वात्तानां जन्मगतमिदं सर्वज्ञत्वादयं वक्तीति बुद्ध्यते ॥ १५ ॥

भावानुवाद—‘बहूनि’—आपके इस पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुसार बहुत-से नाम और रूप हैं। इसीलिए केवल ‘कृष्ण’ यही नाम नहीं, परन्तु ‘वासुदेव’ नाम भी मैंने रखा। ‘रूपाणि’—केवल मेरे द्वारा कथित शुक्ल आदि नाम ही नहीं, इसके गुण और कर्मोंके अनुरूप और भी बहुत-से नाम और रूप हैं। जैसे—भक्तवत्सल, सर्वज्ञ, गोवर्द्धनधारी आदि। ‘कृष्ण’ शब्दका अर्थ बतला रहे हैं—जैसे—कृष् धातु सत्तावाचक एवं ‘ण’—आनन्दवाचक है—इन दोनोंके मिलनसे कृष्ण शब्द बनता है। पुनः भक्तजनोंके आकर्षक होनेसे कृष्णवर्ण एवं मन्त्रमय विग्रह होनेसे कृष्ण हैं। गायोंका पालक होनेसे अथवा वेद प्रतिपाद्य या पृथ्वी-पालक होनेसे गोविन्द नाम है। जब मैं दैवज्ञ होकर भी उनके समस्त नामोंको नहीं जानता, तब दूसरे व्यक्ति कैसे जान लेंगे? श्रीनन्द महाराजजीने समझा कि मेरा पुत्र महापुरुष होनेसे गर्गाचार्य उसके बहुत-से जन्मोंके नाम कह रहे हैं ॥ १५ ॥

एष वः श्रेय आधास्यद्रोपगोकुलनन्दनः।

अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥

अन्वयः—गोप-गोकुलनन्दनः (गोप और गोकुलके आनन्दवर्द्धनकारी) एष (यह बालक) वः (आप लोगोंका) श्रेयः (मङ्गल विधान) आधास्यत् (करेगा) अनेन (इसके अनुग्रहसे) यूयं अञ्जः (आपलोग

अति सहज रूपसे) सर्वदुर्गाणि (समस्त विघ्नोंको) तरिष्यथ (अतिक्रम करोगे) ॥ १६ ॥

अनुवाद—हे नन्द महाराज ! यह बालक तुम्हारा अनेक प्रकारका मङ्गल करेगा और गोपों एवं गायोंके कुलको आनन्दित करेगा। जब-जब तुमलोगोंके ऊपर विपत्तियाँ आवेंगी, तब-तब तुम्हारा यह पुत्र उन सब विपत्तियोंसे तुमलोगोंको बड़ी सुगमतासे बचा लेगा ॥ १६ ॥

सारार्थदर्शनी—आधास्यत् आधास्यति। गोपानां गवाञ्च कुलं नन्दयतीति सः, तेषां कुलस्य नन्दनः; ब्रह्ममोहने पुत्र इति वा; हे गोपेति वा। अञ्जः सुखेन। सर्वदुर्गाणीति—यदा यदोपद्रव आयास्यति, तदा त्वदिष्टदेवेन श्रीनारायणेनाविष्टायं त्वत्पुत्र एव त्वयायमाश्रयितव्य इति भावः ॥ १६ ॥

भावानुवाद—यह बालक आपका प्रचुर कल्याण करेगा। गोपोंका तथा गायोंका आनन्द-वर्द्धन करेगा। अथवा ब्रह्ममोहनके समय उनका पुत्र होगा। हे नन्द महाराज ! जब-जब कोई विपत्ति आयेगी, तब-तब आपके इष्टदेव नारायणके द्वारा आविष्ट होकर आपका यही पुत्र आप लोगोंका उद्धार करेगा। अतएव आप इसका आश्रय ग्रहण कर सकते हैं ॥ १६ ॥

पुरानेन ब्रजपते साधवो दस्युपीडिताः।

अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ १७ ॥

अन्वयः—ब्रजपते (हे महाराज !) पुरा (पूर्वकालमें) अनेन (इस महात्माके द्वारा) अराजके (इन्द्रके पद-भ्रष्ट होनेपर) दस्युपीडिताः (दानवोंके द्वारा पीड़ित) साधवः (देवता) रक्ष्यमाणाः (सुरक्षित होकर) समेधिताः (बढ़ते हुए) दस्यून् जिग्युः (दैत्योंको पराजित किये) ॥ १७ ॥

अनुवाद—ब्रजराज ! प्राचीन कालकी बात है। एकबार दैत्योंके द्वारा इन्द्र पराजित हो गये थे। तब किसी भी राजाके न रहनेके कारण अराजकता फैल गयी थी। इन्द्रकी पद-च्युतिके कारण दैत्य साधुजनोंको पीड़ित कर रहे थे। तब इसी बालक कृष्णने उन

साधुओंकी रक्षी की थी। इससे ही बल प्राप्त करके साधुओंने उन दानवोंको पराजित कर दिया था ॥ १७ ॥

सारार्थदर्शिनी—पुरा जन्मान्तरे, साधवो देवाः, दस्यवो दैत्याः, अराजके इन्द्रस्य पदच्युतौ ॥ १७ ॥

भावानुवाद—‘पुरा’—पहले जन्ममें ‘साधवः’—देवतागण ‘दस्यवः’—दैत्यगण। दैत्योंके द्वारा पराजित होकर देवराज इन्द्रके राज्यभ्रष्ट होनेपर, देवतागणके प्रबल पराक्रमी असुरोंके द्वारा पीड़ित होनेसे इसी बालकने असुरोंको परास्त किया था ॥ १७ ॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः।

नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥

अन्वयः—महाभागाः (महाभाग्यशाली) ये मानवाः (जो मानव) एतस्मिन् (इस बालकमें) प्रीतिं (आसक्ति) कुर्वन्ति (करते हैं) असुराः (असुर-दैत्य-दानव) विष्णुपक्षान् इव (विष्णुका आश्रय लेनेवाले व्यक्तिको जैसे पराभव करनेमें समर्थ नहीं होते वैसे) अरयः (शत्रु) एतान् (इन बालकोंके प्रति आसक्त जनोंको) न अभिभवन्ति (पराभव नहीं कर सकते) ॥ १८ ॥

अनुवाद—वे मनुष्य परम भाग्यवान हैं, जो इस शिशुके साथ प्रीति करते हैं। असुर जिस प्रकार विष्णु-परायण भक्तोंको पराजित नहीं कर सकते, उसी प्रकार इससे प्रेम करनेवालोंको कंसादि बाहरके शत्रु और कामादि अन्तर्मनके शत्रु पराभूत करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ १८ ॥

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः।

श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥

अन्वयः—नन्द (हे नन्द महाराज!) तस्मात् (इसलिए तुम्हारा) अयं आत्मज गुणैः श्रिया (यह पुत्र गुण, श्री आदि) कीर्त्या (यश प्रतिष्ठासे) अनुभावेन (अनुभावके द्वारा) नारायण समः (नारायणके

समान है) (अतएव) समाहितः (सावधान होकर) गोपायस्व (इस बालकका पालन करो) ॥ १९ ॥

अनुवाद—नन्दजी! (तुम्हारे इष्टदेव श्रीनारायणने ही परम सन्तुष्ट होकर तुम्हें अपने ही समान पुत्र प्रदान किया है)। चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुण, श्री (सम्पत्ति) कीर्त्ति एवं प्रभावमें यह श्रीनारायणके ही तुल्य है। अतः बड़ी सावधानी, एकाग्र-चित्त और तत्परतासे इस शिशुका पालन करो ॥ १९ ॥

सारार्थदर्शनी—नारायणसम इति, त्वदिष्टदेवेन सन्तुष्टेन श्रीनारायणेन स्वसमः पुत्रस्तुभ्यं दत्त इति भावः। अतो मुकुन्दमधुसूदननारायणादिनामभिरप्यभिधीयतां, किन्तु 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' इति विभाव्य सुसावधानः सन् गोपाय प्रतिक्षणं पालय। रक्षितः, पुत्रोऽयं ते नारायण इव सर्वोपद्रवेभ्यो रक्षिष्यतीति भावः। गोपायस्वेति पाठे आत्मनेपदमार्षम्। वस्तुतस्तु, नारायणः समो यस्य, तत्रापि गुणादिभिरेव, न तु दैत्यमोक्षदत्वभक्तमहाभावप्रदत्वलक्ष्मीदुर्लभश्रीरासविहारित्वादिभिर्महागुणादिभिरिति सर्वोत्कर्ष आत्यन्तिकः श्रीनारायणादप्यस्य व्यञ्जितः। गोपानाम् अये लाभे, अये शुभावहविधौ वा सुसमाहितः ॥ १९ ॥

भावानुवाद—'नारायणसमः'—हे नन्द महाराज! तुम्हारे इष्टदेव नारायणने प्रसन्न होकर तुम्हें अपने समान पुत्र दिया है। अतएव मुकुन्द, मधुसूदन, नारायण आदि नामसे भी लोग इस बालकको पुकारेंगे। परन्तु शुभ कार्यमें बहुतसे विघ्न आते हैं, यह जानकर विशेष सावधानीसे इस बालकका पालन करें। तुम्हारा यह पुत्र कुछ बड़ा होनेपर नारायणकी भाँति सभी विपत्तियोंसे तुम्हारी रक्षा करेगा।

वास्तविक अर्थ—'नारायण समः' कहनेका अर्थ है—गुणोंमें नारायण जिनके समान है, उसमें भी कुछ ही गुणोंमें समानता है। परन्तु दैत्योंको मोक्ष प्रदान करना, भक्तोंको महाभावतक प्रदान करना, लक्ष्मी देवीके लिए भी दुर्लभ रासविहार आदि महान् गुणोंमें नारायण श्रीकृष्णकी समानता नहीं कर सकते। इसलिए श्रीनारायणसे भी इस बालककी सर्वोत्कर्षता प्रकाशित होती है। अतः हे नन्दजी! शुभ विधिके साथ सावधानीसे इस बालककी रक्षा करो ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते।

नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥

अन्वयः—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेवजीने कहा—) इति (इस प्रकार) आत्मानं (श्रीकृष्ण विषयमें) समादिश्य (नन्द महाराजको उपदेश प्रदान कर) गर्ग च स्वगृहं गते (गर्गाचार्यके अपने गृहके लिए प्रस्थान करनेपर) प्रमुदितः (अतिशय आनन्दित होकर) नन्द (नन्द महाराज) आत्मानं (अपनेको) आशिषां पूर्णं (सर्वकल्याणमय) मेने (अनुभव करने लगे) ॥ २० ॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—इस प्रकार नन्दजीको अच्छी तरह समझा-बुझाकर, आदेश देकर गर्गमुनि अपने आश्रमको लौट गये। उनकी बात सुनकर नन्दबाबा बड़े आनन्दित हुए और अपनेको सफल-मनोरथ मानने लगे ॥ २० ॥

सारार्थदर्शिनी—आत्मानं स्वं प्रति। प्राणानाहत्य मौग्ध्येन दुष्टयोः पूतनानसोः। शिष्टवर्गप्रकृष्टस्य गर्गस्यापि मनोऽहरत् ॥ २० ॥

भावानुवाद—‘आत्मानं’—श्रीनन्द महाराज अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनेको सफल-मनोरथ मानने लगे। इसी बालगोपालने अपनी मनोहर बाललीलाओंसे पूतना और शकटासुरके प्राण एवं शिष्टजनोंमें श्रेष्ठ गर्गाचार्यका मन भी हरण कर लिया ॥ २० ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—श्रीगर्गाचार्यके परामर्शसे रोहिणीनन्दन और यशोदानन्दनका नामकरण एकान्तमें करनेका निर्णय हुआ। नन्द महाराजने भी गोशालाको उपयुक्त स्थानके रूपमें चयन किया। क्योंकि उस समय सभी गोप गोचारणमें चले गये थे, उस एकान्त स्थानमें कोई भी नहीं आयेगा और कोई जान भी नहीं सकेगा। विशेषकर गोशाला स्वभावतः पवित्र स्थान है। नन्द महाराज गर्गाचार्यको साथमें लेकर गोशालामें आये। स्थान देखकर गर्गाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—‘यह गोशाला ही गोपालके

नामकरणका उपयुक्त स्थान है'। गर्गाचार्य उस एकान्त स्थानमें कुशासनपर बैठे एवं आचमन और स्वस्तिवाचनकर एकाग्रचित्तसे श्रीगोविन्द-पादपद्मोंके ध्यानमें निमग्न हो गये और मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे—हे गोविन्द! ऐसी कृपा करें कि आपके प्रेमवान भक्तोंके मनमें कोई कष्ट न देकर आपके नित्यसिद्ध नामको प्रकाश कर सकूँ।

रोहिणीनन्दन यशोदानन्दनसे आठ दिन बड़े हैं। इसलिए गर्गाचार्यने रोहिणीनन्दनका नामकरण पहले किया। गर्गाचार्यने कहा—हे गोपराज! रोहिणीकी गोदीमें कुन्द कुसुम-सदृश गौर-वर्णका यह बालक अतीव सुलक्षण-युक्त है। रोहिणीके गर्भसे पैदा होनेसे इसका नाम 'रोहिणीनन्दन' होगा। यह बालक इतना सद्गुण-सम्पन्न होगा कि इसके गुणोंसे समस्त सुहृद्जनोंका मनोरञ्जन होगा। इस प्रकार सर्व-रमणीय गुणशाली होनेसे इस बालकका और एक नाम 'राम' एवं अत्यन्त बलशाली होनेके कारण दूसरा एक और नाम 'बल' होगा। यह बालक वसुदेवका पुत्र होनेसे भी वसुदेवसे अभिन्न रूपमें आपको भी पिता समझेगा और यादवोंकी भाँति गोपोंको भी अपना ज्ञाति-आत्मीय (कुटुम्बी) मानेगा। यह अपने सद्भावसे यादवकुल और गोपकुल—दोनोंमें भेदभाव नहीं रखेगा और दोनोंमें फूट पड़नेपर मेल करायेगा, इसलिए इस बालकका एक नाम 'सङ्कर्षण' होगा।

इस प्रकार गर्गाचार्यने रोहिणीनन्दनके नामकरणमें प्रवृत्त होकर उनके 'रोहिणीनन्दन', 'राम', 'बल' एवं 'सङ्कर्षण'—ये चार नित्यसिद्ध नाम प्रकाश किये। रोहिणीनन्दनके ये सभी नाम अनादि कालसे पुराण, संहिता, तन्त्र आदिमें प्रसिद्ध हैं। तत्त्वज्ञ-शिरोमणि गर्गाचार्य जानते हैं कि गोलोकधामके अधिष्ठाता श्रीगोविन्दके अभिन्न विग्रह बलदेव प्रभु ही प्रकटलीलामें अपने भावोचित सेवा करनेके लिए उनके साथ अवतीर्ण हुए हैं। परन्तु वात्सल्यप्रेमवान नन्द, यशोदा और रोहिणीके निकट उन्होंने इन सब तत्त्वोंको प्रकाशित न कर दूसरे प्रकारसे कारण दिखाकर उनका नित्यसिद्ध नाम प्रकाश कर दिया। नन्द महाराज आदिने गर्गाचार्यकी भविष्य-वाणीको भाग्यफल मान लिया।

गोलोकधामके अधिष्ठाता श्रीगोविन्दके अभिन्न-विग्रह तथा उनकी लीलाके सङ्गी, मूल सङ्कर्षण श्रीबलदेव चिरकाल रोहिणीके पुत्र हैं। अतएव उनका रोहिणीनन्दन नाम नया नहीं है। श्लोकस्थित—‘अयं वै रोहिणी पुत्रः’ गर्गाचार्यने व्यक्त किया। मूल सङ्कर्षण बलदेव वात्सल्य-मिश्रित सख्यरसमें श्रीकृष्णकी गोचारणलीलामें सहायता करते हैं एवं निवास, शय्या, आसन, स्थान, वाहन आदि विविध मूर्तियोंमें उनकी विविध प्रकारकी सेवा करते हैं। पुरुषावतार आदि रूपोंमें सृष्टि-कार्यकर उनकी आज्ञाका पालन करते हैं। उनके इन सभी गुणोंसे श्रीभगवान् एवं आत्मारामगण भी मुग्ध हो जाते हैं। इसलिए वे अनादि कालसे ‘राम’ नामसे प्रसिद्ध हैं। सङ्कर्षण ही शेषरूपमें भूमण्डलको धारण करते हैं। वे ही शय्या, निवास आदि रूपोंमें भगवान्‌का लीला-विग्रह धारण करते हैं। अतएव उनके जैसा बलशाली दूसरा कौन होगा? इस प्रकारकी महाशक्तिके लिए वे अनादि कालसे ‘बल’ नामसे अभिहित हुए हैं। महाप्रलयमें अनन्त ब्रह्माण्ड सूक्ष्म रूपसे सङ्कर्षणमें प्रवेश करते हैं एवं अनन्त जीव उन्हींमें विश्राम करते हैं। अनन्त ब्रह्माण्डों एवं अनन्त जीवोंको आकर्षणकर अपने अङ्कमें धारण करते हैं, इसलिए वे अनादि कालसे ही ‘सङ्कर्षण’ नामसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु गर्गाचार्यने इन सभी तत्त्वोंको जानकर भी नन्दालयमें व्यक्त नहीं किया। बल्कि उन्होंने दूसरी ओर घुमाकर नन्द, यशोदा और रोहिणीको समझाकर रोहिणीनन्दनके नित्यसिद्ध नामोंमेंसे केवल चार नामोंको ही प्रकाश किया। नन्द, यशोदा और रोहिणीने इसीसे परमानन्द लाभ किया।

रोहिणीनन्दनका नामकरण करनेके पश्चात् गर्गाचार्य यशोदानन्दनके नामकरणमें प्रवृत्त होकर मन-ही-मन चिन्ता करने लगे कि मैं अब जिनका नामकरण करनेमें प्रवृत्त हुआ हूँ, वे सर्वकारण-कारण, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, स्वयं-भगवान् हैं। इन्हींसे सम्पूर्ण जगत्की समस्त वस्तुओं एवं जीवोंके नाम-रूप प्रकाशित हुए हैं। अचिन्त्य, अनन्त, सर्वशक्ति-सम्पन्न अनन्त नामोंके आश्रय यशोदानन्दनका कौन-सा नाम कैसे प्रकाशित करूँ। इनके नाम, रूप, गुण और लीला सभी कुछ अनन्त और असीम हैं। इनकी कृपासे जो मेरे हृदयमें स्फूर्ति होगा, वही कह पाऊँगा।

नन्दनन्दनकी कृपासे सर्वज्ञ-शिरोमणि गर्गाचार्यके मनमें यह विचार आया कि भगवान्‌के अनन्त नामोंमें 'कृष्ण' नाम ही मुख्य है। 'नाम्नां मुख्यतमं नाम कृष्णाख्यं मे परन्तप' (पद्मपुराण)। श्रीभगवान्‌ने कहा—अनन्त नामोंमें कृष्ण नाम ही मेरा मुख्यतम नाम है। विष्णुपुराणमें भी देखा जाता है—'तत्र च सर्वेषामेव नाम्नां कारणान्यभवन्'। श्रीभगवान्‌के अनन्त नामोंके मूल 'कृष्ण'—नाममें श्रीभगवान्‌के अनन्त नाम निहित हैं।

मधुर मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां।
सकलनिगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा।
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥

(स्कन्दपुराण)

कृष्णनाम मधुरसे भी सुमधुर है। यह नाम सभी मङ्गलोंका मङ्गल विधान करता है। यह नाम समस्त वेद-कल्पलताका चिन्मय फल है। अवहेला या श्रद्धासे भी किसी भी प्रकारसे नाम ग्रहण करनेपर व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है। कृष्णनामकी कोई तुलना नहीं है। यदि कोई अपने जीवनमें इस नामका एक बार भी उच्चारण या स्मरण आदि करता है, तो उसका जीवन धन्य हो जाता है। अतएव स्वयं-भगवान्‌ नन्दनन्दनके सर्वमुख्यतम 'कृष्ण'—नामको ही पहले प्रकाश करना उचित है। इसलिए तत्त्वज्ञ-शिरोमणि गर्गाचार्यने नन्द महाराजसे कहा—गोपराज! आपके इस पुत्रके शरीरका किसी युगमें रक्त और किसी युगमें पीत वर्ण प्रकाश होता है। इस समय इसने कृष्णरूपमें जन्म ग्रहण किया है, इसलिए इसकी अङ्गकान्तिके समान नाम भी 'कृष्ण' होगा। प्रेमवान नन्द महाराज गर्गाचार्यके इस कथनका रहस्य समझ नहीं सके। वे समझ रहे थे—उनके उपास्य देवता नारायणका एक नाम 'कृष्ण' है, अतएव अभीष्ट देवताके नामसे ही उनके पुत्रका नाम रखा गया है। इसलिए वे परम आनन्दमें निमग्न हुए। परन्तु वे समझ नहीं सके कि उनके वात्सल्यप्रेमके वशीभूत होकर उनके अभीष्ट देवता श्रीनारायणके मूल-स्वरूप गोलोकपति गोविन्द उनके पुत्र रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।

गर्गाचार्यकी बातोंसे नन्द महाराजकी धारणा हुई कि—भगवान् प्रत्येक युगमें युगधर्मका प्रचार करनेके लिए जगत्में अवतरित होते हैं। वे सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, त्रेतायुगमें रक्तवर्ण, द्वापर और कलियुगमें श्यामवर्ण विग्रहमें अवतीर्ण होते हैं। किसी-किसी कलियुगमें उनका पीतवर्णयुक्त श्रीविग्रह भी आविर्भूत होता है। मेरा पुत्र सत्य आदि युगोंमें, उन युगावतारोंकी उपासनाकर उनका सारूप्य प्राप्त हुआ है। इस बार भी नारायणकी उपासनाकर इसने उन्हींके जैसा कृष्णवर्णयुक्त होकर जन्म ग्रहण किया है। मेरे पुत्रका जन्मान्तरीय योग प्रभाव है, यह गर्गाचार्यकी बातोंसे स्पष्ट होता है। नहीं तो कोई भी अपने इच्छानुरूप जन्म ग्रहण नहीं कर सकता। मेरा पुत्र साधारण जीवकी भाँति नहीं है, महा प्रभाव-सम्पन्न है। जो भी हो यह नारायणकी मुझपर अपार करुणा है। अब उनकी कृपासे यह बालक दीर्घजीवी हो।

परन्तु गर्गाचार्यने विचार किया—स्वयं-भगवान् गोलोकपति गोविन्द अपने नित्यसिद्ध पार्षदोंके साथ अवतीर्ण हुए हैं। वे गोलोकमें नित्यसिद्ध परिकरोंके साथ नित्य लीलारसका आस्वादन करते हैं और उसमें रहकर ही अनन्त वैकुण्ठोंमें मत्स्य, कूर्म आदि अनन्त रूपोंमें लीला करते रहते हैं। भगवान्की सभी नित्यसिद्ध मूर्तियोंके जगत्में आविर्भूत होनेसे उन्हें अवतार कहा जाता है। लीला-भेदसे भगवान्के सभी अवतार—पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार आदि विविध नामोंसे शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं। ये सभी नित्यसिद्ध मूर्तियाँ जब जगत्में प्रकट होती हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी देह धारणकर आते हैं, परन्तु यथार्थ रूपमें वे देह धारण नहीं करते हैं। उनका वही नित्यसिद्ध देह जगत्में आविर्भूत होता है। मार्कण्डेय पुराणमें देवीके आविर्भाव प्रसङ्गमें वर्णन है—

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा सदा।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यधीयते॥

(श्रीचण्डी)

असुर मारणादि देवकार्य साधनके लिए जब उस नित्यसिद्ध चिन्मयी शक्ति-विग्रहरूपिणी देवीका जगत्में आविर्भाव होता है, तब

सामान्य मनुष्य यही समझते हैं कि वे उत्पन्न हुई हैं। परन्तु यथार्थ रूपमें उस अनादि अनन्त चिन्मयी शक्तिकी उत्पत्ति या विनाश नहीं है। उनके नित्यसिद्ध लीला विग्रहका केवल कभी तो आविर्भाव और कभी तिरोभाव होता है।

गर्गाचार्यने नन्द महाराजसे कहा—हे गोपराज ! आपके पुत्रके गुण और कर्म अनन्त हैं। उन अनन्त गुण और कर्मोंके अनुरूप आपके पुत्रके अनन्त नाम और रूप भी हैं। यह मैं जानता हूँ, दूसरे नहीं। आपके पुत्रके जितने नाम हैं, उन्हें सम्पूर्ण रूपसे व्यक्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए आप एक ही नाम जान लें। यह 'कृष्ण' नाम ही इसका सर्वमुख्यतम नाम है। समयके अनुरूप उनके विविध नाम प्रकाशित होंगे।

गर्गाचार्यने विचार किया कि स्वयं-भगवान् भक्तवत्सल हैं, उनके प्रेमाधीनता आदि अनन्त गुण और अनन्त लीलाएँ भी हैं और वैसे ही उनके अनन्त नाम हैं। जीवके गुण, कर्म प्राकृत हैं, इसलिए वे अनित्य हैं। परन्तु भगवान् मायातीत हैं, उनके साथ प्राकृत गुण और कर्मोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। भगवान् प्राकृत गुणोंसे अतीत होनेके कारण उन्हें सभी शास्त्रोंमें निर्गुण कहा गया है।

योऽसौ निर्गुण इत्युक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः।

प्राकृतैर्हेय संयुक्त गुणै हीनत्वमुच्यते॥

(पद्मपुराण)

श्रीभगवान् प्राकृत और अनित्य गुणोंसे रहित होनेपर भी वे नित्य अनन्त कल्याण गुण-सम्पन्न हैं। 'अनन्त कल्याण गुणात्मकोऽसौ' आदि विष्णुपुराणके वचनमें उनके इन अनन्त कल्याणमय गुणोंका यथार्थ परिचय मिलता है।

गुणैः स्वरूप भूतैस्तु गुण्यसौ हरिरुच्यते।

न विष्णोर्न च मुक्तानां क्वापि भिन्नो गुणो मतः॥

इस ब्रह्मतर्क वचनसे भी जाना जाता है कि भगवान् अपने स्वरूपभूत स्वाभाविक नित्य गुणोंसे गुणवान हैं। अतएव भगवान्में एवं

मायामुक्त जीवोंमें कभी भी मायिक गुण सम्भव नहीं होते हैं या नहीं रह सकते हैं। इसलिए गर्गाचार्यने कहा—‘एष वः श्रेयः आधास्यत्’—यह बालक तुम्हारा ऐहिक एवं पारलौकिक समस्त प्रकारका मङ्गल विधान करेगा। गोप-गोपी एवं गोकुलवासी समस्त जीवोंका आनन्द-वर्द्धन करना ही इस बालकका स्वभाव है। इस बालकके कारण आपलोग सब प्रकारकी विपत्तियोंसे मुक्त हो जायेंगे।

गर्गाचार्यने कहा—हे ब्रजराज! आपके पुत्रके महाप्रभावके बारेमें अधिक क्या कहूँ। आपके पुत्रको कोई पराजित नहीं कर सकता है। यह अशेष सौभाग्यशाली है। इससे जो कोई प्रीति करेगा, उसे भी कोई पराभूत नहीं कर सकेगा। श्रीभगवान्के चरणाश्रित भक्तोंको जैसे असुर-राक्षसादि पराजित नहीं कर सकते, वैसे ही आपके पुत्रका भी जो कोई आश्रय ग्रहण करेगा, उसकी भी सर्वत्र विजय होगी।

कोई-कोई टीकाकार श्लोक-स्थित ‘महाभागे’ पदका यशोदाजीके सम्बोधनमें व्यवहार करते हैं। उससे गर्गाचार्यने यशोदाको सम्बोधन करके कहा—‘हे महाभागे! अर्थात् भाग्यवती यशोदे! तुम्हारी गोदमें स्थित इस बालकसे जो कोई प्रीति करेगा, उसे कभी भी कोई शत्रु पराजित नहीं कर सकेगा।’ स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णमें विशुद्ध वात्सल्यप्रेम-सम्पद देखकर ही गर्गाचार्यने यशोदाको ‘महाभागे’ कहकर सम्बोधन किया है।

गर्गाचार्यने इस प्रकार बहुत-सी बातें सुनाकर गोपराज नन्दको कहा—हे ब्रजराज! आपके पुत्रके गुणों और कर्मोंको कितना कहूँ! आपके पुत्रके गुणोंकी कोई सीमा नहीं है। ‘तस्मान्नन्दात्मजोऽयं वै नारायण समो गुणैः।’ आपका यह पुत्र अशेष सद्गुण, यशः और प्रभावमें नारायणके तुल्य है। अधिक क्या कहूँ, आपके अतिरिक्त किसीको भी ऐसा पुत्र प्राप्त नहीं हो सकता। आप परम यत्नके साथ और बड़ी सावधानीसे इस पुत्रका पालन करें। आपके जैसा भाग्यवान् जगत्में कोई नहीं है। पुत्र-सम्पदमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आपके जैसा पुत्र मैंने आज तक कभी देखा ही नहीं। आप इसका लालन-पालन करते हुए आनन्द प्राप्त करें तथा जगत्का आनन्द-वर्द्धन करें।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णन है कि गर्गाचार्य जब नन्दनन्दनका नामकरण करनेके लिए एकान्तमें नन्दालय आये थे, तब उन्होंने नन्द महाराजके अनुरोधसे अन्नप्राशनका दिन भी स्थिर कर दिया था।

माघे शुक्ल चतुर्दश्यां कुरु शुभक्षणे।
 गुरुवारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्रतारके॥
 चन्द्रस्थे मीनलग्ने च लग्नेश पूर्ण दर्शने।
 वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे॥
 सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टौपयोगिके।
 आलोच्य पण्डितैः सार्द्धं कुरु कर्म मुदान्वितः॥
 (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

गर्गाचार्यने नन्द महाराजसे कहा—अगले माघ मासकी शुक्ला-चतुर्दशी तिथिके शुभ क्षणमें अपने इस पुत्रका नामकरण और अन्नप्राशनका अनुष्ठान करना। उस दिन बृहस्पतिवार, रेवती नक्षत्र एवं तुम्हारे पुत्रकी चन्द्रशुद्धि और ताराशुद्धि है। उस दिन लग्नपतिकी पूर्णदृष्टियुक्त चन्द्रगत मीन लग्नमें वणिज करणमें शुभयोगमें इस शुभकर्मका सम्पादन करेंगे। यह दिन सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वसद्गुण-सम्पन्न है, अतएव आप पण्डितोंके साथ परामर्शकर यथा समयमें परमानन्दसे शुभ कर्म करेंगे।

गर्गाचार्यके आदेश-अनुसार नन्द महाराजने माघ मासकी शुक्ला चतुर्दशीके दिन महा समारोहके साथ पुत्रका नामकरण एवं अन्नप्राशनका अनुष्ठान किया था। इस महामहोत्सवमें सभी ब्रजवासीगण एवं दूरदेश-स्थित आत्मीय-स्वजन नन्दालयमें आये थे। ब्रजराजने उस दिन अपने पुत्रके कल्याणके लिए मुक्तहस्तसे दान एवं देव-दुर्लभ आनन्द-उत्सव आदिका अनुष्ठान किया था।

नन्दः सानन्द युक्तश्च बहुमङ्गल पत्रिकाः।
 प्रस्थापयामास शीघ्रमाराद्दूरस्थितान् मुदा॥
 दधिकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्।
 गुडकुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्याञ्च विस्तृताम्॥

नवनीतकुल्यां पूर्णाञ्च तक्रकुल्यां यदृच्छया ।
 तण्डुलानाञ्च शालीनामुच्चैश्च शत पर्वतम् ॥
 पृथुकानां शैलशतं लवणाञ्च सप्त च ।
 परिपक्व फलानाञ्च तत्र षोडश पर्वतान् ।
 यव गोधूम पूर्णानां पक्व लड्डुक पिष्टकैः ॥
 मोदकानाञ्च शैलञ्च स्वस्तिकानाञ्च पर्वतान् ।
 कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान् सप्त च नारद ।
 पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात् ॥
 (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

पुत्रके अन्नप्राशन महोत्सवमें नन्दबाबाने परमानन्दमें निकटवर्ती और दूरदेशोंमें स्थित आत्मी-यजनोंके पास निमन्त्रण भेजा। यथा समयमें नन्दबाबाने पुत्रके अन्नप्राशनमें दधि, दुग्ध, घृत, गुड़, तैल, मधु, नवनीत, तक्र (छाछ) एवं शर्करासे परिपूर्ण पृथक्-पृथक् कुल्या (सरोवर) प्रस्तुत किये। इसके अतिरिक्त शालि तण्डुलके द्वारा एक सौ ऊँचे-ऊँचे पर्वत, चिड़वा एक सौ पर्वत तथा ताम्र मुद्रा द्वारा सात पर्वतोंका निर्माण किया।

नन्दमहाराजने अपने पुत्रके अन्नप्राशनमें इस प्रकार बहुविध दान आदिके द्वारा शुभकर्मका अनुष्ठान किया।

नन्द कृतान्हिकः पुतो धृत्वा धौते च वाससी ।
 उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपीठे मनोहरे ॥
 गर्गस्थेन मुनीन्द्रानां गृहीत्वाज्ञां ब्रजेश्वरः ।
 संस्मृत्य विष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचन पूर्वकम् ॥
 कृत्वा कर्म च वेदोक्तं भोजयामास बालकम् ।
 गर्गवाक्यानुसारेण बालकस्य मुदान्वितः ॥
 कृष्णेति मङ्गलं नाम ररक्ष च शुभेक्षणे ।
 सघृतं भोजयित्वा च कृत्वा नाम जगत्पतेः ।
 वाद्यादीन् वादयामास कारयामास मङ्गलम् ॥

नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि भूषणानि च।
 भक्ष्य द्रव्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
 वन्दिभ्यां भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ।
 भाराक्रान्तश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेव च॥
 ब्राह्मणान् वन्धुवर्गाश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः।
 मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम्॥
 दीयतां दीयतां पूर्णं वाधतामिति।
 बभूव शब्दोऽत्युच्चैश्च सन्ततं नन्दगोकुले॥
 (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

गोपराज नन्दजी पाद-पक्षालनकर धुले हुए वस्त्र परिधानकर पवित्र चित्तसे मनोहर स्वर्णपीठपर बैठे और सन्ध्या आह्निक आदि नित्य-कर्म समापन किया। तदनन्तर उन्होंने समागत मुनीन्द्रोंकी आज्ञा लेकर विष्णु-स्मरण, आचमन और स्वस्तिवाचनपूर्वक वेदोक्त कर्मानुष्ठान कर शुभक्षणमें पुत्रको भोजन कराया एवं गर्गाचार्यके आदेश-अनुसार बालकका 'कृष्ण' यह परम मङ्गलमय नाम रख दिया। इस प्रकार पुत्रका नामकरण और अन्नप्राशन समापनकर गोपराज विविध प्रकारकी मङ्गल-ध्वनियोंके साथ अपने पुत्रके मङ्गलके लिए माङ्गलिक अनुष्ठान करने लगे। उसके पश्चात् वे नानाविध रत्न आभूषण, स्वर्ण, भोज्य द्रव्य और वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको दान देने लगे। इसके बाद समागत भिक्षुकों और वन्दियोंको बहुत परिमाणमें सुवर्ण दान किया। वे लोग नन्दमहाराजके द्वारा प्रदत्त स्वर्ण आदिको ले जानेमें अक्षम हो गये। इसके बाद नन्दमहाराजने समागत ब्राह्मणों, आत्मीय-स्वजनों और भिक्षुकोंको परम-आदरके साथ नानाविध परमान्न आदि भोजन कराया। 'दीयतां भुज्यतां' शब्दसे गोकुल परिपूर्ण हो गया।

इस प्रकार नन्दगोकुलमें नन्दनन्दनका नामकरण और अन्नप्राशनका अनुष्ठान हुआ। गोकुलवासी गोप-गोपीगण नित्य नव-नव बाललीला-परायण नन्दनन्दनको लेकर विविध आनन्द-उत्सवमें निमग्न रहने लगे॥ १२-२० ॥

कालेन व्रजतालपेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजहतुः ॥ २१ ॥

अन्वयः—व्रजता अल्पेन (इसके पश्चात् अति अल्प समय बीतनेपर) रामकेशवौ सहपाणिभ्यां जानुभ्यां (राम और कृष्ण दोनों हाथों और घुँटनोके बलपर) गोकुले (व्रजमें) रिङ्गमाणौ (क्रीड़ा करते हुए) विजहतुः (विहार करने लगे) ॥ २१ ॥

अनुवाद—इसके कुछ समय बाद ही राम और कृष्ण दोनों ही घुटनों और हाथोंका सहारा लेकर रेंगते हुए व्रजमें विहार करने लगे ॥ २१ ॥

सारार्थदर्शिनी—कालेन व्रजतेति—‘ऐश्वर्यमिश्रां कृष्णस्य प्रोच्य बाल्यस्य माधुरीम् । केवलामेव तां प्राह नित्यभाव्यामुपासकैः ॥’ इति ॥ २१ ॥

भावानुवाद—इस प्रकार कुछ समय अतीत होनेपर (राम और कृष्ण) दोनों घुटनों और हाथोंपर चलते हुए गोकुलमें विहार करने लगे। पहले श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-मिश्रित बाललीला-माधुरीका वर्णनकर, अब केवल माधुर्य-मण्डित बाललीलाका वर्णन कर रहे हैं, जो उन उपासकोंके लिए निरन्तर स्मरणका विषय है ॥ २१ ॥

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ,
घोष-प्रघोषरुचिरं व्रजकर्मेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं,
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥ २२ ॥

अन्वयः—तौ (दोनों बालक) घोष-प्रघोष रुचिरं (कमर और चरणोंके किकिणी आदि आभूषणोंकी ध्वनिसे अतीव मनोहर) अङ्घ्रियुग्मं (चरणकमल) व्रजकर्मेषु (व्रजके कीचड़युक्त जमीनमें) अनुकृष्य (बारम्बार खींचते हुए) सरीसृपन्तौ (सरकते हुए चलने लगे) (तथा) तन्नादहृष्टमनसौ (उनके घोषसे प्रसन्नचित्त होकर) लोकं (इधर उधर घुमनेवाले लोगोंका) अनुसृत्य (तिन-चार पग अनुसरण करते हुए)

मुग्धप्रभीतवत् (मुग्ध, डरे हुए की भाँति) मात्रोः (यशोदा और रोहिणीके) अन्ति (समीपमें) उपेयतुः (आते) ॥ २२ ॥

अनुवाद—हे परीक्षित्! अब वे दोनों शिशु अपने नन्हे-नन्हे पैरोंको गोकुलके कीचड़में घसीटते हुए वक्रगतिसे चलने लगे। उस समय उनके पैरों और कमरके घुँघरु रुन-झुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा ही मधुर लगता था। वे दोनों उस मधुर ध्वनिको सुनकर बड़े आनन्दित होते। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अपरिचित व्यक्तिके पीछे-पीछे चलने लगते, किन्तु जब देखते कि यह व्यक्ति कोई दूसरा है तब वे ठिठक जाते और डरकर अपनी माताओं—रोहिणी और यशोदाजीके पास लौट आते ॥ २२ ॥

सारार्थदर्शिनी—अङ्घ्रियुग्ममनुकृष्येति; जानुभ्यां सञ्चालनेन अङ्घ्रयोराकर्षणात्। सरीसृपन्तौ कुटिलं गच्छन्तौ। व्रजकर्मेषु गोरस-गोवत्समूत्रादिकर्मितव्रजाङ्गणेषु। घोषाणां गोपगोपीनां प्रघोषः 'हो हो हो' इति मुखकरतालिकोद्घोषः, तेन रुचिरं यथा स्यात्तथा यतस्तत्रादेत्यादि। घोषाः किङ्किण्य इति स्वामिचरणाः। लोकं व्रजपुरन्ध्रीजनं किञ्चिदागतं मुग्धवत् मातरं मत्त्वैवानुसृत्य पश्चादन्यं ज्ञात्वा मात्रोरन्तिकमुपेयतुः। वतिप्रत्ययाद्यथान्यो मुग्धादिबालस्तथैव लीलावेशेनेत्यर्थः ॥ २२ ॥

भावानुवाद—कृष्ण-बलराम व्रजके कीचड़में घुटनोंके बल चलने लगे। उस समय इस अपरूप लीलाका ध्यान-नेत्रोंसे दर्शनकर श्रीशुकदेवजी महाराज परीक्षित्को दिखा रहे हैं—'अङ्घ्रि युग्मम् अनुकृष्यम्'—देखिये, दोनों बालक घुटनों और हाथोंके बल बकैयाँ चल रहे हैं। 'व्रजकर्मेषु'—गायके दूधसे तथा गोमूत्र आदिके द्वारा कीचड़ बने हुए व्रजके आँगनमें वे घुटनोंके बल चल रहे हैं। 'घोष-प्रघोष-रुचिर'—गोप-गोपियोंका 'हो-हो-हो' इस प्रकार मुखसे हँसने तथा करतालि ध्वनिको सुनकर कृष्ण-बलराम बड़े प्रसन्न हो रहे हैं। या श्रीश्रीधरस्वामिपाद वर्णन करते हैं—बालकोंके कटिभूषण, करभूषण और चरणभूषणकी मनोज्ञ ध्वनिसे व्रजधाम मुखरित हो रहा है। ऐसे मनोहर शब्दको सुनकर प्रसन्न-चित्त होकर बहुत-से व्यक्ति वहाँ समागत हो जाते हैं। उनमेंसे कोई 'हे राम! हे कृष्ण!' कहकर पुकारने लगते। उनकी आवाज सुनकर दोनों भाई उनके पीछे-पीछे

दौड़ते हुए चलने लगते। यहाँ व्यक्ति विशेष कहनेसे 'व्रजगोपियाँ' समझना चाहिये। उन्हें माता समझकर कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे जाकर फिर उन्हें अनजान व्यक्ति समझकर दोनों भाई मुग्ध और भयभीत होकर फिरसे माता रोहिणी और यशोदाके पास लौटकर आ जाते हैं ॥ २२ ॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगृह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—तन्मातरौ (यशोदा और रोहिणी) घृणया (अतिशय स्नेहके कारण) स्नुवन्तौ (दूधसे भरपूर स्तनोंसे दूध झर रहा है, जिनके ऐसी दोनों माताएँ) पकाङ्गरागरुचिरो (कीचड़, धूल, मिट्टी लगे हुए शरीरमें अति सुन्दर लगनेवाले) निज सुतौ (अपने पुत्र राम और कृष्णको) दोर्भ्याम् (बाहुयुगल द्वारा) उपगृह्य (उठाकर) स्तनं दत्त्वा प्रपिबतोः (स्तनपान कराती हुई) मुग्धस्मिताल्पदशनं (मधुर हास्यके कारण अल्प-अल्प दँतयुक्त) मुखं निरीक्ष्य (मुखका दर्शनकर) प्रमोदं (अतिशय आनन्द) ययतुः स्म (लाभ करने लगीं) ॥ २३ ॥

अनुवाद—इन सब बाल्यलीलाओंको देखकर—स्नेहातिशयसे परिप्लुत यशोदा एवं रोहिणीदेवीके पयोधरोंसे दुग्ध स्वतः क्षरित होने लगता। जब दोनों कीचड़रूप अङ्गरागसे लिपे हुए लौटते तो उनकी शोभा और भी बढ़ जाती। माताएँ उन पुत्रोंको अपनी भुजाओंमें उठाकर गोदमें रखकर स्तनपान कराने लगतीं। स्तनपान करते समय दोनों बालक मन्द-मन्द मुसकराते हुए जब माताओंकी ओर निहारते तब माताएँ भी उनकी मधुर मुसकान, छोटी-छोटी दँतुलियों और भोली-भाली मुखाकृतिको देखकर अतिशय आनन्दित हो जातीं ॥ २३ ॥

सारार्थदर्शिनी—तदा च तयोर्मातरौ निजसुतौ दोर्भ्यामुपगृह्य प्रमोदं ययतुः । निजनिजेत्यनुक्तत्वात् तौ द्वावपि प्रति तयोर्द्वयोः सुतबुद्धिः ते द्वे प्रत्येव तयोरपि मातृबुद्धिर्बुद्ध्यते । घृणया वात्सल्योत्थकृपया स्नुवन्त्यौ दुग्धस्राविस्तने सत्यौ ।

‘सुन्दरे किं न सुन्दरम्’ इति न्यायेन पङ्क एवाङ्गरागतुल्यस्तेनापि रुचिरौ। मुखमित्येकत्वं स्वस्वलाल्यमुखपेक्षया मुग्धं मनोहरं स्मितं यत्र प्रमाणतः सङ्ख्यातश्चाल्पा दशना यत्र तच्च तच्च॥ २३॥

भावानुवाद—तब दोनों माताएँ अपने दोनों पुत्रोंको अपनी भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगाकर बड़ी आनन्दित होतीं। यहाँ ‘अपने-अपने पुत्रको’ ऐसा वर्णन न होनेसे, उन दोनोंके प्रति माताओंकी पुत्रबुद्धि है एवं कृष्ण-बलरामकी भी दोनों माताओंके प्रति अपनी मातृबुद्धि है। ‘घृणया’—माताओंके वात्सल्यजनित स्नेह-प्रीति और करुणासे उनके स्तनोंसे दूध झर रहा था। ‘पङ्काङ्गरागरुचिरौ’—‘सुन्दरे किं न सुन्दरम्’ इस न्यायसे कीचड़ ही जिनका अङ्गराग है, उसके द्वारा मनोहर, ऐसे सुन्दर देहवाले दोनों बालकोंके मुखको निरीक्षणकर प्रेममें मुग्ध हो जाती। ‘मुखं’—जिनमें मनोहर मन्द-मन्द हास्य एवं छोटे-छोटे सुन्दर दाँत हैं—ऐसे मुखकमलका दर्शन किया करती थीं। (यहाँ नन्दभवनके आँगनकी कीचड़ जिनकी अङ्गशोभा बनी है।) रोहिणी-यशोदा उस शोभाको देखकर आनन्दमें भुजाओंको फैलाकर बालकोंको आँचलमें धारण करतीं। परमानन्दमें उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती। स्तनपान कराते समय उनके छोटे-छोटे दाँतोंको देखकर दोनों माताएँ आनन्दमें डूब जातीं॥ २३॥

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-

वन्तर्ब्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः।

वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ,

प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः॥ २४॥

अन्वयः—(अनन्तर) यर्हि (जिस समय) तदबलाः (ब्रजाङ्गना) अन्तर्ब्रजे (ब्रजके अन्तःपुरमें) अङ्गनादर्शनीयकुमारलीलौ (अङ्गना-गोपियोंके चित्ताकर्षक बाल्यलीला-विलासी) (इस प्रकार) प्रगृहीत पुच्छैः (पूँछ पकड़कर) वत्सैः (बछड़ोंके पीछे-पीछे) इतस्ततः अनुकृष्यमाणौ (इधर-उधर दौड़नेवाले) उभौ (राम और कृष्णको) प्रेक्षन्त्यः उज्झितगृहाः (देखकर घरका काम छोड़कर) हसन्त्यः (हँसती हुई) जहृषुः (आनन्दित होने लगीं)॥ २४॥

अनुवाद—राम और श्याम कुछ अधिक बड़े हुए तो वे व्रजके अन्तःपुरमें व्रजाङ्गनाओंके चित्तको आकर्षित करनेवाली कुमारलीलाको प्रकट करने लगे। व्रजाङ्गनाएँ इन दोनोंकी कौमारक्रीड़ाको देखतीं तो बस देखती ही रह जातीं और घरके कार्योंको भूल-भालकर परम आनन्दमें डूब जातीं। कभी वे सोये हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते तो बछड़े डरे हुए से इधर-उधर भागने लगते। तब वे बछड़ोंकी पूँछ और जोरसे पकड़ते तो बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते ॥ २४ ॥

साराथ्यदर्शनी—यहिं किञ्चिद्बलाधिक्यप्रकटने सति अङ्गनानाम् आ सम्यक् प्रकारेण दर्शनीया अतिचित्ताकर्षिणी कुमारसम्बन्धिनी लीला ययोस्तथाभूतावभूतां, तत् तदा अबलास्तौ प्रेक्षन्त्यः प्रेक्षमाणा जहृषुः। कीदृशौ? ताभ्यां गृहीतपुच्छै-र्वत्सैरितस्ततश्च आकृष्यमाणाविति। शयानानां वत्सानां पुच्छान् जानुचङ्क्रमणेन प्राप्य किमिदमिति साश्चर्यं मौग्ध्येन यदा करतलेन मुष्टीकृत्या गृहीतः, तदा वत्सैरुत्थाय पलायते। ततश्च मौग्ध्येन मुष्टिमत्यजन्तौ, प्रत्युत भयेन द्रढतरीकुर्वन्तौ भूतले घृष्यमाणौ रुदन्तौ विलोक्य ह्यस्तनाद्वत्सादपि दुर्बलौ युवामिति हसन्त्यो यत्नेन पुच्छं त्याजयामासतुरिति ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

भावानुवाद—‘यहिं’ जब दोनों बालकोंमें कुछ बलका संचार हुआ, ‘अङ्गना-दर्शनीय कुमार लीलौ’—तब कृष्ण-बलराम रमणियोंके दर्शनीय कुमारलीला-परायण हुए और व्रजकी रमणियाँ उन बालकोंको देखकर हास-परिहास करती हुई गृहकार्यको भूलकर अतिशय आनन्दका अनुभव करने लगतीं। कभी कृष्ण-बलराम दोनों आँगनमें सोते हुए बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते, इससे बछड़े डरके कारण दौड़ने-भागने लगते और जब वे और भी अधिक जोरसे पकड़ते तो बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। उस समय दोनों भाई रोने लगते। तब गोपियाँ परिहास करती हुई कहने लगतीं—तुमलोग कलके बछड़ेसे डर कर रो रहे हो, तुमलोग बहुत कमजोर हो—ऐसा कहकर पूँछसे दोनोंके हाथकी मुट्ठी खोल देतीं ॥ २४ ॥

शृङ्गाग्निदंष्ट्र्यहिलद्विजकण्टकेभ्यः

क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धम्।

गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—तज्जननौ (यशोदा और रोहिणी) यत्र (जब) क्रीड़ापरौ (खेलते हुए) अतिचलौ (अतिशय चञ्चल) स्वसुतौ शृङ्गयग्निदंष्ट्रचहिजल द्विजकन्टकेभ्यः (अपने पुत्रोंको शृङ्गवाले बैल, अग्नि, पक्षी, काँटे, इन सबसे) निषेद्धुं (मना करती हुई) गृह्याणि (घरका काम) कर्तुं अपि न शेकात (दोनों एकसाथ करना सम्भव नहीं हो रहा था) तदा (उस समय) मनसः अलं (मन भी चञ्चल हो जाता) अनवस्थां (तब वात्सल्यरसके पोषणकारी चापल्य नामक सञ्चारीभावको) आपतुः (प्राप्त करने लगी) ॥ २५ ॥

अनुवाद—क्रमशः कृष्ण-बलराम अति चञ्चल होते जा रहे थे। विचित्र-विचित्र खेल उन्हें सूझा करते थे। कभी वे हरिन, गाय और बैल आदि सींगवाले पशुओंके पास दौड़ पड़ते, कभी धधकती आगके समीप पहुँच जाते तो कभी दाँतोंसे काटनेवाले कुत्ते, बिल्ली आदिके सम्मुख जाकर खड़े हो जाते, कभी कुँएँ या पोखरमें झाँकने लगते तो कभी साँप आदिको पकड़नेके लिए दौड़ते, कभी पक्षियोंके पीछे-पीछे उड़नेकी कोशिश करते तो कभी काँटोंकी झाड़ीमें उलझ जाते। माताएँ उन्हें बहुत रोकती पर वे उनकी पकड़में नहीं आते। उन दोनोंकी विपत्तियोंसे रक्षा करना और घरका काम करना दोनों एक साथ सम्भव नहीं हो पाता था, अतः वे बड़ी अस्थिर एवं उद्विग्न हो जाया करती थीं। इस प्रकार वे वत्सल 'चापल्य' नामक सञ्चारीभावको प्राप्त हो जाती थीं ॥ २५ ॥

सारार्थदर्शिनी—अतिचलौ तौ शृङ्गादीन् धर्तुं चलन्तौ, तैः सह क्रीडितुमिच्छन्तौ वा। तौ तेभ्यो निषेद्धुं गृहोचितानि कर्माणि च कर्तुं यत्र यदा तज्जनन्यौ न शेकतुः, तदा मनसोऽनवस्थां चापल्यं वात्सल्यस्यापिपोषकसञ्चारिभावम् आपतुः। तत्र शृङ्गिणो वृषादयः, दंष्ट्रिणः कुक्कुरादयः, द्विजाः पक्षिणः ॥ २५ ॥

भावानुवाद—क्रमशः कृष्ण-बलराम अत्यन्त चञ्चल हो गये। कभी वे सींगवाले बैल एवं कुत्ते आदिको पकड़नेके लिए जाते या

उनके साथ खेलने जाते। उस समय दोनों माताएँ उन्हें रोकतीं, परन्तु रोक नहीं पाती थी। इस प्रकार उनके लिए गृहकार्य और उन बच्चोंकी रक्षा करना—दोनों एक साथ करना दुष्कर हो जाता। इसलिए वे उद्विग्न हो जातीं अर्थात् वात्सल्यरस-पोषक चापल नामक सञ्चारीभावको प्राप्त हो जाती थीं॥ २५॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितके निकट नन्दनन्दनकी बाललीला-माधुरीका वर्णन करते हुए उनके नामकरण एवं उनके गुणोंका कीर्त्तन किया। अब वे दोनों भाई राम और कृष्ण कुछ दिनके पश्चात् घुटनोंके बल चलने लगे। जिनके बाल-विग्रहके गुप्त ऐश्वर्यसे पूतना और शकटासुर मारे गये, वे सर्वैश्वर्य-निकेतन नन्दनन्दन इतने दिन माँ यशोदाके वात्सल्य-प्रेमकी मर्यादाके लंघनके भयसे हाथ-पैर आदि सञ्चालनकी शक्ति प्रकाश नहीं कर सके। माँ यशोदा और उनके अनुगत वात्सल्यवती गोपियोंकी इच्छासे कभी उनकी गोदमें और कभी शय्यामें पाँच-छह महीने बिताकर अब क्रमसे घुटनों एवं हाथोंके बलसे चलना, माता यशोदाका हाथ पकड़कर उठना, दो-एक पैर करके चलना आदि विशुद्ध बाल लीलाओंको प्रकाश करने लगे।

सूर्यकान्त मणिमें जिस प्रकार सूर्यकी किरणका विशेषत्व प्रकाशित होता है, उसी प्रकार एकमात्र गोकुलमें ही श्रीभगवान्की निरूपम बाल-माधुरी प्रकाशित होती है। गोकुलके अतिरिक्त किसी दूसरे धाममें भगवान्की ऐसी बाललीला प्रकाशित नहीं हुई है। जगत्में देखा जाता है—बालक अपने पितृ-भवनमें पिता-माताके निकट निःसंकोच रूपसे बालक्रीड़ा करते हैं। परन्तु उस बालकको अन्यत्र ले जानेपर फिर वह माधुर्य प्रकाश नहीं होता है। गोकुल भी नन्दनन्दनका पितृ-भवन है। वहाँ वे निःसंकोच रूपसे बालक्रीड़ाएँ करते हैं। अन्यत्र वह प्रकाशित नहीं होता है। सभी गोकुलवासी ऐश्वर्यज्ञान-रहित विशुद्ध प्रेमके आश्रय हैं, इसलिए उनके सामने श्रीकृष्णका सर्वाधिक माधुर्य प्रकाशित होता है।

चतुर्धा माधुरी तस्य व्रजे एव विराजते।

ऐश्वर्य क्रीडयोर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च॥

(श्रीलघुभागवतामृतम्)

इससे जाना जाता है कि भगवान्‌का ऐश्वर्य, उनकी क्रीड़ा, वेणु और श्रीविग्रहका माधुर्य केवलमात्र व्रजधाममें ही विराजमान है।

‘कालेन व्रजतां तात गोकुले रामकेशवौ’ आदि श्लोकोंमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने नन्दभवनमें बाल्यलीला-विलासी रोहिणीनन्दन एवं यशोदानन्दनका ‘राम और केशव’ इन नामोंका उल्लेखकर विशेष रूपसे लीला-माधुरीको परिपुष्ट किया है। ‘राम’ शब्दका अर्थ रमणीय है। रोहिणीनन्दन रामकी रमणीयता इस लीलामें परिपूर्ण रूपमें अभिव्यक्त हुई है। रोहिणीनन्दनने यशोदानन्दनसे आठ दिन पहले जन्म ग्रहण किया है। अतएव दोनों भ्राताओंने एक ही साथ घुटनोंपर चलना प्रारम्भ किया। रोहिणीनन्दनके घुटनोंके बल चलनेपर यशोदानन्दन एवं यशोदानन्दनके घुटनोंके बल चलनेपर रोहिणीनन्दन उल्लासयुक्त होकर विविध प्रकारकी भङ्गीके साथ (बकैयाँ) चलते हैं, इससे दोनोंको ही परमानन्द होता था एवं यह देखकर यशोदा, रोहिणी और वात्सल्यप्रेमवती गोपियाँ आनन्दमें आत्मविभोर हो जाती थीं। बाल-लीलामें राम-कृष्णका मिलन अतीव मधुर है। ऐसा मिलन राम, कृष्ण, व्रजवासी एवं जिन्हें इस लीलाकथाको श्रवण-कीर्तन करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है, उन सबके लिए परम रमणीय है।

राम-कृष्ण दोनों भाईयोंने कुछ दिन घरमें ही घुटनोंके बल चलनेके बाद आँगनमें निकलना प्रारम्भ किया एवं निरुपम लीला-माधुरीका विकास करने लगे। व्रजराजनन्दन जिस समय घरसे बाहर आ जाते थे, उस समय यशोदा, रोहिणी एवं वात्सल्यवती गोपियाँ दौड़कर उन्हें पीछेसे पकड़ लेती थीं तथा खेलनेमें आविष्ट होनेपर चञ्चल बालकोंके आँगनमें गिरनेसे उनके कोमल अङ्गोंमें चोट लग जायेगी—इस भयसे उन्हें घरमें ले जाती थीं। नन्दभवनके आँगनमें गौवें और बछड़े क्षणकालके लिए व्रजराजनन्दनको देखकर अपने नयन सफल करते थे। उनमें अपना मनोभाव प्रकाश करनेकी कोई भाषा नहीं थी। इसलिए वे बारम्बार हम्बा-रव करते और निर्निमेष नेत्रोंसे घरकी ओर

देखते रहते। उनके नयनोंके नीरसे तथा स्तनोंके क्षीरसे नन्दबाबाका आँगन कीचड़मय बन जाता। इसलिए वात्सल्यवती गौओंके आकर्षणसे नन्दनन्दन कितने दिन तक घरके भीतर रह सकते थे? अतएव वे भी धीरे-धीरे घरसे बाहर आँगनमें आकर खेलने लगे। इससे ब्रजराजनन्दनको अपार आनन्द होता था। राम, कृष्ण दोनों भाई एक-दूसरेको पराजित करनेके लिए होड़ लगाकर घुटनोंपर चलने लगे। उस समय उनकी रमणीय माधुरी देखकर गोप-गोपियाँ तथा आँगनकी गौएँ आनन्दमें अधीर होकर चित्र-पुत्तलिकाकी भाँति बन जाती थीं। कभी-कभी वे गोपियाँ राम-कृष्णके बकैयाँ चलनेके माधुर्यसे मुग्ध होकर हाथ-ताल बजाती, कभी-कभी 'हो-हो' कर उनके पीछे पीछे दौड़तीं, यह देखकर राम और कृष्ण जोरसे दौड़ने लगते। उससे उनके अङ्गोंकी माधुरी एवं नूपुर, किंकिणी आदिके शब्द मधुरसे भी सुमधुर होकर एक अप्राकृत अमृतकी धाराकी भाँति वात्सल्य-भाववती गोपियोंके नयन और कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश करते।

राम और कृष्ण—इन दोनों बालकोंको यशोदा और रोहिणी जिस प्रकार वात्सल्य दृष्टिमें देखती थीं एवं वात्सल्यप्रेम-उचित व्यवहार करती थीं, उससे कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी माता है, इसे समझना कठिन हो जाता था। कभी यशोदानन्दन रोहिणीकी गोदमें और कभी रोहिणीनन्दन यशोदाकी गोदमें जाकर स्तनपान करते थे एवं परमानन्दमें बाललीला करते थे। इसलिए श्रीशुकदेवजीने 'तन्मातरौ' आदि श्लोकोंमें कहा है—'राम और कृष्णकी जननीने अपने पुत्रको गोदमें धारण किया।' यदि उनके वात्सल्यके तारतम्य-हेतु राम और कृष्णमें भेद दृष्टि रहती, तो श्रीशुकदेवजी 'अपना पुत्र' न कहकर 'अपना-अपना पुत्र' कहते।

यशोदा और रोहिणीके पुत्रोंको गोदमें लेकर स्तन अर्पण करनेपर यशोदानन्दन और रोहिणीनन्दन उस स्तन-क्षरित वात्सल्यप्रेम-पीयूष-धारा पानकर परमानन्द-सागरमें निमग्न होकर आत्मविस्मृत हो जाते। उस समय उनके हृदयका उल्लास बाहर प्रकट होने लगता। उससे बिम्बाधरके ईषत् स्फुरण होनेपर नवोद्भूत सुविरल मृदु मौक्तिक दशन (दाँत) के अग्रभागका किञ्चित् विकास होने लगता, जिससे

उसकी अतुलनीय धवल-ज्योतिसे ओष्ठाधर आलोकित हो जाते तथा मुखमण्डलपर एक निरुपम सुषमा विकसित होने लगती थी। वात्सल्यप्रेमसे परिभावित यशोदा और रोहिणी राम और कृष्णके उस स्तन-संलग्न मुखकी हास्यसुधा माधुरीको देखकर जिस अप्राकृत महानन्द-समुद्रमें डूब जातीं, वह 'धारणा या वर्णन' से बहुत परे है। दुःखमिश्रित विषयानन्द या अनुभव-विहीन ब्रह्मानन्द इस आनन्दके करोड़ों-करोड़ों अंशोंके एक अंशके समान भी नहीं हो सकता है। अज, भव, शेष, लक्ष्मी आदिको कभी भी इस आनन्दका किञ्चित्मात्र अनुसन्धान प्राप्त हुआ है या नहीं—इसमें सन्देह है। यह आनन्द एकमात्र माता यशोदाकी ही सम्पत्ति है। उनके चरणोंके अनुगत होनेपर उनकी कृपासे इस आनन्द-सिन्धुकी एक बूँदका किञ्चित् आस्वादन हो सकता है।

राम-कृष्णकी ये सभी परम मधुर बाललीलाएँ सबके लिए मनोहारी होनेपर भी विशेषकर वात्सल्यवती गोपियोंके ही मनोनयनाभिराम होने लगीं। क्योंकि वे नन्दबाबाके अन्तःपुरमें रहकर सर्वदा इन लीलाओंको देखती रहती थीं। गोपियोंकी भाँति गोपगण सर्वदा अन्तःपुरमें जाते नहीं हैं। इसलिए वे प्रायः यह बाल्यलीला देख नहीं पाते। बालककी प्रथम समुदित बाल्यलीलामें जननी वर्गका ही श्रेष्ठ अधिकार है। क्योंकि इस समय बालक सदैव जननीके निकटमें ही रहता है। यशोदा, रोहिणी, नन्दालयमें स्थित धात्री और दासीवर्ग सर्वदा राम-कृष्णकी बाललीलाओंको देखकर परमानन्दमें पुलकित रहती थीं। पड़ोसिन गोपियाँ भी किसी प्रकार बहाना बनाकर अपना गृहकार्य समापनकर शीघ्रातिशीघ्र नन्दालयमें आकर उपस्थित होतीं एवं आनन्दपूर्वक राम-कृष्णके बालविहारको देखतीं। राम-कृष्णके बाल-विहार क्रीड़ाओंके दर्शनकी लालसासे वे अपने गृहकार्यको भी भूल जाती थीं। जब वे घरमें रहती थीं, तब भी उनका मन-प्राण राम-कृष्णकी बाललीला-सिन्धुमें ही डूबा रहता है। बाललीला-रसके आवेशमें अब राम-कृष्ण दोनों भ्राताओंको घरसे आँगन अधिक प्रिय होने लगा। वे गोपराज नन्दके सुविशाल प्राङ्गणमें कभी द्रुत-गतिसे घुटनोंपर बकैयाँ चलते और कभी बछड़े आदिके अङ्गोंको आश्रयकर

खड़े होनेका प्रयास करते, कभी गिरते-पड़ते हुए दो-एक पैर चलकर बालविहारमें परमानन्द उपभोग करने लगते और उस परमानन्द रस-धारामें वात्सल्यवती गोपियोंको भी डूबा देते।

इस प्रकार राम-कृष्णके बाललीलारसमें आकृष्ट होकर गो एवं बछड़े भी नन्दबाबाके आँगनको छोड़ते नहीं थे, उन्हें बलपूर्वक गोष्ठकी ओर जानेके लिए बाध्य करनेपर भी वे घूम-फिरकर नन्दबाबाके आँगनमें खड़े हो जाते थे। गो-रक्षकगणके गायोंको गोष्ठमें ले जानेके लिए उनकी पीठपर डण्डे मारनेपर भी वे राम-कृष्णकी बाललीला-माधुरीके दर्शनकी लालसासे मार खाकर भी आँगनमें ही खड़े रहते थे एवं बछड़ोंको बलपूर्वक आँगनके बाहर ले जानेके लिए प्रयास करनेपर वे आँगनमें सो जाते थे। इसलिए नन्दबाबाका आँगन सदैव गायों और बछड़ोंसे भरा रहता था।

किसी समय राम-कृष्ण जब गाय और बड़े-बड़े बछड़ोंके निकट उपस्थित होते, तब वात्सल्यरसवती गोपियाँ, उन बालकोंके अङ्गोंमें गायोंके सींग लग जानेके डरसे जल्दीसे जल्दी गोदमें उठाकर ले आती थीं। परन्तु जब वे छोटे-छोटे बछड़ोंके निकट जाते, तब गोपियाँ डरती नहीं थीं या वहाँसे उन्हें जल्दी नहीं ले आती थीं। राम और कृष्ण दोनों भाई कभी-कभी सोये हुए बछड़ोंकी पूँछ देखकर आश्चर्यचकित होकर बछड़ोंके निकट जाते एवं कुछ देर उनकी पूँछको हिलाकर जोरसे पकड़ लेते थे। तब बछड़े डरकर उठकर भागने लगते थे और राम-कृष्णको घसीटते हुए ले जाते थे। वात्सल्यवती गोपियाँ उनके इस बाललीलारसमें मग्न होकर भाव-विभोर हो जाती थीं। वे हास्यजड़ित स्वरसे 'अहो वीर! अहो वीर!' कहते हुए हाथताली बजाकर पीछे-पीछे दौड़ने लगतीं। बछड़ेकी पूँछ पकड़े हुए आँगनमें घसीटे जाते हुए जब राम और कृष्ण पीड़ित होकर और डरकर रोने लगते, तब उनका रोना देखकर गोपियाँ दौड़कर बछड़ोंको पकड़ लेती एवं पूँछसे उनकी मुट्ठी छुड़ा लेती थीं। राम-कृष्ण गोपियोंका गला पकड़कर होंठ फड़-फड़ाते हुए घन-घन निःश्वास परित्याग करने लगते। गोपियाँ तब राम-कृष्णकी पीठपर हाथ फेरती हुई कहने लगती—कन्हैया! दाऊ! तुमलोग नवजात

बछड़ोंके साथ खेलते हुए हार गये। छिः! छिः! बड़ी लज्जाकी बात है। तुम बड़े होकर कैसे गोचारण करोगे? राम-कृष्ण उनकी बातोंको अनसुना करके लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए अङ्गुलियोंसे यशोदा और रोहिणीकी ओर इशारा कर देते थे। तब गोपियोंके राम और कृष्णको यशोदा, रोहिणीके निकट ले जानेपर वे हाथ बढ़ाकर जननीकी गोदमें पहुँच जाते तथा मैयाके गलेसे लिपट जाते। माताएँ स्नेहवश उन्हें हृदयमें लगाकर कहने लगतीं—बछड़े बड़े नटखट हैं, उन्हें आँगनमें आने नहीं दूँगी। उस समय दोनों माँकी बात सुनकर सिर हिलाकर मना करने लगते तथा माताका स्तन पीने लगते। जननी भी परमानन्दमें प्राणाधिक प्रिय पुत्रोंको स्तन पान कराती हुई हाथोंसे उनके शरीरसे धूल-मिट्टी झाड़ने लगतीं।

क्रमशः राम और कृष्णकी बाललीला-चापल्य इतना बढ़ गया कि उससे यशोदा और रोहिणी क्षणकालके लिए भी स्थिर नहीं रह पातीं थीं। ‘चञ्चल बालक कहाँ गये’, ‘क्या कर रहे हैं’ इत्यादि चिन्तामें वे सदा व्याकुल रहती थीं। इसलिए वे ठीक ढंगसे घरका काम भी नहीं कर पाती थीं। अबोध और चञ्चल बालकोंकी रक्षा करनेके लिए सदा-सर्वदा उन्हें बालकोंके साथ दौड़ना पड़ता था।

गाय, बैल आदि देखनेपर वे जल्दीसे दौड़कर उनके निकट पहुँच जाते। राम-कृष्णकी भुवनमोहन मूर्ति देखकर वे भी परमानन्दमें सिर झुका लेते तथा वे दोनों उनके सींग पकड़नेके लिए जाने लगते। कभी-कभी आँगनमें सोते हुए गाय, बैल आदिके शरीरको पकड़कर तथा उसके ऊपर चढ़नेके लिए उसके सींग और पूँछको पकड़कर विविध चेष्टाएँ करते, यह देखकर रोहिणी और यशोदा बहुत डर जातीं। वे सोचतीं—यदि बालकके कोमल अङ्गोंमें गाय-बैलके सींगकी चोट लग जाय, तो क्या होगा। वे दौड़कर बालकोंके निकट जाकर उनको गोदमें लेकर घरमें आ जातीं और कहती—“अरे दुष्ट बालको! वे बैल और गाय यदि तुम्हें मार देते, तब क्या होता?” परन्तु वे दोनों माँकी बातोंपर ध्यान न देकर अपने दोनों हाथोंसे गला पकड़कर माँकी गोदीमें ही नाचने लग जाते। फिर गोदीसे उतरकर

आँगनमें जानेका प्रयास करने लगते। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन दोनों बालक चाञ्चल्य प्रकाश करते हुए खेलने लगे।

प्रज्ज्वलित अग्नि देखकर राम और कृष्णके आनन्दकी कोई सीमा ही नहीं रहती थी। वे जल्दीसे दौड़कर आगके पास पहुँच जाते। उन्हें देखकर अग्नि भी दक्षिणावर्त्तमें प्रज्ज्वलित होकर आनन्दमें अपनी शिखा-सञ्चालन करती हुई नृत्य करने लगती। राम और कृष्ण उस अग्नि-शिखाके सौन्दर्यसे मुग्ध होकर हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ने जाते। कभी-कभी दूरसे देखनेपर ऐसा लगता, मानो प्रज्ज्वलित अग्निकुण्डमें प्रवेशकर वे आगकी शिखाओंसे खेल रहे हैं। यशोदा एवं रोहिणी दूरसे इस अद्भुत बाल-चापल्यको देखकर महाभयसे अधीर हो जातीं। वे मन-ही-मन सोचती—अब रक्षा नहीं, निश्चित ही बालकका कोमल अङ्ग प्रज्ज्वलित अग्निमें जल गया होगा। वे क्षणकाल विलम्ब न कर व्याकुल होकर अग्निकुण्डके पास जाकर पुत्रोंको घरमें ले आती, गोदमें लेकर कहती—अरे अबोध बालको! क्या तुम्हारे शरीरमें ताप भी नहीं लगता है? जननीकी बात सुनकर राम और कृष्ण दोनों सिर घुमाते हुए कहने लगते—नहीं मैया! हमें गर्मी नहीं लगती है। नन्दभवनके आँगनमें कभी कुत्ता आ जाता, तो राम-कृष्ण दोनों दौड़कर उसके निकट आ जाते, उन्हें देखकर कुत्ता भी परमानन्दमें पूँछ हिलाता हुआ सिर झुका देता। तब दोनों बालक बायें हाथसे उसकी गर्दन पकड़कर उसके मुँहमें दाहिना हाथ डालकर दाँत और जीभको पकड़ लेते, कभी उसकी पूँछको पकड़कर खींचते, तो कभी पीठपर चढ़नेका प्रयास करते। बन्दर देखनेपर उसके पास जाकर उसकी पूँछ पकड़कर खींचते, कभी-कभी दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथोंको पकड़कर खींचते हुए उसे घरकी ओर ले आते। यशोदा और रोहिणी यह सब देखकर शीघ्रतासे बालकको गोदीमें लेकर मन-ही-मन सोचती—यदि ये कुत्ते और बन्दर इन्हें काट देते—तब तो सर्वनाश हो जाता।

कभी आँगनके पास काले सर्पको देखकर दौड़कर उसकी पूँछ पकड़कर खींचने लगते थे, उससे सर्प परमानन्दमें फन फैलाकर

दाँयें-बाँयें सिर हिलाने लगता। दोनों बालक बाँयें हाथकी मुट्ठीमें उसे पकड़कर फनके ऊपर दाहिना हाथ रख देते, कभी-कभी दोनों हाथोंसे साँपको पकड़कर मालाकी भाँति गलेमें धारण कर लेते। यह देखकर यशोदा, रोहिणी भयभीत होकर—“हे नारायण रक्षा करो! रक्षा करो!” कहकर शीघ्रतासे बालकके पास पहुँच जातीं। दौड़ते समय उनके सिरसे फूलकी माला भी गिर जाती तथा वे सिरपर और छातीपर हाथ मारती हुई हाय! हाय! करती हुई बालकोंके निकट जाकर उन्हें गोदमें ले लेतीं एवं तिल-तिलकर बालकके प्रत्येक अङ्गको निहारतीं थीं तथा मन-ही-मन सोचती थीं—इस महासर्पने पुत्रोंके कोमलाङ्गमें कहीं दंशन तो नहीं किया है? फिर वे पुत्रोंको घरमें लाकर कहती—“अरे अबोध-चञ्चल बालको! हम कैसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करें? इस महासर्पके काटनेसे आदमी मर जाता है। तुम्हें खेलनेके लिए दूसरा कुछ नहीं मिलता? साँप क्या खेलनेकी वस्तु है?” परन्तु वे दोनों मुग्ध होकर जननीकी ओर दृष्टि डालकर चुपचाप सुनते रहते और बस बीच-बीचमें हाथ और सिर हिला देते।

किसी समय राम और कृष्ण नन्दभवनके प्राङ्गणके निकटमें स्थित चारों ओर दीवारसे घिरे हुए कुँएमें जाकर कलश डालकर कुँएसे रस्सी खींचने लगे, परन्तु पानीसे भरे हुए कलशको खींच न पानेसे जोरसे मैया-मैया पुकारने लगते। बालकके भयभीत कण्ठस्वरको सुनकर यशोदा और रोहिणी घबराकर आँगनके चारों ओर देखने लगीं, परन्तु उन्हें न देख पानेपर अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। इसके पश्चात् वे राम और कृष्णके पुकारनेकी ध्वनि सुनकर कुँएके निकट उपस्थित हुई एवं बड़ी व्याकुल होकर पुत्रोंको गोदमें ले गयीं और कहने लगीं—“इन अबोध अशान्त बालकोंके जीवनकी रक्षा करना हमारे लिए सम्भव नहीं है। हाय! हाय! हम इन बालकोंका कैसे पालन करें? एकमात्र नारायणकी कृपासे ही आज बालकोंके प्राणोंकी रक्षा हुई है। थोड़ा-सा विलम्ब होनेसे ही ये बालक कुँएमें जा गिरते।” तब यशोदा और रोहिणीने परामर्शकर स्थिर किया—हमें घरके कामोंकी अब कोई जरूरत नहीं है। हमें सदा-सर्वदा बालकोंके साथ रहना होगा, इसके बिना दूसरा कोई उपाय नहीं दीखता है।

कृष्ण-बलराम जब आँगनमें खेलते थे, तब पूँछ फैलाकर नृत्य और के-का-रव करते हुए मोर उनके निकट आ जाते। नीलकण्ठका श्रीकृष्णमें एवं श्रीकृष्णका नीलकण्ठमें स्वाभाविक और चिरन्तन अनुराग है, इसलिए वे एक दूसरेको देखकर आनन्दित होते थे। राम और कृष्ण मोरकी सुरञ्जित पूँछ एवं सुरम्य कण्ठ देखकर परमानन्द एवं आग्रहके साथ उसपर हाथ फेरने लगते। कभी उसकी पूँछ देखकर उसे लेनेके लिए पकड़कर खींचते हैं, इससे मोर इधर-उधर दौड़ने-भागने लगते एवं राम और कृष्ण दोनों उनके पीछे-पीछे दौड़ते। यह देखकर यशोदा और रोहिणी अत्यन्त डर जाती और सोचतीं—मोर यदि चोंचसे आघात कर देंगे, तो बालकोंके सुकोमल अङ्ग क्षत-विक्षत हो जायेंगे। इसलिए वे घबड़ाकर जल्दीसे आँगनमें जाकर बालकोंको गोदमें लेकर घरमें आ जातीं थीं। परन्तु राम-कृष्ण मैयाकी गोदीमें रहना नहीं चाहते थे, वे बारम्बार मोरकी ओर देखकर अङ्गुलि दिखाकर उसके पास जानेकी इच्छा प्रकट करते थे। उस समय यशोदा गोदमें लेकर स्तन पान कराती हुई मधुर वचनसे कहा करतीं—“लाड़ले! ऐसी चञ्चलता नहीं करनी चाहिये। तुम मेरे पासमें रहो, मैं ब्रजराजको कहकर तुम्हारे लिए बहुत-से मोर, शुक, सारी और बहुत-से पक्षियोंको मँगा दूँगी। तुम पिञ्जड़ेमें रखकर उनके साथ खेलना।” यह सुनकर वे दोनों आनन्दमें अधीर हो जाते थे।

नन्दभवनके प्राङ्गणसे संलग्न फूलोंकी बगीची थी, उसे गाय, बैल आदिसे सुरक्षित रखनेके लिए उसके चारों ओर काँटोंका घेरा लग रहा था। एक दिन कृष्ण, बलराम दोनों खेलते-खेलते बगीचेमें फूलोंको देखकर उन्हें लेनेके लिए मचल गये। परन्तु काँटोंके कारण वहाँ प्रवेश करना सम्भव नहीं था। फिर भी वहाँ प्रवेश करनेकी चेष्टा करते हुए उन्होंने पहले मस्तक, फिर हाथोंसे काँटोंको ठेलकर उन्हें कुछ ऊपर उठाकर अन्दरमें प्रवेश किया, परन्तु कुछ भीतर जाते ही उठाये हुए काँटे गिर गये, जिससे वे उन काँटोंमें घिर गये और निकल नहीं पाये, उसीमें फँस गये। तब उस समय वे ‘मैया, मैया!’ कहकर रोने लगे। उनके पास रोनेके सिवाय और दूसरा कोई उपाय नहीं था। स्वयं विपद्-हारीकी इस विपत्तिमें माँके अतिरिक्त

दूसरा कौन रक्षा करेगा? तब वे जोर-जोरसे मैया-मैया! कहकर रोने लगे। उनके रोनेकी ध्वनि सुनकर यशोदा और रोहिणी दौड़कर वहाँ उपस्थित हुई, बालकोंकी अवस्था देखकर 'हाय! हाय!' कहकर अपने हाथोंसे सिर पीटने लगीं और कहने लगीं—बालकोंके सुकोमल अङ्गोंमें निश्चित ही काँटे घुस गये होंगे। फिर वे अति सावधानीसे बालकोंको काँटोंसे निकालकर लायीं एवं पैरसे सिर तक बारी-बारीसे देखने लगी कि कहीं काँटे तो नहीं घुस गये, फिर गोदमें लेकर उनके शरीरपर हाथ फेरती हुई घरमें ले आयीं। घरमें आकर यशोदा और रोहिणी दोनों पुत्रोंको स्तनपान कराकर कहने लगीं—“अरे अबोध बालको! काँटेसे शरीर क्षत-विक्षत हो जाता है, तुम्हें इसका भी ज्ञान नहीं है क्या?” राम और कृष्ण मुग्ध और शान्त भावसे स्तनपान करने लगे और मैयाके मुँहकी ओर देखने लगे।

‘शृङ्गचग्नदंष्ट्रयहिजलद्विजकण्टकेभ्यः’ श्लोकमें टीकाकारोंने ‘द्विज’ शब्दका ‘पक्षी’ अर्थ किया है। परन्तु ‘द्विज’ शब्दका पक्षी अर्थसे भी ‘ब्राह्मण’ अर्थ सर्व-परिचित और प्रचलित है। इसलिए श्लोक-स्थित ‘द्विज’ शब्दका ब्राह्मण अर्थ लगानेसे, ब्राह्मणके साथ नन्दनन्दनकी एक परम अनिर्वचनीय लीला भी देखी जाती है। एक दिन प्रातःकाल कण्व नामके एक मुनि नन्दालयमें आये। नन्द महाराजने उन्हें देखते ही बाहर आकर उन्हें प्रणाम किया और कहने लगे—“आप बहुत दिनोंके पश्चात् हमारे घरपर पधारे हैं। आज हमारा परम सौभाग्य है।” उन्हें आदर-अभ्यर्थनाके साथ अन्दर ले जाकर आसन, पाद्य, अर्घ्य आदिके द्वारा उनकी पूजा अर्चना की तथा उनके चरणोंमें प्रणामकर कहने लगे—“हे ब्राह्मण! आपकी पदधूलि पाकर आज हम वंश-सहित कृतार्थ हो गये।” यशोदाजी अपने पुत्रको गोदमें लेकर ब्राह्मणके निकट आकर प्रार्थना करने लगीं—“हे मुनिवर! बहुत दिनोंसे आपके चरणोंका दर्शन न पानेसे हम आपकी सेवासे वञ्चित हैं। आपके चरणोंके आशीर्वादसे मुझे एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ है। अतः आप आशीर्वाद कीजिये, जिससे इस बालकको दीर्घ जीवन प्राप्त हो और यह आप सबकी सेवा करके कृतार्थ हो।”

ब्राह्मण कुछ समय मौन रहकर यशोदाजीसे कहने लगे—“व्रजरानी ! तुम्हारे पुत्र-प्राप्तिके संवादसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। श्रीनारायणकी कृपासे तुम्हारी मनोवासना पूर्ण हो, तुम्हारा पुत्र दीर्घ जीवन प्राप्तकर तुम सबका आनन्द-वर्द्धन करे।” ब्राह्मण इस प्रकार आशीर्वाद देकर आसनसे उठ पड़े और बोले—“यशोदे ! मैं अभी चल रहा हूँ।” यशोदाजी ब्राह्मणको कहने लगीं—“यह कैसे हो सकता है ? आप अभी कैसे विदा होंगे ? आप आज तक तो कभी भी बिना भोजन किये गये नहीं। आज मैं कौन-से अपराधसे सेवासे वञ्चित रहूँगी। विशेषकर आज द्वादशी तिथि है, प्रातःकाल आपका चरण-दर्शन मिला है, अतः पारण कराये बिना आपको जाने नहीं दूँगी।”

यशोदाके अतिशय आग्रह और प्रेममय अनुरोधके कारण ब्राह्मण नन्दालय छोड़कर नहीं जा सके, परन्तु कहने लगे—यशोदे ! तुम पुत्रवती हो। तुम बालकके लालन-पालनमें व्यस्त रहती हो, इसलिए एकान्तमें भोजन बनानेकी हमारी व्यवस्था कर दो, मैं भोजन बनाऊँगा तथा अपने इष्टदेव बालगोपालको भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करूँगा। यशोदा मैयाने उनके लिए भोजन पकानेकी सारी व्यवस्थाएँ कर दीं। चूल्हा लीप-पोतकर भोजन पकानेके लिए द्रव्य सामग्री, बर्तन, पानी आदि सब कुछ दे दिये।

तब ब्राह्मण आसन छोड़कर यशोदाके बुलानेपर भोजन पकानेके लिए चल दिये एवं जाते समय पुनः-पुनः आँगनकी ओर देखने लगे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि व्रजाङ्गनाओंके मध्यवर्त्ती विचित्र बाल्यलीला-परायण बालगोपालको देखकर जाऊँ अथवा उसको देखते-देखते भोजन भी बनाऊँ। परन्तु यह सम्भव नहीं हो सका। वे एकान्त निर्जन स्थानमें जाकर भोजन बनाने लगे। परन्तु बार-बार उस बालककी छवि उनके स्मृतिपटमें जागरूक होने लगी। यद्यपि ब्राह्मण उस निर्जन गोशालामें रन्धन-कार्यमें व्यस्त थे, परन्तु उनका उसमें मन नहीं लग रहा था। उनके मनमें यही भावना जाग रही थी—उस यशोदानन्दनकी भुवनमोहन अङ्गशोभा और व्रजाङ्गनाओंके साथ मनोहर भङ्गिसे सुमधुर बाललीला कैसी है ? वे मन-ही-मन

सोचने लगे—“यहाँ भोजन न बनाकर उसी आँगनमें बनानेसे बालकको देखता रहता और प्रसाद भी बन जाता।”

जैसे भी हो जल्दीसे भोग-रन्धन हो गया, अब उन्होंने सोनेकी थालमें भोग परोसकर अपने इष्टदेवको समर्पण किया। अनन्तर कमरेका दरवाजा बन्दकर बाहर आये तथा मन्त्र जपने लगे। उसके पश्चात् हाथताली बजाकर द्वार खोलनेपर ब्राह्मण अतिशय चमत्कृत और विस्मित हो गये। ब्राह्मणने देखा—यशोदानन्दन पैरके ऊपर पैर रखकर स्वस्तिक आसनमें उसके इष्टदेवताके स्थानपर बैठा हुआ भोजन कर रहा है। यशोदानन्दनको देखकर ब्राह्मण चकित और विस्मित हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—यह क्या? परन्तु दूसरे ही क्षणमें उनका वह भाव अन्तर्हित हो गया तथा वे हाय! हाय! करते हुए कहने लगे—“इस दुष्ट बालकने भगवान्का भोग झूठा कर दिया। यशोदे! यशोदे! अपने चञ्चल बालककी करतूत तो देखो। क्या कर रहा है, देखो!” उस समय यशोदा दौड़ती हुई आर्याँ और बालकको डाँटने लगीं। माँ यशोदाने ब्राह्मणसे बहुत अनुनय-विनय किया, तब ब्राह्मणने दूसरी बार फिरसे भोजन बनाया और भोग लगाया।

यशोदा माँ बड़ी सावधानीसे बालककी निगरानी करने लगीं, जिससे वह फिर ब्राह्मण देवताका भोग झूठा न कर दे। ब्राह्मणने रसोई बनाई तथा अपने इष्टदेवको अर्पणकर बाहर आकर मन्त्र जपने लगा। जब उसने द्वार खोला तो देखा कि वही बालक फिर भोजन कर रहा है। तब ब्राह्मण बिना भोजन किये ही चले जानेको थे, ऐसे समयमें वज्रराज नन्द आ गये। उन्होंने फिरसे अनुरोध किया कि “आपको बिना भोजन किये जाने नहीं दूँगा। आप एक बार फिरसे भोजन बनायें। हम बालकको दूसरी जगह ले जाते हैं।” तब पुनः भोजन बनानेकी व्यवस्था की गयी। तीसरी बार भोजन बनाकर ज्यों ही ब्राह्मण इष्टदेवको भोग लगाने लगे, त्यों ही नन्द महाराज द्वारके बाहर खड़े होकर पहरा देने लगे। उस बालकको लेकर यशोदाजी अपना घर छोड़कर पड़ोसिनके घरमें चली गयीं। परन्तु उसके विषयमें

ब्राह्मण भूल नहीं सके। वह प्रस्फुटित नीलकमलकी कान्तिको पराजित करनेवाले मुखकमल, दोनों हाथसे भोजन करते हुए उनकी मुग्ध-दृष्टि आदिने ब्राह्मणके स्मृतिपथमें आकर उन्हें आत्मविस्मृति-सागरमें डूबो दिया। ब्राह्मण आत्मविस्मृत होकर भोग लगाते हुए द्वार बन्दकर मन्त्र जपने लगे तथा इष्टदेवकी भोजन-चिन्तामें डूब गये, परन्तु उनके मनमें बारम्बार नन्दनन्दनकी दोनों हाथोंसे भोजनलीला जाग्रत हो उठी। ब्राह्मणने किसी प्रकारसे इष्टमन्त्रका जपकर जैसे ही करताली बजाकर द्वार खोला, वैसे ही वही दृश्य दृष्टिगोचर हुआ।

अब ब्राह्मण कुछ भी नहीं कह सके, मानो कोई एक भावके आवेगसे ब्राह्मणका हृदय परिपूर्ण हो गया। मानो किसी एक अतुलनीय सौन्दर्य-रस-धाराने ब्राह्मणके नेत्र द्वारसे हृदयमें प्रवेशकर उसके मन-प्राणको बहा दिया हो। उनके हृदय-कन्दराके पाषाण-आवरणको हटाकर निर्मल परमानन्द सुरधुनीकी धारा निकलकर दोनों नयनोंसे बहने लगी एवं असंख्य पुलकावलियोंसे सम्पूर्ण शरीर परिव्याप्त हो गया। ब्राह्मण मन्त्रमुग्धवत् द्वार रुद्धकर नन्दनन्दनके निकटमें आये। नन्दनन्दन मृदु-मन्द-मधुर वचनोंसे ब्राह्मणके श्रवणपथमें पीयूष धारा डालते हुए उनको कहने लगे—“तुम मुझे बारम्बार भोजनके लिए बुलाते हो, परन्तु मेरे आनेपर तुम हाय! हाय! क्यों करते हो?”

ब्राह्मण चमत्कृत, कम्पित एवं स्तम्भित हो गये, वे मन-ही-मन सोचने लगे—“यह बालक क्या कहता है? मैं तो कुछ भी समझनेमें, देखनेमें, जाननेमें या सुननेमें समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ। मेरी सारी इन्द्रियशक्ति विलुप्त हो रही है। यह बालक कौन है?” यशोदानन्दन ब्राह्मणके मुँहकी ओर करुण-अरुण नयनोंसे दृष्टिपातकर फिरसे कहने लगे—“ब्राह्मण! तुम मुझे पहचान नहीं पा रहे हो? तुमने मुझे देखनेके लिए कितने सैकड़ों जन्मों तक उपवास, जागरण, तीव्रध्यानमें कितना समय व्यतीत किया, इस जन्ममें भी मुझे देखनेके लिए निरन्तर लालसायुक्त होकर दिन बिता रहे हो, परन्तु कैसा आश्चर्य है! मुझे साक्षात् देखकर भी पहचान नहीं पा रहे हो। तुम बहुत जन्मोंसे मुझे देखनेके लिए लालायित होकर तीव्र साधना कर रहे हो। इसलिए

मेरी प्रकटलीलामें इस समय तुम्हारा जन्म हुआ है एवं मेरे माता-पिताके साथ तुम्हारा बहुत दिनोंसे परिचय रहा है और मेरी बाललीलाके समय आकर तुम उपस्थित हुए हो। ब्राह्मण! एक बार मुझे देखो! क्या मुझे पहचान सकते हो?”

अब ब्राह्मण कृतार्थ हो गये। उनके दृष्टिपथको अवरुद्धकर जो पर्दा अनादि कालसे पड़ा हुआ था, आज वह नन्दनन्दनकी कृपा-कटाक्षसे हट गया। अब ब्राह्मणने देखा—ये तो वही हैं। ये तो वही प्रफुल्ल नील शतदल-विनिन्दित अङ्गकी छटासे दसों दिशाओंको उद्भासितकर मेरे ही वे ध्यान-ध्येय बालगोपाल मेरे सामने प्रकाशित होकर अपने अरुण नयनकमलकी करुण दृष्टि मकरन्द-धारामें मुझे कृतार्थ कर रहे हैं। यही उन चरणोंमें नुपूर, कटिमें मणि-किंकिणी, गलेमें पद्मराग मणिबद्ध व्याघ्रनख। यही दोनों हाथोंसे खीर भोजन! देखते-देखते ब्राह्मण परमानन्दमें आत्मविभोर हो गये, वे स्तुति करें या चरणोंमें गिरें या और कुछ करें, कुछ भी समझ न सके। वे केवल आनन्दसे जड़वत् खड़े रह गये।

देखते-देखते वह ध्यान-ध्येय मूर्ति ब्राह्मणकी दृष्टिके अन्तरालमें छिप गयी। ब्राह्मण उस क्षणकालके दर्शनको करोड़ों जन्मोंकी साधनाका फल मानकर अपनेको धन्य-धन्य मानने लगे। अनन्तर उस ध्यानध्येय करुणामयी मूर्तिके उद्देश्यसे स्तव-प्रणामादिकर उसने उनका साक्षात् भुक्तावशेष प्रसाद ग्रहण किया। ब्राह्मणके मनमें यह विचार आने लगा कि अपना अवशिष्ट जीवन इस गृहमें अतिवाहित करनेसे जीवन धन्य हो जाता। परन्तु वात्सल्यप्रेमवान नन्द-यशोदा और गोप-गोपियोंके वात्सल्यप्रेममें कोई विघ्न न हो, इसलिए काल विलम्ब न कर अतिशीघ्र द्वार खोलकर वे बाहर आ गये। नन्द महाराज तब तक द्वारपर ही खड़े थे। उन्होंने हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे कहा—हे मुनिवर! आपके भोजनमें कोई विघ्न तो नहीं आया? ब्राह्मणने परमानन्दसे कहा—“गोपराज! अब मैंने निर्विघ्न और परम आनन्दके साथ भोजन किया। आज मैंने जैसा भोजन किया, ऐसा भोजन जीवनमें कभी नहीं किया। आपको अधिक क्या कहूँ, आपका सर्वविध कल्याण हो। आप परमानन्दमें उस बालकका पालन-पोषणकर

सुखी रहें।” ब्राह्मणने अधिक क्षण वहाँ रहना उचित नहीं समझा। वे अपने अनुभूत परमानन्दको लेकर निर्जन स्थानमें बैठकर उसका आस्वादन करनेके लिए चल दिये। निर्विघ्न रूपसे ब्राह्मणका भोजन-संवाद सुनकर यशोदा मैया पुत्रको गोदमें लेकर घरमें आयीं एवं जानेके लिए प्रस्तुत उस ब्राह्मणके चरणोंमें प्रणाम करके कहने लगीं—हे मुनिवर! मेरे पुत्रका अपराध क्षमा कर दें। आप आशीर्वाद करें कि मेरे बालकको दीर्घ जीवन प्राप्त हो। ब्राह्मणने मीठे वचनोंसे यशोदाका प्रीति-विधान और उनके पुत्रके दीर्घ जीवनकी कामनाकर उनका आनन्दवर्द्धन किया एवं यशोदाकी गोदमें यशोदा-नन्दनको देखकर महानन्दसे परिपूर्ण होकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ २१-२५ ॥

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले।

अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥

अन्वयः—राजर्षे (हे महाराज परीक्षित!) अल्पेन कालेन (अति अल्पकालमें ही) रामः कृष्णः च अञ्जसा (राम और कृष्ण दोनों शारीरिक बल प्राप्त होनेपर) अघृष्टजानुभिः पद्भिः (अब घुटनेके बलपर चलना छोड़कर पैरोंसे चलते हुए) गो व्रजे (गोष्ठमें) विचक्रमतुः (विचरण करने लगे) ॥ २६ ॥

अनुवाद—हे राजर्षे! अल्पकालमें ही बलराम-कृष्णने घुटनुओंसे रिंगना छोड़कर अब चरणोंके द्वारा ही व्रज-गोष्ठमें विचरण करना प्रारम्भ कर दिया ॥ २६ ॥

सारार्थदर्शिनी—अघृष्टानि भूमिघर्षणमप्राप्तानि। जानूनि येषु, तैः पद्भिः; जानुसङ्घर्षणं विनैवेत्यर्थः। ओजसा अञ्जसेति च पाठः ॥ २६ ॥

भावानुवाद—‘अघृष्टजानुभिः’—अति अल्प समयमें ही राम और कृष्ण व्रजभूमिपर पैरोंसे चलने लगे ॥ २६ ॥

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः।

सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—ततः च (तदनन्तर) सहरामः (रामके साथ) भगवान् कृष्णः वयस्यैः (भगवान् कृष्ण अपने समान उमरवाले सुहृद) व्रजबालकैः (व्रजबालकोंके साथ) व्रजस्त्रीणां (गोपियोंका) मुदं जनयन् (आनन्द बढ़ाते हुए) चिक्रीड़े (क्रीड़ा विहार करने लगे) ॥ २७ ॥

अनुवाद—अब भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम एवं अन्यान्य सखा गोपबालकोंके साथ व्रजमें घूमा करते और ऐसे खेल खेला करते जो व्रजरमणियोंके हृदयोंको आनन्दसे भर देते थे। वे महाभाग्यवतियाँ इन खेलोंकी कुशलताको अनुभवकर निहाल हो जाया करती थीं ॥ २७ ॥

सारार्थदर्शिनी—सहराम इति, गव्यमोषणादिलीलायां कृष्णस्यैव प्राधान्यात् ॥ २७ ॥

भावानुवाद—‘सहरामः’—श्रीकृष्ण-बलरामजीके साथ मिलकर क्रीड़ा करते हुए व्रजाङ्गनाओंका आनन्द-वर्द्धन करने लगे। यहाँ दही, मक्खन आदिकी चोरीमें श्रीकृष्णकी ही प्रधानता है, इसलिए भैया बलरामके साथ कहा गया है ॥ २७ ॥

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम्।

शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥

अन्वयः—गोप्यः कृष्णस्य रुचिरः (गोपियाँ कृष्णके अतिशय मनोज्ञ) कौमारं चपलं (बालकोंके अनुरूप चञ्चल भावको) वीक्ष्य (देखकर तथा) शृण्वन्त्याः (सुनकर) तन्मातुः (यशोदाके समीपमें) समागताः (उपस्थित होकर) इति (इस प्रकारकी बातोंको) ऊचुः ह किल (स्पष्ट रूपसे कहने लगीं) ॥ २८ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका बाल्य-चापल्य इतना अद्भुत था कि समस्त गोपियोंका चित्त उनकी इन चञ्चलताओंमें ही लगा रहता था। एक दिन सब इकट्ठी होकर नन्दभवन जा पहुँची। वहाँ यशोदादेवीको उलाहने देती हुई उनके लाड़लेकी करतूत कहने लगीं ॥ २८ ॥

सारार्थदर्शिनी—रुचिरं सुखदं, हन्तैतादृशं सुखमस्मत्प्रियसख्या श्रीयशोदया न प्राप्तं, तदस्मच्चाक्षुषमेतत्तस्याः श्रावणमप्यस्त्विति तत्र गत्वा शृण्वन्त्याः शृण्वन्त्यै

स्वपुत्रचरित्रश्रवणार्थं गृहकार्यशतमपि त्यजन्त्यै तन्मात्रे उपालम्भनदानमिषेण परमानन्दमेव दातुमिति भावः ॥ २८ ॥

भावानुवाद—‘रुचिर’—गोपियाँ श्रीकृष्णकी अतीव सुखदायी बाल-चपलताको देखकर ‘सोचने लगीं’—“हाय! ऐसा सुख हमारी प्रियसखी यशोदा प्राप्त नहीं कर पातीं। जैसे भी हो, हमारी आँखोंका सुख उनके कर्णगोचर हो”, ऐसा मनमें विचारकर गोपियाँ नन्दभवनमें गयीं। उनके पुत्रका चरित्र सुनानेके लिए सैकड़ों काम छोड़कर उलाहना देनेके बहाने उन्हें सुनाकर परमानन्द देनेके लिए इस प्रकार कहने लगीं ॥ २८ ॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसज्जातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्युपक्रोशय तोकान् ॥ २९ ॥

अन्वयः—(कृष्णके द्वारा किये गये चपलताकी बात कहने लगीं—) क्वचित् (कदाचित्) असमये (गायका दूध काड़नेसे पहले ही) वत्सान् (बछड़ोंको) मुञ्चन् क्रोशसज्जातहासः (छोड़ देता है, जिससे गृहस्वामी बिगड़ने लगते हैं, तो बच्चे हँसना शुरू कर देते हैं) कल्पितैः स्तेययोगैः (विविध प्रकारकी चोरीके उपाय बनाकर चोरी करता है) स्वादु दधिपयः अत्ति (सुस्वादु दही, दूध खाता है) मर्कान् (बन्दरोंके प्रति) विभजति (उस दही, दूधको विभाग कर देता है) सः चेत् न अत्ति (परितृप्त होनेके कारण, यदि बन्दर नहीं खा पाते हैं, तो) भाण्डं (दहीके बर्तन) भिनत्ति (तोड़ फोड़ देता है) द्रव्यालाभे (दही, दूध, मक्खन आदि न मिलनेपर) सगृहकुपितः (गृहस्वामीके प्रति बिगड़कर) तोकात् (बिस्तरेमें सोये हुए बच्चोंको) उपक्रोशय याति (रुलाकर चला जाता है) ॥ २९ ॥

अनुवाद—अरी सखी यशोदे! जरा अपने पुत्रकी करतूत तो सुनो, यह गो-दोहनके पहले ही बछड़ोंको खोल देता है—जब हम डाँटती हैं, तो ठठा-ठठाकर हँसते लगता है। यह कभी-कभी चोरीके

नाना प्रकारके उपाय करके हमारे मीठे-मीठे दही-दूधको चोरी करके खा जाता है। स्वयं खाता तो, तो भी एक बात थी, यह तो सारा दूध-दही वानरोंको बाँट देता है, यदि वानर भी पेट भर जानेपर नहीं खा पाते हैं, तब यह हमारे मटकों ही फोड़ देता है। यदि घरमें दूध-दही नहीं मिलता है, तब हमारे प्रति क्रुद्ध होकर हमारे बच्चोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥

सारार्थदर्शिनी—सखि यशोदे! शृणु स्वपुत्रस्य चौर्यचातुर्यमित्याहुः—वत्सानिति । एतत्पुरेऽद्य शून्यगृहेषु दधि चोरयामीति मनसि कृत्वा गत्वा गत्वा गृहान् जनशून्यांश्चिकीर्षुः क्वचिद्विवसे असमये अदोहकाले वत्सान् मुञ्चन् भवति । ततश्चेतस्ततो धावतो वत्सान् परावर्त्तयितुं तदनुपदं गृहान्निःसृत्य जनेषु धावत्सु शून्यगृहान् प्रविश्य दधि चोरयित्वा पलायत इति भावः । अन्यस्मिन्नहनि अरे दधिचोरः कृष्ण आगतस्ताड्यतां नह्यतामित्यादि क्रोशे आक्रोशे कृते सति सञ्जात हासो भवति । अथ तदनन्तरमेव महामादक-हास्य-मधुपान-वैवश्येन जडीभूतास्वस्मासु पश्यन्तीष्वपि निषेद्धमपारयन्तीषु दधिपयोऽस्ति । तत्रैवोषित्वा भुङ्क्ते, नापि पलायते अस्माकं मोहिनीकृतत्वादिति भावः । नन्वेवञ्चेद्वधिलम्पटमिमं प्रथममेवोदरपूरं कथं न भोजयध्वे? तत्र त्वयाऽभीक्ष्णं भोजितस्यास्य न बुभुक्षादिकं, किन्तु स्तेयं तेन कर्मैव स्वादु, अतश्चोरितमेव दध्यादिकमस्मै रोच्यते, न तु दत्तमिति भावः ।

तदेवं परोक्षमपरोक्षञ्चेति द्विविधं चौर्यं वत्समोचन-हासाभ्यां ज्ञापितम् । एवं कल्पितैः स्वबुद्धयैव रचितैः स्तेययोगैश्चौर्योपायैरपरैरपि लोष्ट्रक्षेपादिभिरपरस्मिन् परस्मिन्नपि दिने भोक्ष्यन् स्वभोजनात् पूर्वमेव मर्कान् मर्कटान् प्रति विभजति अयमयं भवतां प्रत्येकं भाग इति विभज्य ददाति । बहुत्र भोजितत्वेनातितृप्तत्वात् तेषां मध्ये स एकोऽपि मर्कटो नास्ति चेत्तदा युष्मान् विना किं मे भोजनाहमपि न भुञ्जे इति दुःखेन भाण्डं दधिपूर्णं भिनत्ति । कदाचित् शून्यगृहे प्रविश्य दध्यादिद्रव्यालाभे सति सगृहाय गृहसहितजनायैव कुपितः तिष्ठ रे तिष्ठ श्वः प्रातर्ज्वलदङ्गारमेकं गृहीत्वैव चौर्यार्थमेष्यामि यत्र दधि न प्राप्स्यामि तद्गृहं सबालकवृद्धमेव धक्ष्यामीत्युक्त्वा लोकान् बालापत्यानि उपक्रुश्य नखाद्याघातेन रोदयित्वा याति ॥ २९ ॥

भावानुवाद—“सखि यशोदे! सुनो, सुनो! तुम्हारे पुत्रकी करतूत तो देखो, यह चोरी करनेकी कलामें कितना निपुण हो गया है। पास-पड़ोसके सुनसान घरोंमें जाकर दही चुराना है—ऐसा मन-ही-मन स्थिरकर धीरे-धीरे जाकर घरको जन-मानवशून्य करनेके लिए

असमयमें बछड़ोंके बन्धन खोल देता है, या उन्हें घरेसे निकाल देता है। बछड़े जब इधर-उधर दौड़ते हैं, तब घरके सभी लोग जब उनके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, उस समय यह सुनसान गृहमें प्रवेशकर दही, दूध और मक्खन चुराकर भाग जाता है। और किसी दिन उसे आते हुए देखकर 'अरे! मक्खन चुरानेवाला कन्हैया आ गया, उसे पकड़ो, बाँध लो',—ऐसा कहकर चिल्लानेपर तुम्हारा बालक केवल ठठा-ठठाकर हँसता है। उसे तनिक भी लज्जा नहीं आती। इसके पश्चात् इसकी महा-मादक हँसीरूप मधुपानमें मत्त होकर हम सभी स्तब्ध होकर देखती रह जाती हैं, उसे मना भी नहीं कर पातीं। यह हमारी आँखोंके सामने दहीका बर्तन निकालकर बैठ जाता है और वहींपर बैठकर खाता है। कहीं लेकर भागता नहीं, क्योंकि वह हमें पहले ही मोहित कर देता है।

यदि कहो कि—उस मक्खन-चोर बालकको पहले ही पेट भरकर खिला दो, तब चुरायेगा नहीं, तो गोपियाँ कहती हैं कि इसे थालमें मक्खन देनेपर कहता है कि मेरे घरमें दही, मक्खनकी क्या कमी है, जो तुम्हारा मक्खन खाऊँ? इस प्रकार देनेपर भी नहीं खाता है। कहता है कि मुझे भूख नहीं है। वास्तवमें चुराकर खानेमें इसे बहुत आनन्द आता है। इस प्रकार उन गोपियोंने परोक्ष और अपरोक्ष दोनों प्रकारसे मक्खन-चोरीका वर्णन किया। इस प्रकार बहुत-से उपायसे यह चोरी करता है। चोरी करके केवल अकेला नहीं खाता, बन्दरोंको भी खिलाता रहता है। स्वयं खानेसे पहले—यह तुम्हारा भाग है, यह तुम्हारा भाग है, ऐसा कहकर सबको बाँट देता है। बहुत खानेसे बन्दर तृप्त हो जाते हैं और उनमेंसे यदि कोई नहीं खाता है, तब कहता है कि तुमने नहीं खाया तो मैं कैसे खाऊँ। मैं भी नहीं खाऊँगा—मानो इसी दुःखसे दही दूध-भरे मटके फोड़ डालता है। और किसी दिन सुनसान घरमें घुसकर दही-दूध आदि न मिलनेपर गृहस्वामीपर बिगड़कर कहता है—ठीक है, कल चोरी करनेके लिए जलती हुई लकड़ी ले आऊँगा। कुछ न मिलनेपर वृद्ध और बच्चोंके साथ घरको भी जला दूँगा। ऐसा कहते हुए सोते हुए शिशुओंको चिऊँटी काटकर रुलाकर भाग जाता है॥ २९॥

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
 शिछद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिष्यभाण्डेषु तद्वित्।
 ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थं प्रदीपं
 काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु व्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥

अन्वयः—(दही, नवनीत आदि तक) हस्ताग्राह्ये (हाथ न पहुँचनेपर) पीठकोलूखलाद्यैः (पीड़ी, उलूखल, आदिको खींचते हुए लाकर, उसपर चढ़कर) विधिं (उतारनेका उपाय) रचयति (बनाता है) शिष्य भाण्डेषु (ऊँचे रखे हुए छींके आदि पात्रोंमें) हि तद्वित् (कहाँ नवनीत है, उसे जाननेवाला) अन्तर्निहितवयुनः (अन्दरमें स्थित दही, मक्खन आदि निकालनेके लिए) (कृष्ण) छिद्रं रचयति (बर्तनमें छेद कर देता है) यर्हि (जिस समय) गोप्य गृहकृत्येषु (गोपियाँ घरके कामोंमें) व्यग्रचित्ताः (व्यस्त रहती हैं) काले (उस समय) ध्वान्तागारे (अन्धकारयुक्त घरमें) धृतमणिगणं (उज्ज्वल चन्द्रकान्त आदि मणियोंसे विभूषित) स्वाङ्गं (अङ्गसे) अर्थं प्रदीपं (अपने कार्यसिद्धिनिमित्त प्रकाशको फैला देता है, जिससे अन्धकार नहीं रहता है) ॥ ३० ॥

अनुवाद—हमारे घरमें घुसनेपर जब यह तुम्हारा पुत्र देखता है कि दधि-भाण्ड छींकेपर रखा हुआ है और हाथकी पहुँचसे बाहर है तो यह अनेक प्रकारके कौशलका सहारा लेता है। एकके ऊपर एक-दो-तीन पीढ़ोंको रख लेता है और उनपर चढ़ जाता है अथवा कभी ऊखलपर चढ़ जाता है अथवा बालकोंके कन्धोंपर चढ़ जाता है। यदि फिर भी पानेमें असमर्थ होता है तो छड़ीसे उन बर्तनोंमें छिद्र कर देता है। इसे इस बातकी पूरी पहचान होती है कि किस छींकेपर किस बर्तनमें क्या रखा है।

जब हम घर-गृहस्थीके कामोंमें उलझी रहती हैं, तब हमारे अन्धकारपूर्ण गृहमें भी वस्तुओंको अपने मणिमय आभूषणोंके प्रकाशसे, जो तुमने इसे पहना रखे हैं, सब कुछ देख लेता है। इसके अतिरिक्त इसके श्यामल शरीरमें भी ऐसी ज्योति है, जिससे इसे सब कुछ दीख जाता है। यह इतना चालाक है कि कब कौन कहाँ है,

इसका पता रखता है। जब वे दूसरी जगह होते हैं, तब यह अपना काम बना लेता है ॥ ३० ॥

सारार्थदर्शिनी—कस्मिंश्चिदन्यस्मिन् गृहे प्रविष्ट सन् हस्तेन गृहीतुमशक्ये दधिभाण्डे विधिमुपायं रचयति। उपर्युपरि निहितद्वित्रिपीठारोहणेन वा उलूखलारोहणेन वा बालस्कन्धारोहणेन वेत्यर्थः। अतितुङ्ग शिष्यवर्तिभाण्डेषु अन्तर्निहिते दध्यादौ वयुनं ज्ञानं यस्य सः, भाण्डचैककण्यदर्शनेनैवेति भावः। अवरोपयितुमशक्तः सशल्यलगुडेन छिद्रं रचयति तद्वित् छिद्रं कर्तुं छिद्रेण धारां पातयितुं धारया च व्यादातुं स्वस्य बालानाञ्च मुखं पूरयितुं वेत्तीति सः। न चान्धकारेऽपि चौर्यासामर्थ्यमित्याहुः—ध्वान्तयुक्ते अगारे स्वाङ्गं स्वीयश्यामाङ्गमप्यर्थप्रदीपं रचयति, तत्रापि धृतमणिगणमिति किमप्यविदितं न तिष्ठतीति भावः। कथं सावधाना न तिष्ठत? इति चेत्तत्राहुः—काले इति। यद्यप्यस्य स्मितकलभाषणमधुरचलनगात्र-लावण्यादिमय्येव प्रत्यक्ष चौर्यनिष्ठादिनी मोहनीविद्यैवास्ति, तदापि बाल्यमौग्ध्यवशात् परोक्षचौर्यप्रिय एवासौ बुद्ध्यत इत्यतएव का कुत्र किं कुरुते इति बालसहचर-प्रेषणादिना प्रतिक्षणमनुसन्धत्त इति भावः ॥ ३० ॥

भावानुवाद—‘हस्ताग्राह्ये’—कभी किसी घरमें जाकर तुम्हारा पुत्र ऊँचे छीकेंपर रखे हुए दही, दूध, मक्खन आदिको यदि हाथसे छू नहीं पाता है, तो एक, दो या तीन पीढ़ियोंको एक-दूसरेपर रखकर उनपर चढ़कर मटकोंसे मक्खन निकाल लेता है और कभी ओखलपर चढ़कर मटकेसे मक्खन आदि ले लेता है। कभी बहुत ऊँचाईपर रखे गये मटकेको छू नहीं पाता है, तो डण्डा मारकर उसमें नीचेसे छेद कर देता है, जब उससे धार गिरती है, तो मुँह लगाकर उसे पीता है और बालकोंको भी खिलाता-पिलाता रहता है। अन्धेरेमें चुरानेमें भी इसे कोई असुविधा नहीं होती। इसके शरीरकी इतनी कान्ति है कि उससे घरमें भी प्रकाश फैल जाता है। विशेषकर इसके आभूषण इतने चमकते हैं कि उनकी कान्तिसे सब कुछ दीख जाता है। इसलिए कहाँ क्या है, इसे सारी जानकारी हो जाती है। यदि कहो कि तुम सावधानीसे क्यों नहीं रहती हो? तो गोपियाँ कहती हैं—यशोदे! जिस समय हम घरके कामोंमें व्यस्त रहती हैं, उस समय तुम्हारा पुत्र घरमें घुसकर चोरी करता है। यद्यपि तुम्हारे पुत्रकी मृदु-मन्द हास्य-सुधा, कलभाषण, मधुर चलन, शरीरके लावण्यादिसे

उसे दधि, मक्खन आदि वस्तुएँ बिना चोरी किये हुए ही प्रत्यक्ष रूपसे मिल सकती हैं, फिर भी बाल-मुग्धताके कारण परोक्ष रूपसे छिपकर चुरानेमें ही इसे अधिक आनन्द होता है। इसलिए कौन किस समय क्या कर रहा है? यह जाननेके लिए यह बाल सहचरोंको घरके भीतर भेजकर जान लेता है॥ ३०॥

एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत्॥ ३१॥

अन्वयः—एवं धाष्टर्यानि कुरुते (यदि गृहस्थ कहता है कि—अरे अरे! चोर आ गया, तो यह आक्रोश प्रकाश करके कहता है कि, अरे तुम ही चोर हो, मैं गृहस्वामी हूँ, इस प्रकार कहकर गृहस्थके प्रति धृष्टता प्रकाश करता है) उशति (लिपे-पुते परिष्कार जगहमें) वास्तौ (हमारे घरमें) मेहनादीनि (मलमुत्र) कुरुते (करके आता है) स्तेयोपायैः (चोरीके उपायसे) विरचितकृतिः (अपना काम पुरा करके) सुप्रतीकः यथा (तुम्हारे सामने साधुकी भाँति) आस्ते (बैठा हुआ है) सभयनयन श्रीमुखालोकिनीभिः (उस समय कृष्णके भययुक्त नयन और श्रीमुखकी ओर दृष्टि डालकर) स्त्रीभिः (गोपियाँ) इत्थं (पुर्वोक्त प्रकारसे) व्याख्यातार्था (श्रीकृष्णकी चपलताके विषयमें यशोदाके निकट वर्णन करनेपर) प्रहसितमुखी (वह यशोदा माता हँसती हुई) न हि उपालब्धुं ऐच्छत् (बालकका तिरस्कार नहीं कर पायीं)॥ ३१॥

अनुवाद—ऐसा करके भी यह अत्यन्त ढिठाई करता है। जब हम इसे चोर कहतीं हैं, तो यह हमें चोर कहता है और अपनेको घरका मालिक बतलाता है। इतना ही नहीं, यह हमारे लिपे-पुते स्वच्छ घरोंमें मल-मूत्र आदि कर जाता है। तनिक इसकी ओर देखो तो, हमारे घरोंमें तो विविध प्रकारसे चोरीके उपायोंसे अपना काम बनाता है और यहाँ तुम्हारे सामने तो साधु बन गया है—‘वाह रे भोले भाले साधु’ इस प्रकार गोपियाँ कहती जा रही हैं और

श्रीकृष्णके भयसे चकित नेत्रोंको निहारती जा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर यशोदाजीने उनके मनका भाव ताड़ लिया, जिससे उनके हृदयमें स्नेह और आनन्द भर गया। इस प्रकार वे हँसने लगीं और अपने प्यारे पुत्र कन्हैयाको डाँट-फटकार नहीं लगा पायीं ॥ ३१ ॥

सारार्थदर्शनी—न केवलं चौर्यमेव कुरुते इत्याहुः—एवमिति। हे उशति! हे कमनीये! स्वपुत्रगुणश्रवणेनानन्दिते! हे यशस्विनि! वास्तौ देवपूजार्थमामृष्टलिप्तभूमौ मेहनादीनि मूत्रपुरीषोत्सर्गादीनि धाष्टर्यान्युपद्रवान् पुरन्ध्रीजनवेण्युत्तरीयाकर्षणविवाहचिकीर्षा पादप्रहारादीनि। किञ्च, तवानेन तनयेन महती सम्पत्तिर्भाविनीत्याह—स्तेय-रूपैरुपायैर्वित्तार्जनैर्विशेषेण रचिता कृतिर्व्यापारो येन सः। बाल्ये दधि चोरयति, यौवने परवित्त कलत्रादीन्यपि चोरयिष्यतीति भावः। त्वत्समीपे तु सुप्रतीकः साधुरिवास्ते। तासां प्रेमविशेषमयफूत्कारफलमाह—सभयनयनं माता मां ताडयिष्यतीति शङ्काव्याकुलं श्रीयुक्तं सचकितं विह्वलदृष्टित्वलक्षण-शोभाविशिष्टं मुखमालोकयितुं शीलं यासां ताभिव्याख्यातोऽर्थः श्रीकृष्णधाष्ट्यदर्शन-श्रवण-विविधभावशोभिततन्मुखावलोकनोत्थ आनन्दो यस्यै सा। अतएव प्रहसितमुखी तासां स्वस्य चानन्देन प्रफुल्लितमुखी उपालब्धुमाक्षेप्तुं नैच्छदिच्छामपि नाकरोत्। मत्सुतधाष्ट्येनेमा आनन्दे निमज्जन्तु तत्तत्सूचयन्त्यो मामपि निमज्जयन्त्वित्याकाङ्क्षयेति भावः ॥ ३१ ॥

भावानुवाद—“केवल चोरी करता है, इतना ही नहीं। हे कमनीये! अपने बालकके गुण सुनकर आनन्दित होनेवाली हे यशस्विनि यशोदे! देवपूजाके लिए लिपे-पुते स्वच्छ घरोंमें मूत्र त्याग कर देता है। कितना उधम मचाता है! गाँवकी लड़कियोंकी वेणी पकड़कर खींचता है, आँचल पकड़कर खींच लेता है, उनसे विवाह करनेकी बात करता है और कभी लात मार देता है। तुम्हारा यह पुत्र भविष्यमें महा-सम्पत्तिशाली होगा, क्योंकि चोरीकर यह बहुत सारा धन कमायेगा। बचपनमें जब दही-मक्खन चोरी करता है, तब बड़ा होनेपर दूसरोंका धन और स्त्री आदिको भी हरण करेगा। इस समय तुम्हारे सामने बड़े साधुकी भाँति चुपचाप बैठा हुआ है।” इस प्रकार गोपियोंके विशेष प्रेममय उलाहनोंसे बालगोपाल भयभीत हो गये। कहीं मैया मुझे मारे नहीं, इस भयसे विह्वल होकर मैयाकी ओर देखने लगे। इस प्रकार श्रीकृष्णके भय-विह्वल मुखकमलका सौन्दर्य पानकर यशोदा मैयाने भी प्रफुल्लित होकर पुत्रका तिरस्कार नहीं

किया। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि मेरे चञ्चल पुत्रकी धृष्टतासे ये सभी आनन्दमें सदा डूबी रहती हैं। उलाहनेके बहाने गोपियोंने मुझे भी आनन्दित किया। इसलिए यशोदा मैया भी हँसने लगी ॥ ३१ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवजी नन्दनन्दनकी विशुद्ध बाललीलाका वर्णन करते हुए कहने लगे—हे राजर्षे! राम और कृष्ण दोनों भाई कुछ ही दिनोंमें अपने दैहिक बलसे समर्थ होकर चलने-फिरने लगे। वात्सल्यवती गोपियोंकी राम-कृष्णके घूमते-फिरते हुए उनकी लीला देखनेके लिए जैसे-जैसे इच्छा होने लगी, वैसे-वैसे ही कृष्ण-बलरामकी लीला भी प्रकाशित होने लगी। देखते-देखते वे दौड़ने लगे, उधर उनके समवयस्क ग्वालबाल भी उनसे मिलकर तरह-तरहके खेल खेलने लगे। यशोदानन्दनकी सर्वजन-चित्ताकर्षक बाल-माधुरीको देखकर ब्रजवासियोंकी बात तो दूर रहे, वनके पशु-पक्षी तक देखकर परमानन्दमें विभोर हो जाते थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण अपने ऐश्वर्य, वीर्य आदि षड्विध ऐश्वर्यको अपनी बाललीला-माधुरीके माध्यमसे प्रेमवान ब्रजवासियोंको वितरण करने लगे।

सरोवरमें प्रस्फुटित कमलके साथ पवनका संयोग होनेपर उसका सौरभ जैसे चारों ओर दिग्-दिगन्तमें व्याप्त हो जाता है, वैसे ही ब्रजराज-भवनमें विकसित नन्दनन्दनकी लीला-माधुरी भी गोपबालकोंके साथ मिलकर सम्पूर्ण गोकुलमें विस्तारित हो गयी। नन्दनन्दन अपने समान उम्रवाले बालकोंके साथ गोकुलवासियोंके घर-घरमें जाकर नित्य-नूतन चपलतापूर्ण बाललीलाओंको प्रकाशित कर गोकुलकी रमणियोंको एक अनिर्वचनीय परमानन्द रसका आस्वादन कराने लगे। स्थिर-कमलमें मधुकर जब मधु पानके आवेशमें सो जाता है, तब उसके माधुर्यको ग्रहण करनेमें वह अशक्त हो जाता है। कमलके हिलनेपर भ्रमर-कुल व्याकुल होकर उसके चारों ओर उड़ता रहता है। बीच-बीचमें चञ्चल कमलपर बैठकर अपनी आकुल-लालसासे मधुर प्यासको मिटानेकी चेष्टा करता है। उनका अतृप्त आस्वादन भी बड़ा मधुर होता है। नन्द-यशोदाके वात्सल्यप्रेम-सरोवरमें प्रस्फुटित

नील-कमल भी सर्वदा बाल्यलीलाके आवेशमें परम चञ्चल रहता है, उसमें गोकुलवासियोंके मन-मधुकर किसी भी समय स्थिर नहीं रह पाते हैं। वे उस चाञ्चल्यमें चञ्चल होकर बाल्यलीलारसके अतृप्त आस्वादनमें मत्त रहते हैं।

अब ब्रजेन्द्रनन्दन अपने समवयस्क गोपबालकोंके साथ मिलकर गोकुलवासियोंके घर-घरमें जाकर नवनीत-चोरी, दधि-भाण्ड-भञ्जन आदि बहुत-सी चञ्चलताओंको प्रकाशकर बाललीलाएँ करने लगे। जिसमें गोकुल-रमणियाँ किसी एक अनिर्वचनीय आनन्द धारामें बहकर किसी एक अज्ञात आनन्द-समुद्रमें डूब जातीं, वे भी समझ नहीं पातीं।

कोई भी चञ्चल बालक किसीके घरमें घुसकर यदि घरके सामानको इधर-उधर फेंकता है, उसे बिगाड़ता है, तो गृहस्थका मनोभाव कैसा होता है? यह हम समझते हैं, परन्तु गोकुलकी रमणियोंकी स्थिति इसके विपरीत होती है। वे देवसेवा, अतिथि-सत्कार, गृहस्वामीके भोजन आदिके लिए अति यत्नसे दही, दूध, क्षीर, नवनीत आदि तैयार करके घरमें रखती हैं। नन्दनन्दन जब घरमें घुसकर उन्हें चोरी करके खाता है, घरमें इधर-उधर बिखेर देता है, दही-दूधके बर्तनोंको तोड़-फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है, तब गोकुल-रमणियाँ कहती हैं—“इस चञ्चल बालकके उत्पातसे हमारा गोकुलमें वास करना भी असम्भव हो गया है।” परन्तु वे पूर्ववत् दही, दूध, नवनीत आदि प्रस्तुतकर घरमें सजा करके रखती हैं। यदि कभी किसी दिन नन्दनन्दनके उनके घरमें आनेमें देरी होती, तब वे क्षणभरमें सैंकड़ों बार पथकी ओर देखती रहती हैं। इसलिए नन्दनन्दनकी इस परम चञ्चलताको वे ही समझती हैं, वे ही जानती हैं।

एइ प्रेमा-आस्वादन, तप्त-इक्षु-चर्वण
मुख ज्वले ना जाय त्यजन।
सेइ प्रेमा याँर मने, तार विक्रम सेइ जाने
विषामृते एकत्र मिलन॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

वात्सल्यरसवती गोकुल-रमणियाँ गोकुल-राजनन्दनकी इस परम चञ्चलतापूर्ण बाल्यलीलारसके आस्वादनमें एक अप्राकृत परमानन्द रसमें विभोर हो जाती हैं एवं समस्त गोकुलकी रमणियाँ एक साथ मिलकर किसके गृहमें यशोदानन्दनने कैसा चाञ्चल्य प्रकाश किया, किसके घरमें किस रूपमें कैसे-कैसे मक्खन चोरी की और किसके कितने मटके फोड़े हैं—यही सब चर्चा करने लगतीं।

एक दिन गोकुल-रमणियोंने स्थिर किया कि यशोदाके निकट जाकर उनके पुत्रकी सारी चञ्चलताकी बात सुनायेंगी। क्योंकि यशोदा कभी भी अपने पुत्रकी चञ्चलता नहीं देख पाती, अतः हमारे मुँहसे सुननेपर कुछ-कुछ अनुभव कर सकेगी। ऐसा सोचकर एक दिन सभी गोकुल-रमणियाँ मिलकर ब्रजराज-भवनमें आकर उपस्थित हुईं। ब्रजराजनन्दन तब जननीकी गोदमें सोये हुए स्तनपान कर रहे थे तथा दोनों चरणोंको भूमिपर मार रहे थे, जिससे उनके चरणोंके नूपुरोंकी सुमधुर ध्वनि उनका आनन्द-वर्द्धन कर रही थी एवं वे भी मृदु-मन्द हास्यके साथ मैयाकी ओर देख रहे थे। यशोदा भी परमानन्द रसमें डूबकर पुत्रके सुकोमल अङ्गोंपर हाथ फेरती हुई कहने लगीं—“हे कन्हैया! तू दिन-प्रतिदिन बड़ा नटखट बनता जा रहा है।” यशोदानन्दन उससे और भी आनन्दित होकर गोदमें ही उछल-कूद करते हुए मैयाके मुँहकी ओर देखकर मृदु-मृदु हँस रहे थे। ऐसे समयमें गोकुलकी रमणियाँ वहाँ आकर यशोदाको घेरकर बैठ गयीं एवं एक-एक यशोदानन्दनको नखसे सिर तक देखने लगीं एवं कहने लगीं—“कन्हैया! आज हमारे घरोंमें तुमने जो कुछ किया है, वह अब कह दें?” यशोदानन्दन उस समय माताके वक्षःस्थलमें मुँह छिपाकर चुपचाप बैठ गये एवं बारम्बार भयभीत नेत्रोंसे गोकुल-रमणियोंके मुँहकी ओर देखने लगे।

गोकुल-रमणियाँ तब यशोदासे कहले लगीं—“यशोदे! तुम्हारा बालक हमारे घरमें बड़ा ही उपद्रव मचाता है। इतनी कम उम्रमें यह इतना चञ्चल और चोरी-विद्यामें इतना प्रवीण है कि हम तो सोच ही नहीं सकतीं हैं। तुम्हारे बालककी चोरी करनेकी चातुरी और अद्भुत नटखटपनेकी बात हम तुमसे कहती हैं, सुनो। तुम्हारा पुत्र

मक्खन चुरानेके लिए हमारे घरोंमें प्रवेश करते ही अज्ञात रूपसे हम कौन कहाँ हैं—जान लेता है। यह जानकारी लेना भी इसके लिए बड़ा आसान है। क्योंकि हमारे बच्चे भी सब कन्हैयाके साथ मिल गये हैं। हमारे बच्चोंसे पहले यह सबकुछ जान लेता है। यदि हम घरमें हैं, तो पहले हमें बाहर भेजनेकी व्यवस्था बना लेता है। यशोदे! तुम्हारे लाड़लेका कैसा बुद्धि-कौशल है सुनो। वह बिना ध्वनिके ही चुपचाप गोशालामें प्रवेशकर बछड़ोंको खोल देता है। जिससे बन्धनमुक्त हो जानेसे वे आँगनमें भागते-दौड़ते रहते हैं। हम कोई दूसरा उपाय न देखकर उनके पीछे भागती दौड़ती रहती हैं कि बछड़ोंको बाँधना है, इतनेमें तुम्हारा यह पुत्र घरमें प्रवेशकर दही, दूध-मलाई, मक्खन आदि जो कुछ मिलता है, अपने सखाओंके मिलकर चोरी करके खा जाता है।”

गोकुल-रमणियोंकी इन बातोंको सुनकर यशोदा कहती हैं—“भेरा नीलमणि तुम्हारे घरोंमें इतना उपद्रव मचाता है, तब तुम इसे डाँटती क्यों नहीं? तुमलोग चुपचाप कैसे सहन कर लेती हो? उसे ऐसा प्रश्रय मिलनेसे तो यह और भी दुष्ट हो जायेगा।” गोकुल-रमणियाँ कहने लगीं—“ओ यशोदे! यह तो हमारे डाँटने-डपटनेसे भी डरता नहीं है और उल्टा हमें ही डाँट-डपटकर या हँसकर अपनी टोलीके साथ भाग खड़ा होता है। इसकी हँसी देखकर हम भी मुग्ध हो जाती हैं तथा सब कुछ भूल जाती हैं। तुम्हारा लाड़ला आँगनमें खड़े होकर यदि एक बार हँस दे और हमारे घरमें प्रवेशकर दही, क्षीर, नवनीत आदि लूटने लग जाय, तो हम कुछ भी कह नहीं पातीं हैं, इसके मुखचन्द्रकी हास्य-सुधाका पानकर हम मन्त्रमुग्धकी भाँति ज्यों-की-त्यों खड़ी रह जाती हैं। इसलिए तुम्हारा पुत्र हमारे सामने या पीछे जब जैसी इच्छा होती है, तब हमारे घरोंमें प्रवेशकर दही, दूध, मक्खन आदि लूटकर खा जाता है। इसके बुद्धि-कौशलसे और हास्य-सुधाके माधुर्यसे हम पराजित हो जाती हैं। इसलिए हम इसे मना भी नहीं कर पाती हैं।”

यशोदाजीने कहा—“साधारण रूपसे देखा जाता है—अभावके कारण लोग चोरी करते हैं, अभाव पूर्ण हो जानेसे कोई ऐसा नहीं

करता है। मेरा पुत्र अपने समान उम्रवाले गोपबालकोंके साथ मिलकर खेलते-खेलते गोकुलके विभिन्न स्थानोंमें घूमता-फिरता रहता है, अतः जब इसे भूख लगती है, तब तुम्हारे घरोंमें प्रवेशकर चोरी करता है। अतः जब यह तुम्हारे घरोंमें जाता है, तब इसे कुछ खानेके लिए दे देना, जिससे फिर यह चोरी नहीं करेगा। भूख लगनेपर भी लज्जाके कारण यह तुमसे कुछ कह नहीं पाता होगा, इसलिए तुम लोगोंको इसका मुँह देखकर ही कुछ खानेको देना चाहिये। तुम्हारे घरोंमें जानेसे तुम यदि इसे कुछ खानेको नहीं दोगी, तब तो भूखके कारण दिन-प्रतिदिन चोरी करना सीख जायेगा और चोरी-विद्यामें अभ्यस्त हो जायेगा। राजकुमार होकर चोरी करना अत्यन्त परिताप और निन्दाका विषय है। अतः तुमलोग इस बालकको चोरीकी विद्या मत सिखाओ। तुम्हारे घरोंमें जानेपर इसे कुछ खानेको जरूर दे देना।”

गोकुलकी रमणियाँ कहने लगीं—“अरी यशोदे! तुम्हारा दुलारा गोकुलवासी नर-नारियोंके जीवनका जीवन है। हमारी उसे खिलानेकी कितनी इच्छा होती है। हम ताजा मक्खन लेकर इससे कितना अनुरोध करती हैं, इसे खिलानेके लिए कितना प्रयास करती हैं, परन्तु यह किसी भी प्रकारसे नहीं खाता है और कहता है—‘तुम्हारा मक्खन मीठा नहीं लगता है। मेरी मैयाका मक्खन मीठा होता है। मैयाने मुझे बहुत खिलाया है, मेरा पेट भरा हुआ है, विश्वास नहीं है, तो हाथ लगा करके देखो।’ अब तुम ही बताओ कि हम क्या करें, दुःखसे मन मारकर हम हाथका मक्खन मटकेमें ही रख देती हैं। तुम्हारे पुत्रका स्वभाव ऐसा है कि इसे आदरके साथ देनेपर नहीं खाता है, परन्तु चोरी करके खूब खाता है। इसे खिलानेके लिए हम कितना बुलाती हैं, कितना आग्रह करती हैं, परन्तु यह स्वीकार नहीं करता है तथा खेलते-खेलते दूसरे घरमें चला जाता है। हम मक्खन हाथमें लेकर बाहर दरवाजे तक इसके पीछे-पीछे दौड़कर आती हैं। परन्तु यह उपेक्षा करके चला जाता है। हम मनमें दुःखी होकर घरमें लौट आती हैं, फिर हमारे घरके कामोंमें व्यस्त होनेपर यह चुपचाप

आकर दही, दूध, मक्खन आदि चुराकर खाने लगता है। इससे हमें ऐसा लगता है कि तुम्हारे बालकको चोरी करके खानेमें अच्छा लगता है। कभी-कभी कहैया हमारे घरोंमें जाकर असमयमें ही बछड़ोंको खोल देता है, यह भी केवल मक्खन चुरानेका इसका एक कौशल-विशेष है। तुम्हारे इस लाड़लेने इतनी कम उम्रमें कैसे चोरी करनेकी चातुरी सीख ली है, हम किसी भी प्रकारसे हम स्थिर नहीं कर पाती हैं।”

यह सुनकर यशोदाजी कहती हैं—“अरी सखियो! मेरा पुत्र स्वभावसे ही बड़ा लजालु है, इसलिए किसीके सामने कुछ खाता नहीं है। एकान्तमें खाना पसन्द करता है। इसलिए तुम लोगोंको इसे खानेको देकर चले जाना चाहिये। तुमलोगोंके खानेके लिए आग्रह करनेपर भी नहीं खाता है, परन्तु सुनसान घरमें प्रवेशकर खाता है, इसका तात्पर्य यह है कि यह लज्जाशील है। इसमें उसकी कोई दुष्टता नहीं है। परन्तु तुमलोग मानती हो कि यह चोरी करके खाता है और उधम मचाता है। यदि भूखके कारण तुम्हारा कुछ खा लेता है, तो उसमें तुम्हारा क्या नुकसान हो जाता है? अरे, मटकेमें लगे हुए दूध, दही आदि खानेसे ही बच्चेका पेट भर जाता है, इसमें नुकसानकी तो बात ही नहीं है।”

यशोदाकी बात सुनकर गोकुलकी स्त्रियाँ कहने लगीं—“यशोदे! तुम्हारा पुत्र यदि पेट भरकर दही, दूध, मक्खन आदि खाये, तो हमें कोई कष्ट नहीं, अपितु उससे हमें आनन्द ही होता है, हमारा दही, मक्खन आदि बनाना सार्थक होता है। परन्तु यदि कभी तुम्हारा लाड़ला मक्खन चुरा नहीं पाया, तो हमारे घरमें पेशाब कर देता है और कहता है कि मुझे इस घरमें खानेको कुछ नहीं मिला, इसलिए यहाँ मल-मूत्र त्याग करूँगा। फिर मल-मूत्र त्याग करनेके स्थान और इस घरमें अन्तर ही क्या है?”

इस श्लोककी व्याख्यामें वैष्णव-तोषणीकारने कहा है—

जगज्जन मल ध्वंसि श्रवण स्मृति कीर्तनाः।

मलमूत्रादि रहिता पुण्यश्लोका इति स्मृताः ॥

जिनके नाम, लीलादि श्रवण, स्मरण और कीर्तनसे जगत्का सर्वविध मल अर्थात् पाप आदि दूर होते हैं एवं जो मल, मूत्रादि-रहित हैं, उन्हींको शास्त्रोंमें पुण्यश्लोक नामसे जाना जाता है।

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।

पुण्यश्लोका वैदेही च पुण्यश्लोको जनार्दनः॥

इन वचनोंसे जाना जाता है कि नल राजा, युधिष्ठिर महाराज, सीतादेवी एवं भगवान् श्रीकृष्ण—ये पुण्यश्लोक हैं। इसलिए प्रतिदिन प्रातःकाल इनका नाम कीर्तन करना चाहिये।

ब्रजलीलामें पुण्यश्लोक-शिरोमणि श्रीकृष्णके मल-मूत्र विसर्जन आदिके विषयमें अनेक प्रकारका सन्देह होना स्वाभाविक है। परन्तु इसमें वक्तव्य यह है कि भगवान् मलरहित होकर भी अपनी बाललीलामें रसपोषण करनेके लिए अपनी अघटन-घटन-पटीयसी शक्ति योगमायासे इन सभी विषयोंका सामञ्जस्य करते हैं।

यशोदानन्दनके मल-मूत्रादि न करनेपर यशोदा आदि वात्सल्यवती गोपियाँ श्रीकृष्णको कोई बीमारी हुई है—यह समझकर भयसे व्याकुल होंगी। कृष्णको पुण्यश्लोक भगवान् जाननेसे उनके विशुद्ध वात्सल्य प्रेममें चोट पहुँचेगी। इसलिए 'यशोदानन्दनने मल-मूत्र आदि त्याग किया'—इस प्रकार योगमाया ब्रजवासियोंको प्रतीति करा देती है। यथार्थ रूपमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण मल-मूत्रादि रहित हैं। उन्हें हेय पदार्थ-शून्य कहा गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

गोकुलकी रमणियोंके यशोदाके निकट इस प्रकार कन्हैयाकी मक्खन-चोरी आदिकी बात कहनेपर बालगोपाल मैयाके डरसे उनकी गोदमें चुपचाप मुख छिपाकर बैठे हुए थे। उनकी गोदमें देखनेसे ऐसा लग रहा था कि माता यशोदा मानो एक नीलमकी पुत्तलिको गोदमें लेकर बैठी हैं। गोप-स्त्रियाँ कहने लगीं—यशोदे! देखो! तुम्हारा चोर-चक्रवर्ती बालक इस समय कैसा साधु जैसा तुम्हारी गोदमें बैठा हुआ है, मानो कुछ भी नहीं जानता है। गोकुलकी रमणियाँ यशोदानन्दनको भयभीत देखकर और कुछ नहीं बोलीं, केवल अपलक नेत्रोंसे उनके भयभीत मुखका निरीक्षण करने लगीं। यशोदाने

भी अपने पुत्रको डरा हुआ देखकर उसे किसी प्रकारकी डाँट-फटकार नहीं लगायी ॥ २६-३१ ॥

एकदा क्रीड़मानास्ते रामाद्या गोपदारकाः।

कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—एकदा क्रीड़मानाः (एक दिन खेलते हुए) ते रामाद्याः गोपदारकाः (राम आदि गोपबालकगण) (मैया! मैया!) कृष्णः मृदं भक्षितवान् इति मात्रे (कृष्ण मिट्टी खा रहा है, ऐसा माता यशोदाको) न्यवेदयन् (निवेदन किया) ॥ ३२ ॥

अनुवाद—एक दिन बलराम आदि ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। तभी उन्होंने यशोदाजीके समीप आकर कहा—अरी मैया! श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है ॥ ३२ ॥

सारार्थदर्शिनी—पुरन्ध्रीणां सूचनं वात्सल्यरसास्वादफलकं समाप्य सहचराणामपि सूचनं विस्मयरसास्वादोदकमाह—एकदेति। ‘दध्नः स्तेयेऽनुपालम्भं प्रोच्य प्राह मृदोऽशने उपालम्भं जनन्या।’ इति द्वये प्रेमेति हेतुताम् ॥ ३२ ॥

भावानुवाद—व्रजरमणियोंकि द्वारा सूचित वात्सल्यरसका आस्वादन समाप्तकर अब श्रीकृष्णके सखा गोपबालकोंकी शिकायतसे विस्मयरसका आस्वादन कह रहे हैं—दही-चोरी करनेपर यशोदाका डाँट-फटकार न लगाना वर्णनकर मिट्टी-भक्षण करनेपर माताकी डाँट-फटकारके वर्णनके द्वारा दोनों ही स्थलोंमें वात्सल्यप्रेम ही एकमात्र कारण है ॥ ३२ ॥

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी।

यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सा हितैषिणी यशोदा करे (वह हितैषिणी माता यशोदा हाथसे) कृष्णम् (पुत्र कृष्णको) गृहीत्वा उपालभ्य (धारणकर भर्त्सना करती हुई) भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षं (भयसे चकित दृष्टियुक्त बालकृष्णको) अभाषत (कहने लगी) ॥ ३३ ॥

अनुवाद—पुत्रका हित चाहनेवाली माता यशोदाजीने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया और उन्हें डाँटने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी आँखें भयसे चञ्चल होकर इधर-उधर नाच रही थीं ॥ ३३ ॥

सारार्थदर्शिनी—करे गृहीत्वैति—पलायनाशङ्कया उपालभ्य निर्भर्त्स्य। हितैषणीति—उपालम्भताङ्गनादावपि प्रेम्णः पोष एव, न तु तत्र दोषः। पुत्रमिति—मातुरियं रीतिरेव, न त्वनीतिः। भयसम्प्राप्तेति—परमेश्वरस्यापि तादृशत्वं प्रेमवश्यत्वद्योतनया भूषणमेव न तु दूषणमिति भावः ॥ ३३ ॥

भावानुवाद—‘करे गृहीत्वा’—भागनेकी आशङ्कासे माँ यशोदाने कन्हैयाका हाथ पकड़ लिया और डाँटने लगीं। क्योंकि वह उनका हित चाहनेवाली हैं, अतः उनके श्रीकृष्णको डाँटने-फटकारनेसे प्रेमका ही पोषण होता है, यह कोई दोष नहीं है। अपने पुत्रको शासन करना माताओंकी रीति है। इसमें कोई अन्याय नहीं होता है। परमेश्वर भी माताके भयसे विह्वल हैं, तो अन्यकी बात क्या कही जाय? यह प्रेमका भूषण है, दूषण नहीं ॥ ३३ ॥

श्रीयशोदा उवाच—

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः।

वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अदान्तात्मन् (हे अशान्तचित्त) कस्मात् (किसलिए) भवान् रहः (तूने एकान्तमें) मृदं (मिट्टी) भक्षितवान् (खायी) एते तावकाः (ये तुम्हारे सहचर) कुमाराः (गोपबालकगण) हि वदन्ति (कह रहे हैं) अयं ते (यह तुम्हारा) अग्रजः (राम) अपि (भी कह रहा है) ॥ ३४ ॥

अनुवाद—मैयाने डाँटते हुए पूछा—क्यों रे नटखट! तूने छिपकर मिट्टी क्यों खायी? तू बहुत ढीठ हो गया है। तेरे दलके सखा कह रहे हैं तथा तेरा बड़ा भैया बलदाऊ भी तो कह रहा है कि तूने मिट्टी खायी है ॥ ३४ ॥

सारार्थदर्शिनी—हे अदान्तात्मन्—चञ्चलगात्र, हे अनवस्थितचित्त! मृदमिति—मद्गृहे किं सितादिकं न प्राप्नोषीति भावः। रह इति—मत्साक्षात्तदशक्तेः। वदन्ति

तावका इति, नायं मिथ्यापवाद इति भावः। मत्ताड़नाकाङ्क्षिण एते मद्द्वैरिण एवेति चेत्तवाग्रजो बलदेवोपीति अयमिति त्वत्साक्षादेवेति नात्र सन्देह इति भावः ॥ ३४ ॥

भावानुवाद—यशोदा बोलीं—‘हे अदान्तात्मन’—“अरे नटखट बालक ! क्या हमारे घरमें तुझे मिसरी भी नहीं मिली, जो मुझसे छिप करके यहाँ निर्जनमें तूने मिट्टी खायी है। लो, तुम्हारे सखा लोग ही बोल रहे हैं।” कन्हैयाने कहा—“नहीं मैया—ये तुमसे मुझे पिटवानेके लिए ऐसा बोल रहे हैं।” मैयाने कहा—“देख ! तेरे सामने दाऊ भी कह रहा है। अतः इसमें कोई सन्देह है ही नहीं ॥” ३४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।

यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—अम्ब (हे मातः) अहं न भक्षितवान् (मैंने मिट्टी नहीं खायी) सर्वे मिथ्याभिशंसिनः (ये सभी झूठ बोलनेवाले हैं) यदि सत्यगिरः (यदि ये सच बोल रहे हैं) तर्हि (तब) समक्षं (साक्षात् रूपसे) मे मुखं पश्य (मेरा मुख देख लो) ॥ ३५ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने कहा—अरी मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सब मिथ्यावादी हैं। यदि तुम इन्हींकी बात सत्य मानती हो तो अपनी आँखोंसे ही मेरा मुख देख लो ॥ ३५ ॥

सारार्थदर्शिनी—कृष्ण उवाच—नाहमिति। बाल्यस्वभावेन ताड़नभयान्मिथ्योक्ति-वात्सल्यरसपोषिका, अतएव वात्सल्यादीनां रसानां प्रेमविलासमयत्वात् प्रेमवताञ्च भक्तत्वात् भगवतश्च भक्तवत्सलत्वात्। भक्तवात्सल्यस्य च पृथिव्युक्त सत्यशौचदयादि-नित्यचिन्मयसर्वगुणगणचक्रवर्त्तित्वात् भक्तवात्सल्यगुणाङ्गभूता चेत्येवंभूतत्वे मिथ्यादयो भगवति न दोषायन्ते, प्रत्युत महागुणचूडामणी भवन्तीति विवेचनीयम् ॥ ३५ ॥

भावानुवाद—श्रीकृष्णने कहा—‘नाहं’—मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सभी बालक तुमसे मुझे मार खिलानेके लिए झूठ बोलते हैं। यहाँ श्रीकृष्णका झूठ बोलना वात्सल्यरसका पोषक है। क्योंकि इसमें प्रेमीजन भक्त और भगवान् भक्तवत्सल हैं। जैसे प्रथम-स्कन्धमें—बैलरूपी धर्मके उत्तरमें पृथ्वीदेवीकी उक्ति है—‘सत्यं शौचं दया’ (१/१६/२४-२७)

अर्थात् सत्य, शौच, दया, क्षमा आदि उनतालीस गुण भगवान्‌में स्वभावतः नित्य वर्तमान रहते हैं, इनका कभी क्षय नहीं होता है। जो महत्त्वकी इच्छा करते हैं, वे इन गुणोंकी अभिलाषा रखते हैं। इसलिए भक्तवत्सल भगवान्‌में नित्य चिन्मय सत्यादि गुणसमूह भक्तवात्सल्यके अङ्गस्वरूप हैं। भगवान्‌का मिथ्या-भाषण भी कोई दोषपूर्ण नहीं है, अपितु रस-पुष्टिके लिए वही श्रेष्ठ गुण बन जाता है ॥ ३५ ॥

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः।

व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः

क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यदि एवं (यदि तुमने मिट्टी नहीं खायी) तर्हि (तब) व्यादेहि (मुँह खोलकर दिखाओ) इति उक्तः (ऐसा यशोदाके द्वारा कहनेपर) अव्याहतैश्वर्यः (माधुर्यलीलामें ऐश्वर्य आदृत नहीं होनेपर भी समयके अनुरूप ऐश्वर्य प्रकट हो जाता है) क्रीडामनुजबालकः (नित्यलीला सम्बन्धीय मनुष्य-श्रीनन्द महाराज आदि—उनके बालक) स भगवान् हरिः व्यादत्त (उन् भगवान् श्रीहरिने मुख खोलकर दिखाया) ॥ ३६ ॥

अनुवाद—यशोदाजीने कहा—यदि मिट्टी नहीं खायी है, तो मुख खोल। माता यशोदाके इस प्रकार कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुख खोल दिया। परीक्षित्! भगवान्‌का ऐश्वर्य अनन्त है। वे केवल लीलाके लिए ही मनुष्यके बालक जैसे बने हुए हैं। ज्ञातव्यः—माधुर्यलीलामें ऐश्वर्यका अभाव नहीं है, यह उपयुक्त कालमें स्वतः ही प्रकाशित होता है ॥ ३६ ॥

सारार्थदर्शिनी—व्यादेहि मुखं प्रसारय। ननु, माता ममाद्यापराधं मा पश्यत्वितिच्छयैव ताडनाद्भीतेन भगवता मिथ्योक्तं; मुखप्रसारणे तु मृत्तिकाभक्षण-लक्षणव्यक्त्या सा तस्येच्छा कथं सफला स्यात्? इत्यत आह—न व्याहतं प्रेममाधुर्यवत्त्वेन निजैश्वर्यानुसन्धानाभावेऽपि न पराहतं, किन्तु स्वकृत्यावसरे स्वयमेव सावधानमैश्वर्यं यस्य सः। सत्यसङ्कल्पताशक्त्या प्रेरिता ऐश्वरी शक्तिः स्वयमेव प्रकटीमूय विश्वं दर्शयित्वा श्रीयशोदां विस्मयरसनिमग्नीकृत्य पुत्रभर्त्सनफलकं

कोपं विस्मारयामासेति भावः। नन्वलं भगवतः प्रेममाधुर्यास्वादेन यतो यशोदाभर्त्सन-
ताडनादिभ्योऽपि तस्य भयं स्यादत ईश्वरोऽहमिति स्वयमेव निजैश्वर्यामनुसन्धाय
निर्भय एव कथं न तिष्ठतु? इत्यत आह—क्रीडेति, क्रीडाप्रधानो मनुजबालक
इति; शाकपार्थिवादित्वान्मध्यपदलोपः। शाक एव प्रधानं यस्य तथाभूतः पार्थिव
इति, अत्र पार्थिवो यथा निजास्वाद्येषु खण्डादिवस्तुषु मध्ये शाकमेव प्रधानं मन्यते,
तथैवायमीश्वरो मनुजबालकः क्रीडां तादृश प्रेममयीमेव प्रधानं मन्यते, न तु
स्वीयसर्वेश्वरत्वादिकमिति भावः ॥ ३६ ॥

भावानुवाद—‘व्यादेहि’—माता यशोदाने कहा—कन्हैया! तूने यदि
मिट्टी नहीं खायी, तब मुँह खोलकर दिखा। मैयाकी बात सुनकर
तत्क्षण कृष्णने अपना मुख खोल दिया। यदि कहें—‘कहीं मैया मेरे
अन्यायको देख न ले तथा मुझे मारे नहीं’, इसलिए डरसे उन्होंने झूठ
कहा था। परन्तु मुँह खोलते ही मिट्टी खाना प्रकाश हो जायेगा। तब
उनकी इच्छा कैसे सफल होगी? तब कहते हैं कि अव्याहत ऐश्वर्य
है, जिनका प्रेम-माधुर्यके कारण उनके ऐश्वर्यका कोई अनुसन्धान नहीं
रहता है। फिर भी ऐश्वर्य कभी टूटता नहीं, प्रयोजनके अनुरूप
ऐश्वर्य स्वयं ही प्रकाशित होता है। यहाँ भगवान्की सत्य सङ्कल्पशक्ति
स्वयं ही प्रेरित होकर विश्व-दर्शन कराकर यशोदाजीको विस्मयरसमें
निमग्न करा देती है, इसलिए वे पुत्रको डाँटना भूल जाती हैं। यदि
कहें कि भगवान् श्रीकृष्ण जब प्रेम-माधुर्यका आस्वादन करते हैं, तब
माता यशोदाके डाँटने-फटकारनेसे भय होनेपर अपनेको ईश्वर
जानकर निर्भय क्यों नहीं रहते हैं? क्योंकि वे ‘क्रीडामनुजबालकः’—मनुष्य
देहमें भगवान् श्रीकृष्ण हैं। जैसे पृथ्वी-पालक राजा अपनी भोज्य
वस्तुओंमें शाक भाजीको प्रधान मानता है, परन्तु उनके भोजनकी
थालीमें बहुत प्रकारके द्रव्य हैं, वैसे भगवान् श्रीहरि भी नरलीलामें
माधुर्य-प्रेमको ही सर्वोत्तम मानते हैं, ऐश्वर्यको नहीं ॥ ३६ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—यशोदा मैयाने गोकुलकी रमणियोंसे श्रीकृष्णकी
मक्खन-चोरीकी बात सुन करके भी भयसे विह्वल अपने पुत्रको डाँटा
नहीं, परन्तु मन-ही-मन चिन्ता करने लगीं कि मेरे पुत्रके दिन-प्रतिदिन
अधिकतर नटखट हो जानेसे गोकुलवासी नर-नारियाँ सभी इसकी
निन्दा करेंगे। अतएव जिससे वह नटखट न हो, इसके लिए कोई

व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसलिए यशोदाजीने मन-ही-मन स्थिर किया कि यदि कन्हैयाको घरसे बाहर जाने नहीं दिया जाय, तो यह दूसरोंके घरोंमें चोरी या अत्याचार नहीं करेगा और धीरे-धीरे चोरी करनेकी उसकी प्रवृत्ति भी दूर हो जायेगी।

यशोदाजीने ऐसा निश्चय करके रोहिणीनन्दनको कहा—प्रिय बलराम! तुम्हारे ऊपर तुम्हारे छोटे भैयाका भार सौंप रही हूँ। तुम इसे लेकर आँगनमें ही खेलना। कहीं बाहर नहीं निकलना। यशोदा मैयाका आदेश पाकर राम और कृष्ण अपने-अपने हाथोंसे एक दूसरेका कन्धा पकड़कर बाहर आँगनमें आये। इतनेमें सभी गोपबालक भी आ गये। तब मैयाने बच्चोंसे कहा—“प्यारे बच्चो! तुमलोग यहीं आँगनमें कृष्ण-बलरामके साथ खेलते रहना। कहीं किसीके घरमें जाकर मक्खन नहीं चुराना और बर्तन नहीं तोड़ना। इसे घेरकर रखना, इसकी रक्षा करना।” बच्चोंने कहा—“अच्छा मैया! हम इसे बाहर जाने नहीं देंगे। आज हम यहींपर खेलेंगे।” यशोदाके आदेशसे सभी बच्चोंने राम-कृष्णके साथ मण्डलाकारमें खेलना प्रारम्भ कर दिया।

राम और कृष्ण दोनों भाई गोपबालकोंके साथ मिलकर नन्दभवनके आँगनमें खेलते-खेलते अब बाहरके आँगनमें आ गये। वहाँ दौड़, कूद, भागा-दौड़ी, धूलमें लोट-पोट आदि बाललीलाएँ करने लगे। अन्तमें वे सभी धूल मिट्टी लेकर खेलने लगे। इधर यशोदा मैया एक बार फिरसे आकर उन्हें सावधानकर गयीं कि तुमलोग यहींपर खेलना, दूसरे किसीके घरमें मत जाना। बच्चोंने कहा—हाँ मैया! हम कन्हैयाको आज कहीं जाने नहीं देंगे। कन्हैयाने भी कहा—हाँ मैया! मैं और कहीं नहीं जाऊँगा। वे सब आकर तुमसे झूठ बोलती हैं। मैंने कभी भी मक्खन चुराकर नहीं खाया। वे मेरे ऊपर झूठा आरोप लगाती हैं। यशोदा उन्हें सान्त्वना देती हुई कहने लगीं—“हाँ कन्हैया! वे बड़ी दुष्ट हैं। तुम इस आँगनमें ही खेलो।” अब यशोदा मैया अन्दर जाकर अपने बच्चों तथा सभी ग्वालबालोंके लिए विविध प्रकारकी भोजन सामग्री बनाने लगीं तथा घरके अन्य काममें व्यस्त हो गयीं।

इधर राम, कृष्ण और सभी बच्चे खेलते-खेलते धूल-मिट्टीके ढेर बनाने लगे। उससे सभी अपना-अपना घर बनाने लगे। परन्तु यशोदानन्दन घर नहीं बना पा रहे हैं। मिट्टीके ढेरसे जितनी बार वे घरका आकार बनानेकी चेष्टा करते, उतनी बार वह टूट जा रहा था। यह देखकर सभी बालक तालियाँ बजाकर हँसने लगे और नृत्य करने लगे।

इसपर लीलामय यशोदानन्दन बिगड़कर दोनों हाथोंसे धूल-मिट्टी इधर-उधर फेंकने लगे एवं दोनों हाथोंसे मिट्टी उठाकर खाने लग गये। यह देखकर बालकोंने कहा—कन्हैया! तू मिट्टी मत खा, नहीं तो हम मैयाको कह देंगे—ऐसा कहकर भय दिखाने लगे। परन्तु यशोदानन्दन भला कहाँ मानता, वह मिट्टी खाता ही रहा। तब बलदाऊ और सभी बच्चे जाकर यशोदा मैयासे कहने लगे—“मैया! मैया! कन्हैया मिट्टी खा रहा है, हमारे मना करनेपर सुनता नहीं। हमने कितना मना किया, किन्तु मानता नहीं है।” सुनते ही यशोदा मैया बड़ी व्याकुल हो दौड़कर आयीं। मैयाको देखकर यशोदानन्दन चुपचाप खड़े हो गये। यशोदा मैयाने जल्दीसे अपने बाँये हाथसे उनका दाहिना हाथ पकड़ लिया। जननीका यह भाव देखकर यशोदानन्दन भयसे अधीर होकर कभी माँके मुँहकी ओर, कभी जमीनकी ओर देखने लगे। माँ यशोदा अपने उस नटखट बालकको डाँटती हुई कहने लगीं—अरे दुष्ट बालक! हमारे घरमें क्या दूध, दही, मलाई, मक्खनकी कमी है? क्या उससे तुम्हारा पेट नहीं भरता है? तुमने बाहर आँगनमें आकर मिट्टी क्यों खायी?

यशोदानन्दनने माताके मुँहसे केवलमात्र ‘प्यारे’, ‘लाड़ले’, ‘लल्ला’, ‘आँचलकी निधि’, ‘हृदयका धन’ ये सभी प्यार भरे शब्द सुने थे। जन्मके पश्चात् कभी भी मैयाको डाँटते नहीं सुना था। इसलिए यशोदानन्दन स्तम्भित हो गये। उनके बन्धुक पुष्पकी भाँति अरुण अधर-पल्लव काँपने लगे। आकर्ण-लम्बित खञ्जन-नयन भी चञ्चलताको छोड़कर स्थिर और आँसुओंसे छलछला गये। यह देखकर यशोदाके स्वरकी कठोरता दूर हो गयी और उसमें कोमलताका सञ्चार होने लगा। तब यशोदा मैयाने कहा—‘वदन्ति तावका ह्येते कुमारस्तेऽग्रजोऽयम्।’

अरे अबोध बालक ! मिट्टी खानेकी बात क्या मैं कह रही हूँ? तुम्हारे सहचर ये सभी बच्चे कह रहे हैं। उनकी बात परिहास हो सकती है, किन्तु प्यारे ! तेरा दाऊ भी कह रहा है। क्या यह भी झूठ बोल रहा है? यहाँ तो सभी उपस्थित हैं तथा सभी एक स्वरसे कह रहे हैं—तूने मिट्टी खायी है।

‘कृष्णहितैषिणी यशोदा’—कृष्ण-हितके लिए मैया यशोदा कभी उसे कठोरस्वरसे उन्हें डाँटने लगती हैं तो कभी कोमल स्वरसे उन्हें समझाने लगती हैं। वात्सल्यप्रेमके इस अनिर्वचनीय व्यवहारमें पाषाण हृदयोंमें भी प्रेमका झंकार होने लगता है। सभी लोग आत्महितके लिए कृष्णका स्तव, पाठ, मन्त्रजप, मूर्तिध्यान, निराकारत्वकी भावना आदि नानाविध उपायोंका अवलम्बन करते हैं, किन्तु कृष्ण-हितके लिए कृष्णका तिरस्कार करनेका अधिकार एकमात्र माँ यशोदा एवं उनके चरणाश्रित वात्सल्यप्रेमवती गोपियों और समय-समयपर वात्सल्य-प्रेमवान नन्दबाबा एवं उनके अनुगत गोपोंके अतिरिक्त कभी किसीके लिए सम्भव नहीं हो सकता।

जिन श्रीकृष्णकी कृपा-कटाक्षसे अणिमादि सिद्धि पानेके लिए बड़े-बड़े योगी ध्यान-मुद्रित नेत्रोंसे बैठे हुए युग-युगान्तर व्यतीत कर देते हैं, जिनकी कृपादृष्टिसे उनकी विराट् सत्तामें अपनी माया-परिच्छिन्न क्षुद्र सत्ताको एक करनेके लिए कितने ज्ञानी ज्ञान-साधनामें समस्त प्रकारका ज्ञान खोकर ज्ञानस्वरूप होनेके लिए लालायित रहते हैं, जिन कृष्णका कृपा-प्रदत्त कर्मफल पानेके लिए कर्मी कठोर परिश्रम और बहुत दिनों तक साध्य कर्मानुष्ठानमें जीवनको उत्सर्ग करते हैं, जिनकी कृपासे उनका चरणाश्रयकर सालोक्य आदि मुक्ति पानेके लिए कितने भक्त भक्ति-साधनामें लगे हुए हैं, कितने भाग्यवान साधक निरन्तर शुद्धभक्ति-साधनामें नियुक्त होकर ब्रजवासियोंके आनुगत्यकी आशामें बैठे हुए हैं, यशोदा मैया अपने आत्म-हितकी वासनाका त्यागकर केवलमात्र उन श्रीकृष्णकी हितकी अभिलाषा लेकर उनका तिरस्कार करनेमें लेशमात्र भी संकोच नहीं करती हैं। धन्य है उनका वात्सल्य प्रेम एवं धन्य है उनका कृष्ण सेवा-अधिकार।

उस समय मैयाके कुछ मृदुल वचनोंको सुनकर कृष्ण कन्हैया कुछ स्थिर हुए। तब भयका आवेग कुछ शान्त होनेपर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बाँये हाथसे आँख पोंछते हुए वे कहने लगे—‘नाहं भक्षितवानन्ब सर्वे मिथ्याभिर्शंसिनः’—‘नहीं मैया! मैंने मिट्टी नहीं खायी। सभी बालक झूठ बोल रहे हैं।’ उस समय यशोदा उनके नयनानन्द-वर्द्धक भङ्गि देखकर आत्मविभोर हो गयीं। कुछ बोल नहीं सकीं। केवल निर्निमेष नेत्रोंसे पुत्रकी मुख-भङ्गिमा निहारने लगीं। माँ यशोदाको शान्त देखकर परम आनन्दमें उल्लसित होकर यशोदानन्दन कहने लगे—“मैया! मैंने मिट्टी खायी है या नहीं, तुम मेरा मुँह देखकर परीक्षा कर लो।” यशोदा उसकी बात सुनकर बोलीं—‘यद्येवं तर्हि व्यादेहि’—‘यदि ऐसा ही है कि तूने मिट्टी नहीं खायी, तब मुँह खोल—देखूँ!’ माँके आदेशसे तत्क्षणात् उस अव्याहत-ऐश्वर्य, क्रीडामनुज बालक, भगवान् हरिने मुँह खोलकर दिखाया—उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानो माताके कोपरूपी रवि-किरणसे कृष्णका मुख-कमल विकसित हो गया है।

इस प्रकार यशोदाके वात्सल्यप्रेमके द्वारा यशोदानन्दनके प्रेमाधीन होनेपर भी उनका ऐश्वर्य दूर नहीं हुआ। क्योंकि वे अव्याहत ऐश्वर्य, क्रीडामनुज बालक, स्वयं-भगवान् श्रीहरि हैं। उनका ऐश्वर्य कभी भी किसीसे बाधित नहीं होता है। वे जैसी भी लीला करते हैं, उनका ऐश्वर्य कभी उन्हें छोड़कर नहीं रहता है, किन्तु छिपकर रहता है और निरन्तर लीलामय प्रभुकी सेवाकी प्रतीक्षा करता रहता है। माँ यशोदा जब बिगड़कर कृष्णके बाल-चापल्यसे क्रोधित होकर डाँटती हैं, तब विभुत्वशक्ति मैयाको बाधा नहीं देती है। वह शक्ति गुप्त रूपमें रहकर कृष्णकी सेवाका अवसर ढूँढ़ती है।

(इसलिए अचिन्त्य-अनन्तशक्ति-सम्पन्न स्वयं-भगवान् जब गोप-गोपियोंके प्रेमाधीन होकर लीलाएँ करते हैं, तब उनकी ऐश्वर्यशक्ति गुप्त रूपसे रहकर सेवाकी प्रतीक्षा करती है।)

इसलिए स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने अपनी स्वाभाविक अचिन्त्यशक्तिसे सम्पन्न होकर भी अपनी बाललीलामें प्रेमवान गोप-गोपियोंके

आनन्द-सिन्धुको उच्छलित करते हुए जगत्को एक परमानन्द रसमिश्रित विस्मय और आश्चर्य-सिन्धुमें निमज्जित कर दिया।

माँ यशोदाके तिरस्कार और डाँटने-फटकारनेके भयसे कृष्णके मुँह खोलनेपर भी तथा बालक होनेपर भी वे साधारण मनुष्य-बालक या कर्मफल-बाध्य जीव नहीं हैं। वे स्वयं-भगवान् होकर भी क्रीड़ामनुज बालक हैं अर्थात् जो नित्यसिद्ध अपूर्व वात्सल्यप्रेम लेकर नित्य बाललीलामें पार्षद रूपमें अवस्थित हैं—वे उन नन्द-यशोदाके बालक हैं। जिस प्रकार राजमाताका पुत्र होकर भी वह राजेश्वर राजा है, प्रजाके निकट कभी भी पुत्ररूपमें परिचित या व्यवहृत नहीं होता है, उसी प्रकार यशोदानन्दन भी यशोदाके पुत्र होकर भी सर्वसाधारणके पुत्र नहीं हैं। सर्वसाधारणके निकट वे चिरकाल अखिल ब्रह्माण्डके नायक हैं। फिर भी मैया यशोदा और अनुगत गोपियोंके निकट एवं वात्सल्य प्रेमिक भक्तोंके निकट वे यशोदानन्दनके रूपमें ही परिचित हैं। अनादिसिद्ध शिवजी कथित आगम शास्त्रमें भी यशोदानन्दन और नन्दतनयकी उपासना पद्धति देखी जाती है।

अतएव अनन्त ऐश्वर्यके पूर्ण-निकेतन होनेपर भी क्रीड़ामनुज बालक यशोदानन्दनकी प्रेम-आराधनामय बाललीला परम मनोहर है।

‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयं’—इस शास्त्र वचनसे यशोदानन्दन स्वयं-भगवान् होनेपर भी वे ‘हरि’ हैं। वे अपने रूप, गुण, लीला-माधुरीसे नन्द, यशोदा और ब्रजवासियोंके मनको हरणकर लीला करते हैं।

अतएव अचिन्त्य अनन्त शक्तियोंसे समन्वित सच्चिदानन्द स्वरूपता, सर्वज्ञता, सर्वकारण-कारणत्व, सर्वेश्वरत्व, सर्व नियन्तृत्व आदि अनन्त ऐश्वर्य एवं नाम, रूप, गुण और लीलामें सर्वमनोहरता—ये तीनों ही भगवान्की भगवत्ता है ॥ ३२-३६ ॥

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्तु च खं दिशः।

साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च।

वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥

एतद्विचित्रं सह जीवकाल-
 स्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
 सुनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये,
 ब्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—सा (वह यशोदा माता) तत्र (कृष्णके मुखमें) जगत्
 स्थासु च (स्थावर-जङ्गम) खं (आकाश) दिशः साद्रिद्वीपाब्धि भूगोलं
 (दिशाएँ, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूतल) सवाय्वग्नीन्दुतारकं (वायु, अग्नि,
 चन्द्र, तारकाओं-सहित) ज्योतिश्चक्रं (ज्योति-मण्डल) जलं तेजः
 नभस्वान् (जल, तेज, वायु) वियत् (आकाश) एव च वैकारिकाणि
 (अहंकारसे विकृत महाभूत समुदाय) इन्द्रियाणि मनः मात्राः (इन्द्रिय
 समुदाय, मन, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श) त्रयः (सत्त्व, रजः,
 तमः—तीन गुण) जीव काल स्वभाव कर्माशयलिङ्गं भेदं (जीव, गुण
 क्षोभकारी काल, परिणाम हेतु स्वभाव, जन्म-हेतु कर्म एवं उसका
 संस्कार, अन्तःकरण एवं चराचर शरीर) एतद्विचित्रं विश्वं सहात्मानं
 (अपने सहित विचित्र विश्वको) (तथा) ब्रजं च विदारितास्ये
 (ब्रजभूमि-सहित सभी कुछ उस खुले हुए) सुनोः (पुत्रके मुँहमें) तनौ
 वीक्ष्य शङ्कां (देखकर पुत्रके अनिष्टकी आशङ्का) अवाप (करने
 लगी) ॥ ३७-३९ ॥

अनुवाद—यशोदादेवीके कहनेसे कृष्णने जब मुख खोला तो
 उन्हें उनके जठरमें सम्पूर्ण विश्व दिखायी दिया। उसमें स्थावर, जङ्गम,
 अन्तरीक्ष लोक, दिशाएँ, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूतल, वायुका प्रवाह,
 अग्नि, चन्द्रमा, तारे, ज्योतिष्चक्र, जल, तेज, पवन, आकाश,
 अहंकारसे उत्पन्न समस्त भूत, सारी इन्द्रियाँ, मन, तन्मात्राएँ, सत्त्व,
 रज, तम एवं जीव, काल, स्वभाव, कर्म, संस्कार और आशयकृत
 चराचर शरीर भेदसे युक्त यह विचित्र विश्व एक ही साथ मुखमें
 दिखायी दिया। उन्होंने अपनेको अपने पतिको एवं अपने पुत्रादिके
 साथ सम्पूर्ण ब्रज-मण्डलको भी एक साथ उस मुखमें देखा। माँ
 यशोदाजी यह सब देखकर पुत्रके अनिष्टकी आशङ्कासे डर
 गयीं ॥ ३७-३९ ॥

सारार्थदर्शिनी—तत्र मुखान्तर्जठरे, 'कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे' (श्रीमद्भा० १०/१४/१६) इति ब्रह्मस्तवोक्तेः। जगत् जङ्गमं, स्थासु स्थावरं, खं भुवर्लोकं। साद्रीति भूगोलमित्यस्य विशेषणम्। सवाय्विति ज्योतिश्चक्रमित्यस्य वायुप्रवाहः। अग्निर्वैद्युतः। नभस्वान् नभस्वन्तं, वैकारिकाणि देवान्, गुणान् सत्त्वाद्रीस्त्रीन्। अत्र निराकारणामपि दर्शनं तदधिष्ठातृदेवतानां मूर्तिमत्त्वात्।

पुनश्च प्रपञ्चयति—एतद्विश्वं सह युगपदेव वीक्ष्य। जीवश्च गुणक्षोभकः, कालश्च परिणामहेतुः, स्वभावश्च जन्महेतुः, कर्म च तत्संस्कार, आशयश्च, तैर्लिङ्गानां शरीराणां भेदो यस्मिंस्तत्। तनौ कुक्षौ, विदारिते प्रसारिते, आस्ये आस्यद्वारा कुक्षावित्यर्थः। सहात्मानम् आत्मपतिपुत्रादिसहितं व्रज्य; 'यस्य कुक्षाविदं विश्वं' (श्रीमद्भा० १०/१४/१७) इति ब्रह्मोक्तेरस्यैव विश्वस्यान्तःस्थितत्वे बहिःस्थितत्वे अचिन्त्ययोगमायया दर्शिते; ततश्च कृष्णशरीरस्य जगन्मध्यवर्तित्व-जगद्वापकत्वाभ्यां परिच्छिन्नत्वापरिच्छिन्नत्वे वास्तवे एव व्यञ्जिते; ऐश्वर्योपासकानां विश्वस्मिन् भगवद्दर्शनं भगवति विश्वदर्शनं यदुक्तं, तदेतदेव माधुर्योपासकशिरोधार्यपदाम्बुजया श्रीयशोदयापि दृष्टम्। दृष्टा च शङ्कां पुत्रं प्रत्यनिष्टाशङ्कां अवाप॥ ३७-३९ ॥

भावानुवाद—'तत्र'—जब श्रीकृष्णने मुँह खोला तब यशोदा मैयाने श्रीकृष्णके मुखमें या जठरमें स्थावर, जङ्गमादि सम्पूर्ण विश्वको देखा। ब्रह्मस्तुतिमें कहा गया है—'कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे' (१०/१४/१६)—हे प्रभो! आपने बाहरमें प्रकाशित सम्पूर्ण विश्वको अपने जठरमें प्रकटकर जननी यशोदाको दर्शन कराया है। यह आपकी मायाशक्तिका प्रकाश है।

एक ही साथमें उन्होंने स्थावर, जङ्गम, अन्तरिक्ष, पर्वत, द्वीप, समुद्र सहित भूलोक, वायु, बिजली, अग्नि, चन्द्रमा, ताराओं सहित ज्योतिश्चक्र तथा जल, वायु, वैकारिक अर्थात् इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता, इन्द्रिय समुदाय, मन और शब्द आदि विषय और सत्त्वादि तीनों गुण श्रीकृष्णके मुखमें देखे।

इस प्रकार और भी विचित्र विश्व जिसमें गुणोंके द्वारा क्षुब्ध काल, कर्म एवं संस्कार—इन सबसे युक्त चराचर विश्वको देखा। यशोदाजी अपने पुत्रके मुँह खोलते ही उसके मुँहमें अपने सहित नन्द महाराज, पुत्र आदिके साथ समस्त व्रज-मण्डलका भी दर्शनकर अतिशय विस्मयसे भर गयीं।

‘यस्य कुक्षाविदां विश्वं’ (१०/१४/१७) अर्थात् समस्त पदार्थोंके साथ सभी प्राणी तुम्हारे पेटमें जैसे प्रकाशित हैं, वैसे वे सब बाहरमें भी हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीके वचनसे इस विश्वका अन्तःस्थित्व तथा बाह्यस्थित्व दोनों ही भगवान्की अचिन्त्यशक्ति योगमायाके द्वारा प्रकाशित है। इससे श्रीकृष्ण-स्वरूपका जगत्के अन्तर्वर्त्तित्व और बाहरमें जगत्-व्यापकत्व—दोनों ही वास्तव हैं। जैसे ऐश्वर्य-मार्गके उपासकोंके लिए विश्वमें भगवान्का दर्शन एवं भगवान्में विश्वका दर्शन होता है, वैसे ही यहाँ माधुर्य-उपासकोंकी शिरोमणि, जिनके चरणकमल सदा मस्तकपर धारणीय है—ऐसी माता यशोदाजीने उस विश्वका दर्शन किया, परन्तु जननी यशोदा यह देखकर पुत्रके अनिष्ट-आशङ्कासे डर गयीं ॥ ३७-३९ ॥

किं स्वप्न एतदुत देवमाया,
किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य,
यः कश्चनौत्पत्तिकः आत्मयोगः ॥ ४० ॥

अन्वयः—(यह देखकर यशोदा मैया वितर्क करने लगी) एतत् किं स्वप्नः उत (क्या यह स्वप्न देख रहीं हूँ) (या) देवमाया वत (कोई देवताकी माया है) (इसी आशङ्कामें) किंवा मदीय बुद्धिमोहः (या मेरी बुद्धिका भ्रम है) अथो (अथवा) अमुष्य मम अर्भकस्य एव (या मेरे इस बालकका) उत्पत्तिकः (स्वाभाविक) कश्चन (कोई अचिन्त्य) आत्मयोगः (ऐश्वर्य है) ॥ ४० ॥

अनुवाद—वे मन-ही-मन चिन्तन करने लगीं कि यह स्वप्न है अथवा देवमाया? अथवा मेरी ही बुद्धिमें कोई भ्रम तो नहीं हो गया है? अथवा मेरे पुत्रमें ही कोई जन्मजात अचिन्त्य योगसिद्धि तो नहीं है ॥ ४० ॥

सारार्थदर्शिनी—तादृशदर्शनस्य कारणं वितर्कयति—किं स्वप्नः एतद्दर्शनं, किं स्वप्नहेतुकं? नहि नहि। निद्राणस्य नयनकालुष्याद्यभावात् तत्किं देवमाया? नहि नहि, मम निकृष्टाया मोहने देवानां प्रयोजनाभावात्। तर्हि किं मदीय एव

कश्चिद्बुद्धेर्मोहः विपर्यासः? नहि नहि, स्वास्थ्यसमये सम्प्रति मम बुद्धिमोहकारणाभावात्। अथो अथवा अमुष्य मम बालकस्य 'नारणयणसमो गुणैः' (श्रीमद्भा० १०/८/१९) इति गर्गवर्णितमहाप्रभावत्वात् कश्चनाचिन्त्य आत्मयोगः आत्मीयमैश्वर्यम्॥ ४० ॥

भावानुवाद—यशोदा मैया इस आश्चर्यको देखकर सोचने लगीं—क्या यह स्वप्न है या कोई देव-माया? मुझे मोहितकर देवताओंका क्या लाभ होगा? तब क्या यह मेरी बुद्धिका विपर्यय है? ऐसा तो हो नहीं सकता। ऐसा बुद्धि-विपर्यय होनेका कोई कारण भी नहीं है। या फिर मेरे पुत्रका ही कोई प्रभाव है? क्योंकि गर्गाचार्यजीने कहा था—गुणोंमें यह नारायणके समान है। इसलिए मेरे पुत्रका ही यह कोई अचिन्त्य ऐश्वर्य है॥ ४० ॥

अथो यथावन्नवितर्कगोचरं,
चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते,
सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम्॥ ४१ ॥

अन्वयः—चरम पक्षका आश्रयकर यही ईश्वर होगा, ऐसा निश्चयकर कहने लगीं) अथो चेतोमनः कर्म वचोभिः (चित्त, मन, कर्म और वचनके द्वारा) यथावत् (यथार्थ रूपमें) (जो) न वितर्क गोचरं (तर्कका विषय नहीं होता है) पदाश्रयं (जो जगत्का आश्रय हैं) यतः (जहाँसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है) सुदुर्विभाव्यं (जो अत्यन्त अचिन्त्य-स्वरूप हैं) तत्पदं (मैं उनके चरणकमलोंमें) प्रणता अस्मि (प्रणत हो रही हूँ)॥ ४१ ॥

अनुवाद—चित्त, मन, कर्म एवं वाणीके द्वारा तथा तर्कके द्वारा जिसके स्वरूपका यथार्थ रूपसे अनुमान नहीं किया जा सकता, जो सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं, जो इस जगत्के प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे इस जगत्की प्रतीति अनायास ही होती है, मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। अर्थात् मैं उनका स्मरण, चिन्तन तथा ध्यान करनेमें असमर्थ हूँ, क्योंकि वे सम्पूर्ण रूपसे चिन्तनके परे हैं, सर्वथा अचिन्त्य हैं। वे मेरे पुत्रके अनिष्टको समस्त प्रकारसे प्रशमित करें॥ ४१ ॥

सारार्थदर्शिनी—चतुर्थं तर्कमपि तत्र स्वपुत्रे क्षुत्पिपासामौग्ध्यचाञ्चल्यादि दर्शनेनासम्भाव्य स्वबुद्ध्या कमपि निश्चयं कर्तुमशक्नुवती सर्वतर्कागोचरस्यापि वस्तुनो वस्तुतः कारणं भगवानेवेति सामान्यतो निश्चिन्वती तत्पदाम्बुजं सुतस्वस्तिकामा प्रणमति—अथो इति। यथावत् याथार्थ्येन नैव वितर्कस्य गोचरम्। क्लीबत्वमार्षम्। दृश्यमानमाश्चर्यमिदं यदाश्रयं योऽस्याधिष्ठानम्। यतः यश्चास्योत्पत्तिहेतुः। येन प्रतीयते यश्चास्य प्रतीतिहेतुः, तत्पदं तस्य भगवतः पदं चरणारविन्दम्। चेतश्चित्तम्। तदादिभिः प्रणतास्मि सुदुर्भाव्यं मादृशीनां ध्यातुमशक्यमतः केवलं प्रणमामि। स एवास्य मत्सुतस्य सर्वानिष्टं प्रशमयत्विति भावः ॥ ४१ ॥

भावानुवाद—यदि मेरे पुत्रका स्वाभाविक ऐश्वर्य होता, तब उसमें भूख, प्यास, मुग्धता, चाञ्चल्य आदि कैसे होते? अतः यह असम्भव जान पड़ता है। तब अपनी बुद्धिसे कोई भी निश्चय नहीं कर पानेके कारण मैया यशोदाजी कहने लगीं—जो समस्त तर्कके अगोचर हैं, जो सबके वास्तविक कारण हैं, ऐसे भगवान्को मैं प्रणाम करती हूँ। वे मेरे पुत्रका कल्याण करें ॥ ४१ ॥

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो,
 ब्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती।
 गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे,
 यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—यन्मायया (जिसकी मायाशक्तिसे) असौ (नन्द महाराज) मम पतिः (मेरे पति हैं) एषः (कृष्ण) मे (मेरा) सुतः (पुत्र है) अहं ब्रजेश्वरस्य (मैं नन्द महाराजकी) अखिल वित्तपा (समस्त सम्पदकी अधिष्ठात्री) सती (ब्रजराज्ञी हूँ) सहगोधनाः (गायोंके साथ) गोप्यः गोपाः च मे (गोप, गोपी—ये सभी मेरे हैं) इत्थं (इस प्रकार) कुमतिः (दुर्बुद्धि है) सः (वे भगवान्) मे (मेरे) गतिः (आश्रय हैं) ॥ ४२ ॥

अनुवाद—जिनकी मायाके प्रभावसे, नन्द महाराज मेरे पति हैं, सम्पूर्ण ब्रज-मण्डलका प्राण-स्वरूप श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है, मैं ब्रजराजकी समस्त सम्पदाओंकी अधिष्ठात्री और रक्षाकर्त्री हूँ, गोपी, गोप, सब मेरे अनुगत हैं, जिनकी मायासे मेरी ऐसी कुमति हो गयी है, वही भगवान् मेरे एकमात्र आश्रय हैं ॥ ४२ ॥

सारार्थदर्शनी—हन्त! हन्त! स एव सुतस्यास्य दाता, स एव रक्षितापि भवेदेव, तत्र मम पुनरज्ञायाः किमहङ्कार-ममकाराभ्यामिति तौ जिहासतौ श्रीविष्णुं प्रपद्यमाना प्राह—अहमिति। अखिलवित्तपा निखिलधनरक्षणाभिमानवतीत्यर्थः। गोप्यश्चेति गोपीनां गोपानां सर्वगोधनानाञ्चाहमेव स्वामिनी महाराज्ञीत्यभिमानो यथा कुमतिः, तथैव लोकोत्तरस्यास्य सर्वव्रजजनप्राणभूतस्य बालकस्याहं माता अहमेव पालयित्री दानध्यानादिभिर्विप्रदेवाद्याराधनैर्नित्यं विष्णुपूजनैश्च सर्वानिष्टेभ्यो रक्षामहमेव सततं कारयन्ती भवामि, ततोऽस्य स्वस्तीत्यभिमानोऽपि कुमतिः। एतावतो गोकुलैश्वर्यस्य श्रीविष्णुनैव दत्तत्वात्तत्र यथा ममाभिमानानौचित्यं, तथैव तेनैव कृपया दत्ते पूतनाद्यरिष्टेभ्यः प्रतिक्षणं पाल्यमाने च परमलोकोत्तरेऽस्मिन् सुते लौकिक्या गोपजार्तेर्निकृष्टाया अत्ययोग्याया मम मातृत्वरक्षयित्रीत्वाद्यभिमानोऽयनौचित्यात् कुमतिरेवेति विवेकजिघृक्षैव श्रीयशोदायाः क्षणिकीयं, न तु विवेकः। यथा महामोहान्धानामपि व्यावहारिक-लोकानां कादाचित्क पारमार्थिक प्रसङ्गभवा स्त्रीपुत्राद्यासक्ति जिहासेति ज्ञेयम् ॥ ४२ ॥

भावानुवाद—हाय! हाय! वे भगवान् ही इस पुत्रको देनेवाले हैं, अब वे ही इसकी रक्षा करेंगे। इस विषयमें मैं—मेराका वृथा अहंकारका क्या प्रयोजन है? इसलिए उसे छोड़नेकी इच्छा करते हुए श्रीविष्णुके शरणापन्न होकर श्रीयशोदा कह रही हैं—‘अहम्’ इत्यादि।

यशोदाजी कहने लगीं—मैं नन्द महाराजकी सभी सम्पत्तियोंकी रक्षा करनेवाली हूँ। इन गोप, गोपियों और समस्त गोधनकी मैं ही मालकिन हूँ। मैं महारानी हूँ—यह सब अभिमान जैसे मेरी कुमति है, वैसे ही लोकोत्तर तथा व्रजजनोंके प्राण-स्वरूप इस बालककी मैं माता हूँ, मैं ही इसका पालन करनेवाली हूँ। दान, ध्यान आदिके द्वारा ब्राह्मणों और देवताओंकी आराधना एवं नित्य श्रीविष्णुके पूजन द्वारा समस्त प्रकारके अनिष्टोंसे मैं ही इसकी सर्वदा रक्षा करती हूँ, उससे इसका मङ्गल होता है, ऐसा अभिमान भी मेरी कुमति है। गोकुलका इतना ऐश्वर्य जो कुछ भी है—भगवान् विष्णुने ही दिया है, इस विषयमें अभिमान करना वृथा है। इसी प्रकार इस बालकको भी उन्होंने ही दिया है और पूतना आदिसे वे ही इसकी रक्षा भी करते हैं। मैं अति निकृष्ट होकर भी व्यर्थका अभिमान करती हूँ—यह मेरे लिए अनुचित है।

यशोदाजीका इस प्रकारका विचार क्षणभर कालके लिए आया था। जैसे महा मोहान्धकारमें पड़े हुए व्यक्तिकी कदाचित् पारमार्थिक प्रसङ्गवशतः स्त्री-पुत्र आदिके प्रति आसक्ति त्यागनेकी इच्छा होती है ॥ ४२ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—बाल्यलीलारसमें आविष्ट स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके मुँहमें मिट्टी खानेका कोई चिन्ह है या नहीं, इसकी परीक्षा करनेके लिए माँ यशोदाने जब कृष्णको कहा—अरे दुष्ट बालक ! मुँह खोल, देखूँ ! तेरे मुँहमें मिट्टी है या नहीं, तब तनिक भी विलम्ब न करके उसी समय अखिल-ब्रह्माण्ड-पतिने मुँह खोल दिया। उनके मुँह खोलनेके साथ-साथ यशोदा मैया मिट्टी खानेका कोई चिन्ह देख नहीं सकीं। परन्तु फिर भी परीक्षा लेनेसे निवृत्त नहीं हुई। दाहिने हाथसे ललाट पकड़कर उनके मस्तकको पीछेकी ओर झुकाकर अच्छी तरहसे मुख-गद्दरकी परीक्षा करने लगी। इस प्रकार यशोदा कृष्णके दाँतोंके भागमें, जिह्वाके नीचे एवं जिह्वाके मूलदेश तक ढूँढ़ने लगीं। यशोदाने जब कृष्णकी जिह्वाके मूलदेशमें दृष्टिपात किया, तब सहसा एक अद्भुत दृश्य देखकर अचम्भित हो गयीं तथा भय और विस्मयमें डूब गयीं। उससे उनका हाथ काँपने लगा, गला रुद्ध हो गया और दोनों नेत्र पलकरहित हो गये।

यशोदा अपने पुत्रके मुँहमें मिट्टी है या नहीं, इसकी परीक्षा लेने गयीं, परन्तु उसकी जिह्वाके मूलदेशमें दृष्टिपात करनेपर उनके उदरमें परिपूर्ण विश्वको देखा। यशोदाके मनमें विश्वरूप-दर्शनकी कोई अभिलाषा नहीं थी, उन्होंने उसके मुखमें मिट्टीके स्थानपर विश्वका दर्शन किया। विश्वमें जो कुछ यहाँ है, यशोदानन्दनके उदरमें वह सबकुछ यशोदाको दिखायी दिया। यशोदाने देखा—यहाँ स्थावर-जङ्गमादि सभी कुछ है। केवल यही नहीं, वहाँ भुवर्लोक, दिक्पाल सहित दशों दिशाएँ एवं सप्त द्वीप, सप्त समुद्र और सुमेरु, हिमालय आदि भूधर-सहित भूलोक विराजित है। उसमें वायु, अग्नि, चन्द्र, तारका आदि यथास्थानमें अवस्थित हैं। भुवर्लोकके ऊर्ध्वभागमें ज्योतिश्चक्र अर्थात् स्वर्लोक, उसमें जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय, मन,

पञ्चतन्मात्राएँ, अहंकार, महत्तत्त्व और सत्त्वादि गुण, सबके अधिष्ठात्री देवता आदि विराजित हैं। ब्रह्माण्डकी मूल उपादान त्रिगुणमयी प्रकृतिसे स्थूल ब्रह्माण्ड, स्थूल, सूक्ष्म और कार्य-कारणात्मक विश्व एवं उसमें स्थित छोटा-बड़ा, साकार, निराकार, दृश्य, अदृश्य आदि जो कुछ भी है, वह समस्त कृष्ण-जननी यशोदाके दृष्टि-गोचर होने लगा।

इस प्रकार श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यशक्तिने माँ यशोदाको आश्चर्यका दर्शन कराकर उन्हें विस्मित कराती हुई उनके क्रोधको दूरकर उनके हृदयमें दूसरा भाव उत्पादन करानेके लिए चेष्टायुक्त होकर उनकी दृष्टिके सामने विश्वका दृश्य प्रकाश कर दिया।

इस प्रकार यशोदा मैयाके श्रीकृष्णके मुख-विवरमें मिट्टी ढूँढ़नेमें प्रवृत्त होनेपर उनकी ऐश्वर्य-शक्तिने यशोदाको केवल मिट्टी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण क्षिति, अप, तेजः, मरुत, व्योम—ये पञ्चभूत एवं उनके कारण, कार्य और अधिष्ठात्री देवताओं तकको प्रकाशितकर दिखला दिया। मूल-प्रकृतिसे ब्रह्माण्ड तक प्रकाशकर त्रिगुणमयी प्रकृतिके गुणक्षोभक काल और महत्तत्त्व आदिके रूपमें परिणाम प्राप्त होनेका कारण जो स्वभाव है, उसे प्रकाश किया। उसमें सत्त्व, रजः एवं तमोगुणमयी प्रकृति, उनके गुण-वैषम्यकारक काल और महत्तत्त्व आदिके रूपमें परिणाम होनेका स्वभाव—ये तीनों वस्तुएँ ही यशोदाके दृष्टिगोचर हुए।

उस ऐश्वर्यशक्तिने कृष्ण-जननी यशोदाकी दृष्टिके सामने मूल प्रकृतिके गुण-वैषम्यकारक काल एवं परिणाम हेतु स्वभावको प्रकाशितकर स्थूल ब्रह्माण्डके भोक्ता अनन्त जीव, उनके जन्मादिका हेतु अनादि अदृष्ट, अनेकों प्रकारके भोग-संस्कार एवं उसके अनुरूप अनन्त विचित्र देहोंको प्रकाश कर दिया। इससे प्रकृति और प्राकृत जगत्की सभी वस्तुएँ दृष्टि-गोचर होने लगीं। माँ यशोदा इस आश्चर्यको देखकर विस्मित नेत्रोंसे कुछ भी स्थिर नहीं कर सकीं। उसके पश्चात् पुनः अच्छी प्रकारसे देखनेके लिए चेष्टा की, तो देखा उनके मुँह-विवरमें मूल प्रकृतिसे ब्रह्माण्डतक सभी प्राकृत वस्तुएँ, यहाँ तक कि उसमें गोकुल, गोकुलवासी गोप, गोपी आदि भी विराजित हैं, केवल यही नहीं, वहाँ यशोदा अपने पुत्रका हाथ पकड़कर खड़ी हैं

एवं यशोदानन्दन भी मुँह खोलकर जननीके सामने खड़े हैं, यह दृश्य भी देखा।

माँ यशोदा अपने पुत्रके मुँहमें इस परम अद्भुत आश्चर्यका दर्शनकर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गयीं। मन-ही-मन विचार करने लगीं—क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? यदि यह स्वप्न नहीं है, तो मेरे पुत्रके छोटेसे मुँहके अन्दर मेरी सामान्य दृष्टिमें युगपत् ब्रह्माण्डका दर्शन कैसे सम्भव हो रहा है? प्रथमतः उन्होंने 'मैं स्वप्न देख रही हूँ' ऐसा मान लिया था, परन्तु फिर बोलीं कि—नहीं, यह तो स्वप्न नहीं है। निद्रित अवस्थाके बिना स्वप्न नहीं होता है। मैं तो निद्रित नहीं हूँ, जाग रही हूँ एवं अपने पुत्र, गृह, गोपबालक आदि सभीको देख रही हूँ। अतएव मेरा यह परम अद्भुत-दर्शन स्वप्न-कल्पित नहीं है। तो यह क्या देव-माया है? मेरे आराध्य देवता नारायणने क्या मुझको मोहित करनेके लिए अपना मायाजाल विस्तार किया है? उनकी मायाके बिना किसीके द्वारा यह सम्भव नहीं है। विशेषकर मेरे इस छोटेसे पुत्रके मुँहमें कभी भी इतने विशाल दृश्यका आधार सम्भव नहीं हो सकता है। अतः नारायणकी मायासे ऐसा असम्भावित दृश्यका प्रकाश हुआ है, तो यह दृश्य सबके गोचर क्यों नहीं होता है? बलराम और गोपबालक भी यहाँ उपस्थित हैं, वे भी मेरे इस चञ्चल बालकके मुँहमें 'मिट्टी है या नहीं' परीक्षाकर देख रहे हैं। परन्तु उनके मुखपर कोई भय या विस्मयका चिह्न दिखायी नहीं दे रहा है। अतएव अवश्य ही ये इस अद्भुत दृश्यको देख नहीं पाये।

तब श्रीनारायणने क्या एकमात्र मुझे ही मोहित करनेके लिए मेरी दृष्टिके सामने ऐसे परम अद्भुत दृश्यको प्रकाशित किया है? इससे उनका क्या उद्देश्य साधित होगा? जिनकी मायाके लेशमात्रसे ही ब्रह्मादि देवगण मोहित हो जाते हैं, वे मायाधीश भगवान् मेरे जैसे तुच्छ व्यक्तिको क्यों मोहित करेंगे? क्या यह उनकी परीक्षा है? मैं क्या उनकी परीक्षामें उत्तीर्ण होने योग्य हूँ? मैं अनादि कालसे उनकी मायामें मुग्ध होकर पति-पुत्र, देह-गेह आदिमें आसक्त हो रही हूँ, अतः वे मेरी क्यों परीक्षा करेंगे? इसलिए मेरे पुत्रके मुख-विवरमें अद्भुत दर्शन—श्रीनारायणकी माया नहीं है, अवश्य ही मेरी बुद्धिमें ही

कोई भ्रम हो रहा है। मेरे पुत्रका अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदि नीलमणि दर्पणकी भाँति स्वच्छ है, अतः सम्भवतः उसमें कोई वस्तु प्रतिबिम्बित होकर दिखायी दे रही है। वही देखकर मेरा बुद्धि-विपर्यय हो रहा है।

इसे प्रतिविम्ब मानकर माता यशोदा एक बार सामने देखती हैं, एक बार पुत्रके मुँहमें देखती हैं। पुत्रके मुँहमें पुनः सबकुछ देखकर यशोदाजी विचार करने लगीं—यह कैसा प्रतिविम्ब है? दर्पण आदि स्वच्छ वस्तुमें तो केवल उसके सामनेकी वस्तु दिखायी देती है, परन्तु यहाँ तो समस्त गोकुल तथा गोप-गोपी, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता सभी कुछ दिखायी दे रहे हैं। यह सब कुछ तो बालकके सामने नहीं है, फिर केवल एक ही नहीं, ऐसे कितने सैंकड़ों गोकुल इसके मुँहमें दीख रहे हैं! यह यदि प्रतिविम्ब नहीं है, तब मैं क्या देख रही हूँ? यह किसी भी प्रकारसे मेरी बुद्धिका भ्रम नहीं हो सकता। मैं सब कुछ देख रही हूँ और समझ रही हूँ। केवलमात्र इस दृश्यको देखकर क्या करूँ और क्या नहीं करूँ, समझ नहीं पा रही हूँ।

तो फिर क्या यह मेरे पुत्रका ही कोई स्वभावसिद्ध ऐश्वर्य है। क्योंकि नामकरणके समय सर्वज्ञ-शिरोमणि गर्गाचार्यजीने कहा था—यह बालक सम्पद, यशः एवं महाप्रभावमें नारायणके तुल्य होगा। इसलिए नारायण-तुल्य महाप्रभाव-सम्पन्न मेरे पुत्रके मुख-विवरमें ऐसा अद्भुत दर्शन कुछ भी असम्भव नहीं है। नारायणकी कृपासे एवं ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे मेरा पुत्र नारायण-तुल्य महाप्रभावशाली है—इसीलिए इसके मुँहमें ऐसे अद्भुत दृश्य दिखायी दे रहे हैं। नारायणकी कृपासे मेरे पुत्रको दीर्घ जीवन प्राप्त हो तथा यह व्रजवासियोंका आनन्द-वर्द्धन करे। हे नारायण! आपकी कृपासे इस महा प्रभावसम्पन्न पुत्रको प्राप्तकर मैं सफल-मनोरथ हुई हूँ। आपकी कृपासे यह बालक सबका शिरोभूषण हो, हम आपके इस अनुग्रहके दानसे कभी वञ्चित नहीं हों।

इस प्रकार माता यशोदाने नारायणसे प्रार्थना करते हुए उन्हें प्रणाम निवेदन किया और कहने लगीं—हे नारायण! मैं इस पुत्रके मुँहमें इस अद्भुत दृश्यको देखकर पुत्रकी अमङ्गल-आशङ्कासे डरी हुई

हूँ। इसका कारण एकमात्र ममता है। मेरी यदि इस पुत्रके प्रति ममता नहीं रहती, तब मुझे कोई अमङ्गलकी आशङ्का नहीं रहती। मैं यशोदा हूँ, गोपराज मेरे पति हैं, मेरे सामने खड़ा हुआ मेरा पुत्र है, मैं नन्दराजकी सभी सम्पत्तियोंकी अधिकारिणी एवं ब्रजके गोप-गोपी मेरी प्रजा हैं, ऐसा अभिमान मेरे सर्वविध अनर्थोंका मूल है। श्रीनारायणके चरणकमलोंके भजन-विहीन व्यक्तियोंकी ही उनकी मायासे ऐसी कुबुद्धि होती है। इसलिए वे विविध-प्रकारके सुख-दुःखोंमें सर्वदा मोहित होते रहते हैं। हे नारायण! मेरी इस ममताको दूर कर दो। जिससे मैं देह, गेह, पति-पुत्र आदिमें मोहशून्य होकर निश्चिन्त रूपसे आपका चरणाश्रय कर सकूँ। मेरी कुमतिको दूर करें। मैं इस ममताके बन्धनमें नहीं रहना चाहती हूँ॥ ३७-४२॥

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः।

वैष्णवी व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः॥ ४३॥

अन्वयः—इत्थं (इस प्रकार) गोपिकायां (माता यशोदा) विदित तत्त्वायां (श्रीकृष्णका यथार्थ-तत्त्व अवगत होनेपर) विभुः स ईश्वर (विभु भगवान् श्रीकृष्ण) पुत्रस्नेहमयीं (सन्तानके प्रति वात्सल्य स्नेहमयी) वैष्णवी मायां (अपनी स्वरूपशक्तिका) व्यतनोत् (विस्तार किया, अर्थात् पुत्रस्नेहरूप मायाके द्वारा यशोदाको मोहित किया)॥ ४३॥

अनुवाद—इस प्रकार माता यशोदाको श्रीकृष्णका यथार्थ स्वरूप समझमें आ गया। तब श्रीकृष्णने पुत्रस्नेहमयी स्वरूपशक्ति योगमायाका यशोदाजीके हृदयमें संचार कर दिया॥ ४३॥

सारार्थदर्शनी—इत्थमनेन प्रकारेण, विदितं तत्त्वं ममत्वजिहासा यया, तस्यां यशोदायां सत्यां, तर्हि का मां लालयिष्यती, प्रतिक्षणं का पालयिष्यति? इत्यतः पुत्रस्नेहमयीं; स्वरूपे मयट्, पुत्रस्नेहरूपं प्रेमविशेषं व्यतनोदित्यर्थः। मोहनसाधर्यान्मायां, तेन च ताम् प्रेमान्धां चकारेत्यर्थः॥ ४३॥

भावानुवाद—‘इत्थं विदितं-तत्त्वायां’—यशोदाजीके इस प्रकार तत्त्वको मानकर ममता त्यागनेकी इच्छा करनेपर, ‘कौन मुझे लालन करेगी,

कौन मुझको पालन करेगी—इस भावनासे विभु श्रीकृष्णने यशोदाके सामने पुत्रस्नेहमयी वैष्णवी मायाका विस्तार किया अर्थात् पुत्रस्नेहरूप प्रेमविशेषको प्रकट किया। यहाँ मोहन-साधर्म्यमें माया कहा गया है। उसने वात्सल्यप्रेमके द्वारा मैयाको अभिभूत कर दिया ॥ ४३ ॥

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम्।

प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीत् यथा पुरा ॥ ४४ ॥

अन्वयः—सा गोपी (वह यशोदा) सद्यः (तत्क्षणात्) नष्ट स्मृतिः (वैष्णवी मायाके द्वारा जिनकी विश्वरूप-दर्शन सम्बन्धी स्मृति नष्ट हो चुकी है, वे यशोदाजी) आत्मजं आरोहं आरोप्य (पुत्रको गोदमें लेकर) पुरा यथा (पूर्ववत्) प्रवृद्ध स्नेह कलिल हृदया (अतिशय स्नेह परायणा) बभूव (हो गयी) ॥ ४४ ॥

अनुवाद—वैष्णवी मायाके संचरित होनेपर वे तत्क्षण ही विश्वरूप-दर्शनकी घटनाको भूल गयीं। अब उनके हृदय-सागरमें पहलेके ही समान अतिशय स्नेहकी तरङ्गें हिल्लोरे लेने लगीं और उन्होंने अपने लाड़ले लालको गोदमें उठा लिया ॥ ४४ ॥

सारार्थदर्शिनी—नष्टस्मृतिरिति—यथा स्वप्नदृष्टोऽर्थः कश्चित् कश्चिद्विस्मर्यते, तथैव सद्य एव सा विश्वदर्शनादिकं विसस्मारेत्यर्थः। प्रवृद्धेन सङ्कोचकारणादप्यैश्वर्य-ज्ञानादसङ्कुचितेन, प्रत्युत प्रबलीभूतेन स्नेहेन, कलिलं व्याप्तं हृदयं यस्याः सा ॥ ४४ ॥

भावानुवाद—‘नष्टस्मृति’—जिस प्रकार स्वप्नमें देखी गयी वस्तुको लोग भूल जाते हैं, उसी प्रकार यशोदा भी उस समय विश्व-दर्शन आदि सबकुछ भूल गयीं। ऐश्वर्यज्ञानसे प्रेम संकुचित होता है और माधुर्यमें निःसंकोच भाव होता है। इसलिए माँ यशोदामें फिरसे वह निःसंकोच-स्नेह वर्द्धित होने लगा ॥ ४४ ॥

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।

उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—सा (यशोदा) त्रय्या (वेदत्रयी) उपनिषद्भिः च सांख्ययोगैः (उपनिषद, सांख्ययोग आदि शास्त्रोंके द्वारा) सात्वतैः (तथा पञ्चरात्र आदि वैष्णव-शास्त्रोंके द्वारा) उपगीयमान माहात्म्यं (जिनकी महिमा वर्णन की जाती है) हरिं आत्मजं अमन्यत (ऐसे हरिको पुत्ररूपमें ज्ञान करने लगी) ॥ ४५ ॥

अनुवाद—तीनों वेद यज्ञपुरुषके रूपमें, उपनिषद ब्रह्मके रूपमें, सांख्य पुरुषरूपमें, योग परमात्मारूपमें और सात्वत-शास्त्र अर्थात् नारदपञ्चरात्र आदि भक्तियोगपरक शास्त्र भगवत्-रूपमें जिन श्रीहरिके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, यशोदा उन श्रीहरिको अपना पुत्र मानती थीं ॥ ४५ ॥

सारार्थदर्शिनी—देवक्या अपि सकाशात्तस्या उत्कर्षमभिव्यञ्जयितुमैश्वर्य-दर्शनादपि स्वीयवात्सल्यप्रेम्णाः सङ्कोचभावमाख्यायैश्वर्यश्रवणादप्याह—त्रयया यज्ञपुरुषत्वेन, उपनिषद्भिर्ब्रह्मत्वेन, साङ्ख्यैः पुरुषत्वेन, योगैः परमात्मत्वेन, सात्वतैः पञ्चरात्रैर्भगवत्त्वेन इत्येवं कर्मिप्रभृतिभिरुपगीयमानमाहात्म्यं देशकालानियमात्तस्याः समक्षमसमक्षं वा उप आधिक्येन गीयमानैश्वर्यं हरिं सा आत्मजममन्यतेत्यस्मदभीष्टदैवतेनावयोर्ब्रत-नियमसन्ततपूजनादिभिः सन्तुष्टेन पर्जन्याभिधानमदीयश्वशुरकृतनिरवद्यबहुतपःसन्तोषितेन श्रीनारायणेन कृपया दत्तो लोकोत्तरः पुत्रोऽयं यत् कर्मिप्रभृतिभिस्त्रय्यादिप्रतिपाद्यत्वेन स्तूयते। तत्र खलु 'नारायणसमो गुणैः' (श्रीमद्भा० १०/८/१९) इति सर्वत्र गर्णेण गीयतया नारायणसाम्यप्रथया अन्यदुष्करपूतनादिवधानामेतत्कर्तृकत्वप्रथया चायमेव नारायण इति तेषां विश्वास एव हेतुर्वस्तुतस्त्वयं मत्पुत्र एव मां मातरं क्षणमप्य-दृष्ट्वा विकलीभवत्यहञ्चैनं स्वनिमेषव्यवहितं ज्ञात्वा विह्वलीभवामीत्यावयोर्जनन्योरनुभव एवात्र प्रमाणमिति मनसि सा समाधत्ते। किञ्च, कर्मिप्रभृतयस्त्रय्यादिभिर्यथा हरिं यज्ञपुरुषादिकं मन्यन्ते, तथैवेयं वात्सल्यप्रेम्णा हरिम् आत्मजं मन्यते। तेभ्यस्तु तत्तदनु रूपं फलं ददानस्तेषामनुग्राहको वशयिता सन्नीष्टे, अस्यै तु वात्सल्यप्रेमानुरूपं फलं दातुमसमर्थो ऋणीभवन्नस्या अनुग्राह्यो वश्य ईशितव्यत्वेन तिष्ठन् सानन्दतुष्टोऽयस्या स्तन्त्यामृतार्थं रोदितीत्यादि विशेष उत्तराध्याये स्पष्टीभविष्यति। पद्यमिदं कृष्णलीलायां परिभाषासूत्ररूपं ज्ञेयम्। परिभाषा ह्येकदेशस्था सकलं शास्त्रमभिप्रकाशयति, यथा—वेश्मप्रदीप इति। 'इकोगुणवृद्धी' (पा० १।१।२) इति—यत्र तत्र गुणवृद्धी श्रूयते, तत्र तत्र इक् परिभाषो पतिष्ठते यथा, तथैव कौमारकैशोरमाधुरकुरुक्षेत्रादिगतलीलासु यत्र यत्र ऐश्वर्यप्रसङ्गः, तत्रेदमुपतिष्ठते इति ॥ ४५ ॥

भावानुवाद—श्रीदेवकीसे भी श्रीयशोदाका उत्कर्ष व्यक्त करते हुए 'ऐश्वर्य देखकर भी यशोदाके वात्सल्यप्रेममें कोई शिथिलता नहीं आयी'—इसका वर्णनकर अब ऐश्वर्यको सुनकर भी उनका श्रीकृष्णमें कितना वात्सल्यप्रेम है, इसीका वर्णन करते हैं।

वेदत्रय यज्ञपुरुष रूपमें, उपनिषद् ब्रह्मरूपमें, सांख्य पुरुषरूपमें, योग परमात्मरूपमें, सात्वत अर्थात् नारदपञ्चरात्र आदि भक्तियोग-शास्त्र भगवत्-रूपमें जिनकी महिमाका गान करते हैं, ऐसे परमपुरुष श्रीकृष्णको 'आत्मजम्'—यशोदा माता अपना गर्भजात पुत्र मानकर लाड़-प्यार करने लगीं। वे समझती हैं—हमारे सौभाग्यसे, हमारे व्रत, नियम और पूजन आदिके द्वारा सन्तुष्ट होकर तथा पर्जन्य नामके मेरे श्वसुरके द्वारा की गयी निर्दोष-तपस्याके कारण सन्तुष्ट होकर श्रीनारायणने कृपापूर्वक हमें यह लोकातीत पुत्र प्रदान किया है। कर्मी आदि वेदादि शास्त्रोंके प्रतिपाद्यके रूपमें जो स्तुति करते हैं, उस विषयमें 'नारायण समो गुणैः' इस गर्गाचार्यके वचनसे गुणोंमें नारायणके समान होनेके कारण ही जो कार्य दूसरोंके लिए असम्भव है, ऐसे पूतना वध आदि कार्य इसके द्वारा सम्पादित होते हैं। इसलिए यह नारायणके समान होनेपर भी, यथार्थ रूपमें यह बालक मेरा ही पुत्र है। माँ यशोदा यदि क्षणकाल भी कृष्णको नहीं देखती हैं, तो वे व्याकुल हो जाती हैं और श्रीकृष्ण भी माताको न देखकर व्याकुल हो जाया करते हैं। इसलिए माता-पुत्रका अनुभव ही इसका प्रमाण है।

कर्मी आदि जैसे वेदादि शास्त्र द्वारा श्रीहरिको यज्ञपुरुषके रूपमें मानते हैं, वैसे ही माँ यशोदा अपने वात्सल्यप्रेमके कारण श्रीकृष्णको अपना पुत्र मानती हैं। भगवान् उन लोगोंको उनकी आराधनाका फल प्रदान करनेके लिए ईश्वर रूपमें विराजमान हैं। परन्तु यशोदा माँके वात्सल्यप्रेमके अनुरूप उन्हें फल देनेमें असमर्थ होकर उनके वश्य, लाल्य पुत्र बनकर जननीका स्तनामृत पीनेके लिए रो रहे हैं। इस तत्त्वको दूसरे अध्यायमें प्रकाशित करेंगे। यह श्लोक कृष्णलीलाका परिभाषा-सूत्र है। एक स्थानमें रहकर जो सभी शास्त्रोंको प्रकाशित कर दे, उसे परिभाषा कहते हैं—जैसे प्रदीप घरके एक स्थानमें रहकर

सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है। जैसे व्याकरणका सूत्र 'इको गुणवृद्धी'—अर्थात् जहाँ गुण और वृद्धि होती है, वहाँ 'इक्' यह परिभाषा कार्यकारी होती है। वैसे ही श्रीकृष्णके कौमार, कैशोर, माथुर, कुरुक्षेत्र आदि लीलाओंमें जहाँ-जहाँ ऐश्वर्यका प्रसङ्ग है, वहाँ-वहाँ यह पद (श्लोक) परिभाषाके रूपमें अवस्थित है ॥ ४५ ॥

भावप्रकाशिका वृत्ति—वात्सल्यप्रेमवती मैया यशोदा अपने पुत्रके मुख-विवरमें विश्वका दर्शनकर पुत्रके अमङ्गलकी आशङ्कासे अधीर हो उठीं एवं किसी भी प्रकारसे इस परम अद्भुत दर्शनका कारण निर्णय नहीं कर सकीं। अन्तमें नारायणके चरणोंमें शरणागत होकर देह-गेह, पति-पुत्रादिके साथ ममताका बन्धन छिन्न करनेके लिए बारम्बार प्रार्थना करने लगीं। माँ यशोदा नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेमवती हैं। अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीभगवान्के साथ वात्सल्यप्रेमोचित ममताका बन्धन उनका नित्यसिद्ध भाव है। उन्होंने इस ममताके बलसे ही सर्वनियन्ता सर्वेश्वर गोविन्दको अपना गर्भजात पुत्र बना लिया है। उनकी इस ममताके अनुगत होकर ही अखिल ब्रह्माण्डपालक भगवान् पुत्र होकर बहुत प्रकारकी बाल्यलीलाएँ करते हैं। कितने योगीन्द्र, मुनीन्द्र निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर जिनका अनुसन्धान करनेमें समर्थ नहीं हुए हैं, माँ यशोदा ममताके बलसे उन्हें बायें हाथसे पकड़कर उनका कितना तिरस्कार कर रही हैं, कितना डाँट-डपट रही हैं। भगवान् भी माँ यशोदाकी ममताकी मर्यादाका लंघन न करके उनके अनुगत होकर ही विविध प्रकारकी बाललीलाएँ कर रहे हैं। माँ यशोदा इस ममताके बलसे सर्वेश्वर भगवान्को पुत्र मानती हैं। उनका कोई भी ऐश्वर्य माँ यशोदाके ममतापूर्ण दृष्टिके गोचर नहीं हुआ या धारणामें नहीं आया। 'कृष्णने मिट्टी खायी'—यह सुनकर 'कहीं उसे कोई बीमारी न हो जाय' यह मानकर माँ यशोदा भयसे व्याकुल हो गयीं। वे अपने नटखट पुत्रको सुधारनेके लिए उसे कितना डाँटती-डपटती हैं। उसके पश्चात् उसके मुँहमें मिट्टी है या नहीं, यह परीक्षा कर रही हैं। माँ यशोदाके इन सभी व्यवहारोंका एकमात्र कारण 'श्रीकृष्णमें ममता' है। जिनकी श्रीकृष्णमें ममता नहीं

है, वे श्रीकृष्णको ब्रह्म, परमात्मा या सर्वेश्वरके रूपमें जानते हैं। वे ज्ञान, योग, अष्टाङ्गयोग या ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रित भक्तियोगसे संसारसे मुक्ति, सायुज्य प्राप्ति, सिद्धिलाभ, सालोक्य आदि प्राप्तिरूप आत्महित साधनके लिए सदा व्यस्त रहते हैं, श्रीकृष्णकी हित-चिन्ताको उनके मनमें बिलकुल भी स्थान नहीं मिलता है। जिन्होंने श्रीकृष्णके साथ ममताके बन्धनमें बँधकर श्रीकृष्णके स्वरूप एवं ऐश्वर्यको भूलकर उन्हें अपना पुत्र, सखा या प्राणवल्लभ रूपमें वरण कर लिया है, वे इस सम्बन्धके मोहमें अपनेको खोकर सदा कृष्णकी हित-चिन्तामें डूबे रहते हैं। श्रीकृष्णका सुख ही उनका सुख है, श्रीकृष्णका दुःख ही उनका दुःख है। श्रीकृष्णके सुख-दुःखके बिना अपना कोई सुख-दुःख है, यह भी उनकी धारणासे बाहर हो जाता है। कृष्ण-स्वरूपका विचार करनेपर देखा जाता है कि वे समस्त प्रकार सुख-दुःखसे परे निर्विकार, सच्चिदानन्द वस्तु हैं। परन्तु जिनकी श्रीकृष्णमें ममता है, उनकी बुद्धिमें कभी भी ऐसे विचार आते ही नहीं हैं। श्रीकृष्ण समस्त ममतावान भक्तोंके प्रेमके अनुरूप अपनेको प्रकाशित करके उनके प्रेमरसका आनन्द आस्वादन करते हैं।

कृष्ण-बहिर्मुख जीवोंके साथ श्रीकृष्णका कोई सम्बन्ध नहीं है। वे अनादि कालसे श्रीकृष्णको भूलकर विषयोंमें आसक्त हैं और प्रति पद-पदपर माया-मोहसे मुग्ध हैं। कर्मी स्वर्ग पानेकी लालसामें दिन-रात कर्मानुष्ठानमें व्यस्त रहते हैं, वे श्रीकृष्णको कर्मफलदाता समझते हैं। योगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योगाङ्गके अनुष्ठानके द्वारा चित्तवृतिका निरोधकर परमात्माके साथ लीन होनेकी चेष्टामें डूबे रहते हैं। तत्त्वज्ञानी श्रीकृष्णको सर्वव्यापी चित्-सत्ताके रूपमें जानते हैं तथा उन्हींमें अपनेको लीन करनेके साधनमें व्यस्त रहते हैं। ऐश्वर्यज्ञानी भक्त श्रीकृष्णको सर्व-नियन्ता एवं अपनेको नियम्य अर्थात् भगवान् प्रभु हैं—मैं उनका दास हूँ, इस प्रकार ऐश्वर्यभावसे या गौरव-बुद्धिसे सेवा करते हैं। परन्तु इनमेंसे कोई भी श्रीकृष्णकी हित-चिन्ता करनेवाले नहीं हैं या श्रीकृष्णके सुख-दुःखके साथ किसीका कोई सम्बन्ध नहीं है।

माँ यशोदा श्रीकृष्णको भूलकर विषयासक्त नहीं हैं, कर्मोंकी भाँति स्वर्गादि भोगोंके लिए लालायित नहीं हैं, तत्त्वज्ञानीकी भाँति परमात्माके अनुसन्धानमें रत नहीं हैं या श्रीकृष्णको सर्वनियन्ता रूपमें भी नहीं जानती हैं। वे विशुद्ध वात्सल्यप्रेममें श्रीकृष्णको अपना पुत्र जानकर सर्वदा श्रीकृष्णके लालन-पालनमें अनुरक्त रहती हैं एवं श्रीकृष्णकी हिताकांक्षा ही उनके हृदयमें जागरूक रहती है। श्रीकृष्णकी किसी प्रकारकी अनिष्टकी सम्भावना होनेपर वे व्याकुल हो जाती हैं एवं कैसे उस अनिष्टका प्रतिकार होगा—इसकी चिन्तामें अधीर हो जाती हैं।

इसलिए यशोदा माँ हताश होकर विचार करने लगी—नारायणकी कृपासे यह बालक राक्षसीके ग्राससे रक्षा पा सका है, शकट पतनसे इसकी रक्षा हुई है, चक्रवातरूप राक्षससे भी इसकी रक्षा हुई है, किन्तु इस बार इसकी रक्षाका कोई उपाय नहीं है। क्योंकि इस बार प्रत्यक्ष रूपसे कोई राक्षस आदि नहीं दिखाई दे रहा है, अतः इसके मुखमें जो देख रही हूँ, उससे रक्षाका कोई उपाय नहीं दीखता। वे नारायणसे प्रार्थना करने लगीं—हे नारायण! आपने मेरे पुत्रकी कई बार रक्षा की, परन्तु मेरे इस पुत्र की विपत्तियोंका कोई अन्त नहीं है। इस बालककी रक्षाके लिए आपसे कितनी बार प्रार्थना करूँ। इसलिए फिर प्रार्थना कर रही हूँ—क्योंकि अपने इस पुत्रके आपद-विपदमें आपको छोड़कर किससे प्रार्थना करूँ? पति-पुत्र, देह-गेह आदिके साथ ममताका बन्धन ही समस्त दुःखोंका मूल कारण है। मैं इस पुत्रको लेकर सर्वदा सुख-दुःखमें अभिभूत रहती हूँ। अतएव हे नारायण! मेरे इस ममताके बन्धनको काट दीजिये। जिससे मैं पति-पुत्रके सम्बन्धसे मुक्त होकर बिना किसी उद्वेगके आपके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँ।

यशोदाका ऐसा वैराग्य देखकर श्रीकृष्ण स्थिर नहीं रह सके। क्योंकि यशोदाकी ममताके कारण ही स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण बाल्यलीलाके आवेशमें अखिल ब्रह्माण्ड-पालक होकर भी पुत्र बने हैं। यदि यशोदाकी ममता नहीं रहती है, तब तो श्रीकृष्णकी बाललीला ही नहीं

होगी। श्रीकृष्णका बालभाव जैसे यशोदाके लिए प्रार्थनीय है, वैसे ही यशोदाकी ममता भी श्रीकृष्णके लिए प्रार्थनीय है। श्रीकृष्ण यदि बालभाव छोड़कर नृसिंह आदि मूर्तिमें यशोदाके निकट उपस्थित हो जायँ, तब तो यशोदा वात्सल्यप्रेममें हाथ बढ़ाकर उन्हें गोदमें धारण करने नहीं जायेंगी। और यदि यशोदा ममता-शून्य होकर निर्लिप्त हो जाय, तब तो श्रीकृष्ण भी उनके निकट बाललीलाका प्रकाश नहीं कर सकते। इसलिए भगवान्‌का लीलामाधुर्य और भक्तका प्रेम—ये दोनों ही एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं एवं एक दूसरेको सुप्रतिष्ठित करते और बढ़ाते हैं।

जिस प्रकार दर्शक नहीं रहनेसे अभिनेताका अभिनय-नैपुण्य प्रकाशित नहीं होता। इस प्रकार एक दूसरेकी अपेक्षामें परस्पर मिलित होकर दर्शक और अभिनेता दोनों ही अभिनयका आनन्द उपभोग करते हैं।

उसी प्रकार भगवान् भी प्रेमवान् भक्त नहीं मिलनेसे अपना लीलामाधुर्य प्रकाशित नहीं कर पाते हैं। प्रेमवान् भक्त भी अपने भावके अनुरूप भगवान्‌के लीला-विग्रह नहीं मिलनेसे लीलामाधुर्य आस्वादन नहीं कर सकते। इसलिए भगवान् और प्रेमवान् भक्त एक दूसरेकी अपेक्षामें परस्पर मिलित होते हैं एवं दोनों ही लीलामाधुर्यका आस्वादन करते हैं।

अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके पालक श्रीकृष्णकी पालिका मैया यशोदा जब श्रीकृष्णकी अनिष्ट-आशङ्कासे व्याकुल होकर उनके साथ ममताका बन्धन तोड़नेके लिए पुनः-पुनः नारायणके निकट प्रार्थना करने लगीं, तब भगवान्‌ने वैष्णवी मायाका विस्तार किया। 'इत्थं विदितं तत्त्वायां' श्लोकमें वैष्णवी मायाका वर्णन हुआ है। वैष्णवी माया अर्थात् योगमाया भगवान्‌की स्वरूपशक्ति है। यदि केवलमात्र माया शब्दका उल्लेख रहता, तब अल्प बुद्धिवाले लोग माँ यशोदाको प्राकृत जीवकी भाँति त्रिगुणमयी मायामें मुग्ध कहकर भ्रान्त धारणा करते। परन्तु वैष्णवी मायाका वर्णन होनेसे स्पष्ट हो जाता है कि वे प्राकृत जीवकी भाँति त्रिगुणमयी मायासे मुग्ध नहीं हैं। वे विष्णुकी स्वरूपशक्तिरूपा मायासे मुग्ध हैं। अन्तरङ्गा और बहिरङ्गा भेदसे माया

दो प्रकारकी है। अन्तरङ्गा माया भक्तोंको मुग्धकर उन्हें भगवान्‌के साथ ममता-सूत्रमें आबद्धकर लीलामाधुर्यका आस्वादन कराती हैं। और बहिरङ्गा माया कृष्ण-विमुख जीवोंको मुग्धकर स्त्री, पुत्र, देह-गेह आदिके साथ ममता-सूत्रमें बाँधकर संसार-दुःखका भोग कराती हैं। अतएव बहिर्मुख जीवोंकी भाँति श्रीकृष्णकी मैया यशोदाजीका बहिरङ्गा मायाके साथ सम्बन्ध हुआ है, यह किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं है।

‘माया दम्भे कृपायाञ्च’—विश्वप्रकाश अभिधानसे जाना जाता है—‘माया’ शब्दका अर्थ ‘कृपा’ है। श्रीवैष्णव-तोषणीकारने ‘इत्थं विदित तत्त्वायां’ आदि श्लोकस्थित ‘माया’ शब्दकी व्याख्यामें कहा है—‘मायां तद्विषयां दयामेव व्यतनोत्’।

श्रीकृष्णके मुख-विवरमें विश्वका दर्शनकर कृष्ण-जननी यशोदाके, उनके अनिष्ट-आशङ्कासे व्याकुल होनेपर, उस व्याकुलताको देखकर श्रीकृष्णके हृदयमें कृपाका उदय हुआ। माँकी व्याकुलता देखकर कृष्ण भी व्याकुल हो गये तथा बारम्बार मैया-मैया कहकर पुकारने लगे। कृष्णकी इस कृपाशक्तिके आविर्भावसे उनकी ऐश्वर्यशक्ति अन्तर्हित हो गयी। उस समय श्रीकृष्णके मुख-विवरमें प्रकाशित विश्वका दृश्य विलुप्त हो गया। जिससे माँ यशोदा भी पुत्रस्नेहमें मुग्ध हो गयीं।

इस प्रकार श्रीकृष्णकी अनन्त शक्तियोंमें उनकी कृपाशक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। इस कृपाशक्तिका आविर्भाव होनेसे दूसरी कोई भी शक्ति कार्यकरी नहीं होती। कृपाशक्तिके प्रभावसे ही भगवान् स्वतन्त्र होकर भी भक्तके अधीन हो जाते हैं। उनकी कृपाशक्तिकी महिमा वर्णनातीत है। श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यशक्तिके विकासमें माँ यशोदा उनके मुख-विवरमें विश्व दर्शनकर ममताकी गाँठ खोलना चाहती थीं, परन्तु कृपाशक्तिके विकाससे ऐश्वर्यशक्तिके द्वारा प्रदर्शित विश्व अदृश्य हो गया। जिससे माँ यशोदाका ममताका बन्धन पहलेसे भी अधिक सुदृढ़ हो गया। तब उन्होंने पुत्रस्नेहमें विवश होकर पुत्रको गोदमें लेनेके लिए हाथ बढ़ाये और श्रीकृष्णने सर्वेश्वर होकर भी उस कृपाशक्तिकी प्रेरणासे माँ यशोदाकी इच्छाके अनुगत होकर गोदीमें जानेके लिए हाथ बढ़ाया एवं सर्वव्यापी होकर भी उनकी गोदमें आ गये।

वात्सल्यप्रेममें कृष्ण-पालिका गोपी यशोदाके अपने करोड़ों प्राणप्रिय पुत्रको गोदमें धारण करनेपर उनके समुच्छलित वात्सल्य-प्रेममें कृष्णके मुखमें विश्व-दर्शनकी स्मृति चिरकालके लिए विलुप्त हो गयी। तब वे श्रीकृष्णको कभी गोदमें, कभी वक्षःस्थलमें धारणकर और मुँहपर सैकड़ों बार चुम्बन करके भी तृप्त नहीं हो सकीं। वात्सल्यप्रेम-सिन्धु उच्छलित होनेसे उनका हृदय प्लावित हो गया और वे श्रीकृष्णको स्तन दानकर दाहिने हाथसे उनके अङ्गका मार्जन एवं निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी मुख-माधुरीका आस्वादन करने लगीं ॥ ४३-४५ ॥

श्रीराजोवाच—

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।

यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—श्रीराजा (महाराज परीक्षित् बोले) ब्रह्मन् (हे ब्रह्मन्!) नन्दः (नन्द महाराज) हरिः यस्याः स्तनं पपौ (श्रीहरिने जिसका स्तनपान किया) महाभागा यशोदा च (और वह महाभाग्यशाली यशोदाका) महोदयं (महान् उदय जिससे) एवं (इस प्रकार) (उन्होंने) किं श्रेयः (कौन-सी तपस्या) अकरोत् (पूर्व कालमें की है) ॥ ४६ ॥

अनुवाद—राजा परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! नन्दबाबाने ऐसा कौन-सा बड़ा मङ्गलमय साधन किया था? और महा भाग्यवती यशोदादेवीने भी ऐसी कौन-सी तपस्या थी, जिसके कारण स्वयं-भगवान्ने अपने मुखसे उनका स्तनपान किया ॥ ४६ ॥

सारार्थदर्शिनी—ऐश्वर्यदर्शनश्रवणाभ्यामपि तस्याः प्रेमदाढ्यमाकर्ण्य कर्मिप्रभृतिभ्यो भक्तेभ्यश्चाभिव्यज्यमानमुत्कर्षञ्च जानन्नितिविस्मयेन पृच्छति—नन्द इति। महान् उदयः फलं यस्य तत्। महाभागेति नन्दादपि तस्याः श्रेयोऽधिकमभिप्रेति ॥ ४६ ॥

भावानुवाद—ऐश्वर्यका दर्शन और श्रवण करके भी श्रीयशोदाके प्रेमकी इतनी दृढ़ता सुनकर और कर्मि आदि तथा भक्तोंसे भी उनका अधिक प्रकाशमान उत्कर्ष जानकर महाराज परीक्षित्ने अति विस्मयके साथ पूछा—‘नन्दः किमकरोत्’ आदि। गोपराज नन्द ‘महोदय’ अर्थात् महान् सौभाग्यशाली हैं। उन्होंने ऐसा महान् पुण्यजनक कौनसा कार्य

किया? और 'महाभागा'—महाभाग्यवती श्रीयशोदाजी—नन्द महाराजसे भी अधिक सौभाग्यवती हैं, उनका पुण्यबल अधिक है, क्योंकि भगवान् श्रीहरिने उनका स्तनपान किया ॥ ४६ ॥

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।

गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—(जिनसे प्रसन्न होकर भगवान् अवतीर्ण हुए हैं) (ऐसे वे) पितरौ (देवकी और वसुदेव) यत् कृष्णोदारार्भकेहितम् (कृष्णके प्रशस्त और उदार बाललीला चरित) न अन्वविन्देतां (प्राप्त नहीं कर सके) कवयः (विद्वान्गण) अद्यापि लोकशमलापहं (आज भी समस्त लोकोंके कलि-कल्मष दूरकारी) यत् (कृष्णचरित) गायन्ति (कीर्तन करते हैं) (ऐसे यशोदा और नन्द महाराजने निश्चित ही कोई शुभ आचरण किया) ॥ ४७ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका यह बाल-चरित कलि-कल्मषका नाश करनेवाला है। यह इतना पवित्र है कि त्रिकालदर्शी ज्ञानीपुरुष आज तक इसका श्रवण-कीर्तन करते रहते हैं। देवकी एवं वसुदेवजी भी श्रीकृष्णकी जिन उदार बाल्यलीलाओंको देख तक न पाये, उन्हींका आस्वादन करके नन्द-यशोदा परम आनन्दको प्राप्त कर रहे हैं। अतः यशोदाजी और नन्द महाराजने ऐसा कौन-से शुभ आचरण किये थे? ॥ ४७ ॥

सारार्थदर्शिनी—ननु, 'पीतशेषं गदाभृतः' (श्रीमद्भा० १०/८५/५५) इति वचनाद्देवक्या अपि स्तनं पपावित्यत आह—पितरौ अस्मत्कुले पितृत्वेन ख्यातौ देवकीवसुदेवौ, कृष्णस्य उदारमतिमुखप्रदमतिमहच्च, अर्भकेहितं बालचरित्रं, न अन्वविन्देतां चक्षुरादिभिरास्वादयितुं नालभताम्। उदारपदेन राममातृत्वाभिमानिनी रोहिणी वत्साहरणलीलाप्राप्तमातृभावा गोप्यश्च व्यावृत्ताः, यत् अर्भकेहितम् ॥ ४७ ॥

भावानुवाद—यदि कहो कि—देखो, 'पीतशेषं गदाभृतः' अर्थात् श्रीकृष्णका पिया हुआ देवकीका स्तनपानकर देवकीके गर्भसे उत्पन्न स्मर आदि मरीचिके पुत्रोंने देवलोक प्राप्त किया था—आदि वचनोंसे स्पष्ट है कि कृष्णने देवकीका स्तन भी पान किया था। इसमें जिज्ञासा

कर रहे हैं—क्या श्रीकृष्णके माता-पिताके रूपमें प्रसिद्ध देवकी-वसुदेवने अति सुखप्रद बाललीलाओंका नेत्र आदिके द्वारा आस्वादन किया था। यहाँ 'उदार' पदके द्वारा बलरामके मातृत्व अभिमानिनी रोहिणीदेवी एवं वत्सहरणलीलामें मातृभाव-प्राप्त गोपियोंने कृष्णकी बाल्यलीलाका दर्शन किया था। 'यत्' लोगोंके पापनाशक बाललीलाओंका ज्ञानिगण आज तक भी कीर्तन करते हैं॥ ४७॥

श्रीशुक उवाच—

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया।

करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह॥ ४८॥

अन्वयः—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेवजीने कहा—) वसूनां प्रवरः (वसुओंमें सर्वश्रेष्ठ) द्रोणः (द्रोणने) धरया (धरा नामकी) भार्यया सह (पत्नीके साथ) ब्रह्मणः (पितामहके) आदेशान् करिष्यमाणः (गो-पालन-आदि-रूप आदेशका पालन करते हुए) तं (ब्रह्माको) उवाच ह (निवेदन किया)॥ ४८॥

अनुवाद—श्रीशुकदेवजीने कहा—नन्दबाबा पूर्वजन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे उनका नाम द्रोण था और उनकी भार्याका नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्माजीके आदेशका पालन करनेकी इच्छासे उनसे कहा॥ ४८॥

सारार्थदर्शिनी—कृष्णावतारस्य तदीय बाल्यलीलानाञ्च नित्यत्वादेव नन्दयशोदयोर्नित्यसिद्धत्वं स्पष्टमिति। नाप्येतादृशः प्रेमा साधनसिद्धो भवितुमर्हतीत्यपि जानतोऽपि राज्ञोऽस्य प्रश्नोऽयं यथा भक्ताव्युत्पन्नस्येत्यतस्तत्र ममाप्युत्तरं तादृशी भवितुमर्हतीति प्रष्टरि राजन्युदासीनमना एवाह—द्रोण इति। आदेशान् गोपालनादिलक्षणान् तं ब्रह्माणम्॥ ४८॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण-अवतार एवं तदीय बाल्यलीलासमूहके नित्यत्वके कारण श्रीयशोदा मैया और नन्दबाबा नित्यसिद्ध हैं—यह स्पष्ट है। ऐसा प्रेम साधनसिद्धोंमें कदापि नहीं हो सकता है। यह जानकर भी परीक्षितजीने ऐकान्तिक भक्तिके विषयमें अनभिज्ञ व्यक्तिकी भाँति प्रश्न किया और श्रीशुकदेवजीने भी विचार किया कि जैसा प्रश्न है, वैसा ही उत्तर होना चाहिये। ऐसी भावनाकर प्रश्नकर्ता

राजाके प्रति श्रीशुकदेवजीने उदासीन भावसे कहा—‘द्रोणः’ आदि अर्थात् वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोणने अपनी पत्नी धराके साथ गोपालन-रूप ब्रह्माका आदेश पालनमें तत्पर होकर उनसे कहा ॥ ४८ ॥

जातयोनौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।

भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—भुवि (पृथिवीमें) जातयो (जन्म लेनेपर) नौ (हम दोनोंका) विश्वेश्वरे (निखिल आत्मा) महादेवे (देवदेव) हरौ (विष्णुमें) परमा भक्तिः (श्रेष्ठ भक्ति) स्यात् (हो) यया (जिस भक्तिके द्वारा) लोके (संसारमें) अञ्जः (अति सहज रूपसे) दुर्गतिं (समस्त प्रकार दुःखोंसे) तरेत् (जीव उद्धार लाभ कर सकें) ॥ ४९ ॥

अनुवाद—हे देव ! जब परवर्तीकालमें हम पृथिवीपर जन्म ग्रहण करें, तो समस्त ईश्वरोंके अधीश्वर विश्वेश्वर देवादितेव श्रीहरिके चरणोंमें हमें परमा भक्ति प्राप्त हो जिस भक्तिके प्रभावसे जीव पृथ्वीमें अनायास ही समस्त दुःखोंको पार कर जायें—ऐसा वरदान दीजिये ॥ ४९ ॥

सारार्थदर्शिनी—जातयोरित्यनेन भाविनि जन्मनीति लभ्यते । महान् देवः क्रीडा यस्य तस्मिन् । भुवि स्थितो यो विश्वेश्वरस्तस्मिन्, विश्वेपीश्वरा यत्र तस्मिन्; ‘परावरेणो महदंशयुक्त’ (श्रीमद्भा० ३/२/१५) इत्युद्धवोक्तेः पूर्णे इत्यर्थः । हरौ आवयोर्मनश्चौरे । परमेति—‘फलेन फलकारणमनुमीयते’ इति न्यायात् स्वहृदयविचारिता पितृत्वोचितवात्सल्यमयीत्यर्थः । ययास्मद्भक्त्या भविष्यन्त्या तच्छ्रवणकीर्तनादिना अन्योऽपि सर्वलोकः दुर्गतिं तरेदिति शुद्धप्रेमभक्तिप्रार्थनया तज्जन्मनि तयोस्तदनुरूपा साधनभक्तिरप्येका शुद्धैवासीदित्यवगम्यते, न तु पृश्निषुतपसोरिव भक्तिस्तपोयोगौ चेति पूर्वं व्याख्यातमेव तत्प्रसङ्गे तत्फलम् ॥ ४९ ॥

भावानुवाद—‘जातयोः’—इसके द्वारा भावी जन्म समझा जाता है अर्थात् अगले समयमें हमारे पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करनेपर भगवान् विश्वेश्वर श्रीहरिमें हमारी परमा भक्ति हो, यह वर प्रदान करें। जैसे, उद्धवजीने भी कहा है—‘परावरेणो महदंशयुक्त’ अर्थात् ‘महत्तत्त्वके अंशसे युक्त होकर स्वयं नित्यसिद्ध भगवान् जन्म ग्रहण करते हैं, इससे पूर्ण हैं।’ जो स्वयं नित्यसिद्ध पूर्णतम-स्वरूप हैं, ऐसे श्रीहरिमें

हमारी परमाभक्ति अर्थात् वात्सल्य-उचित प्रेमभक्ति प्राप्त हो। 'यया'—हमारी जिस भक्तिके प्रभावसे भविष्यमें आनेवाले सभी भक्त श्रवण-कीर्तन आदिके द्वारा अनायास ही भव-सागरको पार हो जायँ। इस प्रकार शुद्ध प्रेमभक्तिकी प्रार्थना करनेसे उनकी उस जन्ममें साधनभक्ति शुद्ध रूपमें थी, परन्तु उनकी यह रागमयी भक्ति पृश्नि और सुतपाकी भाँति तपस्या और योगयुक्त नहीं है तथा ऐश्वर्य-मिश्रा भी नहीं है। यह पहले वर्णन किया गया है ॥ ४९ ॥

अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः।

जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥ ५० ॥

अन्वयः—सः भगवान् (वह महाभागा) द्रोणः (द्रोणको) अस्तु इति उक्तः (जो तुम्हारे अभिलषित है, वही हो ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा कहनेपर) व्रजे (व्रजपुरीमें) महायशाः (विपुल कीर्ति) नन्द इति ख्यातः (नन्द नामसे प्रसिद्ध) जज्ञे (प्रकट हुए) सा (उनकी पत्नी) धरा च यशोदा अभवत् (धराने यशोदाके रूपमें जन्म ग्रहण किया) ॥ ५० ॥

अनुवाद—इसपर ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर वर प्रदान किया। जिससे महाभाग्यवान् द्रोण व्रजपुरमें महायशस्वी नन्दके रूपमें प्रसिद्ध हुए और उनकी पत्नी धराने यशोदादेवीके रूपमें जन्म लिया ॥ ५० ॥

सारार्थदर्शिनी—स एव द्रोणो व्रजे इह नन्द इति ख्यातः। सा धरैवेह यशोदेति नित्यसिद्धयोर्यशोदा-नन्दयोः साधनसिद्धौ धराद्रोणौ प्रविष्टावभूतामित्यर्थः ॥ ५० ॥

भावानुवाद—'स द्रोण'—वही द्रोण ही व्रजमें नन्द नामसे प्रसिद्ध हुए और 'सा धरा'—उस धराने यशोदा नामसे जन्म ग्रहण किया है। नित्यसिद्ध नन्द और यशोदामें—द्रोण और धराका प्रवेश हुआ है ऐसा समझना चाहिये ॥ ५० ॥

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।

दम्पत्योर्नितरामासीद्रोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

अन्वयः—भारत (हे भरतकुल-प्रवर!) ततः (अनन्तर) पुत्रीभूते भगवती जनार्दने (पुत्ररूप भगवान् जनार्दनमें) दम्पत्योः (पति-पत्नीका) नितरां भक्तिः आसीत् (अतिशय भक्ति हुई) गोप-गोपीषु च (वस्तुके स्वभावसे गोप-गोपियोंकी भी भगवान्में भक्ति हुई) ॥ ५१ ॥

अनुवाद—हे भरतकुल-तिलक परीक्षित! तदनन्तर नन्द और यशोदाके पुत्रके रूपमें भगवान् जनार्दन प्रकट हुए। समस्त गोप-गोपियोंमें नन्द-यशोदाकी उनके प्रति अधिक भक्ति थी। वस्तुके स्वभावके कारण अन्यान्य सभी गोप एवं गोपियोंकी भी उनके प्रति भक्ति हुई ॥ ५१ ॥

सारार्थदर्शिनी—जनार्दने—गोपीजनान् प्रेम्णा पीडयति, नवनीतचौर्याद्यपद्रवै-रुद्वेजयतीति वा, स्तन्यरसं याचमान इति वा। गोपगोपीषु मध्ये दम्पत्योर्यशोदानन्दयो-र्भक्तिर्नितरामासीदिति गोपाः गोप्यश्चापि द्रोणधरयोरनुवर्तिनस्तादृशसाधनवन्तः पूर्वजन्म-न्यासन्निति ज्ञापितम् ॥ ५१ ॥

भावानुवाद—‘जनार्दने’—पुत्ररूपी भगवान् जनार्दनके प्रति समस्त गोप-गोपियोंमें नन्द-यशोदाका ही अधिकतर प्रेम प्रकाशित हुआ है। यहाँ जनार्दन कहनेसे जो गोपियोंको प्रेम-पीड़ा (विरह) प्रदान करते हैं अथवा चोरी आदिके द्वारा सबको उद्विग्न कर देते हैं। या उनके स्तन-दुग्धकी प्रार्थना करते हैं। ‘दम्पत्योः’—यह कहनेसे गोप-गोपियोंमें पति-पत्नी नन्द-यशोदाकी सबसे अधिक भक्ति थी। इससे यह ज्ञात हुआ कि गोप-गोपियाँ भी द्रोण और धराके अनुगत होकर पूर्व जन्ममें उसी प्रकार साधन-परायण थे ॥ ५१ ॥

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः।

सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अन्वयः—विभुः कृष्णः सहरामो (विभु कृष्णने रामके सहित) व्रजे वसन् (व्रजमें वास करते हुए) ब्रह्मणः आदेशं (ब्रह्मा द्वारा द्रोण-धराको दिये गये वरको) सत्यं कर्तुं (सत्य करनेके लिए) स्वलीलया (सर्वजन मनोहर बाललीलाओंके द्वारा) तेषां (नन्द महाराज आदिका) प्रीतिं चक्रे (आनन्द-वर्द्धन करने लगे) ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके अष्टम अध्यायका
अन्वयः समाप्त ।

अनुवाद—ब्रह्माजीकी बातको सत्य करनेके लिए स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ व्रजमें वासकर अपनी मनोहर बाललीलाओंसे समस्त व्रजवासियोंको परम आनन्द प्रदान किया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके अष्टम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

सारार्थदर्शिनी—आदेशं परमाभक्तिरस्त्विति वरम् । प्रीतिं चक्रे
प्रेमाणमुत्पादयामास ॥ ५२ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम् ।

दशमस्याष्टमोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
अष्टमोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी टीका समाप्ता ॥ ८ ॥

भावानुवाद—‘आदेशं’—ब्रह्माजीने द्रोण और धराको वर दान दिया था कि तुम लोगोंकी भगवान्में परमाभक्ति हो। उस वरदानको सिद्ध करनेके लिए भगवान् श्रीकृष्णने बलदेवके साथ व्रजमें निवास करते हुए अपनी लीलाओंके द्वारा उन सबका आनन्द-वर्द्धन किया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके अष्टम अध्यायकी श्रील
विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका
भावानुवाद समाप्त ।

भावप्रकाशिका वृत्ति—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितके निकट श्रीकृष्णके मुख-विवरमें माँ यशोदाका विश्वरूप-दर्शन, उससे कृष्णके अनिष्टकी आशङ्का, श्रीकृष्णके साथ ममताका बन्धन छिन्न करनेके लिए श्रीनारायणके निकट प्रार्थना, श्रीकृष्ण द्वारा वैष्णवी मायाका विस्तार, माँ यशोदाका विश्वरूप दर्शनकी स्मृतिका लोप और श्रीकृष्णको गोदीमें उठाकर स्तनपान आदिका वर्णन किया। अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीकृष्णकी इस परम अद्भुत बाल्यलीलाकथाका श्रवणकर परम विस्मित एवं चमत्कृत होकर महाराज परीक्षितजीने श्रीशुकदेवसे प्रश्न किया—हे ब्रह्मन्! गोपराज नन्दने जन्मान्तरमें ऐसी कौन-सी तपस्या की थी एवं परम भाग्यवती यशोदाने भी जन्मान्तरमें कौन-सी तपस्या की थी, जिससे स्वयं-भगवान् श्रीहरि उनका स्तनपान करनेमें भी कुण्ठित नहीं हुए?

श्रीकृष्णके मुख-विवरमें माँ यशोदाके विश्वरूप-दर्शनसे परम विस्मयापन्न होनेपर भी महाराज परीक्षितजीने यह सुनकर यशोदाका जन्मान्तरीण तपस्याकी बात सुननेकी चेष्टा नहीं की, परन्तु कृष्णके द्वारा स्तनपानकी बात सुनकर महाराज परीक्षितजी माँ यशोदाके जन्मान्तरीण सुकृतिका अनुसन्धान किये बिना स्थिर नहीं रह सके। इससे स्पष्ट समझा जाता है कि महाराज परीक्षित माँ यशोदाके विश्वरूप-दर्शनकी अपेक्षा श्रीकृष्णको स्तनपान करानेकी बात सुनकर ही अधिकतर विस्मित और चमत्कृत हुए। श्रीकृष्णके ऐश्वर्यके प्रभावसे उनके मुँहमें विश्वदर्शनकी अपेक्षा वात्सल्यप्रेमके प्रभावसे उनके मुँहमें स्तन दान करना अधिकतर विस्मयकर हुआ है—इसमें बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्ण सबके आधार हैं, उनमें अनन्त करोड़ विश्व-ब्रह्माण्डोंका समावेश स्वतःसिद्ध है एवं उनके ऐश्वर्य प्रभावसे वह दृश्य होना भी कुछ कठिन नहीं है। परन्तु वात्सल्यप्रेम-सिन्धुके अतल-तलमें श्रीकृष्णके असमोर्ध्व परम ऐश्वर्यको डुबोकर नित्यतृप्त श्रीकृष्णको अतृप्तकर स्तनपान करानेसे उनकी तृप्ति विधान करना—इसकी सम्भावना करना भी परम विस्मयकारी है। विशेषकर एकमात्र माँ यशोदाके अतिरिक्त कोई भी आज तक श्रीकृष्णको स्तनपान करानेमें समर्थ नहीं हुई है। श्रीमद्भागवत दशम-

स्कन्धके ८५ अध्यायमें देखा जाता है कि श्रीकृष्णने, कंसके हाथोंसे मारे गये अपने अग्रजोंको लाकर देवकीको दिखाया था एवं उस समय श्रीकृष्णके अग्रजोंने देवकीके कृष्णभुक्त स्तनका पानकर दिव्यधाममें गमन किया था। इससे देखा जाता है कि श्रीकृष्णने देवकीका भी स्तन पान किया था। परन्तु श्रीकृष्ण मथुरामें प्रकट होनेके पश्चात् ही गोकुलमें आ गये एवं ग्यारह वर्षकी वयसमें पुनः मथुरामें गये। अतएव श्रीकृष्णने अपने ग्यारह वर्षके पश्चात् कभी देवकीका स्तनपान किया था—ऐसा अनुमान होता है। बाल्यकालमें मातृस्तन ही बालकके लिए एकमात्र जीवन-उपाय होता है। ग्यारह वर्षके पश्चात् मातृस्तनके साथ बालककी कोई बाध्य-बाधकता नहीं रहती है या कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। अतएव उस समयके स्तनपानका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उस समयका स्तन पान करना स्वेच्छाकृत एवं अप्रयोजनीय होता है। किन्तु श्रीकृष्णने जिस बचपनमें माँ यशोदाका स्तन पान किया, वह बाल्यलीलामें नितान्त आवश्यक एवं बाध्यतामूलक है। श्रीमद्भागवतके १३वें अध्यायमें देखा जाता है कि ब्रह्माके द्वारा श्रीकृष्णके सखा एवं गोवत्सको हरण करनेपर श्रीकृष्णने गोपबालकों एवं गोवत्सोंकी मूर्ति धारणकर व्रजकी गोपियोंकी तथा गौओंकी मनोवासना पूर्ण की थी। अतएव वह भी माँ यशोदाके स्तनपानकी भाँति श्रीकृष्णके लिए प्रयोजनीय या बाध्यतामूलक नहीं है। अतएव माँ यशोदाकी भाँति श्रीकृष्णको स्तनपान करानेका अधिकार दूसरी कोई प्राप्त नहीं कर सकी। माँ यशोदाके इस वात्सल्यप्रेमके सर्वश्रेष्ठ अधिकारकी बात सुनकर ही महाराज परीक्षितजीने विस्मित होकर 'इस अधिकारको प्राप्त करना'—यशोदा माताके कौन-से साधनके बलसे सम्भव हुआ है, यह सोचकर श्रीशुकदेवजीके निकट प्रश्न उत्थापन किया।

यशोदा मैयाने जो श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त किया है—इसका क्या कारण है—यह जाननेके लिए परीक्षितजीने विस्मित होकर पूछा। क्योंकि श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ हैं, उन सभी लीलाओंमें उनकी बाललीला अति उदार लीला है। इस लीलामें उन्होंने 'जो दूसरी लीलाओंमें नहीं प्रदान की' ऐसी अदेय वस्तुका भी पात्र-अपात्रका

विचार न करके सबको दान दिया। बहुत प्रयास करके तीव्र साधना करके श्रीकृष्णके निकट स्वर्गादि भोग, अणिमादि अष्ट सिद्धि या मुक्ति प्राप्तिके स्थानपर भक्ति लाभ करना बहुत कठिन है। परन्तु श्रीकृष्णकी बाललीलामें देखा जाता है कि उन्होंने पूतना राक्षसीको भी धात्री जैसी जननी-गति प्रदान की। अतएव श्रीकृष्णकी बाललीलाकी भाँति उदार लीला देखने-सुननेको नहीं मिलती है। किन्तु कैसा आश्चर्य है कि वसुदेव और देवकी श्रीकृष्णके पिता-माताके रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। परन्तु वे भी श्रीकृष्णकी इस बाललीलारसका आस्वादन नहीं कर सके। श्रीकृष्ण ब्रजमें नन्द-यशोदा एवं ब्रजवासी गोप-गोपियोंके निकट लीला विनोद करनेके पश्चात् ग्यारह वर्षकी अवस्थामें देवकी-वसुदेवके निकट आये। श्रीकृष्णकी इस बाललीलाका वर्णन कितना करूँ? जगत्-स्रष्टा ब्रह्मा सृष्टिके प्रथम प्रभातसे आज तक उन लीलाओंका कीर्तन कर रहे हैं। श्रीकृष्णकी यह परम उदार लीला ही कलिहत जीवोंके कलिदोष निवारणका एकमात्र उपाय है। इस परम उदार बाललीलाका जो आस्वादन कर रहे हैं, न जाने वे गोपराज नन्द और उनकी गृहिणी यशोदाने जन्म-जन्मान्तरमें कितनी साधना की थी—जिसके परिणाम-स्वरूप उन्होंने इस परम सौभाग्यको प्राप्त किया और जगत्को भी कृतार्थ कर दिया। महाराज परीक्षितजीके इस परम आग्रह एवं आवेगमय प्रश्नको सुनकर परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवजीने नन्द और यशोदाके जन्मान्तरीय साधनाके विषयमें कहना प्रारम्भ किया—यद्यपि नन्द-यशोदा श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध पिता-माता हैं, साधन करके उन्होंने श्रीकृष्णमें वात्सल्यप्रेम प्राप्त नहीं किया, अपितु वे श्रीकृष्णके ही विशुद्धसत्त्वके धनीभूत विग्रह हैं।

पिता माता स्थान गृह शय्यासन आर।

ए सब कृष्णेर शुद्ध सत्त्वेर विकार॥

फिर भी महाराज परीक्षितजीके साधन-विषयक प्रश्नका उत्तर देनेके लिए श्रीशुकदेवजीने द्रोण और धराकी साधनाके विषयमें कहना प्रारम्भ किया। ये द्रोण और धरा नन्द-यशोदाके अंश हैं।

प्रेमका स्वभाव यही है कि प्रेमी अपने विषयका सभी प्रकारसे आस्वादन करनेके लिए सदा व्याकुल रहते हैं। वात्सल्यप्रेमके आधार

नन्द और यशोदा अपने वात्सल्यप्रेमके विषय कृष्णको नित्यसिद्ध अवस्थामें आस्वादन करके तृप्ति लाभ नहीं कर पाये, इसलिए वे अंश रूपमें द्रोण और धरा होकर साधना करते हुए श्रीकृष्णको आस्वादन करनेमें उत्सुक हैं।

कृष्ण-प्राप्तिके लिए उत्कण्ठा एवं उसके वशवर्ती होकर ही साधनानुष्ठान आदि सभी भावोंसे प्रेमवान् भक्त अपने प्रेमके विषय श्रीभगवान्का आस्वादनकर तृप्ति लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु प्रेमके अतृप्ति-स्वभाव हेतु वे किसी भी प्रकारसे तृप्ति लाभ न करके सदा सभी प्रकार अपूर्णता लेकर कृष्णरसका आस्वादन करते हैं। कर्म, योग, ज्ञान आदिके साधक सदा अपनी साधनाकी सिद्धि लाभ करनेके लिए लालायित रहते हैं। परन्तु सिद्धि प्राप्ति होनेपर भूलकर भी साधनका अनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। किन्तु प्रेम साधनकारी शुद्धभक्तोंका स्वभाव ऐसा नहीं है, उनके साधनके प्रारम्भसे लेकर साधनाकी सिद्धि प्रेम प्राप्ति तक और साक्षात् सेवा-अधिकार प्राप्ति तक साधन समान रूपसे आदरणीय और प्रार्थनीय है। इसलिए वात्सल्यप्रेमके आधार नन्द और यशोदा नित्यसिद्ध प्रेममें नित्य सेवा-अधिकार पाकर भी साधनका अनुष्ठान करनेके लिए लालायित रहते हैं। एवं द्रोण-धराके रूपमें अवतीर्ण होकर पुत्रभावसे भगवान्को पानेके लिए तीव्र साधना करते हैं।

महाराज परीक्षितजीको नन्द और यशोदाके जन्मान्तरीय साधन अनुष्ठानके विषयमें सुननेके लिए उत्कण्ठित देखकर श्रीशुकदेवने श्रीकृष्णकी विशुद्धसत्त्वकी मूर्ति नित्यसिद्ध पिता-माता नन्द-यशोदाके अंशने द्रोण और धराके रूपमें अवतीर्ण होकर जिस साधनका अनुष्ठान किया था—उसीका ही वर्णन करना प्रारम्भ किया।

श्रीशुकदेवजीने कहा—श्रीमद्भागवत षष्ठ-स्कन्धमें छठवें अध्यायमें वर्णन है कि—

वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु।

द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वास्तुर्विभावसुः ॥

प्रचेताओंकी 'वसु' नामकी कन्याके गर्भसे द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु और विभावसु नामके आठ पुत्रोंने जन्म

ग्रहण किया एवं वे भी 'वसु' नामसे विरव्यात हुए। इन अष्ट वसुओंमें श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध पिता नन्दके अंश द्रोण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रह्माने इस वसु-प्रवर द्रोणको पृथ्वीपर जन्म ग्रहणकर गोसेवा एवं श्रीकृष्णके जनक वसुदेवके साथ मित्रता स्थापन करनेके लिए आदेश दिया था। ऐश्वर्य-मिश्रित वात्सल्यप्रेममें कृष्णसेवारसका आस्वादन करनेके लिए नन्दके अंशविशेष मथुरामें वसुदेव रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।

वसु-प्रवर द्रोणने अपनी पत्नी धराके साथ ब्रह्माका आदेश पालनमें कृतसङ्कल्प होकर ब्रह्माके निकट प्रार्थना की—हमारे पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करनेपर लीलामाधुरीमें सर्वमनोहर विश्वनियन्ता भगवान् श्रीहरिमें हमें प्रेमभक्ति प्राप्त हो।

यद्यपि वात्सल्यप्रेमवान नन्दके अंश वसु-प्रवर द्रोणका श्रीकृष्णमें वात्सल्यप्रेमकी प्रार्थना करना स्वाभाविक है, फिर भी श्रीकृष्णके ऐश्वर्यज्ञाननिष्ठ मुनियोंके सङ्गके कारण विशुद्ध वात्सल्यप्रेमवान नन्दके अंश द्रोणका भी साक्षात् सम्बन्धमें वात्सल्यप्रेमसे कृष्णसेवा प्राप्तिके लिए वर प्रार्थना करनेमें संकोच आ गया था। इसलिए उनकी वात्सल्यप्रेमसे कृष्णसेवा-प्राप्तिकी मानसिक अभिलाषा रहनेपर भी उन्होंने स्पष्ट रूपसे उसे प्रकाशित न करके वचन-भङ्गिसे प्रकाशित किया है।

ब्रह्माजी द्रोणके मनोगत भावको समझ गये एवं 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थनाके अनुरूप वर प्रदान किया। उसके पश्चात् समयपर वसु-प्रवर द्रोणने नन्द-रूपमें एवं धराने यशोदा-रूपमें ब्रजमें जन्म ग्रहण किया।

नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेमवान नन्दके अंश वसु-प्रवर द्रोणका भी श्रीकृष्णमें नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेम है—इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु प्रेमके अतृप्त स्वभाव-हेतु परम उत्कण्ठामें द्रोणने ब्रह्माके निकट ऐसे वरकी प्रार्थना की थी—प्रेमवान भक्तका स्वभाव यह है कि उनका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण रहनेपर भी वे प्रेमाभिमानी नहीं होते। प्रेमके स्वभावसे दैन्य भाव-हेतु प्रेमी व्यक्ति सबसे कृष्णभक्तिकी प्रार्थना करते हैं। भक्त-चूड़ामणि ध्रुवने भी कुबेरके निकट इस प्रकारके वरकी प्रार्थना की थी। 'गोविन्दके चरणोंमें मुझे भक्ति प्राप्त हो।' अखिल

ब्रह्माण्डपति भगवान् जिनके पुत्र होकर जन्म ग्रहण करते हैं, ऐसे अति उत्तम पुत्रकी प्राप्तिसे उसकी महिमाकी वृद्धि होती है। अतएव इस कामनाके कारण पुत्र-रूपमें श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी लालसा होना असम्भव नहीं है। इसलिए वसु-प्रवर द्रोणने कृष्णको पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेकी वर-प्रार्थना न करके लीला-माधुर्यमें सर्वमनोहर श्रीहरिमें परमाभक्ति अर्थात् वात्सल्यप्रेमोचित सेवाकी प्रार्थना की।

सकाम साधक और शुद्धभक्तके अभीष्ट वर-प्रार्थनामें बहुत अन्तर रहता है। सकाम साधक केवलमात्र अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए वर-प्रार्थना करते हैं, परन्तु शुद्धभक्त अपने लिए कुछ भी प्रार्थना नहीं करते हैं। उनका मनोगत भाव यह होता है कि श्रीकृष्ण वात्सल्यरस आस्वादन करें और 'हमारे प्रार्थित वरसे जगत्का कल्याण हो।'।

शुद्धभक्त-चूड़ामणि द्रोणने भी ब्रह्माके निकट कृष्णभक्तिरूपी वरकी प्रार्थना करते हुए कहा था—'यथाञ्जो दुर्गतिं तरेत्'—हमें ऐसी कृष्णभक्ति प्राप्त हो, जिससे उस भक्ति-गाथाको सुनकर जगत्-जीव अनायास ही कृतार्थ हो जायें।

ब्रह्मादि देवगण भी भगवान्की सेवाकी प्रार्थना करते हैं—इसलिए भगवान्का नाम 'जनार्दन' है। (जनैः ब्रह्मादिभिः अर्हते याच्यते न तु साक्षात् प्राप्यते इति जनार्दनः) ये जनार्दन किसीके भी पुत्र नहीं होते हैं, वे सबके पिता हैं। परन्तु नन्द-यशोदाके वात्सल्यप्रेममें वे चिरकाल नन्द और यशोदाके नन्दन हैं। वसु-प्रवर द्रोण नन्दके अंश हैं—यह ब्रह्माजीको अविदित नहीं है। द्रोणके ब्रह्माके निकट वर-प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजीने विचार किया—श्रीकृष्ण चिरकाल ही इनके पुत्र हैं, फिर भी प्रेम-सेवाकी उत्कण्ठासे मुझसे वरकी प्रार्थना कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने द्रोणकी प्रार्थनामें असम्मति प्रकाश न करके 'तथास्तु' कहा।

वसु-प्रवर द्रोण और उनकी पत्नी धराके नन्द और यशोदाके रूपमें व्रजमें जन्म ग्रहण करनेपर उनका अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीभगवान्में नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेम प्रकाशित हुआ एवं उनके सङ्ग

और आनुगत्यके कारण ब्रजवासी गोप और गोपियोंको भी वात्सल्यप्रेममें कृष्ण-सेवाधिकार प्राप्त हुआ।

इस प्रकार भगवान् आदि-गुरु ब्रह्माजीके वरकी सत्यताकी रक्षा और घोषणा करनेके लिए उनके नित्यसिद्ध पिता-माता नन्द-यशोदाके पुत्र-रूपमें अवतीर्ण होकर बलदेव-सहित नन्दब्रजमें वास करते हुए बहुत प्रकारकी बाललीलाओंके द्वारा नन्द-यशोदा एवं ब्रजवासी गोप-गोपियोंका प्रीति-विधान करने लगे ॥ ४६-५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके अष्टम अध्यायकी
भावप्रकाशिका वृत्ति समाप्त।

श्लोक-सूची

[श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध (अध्याय १-८)]

अ

अग्नयश्च	१०/३/४	अनोभिरन-	१०/५/३२
अग्नेर्यथा दारु-	१०/१/५१	अन्धकूपगभीराक्षम्	१०/६/१६
अग्रतो भविता	१०/१/२४	अन्नाद्यवासः	१०/७/५
अघृष्टजानुभिः	१०/८/२६	अन्याश्च कंस-	१०/२/७
अङ्गं यस्याः	१०/६/३७	अन्यैश्चासुर-	१०/२/२
अजुष्टग्राम्य-	१०/३/३९	अपि हन्तागत-	१०/८/९
अज्ञानप्रभवाहंधीः	१०/४/२६	अपोथयच्छिला-	१०/४/८
अतिकरुणम्	१०/७/२४	अप्रमेयं बलम्	१०/७/१०
अथ काल	१०/१/५६	अमंसताम्भोज-	१०/६/६
अथ सर्वगुणोपेतः	१०/३/१	अयं त्वसभ्यः	१०/३/२२
अथान्यदपि	१०/७/३	अयं वै तद्वधोपायो	१०/४/४२
अथाहमंशभागेन	१०/२/९	अयं हि रोहिणी-	१०/८/१२
अथैनमस्तौत्	१०/३/१२	अराजके रक्ष्यमाणा	१०/८/१७
अथैनमात्मजम्	१०/३/२३	अर्चिष्यन्ति मनुष्याः	१०/२/१०
अथो अमुष्यैव	१०/८/४०	अर्पयामास	१०/१/५७
अथो यथावत्	१०/८/४१	अलक्षितोऽस्मिन्	१०/८/१०
अदृश्यतानुजा	१०/४/९	अवतीर्य यदोर्वशे	१०/१/३
अदृष्टमात्मनः	१०/५/३०	अवाद्यन्त विचित्राणि	१०/५/१३
अदृष्ट्वान्यतमम्	१०/३/४१	अव्यक्तरावो	१०/७/२८
अद्य वाब्दशतान्ते	१०/१/३८	अव्यादजोऽङ्घ्रि	१०/६/२२
अधःशयानस्य	१०/७/७	अश्वानामयुतं सार्द्धं	१०/१/३१
अनन्तमारोपयत्	१०/६/८	अष्टमाद्युव-	१०/१/६०
अनावृतत्वात्	१०/३/१७	अस्त्वित्युक्तः	१०/८/५०
अनिर्दशान्निर्दशांश्च	१०/४/३१	अस्यतस्ते शर-	१०/४/३३
अनेन सर्वदुर्गाणि	१०/८/१६	अस्यास्त्वामष्टमो	१०/१/३४

अहं ममासौ	१०/८/४२	इति घोरतमाद्	१०/२/२३
अहं सुतो वाम्	१०/३/४१	इति नन्दादयो	१०/५/३२
अहो ते देवकीपुत्राः	१०/५/२९	इति प्रणय-	१०/६/३०
अहो बत	१०/७/३१	इति प्रभाष्य तम्	१०/४/१३
अहो भगिन्यहो	१०/४/१५	इति बालकम्	१०/७/१४
अहो विस्त्रंसितः	१०/२/१५	इति सञ्चिन्तयन्	१०/८/९
आ		इत्थं विदिततत्त्वायाम्	१०/८/४३
आकर्ण्य भर्तुः	१०/४/३०	इत्थं स्त्रीभिः	१०/८/३१
आक्रान्ता भूरि-	१०/१/१७	इत्यभिष्टूय	१०/२/४२
आख्यास्यते राम	१०/८/१२	इत्यात्मानम्	१०/८/२०
आचख्युर्भोज-	१०/४/२	इत्यादिश्य	१०/१/२६
आत्मजाभ्युदय-	१०/७/१६	इत्युक्तः स खलः	१०/१/३५
आत्मनः क्षेमम्	१०/१/४४	इत्युक्त्वाश्रुमुखः	१०/४/२३
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुः	१०/५/९	इत्युक्त्वासीत्	१०/३/४६
आत्मानमिह सज्जातम्	१०/१/६८	इन्द्रियाणि हृषीकेशः	१०/६/२४
आदिष्टा प्रभुणांशेन	१०/१/२५	ई	
आनर्चाधोक्षजधिया	१०/८/२	ईरयन् सुमह-	१०/७/२१
आयुः श्रियम्	१०/४/४६	ईषामात्रोग्र-	१०/६/१५
आरुह्य कृच्छ्रेण	१०/२/३२	उ	
आविरासीद्	१०/३/८	उग्रसेनञ्च पितरम्	१०/१/६९
आविवेशांशभागेन	१०/२/१६	उग्रसेनसुतः कंसः	१०/१/३०
आश्वास्य च	१०/१/२६	उत्थितः कृष्ण-	१०/६/३४
आसन् वर्णास्त्रयः	१०/८/१३	उद्दामकाञ्च्यङ्गद-	१०/३/१०
आसिञ्चन्तो	१०/५/१४	उन्मादा ये	१०/६/२८
आसीनः संविशन्-	१०/२/२४	उपगीयमानमाहात्म्यम्	१०/८/४५
आस्ते प्रतीक्षन्	१०/२/२३	उपगुह्यात्मजामेवम्	१०/४/७
आहूय विप्रान्	१०/५/१	उपलब्धो भवानद्य	१०/५/२४
आहैष मे	१०/२/२०	उपसंहर विश्व-	१०/३/३०
इ		उपस्थितान्तिके	१०/१/१८
इति खरपवन-	१०/७/२४	उपस्थितो निवर्तेत	१०/१/५०

उपाहतोरुबलिभिः	१०/४/११	एषा तवानुजा	१०/१/४५
उपेन्द्र इति	१०/३/४२	ओ	
ऊ		ओघेन व्यूह्यमानानां	१०/५/२५
ऊचुरव्यवसित-	१०/७/९	औ	
ऋ		औत्थानिक-	१०/७/६
ऋषेर्विनिर्गमे	१०/१/६५	क	
ए		क उत्तमःश्लोक-	१०/१/४
एके तमनुरुन्धाना	१०/२/४	कंस एवम्	१०/४/२८
एकदा क्रीडमानास्ते	१०/८/३२	कंसः पापमतिः	१०/८/८
एकदारोहमारूढम्	१०/७/१८	कंसस्तुष्टमना	१०/१/५९
एकदार्भकमादाय	१०/७/३४	कंसेन प्रहिता	१०/६/२
एकायनोऽसौ	१०/२/२७	कच्चित् पशव्यम्	१०/५/२६
एकावशिष्टावरजा	१०/५/२९	कटधूमस्य	१०/६/४१
एतत् कंसाय	१०/१/६४	कथितो वंश-	१०/१/१
एतदन्यच्च सर्वं मे	१०/१/१२	कदाचिदौत्थानिक	१०/७/४
एतद्वां दर्शितम्	१०/३/४४	करिष्यमाण आदेशान्	१०/८/४८
एतद्विचित्रं सह	१०/८/३९	करो वै वार्षिको	१०/५/३१
एवं चेत् तर्हि	१०/४/३१	करोति कर्ण-	१०/७/१
एवं दुर्मन्त्रिभिः	१०/४/४३	कलेवरं परशुभिः	१०/६/३३
एवं धाष्टर्यान्युशति	१०/८/३१	कस्मान्मुकुन्दो	१०/१/९
एवं निशम्य भृगु-	१०/१/१४	कस्मान्मुदम्	१०/८/३४
एवं भवान्	१०/३/१७	कामरूपधरान् दिक्षु	१०/४/४४
एवं वां तप्यतः	१०/३/३६	कारयामास विधिवत्	१०/५/२
एवं विमृश्य तम्	१०/१/५२	कालेन व्रजतालपेन	१०/८/२१
एवं सम्प्रार्थितो	१०/८/११	कालेन स्नान-	१०/५/४
एवं स सामभिः	१०/१/४६	कालेनाल्पेन	१०/८/२६
एवं स्वमाया-	१०/१/४३	काँल्लोकान् वै	१०/४/१६
एवं हि जन्तोरपि	१०/१/५१	किं क्षेमशूरैः	१०/४/३६
एवमेतन्महाभाग	१०/४/२६	किं दुःसहं नु	१०/१/५८
एष वः श्रेय	१०/८/१६	किं नस्तपः-	१०/७/३२

किं पुनः श्रद्धया	१०/६/३६	ग	
किं मया हतया	१०/४/१२	गच्छ देवि ब्रजम्	१०/२/७
किं स्वप्न एतत्	१०/८/४०	गण्डशैलस्तनम्	१०/६/१५
किमकार्यं कदर्याणाम्	१०/१/५८	गते मयि युवाम्	१०/३/४०
किमद्य तस्मिन्	१०/२/२१	गरिमाणं शिशोर्वोढुम्	१०/७/१८
किमिदं कुत	१०/६/४१	गर्गः पुरोहितो	१०/८/१
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण	१०/४/३६	गर्भसङ्कर्षणात् तम्	१०/२/१३
किमुद्यमैः करिष्यन्ति	१०/४/३२	गर्भे प्रणीते	१०/२/१५
कीर्तिमन्तं	१०/१/५७	गर्भो बभूव	१०/२/५
कुमुदा चण्डिका	१०/२/१२	गलग्रहणनिश्चेष्टो	१०/७/२८
कुरु द्विजाति-	१०/८/१०	गले गृहीत	१०/७/२७
कुर्वन्ति सात्वताम्	१०/६/३	गां पौरुषीम्	१०/१/२१
कृतवान् यानि	१०/१/३	गाढं कराभ्याम्	१०/६/१०
कृतस्वस्त्ययनम्	१०/७/११	गायकाश्च	१०/५/५
कृष्णं नभोगतो	१०/७/२६	गायन्त्यद्यापि कवयो	१०/८/४७
कृष्णभुक्तस्तन-	१०/६/३८	गावः सर्वगुणोपेता	१०/७/१६
कृष्णस्य गोप्यो	१०/८/२८	गावो वृषा	१०/५/७
कृष्णावतारोत्सव	१०/३/११	गिरं समाधौ	१०/१/२१
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते	१०/५/१३	गुणकर्मानुरूपाणि	१०/८/१५
कृष्णो ब्रह्मण	१०/८/५२	गुणप्रकाशैः	१०/२/३५
कृष्णो मृदम्	१०/८/३२	गुणेषु माया-	१०/१/४२
केचित् प्राञ्जलयो	१०/४/३४	गृह्याणि कर्तुमपि	१०/८/२५
केवलानुभवानन्द-	१०/३/१३	गोकुलं सर्वम्	१०/७/२१
कोटरा रेवती	१०/६/२८	गोपाः परस्परम्	१०/५/१४
कोणेषु शङ्ख	१०/६/२३	गोपाः समाययू	१०/५/८
क्रियासु यः	१०/२/३७	गोपान् गोकुल-	१०/५/१९
क्रीडन्तं पातु	१०/६/२५	गोप्यः संस्पृष्ट-	१०/६/२१
क्व वासं ज्ञातिभिः	१०/१/९	गोप्यः सुस्पृष्ट-	१०/५/११
क्षमध्वं मम	१०/४/२३	गोप्यश्च गोपाः	१०/७/३०
ख		गोप्यश्च गोपाः सह	१०/८/४२
खं रोदसी	१०/७/३६	गोप्यश्चाकर्ण्य	१०/५/९

गोप्यस्तूर्णम्	१०/६/१८	जुगोप कुक्षिं गत	१०/१/६
गोमूत्रेण स्नापयित्वा	१०/६/२०	ज्योतिर्यथैव	१०/१/४३
गौर्भूत्वाश्रुमुखी	१०/१/१८	ज्योतिश्चक्रं जलम्	१०/८/३८
ग्राम्यान् भोगान्	१०/३/४०	ज्योतिषामयनम्	१०/८/५
घ		ज्ञातयो बन्धुसुहृदो	१०/१/६३
घ्नन्ति ह्यसुतृपो	१०/१/६७	ज्ञात्वा दत्तकरम्	१०/५/२०
च		ड	
चकार नामकरणम्	१०/८/११	डाकिन्यो यातुधान्यश्च	१०/६/२७
चक्रयग्रतः	१०/६/२३	त	
चक्रवातस्वरूपेण	१०/७/२०	तं जुगुप्सित-	१०/१/३६
चतुःशतं पारिबर्हं	१०/१/३१	तं दृष्ट्वा	१०/५/२१
चित्रध्वजपताक-	१०/५/६	तं दृष्ट्वा परम-	१०/८/२
चिन्तयन्तौ	१०/३/४५	तं स्वस्तिमन्तम्	१०/७/३०
चिन्तयानो हृषीकेशम्	१०/२/२४	तत आरभ्य नन्दस्य	१०/५/१८
चूर्णयामास राजेन्द्र	१०/६/१४	ततश्च	१०/३/४७
ज		ततस्तन्मूलखने	१०/४/३७
जगाम सत्रिनयनः	१०/१/१९	ततस्तु भगवान्	१०/८/२७
जगुः किन्नर-	१०/३/६	ततो जगन्मङ्गल	१०/२/१८
जज्ञे नन्द इति	१०/८/५०	ततो बालध्वनिम्	१०/४/१
जनिष्यते तत्प्रियार्थं	१०/१/२३	ततो भक्तिर्भगवति	१०/८/५१
जन्तवो न	१०/४/१८	तत् सन्निकृष्य	१०/२/८
जन्म ते मयि	१०/३/२९	तत्र गत्वा जगन्नाथम्	१०/१/२०
जलैः पवित्र-	१०/७/१४	तत्रांशेनावतीर्णस्य	१०/१/२
जातं जातमहन्	१०/१/६६	तथा न ते	१०/२/३३
जातयोर्नो महादेवे	१०/८/४९	तथापि देवाः	१०/४/३७
जातो भूयः	१०/३/४३	तथेति सुतम्	१०/१/६१
जानुभ्यां सहपाणिभ्यां	१०/८/२१	तदा वां परितुष्टः	१०/३/३७
जायमानेऽजने	१०/३/५	तदायं सुतपा	१०/३/३२
जिघांसयापि	१०/६/३५	तत्रादहृष्टमनसौ	१०/८/२२
जिजीविषव	१०/४/३३	तन्मातरौ निजसुतौ	१०/८/२३

तन्मूला देवताः	१०/४/४२	तिलाद्रीन् सप्त	१०/५/३
तपसा श्रद्धया	१०/३/३७	तृणावर्तः शान्त-	१०/७/२६
तपस्विनो यज्ञशीलान्	१०/४/४०	तृणावर्त्तनिसृष्टाभिः	१०/७/२३
तमद्भुतं बालकम्	१०/३/९	तृतीयेऽस्मिन्	१०/३/४३
तमन्तरिक्षात्	१०/७/२९	ते तत्र वर्णितम्	१०/६/४२
तमश्मानं मन्यमान	१०/७/२७	ते तु तूर्णम्	१०/४/२
तमाह भ्रातरम्	१०/४/४	ते पीडिता	१०/२/३
तया हतप्रत्यय-	१०/३/४८	ते वै रजः-	१०/४/४५
तयाभिहितमाकर्ण्य	१०/४/१४	तेभ्य आचष्ट	१०/४/२९
तयोर्वा पुनरेव-	१०/३/४२	तैस्तैः कामैः	१०/५/१६
तस्मात् सर्वात्मना	१०/४/४०	त्रय्या चोपनिषद्भिश्च	१०/८/४५
तस्माद्भद्रे	१०/४/२१	त्वं पासि	१०/२/४०
तस्मात्र कस्यचिद्	१०/१/४४	त्वं हि ब्रह्मविदाम्	१०/८/६
तस्मात्रन्दात्मजः	१०/८/१९	त्वत्तोऽस्य	१०/३/१९
तस्मिन् स्तनम्	१०/६/१०	त्वत्पादपोतेन	१०/२/३०
तस्य च ब्रह्म-	१०/४/३९	त्वत्पादाब्जम्	१०/३/२७
तस्यां तु	१०/१/२९	त्वन्मायया-	१०/२/२८
तस्यां रात्र्याम्	१०/४/२९	त्वमस्य लोकस्य	१०/३/२१
तस्याः स्वने-	१०/६/१२	त्वमेक एवास्य	१०/२/२८
ता आशिषः	१०/५/१२	त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः	१०/३/३२
ता निष्फला	१०/७/१७	त्वया दैवनिर्गुणेन	१०/४/५
ताः कृष्णवाहे	१०/३/४९	त्वयाभिगुप्ता	१०/२/३३
तां केशबन्ध-	१०/६/५	त्वयीश्वरे ब्रह्मणि	१०/३/१९
तां गृहीत्वा	१०/४/८	त्वय्यम्बुजाक्ष-	१०/२/३०
तां तीक्ष्णचित्तम्	१०/६/९	द	
तां वीक्ष्य कंसः	१०/२/२०	दधार सर्वात्मकम्	१०/२/१८
तातं भवन्तम्	१०/५/२७	दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः	१०/८/२३
तावङ्घ्रियुग्मम्	१०/८/२२	दम्पत्योर्नितराम्	१०/८/५१
तावत् तदभि-	१०/४/२२	दह्यमानस्य	१०/६/३४
तावन्नन्दादयो	१०/६/३१	दातुमर्हसि मन्दाया	१०/४/६
तासामविरतम्	१०/६/४०		

दासीनां सुकुमारीणां	१०/१/३२	देवक्याः शयने	१०/३/५२
दिव्यवर्षसहस्राणि	१०/३/३६	देवान् प्रति	१०/४/३०
दिव्यस्रगम्बर-	१०/४/१०	देवैः सानुचरैः	१०/२/२५
दिशः प्रसेदुः	१०/३/२	देहं मानुषमाश्रित्य	१०/१/११
दिष्ट्या भ्रातः	१०/५/२३	देहयोगवियोगौ	१०/४/२०
दिष्ट्या संसार-	१०/५/२४	देहान्तरमनुप्राप्य	१०/१/३९
दिष्ट्या हरेऽस्या	१०/२/३८	देहे मृते तम्	१०/२/२२
दिष्ट्याङ्कितां	१०/२/३८	देहे पञ्चत्वम्	१०/१/३९
दिष्ट्याम्ब ते	१०/२/४१	दैत्यो नाम्ना	१०/७/२०
दुरत्ययं कौरव-	१०/१/५	दैवमप्यनृतं वक्ति	१०/४/१७
दुरासदोऽतिदुर्द्धर्षः	१०/२/१७	द्रोणो वसूनाम्	१०/८/४८
दुर्गेति भद्रकालीति	१०/२/११	द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टम्	१०/१/६
दुहित्रे देवकः	१०/१/३२	द्वारश्च सर्वाः	१०/३/४८
दूरे क्षिप्त्वा-	१०/६/३३	द्विजालिकुल-	१०/३/३
दृष्टश्रुताभ्यां	१०/१/४१	द्वीपान् नगान्	१०/७/३६
दृष्ट्वा यशोदा-	१०/७/८	ध	
दृष्ट्वा समत्वं	१०/१/५९	धनुःशूलेषु-	१०/४/१०
दृष्ट्वाद्भुतानि	१०/७/३३	धूपोपहारबलिभिः	१०/२/१०
देवकी तमुपाधावत्	१०/३/२३	धेनूनां नियुते	१०/५/३
देवकीं वसुदेवञ्च	१०/१/६६	ध्वान्तागारे धृतमणिगणम्	१०/८/३०
देवकीं वसुदेवञ्च दर्श-	१०/४/२४	न	
देवकीं वसुदेवञ्च विमुच्य	१०/४/१४	न तल्लिङ्गम्	१०/३/५३
देवकीवसुदेवाभ्याम्	१०/४/२८	न ते श्रद्धधिरे	१०/७/१०
देवक्या अष्टमः	१०/८/८	न तेषाम्	१०/७/१३
देवक्या गर्भ-	१०/१/८	न तेषु क्लिश्यमानेषु	१०/५/२८
देवक्या गर्भसम्भूतम्	१०/१/६५	न तेऽभवस्येश	१०/२/३९
देवक्या जठरे	१०/२/८	न त्वं विस्मृत-	१०/४/३५
देवक्या सूर्यया	१०/१/२९	न नामरूपे	१०/२/३६
देवक्यां देव-	१०/३/८	न न्यवर्तत	१०/१/४६

न पुनः कल्पते	१०/६/४०	निर्बन्धं तस्य तम्	१०/१/४७
न यत्र श्रवणादीनि	१०/६/३	निवृत्ततर्षैः-	१०/१/४
न वव्राथेऽपवर्गम्	१०/३/३९	निशाचरीत्यं	१०/६/१३
न ह्यस्यास्ते	१०/१/५४	निशीथे तम-	१०/३/८
नद्यः प्रसन्न-	१०/३/३	नूनं बतर्षिः	१०/६/३२
नन्दः किमकरोद्-	१०/८/४६	नूनं ह्यदृष्ट-	१०/५/३०
नन्दः पथि	१०/६/१	नेह स्थेयं बहुतिथम्	१०/५/३१
नन्दः प्रमुदितो	१०/८/२०	नैकत्र प्रियसंवासः	१०/५/२५
नन्दः स्वपुत्रम्	१०/६/४३	नैवाशृणोद्वै	१०/७/६
नन्दयित्वाब्रवीद्	१०/८/३	नैषातिदुःसहा	१०/१/१३
नन्दब्रजं शौरिः	१०/३/५१	न्यस्यात्मन्यथ	१०/६/२१
नन्दस्त्वात्मज	१०/५/१	प	
नन्दस्य पत्नी	१०/७/५	पतमानोऽपि	१०/६/१४
नन्दादयश्चाद्भुत-	१०/७/८	पथि प्रग्रहिणं	१०/१/३४
नन्दाद्या ये	१०/१/६२	पद्भ्यां भक्तहृदि-	१०/६/३७
नन्दालयं सवलया	१०/५/११	पयांसि यासाम्	१०/६/३९
नन्दो महामनाः	१०/५/१५	पाययित्वा स्तनम्	१०/६/३०
नन्वहं ते ह्यवरजा	१०/४/६	पितामहा मे	१०/१/५
नवकुङ्कुम-	१०/५/१०	पितरौ नान्वविन्देतां	१०/८/४७
नष्टे लोके	१०/३/२५	पित्रोः सम्पश्यतः	१०/३/४६
नानावीर्याः	१०/३/१५	पिबन्तं त्वन्मुख-	१०/१/१३
नान्यथा मद्भवम्	१०/३/४४	पीतप्रायस्य जननी	१०/७/३५
नापश्यत् कश्चन-	१०/७/२३	पुंसस्त्रिवर्गो विहितः	१०/५/२८
नाभ्यनन्दत	१०/१/६१	पुत्रान् प्रसुषुवे	१०/१/५६
नामधेयानि कुर्वन्ति	१०/२/११	पुत्रान् समर्पयिष्ये	१०/१/५४
नायमात्मा तथा	१०/४/१९	पुरं यथा	१०/७/२९
नारयोऽभिभवन्त्येतान्	१०/८/१८	पुरानेन व्रजपते	१०/८/१७
नाहं भक्षितवानम्ब	१०/८/३५	पुरुषं पुरुषसूक्तेन	१०/१/२०
निःश्रेयसाय	१०/८/४	पुरुषाद इवापत्यम्	१०/४/१५
नित्यमुद्विग्नमनसो	१०/४/३२	पुरैव पुंसावधृतो	१०/१/२२
निमेषादिर्वत्सरान्तो	१०/३/२६		

पूजयामास वै	१०/१/५२	बलिभिस्त्वरितं	१०/५/१०
पूजितः सुखमासीनः	१०/५/२२	बहवो हिंसिता	१०/४/५
पूतना लोक-	१०/६/३५	बहिरन्तःपुर-	१०/४/१
पूर्ववत् स्थापितम्	१०/७/१२	बहुनामनिकेतुषु	१०/४/१३
पूर्वन्तु तन्निः-	१०/६/१७	बहूनि सन्ति	१०/८/१५
पृश्निगर्भस्तु ते	१०/६/२५	बालं प्रतिच्छन्न-	१०/६/७
प्रजाशाय निवृत्तस्य	१०/५/२३	बालग्रहस्तत्र	१०/६/७
प्रणीतं भवता	१०/८/५	बालञ्च तस्या	१०/६/१८
प्रतिगृह्य परिक्रम्य	१०/२/१४	बालयोरनयोर्नृणाम्	१०/८/६
प्रतिमुच्य पदोः	१०/३/५२	बिभर्ति सोऽयम्	१०/३/३१
प्रतियातु कुमारः	१०/१/६०	बिभर्षि रूपाणि	१०/२/२९
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं	१०/१/१४	बृहद्वनं तदधुना	१०/५/२६
प्रदाय मृत्यवे	१०/१/४९	ब्रह्मर्हिंसां हितम्	१०/४/४३
प्रयच्छतो मृत्युम्	१०/१/७	ब्रह्मा तदुपध्यायथ	१०/१/१९
प्रयाणप्रक्रमे	१०/१/३३	ब्रह्मा भवश्च	१०/२/२५
प्रलम्बबक-	१०/२/१	ब्रह्मेशानौ	१०/२/४२
प्रवृद्धस्नेहकलिल-	१०/८/४४	भ	
प्रसक्तधीः	१०/५/२२	भक्तिः स्यात्	१०/८/४९
प्रसन्नवदनाम्भोजः	१०/१/५३	भक्तिर्हरौ	१०/७/२
प्रसार्य गोष्ठे	१०/६/१३	भगवानपि विश्वात्मा भक्तानाम-	
प्रस्तुतं पाययामास	१०/७/३४		१०/२/१६
प्रागयं वसुदेवस्य	१०/८/१४	भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा	
प्रागेव विद्यमानत्वात्	१०/३/१६		१०/२/६
प्रादाय मात्रे	१०/७/३०	भगवान् देवकी-	१०/६/३९
प्रादुरासं वरद-	१०/३/३८	भगिनीं हन्तुमारब्धः	१०/१/३५
प्राप्तं कालम्	१०/१/४७	भयानकावर्त-	१०/३/५०
प्राप्स्यामि त्वम्	१०/२/९	भवत्पदाम्भोरुह-	१०/२/३१
प्रीतः प्रियतमम्	१०/५/२१	भवो निरोधः	१०/२/३९
ब		भुञ्जानं यज्ञभुक्	१०/६/२६
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि	१०/६/१६	भुवि भौमानि	१०/४/१९

भूतप्रेतपिशाचाश्च	१०/६/२७	माया नारायणीशानी	१०/२/१२
भूमिर्दृप्तनृपव्याज-	१०/१/१७	मिथो घन्तं न	१०/४/२७
भूमेभारायमाणानाम्	१०/१/६४	मुक्तकच्छशिखाः	१०/४/३४
भूमौ निधाय	१०/७/१९	मुखं लालयती	१०/७/३५
भोजेन्द्रगेहेऽग्नि-	१०/२/१९	मुमुचुर्मुनयो	१०/३/७
भ्रातरञ्चावधीत्	१०/१/१०	मुष्टिकारिष्ट-	१०/२/१
भ्रातर्मम सुतः	१०/५/२७	मुहूर्तमभवद्	१०/७/२२
भ्रातुः समनुत्पत्तस्य	१०/४/२५	मूढ्युपाघ्राय	१०/६/४३
म		मूलं हि विष्णुः	१०/४/३९
मघोनि	१०/३/५०	मृत्युर्जन्मवताम्	१०/१/३८
मत्तः कामान्	१०/३/३५	मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो	१०/१/४८
मत्स्याश्वकच्छप-	१०/२/४०	य	
मथुरा भगवान्	१०/१/२८	य आत्मनः	१०/३/१८
मनसा दूयमानेन	१०/१/५३	य एतत्पूतना-	१०/६/४४
मनांस्यासन्	१०/३/५	य एतस्मिन्	१०/८/१८
मनोवचोभ्याम्	१०/२/३६	यच्छन् प्रियतमम्	१०/६/३६
मन्दं मन्दम्	१०/३/७	यच्छृण्वतः	१०/७/२
मर्त्यो मृत्यु-	१०/३/२७	यतो यतो धावति	१०/१/४२
मर्कान् भोक्ष्यन्	१०/८/२९	यत् सम्परेतः	१०/७/३२
महद्विचलनम्	१०/८/४	यत्र क्व वा	१०/४/१२
महापुरुषमादध्यौ	१०/७/१९	यथा तृण-	१०/१/४०
महार्हवस्त्राभरण-	१०/५/८	यथानेवाविदो	१०/४/२०
महार्हवैदूर्यकिरीट	१०/३/१०	यथामयोऽङ्गे	१०/४/३८
महासुरं कालनेमिम्	१०/१/६८	यथेन्द्रियग्राम	१०/४/३८
मही मङ्गल-	१०/३/२	यथेमेऽविकृता	१०/३/१५
मा शोचतं	१०/४/१८	यदा बहिर्गन्तुम्	१०/३/४७
मातरं पितरं भ्रातृन्	१०/१/६७	यदाश्रयं येन	१०/८/४१
माथुरान् शूरसेनांश्च	१०/१/२७	यदि सत्यगिरः	१०/८/३५
मानुशोच यतः	१०/४/२१	यदुपुर्यां सहावात्सीत्	१०/१/११
मानुषं लोकम्	१०/७/३	यदूनां कदनम्	१०/२/२
माभूद्भयं	१०/२/४१	यदूनां निजनाथानाम्	१०/२/६

यदूनामपृथग् भावात्	१०/८/१२	रामेति लोक-	१०/२/१३
यदूनामहमाचार्यः	१०/८/७	रुदतानेन पादेन	१०/७/९
यदोश्च धर्म-	१०/१/२	रुदन्तं सुतमादाय	१०/७/११
यद्यसौ न निवर्तेत	१०/१/४८	रुदितमनुनिशम्य	१०/७/२५
यद्येवं तर्हि	१०/८/३६	रूपं यत्तत्	१०/३/२४
यद्विश्रम्भादहं पापः	१०/४/१७	रूपञ्चेदं पौरुषम्	१०/३/२८
यद्वङ्गनादर्शनीय-	१०/८/२४	रुरुदुरनुपलभ्य	१०/७/२५
यद्वर्होवाजन-	१०/३/१	रोहिणी च महाभागा	१०/५/१७
यशोदा च महाभागा	१०/८/४६	रोहिणी वसुदेवस्य	१०/२/७
यशोदा नन्दपत्नी	१०/३/५३	रोहिण्यास्तनयः	१०/१/८
यशोदा भय-	१०/८/३३	व	
यशोदा-रोहिणीभ्याम्	१०/६/१९	वक्तरं प्रच्छकम्	१०/१/१६
याचितस्तां विनिः-	१०/४/७	वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ	१०/१/१२
यातुधान्यपि	१०/६/३८	वत्सान् मुञ्चन्	१०/८/२९
यावद्धतोऽस्मि	१०/४/२२	वत्सरितस्तत	१०/८/२४
युवां माम्	१०/३/४५	वदन्ति तावका	१०/८/३४
युवां वै	१०/३/३३	ववर्ष पर्जन्य	१०/३/४९
येऽन्येऽरविन्दाक्ष	१०/२/३२	ववौ वायुः	१०/३/४
येऽसूयानृत-	१०/७/१३	वरस्त्रियं तत्प्रभया	१०/६/९
येन येनावतारेण	१०/७/१	वर्षवातातपहिम-	१०/३/३४
योऽयं कालः	१०/३/२६	वल्लुग्स्मित-	१०/६/६
योषित्वा मायया	१०/६/४	वसुदेव उपश्रुत्य	१०/५/२०
र		वसुदेवगृहे	१०/१/२३
रक्षाञ्चक्रुश्च	१०/६/२०	वसुदेववचो भूयो	१०/७/३३
रक्षां विदधिरे	१०/६/१९	वसुदेवो महाभाग	१०/१/३६
रश्मीन् हयानां	१०/१/३०	वसुदेवोऽपि तम्	१०/१/५५
रसा दिशश्च	१०/६/१२	वाचयित्वा	१०/५/२
रहोजुषा किं	१०/४/३६	वाचयित्वा स्वस्त्ययनं	१०/७/१५
राजधानी ततः	१०/१/२८	वादित्रगीत-	१०/७/४
राजन्यसंज्ञा-	१०/३/२१	वासुदेव इति श्री-	१०/८/१४
राज्ञाञ्चोभय-	१०/१/१	वासुदेवकथाप्रश्नः	१०/१/१६

वासुदेवकथायां	१०/१/१५	त्रियतां वर	१०/३/३८
वासुदेवकलानन्तः	१०/१/२४	श	
विचित्रधातुबर्ह-	१०/५/७	शङ्खचक्रगदापद्म-	१०/३/३०
विदितोऽसि भवान्	१०/३/१३	शङ्खतुर्यमृदङ्गाश्च	१०/१/३३
विद्याधर्यश्च	१०/३/६	शाल्वान् विदर्भान्	१०/२/३
विध्वस्तनाना-	१०/७/७	शिशृश्चचार	१०/६/२
विनानुवादं	१०/३/१८	शीर्णपर्णानिल-	१०/३/३५
विपर्ययो वा किम्	१०/१/५०	शुक्लो रक्तः	१०/८/१३
विप्रा गावश्च	१०/४/४१	शुध्यन्ति दानैः	१०/५/४
विप्रा मन्त्रविदो	१०/७/१७	शूरसेनो यदुपतिः	१०/१/२७
विप्रा हुत्वा-	१०/७/१२	शोकहर्षभयद्वेष-	१०/४/२७
विबुध्य ताम्	१०/६/८	श्रद्धा दया	१०/४/४१
विलोक्य	१०/६/३१	श्रिया कीर्त्यानु-	१०/८/१९
विवृत्य नेत्रे	१०/६/११	श्रीवत्सलक्ष्मम्	१०/३/९
विश्वं यदेतत्	१०/३/३१	श्रुत्वा तन्निधनम्	१०/६/४२
विष्णोराराधनार्थाय	१०/५/१६	शृङ्ग्याग्निदंष्ट्र्यहि-	१०/८/२५
विष्णोर्माया भगवती	१०/१/२५	शृणुयाच्छ्रद्धया	१०/६/४४
वीर्याणि तस्य-	१०/१/७	शृण्वन् गृणन्	१०/२/३७
वृष्णयो वसुदेवाद्या	१०/१/६२	शृण्वन्त्याः किल	१०/८/२८
वेदक्रियायोग-	१०/२/३४	श्लाघनीयगुणः	१०/१/३७
वैकारिकाणीन्द्रियाणि	१०/८/३८	श्वेतद्वीपपतिश्चित्तम्	१०/६/२४
वैष्णवी व्यतनोन्मायाम्	१०/८/४३	स	
व्यक्तेऽव्यक्तम्	१०/३/२५	स एव दृष्टो	१०/६/३२
व्यचरद्विव्यास-	१०/५/१७	स एव स्वप्रकृत्या	१०/३/१४
व्यसृजद्वसुदेवश्च	१०/४/२५	स एष जीवन्	१०/२/२२
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः	१०/८/३६	स कथं भगिनीं	१०/१/३७
व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ	१०/६/२६	स तल्पात् तूर्णम्	१०/४/३
व्रजे वसन् किम्	१०/१/१०	स तेऽवतारम्	१०/३/२२
व्रजं जगाम	१०/८/१	स त्वं घोरात्	१०/३/२८
व्रजंस्तिष्ठन्	१०/१/४०	स त्वं त्रिलोक-	१०/३/२०
व्रजः संमृष्ट-	१०/५/६		

स त्वहं त्यक्त-	१०/४/१६	सा तत्र ददृशे	१०/८/३७
स विस्मयोत्फुल्ल-	१०/३/११	सा तद्धस्तात्	१०/४/९
स यावदुर्व्या	१०/१/२२	सा देवकी	१०/२/१९
स विभ्रत् पौरुषम्	१०/२/१७	सा मुञ्च	१०/६/११
स हि सर्व-	१०/४/४२	सा वीक्ष्य विश्वम्	१०/७/३७
सतां विद्वेषम्	१०/४/४५	साद्रिद्वीपाब्धि-	१०/८/३७
सत्तामात्रम्	१०/३/२४	सिद्धचारणगन्धवैः	१०/४/११
सत्त्वं न	१०/२/३५	सुताः मे यदि	१०/१/४९
सत्त्वं विशुद्धं	१०/२/३४	सुतं मया संस्कृतम्	१०/८/७
सत्त्वोपपन्नानि	१०/२/२९	सुतं यशोदा नापश्यत्	१०/७/२२
सत्यव्रतं सत्यपरम्	१०/२/२६	सुतं यशोदाशयने	१०/३/५१
सत्यस्य सत्यम्	१०/२/२६	सुवाससं	१०/६/५
सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी	१०/८/४४	सूतमागधवन्दिभ्यो	१०/५/१५
सन्तत्रसुः स्म	१०/६/१७	सूतीगृहमगात्	१०/४/३
सन्दिश्य साधुलोकस्य	१०/४/४४	सूनोस्तनौ वीक्ष्य	१०/८/३९
सन्दिष्टैवं भगवता	१०/२/१४	सूपविष्टं	१०/८/३
सन्निपत्य समुत्पाद्य	१०/३/१६	सौमङ्गल्यगिरः	१०/५/५
सन्निभ्येन्द्रिय-	१०/३/३३	स्त्रियाः स्वसुगुरु-	१०/२/२१
सप्तत्वगष्ट-	१०/२/२७	स्नुषेयं तव	१०/४/४
सप्तमो वैष्णवम्	१०/२/५	स्वप्नदृष्टा	१०/६/२९
समुद्विजे भवत्	१०/३/२९	स्वप्ने यथा	१०/१/४१
सम्मील्य मृगशावाक्षी	१०/७/३७	स्वयं निगृह्य	१०/१/६९
सम्यगव्यवसिता	१०/१/१५	स्वयं समुत्तीर्य	१०/२/३१
सर्गाय रक्तम्	१०/३/२०	स्वरोचिषा भारत	१०/३/१२
सर्वे नश्यन्तु	१०/६/२९	स्वसुर्वधान्निववृते	१०/१/५५
सर्वे वै देवता-	१०/१/६३	ह	
सहमानौ	१०/३/३४	हतेषु षट्सु बालेषु	१०/२/४
सहरामो वसन्	१०/८/५२	हन्ति श्रेयांसि	१०/४/४६
सहरामो व्रजस्त्रीणाम्	१०/८/२७	हन्तुं नार्हसि	१०/१/४५
सा खेचर्येकदा	१०/६/४	हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः	१०/५/१२
सा गृहीत्वा	१०/८/३३		

हरिं जगाम	१०/६/१	हुत्वा चार्णि	१०/७/१५
हरेर्निवासात्मगुणै	१०/५/१८	हत्केशवस्त्वदुर	१०/६/२२
हस्ताग्राह्ये रचयति	१०/८/३०	हंस्यन्यासक्तविमुखान्	१०/४/३५
हिंस्रः स्वपापेन	१०/७/३१		